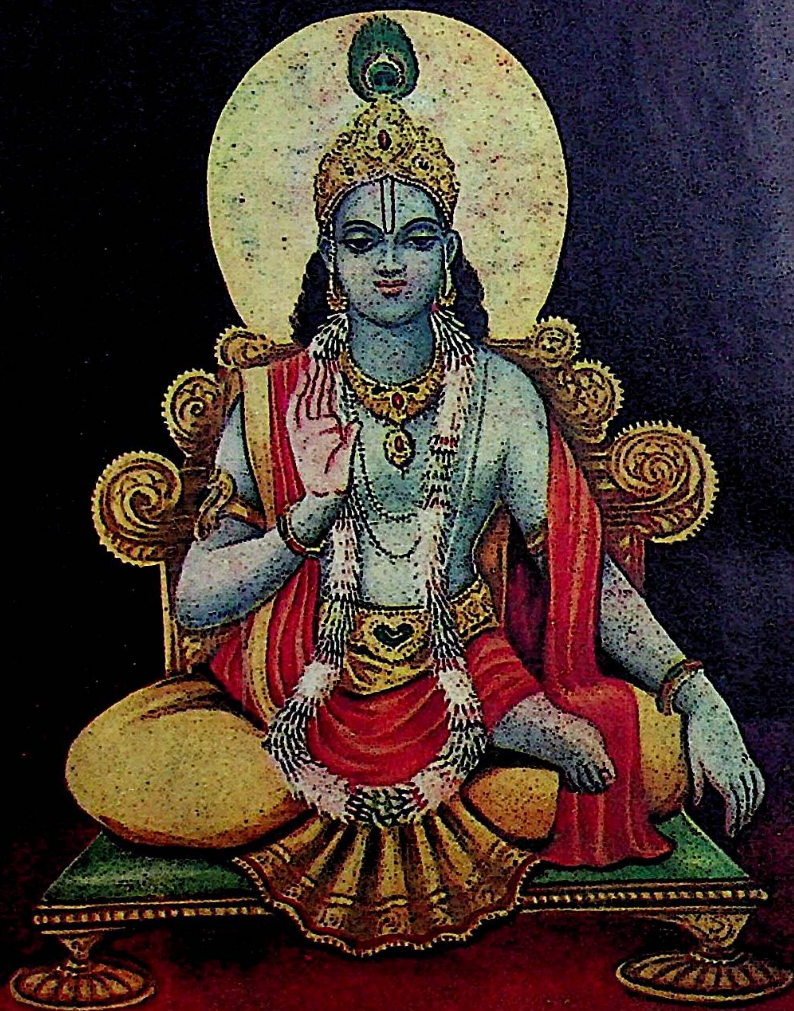












अभयदाता भगवान

॥ श्रीहरिः ॥

श्री भागवत चरित

[सप्ताह]

लेखक

श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी

प्रकाशक

संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर झूसी [प्रयाग]

तृतीय संस्करण } भाद्रपद संवत् २०१७ वि० { मूल्य ५।)
५००० } { सवा पाँच रुपया

प्रकाशक

व्यवस्थापक

संकीर्तन भवन

प्रतिष्ठानपुर (झूसी) प्रयाग

प्रथम संस्करण—मार्गशीर्ष सम्बत् २००७ वि० ३००० प्रतियाँ
द्वितीय संस्करण—फाल्गुन सम्वत् २००९ वि० ५००० प्रतियाँ
तृतीय संस्करण—भाद्रपद संबत् २०१७ वि० ५००० प्रतियाँ

पृष्ठ संख्या	९१८
भूमिका, विषय सूची, चित्र सूची	२४
पूरी पुस्तक के पृष्ठ	९४२

चित्र संख्या

तिरंगे चित्र ...	५
दुरंगे ,, ...	१
इकरंगे ,, ...	३२
सादे ,, ...	४२
छोटे ,, ...	६०
सम्पूर्ण पुस्तक में चित्र	१४०

न्योछावर—
५।) सवा पाँच रुपये मात्र

मुद्रक
भागवत प्रेस, झूसी
प्रयाग

॥ श्रीहरि ॥

प्राक्कथन

तव कथामृतं तप्तजीवनम् ।
कविभिरीडितं कल्मषापहम् ॥
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततम् ।
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥

आज इस 'भागवत चरित' महाग्रंथको प्रेमी पाठक पाठिकाओं के सम्मुख समुपस्थित करनेमें हमें बड़ा ही हर्ष हो रहा है। संकीर्तन भवनसे पद्यमें प्रकाशित यह सर्वप्रथम विशाल ग्रन्थ है। श्रीमहाराज जी जो 'भागवतीकथा' नामक ग्रन्थ लिख रहे हैं, जिसको १०८ खंडो में निकालनेका आयोजन है और जिसके ६८ खंड अब तक छपकर प्रकाशित भी हो चुके हैं। उसी दधि समुद्र रूपी ग्रंथको मथकर उसमें से घृत रूपसे यह निकाला गया है। कहना चाहिये भागवती कथा इन्हीं पद्योंका भाष्य है। भाष्य पहिले प्रकाशित हो गया। मूल ग्रंथ अब पीछेसे प्रकाशित किया जा रहा है। जिन्होंने भागवती कथा कोपढ़ा होगा वे जानते होंगे कि उसके अध्यायके आदि अन्तमें एक एक छप्पय रहता है। अध्याय चाहे चार पृष्ठोंका हो अथवा ४० पृष्ठों का, आदि अन्तके दो छप्पयोंमें उसका सार आ जायगा। आप भागवती कथाके गद्य भागको छोड़कर केवल पद्यों ही पद्यों को पढ़ते जायँ, पूरी कथासमझमें आ जायगी। बड़ी बड़ी कथायें कितनी चातुरीके साथ वर्णन की गयी हैं, उन्हें पढ़कर आश्चर्य होता है। एक कथा है, ब्रह्माजीसे रावणने अपनी मृत्युके सम्बन्धमें तब पूछा जब दशरथजी विवाह करने जा रहे थे। ब्रह्माजीसे यह सुनकर कि कौशल्याके गर्भसे उत्पन्न दाशरथी राम मुझे

मारेंगे। वह दौड़ कर अवध आया। दूल्हा दशरथ नौकासे विवाह करने जा रहे थे। नौकाको डुबो दिया। कौशल्याजीको एक पेटीमें बंद करके एक तिमिंगिल मत्स्यको दे गया। इधर किसी प्रकार दशरथजी भी वहीं बहते हुए पहुँच गये। दोनों का विवाह हो गया। कथा बहुत बड़ी है। भागवती कथाके २६ पृष्ठोंमें लिखी गयी है। उसका वर्णन इसी ग्रंथमें एक छप्पयमें सुनिये—

रावण जैसो शूरवीर बलको गरबीलौ।
पुरुषारथ लखि व्यर्थ भयो चिन्तित अति ढीलौ॥
दशरथ हौं वर बधू कुमरि कौशिल्या बरिहैं।
तिनितें होवें राम वही तोकूँ रन मरिहैं॥
ब्रह्मदेवतें सुनी यौं, कुमर डुबाये कुमरि लै।
लंका आयौ परि भयो, ब्याह देखि खल कर मलै॥

भारतीय सभ्यता और संस्कृति का पग पग पर ध्यान दिया गया है। इतने बड़े महाग्रंथमें कहीं भी भारतीय मर्यादाका उल्लंन नहीं किया गया। उन मर्यादाओंका इतनी सरसतासे वर्णन किया कया है, कि पढ़ते पढ़ते हृदय फड़क उठता है। भाव गोपनमें इतना स्वारस्य आ गया है कि कुछ कहते ही नहीं बनता।

बहुत दिनोंकी प्रतीक्षाके पश्चात् हस्तिनापुरसे श्यामसुन्दर द्वारका पधारे हैं। सभी मातायें अत्यन्त उत्कंठित हैं और सोलह सहस्र एक सौ आठ रानियोंकी उत्कंठाका तो कहना ही क्या। भारतीय सभ्ययाके अनुसार पहिले भगवान् माताओं के महलोंमें जाते हैं। चिरकालके पश्चात् अपने प्राणाधिक पुत्रको पाकर माताओंके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। कुशल क्षेम पूछते पूछते ही बड़ी देर हो गयी। रानियोंकी उत्कंठा पराकाष्ठा को पहुँच चुकी थी, किन्तु सासोंके सम्मुख पतिके पास जाना मर्यादाके विरुद्ध

है। अतः वे ओटमें से छिपकर अपने हृदयधनके दर्शन करनेकी असफल चेष्टायें करने लगीं। खिड़की ऊँची थी। उचकनेसे पैरोंके कड़े छड़े झंकृत हो उठे। चूड़ियाँ बजने लगीं। इस खनखनाहट और झनझनाहटसे माँ देवकी का ध्यान उधर गया। वे भी नारी थीं। नारी हृदयकी पीर समझती थीं। तुरन्त उठकर खड़ी हो गयीं और पुचकारती हुई बोलीं—"अच्छा, बेटा! फिर बातें होंगी, तू थका होगा। जा भीतर, कपड़े बदल ले।" भीतर जाकर कपड़े बदलने का अर्थ क्या है इसे श्यामसुन्दर समझ गये और मुस्कराते हुए घर चले। अब देखिये, महलके भीतर भी भारतीय सभ्यताका कितना ध्यान रखा गया है। भारतीय सभ्यतामें किसीके भी सम्मुख पत्नी अपने पतिका स्पर्श नहीं कर सकती। किन्तु इतने दिनोंके पश्चात् पति आये हैं, उनका आलिंगन करना अत्यावश्यक है। अतः उन्होंने अपने छोटे बच्चोंको पतिकी गोदमें दे दिया। पतिने उनका मुख चूमा, प्यार किया, हृदयसे लगाया। फिर पत्नीको दे दिया। अब पत्नी ने उसका मुख चूमा, छातीसे लगाया, मानों पतिका ही आलिंगन मिल गया। आलिंगन तो पतिका किया, किन्तु पुत्रको बीचमें डाल कर—मर्यादाके भीतर। कविके शब्दोंमें इसी भावको पढ़िये—

सुनि नूपुरकी झनक चुरिनिकी खनक मनोहर।
माँ बोलीं—'अब जाउ बस्त्र बदलो भीतर घर।
मन्द मन्द मुस्कात महलमें मोहन आये।
नारि निरखि नँदनंद नयनतें नीर बहाये॥
मनतें मोहनतें मिलीं, नयन ओटतें चोट करि।
शिशु सौंप्यो पुनि लाइ उर, आलिंगन यों किये हरि॥

श्रीरामचरित मर्यादा चरित है और श्रीकृष्ण-लीला माधुरी रसमय चरित्र है। नौ अध्यायोंमें इसमें राम चरित्रका भी वर्णन है, उसमें पदपदपर मर्यादाका पालन किया गया है और कृष्ण चरित्रमें

तो रसका ऐसा प्रवाह बहाया है कि पढ़ते पढ़ते छप्पयमेंसे रसकी अविरल वर्षा सी होने लगती है। रास का वर्णन करते हुए कवि कहता है:—

ब्रज-युवतिनिके कंठ डारि कर नृत्यत नटवर।
रुनुझुन नूपुर बजत झनक चुरियनिकी मनहर॥
हिलत छीन कटि केश लोल लोचन अति चंचल।
पीताम्बर सँग मिलत हिलत युवतिनिके अंचल॥
पग पटकत कुंडल हिलत, मुख मटकत लचकत कमर।
हिलत हार मुख मुख मिलत, करत गान इत उत भ्रमर॥

इसी प्रकार मोहिनी भगवान्‌के वर्णनमें कविने सरसताकी सरिता बहा दी है। इतना सरस प्रसंग कितनी मर्यादा और विशुद्धता के साथ व्यक्त किया है, इसे पाठक ही विचारें। मोहिनी देवी के रूप का वर्णन करते हुए कवि कहता है:—

पग युग अटपट परत उदर कृश नमत निरंतर।
कंदुक श्रमतैं श्वेद-बिन्दुयुत मुख अति सुन्दर॥
अलकनि पलकनि और कपोलनिकी झलकनिपै।
छटकि सरसता रही भामिनीके अंगनिपै।
तिरछी चितवनितें, लखै भूलि अपनपौ शिव गये।
छाँड़ि शील संकोच सब, मृगनयनी सँग चलि दये॥

इस सँकुचित स्थलमें किसी भी उपमा, यमक, अनुप्रास रस, रीति आदि का उदाहरण नहीं दिया जाता। उसका स्वारस्य तो पाठक इसके पाठसे प्राप्त कर सकेंगे। हमारी बहुत दिनसे इच्छा थी कि जिस प्रकार भाषामें पाठ करनेको रामायण है उसी प्रकार भागवत भी हो। भगवान्‌ने यह इच्छा पूर्ण की। इसमें साप्ताहिक पारायण पाक्षिक तथा मासिक सभीके स्थल विभक्त कर दिये हैं; जिससे पाठकोंको सुविधा हो। इतने बड़े ग्रन्थको इतनी सुन्दरता

और शीघ्रताके साथ हम कभी भी न निकाल सकते, यदि आर्ट प्रिंटर्स व लक्ष्मी फोटो इन्ग्रेविङ्ग कम्पनी इलाहाबादके स्वामी बाबू रामनाथजी अग्रवाल हमारे इस काममें हमारी सहायता न करते, उन्होंने जिस उत्साह और लगन के साथ निस्वार्थ भावसे हमारी यह सुन्दर पुस्तक मुद्रित की है उसके लिये हम आपके चिर ऋणी रहेंगे। श्रीमहाराजका कृपाप्रसाद तो उन्हें सपरिवार प्राप्त ही है। अन्तमें हमारी पाठकोंसे विनय है कि इस परम पुण्यमय पावन ग्रन्थका जितना वे प्रचार प्रसार कर सकें अवश्य करें। हमारा एक मात्र उद्देश्य भागवत चरितोंका प्रसार प्रचार करना है। लगभग एक सहस्र पृष्ठों की पुस्तक जिसमें चार रङ्गीन और इतने अधिक सादे चित्र हों, सुन्दर पक्की जिल्द बाजार में १५) से कम में नही मिल सकती। ५।) तो लागत भी नहीं। इतनी बड़ी पुस्तक दुबारा शीघ्र नहीं छप सकती। अतः पाठक मँगानेमें शीघ्रता करें। हम चाहते हैं घर घरमें इसका प्रसार हो, किंतु यह सब जनता जनार्दन की इच्छा के ही ऊपर निर्भर है। अन्त में अपने सभी कृपालु दयालु महानुभावोंका आभार प्रदर्शित करते हुये इसी ग्रंथ की एक छप्पय लिखकर हम अपने इस वक्तव्यको समाप्त करते हैं:—

अति ही निरमल चरित भागवत भक्तनिको धन।
जामें ज्ञान विशुद्ध भक्ति भगवतको बरनन॥
करम त्याग वैराग्य यथा थल सबई भाखे।
अति समास सब कहे शेष कोई नहिं राखे॥
श्रवन मनन अरु पाठ नित, करें प्रेमतें नारि नर।
देहिं भक्ति अरु मुक्ति तिनि, प्रभु परमेश्वर परावर॥

प्रष्ठिानपुर (झूसी)
संकीर्तन भवन
मार्ग० शु० ५—२००७

विनीत
व्यवस्थापक

॥ श्रीहरिः ॥

द्वितीय संस्करण की भूमिका

परम पिता परमात्मा की असीम अहैतुकी कृपा से आज हम 'भागवत चरित' के द्वितीय संस्करण को लेकर पाठक पाठिकाओं के सम्मुख प्रस्तुत होते हैं। इसका प्रथम संस्करण सम्वत् २००७ माघ मास में हुआ। प्रथम संस्करण हमने तीन सहस्र छपाया था। लगभग एक वर्ष में ही प्रायः सम्पूर्ण पुस्तकें समाप्त हो गयीं, किन्तु माँग बराबर आती ही रही। कुछ प्रतियाँ भेंट उपहार में चली गयीं। जो कुछ आय हुई वह "गो ब्राह्मण हिताय च" में समाप्त हो गयी, दूसरे संस्करण को प्रकाशित करने का कोई भी साधन नहीं रहा। किन्तु भगवान् अपने चरित्रों को प्रकाशित करते हैं तो जो उनके अपने आत्मीय व्यक्ति होते हैं उन्हें इसके लिये प्रेरित करते हैं। हम दूसरा संस्करण छापने को चिन्तित थे, तभी सिरमौर राज्य (नाहन) की राजमाता श्रीमदालसा देवी ने स्वयं तथा अपने परिवार के व्यक्तियों से (कृष्णा, पृथु, शिवा, मनु, राजवती तथा अन्यान्य कुटुम्बियोंसे) लेकर साढ़े तीन सहस्र रुपये भेजे। उन्हीं से छपाई कार्य आरम्भ हुआ। बीच में कुछ दिन कार्य रुका रहा, फिर एक दूसरी पूजनीया माँ जी की सहायता से कार्य आगे बढ़ा। इस प्रकार जैसे तैसे कुछ उधार सुधार करके यह पाँच सहस्र का दूसरा संस्करण छापा गया। इस कार्य में लगभग एक वर्ष लग गया।

हमें इस बात की बड़ी ही प्रसन्नता है कि 'भागवत चरित' को भगवत् प्रेमी पाठक पाठिकाओं ने बड़े ही प्रेम से अपनाया। सैकड़ों नरनारी नित्य नियम से इसका साप्ताहिक, पाक्षिक तथा

आस्तिक पाठ करते हैं। बहुत से कथा-बाचक इसके आधार पर श्रीमद्भागवत सप्ताह बाँचते हैं, बहुत से गायक बाजे तबले पर इसकी कथा कहते हैं। इस प्रकार सभी श्रेणी के लोगों ने इसे अपनाया है। यह सब स्वतः ही भगवत् प्रेरणा द्वारा ही हुआ। हमारी ओरसे प्रचार प्रसार का कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया गया।

"भागवत चरित" में श्रीमद्भागवत के बारहों स्कन्धों की सभी कथायें संक्षेप तथा विस्तार के सहित वर्णित हैं। अन्य पुराण शास्त्रों के भी प्रसङ्ग बीच बीच में प्रसङ्गानुसार वर्णित हैं। इस प्रकार यह भाषा में भगवत् भक्तों के श्रवण पठन मनन तथा पारायण करने के निमित्त अपूर्व ग्रन्थ हो गया है। अब पाठक पाठकाओं से हमारा निवेदन है, कि इसका अधिक से अधिक प्रचार प्रसार करें। अपने सगे सम्बन्धी प्रेमी भाई बहिनों को इसके पठन-पाठन के लिये प्रेरित करें। जो सामर्थ्यवान् हों वे विद्यार्थियों को, असमर्थ निर्धन ब्रह्मणों को, पुस्तकालयों, विद्यालयों तथा ग्राम्य सभाओं को लेकर दान करें। पुस्तक-दान से बढ़कर संसार में दूसरा कोई दान नहीं।

इस संस्करण में चित्रों की संख्या और बढ़ा दी है। लगभग सब मिलाकर १०० चित्र हैं। प्रथम संस्करण में चार रंगीन चित्र थे, इह में पाँच कर दिये हैं। चित्रों के कारण पृष्ठ संख्या भी बढ़ गयी है फिर भी मूल्य में कोइ वृद्धि नहीं की गयी। पिछले संस्करण की प्रूफ अशुद्धियों को भी शुद्ध किया गया है। नयी कोई अशुद्धियाँ रह गयीं हों उन्हें पाठक सुधार लें।

अन्त में पाठक पाठिकाओंसे हमारी यही विनय है कि इस ग्रन्थ को वे अपने हृदय का हार मानकर नित्य नियम से इसका पाठ करें, गायन करें, स्वयं गावें सबसे मिलकर गवावें। स्वयं तो

पढ़ें ही अन्य लोगों को भी पढ़कर सुनावें। यह भगवत् भक्तों का परम धन है, सर्वस्व है, इसके पाठ से इहलौकिक तथा पारलौकिक सभी प्रकार के कल्याण हो सकते हैं। जैसा कि इसके महात्म्य में वर्णित है,—

छप्पय—

प्रभु-प्रसाद यह चरित संत भक्तनिकूँ भावै।
कलि कराल विष-व्याल भागवत सुनि नसि जावै॥
सुधा अमृत रस सकल सरिस जाके कछु नाहीं।
जनम करम जगबन्ध सपदि सुनि के कटि जाहीं॥
देवनि शुककूँ सुधा-घट, दै बदले चाह्यो चरित।
सुरनि अनधिकारी समुझि, दयो न, है यह जग विदित॥

व्यवस्थापक

तृतीय संस्करण की भूमिका

हमें अत्यंत ही हर्ष है कि धार्मिक जनता ने "भागवत चरित" को अपना लिया है। स्वल्प काल में ही ८ हजार के दो संस्करण इसके समाप्त हो गये, अब ५ हजार का यह तीसरा संस्करण छापा गया है। हमें आशा है, धर्मानुरागी नर नारी इसके प्रचार प्रसार में हमें पूर्ण सहयोग देकर परम पुण्य के भागी बनेंगे।

व्यवस्थापक

॥ श्रीहरिः ॥

श्री भागवत चरित

[सप्ताह]

की

विषय-सूची

अथ प्रथमाह [१]

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या

अथ चतुर्थाह [४]

अथ पञ्चमाह [५]

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या

अथ षष्ठाह [६]

अथ सप्ताह [७]

इति सप्ताह

इति विषम-सूची

चित्रसूची

रङ्गीन चित्र

२—दुरंगे चित्र

६—वंशीधर गोपाल (आवरण पर)

३—एकरंगे चित्र ३२

४—सादे चित्र ४२

भागवतचरित की—परायण सूची

१—साप्ताहिक विश्राम स्थान

२—मासिक पारायणके विश्राम स्थान

१—पहले	दिन	का	विश्राम	५१
२—दूसरे	,,	का	,,	७९
३—तीसरे	,,		,,	११३
४—चौथे	,,		,,	१७३
५—पाँचवें	,,		,,	२०५
६—छठवें	,,		,,	२२८
७—सातवें	,,		,,	३१४
८—आठवें	,,		,,	३९३
९—नवें दिन	,,		,,	५५१
१०—दसवें	,,		,,	६२९
११—ग्यारहवें	,,		,,	७१०
१२—बारहवें	,,		,,	७६०
१३—तेरहवें	,,		,,	८०१
१४—चौहदवें	,,		,,	८६४
१५—पन्द्रहवें	,,		,,	९१२

३—पाक्षिक पारायण के विश्राम स्थान

१—पहले	दिन	का	विश्राम	२३
२—दूसरे	,,		,,	४९
३—तीसरे	,,		,,	५७
४—चौथे	,,		,,	७२
५—पाँचवें	,,		,,	९१
६—छठवें	,,		,,	९५

समर्पण

अपने श्याम के प्रति

छप्पय

(१)

नेक ठहरि जा श्याम ! बात इक सुनि जा मेरी ।
दौर्‍यौ जावै कहाँ दीठि चंचल अति तेरी ॥
ब्रजमें मच्यो चवाउ बात फैली घर घरमें ।
कीरति रानी लली घँसी है तेरे उरमें ॥
निज नयननि निरख्यो न कछू, सुन्यो सुनायौ ई कह्यो ।
गोरी भोरी छोहरी—को चेरो तू बनि गयो ॥

(२)

चंचलताकूँ त्यागि बात मेरी सुनि नटवर ।
तेरो लिख्यो चरित्र सूततें सुनिकें सुखकर ॥
लिखवायौ सो लिख्यो करूँ अब काकूँ अरपन ।
है तेरी ही वस्तु करूँ पुनि तोइ समरपन ॥
अरे, बबाके लाड़िले, मोइ सनाथ बनाइ जा ।
पुण्य भागवत चरितकूँ, परसि तनिक मुस्काइ जा ॥

संकीर्तन-भवन
प्रतिष्ठानपुर (प्रयाग)
मार्गशीर्ष शु० २—२००७ विक्रमी

तेरा ही कोई
प्रभुदत्त

श्रीहरिः

श्रीवृन्दावनविहारिणे नमः

अथ

श्री भागवत-चरित

[सप्ताह]

अथ प्रथमाह

प्रथमोऽध्यायः

[१]

मङ्गलाचरण

श्लोक

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

छप्पय

श्रीनारायण विमल विशालापुरी निवासी ।
नर नारायण ऋषी तपस्वी अज-अविनासी ॥
माता वीणापाणि सरसुती वाणी देवी ।
कियो वेदको व्यास परासरसुत गिरिसेवी ॥
धरि सिर सबके पादकी, पावन पुण्य पराग अति ।
भनूँ भागवत भव्य भव-भयहर भाषा यथामति ॥

तीरथराज प्रयाग याग कमलासन कीन्हें ।
अक्षयवट-वर विटप मनोवांछित फल दीन्हें ।।
गंगा यमुना रलीं मिलीं मन मोद बढ़ायो ।
सोमेश्वरने जहाँ सोमको शाप छुड़ायो ।।
वैंणीमाधव वसैं वर, बारह वेष बनायकें ।
वन्दन करि विनती करें, चरन कमल सिर नायकें ।।
व्यासतनय वासिष्ठ विज्ञ वैराग्यवान् अति ।
कृष्ण नाम मधु-मधुर मधुप मदमत्त महामति ।।
भक्ति भागवत भनी पार भव सिन्धु कियो है ।
कलि कलमष करि दूर दिव्य आलोक दियो है ।।
परमहंस शुकदेव वर, सुन्दर सुखकर नाम है ।
तिनिके पद पाथोजमहँ, श्रद्धा सहित प्रनाम है ।।

इति मंगलाचरण

कथारम्भ

सुरसरि उत्तर ओर त्रिवैंनी पार मनोहर ।
प्रतिष्ठानपुर यज्ञ तीर्थ झूसी अति सुन्दर ।।
मनीराम मम शिष्य चपल चंचल अज्ञानी ।
ताहीके प्रति सुधा सरिस रस-कथा बखानी ।।
दैहिक दैविक मानसिक, चाहिं होहि भवकी व्यथा ।
सब रोगनिकी एक है, ओषधि भागवती कथा ।।
नैमिषार सुखसार हार भूको है भारी ।
सहस अठासी शौनकादि ऋषि जहँ व्रतधारी ।।
सहस सालको सत्र रच्यो सुनि सूतहु आये ।
सब इतिहास पुरान अठारह गाइ सुनाये ।।
किन्तु भागवत मधुर अति, सब शास्त्रनिको सार है ।
पढ़त सुनत गावत गुनत, होत जगत् उद्धार है ।।

कहूँ परे कुश कहूँ कमण्डलु जलके सोहैं।
मत्त मृगनिके झुन्ड मुनिनिके मनकूँ मोहैं॥
समिधा वल्कल चीर मूल फल फूल सुहावैं।
भई भीर सुर असुर नाग किन्नर नर आवैं॥
यज्ञभूमि पावन परम, सब विधि सुखद शरण्य है।
शौनकादि सुखतैं बसहिं, नाम नैमिषारण्य है॥

पृथिवीपति पृथुराज आदि भूके भूपाला।
विषम भूमि सम करी रचे पुर नगर विशाला॥
मागध सूत बनाय बहुत विधि बिनती कीन्हीं।
दये देश द्वै मुनिनि वृत्ति वाचक करि दीन्हीं॥
क्षत्रिय पितु माँ ब्राह्मणी, संकरतातैं सूत हैं।
उग्रश्रवा अति विमल मति, कथा कहनतैं पूत हैं॥

सोरठा—कही कथा कमनीय, शौनकादितैं सूतजी।
हर्षित होवै हीय, भव-भय-भंजन होय सुनि॥

आये मखमहँ सूत, अति प्रसन्न सब मुनि भये।
करि पूजा अति पूत, शौनक मुनि पूछन लगे॥

छप्पय—पढ़े शास्त्र इतिहास पुरानादिक सब तुमने।
कही कथा अति मधुर सुनी श्रद्धातैं सबने॥
अब सब शास्त्रनि सार सूतजी शीघ्र सुनाओ।
कृष्ण चरित कहि पुण्य प्रेम पीयूष पियाओ॥
शास्त्र ज्ञान पय-दधि करहु, मथि तिहि सार जनाइ दें।
खट्टो मट्ठो पृथक करि, मक्खन मधुर चखाइ दें॥

कलियुग आयो जानि आनि बैठे हम बनमें।
विष्णु बताई बाट चक्र लै आयौ छिनमें॥
जानि वैष्नव क्षेत्र यज्ञकी दीक्षा लीन्हीं।
कृष्ण कथा नित सुनें सबनि शुभ सम्मति कीन्हीं॥
सूत ! जगतूतैं मोरि मुख, कृष्ण चरनमहँ चित दियो।
कृष्ण कथा कलिमल हरनि, कही कृपा करि हित कियो॥



[श्रीविष्णु का शौनकादिको चक्रदेंना]

परमधर्म है जिही भक्ति भगवत् में होवै।
होवै हर्षित हियो मलिनता मनकी खोवै॥
हेतु रहित निष्काम भक्ति अति सरस सुहाई।
सब शास्त्रनिको सार यही मेरे मन भाई॥
शौनकजी ! सच सच कहूँ, सब संतनि सम्मत जिही।
भक्ति भनी भागीरथी, विषय बासना विष कही॥

कथा श्रवण नित करें श्रवण वे ही हैं सुखकर।
बाणी बिमला वही कृष्ण कीर्तन में तत्पर॥
मन मोहनमें मिलै सतत हरि चरननि सेवै।
कर्म करे जो कछू कृष्ण अर्पण करि देवै॥
ध्यान खड्गतैं कर्म की, कतरहिँ ग्रन्थि सुतीक्ष्ण अति।
जिनिको यश पावन परम, को न कथामें करहिं रति॥

भगवत भक्ति सहाय भागवत ते कहलावें।
अज अव्यक्त अनादि सगुन साकार लखावें॥
लै अनन्त अवतार अमित लीला बिस्तारें।
नाम, रूप, गुन, धाम जगत् जीवनिकूँ तारें॥
जो इनकूँ गावें सुनें, नित सेवन सुखतें करहिँ।
भक्त भागवत हैं वही, करत जगत पावन फिरहिँ॥

जिनके चरित पवित्र हृदयकूँ पावन करि हैं।
सुनिकें श्रद्धा सहित मनुज भवसागर तरि हैं॥
तदनुरूप ही भक्त चरित अति ही सुखदाई।
अपने तें हूँ अधिक स्वयं हरि महिमा गाई॥
भक्त कहो भगवन्त वा, भेद न, एक सरूप हैं।
भक्ति भवन के भूप हैं, दोऊ चरित अनूप हैं॥

जिनको यश गुन नाम गान है सुखकर अतिशय।
कथा कीरतन करहिं कलुष काननि कूँ मधुमय॥
साधु जननि के सुहृद् सबनिके जो हैं स्वामी।
अच्युत अजर अनादि अगुण अज अन्तरयामी॥
कृष्ण कथा के रसिक वर, श्रोता तिनके हृदय बसि।
अशुभ बासना मलिन मति, देत तुरत हैं नाथ नसि॥

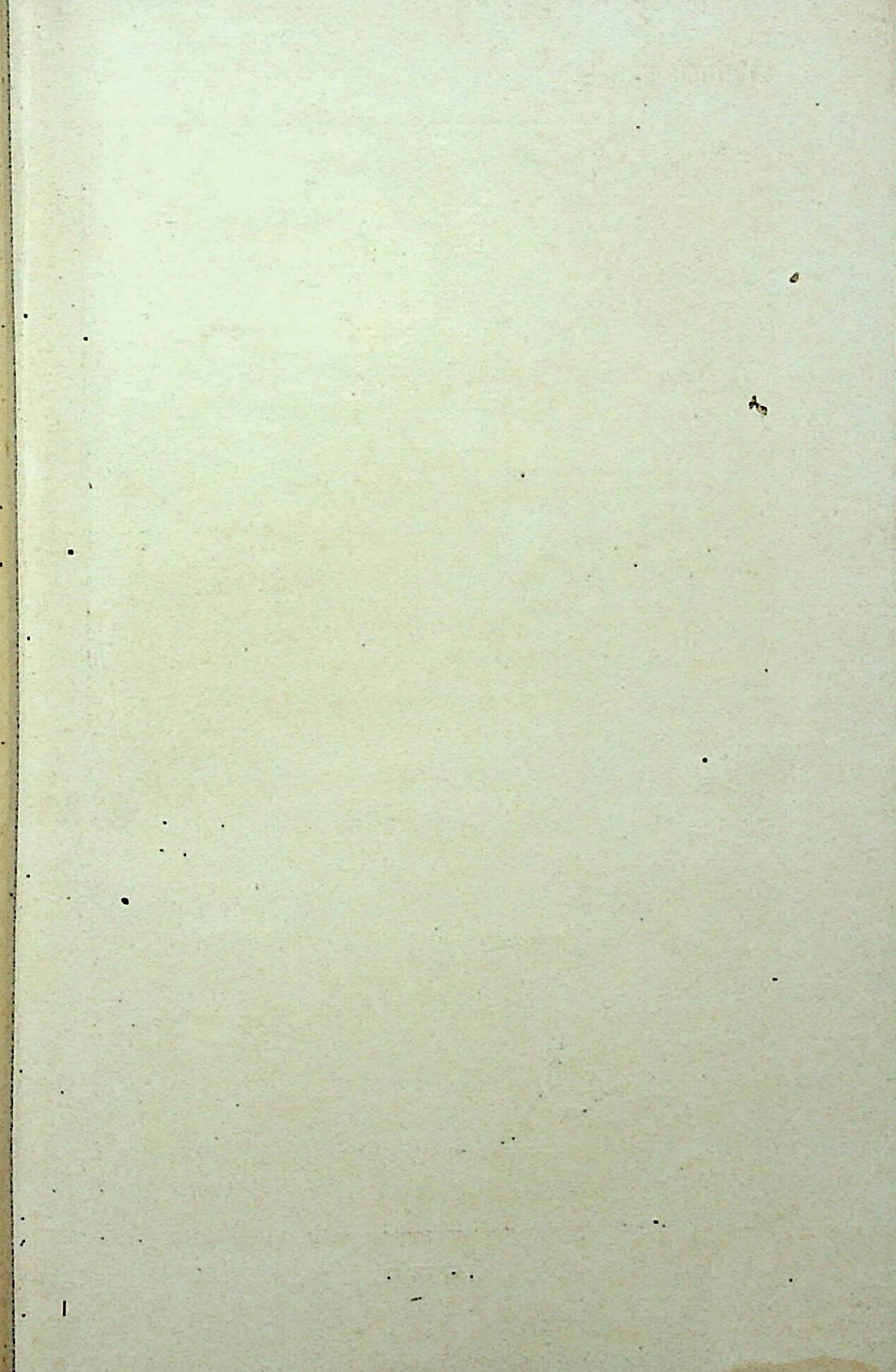
सेवनीय जो सदा सुलभ सुखदाई सबकूँ।
माखनचोर चरित्र, मधुर अति ही श्रवननि कूँ ॥
श्रोत्रमार्ग तें प्रविशि हृदयमें जब आ जावें।
करें ज्ञान परकाश तुरत अज्ञान नसावें ॥
ज्ञान सूर्य के उदयतें, मोह मलिनता दूर हो।
सब संशय छिन में नसें, हृदय प्रेम परिपूर हो ॥



[नैमिषारण्य में सूतजी के पिता, शौनकादि मुनि और बलदेवजी]

दोहा—सूत परम हरषित भये, शौनकके सुनि प्रश्न।
अवतारनिकी कथा सब, कहें हृदय धरि कृष्न ॥

इति श्री भागवत चरित के प्रथमाह में
शौनक सूत सम्वाद नामक
प्रथम अध्याय समाप्त।





श्री नारद जी

अथ द्वितीयोऽध्यायः

[२]

पुण्य पुरान महान व्यास भगवान बनाई।
परमहंस शुकदेव पुत्रकूँ पूर्ण पढ़ाई॥
गंगा तटपै नृपति परिच्छित् ह्वैकें शापित।
मुक्ति द्वारको मार्ग मुनिनितें पुनि पुनि पूछत॥
आये श्रीशुकदेव तहँ, कही कथा नृपतें विमल।
कहूँ ताहि मुनिवर सुनहु, तहाँ सुनी मैंने सकल॥

श्रीनारायण बीज अमल अंकुर चतुरानन।
श्रीनारद तनु तनो व्यास शाखा अति शोभन॥
श्रीशुक पावन पुष्प गंध है सरस सुबानी।
कृष्ण कथा फल मधुर खाइँ मुनिवर विज्ञानी॥
नृपति परीच्छित् शौनकहुँ, सेवें ऋषि मुनि सहित हैं।
वृच्छ भागवत भव्य अति, सब सुख जामें निहित हैं॥

हैं अनन्त भगवन्त असन्त न उनकूँ जानें।
प्राणी प्रेम विहीन कहो कैसे पहिचानें॥
पावन उनको चरित अमित मधुमय सुखदाई।
लीला ललित ललाम लखें जिन देहिं लखाई॥
छाँड़ि कपट छल प्रेमतें, करहिं समर्पण कर्म सब।
नाम, रूप, गुण, धाम को, समुझि सकें सतसार तब॥

ये अगणित ब्रह्मांड रहें सरसों सम जिनमें।
जड़, चेतन, चर, अचर सृष्टि उपजावें छिनमें ॥
निहित तत्व चौबीस आदि औतार कहावें।
इनहीं तें उत्पन्न इनहिँ में फिर मिलि जावें ॥
अज, अनादि, अव्यक्त, प्रभु, अमित ज्ञान विज्ञान हैं।
नारायण अव्यक्त विभु, वे विराट भगवान हैं ॥

दिव्य दिगम्बर फिरें सबहिं सम जग में जिनकूँ।
पाँच वरषके सदा जरा व्यापै नहिं तिनकूँ ॥
राग द्वेष तैं दूरि ऊर्ध्वरेता व्रतधारी।
अव्याहत गति रहे सकल जीवनि हितकारी ॥
सनक, सनन्दन, सनातन, सनतकुमार कुमार वर।
मन तिन पद पंकजनिकी, रज श्रद्धातें धारि सिर ॥

सनकादिकने सृष्टि कार्य में योग न दीन्हों।
कह्यो कर्यो न कुमार कोप कमलासन कीन्हों ॥
मनु सतरूपा भये देहतें द्वै नर नारी।
उनने श्रद्धा सहित सीख सब सिरपै धारी ॥
आयसु पाई पिताकी, दोऊ दुलहिनि दुल्हा मिलि।
सृष्टि रची सुख ते गई, हृदय कमलकी कली खिलि ॥

हैं मनमौजी नाथ सूत्रधर विश्व विहारी।
नये नये नित स्वांग रचें लीला बिस्तारी ॥
एक रूपतें रचें एकतें जग को पालन।
रुद्र रूप धरि करें विश्व को वे संहारन ॥
कच्छ, मच्छ, वाराह बपु, धरिकें धरनी धारते।
धर्म धेनु, द्विज पालते, दैत्य दुष्ट संहारते ॥

हैं कुमार, बाराह, कपिल, नारद, अवतारा।
नर नारायण, ऋषभ, दत्त, पृथु, यज्ञ, अपारा॥
धन्वन्तरि, नरसिंह, मत्स्य, कच्छप, बामन हरि।
परशुराम, श्रीराम, व्यास, बलराम, रूप धरि॥
कला अंस संभव सकल, शुभ अवतार महान हैं।
कृष्ण स्वयं भगवान हैं, सबके आदि निधान हैं॥

सोरठा—सुनि अवतार चरित्र, सुखी सकल ऋषि मुनि भये।
कथा भागवत वृत्त, शौनक पूछहिं सूततैं॥

छप्पय—सूत! कहो अब कथा कहाँ कब काके द्वारा।
प्रकट भागवत भई कहाँ कीयो विस्तारा॥
व्यासदेव मुनि महा तनय उनके अति ज्ञानी।
पागल प्रेत समान फिरैं मानों अज्ञानी॥
सुनी कथा कैसे कही नृपति परिच्छित् प्रति सबहिँ।
सूत! सुनाओ सब कथा, होहिं तोष हमकूँ तबहिँ॥

सुत अभिमन्यु नृपाल, उत्तराके सुखदाता।
पांडुवंशके बीज दीन दुखियनिके त्राता॥
चिन्तामनिके सरिस सबनिकी चिन्ता नासत।
कल्पवृच्छकी भांति सबनिकूँ पोषत पालत॥
भरतखण्डकी प्रजाको, सुत समान पालन कियो।
न्यासभूत निज देहकूँ, तृन समान त्यौं तजि दियो॥

दोहा—सूत कहैं मुनिवर प्रथम, कहूँ व्याससुनि वृत्त।
फेरि परिच्छित्को चरित, भनूँ सुनो दै चित्त॥

छप्पय—लीला अमित अपार पार प्रानी नहिं पावैं।
विविध रूपतैं उतरि अवनिपै अच्युत आवैं॥
सूकर सिंह सरूप मत्स्य कच्छप वपु धारैं।
अंश कला अवतार धारि असुरनिकूँ मारैं॥
सत्यवती, मुनि पराशर, द्वापर युगमें धन्य हैं।
विष्णु रूप श्रीव्यासजी, जिनके तनय अनन्य हैं॥

कमल पंकतैं होय काक विष्ठातैं पीपर।
मृग-मद मृगकी नाभि मांस मेदाके भीतर॥
मोती उपजे सीप शंख हड्डी ही होवै।
बाद्य पाइकें चरम अशुचिता अपनी खोवै॥
गुणी गुणनितें पूज्य हैं, क्षेत्र परीक्षा नहिं कही।
व्यास, विष्णु भगवान हैं, मातृ वंश त्रुटि नहिं लही॥

बदरीवनमें वसैं कसैं तनु व्यास महामुनि।
नित्य हवन करि वेद, शास्त्र इतिहास पढ़ैं पुनि॥
ऋक, यजु, साम, अथर्व, एक के चारि बनाये।
चारिहु शिष्य बुलाइ, वेद क्रम यथा पढ़ाये॥
शूद्र, नारि, व्रतहीन द्विज, हित भारत रचना करी।
तऊ शान्ति मन नहिं लही, अन्तरात्मा नहिं भरी॥

पाराशर्य प्रवीण परम चिन्तित ह्वै सोचत।
विधिवत् पढ़िकें वेद लगायो श्रीहरिमहँ चित॥
गुरु सुश्रूषा करी अग्नि अव्यग्र अराधी।
करी तपस्या उग्र ग्रीष्म पंचानल साधी॥
वेदव्यास इतिहास रचि, पुण्य पुराण कथा कही।
चिन्ता चिततें नहिं गई, कछू खटक खटकति रही॥

बदरीबनके निकट विराजें मुनिवर ज्ञानी ।
वेदव्यास इतिहास रचे मुनि शान्ति न मानी ॥
चिन्ता चितमें चुभी मलिनता मनमहँ आई ।
रही कौन-सी कमी आतमा अति अकुलाई ॥
इतनेमें वीणा लिये, राम कृष्ण गुण गावते ।
नारद देखे, आवते, प्रेम बारि बरसावते ॥

नारदजीने कह्यो व्यास तुम सब गुण आगर ।
वेद-पुराण प्रवीण सबहिं शास्त्रनिके सागर ॥
ब्रह्मज्ञानी आप अज्ञवत् च्यौं पछितावें ।
का कारण है कहो ? भेद च्यौं नाहिं बतावें ॥
बोले व्यास बिनीत ह्वै, मुनि ! मन मैल मिटाय दें ।
काज कौन कीयो नहीं, सच्ची बात बताय दें ॥

बोले नारद—सबहिँ आपुने धर्म बताये ।
किन्तु कृष्णके ललित चरित अति विषद न गाये ॥
भक्ति भावतें हीन कुकवि जो कविता करि हैं ।
काक तीर्थ सम समुझि हंस मुनि नहिँ आदरि हैं ॥
अब सब तजि मुनि ! भक्ति को, प्रेम प्रवाह बहाइ दें ।
भक्ति भाव दर्शाय दें, भगवत चरित सुनाइ दें ॥

सोरठा—हौं हरि चरितनि गाइ, शूद्रासुत पुनि मुनि भयो ।
सब संशय मिटि जाइ, रचहु भागवत चरित वर ॥

छप्पय—मदमातेकूँ यथा मद्यको हित जतलानों ।
तथा कर्ममें निरत पुरुषकूँ विषय बतानों ॥
पुनि बोले मुनि व्यास—होइगी आशा पूरी ।
किन्तु कथा कछु कही आपुने अबहिं अधूरी ॥
दासी सुत कैसे भये, संत सङ्ग कस लगी मति ।
चरित सुखद सब सुनाओ, होत हृदय में हर्ष अति ॥

सोरठा—भयेप्रेम महँ लीन, व्यास वचन सुनि देवऋषि ।
प्रवचनपरमप्रवीन, लगे कहन निज चरितकूँ ॥

छप्पय—मुनिवर ! मैंने महा मोहवश दुरगति पाई ।
किन्तु कृष्णकी कृपा पाइ वह विपति बिताई ॥
चारु चरित हैं मधुर कृष्णके अति सुखकारी ।
उनको अभिनय रच्यो मुनिनि आज्ञा सिर धारी ॥
लीला रास विलासकी, अति रहस्ययुत मधुमई ।
निरखि मुनिनिकी सुधि गई, मति मोहित सबकी भई ॥

रंगभूमि अति रम्य रासको रसमय अभिनय ।
निरखि सबनिको चित्त चमत्कृत भयो सुअतिशय ॥
मेरे मनमें मैल धँस्यो, रस विरस भयो सब ।
नारद लम्पट होहु मुनिनि मिलि शाप दियो तब ॥
बन्दन करि विनती करी, होय शापको अन्त कस ।
सतसंगति हरि भक्ति लहि, होओ मुनि पुनि कह्यो अस ॥

गई सृष्टितैं पूर्व कल्पमें अति ही सुन्दर ।
उपबर्हण गन्धर्व नामको हो हौं मुनिवर ॥
नखतैं शिखलौं सुघर मनोहर मेरी मूरति ।
दिव्य गन्धयुत देह सुघर वर मानो रतिपति ॥
मेरे मनहर रूपपै, अबला अति आसक्त इँ ।
मदन मथित मदमत्त इँ, सब समान अनुरक्त इँ ॥

भयो यज्ञ इक विषद सबहिं गन्धर्व बुलाये ।
विश्वसृजनिकी आयसुतें हम सबहूँ आये ॥
मृगनैंनिनि तैं घिरयो रूप मदमें मतवारो ।
अविनय मेरी निरखि शाप सबने दै डारो ॥
जा, पृथिवी पै अबहिं तू, शूद्र योनिमें प्रकट हो ।
मेरी अनुनय पै कह्यो, संत समागम निकट हो ॥

दासीको हौं पुत्र किन्तु शुभ करमनिमहँ रुचि।
साधुसंगतैं बुद्धि भई मेरी कछु कछु शुचि॥
चातुर्मास्य निमित्त तहाँ मुनिवर बहु आये।
सेवा सौंपी मोइ सुने हरि चरित सुहाये॥
सीथप्रसादी पाइकें, पाप पहाड़ ढये सकल।
जग सूनो सूनो लगत, रहत कृष्ण बिनु चित विकल॥

कृष्ण कीरतन कथा माहिँ आसक्त भयो चित।
सेवा श्रद्धा सहित करूँ सन्तनिकी हौं नित॥
सुनत मनोहर चरित मैल मनको सब छूट्यो।
श्रीपति पद रति भई जगततैं नातो टूट्यो॥
चित्त भ्रमर सतसंग मधु, श्रीहरि गुन गावन लग्यो।
मनमें मोद महा भयो, हृदय प्रफुल्लित ह्वै गयो॥

चातुर्मास्य समाप्त भयो मुनि चालन लागे।
रोयो ह्वै अति दीन दयालु मुनिनिके आगे॥
करुना कीन्ह कृपालु प्रेमतें पास बुलायो।
प्रेम प्रकाशक मधुर कृष्ण कीर्तन करवायो॥
कृष्ण कीरतन करत ई, भवको भय भागन लाग्यो।
प्रेम हृदय जागन लग्यो, ग्रह बन्धन लागन लग्यो॥

निर्मोही ये संत प्यार करिकें अपनावें।
किन्तु अन्तमें बधिक सरिस हिय छुरी चलावें॥
गहकि मिलैं जब तलक रहें रस नित बरसावें।
कसक हियेमें छोड़ि निठुर बनिकें भगि जावें॥
साधुनि सँग अति प्रेम करि, जग सुख काहू नहिं लह्यो।
बिलपत ई जीवन गयो, रुदन शेष ई रहि गयो॥

छीन दीन कुलहीन, कृष्णहँ कैसे पाऊँ।
करुणासिन्धु कृपालु मिलें केहि मारग जाऊँ ॥
हौं सोचूँ नित जिही गीत माता कछु गावै।
होवै बेटा बड़ो वहू बटुआ-सी आवै ॥
माँ के मनकी नहिं भई, मृत्यु फाँसमें फँसि गई।
दूध दुहन घरतें गई, काल नागने डसि लई ॥

मोहमयी मम मातु मरी मैं घरतें भाग्यो।
जरी जगत्की आस, कृष्ण चरननि चित लाग्यो ॥
देश, नगर, नद, नदी नाँघि निर्जन बन आयौ।
न्हायो सरिता सलिल, पान करि ध्यान लगायौ ॥
ध्यान करत ई चित्तकी, चिन्ता सबरी नसि गई।
मनमोहन की माधुरी, मन मेरे में बसि गई ॥

भक्ति भावतें भरित हृदय में हरिजी आये।
करत दरश तनु पुलक, अश्रु नयननिमें छाये ॥
अति उत्कंठा बढ़ी शान्ति सरिता पय पूर्यो।
प्रेम बाढ़में बह्यो चित्त आनँद में डूब्यो ॥
ध्यान ध्येय ध्याता सबहिँ, ध्येय वस्तुमें मिलि गये।
दरशन दैकें दयानिधि, तुरत चित्ततें चलि दये ॥

ह्वै अतृप्त तब गिर्यो मोहि मुर्छा सी आई।
यह तनु दरश न होयँ दई नभ गिरा सुनाई ॥
कृष्ण कीरतन करत, कालकी करूँ प्रतीच्छा।
तनु तजि नारद भयो, भई भगवतकी इच्छा ॥
बीणाकी झन्कार सुनि, हरि हियमें प्रकटें तुरत।
दौरी आवें धेनु ज्यों, मोहनकी मुरली सुनत ॥

करि नारद उपदेश व्यासतें बोले बानी।
कृष्णकथा सतसंग जनित निज कही कहानी॥
तुमहूँ संशय त्यागि भक्त भगवत गुन गाओ।
कृष्ण कथाके कहत शान्ति सुखसागर न्हाओ॥
यों कहि लै बीणा चले, राम कृष्ण गुन गावते।
व्यास बिचारें धन्य मुनि, ये सबके मनभावते॥

धनि नारद मुनि धन्य-धन्य वर बीना इनिकी।
हरि यश गावें नित्य सुरसना धनि धनि तिनिकी॥
सब जग दुख संतप्त फिरें जे हरि गुन गावत।
दुखकों मेटत मूल शान्ति को पाठ पढ़ावत॥
धनि अवनी जिनि चरनकी, पद पराग परसत बिमल।
ह्वै ई दूरि करें दुरित, संत-संग सुरसरि सलिल॥

दोहा—नारद अरु श्रीव्यासको, परम सुखद सम्बाद।
पढ़ैं सुनैं जे प्रेमतैं, पावें प्रभुपरसाद॥

इति श्रीभागवतचरितके प्रथमाहमें व्यासनारद सम्वाद नामक द्वितीय अध्याय समाप्त।



अथ तृतीयोऽध्यायः

[३]

नारदजी जब गये व्यास बैठे वर आसन।
चित्तवृत्तिकूँ रोकि कियो इन्द्रिनिपै शासन॥
माया सहित महेश हृदयमें दिये दिखाई।
भवभयभंजनि भक्ति प्रकट ह्वै सम्मुख आई॥
मनमें मोद महा भयो, भव्य भागवत रचि लई।
निज सुत शुककूँ स्वर हित, सबरी कंठ करा दई॥

बोले शौनक—सूत ! सुनाओ शुककी शिक्षा।
बैरागी बनि फिरें, करें घर-घरतें भिक्षा॥
कैसें आकें पढ़ी संहिता शात्वत सबरी।
कैसें बाँची कथा मिटाओ शंका हमरी॥
बोले सूत—सुने सरस, अति मधुमय भगवतचरित।
फँसे प्रेमके फंदमें, ज्यों मृग बीना स्वर सुनत॥

भरतबंशमें भूप भये शंतनु सुखदाता।
बिदुर, पांडु, धृतराष्ट्र, पौत्र तिनके विख्याता॥
पांडव पांचहुँ पांडु-तनय धृतराष्ट्र पुत्र शत।
पांडव परम प्रसिद्ध, किंतु कौरव अति निंदित॥
राज्य हेतु भारत भयो, पांडु-पुत्र बिजयी भये।
भीम सुयोधन जाँघकूँ, तोरि छोरि निज घर गये॥

जंघा टूटी युगल सुयोधन अति दुख पायो।
कंक काक अरु गृद्ध नोंचि वृण मज्जा खायो॥
अश्वत्थामा सुनत शीघ्र शोकाकुल धायो।
दुरयोधनकी दशा देखि नयननि जल छायो॥
द्रोणतनय नायक करे, सांसा तक आशा रहत।
जैसे जल डूबत तृणहिँ, पकरि पार पावन चहत॥

अश्वत्थामा चल्यो पापमति मनमहँ आई।
पितृमृत्यु करि याद धर्म गति दई भुलाई॥
पांडव कुलको बीज नाश कैसे हूँ होवै।
प्रतिहिंसामहँ धर्म सत्य सबही नर खोवै॥
द्रुपदसुताके सुत सबहिं, सोवत सुखतें शिबिरमें।
तुरत तीक्ष्ण तरवारितें, सिर काटे निशि तिमिरमें॥

पुत्र शोकतें दुखी द्रौपदी अति अकुलाई।
मूर्छित ह्वैकें गिरी पार्थप्रिय कहि समुझाई॥
त्यागहु चिन्ता शोक तीर लै तुरतहिं जाऊँ।
जिहि काटे सुत शीश काटि सिर ताको लाऊँ॥
केशवकूँ करि सारथी, चले शत्रु पीछो कियो।
ब्रह्म अस्त्र निज अस्त्रतें, काटि पकरि गुरुसुत लियो॥

पशु समान दृढ़ बाँधि लाइ पत्नीकूँ दीन्हों।
गुरुसुत सम्मुख समुझि, चरन बन्दन उठि कीन्हों॥
दयादृष्टितें देखि द्रौपदी बोली बानी।
छोड़ो इनकूँ अबहिँ, दंडदें, होगी हानी॥
कृष्णा, कृष्ण, कनिष्ठ, बड़, सबहीको कहनो कर्‌यो।
मूड़ि बार बाहर कर्‌यो, माथेको मुक्ता हर्‌यो॥

गुरुसुत बिप्र बिचारि पुत्रघाती नहिं मार्‌यो ।
अति अपमानित भयो युद्ध करि सम्मुख हार्‌यो ॥
मैल न मनको गयो हिये प्रतिहिंसा धारी ।
पांडुबंशको नाश करूँ यह बात बिचारी ॥
घाव पुरै गढ़हा भरै, नर अपमान न भूलहीं ।
खल–मन, मोती, दूध ये, जुरत फेरि फटिकें नहीं ॥

दोहा—राज युधिष्ठिरकूँ दयो, हस्थिनापुरमहँ आइ ।
पांडव सेवें श्यामकूँ, प्रेम न हिये समाइ ॥

छप्पय—कृष्णा करी कृतार्थ, पांडुनन्दन नृप कीन्हे ।
सबकूँ सब समुझाइ द्वारका हरि चलि दीन्हे ॥
इतने में अति दुखित उत्तरा आगे आई ।
स्वर गद्‌गद भयभीत, बिपतिकी बात बताई ॥
देव ! निहारो दहकतो, आवै अस्त्र अमोघ है ।
मारै मोकूँ किन्तु मम, गर्भ बिभो ! रक्षित रहे ॥

अश्वत्थामा कुपित क्रोध करि सर छै छोड़े ।
आवत देखे चक्र सुदर्शनतैं हरि तोड़े ॥
दुर्योधन दल दल्यो दुसह दारुन दुख दीन्हे ।
करी उत्तरा अभय पांडु-सुत निरभय कीन्हे ॥
पलमें जो जगकूँ रचें, करें निमिषमें नाश हैं ।
दुष्ट दलन भक्तनि भरन, महँ तिनि कवन प्रयास हैं ॥

चले द्वारकाधीश पृथा पुनि आगे आई ।
मातृपुत्रकूँ पकरि प्रेमतें बिनय सुनाई ॥
प्रभो ! पुत्र परिवार सहित सब भाँति उबारी ।
किन्तु जिही है एक अन्तमें भीख हमारी ॥
बिपति बारि बारिद भरे, बार बार बरसा करें ।
दरशन देवें दयाबश, छत्र छाँह करि भय हरें ॥

हे विश्वम्भर ! विभो ! आपु हैं सबके स्वामी।
अच्युत अलख अनन्त अगोचर अन्तरयामी ॥
सुरसरिको शुभ सलिल सदा सागर में जावै।
मेरो चंचल चित्त चरन तल तव त्यों धावै ॥
बूआकी विनती सुनी, प्रेम सहित प्रभु हँसि गये।
माया मोहित मन भयो, वासुदेव मन बसि गये ॥

नहीं द्वारका गये लौटि महलनिमें आये।
धरमराज रण-पाप सोचि पुनि पुनि पछिताये ॥
कैसी मम मति मलिन भई भाई निज मारे।
निज सम्बन्धी हने सबहिँ निरदोष विचारे ॥
अश्वमेध करि कवन विधि, परम पुण्य पुनि मिलि सके।
कीचड़की कालिख कबहुँ, कीचड़तें का धुलि सके ॥

हूँ पापी अति अधम मोहि नर नारि न निरखें।
पत्नी पतितें पृथक करीं विधवा बनि बिलखें ॥
सबके सुत पितु मातु करुनक्रंदन करि कोसें।
पांडव पापी परम बन्धु बधि निज तनु पोसें ॥
कृष्ण ! कहो कैसे करूँ, रक्त सुरंजित राजकूँ।
कौन करै सुख स्वजन बधि, ऐसे कुत्सित काजकूँ ॥

धर्म नीति कहि बार बार सबने समुझाई।
किंतु काहुकी बात धर्मसुत मन नहिं भाई ॥
कृष्ण कहें—श्रीभीष्म हमारे अति ही प्यारे।
भक्ति भाव सुनि सबहिं, दरसकूँ शीघ्र सिधारे ॥
शोभित भीषम शर बिँधे, अवनि उतरि जिमि रवि गिरे।
पांडव पुरजन प्रभु सहित, सबने पद बंदन करे ॥

शरशैयापै परे भीष्म विद्युत् सम दमकें।
शोणित शर कच कांति इन्द्र धनु सम मिलि चमकें॥
बंधु सहित ढिँग जाय युधिष्ठिर शिशुसम रोये।
अश्रु बिंदु बरसाय युगल पद-पंकज धोये॥
पांडुपुत्र पद पासमें, पग पकरे रोवत निरखि।
बोले उनतें पितामह, नंदनँदनकी ओर लखि॥

जिन्हें सारथी सुहृद सखा सेवक तुम मानों।
उन्हें सगुण साकार सर्वस्वामी करि जानों॥
कैसे कैसे कठिन काज सब करे तुम्हारे।
भाववश्य भगवान भक्त भय हरिवे वारे॥
कमठ अंड सेवै सदा, भाव रखें त्यों दासमें।
दरशन दैवे दयानिधि, आये सेवक पासमें॥

हैं नटनागर नवल नित्य नाटक नव खेलें।
देखि दयाके दृश्य दुःख दर्शक बहु झेलें॥
कब करवावैं कहाँ कौनतें कैसो कारज।
भेद न जानें देव, दैत्य, दानव, शंकर, अज॥
अंतकालमें कृष्ण कहि, नर अघ तजि हरिपुर गये।
ते मम मृत्यु समय समुझि, स्वयं श्याम सम्मुख भये॥

भये अशुभ सब छीन शुद्ध मन मोहन धारे।
शस्त्र शूल सब शांत भयो प्रभु निकट निहारे॥
इन्द्रियवृत्ति बिलास रुकी हरि हियमें आये।
गद्गद गिरा गँभीर गीत गोविँदके गाये॥
मति हो मेरी कृष्णमें, गति हों गोबरधनधरन।
चंचल चित चितवे चरन, रटि रसना राधारमन॥

भीष्म स्तुति

मेरो मन प्रभु चरननि रमि जावै ।

मोर मुकुट कच कुटिल मनोहर फँसि तिनिमें उरझावै ॥१॥ मेरो मन०
भाल तिलक धनु सम शुभ भौंहनि नयननिमें गड़ि जावै ।
लोल कपोल श्वेद युत सुन्दर निरखि निरखि सचु पावै ॥२॥ मेरो मन०
सुघर नासिका दंत मनोहर अधरनिपै बलि जावै ।
शंखग्रीव केहरि सम कंधनि पीताम्बर फहरावै ॥३॥ मेरो मन०
बाहु विशाल करधनी कटिमें चरनकमल नित ध्यावै ।
कृष्ण कृपालो करुना सागर रसना नामनि गावै ॥४॥ मेरो मन०

छप्पय—हे अनाथके नाथ ! ज्ञान गीताके दाता ।
हे अरजुनके सखा ! सारथी दुखके त्राता ॥
हे बूढ़ेकी कठिन प्रतिज्ञा पूरनकर्ता !
हे ब्रजवल्लभ ! अखिल विश्वके हर्ता भर्ता !!
हरि हियमें धारन करे, करत विनय विह्वल भये ।
कृष्ण ! कृपालो ! कृपानिधि, कहत भीष्म सुरपुर गये ॥

सोरठा—सब धरमनिको सार, भीष्म धरमसुततें कह्यो ।
भये श्याम लखि पार, तनु तजि पायौ परम पद ॥

छप्पय—भये भीष्म जब शांत कृष्ण पांडव पछिताये ।
दाह आदि संस्कार करे कुल करम कराये ॥
सेवक स्वजन समेत हस्तिनापुर में आये ।
भये युधिष्ठिर भूप, त्रिविध विधि हरि समुझाये ॥
सबको सब संतोष करि, श्याम सकुचि बोले बचन ।
जाउँ द्वारका तहाँ हूँ, चिंतित होंगे सब स्वजन ॥

इति श्रीभागवतचरितके प्रथमाहमें भीष्म परलोक गमन नामक
तृतीय अध्याय समाप्त ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

[४]

जावेंगे यदुनाथ बात फैली घर-घरमें
व्याप्यो सब थल शोक राज रनिवास नगरमें ॥
सबही कहिवे लगे—कृष्ण कब दरशन देंगे ।
कब पुनि पुण्य पराग पादपद्मनिकी लेंगे ॥
नरतनु फल है नयन ये, नंदनँदन निरख्यो करें ।
काज करें कर कृष्णके, मनमोहन मनकूँ हरें ॥

दुखित भये नर नारि नयनतें नीर बहावें ।
नाथ ! अनाथ बनाइ बिलखते तजि घर जावें ॥
हाय ! विधाता बाम श्यामको साथ छुड़ावै ।
हमकूँ कुटिल कराल कालहू च्यौं नहिं आवै ॥
भोजन भाषन शयनमें, साथ श्याम सबके रहें ।
पांडव पालित प्रेमके, प्रभु वियोग कैसे सहें ॥

नयन नीरतें धूरि कीच भइ चली सवारी ।
पीछे पुरजन पांडुपुत्र अति चले दुखारी ॥
साग्रह सब लौटाइ सैन सँग श्याम सिधारे ।
पथके नृप नर-नारि निरखि अति भये सुखारे ॥
पद-रजतें पावन करत, देश नगर, पुर, बन विकट ।
पहुँचे प्रभु सन्ध्या समय, दिव्य द्वारकाके निकट ॥

पाञ्चजन्यको शब्द सुन्यो अति भये सुखारे।
स्वागत को सामान सजायो सबहिं सिधारे ॥
नगर, द्वार, गृहद्वार, मार्ग सब सुघर सजाये।
दधि अच्छत फल लाइ सजल घट दीप जराये ॥
रथमें शोभित श्याम घन, छत्र श्वेत माला गले।
नयन सफल सबके करत, हरत चित्त चितवत चले ॥
नव जलधर सम श्याम सुमन बर बरसा बरसें।
जनता करि जयघोष दरसतें अति ही हरसें ॥
श्याम अंग पटपीत गरे बनमाला सोहै।
मानों घनमें तड़ित इन्द्रधनु मनकूँ मोहै ॥
प्रेम सुधा बरसावते, हियमें सुख सरसावते।
पुरवासिनि हरसावते, सुने श्याम गृह आवते ॥
अति उत्कंठित महल माँहिं महिषी माता सब।
आवें प्रिय यदुनाथ पुरावें चिर आशा कब ॥
इतनेमें घनश्याम महल माताके आये।
सब मातनिके मृदुल चरनमहँ शीश नवाये ॥
अंक लाय सिर सूँघि सब, प्रेम बारि बरसा करति।
चूमि चाटि गौ बत्स जिमि, बिरह बिथा हियकी हरति ॥
सुनि नूपुरकी झनक, चुरिनिकी खनक मनोहर।
माँ बोलीं—अब जाउ वस्त्र बदलो भीतर घर ॥
मन्द मन्द मुस्कात, महलमें मोहन आये।
नारि निरखि नँदनंद नयनतैं नीर बहाये ॥
मनतें मोहनतें मिलीं, नयन ओटतें चोट करि।
शिशु सौंप्यो पुनि लाइ उर, आलिङ्गन यों किये हरि ॥

इति श्रीभागवत चरितके प्रथमाहमें भगवद् द्वारका प्रवेश नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त।

(मासिक परायण—प्रथम दिवस विश्राम)

अथ पञ्चमोऽध्यायः

[५]

बोले शौनक—सूत ! सुधा सम कथा सुनाई ।
कहो परीक्षित जन्म, कर्म बल, बीर्य बड़ाई ।।
कहैं सूत—सब सुनो कुक्षिगत बालक जरते ।
निरखैं निरमल रूप गदातैं रक्षा करते ।।
करैं परीक्षा कौन ये, सुन्दर श्याम सुरूपयुत ।
दसम मासमें तिरोहित, भये प्रकट अभिमन्युसुत ।।

सुनत परीक्षित जन्म हर्ष चहुँदिशिमें छाये ।
नगर राज सरबत्र बिविध विधि बजत बधाये ।।
वेदबिज्ञ बहु विप्र युधिष्ठिर बेगि बुलाये ।
दिये दान बहु ग्राम अन्न धन रतन लुटाये ।।
कहैं बिप्र—ये जगतमें, बिपुल अमल यश पायँगे ।
विष्णु बीर्य रक्षित नृपति, विष्णुरात कहलायँगे ।।

पृथापुत्र पुनि कहैं—पुत्रके ग्रह फल भाखें ।
बोले बिप्र—तुम्हार पौत्र कुल गौरव राखें ।।
बिप्र भक्त, दुरधरस दयारत दाता दुस्तर ।
क्षमा शील गुणवान सत्यबादी सब सुखकर ।।
शूर सिंह सम समर प्रिय, बीर बिज्ञ बिजयी बड़े ।
रहैं द्वारपै बाँधि कर, आज्ञा हित भूपति खड़े ।।

हौंगे कृष्ण समान कुलागत काज करिङ्गे ।
करि दुष्टनिको दमन दुखिनिके दुःख हरिङ्गे ॥
क्रोधित बालकविप्र शापतें शापित हुङ्गे ।
सर्व संग निर्मुक्त होहिं हरि कथा सुनिङ्गे ॥
श्रीशुक स्वेच्छातें स्वतः, आवें कथा सुनाइँगे ।
मुनिमंडलमें त्यागि तनु, पुण्य परमपद पाइँगे ॥
सोरठा—सुनि विप्रनिके बैंन, धरमराज प्रमुदित भये ।
भरे नेह जल नैंन, कछुक बढ़े अभिमन्यु-सुत ॥

छप्पय—पुरुष पुरुष प्रति पेखि परीक्षा करहिं सबनिमें ।
गर्भमाँहि जो लख्यो ताहि ते लखहिँ नरनिमें ॥
हरि हयमेध हितार्थ हस्तिनापुर फिरि आये ।
देखत दौरे गोद बैठि हरषे किलकाये ॥
बोले विप्र बचन सफल, कृष्ण अंकमें निरखि सुत ।
नाम परीक्षित्तें विदित, होय नृपति अति भक्तियुत ॥

लखे युधिष्ठिर दुखी कहैं हरि—मत घबराओ ।
सब अघनाशक पुण्य यज्ञ हयमेध कराओ ॥
सब समरथ हैं आपु तऊ चिंतित ह्वै रोवें ।
अश्वमेध करि युद्धजनित पातक नृप धोवें ॥
अश्वमेधकी बात सुनि, मौन युधिष्ठिर ह्वै गये ।
रिक्तकोष लखि दुखित ह्वै, मनही मन चिंतित भये ॥

सोचें राजा—हने नृपति सम्बन्धी सबई ।
जब होवें हयमेध टरिङ्गे पातक तबई ॥
सम चिंतातें भला कहो का काज सरिङ्गे ।
वे होवें सम्पन्न जाहि श्रीकृष्ण करिङ्गे ॥
हरि भक्तिनिके काज प्रभु, करता बनि करतें करें ।
जे शरणागत ह्वै गये, तिनिके सब दुख हरि हरें ॥

दोहा—धरमराजकी विकलता, लखि बोले घनश्याम ।
अश्वमेध मख नृप ! करो, पावै मन विश्राम ॥
छप्पय—कुन्तीनन्दन कहें—कृष्ण ! केहि विधि मख होवें ।
कौन काज करि कहो कालिमा कुलकी धोवें ॥
छुटे अंश अरु दंडद्रव्यतें काम चलावें ।
भूमिशालकी जिही बेदवित वृत्ति बतावें ॥
हरि बोले—हिम शिखरपै, धन है बिपुल मरुत्तको ।
लाइ करो मख जिही तो, सदुपयोग है वित्तको ॥

अच्युत आज्ञा पाइ हिमाचल पांडव धाये ।
शिवकूँ करि सन्तुष्ट मरुत मखको धन लाये ॥
करि कृष्णार्पण सबहिं यज्ञके कारज कीन्हें ।
अन्न वस्त्र धन धाम ग्राम बिप्रनिकूँ दीन्हें ॥
इन्द्र सरिस कुन्ती तनय, नव जलधर सम श्याम हैं ।
स्वर्ण बारि बरसैं बिपुल, पूरें सबके काम हैं ॥

इति श्रीभागवतचरितके प्रथमाहमें परीक्षित जन्मोत्कर्ष नामक
पञ्चम अध्याय समाप्त ।



अथ षष्ठोऽध्यायः

[६]

दोहा—कहें सूत—मुनिवर ! सुनो, विदुर आगमन धन्य ।
शूद्र भये यम शाप वश, जो हरि भक्त अनन्य ॥

छप्पय—मुनि मांडव्य महान् मनस्वी मौनी दुष्कर ।
करें तपस्या तीव्र द्वार आश्रमके तरुतर ॥
करिकें चोरी चोर ओर आश्रमकी आये ।
देखि दूरतें दूत द्रव्य धरि तहाँ लुकाये ॥
पूछें मुनितें दूत सब, मौनी उत्तर देहिं कस ।
यही चोर सरदार है, सब मिलि निश्चय कियो अस ॥

बाँधे चोरनि सहित निकट नरपतिके लाये ।
बिनु विचारि मुनि सहित चोर शूली लटकाये ॥
तपतें मुनि नहिं मरें मरम भूपति जब जान्यो ।
क्षमा याचना करी दोष मुनि अपनो मान्यो ॥
क्रोधित लखि यमने कही, छेदे कृमि छोड़े अबश ।
शाप दयो यम शूद्र हो, भये विदुर मुनिकोपबश ॥

सोरठा—तेई बनि परिब्राज, तीरथ हित रनतैं प्रथम ।
धरमराजको राज, आये देखनहेतु पुनि ॥

छप्पय—आये चाचा विदुर युधिष्ठिर सुनि हरषाये।
करि स्वागत सत्कार प्रेमतें पुरमें लाये॥
पुनि पूछी कुशलात कृष्णाकी कहो कहानी।
तिरोभावकूँ त्यागि विदुरने सबहिँ बखानी॥
स्वयं धरम शत बरष तक, शूद्र भये मुनि शाप सुनि।
शूलीके कारन कुपित, शाप दयो माण्डव्य मुनि॥

बिदुर देवबत लखे अंग पांडव न समाये।
मानों मृतक शरीर प्रान फिरितें फिरि आये॥
पूछें पांडव—चचा! हमें च्यौं अस बिसराये।
कुन्ती बोलीं—लला! भूलि तुम इत कित आये॥
प्रणय कोपयुत मधुर अति, सुनत बिदुर बोले बचन।
भाभी! भाग्य अधीन हैं, सुख दुख अरु बिछुरन मिलन॥

सोरठा—पाइ परम सत्कार, बिदुर बसैं धृतराष्ट्र ढिँग।
करन बन्धुउपकार, नित प्रति सोचत ही रहत॥

छप्पय—धरम रूप वे बिदुर बन्धुतैं बोले बानी।
राजन्! कुटिल कराल कालकी कछु गति जानो॥
देखो, दौर्यो काल सबनिके सम्मुख आयो।
चलो त्यागि तत्काल बिलम च्यौं यहाँ लगायो॥
सगे सबहिं सुरपुर गये, देह जरजरित ह्वै गई।
जीवन आशा नहिं गई, अन्त समय दुरगति भई॥

जिनकूँ तुमने देव! दुसह दुख दारुन दीन्हे।
दारा दूषित करी द्रव्य हरि भिक्षुक कीन्हे॥
श्वान समान अमान उनहिँके टुकड़े खाओ।
रक्त सुरंजित भोग भोगतें नहीं लजाओ॥
चलो उत्तराखंडकूँ, मोहपाश छेदन करो।
जनम सफल तप करि करो, सब तजि हरि हियमें धरो॥

सुनत बिदुरके वचन बन्धुवर अति हरषाये।
गद्गद गिरा गँभीर नीर नयननिमें छाये॥
धन्य धन्य लघुभ्रात हाथ गहि तात उबार्‌यो।
अन्धकूपमें पतित—पतितकूँ पकरि निकार्‌यो॥
सबकूँ सोवत छोड़िकें, गान्धारीके साथमें।
बिदुर बताये मार्गतें, चले हाथ दै हाथमें॥

नित्य नियम अनुसार युधिष्ठिर गुरु बन्दनकूँ।
आये, देखे नहीं, बिदुर अरु कुरुनन्दनकूँ॥
सुनि संजयतैं वृत्त बहुत रोये पछिताये।
आये नारद समाचार सब सत्य सुनाये॥
ताऊ ताई तव चचा, सप्तश्रोत सब जायँगे।
पाप पुण्यतैं पृथक है, पुण्य परम पद पायँगे॥

दोहा—यों कहि नारद मुनि गये, धर्मराज अति दीन।
सूनो सूनो सब जगत्, दीखत अति श्रीहीन॥

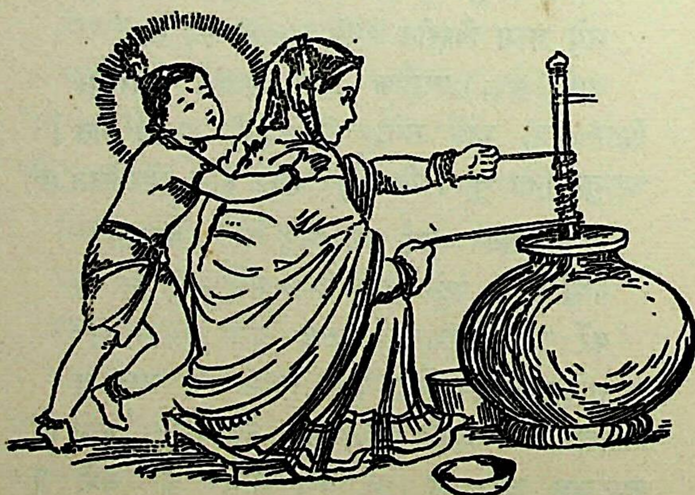
छप्पय—कहें युधिष्ठिर–भीम! भयानक काल भयो है।
आयो अरजुन नहीं द्वारकामांहि गयो है॥
भये धरम बिपरीत रीति कुलकी सब त्यागें।
जाइँ पुत्र, परलोक पिता माताके आगें॥
पिता पुत्र, भाई सगे, पति पतिनीमें कलह नित।
असगुन नित नूतन निरखि, चंचल होवै मोर चित॥

त्याग्यो सबने धर्म कर्म कछु करें न हितकर।
पालें पापी पेट पाप करि सबहिं नारि नर॥
करें नहीं विश्वास परस्पर प्रेम न राखें।
तनिक द्रव्यके हेतु हाल मिथ्या सब भाखें॥
निरखि नित्य उत्पात अति, मन मलीन मेरो भयो।
कपटबन्धु कलिकाल का, धरा धामपै छा गयो॥

फरकें बाइं बाहु हृदयमें कम्पन होवै ।
करि मुँह मेरी ओर श्वान निरभय है रोवै ॥
उल्लू और कपोत मृत्यु के दूत कहावें ।
करकश कठिन कराल शब्द करि हृदय हिलावें ॥
लीला विग्रह त्यागि का, श्याम धाम गमने कहीं ।
करूँ कहा चित दुखित अति, अरजुन हू आयो नहीं ॥

गैयाँ रोवें नित्य, घास घोड़ा नहिं खावें ।
बहे वायु वीभत्स, रक्त बादर बरसावें ॥
पृथिवी, प्रेत, पिशाच, पाप प्रानिनितैं पूरन ।
भई गई शुभ कान्ति, लड़ें नभमें सब ग्रहगन ॥
देवमूर्ति मुख मलिन करि, अश्रु बिन्दु बरसावतीं ।
अति अपशकुन जनावतीं, दुखद दृश्य दिखलावतीं ॥

इति श्रीभागवतचरितके प्रथमाहमें विदुर धृतराष्ट्र गृहत्याग नामक षष्ठम अध्याय समाप्त ।



अथ सप्तमोऽध्यायः

[७]

धरमराज भयभीत भये अरजुन तहँ आये।
मुखमण्डल अति मलिन दुखित चिंतित घबराये ॥
सब ई हर्षित भये नहीं अरजुन हरषाये।
पकरि पैर गिरि परे बचन नहिं कछू सुनाये ॥
बार-बार पूछें नृपति, बन्धु! बताओ बात सब।
सम्बन्धी सब सुखी हैं, कहो तहाँतैं चले कब ॥

अरजुन बोले नहीं बहुत बिलपें पछितावें।
धरमराज पुचकारि, प्यार करि धीर बँधावें ॥
दुखको कारन बन्धु! शोक तजि मोइ बताओ।
यदुनन्दनके सबहिं सुखद संवाद सुनाओ ॥
बचन कठिन काहू कहे, अथवा अपमानित भये।
या तनु तजिकें भुवनपति, नित्य धाम तो नहिं गये ॥

दुखको वारापार न अरजुन कतहूँ पावैं।
कृष्ण कृपाकूँ सुमिरि, नयनतें नीर बहावें ॥
नाथ! सारथी सदा सुहृद सम्बन्धी बनिकें।
नित नित नेह बढ़ाय, छाँड़ि गमने छल करिकें ॥
हाय! प्रभो! अब जायँ कित, इत उत नहिं संतोष सुख।
अश्रु पौंछि बोले बचन, तात बाततें बढ़्यो दुख ॥

जिनकी कृपा कटाक्ष पाइ हम भये सुखारे।
राजन्! कैसे कहूँ श्याम निजधाम पधारे॥
जिनके प्रेम प्रसाद प्रिया कृष्णा-सी पाई।
यन्त्र-मत्स्यकूँ वेधि द्रुपदपुर लही बड़ाई॥
काममत्त सब नृपनिके, सिरपै पैर जमाइकें।
द्रुपदसुता हमने बरी, गये अनाथ बनाइकें॥

जिनकी लहिकें कृपा अकारज कारज कीन्हे।
विप्र वेषमहँ वह्नि आइ वर माँगे दीन्हे॥
सन्निधि समुझी श्याम भोज बहु खांडव दीन्हों।
अति प्रचंड धरि रूप दाह बन सबरो कीन्हों॥
देवराज रक्षा करी, किन्तु पराजित वे भये।
धराधाम तजि धामनिज, अज अच्युत अब चलि दये॥

राजन्! अति कमनीय कृष्णकी अकथ कहानी।
प्रेमामृत में सनी सरस सुखदायक बानी॥
खांडवको करि दाह अग्नि भरि पेट अघाये।
दोउनिकूँ बर दैंन देवपति दौरे आये॥
मैंने मांगे अस्त्र बर, मांग्यो हरि वर हिय भरै।
अरजुनके सँग मित्रता, मेरी नित बढ़िबौ करै॥

राजसूयके समय सबहिं भूपति बश आये।
जरासन्ध नहिं नम्यो आपु अतिशय घबराये॥
मगधेश्वरके दमन करनकी युक्ति बताई।
अभय करत वा समय श्याम सब कहें सुझाई॥
राजन्! अरजुन, भीम, मैं, तीनिहु गिरिब्रज जायँगे।
जरासन्धकूँ युक्तितें, मारि मगधतें आयँगे॥

आज्ञा लैकें चले साथ हम दोऊ लीन्हे।
क्षत्री बानों बदलि वेष विप्रनिके कीन्हे॥
ज्येष्ठ बन्धुतें भिड़ा दुष्ट मरवायौ इनतें।
बन्दी भूपति मुक्त करे बोले हरि उनतें॥
धरमराजके यज्ञमें, बहुत भेट लै आउ सब।
वे ही हमरे हृदयधन, श्याम सिधारे धाम अब॥

राजन्! कहँ कहँ कहूँ, करी हमरी रखवारी।
दुष्ट फन्दमें फँसी द्रौपदी प्रिया तुम्हारी॥
जिनिमें छींटा राजसूय पयके शुभ लागे।
खोले खींचे केश खलनिने सबके आगे॥
रोई अति ही दीन है, रक्षा नहिं काहू करी।
कृष्ण पुकारे करुणस्वर, कान भनक उनके परी॥

भरी सभामें आइ चीरकूँ अक्षय कीन्हों।
दुखित दयानिधि भये दंड दुष्टनिकूँ दीन्हों॥
जिन कच खींचे बधू बनीं विधवा उन सबकी।
खोले डोलें केश, प्रतिज्ञा पूरी तब की॥
सदा दुखी दुखमें रहे, सुखी सबनि सुख दै भये।
किन्तु अकेले अन्तमें, सब तजि निज पुर चलि गये॥

मूर्तिमान जो कोप तपस्वी दुर्वासा मुनि।
शाप दिवावन शत्रु पठाये बन वैभव सुनि॥
अक्षय रविको पात्र खाइ मलि कृष्णा निबटी।
अतिथि भये लै शिष्य सबनि चित चिंता चिपटी॥
दुखमें सुखमें शोकमें, हैं जाकी गोविन्द गति।
श्याम पुकारे करुन स्वर, भई द्रौपदी दुखित अति॥

सुनत प्रियाकी टेर बेर नहिं करी पधारे ।
'अति भूखो कछु देहु' आइ ये बचन उचारे ।।
रोई कृष्णा पात्र लयो आगे धरि दीन्हों ।
शाकपत्रकूँ पाइ, तृप्त सबरो जग कीन्हों ।।
न्हात मुनिनि फूले उदर, लेत डकार पलायँ सब ।
टारी वृहद बिपत्ति जिनि, गये त्यागि संसार अब ।।

अश्वत्थामा भीष्म द्रोण अरु कर्ण धनुरधर ।
डरत रहत नित आपु चारिहू अति बलवत्तर ।।
दीक्षा दैके मोइ आपुने अस्त्र लैन हित ।
पठयो प्रकटे इन्द्र कह्यो तपमें तुम हो रत ।।
तुमरे तपतें तुष्ट है, तुरत त्रिलोचन आयँगे ।
लोकपाल शिव अस्त्र निज, आइ सबहिं दै जायँगे ।।

उल्ला०—इन्द्र,बरुण,यम,धनद आ, अस्त्र सहित दरशन दिये ।
करी कृपा जिन कृपातें कृष्ण कहाँ अब चलि गये ।।

देखि देवपति मुदित मन, पुत्र प्रेम परगट कियो ।
सिर सूँघ्यो मुँह चूमिकें, आधो सिंहासन दियो ।।

छप्पय—करत तपस्या भील वेष धरि शिव तहँ आये ।
जानि जंगली जाति लड़्यो हर अति हरषाये ।।
भयो युद्ध घनघोर भई नहिं कुंठित मो मति ।
कृष्ण कृपातें उमा सहित शिव तुष्ट भये अति ।।
जिनकी कृपा प्रसादतें, नर तनुतें सुरपुर गयो ।
अर्ध सिंहासन हरि दयो, अब उन बिनु निरबल भयो ।।

कछुक काल सुखसहित स्वर्गसुख भोगे भारी ।
दिव्य अस्त्र सब सीखि चलनकी करी तयारी ॥
देवराज सब देव कहें—इक कारज कीजे ।
अस्त्र-शस्त्र तो लये दक्षिणा गुरुकी दीजे ॥
हैं निवात कवचादि अति, प्रबल दैत्य तिनतें लरो ।
मारो रणमें सबनिकूँ, निष्कंटक सुरपुर करो ॥

मारि सके नहिं देव तिनहिंतैं हौं जा जूझ्यो ।
कृष्ण कृपातें कछू कठिन कारज नहिं सूझ्यो ॥
दिव्य अस्त्रतें मारि शत्रु सबही संहारे ।
माया छलतें लड़े तऊ रणमें सब हारे ॥
कालिकेय पौलोम सब, स्वर्णपुरी बासी हने ।
जिनिके बलतें बली बनि, राजन् ! अब तिनु बिनु बने ॥

कौरव और त्रिगर्त सन्धि करि करी चढ़ाई ।
करें बास अज्ञात जहाँ हम पाँचहु भाई ॥
भीष्म, कर्ण, गुरुद्रोण, सुयोधन सब मिलि करिकें ।
मत्स्यदेशपै चढ़े चले गोधन बहु हरिकें ॥
वृहन्नलातें सारथी, बन्यो हरष हियमें अमित ।
कहे उत्तरा— सुघर पट, लावें मम गुड़ियानि हित ॥

उत्तर उत ही चल्यो जायँ कौरव गौ लूटें ।
सेना लखी महान कुँवरके छक्के छूटें ॥
निज परिचय करवाइ युद्धकी करी तयारी ।
संधान्यो गांडीव शत्रु-सेना संहारी ॥
लही विजय मूर्छित करे, मुकुट, वस्त्र गोधन लये ।
करे काज जिनि कृपातें, हाय ! कृष्ण वे तजि गये ॥

कैसी किरपा करी हमारे ऊपर रनमहँ ।
भीष्म द्रोण सम बीर बान तकि मारहिं तनमहँ ।।
जाहिं सरं करि निकरि तनिक तनमहँ नहिं लागैं ।
लागत मेरे बान शत्रु रन तजि सब भागैं ।।
मेरे रथपै बैठिकें, सबकूँ निरबीरज कर्यो ।
दृष्टि डारि मृत सरिस करि, ओज, तेज, बय बल, हर्यो ।।

बार-बार यों कहैं फिरैं रनमहँ लै मोकूँ ।
शत्रु पक्षके अस्त्र परसि पावैं नहिं तोकूँ ।।
दरसावैं निज कला विविध बिधि रथकूँ हाकें ।
तबै तेज बल बीर जाहि तिरछे ह्वै ताकें ।।
राजन् ! रनमें काल बनि, संहारे सब ही जने ।
अवनि त्यागि अब अखिलपति, बर बिकुंठवासी बने ।।

जिनिके कमल समान पूजि पग मुनि न अघावें ।
हृदय कमलमहँ ध्याइ पार भवसागर जावें ।।
नहिं पूजे पद पदुम निन्द्य कारज करवायो ।
मनमोहनतें महामोहवश रथ हँकवायो ।।
समुझि सक्यो नहिं श्यामकूँ, मोह्यो तब मैं मन्दमति ।
हाय ! लुट्यो वञ्चित भयो, हृदय फटत मन दुखित अति ।।

कहूँ कहाँ तक प्रभो ! श्याम मोकूँ अपनायो ।
घोड़ा घायल भये चलें नहिं मैं घबरायो ।।
सब शत्रुनितें घिर्यो डर्यो हरि नेह निहार्यौ ।
समुझि श्याम संकेत बानतें नीर निकार्यौ ।।
हय प्याये तैराके, शर निकारि मलि बांरि रथ ।
चले शत्रु मोहित करे, गये त्यागि अब हौं बिरथ ।।

राजन् ! हरिने ठग्यो घट्यो बल मेरो सबरो ।
गये सुदिन वे बीति अंत अब आयो हमरो ॥
अस्त्र न आवें यादि शस्त्र सब भूले अबई ।
पुरुषोत्तमतैं रहित भयो गुन गमने सबई ॥
गंगातटपै तापसी, शाप क्रोध करि जो दयो ।
सम्मुख आयौ आज वो, अबला सम हौं लुटि गयो ॥

एक दिना बन माँहिं तापसी तीन खड्ग धरि ।
बैरी मेरे तीन बतावै जब पूछी हरि ॥
बाँधे माखन हेतु यशोदा ताकूँ मारूँ ।
दीन्हौं कृष्णा कष्ट पार्थहित तीसरि धारूँ ।
तीन शाप क्रमशः दिये, बहु समुझायो श्याम जब ।
सुत वियोग पति उपेक्षा, दस्यु पराजित करहि तब ॥

हरि आज्ञा सिर धारि नारि लैकें मैं आयो ।
डाँकू मगमें मिले मोइ मिलिकें धमकायो ॥
अपनो परिचय दयो नाम अरजुनहुँ बतायो ।
किन्तु न माने दुष्ट नारि लखि चित्त चलायो ॥
हरिकी सोलह सहस प्रिय, पत्नी तिनि ढाढ़स दयो ।
तऊ लूटि लै भगे हौं, देखतको देखत रह्यो ॥

जीत्यो भारत युद्ध दिव्य रथ घोड़ा वेई ।
धनुष वही गांडीव समरविजई सर वेई ॥
विश्वविदित हौं रथी साज सामान वही हैं ।
किन्तु नहीं हैं श्याम सारथी व्यर्थ सभी हैं ॥
बुझी आगमहँ हवन जिमि, ऊसर बोयो बीज ज्यों ।
जिमि सेवा कंजूसकी, व्यर्थ होइ है गयो त्यों ॥

राजन् ! पथकी व्यथा बताई सबरी हमने ।
पूछी जिनिकी कुशल नाम लै-लै कें तुमने ।।
वे सबतो बनि मूढ़ परस्पर लरे बिचारे ।
मद पीकें मदमत्त भये मरि स्वर्ग सिधारे ।।
जैसे जलचर दीर्घ लघु, खायँ बली निरबलनिकूँ ।
त्यों यदुबंशी लरि मरे, मरवाये हरि सबनिकू ।।

कैसी क्रीड़ा करें कौतुकी श्याम खिलारी ।
विषय बासना, बद्ध न समुझात बुद्धि बिचारी ।।
जीव जीव सो करैं जीवतैं पुनि मरवावैं ।
करहिँ परस्पर प्यार शत्रुता पुनि करवावैं ।।
महाराज ! सब काज तजि, चलो विजन बन तनु तजो ।
राज, पाट, धन, धाम, गृह, छोरि मोरि मुख हरि भजो ।।

भयो भोर सब ओर शोक घर घर में छायौ ।
कुन्ती माता सुन्यो द्वारकातें सुत आयौ ।।
स्वामी सरबसु सगे बाहिरी प्रान हमारे ।
वे हरि हमकूँ त्यागि हाय ! बैकुंठ सिधारे ।।
नाश भयो यदुवंशको, लरि भिरिकें सब मरि गये ।
कुन्ती तनु त्याग्यो तबहिँ, शोकाकुल सुत सब भये ।।

स्वरग सिधारी मातु धरमसुत नहिं घबराये ।
धन्य-धन्य मम मातु बिरह-हरि प्रान गँवाये ।।
अश अभागे हमहिं वज्रसम हिये हमारे ।
सुतन श्याम संबाद प्रान हरि सँग न सिधारे ।।
बलज-मीन फणि-बारि मणि, बिनु न रहें जीवित अधिक ।
मातु निबाह्यो प्रेम भल, हम जीवित अस नेह धिक ।।

धरमराजने लख्यो, राजमहँ दम्भ कपट अति ।
कलिकूँ आयो जानि, कीन्ह परलोक गमन मति ॥
वन परबत नद नदी, ससागर सबरी पृथ्वी ।
के कीन्हें सम्राट् परीक्षित् परम यशस्वी ॥
हथिनापुरमहँ परीक्षित, वज्र ब्रजेन्द्र बनाइकें ।
गुणी पौत्र लखि मुकुट निज, सिर धरि दियो सिहाइकें ॥
कहें परीक्षित्—प्रभो ! प्रजापालन अति दुष्कर ।
हौं मतिमंद मलीन अज्ञ अतिशय हे नृपवर ॥
कृपासिन्धु ! करि कृपा काज सब मोइ सिखावें ।
आश्रयहीन अनाथ नाथ ! अबहीं न बनावें ॥
कहु पिपीलिका हिमालय, कैसे निज सिर पर धरै ।
कस कपोत निज पंखपै, धरनीधर धारन करै ॥
किये परीक्षित् नृपति चले सब पांडव बनकूँ ।
राज-पाट परिवार सबहितें खैंच्यो मनकूँ ॥
चीर बसन आहार तजे, कच कुंचित खोलें ।
जड़ उनमत्त समान न काहूतें कछु बोलें ॥
जैसे बीती यामिनी, नहिँ लौटति पुनि जाइकें ।
उत्तर दिशिकूँ चलि दिये, हरिपद हियमें लाइकें ॥
गान्धारी धृतराष्ट्र बिदुर कुन्ती हरि हिय धरि ।
पांडव पतिनी सहित गये परिवार दुखित करि ॥
तनु त्यागो यश छाँड़ि धाम बैकुण्ठ सिधारे ।
सबके सुखकर मधुर चरित हैं अतिशय प्यारे ॥
जे श्रद्धातें सुनहिं नर, पढ़हिं प्रेमतें गायँगे ।
पुण्य परम पद पायँगे, भवसागर तरि जायँगे ॥

इति श्रीभागवतचरितके प्रथमाहमें पांडव स्वर्गारोहण नामक सप्तम अध्याय समाप्त ।

अथ अष्टमोऽध्यायः

[८]

पूज्य हितामह परम पुण्य परलोक पधारे।
भये परीक्षित् नृपति सुनत सब संत सुखारे॥
यज्ञ याग बहु करे दान दुखियनिकूँ दीन्हे।
इरावती में चारि गुणी सुत पैदा कीन्हे॥
कृपाचार्यकी कृपातैं, अश्वमेध कैई करे।
यों ऋषि-ऋण सुरपितर-ऋण, तीनिहु ऋणतें नृप तरे॥

सुन्यो परीक्षित राजमांहिँ कलियुग घुसि आयौ।
धावा बोल्यो तुरत सुनत कलियुग घबरायौ॥
पूछें शौनक—सूत! कर्यो कलि कैसे वशमें।
नृपति वेषमें शूद्र गऊ ताड़त किहि थल में॥
राजवेषधारी वृषल, वृषभ गऊ ताड़न करत।
बलपूर्वक कस वश कर्यो, कस नृप सबके दुख हरत॥
दोहा—सूत कहें शौनक सुनहु, कलि निग्रहको वृत्र।
भूप परीक्षित को सुखद, जामें पुन्य चरित्र॥

छप्पय—कुरु जांगलमहँ बसत युद्ध अवसर नहिं आवें।
धीर धनुरधर नृपति बिना रन हाथ खुजावें॥
कलि प्रवेश सुनि कुपित शीघ्र सब सेन सम्हारी।
दशहुँ दिशनिकूँ विजय करनकी करी तयारी॥
जायँ जहाँ जहँ जनेश्वर, तहँ निज कुल कीरति सुनत।
कहँ कहँ कृष्ण करी कृपा, सुनत होत अति मन मुदित॥

कहें बिप्रवर आइ कृष्णने करी कृपा कस ।
बने सारथी, दूत, भृत्य, घनश्याम दयाबस ॥
भक्तबस्य भगवान् दीनतातें बँधि जावें ।
किन्तु करें अभिमान तिनहिँ यमसदन पठावें ॥
करें कृपा करुनायतन, जीव क्षुद्रता नित करें ।
शरनागतके अघ अखिल, अखिलेश्वर छिनमे हरें ॥

बोले ब्राह्मण वृद्ध—युद्धकी बात बताऊँ ।
सुनहु नृपति! इक कथा सरस शुभ सुखद सुनाऊँ ॥
करी प्रतिज्ञा भीष्म अवनि पांडव बिनु करिहौं ।
सब शंका-संताप सुयोधनके अब हरिहौं ॥
सुनत हँसे हरि दयामय, लै कृष्णा कौतुक कियो ।
हो सौभाग्यवती सती, भूलि पितामह बर दियो ॥

कृष्णातें यों कहें कृष्ण—कछु बात सुनी है ।
पांडव मारूँ काल्हि प्रतिज्ञा भीष्म करी है ॥
कहे द्रौपदी दुखित—दयालो! दया दिखाओ ।
पावकमें जरि मरूँ नाहिं पति पाँच बचाओ ॥
रची चिता फेरोनि मिस, भीष्म द्वारपै लै गये ।
गंगासुत आसिस दई, तब पांडव निरभय भये ॥

हरिलीला अति मधुर आइ सब नृपहिं सुनावहिं ।
सब समाजके सङ्ग मुनहिं अति हिय हरषावहिं ॥
तबई शिबिर समीप घटी घटना अद्भुत अति ।
एक पैरतें धरम बृषभ बनि चलहिं मन्द गति ॥
धेनु रूप धरनी धरे, रोवै सुत बिनु मातु ज्यों ।
मातु दुखित पूछहिं तनुज, धरम धरनितें कहें यों ॥

बीतत सुखद बसंत ग्रीष्ममें गरमी आवै।
प्रथम पच्छ शशि छीन द्वितियमहँ पुनि खिलि जावै ॥
महामोदमें हँसै वही दुखमें पुनि रोवै।
त्यों कलियुग पश्चात् सुखद शुभ सतयुग होवै ॥
जननी! दुखतें दुखित है, काहे अश्रु बहावती।
कान्तिहीन मुख म्लान करि, कस डरि-डरि डकरावती ॥

बोली बसुधा—बत्स ! बिपतिकी बात बताऊँ।
प्राननाथ पदपदुम परस बिनु अति अकुलाऊँ ॥
जिनकी कृपाकटाच्छ पाइ पावन सब होवें।
मधुर मन्द मुसकान नारि लखि धीरज खोवें ॥
तिनु बिनु हौं बिधवा भई, सब सुहाग सुख लुटि गयो।
शम, दम, बल, तप, तेज, गुन, गये धैर्य मम छुटि गयो ॥

जलज सरिस जे चरन, योगिजन जिनकूँ ध्यावें।
जिनमें बज्र, त्रिशूल, कमल, ध्वज शोभा पावें ॥
दुखहर सुखकर पाद पदुम मम हिय जब परसत।
रोमांचित करि देह सकल अँग अँग अति हरषत ॥
आज तिनहितें हीन है, भाग्यहीन अबला भई।
श्री, ह्री, लज्जा, कान्ति, धृति, सुख समृद्धि बिनु है गई ॥

जहाँ धरनि अरु धरम करें सम्वाद परस्पर।
करत दिग्बिजय तहाँ परीच्छित पहुँचे नृपवर ॥
बने वृषभवर धरम, धेनु तनु धरनी धारे।
छद्मबेषमें वृषल नृपति बनि तिनकूँ मारे ॥
वृषभ एक पदतें व्यथित, कामधेनु लखि दुखित अति।
शूद्र हनै थर-थर कँपै, कर्‌यो क्रोध बोले नृपति ॥

अरे दुष्ट ! तू कौन बड़ो बलवान बन्यो है ।
बलहीननिकूँ हने, ठहर, यह तीर तन्यो है ॥
पुनि पूछें—गोतनय ! दुखित च्यौं तीन पैरतें ।
राजवेषमें वृषल हनहि कहु कौन बैरतें ॥
जो हो कारन कष्टको, वेगि बताओ वृषभ अब ।
दुष्ट मारि बदलो लऊँ, सच सच बात बताउ सब ॥

धरम कहैं—हे देव ! दुःख देवै को काकूँ ।
होवै कारन एक बताऊँ हौं तब ताकूँ ॥
ईश्वर, कर्म, स्वभाव भिन्न मुनि भिन्न जनावें ।
समुझें अपने आपु काहि दुख बीज बतावें ॥
कहैं नृपति—तुम धरम हो, धरम बिना अस को कहै ।
अघकारीके पाप कहि, सूचक हूँ अघगति लहै ॥

हरिकी माया अमित न पहुँचै मन अरु बानी ।
शौच दया, तप, पाद बिना तुम्हरे मन ग्लानी ॥
गऊरूप ये धरनि पदुम पद प्रभुके सोचति ।
चरन चिह्नतें रहित दुखित है अश्रु विमोचति ॥
धरहु धीर धरनी ! धरम ! क्षत्रिय हौं शर धनु धरूँ ।
नृप लांछन कलि क्रूरको, सिर धड़तें न्यारो करूँ ॥

यों कहिकें भूपाल तीक्ष्ण तरवारि निकारी ।
ज्यों आगेकूँ बढ़े तुरत कलि युक्ति विचारी ॥
पापी पैरनि पर्‌यो कृपाकी भिक्षा माँगी ।
धरी म्यानमें खड्ग दया दुखिया लखि लागी ॥
कहैं—क्रूर यह ! का करै, काहे मम पग सिर धरै ।
असि कुरुवंशिनिकी कबहुँ, नहिं शरनागतपै परै ॥

प्रानदान तो देउँ किन्तु अबई तुम जाओ।
ब्रह्मावर्त सुदेश भूलि इत कबहुँ न आओ॥
बिप्र करें इत याग भाग देवनिकूँ देवें।
सबही सुखतें सदा सर्वपति शिवकूँ सेवें॥
बोल्यो कलि—सर्वत्र है, राज तुम्हार बसूँ कहाँ।
मोकूँ ठौर बताइ दें, आज्ञा मानि रहूँ तहाँ॥
बोले नृप—मम द्वार विमुख याचक नहिँ जाहीं।
वेश्या, हिंसा, द्यूत, मद्यमहँ बसहु सदाहीं॥
सोची भूपति यही चार अति निन्दित थल हैं।
आसक्ती, मद, झूठ, क्रूरताके ये बल हैं॥
गिड़गिड़ाय पुनि कलि कहै, निन्दित अधम सबहिं दये।
एक मनोहर नाथ! दें, तब राजा सोचत भये॥
स्वर्ण एक संसारमाहिँ हत्याकी जर है।
स्वजन विजन बनि जायँ बैरको यह ही घर है॥
कौरव पांडव लरे नाश सब जगको कीन्हों।
दोष खानि लखि नृपति पांचवों सोनों दीन्हों॥
सुखी स्वर्ण सुनि कलि भयो, अति प्रसन्न ह्वै हँसि गयो।
स्वर्ण मुकुट नृप सिर निरखि, तुरत ताहिमहँ घँसि गयो॥
पूछें शौनक—'सूत! दुष्ट कलि च्यों नहिं मार्‌यों।
काहि न क्रूर कराल राज्यतें पकरि निकार्‌यो॥
सूत कहें—नृप भ्रमर सरिस रसग्राही ऋजु अति।
सोच्यो कलिमहँ लगहिं पाप करि पुण्य होयँ मति॥
यह खल कलि कायरनिकूँ, डरपावै वृकके सरिस।
धीर बीर हरिभक्त लखि, डरै कँपै नहिं करहि रिस॥

इति श्रीभागवतचरितके प्रथमाहमें परीक्षित् कलि निग्रह नामक अष्टम अध्याय समाप्त।

अथ नवमोऽध्यायः

[९]

शौनकादि मुनि कृष्ण कथा सुनि अति हरषाये ।
आशिष दीन्हों दौरि हृदयतें सूत लगाये ।।
अश्रु विमोचन करें सूततें पूछें पुनि पुनि ।
तृप्त न होवें मधुर सुखद हरिलीला सुनि सुनि ।।
सब ऋषि बोले—सूतजी, कछु दिन तुम मखमहँ रहहु ।
नृपति परिच्छितचरित शुभ, हरिलीला बरनन करहु ।।

गद्गद ह्वैकें सूत ऋषिनितें बोले बानी ।
कृष्णकृपाको पात्र बन्यो अब मैंने जानी ।।
कृष्णचरित है अमित सबहिं मति सरिस सुनावें ।
निज बलके अनुसार पच्छि नभमाँहिं उड़ावें ।।
कीर्तनीय गुन करम अति, जिनिके परम उदार हैं ।
धनि धनि ते नर तिनहिं जे, सुनहिं गुनहिं धुनितें कहैं ।।

मुनिवर ! उत्तरचरित उत्तरासुतको सुनु अब ।
है अति भावी प्रबल करहिं अनुभव मुनि ये सब ।।
दच्छिन दिशिकूँ एक दिवस नृप धनु धरि धाये ।
भूख प्यासतें दुखित भये मुनि आश्रम आये ।।
करहिं तपस्या तहाँपै, मुनि शमीक बैठे अचल ।
पानी माँग्यो मुनि नहीं, सुन्यो भये नृप अति बिकल ।।

आयौ नृपकूँ कोह द्रोह मुनिवरतें कीन्हों।
मर्‌यो स्यापु मुनि नारि डारिकें भूपति दीन्हों॥
कबहुँ न ऐसो कर्‌यो कालकी कैसी गति है।
होनो जैसो होय तबहिं तस होवै मति है॥
विधि विधान ह्वै कैं रहै, कबहुँ होय नहि व्यर्थ वह।
पांडव नल अरु रामके, चरित बतावें तत्त्व यह॥

रावण जैसो सूर वीर बलको गरबीलो।
पुरुषारथ लखि व्यर्थ भयो चिन्तित अति ढीलो॥
दशरथ हों बर बधू कुमरि कौशल्या बरिहैं।
तिनतें होवें राम वही तोकूँ रन मरिहैं॥
ब्रह्मदेवतें सुनी यों, कुमर डुबाये कुमरि लै।
लंका आयो परि भयो, ब्याह देखि खल कर मलै॥

होनहार नहिं होय अन्यथा काहू विधितैं।
मृत्यु टरै नहिं जोग, जज्ञ, तप, रिद्धि सिद्धितैं॥
नृप सोचें—मुनि नेत्र मूँदि का ध्यान लगावै।
अथवा देखत मोइ अकड़िके ढोंग बनावै॥
लैंन परीक्षा मुनि गरे, मृत अहि डार्‌यो कुपति अति।
आश्रमतें निकसे तुरत, पहुँचे निजपुरमहँ नृपति॥

पूछें, शौनक—सूत! सर्प तहँ किनने डार्‌यो।
मुनि आश्रम अति शान्त जीव किहि अहिकूँ मार्‌यो॥
सबहिं भाग्यवश करहिं सूत समुझावहिं पुनि-पुनि।
मारे किनकूँ कौन—कौन जीवन देवै मुनि॥
अजी, कहा पूछहि प्रभो! विधि विधान अति विकट है।
बने बुद्धि वैसी वहीं, मृत्यु जहाँ जिहि निकट है॥

हो मुनिको इक पुत्र संयमी परम तपस्वी।
धरम करममहँ निरत तपोनिधि महायशस्वी ॥
पिता अवज्ञा सुनी कोप अति मनमहँ आयौ।
मुनि पुत्रनिके निकट क्रोध करि बचन सुनायौ ॥
अरे, दुष्ट क्षत्रिय अधम, ऐसो साहस करि सके।
गरुड़ गरेमें काटि अहि, कहु का जीवित रहि सके ॥
डार्‌यो पितु उर स्याँपु शाप हौं देहौं वाकूँ।
डसै सातवें दिवस महा अहि तक्षक ताकूँ ॥
यो दैकें सुत शाप पूज्य पितुके ढिँग आयौ।
मर्‌या स्याँपु उर निरखि बहुत रोयो चिल्लायौ ॥
जगे महामुनि सुनी सब, बात बहुत दुख मन कर्‌यो।
धिक्कार्‌यो सुत त्रिविध विधि, नृपसन वृत्त पठै दियो ॥
इत नृप पुरमहँ पहुँचि कनक जबमुकुट उतार्‌यो।
आश्रम कर्‌यो कुकृत्य चित्तमहँ फेरि बिचार्‌यो ॥
अरे बुद्धि मम भ्रष्ट भई अनुचित यह कीन्हों।
योगनिष्ठ ते महा तपस्वी मुनि अब चीन्हों ॥
सोचैं—अब मुनि कोपतें, मम सरवसु नसि जाइगो।
वाही छिन सन्देश लै, शिष्य नृपतिढिँग आइगो ॥
सुन्यो शिष्य आगमन नृपति तहँ तुरतहिं आये।
भूप निरखि भयभीत शिष्यने बचन सुनाये ॥
राजन् ! ऋषिसुत शाप दयो सो सब सुनि लीजे।
सात दिवसमहँ ह्वाहि मुक्ति सो कारज कीजे ॥
सुनी शापकी बात नृप, सौंपि सुतहिं सब राजधन।
कृष्ण चरनमहँ चित्त दै, चले गंगतट मुदित मन ॥

इति श्रीभागवतचरितके प्रथमाहमें परीक्षित्शाप नामक
नवम अध्याय समाप्त।

अथ दशमोऽध्यायः

[१०]

कमल बसै जलमाँहिँ किन्तु निर्लेप रहे नित ।
त्यों ही नृप सब करत रहे कारज राख हरि चित ॥
शापित सुरसरितीर चले सुनि सबई धाये ।
ऋषि मुनि त्यागी संत बिरागी तपसी आये ॥
मुनिनिमाँहिँ सुरपति लसैं, श्रीपृथु सोहैं सबमहँ ।
त्यों संतनितैं घिरे नृप, अतिशय शोभित होयँ तहँ ॥
माघ मकरके मध्य मनुज माधव ज्यों धावें ।
त्यों सब दिशितें सबहिं संत गंगातट आवें ॥
उठें अरघ दें नृपति योग्य आसन बैठावें ।
चरन धूरि धरि शीश बिनयतैं बचन सुनाव ॥
पाप करम करि क्रूर अति, बिप्र शाप शापित भयो ।
किन्तु संत दरसननितैं, धन्य आज हौं ह्वै गयो ॥
बार-बार सिर नाइ नृपति बोले यों सबतें ।
कर्यो अकारज काज चित्त चंचल मम तबतें ॥
मूर्तिमान हैं वेद आपु ऋषि मुनि तनु धारी ।
दरशन दैंके सपदि बिपति चिन्ता मम टारी ॥
मुनि प्रेरित अहि डसै भल; शुभ कर्तव्य बताइदें ।
भ्रम भय भेद मिटाइ दें, कृष्णकथा सुनवाइ दें ॥
सब मुनि मोकूँ महा मन्त्र दै पार लगावें ।
कृष्ण चरनमहँ चित्त लगे सो गैल बतावें ॥
विद्या, साधन, शास्त्र सबहिं हैं न्यारे न्यारे ।
जो जिनकूँ अनुकूल परैं ते तिनिकूँ प्यारे ॥
सरल सुगम सुन्दर सरस, मिलि सब सुठि साधन कहैं ।
जिहि कलियुग नर नारि गहि, भक्ति मुक्ति दोऊ लहैं ॥

मधुर बचन नृप कहे मुनिनिके मनमहँ भाये।
ताही छिन निरपेक्ष व्याससुत शुक तहँ आये॥
तरुन अरुन कर चरन कमल सम नयन रँगीले।
मनहर लाल कपोल अंग सुकुमार गँठीले॥
कंध सिंह सम विपुल उर, कारे कुञ्चित केश अति।
मृदु मुसकावन श्यामतनु, मत्तगयन्द समान गति॥
धूरि भर्‌यो तनु दृष्टि इष्ट चरननिमहँ लागी।
रतिपति सम अति सुन्दर देहकी सुधि बुधि त्यागी॥
वेष दिगम्बर केश खुले सँग बालक भागें।
निरखि नारि सौंदर्य चलीं सब कारज त्यागें॥
ऋषि-मुनि निरखे व्याससुत, जानि सबनि आदर दयो।
बैठे पूजित पीठपै, नृप मन अति आनँद भयो॥
विधिवत् पूजा करी नृपति यों बचन उचारे।
दीये दरशन देव! दुरित सब हरे हमारे॥
जिनिको सुमिरन करत रागयुत होहिं विरागी।
तिनिको दरशन पाहिँ भाग्यशाली बड़भागी॥
अहो, आज द्विज-द्रोह करि, कें हूँ हौं पावन भयो।
अतिथि आइ श्रीशुक भये, निन्द्य कृतारथ ह्वै गयो॥
प्रभो! परम पुरुषार्थ कृपा करि मोहिं बतावें।
मरनशील कस तरहिं तुरत ताकूँ समुझावें॥
सुने सुधासम बैंन नीर नयननिमहँ आयौ।
बोले शुक—नृप! धन्य जगततें चित्त हटायौ॥
नृपवर! सब चिन्ता तजहु, मनमोहनमहँ मन धरहु।
कहूँ भागवत तत्व अब, दत्त चित्त ह्वैकें सुनहु॥

इति श्रीभागवतचरिके प्रथमाहमें शुक परीक्षित् सम्मिलन नामक
दशम अध्याय समाप्त।

(इति मासिक पारायण—द्वितीय दिवस विश्राम)

अथ एकादशोऽध्यायः

[११]

छप्पय—भरतबंश-अवतंस ! प्रश्न अति उत्तम कीन्हों ।
मुनिमन्डलके मध्य मोइ आदर बहु दीन्हों ॥
भूप ! मूढ़जन विषय-भोगमहँ समय बितावें ।
प्रभुपद प्रेम न करहिँ अंतमहँ पुनि पछितावें ॥
नृपतर ! नरतनु नाव दृढ़, कृष्णकथा पतवार है ।
केशवकूँ केवट करै, सो भवसागर पार है ॥

दोहा—बटनर सुरसरिके निकट, जैसे शशिहिं चकोर ।
घेरे बैठे सकल मुनि, सब निरखत शुक ओर ॥
कहन लगे शुकदेव मुनि, दै नृपकूँ सन्तोष ।
शुद्ध भागवत तत्त्व अब, कहूँ धरम निरदोष ॥

छप्पय—है प्रपञ्च बहु विषयभोगमहँ फँसे नरनकूँ ।
हरिलीलातें सुखद और अवलम्ब न मनकूँ ॥
आकरषित अति भयो रूप हरिलीला सुनिकें ।
भूल्यो निरगुन ब्रह्म सगुनके गुनकूँ गुनिकें ॥
भव्य भागवत भूपवर ! तुमहिं सुनाऊँ सरस अति ।
सुनत श्यामपद कमलमहँ, होहि तुरन्त अनन्य मति ॥
अल्प कालकी कछू आपु चिन्ता नहिं करिहैं ।
सात दिवस तो बहुत कथा सुनि छिनमहँ तरिहैं ॥
एक मुहूर्तहिँ माहिँ तरे खट्वाङ्ग बिरागी ।
शेष आयु सप्ताह आपु तो सरबसु त्यागी ॥
अन्तकालकूँ निकट लखि, गेह देह ममता तजहिं ।
ते ध्रुव पावहिँ परमपद, जे सब तजि प्रभुपद भजहिं ॥
जीवनधन बिनु जीवन जीवन नहीं कहावै ।
भक्तिहीन नर मृतक सरिस है काल बितावै ॥

खावें पीवें लड़ें वृद्ध बनि यमपुर जावें।
बार-बार ते जनमि जगतमें जावें आवें॥
कोटि कल्पको कालहू, भक्ति बिना निस्सार है।
छिन भरि हरि हियमहँ बसैं, सोहि समय सुखसार है॥

सो०—श्रोता वक्ता आइ, सुरसरि तटपै मिलि गये।
शौनक हिये सिहाइ, पूछत पुनि पुनि सूततैं॥

छं०—सूत! सुनाओ सुखद परीक्षित-शुक-प्रश्नोत्तर।
जहाँ सन्तजन मिलहिं तहाँ सम्वाद होइ बर॥
गंग यमुन मिलि हरैं महापातकहू भारी।
तैसे ही शुक विष्णुरात वार्ता अघहारी॥
केवल कृष्णकथा सदा, श्रवननिकूँ श्रवनीय है।
करें कृष्ण कैंकर्यकूँ, तेही कर कमनीय हैं॥
पायौ पुण्यशरीर मनुष क्यौं पाप बटोरै।
अरे, अमृतमहँ अधम ब्यर्थ च्यौं विषकूँ घोरै॥
पतिनी, पशु, परिवार, पुत्र, धन सङ्ग न जावें।
मलि मलि धोवै देह अन्तमहँ गीदड़ खावें॥
काहे भूल्यो बावरे, मेला जगको द्वै दिवस।
कृष्ण-कृष्ण रटि कृष्ण जपि, कृष्ण कथा सुनि अहरनिस॥
जिनिको बन्दन, श्रवन, कीरतन, सुमिरन दरशन।
पूजन अरचन नाम गान करि नर हों पावन॥
संजीवनि रुज हरै मृतनिकूँ सुधा जियावै।
हरै दीप ज्यों तिमिर तूल तृन अग्नि जरावै॥
त्योंही अघकी राशिकूँ, जिनिको नासै नाम है।
तिनि प्रभुके पद-पद्ममहँ, पुनि-पुनि पुन्य प्रनाम है॥

इति श्रीभागवत चरितकेप्रथमाहमें शुकाभिनन्दननामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।

(पाक्षिक पारायण—प्रथम दिवस विश्राम)

अथ द्वदशोऽध्यायः

[१२]

दोहा—शौनककी शंका सुनी, सूत कहैं हरि कृश्न ।
है सचेत कहिवे लगे, भूप कर्‌यो ज्यों प्रश्न ॥

छप्पय—बोले राजा—प्रभो ! सृष्टि उत्पत्ति बतावें ।
निरगुनतें यह सगुन भयो कैसे समुझावें ॥
शुक बोले—विधि निकट यही पूछी नारद मुनि ।
कहूँ भागवत भूप ! समाहित मन करिकें सुनि ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश बनि, रचि पालहिं मारहिं सबहिं ।
हरि अवतारनिकी सुखद, कथा कहहुँ नृप सुनु अबहिं ॥

बनिगे सूअर श्याम मेघ सम लम्ब तड़ंगे ।
घुरुँ घुरुँ करि घुसे नीरमहँ नंग धड़ंगे ॥
आयो भीषण दैत्य भिड़े नख दाँत चलावें ।
गई सिटिल्ली भूलि बली लखि मुँह मटकावें ॥
पटक्यो फिरि सटक्यो तुरत, झटक्यो लटक्यो चोटतें ।
चट्ट पट्ट मार्‌यो असुर, धरणी देखे ओटतें ॥

हे सूकर भगवान् ! चरण तब शीश नवावें ।
यज्ञ रूप हैं आपु शास्त्र अरु वेद बतावें ॥
स्वामिन् ! सूकर रूप धर्‌यों च्यों भेद बताओ ।
ऊँच नीच नहिं जीव यही का मर्म जताओ ॥
जिनि पृथिवी उद्धार करि, मुदित करे सब देवगन ।
तिनि बराह भगवान्‌की, जय बोलो सब संतजन ॥

सूकर, हरि अरु कपिल, दत्त सनकादि तपस्वी।
नरनारायन, ऋषभ, बिष्णु ध्रुव परम यशस्वी॥
हयग्रीव, पृथु, कच्छ, मत्स्य, वामन, धन्वन्तरि।
परशुराम, श्रीराम, हंस मनु बनि प्रकटें हरि॥
श्रीबलदाऊ, ब्यासजी, बुद्ध, कल्कि आनन्दमय।
सब अवतारनिके परम, अवतारी यशुमतितनय॥

हैं अपार परपुरुष पार नर कैसे पावें।
का लै पूजा करें कौन-सी वस्तु चढ़ावें॥
श्रीपति सबके ईश कोटि ब्रह्माण्डनिनायक।
मन बानीतें परें चरित कस गावैं गायक॥
सहसबदन श्रीशेषजी, सृष्टि आदितें अंत तक।
करें गान गुनगननिको, पार न पायो अब तलक॥

मधुर मूर्ति रघुनाथ साथ सीता सुकुमारी।
अनुपम जोरी सुघर मनोहर अतिशय प्यारी॥
कैसी हियहर चलनि उठनि चितवनि बर बोलनि।
नंगे पगतें कठिन अवनिपै बन बन डोलनि॥
मनुज सरिस क्रीड़ा करी, करुनाकर कीन्हें चरित।
तिनिकूँ गावत सुनत अति, नर नारिनिको होइ हित॥

चञ्चल चपल चटोर चोर वे अति ही खोटे।
बरबस खेंचें चीर लगें देखनमें छोटे॥
बाहर भीतर श्याम नयन तिरछे अनियारे।
तीखे बिषतें बुझे बान सम तोऊ प्यारे॥
मनमन्दिरमहँ मोहना, माखनके हित मचलि जा।
अरे, लड़ैते नन्दके, आ जा, मोकूँ पिचलि जा॥

कल्कि बुद्ध बनि ब्यास करहिं जगकारज नटवर ।
माया अपरम्पार त्रिलक्षण अतिही दुस्तर ॥
ब्रह्म, रुद्र अरु देव दैत्यहू पार न पावें ।
वेद भेद बिनु लखें नेति कहिकें समुझावें ॥
तोऊ श्वपच, किरात, शठ, पशु पक्षीहू तरि गये ।
जो सब तजि श्रद्धा सहित, चरन शरन हरिकी भये ॥

सोरठा—हरि अवतार चरित्र, जिही भागवत तत्त्व है ।
है अति परम पवित्र, विधि नारद सन कहत पुनि ॥

छप्पय—बोले ब्रह्मा—वत्स ! बजाओ बीना बरतर ।
भनों भागवत तत्त्व सुनत भवपार होयँ नर ॥
करम बन्धके हेतु किन्तु हरिचरित ललित अति ।
कहत सबनिको होय राधिकापति चरननि रति ॥
सब संसारी सुख लहैं, जग बिषयनितें मन हटै ।
मुक्त मुमुक्षू बद्ध सब, सेवैं भवबन्धन कटै ॥
कहें परीक्षित—"गुरो ! आपु बिस्तार बतावें ।
जाकूँ नारद कह्यो ताहि अब मोहिं सुनावें ॥
बरषा बीते शरद स्वच्छ करि देवै जलकूँ ।
त्यों हरि—लीला, नाम हियेके मेंटै मलकूँ ॥
पीवत पानी पन्थको, निज पुर पहुँचे पान्थ ज्यों ।
हरषित होवै हृदय हरि—भक्त परसि पद शान्त त्यों ॥
ब्रह्मन् ! यह संसार भूमि आकाश नदी नद ।
बन, परबत, ग्रह दिशा, स्वरग, पाताल, कमल हृद ॥
इन सबकी उतपत्ति, प्रलय रक्षा बतलावें ।
धरम काम अरु अरथ मोक्षको मार्ग दिखावें ॥
बरन धरम आश्रम नियम, भगवत चरित सुनाइकें ।
शंका नाथ मिटाइदें, शरनागत अपनाइकें ॥

इति श्रीभागवतचरितके प्रथमाहमें संक्षिप्त अवतारचरित
नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

[१३]

ह्वै प्रसन्न शुक कहें—भूप ! सुनु सुखके मगकूँ ।
माया ब्रह्म प्रकाश पाइ दरसावै जगकूँ ॥
सोचें ब्रह्मा—सृष्टि करूँ कस, नभधुनि आई ।
तपही सबको सार, करो तप भ्रम मिटि जाई ॥
दिव्य सहसवत्सर परम, तप कीन्हों बिधि उग्र अति ।
परमधाम वैकुंठमहँ, लखे मुदित मन रमापति ॥

परम दिव्य वैकुंठ कान्ति ऐश्वर्य अमित जहँ ।
सुखासीन परिवार पारषद सह श्रीहरि तहँ ॥
नारायनकूँ निरखि नीर नयननिमें छायौ ।
पकरि बाँह भगवान् पुत्रकूँ ढिँग बैठायौ ॥
वेदगरभतें विष्णु बर, बोले बचन सुधासने ।
बत्स ! बताओ बात सब, सृष्टि समय क्यों अनमने ॥

बोले ब्रह्मा—विभो ! जीव जग तत्त्व बतावें ।
दिव्य भागवत धरम सार संक्षिप्त सुनावें ॥
हँसि हरि बोले—मोइ कृपा ही तें सब पावें ।
आदि अन्त मैं रहूँ, नेति कहि निगम जनावें ॥
बिना भये दीखै गुही, माया मेरो मानियो ।
अन्वय अरु व्यतिरेकतें, सदा मोइ पहिचानियो ॥

वेदगर्भ ! सुनु सबहिं शास्त्रको सार सुनाऊँ ।
हूँ व्यापक सर्वत्र सर्वदा नहीं लखाऊँ ॥
जाहि जानि जग रचो मोह होवै नहिं कबहूँ ।
दैकें सद् उपदेश भये अन्तरहित हरिहूँ ॥
बीणावादक देवऋषि, सुनी पितातें भागवति ।
तिनि उपदेशे मम जनक, तोहिं सुनाऊँ सो नृपति ॥

जामें सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊती सब ।
मन्वन्तर, ईशानुकथा, सुनु लक्षण नृप ! अब ॥
है निरोध पुनि मुक्ति दशम आश्रय बतलावें ।
दशम तत्त्वकी सिद्धि हेतु नौऊ कहलावें ॥
श्रुतितें अरु बहु अर्थतें, साक्षात कोई कहें ।
जापै हरि किरपा करें, भक्ति अहैतुकि ते लहें ॥

आश्रय सबके वही अखिलपति अलख अगोचर ।
रचनाकूँ विधि बनें भरनकूँ हों विश्वम्भर ॥
सृष्टि समेटें सबहि तबहि हरि शिव कहलावें ।
यों वे व्यापक ब्रह्म विविध विधि रूप बनावें ॥
भौतिक दैविक आतमिक, तीनिहुकूँ नियमन करें ।
बालकवत् क्रीड़ा करें, रचैं ताहि पोसें हरें ॥

कर्यो सृष्टि संकल्प रच्यो जग बसे उदरमहँ ।
इन्द्रिय, मन, तनु-शक्ति रची पुनि प्राण उदित तहँ ॥
भूख प्यास जब लगी कर्ण गोलक सब निकसे ।
अन्तःकरण, प्रकाश, अहं, मन, चित, धी विकसे ॥
कर्ता भोक्ता हरि नहीं, सदा रहैं निरलेप हैं ।
धरें रूप तोऊ विविध, उदासीन रचिकें रहैं ॥

प्रभु विगटतें ओज और सह बल प्रकटे सब ।
पुनि उपजे ये सबहिं विषय इन्द्रिय देवहु तब ॥

तालुमाहिँ नभ देव रसन इन्द्रिय रस चाखै।
मुखमहँ बाचा, अग्निदेव बाणी बहु भाखै॥
घ्राण, चक्षु, श्रोत्रहु, त्वचा, गन्ध, रूप, शब्दहु, परस।
बायु सूर्य्य दिग प्राण सब, क्रमशः देव भये हरष॥
भये हस्त जिनि काज ग्रहण सुरपति देवहु तहँ।
चलिबेकूँ द्वै चरण, विषय गति, विष्णु देव जहँ॥
विषय कामना हेतु उपस्थ प्रजापति जामें।
पायु गुदा मल त्याग देव मित्रहु हैं तामें॥
तनु तजि जावै अन्यमहँ नाभि अपानहु मृत्यु भय।
कुक्षि आंत नस नदी-पति, देव तुष्टि पुष्टी विषय॥
निराकार निरलेप निराश्रय नित्य निरंजन।
माया आश्रय करत होहिं साकार सगुन तन॥
उद्भिज अंडज और जरायुज होंवें स्वेदज।
स्थावर जंगम रूप जीव बनि प्रविशें हरि अज॥
कर्म रहित कर्ता बनहिं; नाम रूप धारन करहिं।
स्वयं वाच्य वाचक नृपति! धरि तनु धरणी दुख हरहिं॥
उल्ला०—विष्णुरात सम्वाद शुक, सुनि शौनक बोले बचन।
हृदय हरष गद्गद गिरा, कृष्ण चरनमहँ फँस्योमन॥
छप्पय—अजी सूतजी! याद बात इक आई अबई।
गये विदुरजी तीर्थ भ्रमण हित तजिकें सबई॥
मुनि मैत्रेय समीप ज्ञान पायौ कहँ उननें।
का का कीन्हें प्रश्न दयौ उत्तर का तिननें॥
संत समागममहँ सदा, कथा कृष्णकी होहि नित।
सूत! सुनाओ सरस सब, शुभ सम्वाद प्रसन्न चित॥

इति श्रीभागवत चरितके प्रथमाहमें सृष्टिउत्पत्ति नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त।

(मासिक पारायण—तृतीय दिवसविश्राम)

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

[१४]

सूत सुने मुनि-बैंन नैंन भरि आये उनके।
बोले गद्गद गिरा प्रश्न सुनिकें निज मनके ॥
शौनकजो ! सर्वज्ञ आपु सब जानें बूझें।
कहाँ करें कस प्रश्न आपुकूँ ततछिन सूझें ॥
अजी यही तो नृपतिने, कर्‌यो प्रश्न शुकदेवतें।
दैं हुँकारी तो कहूँ, बिवश देव ! निज टेवतें ॥

श्रीशुक बोले—भूप ! बिदुरने ये ही बातैं।
मैत्रे मुनितें सुनी कहूँ तिनहींकूँ तातैं ॥
राजा पूछें—प्रभो ! बिदुरजीकी मुनिवरतैं।
भेंट भई कब कहाँ ? गये जब बनकूँ घरतैं ॥
श्रीशुक बोले—का कहूँ ! बिदुरभवन मुनि-मनहरन।
तिहि तजि तीरथकूँ गये, जहँ निवसे राधारमन ॥

राजन् ! बनिकें दूत देवकीनन्दन आये।
कौरव करि सत्कार राजमहलनिमहँ लाये ॥
नाना व्यंजन धरे न तिनिकी ओर निहारे।
करिकें शिष्टाचार बिदुरके भवन सिधारे ॥
पतिनी पगली प्रेमकी, छिलका हरिहिँ जिमा रहीं।
बिदुर मिगी केला दई, खाय कही वो रस नहीं ॥

ता घरमहँ बसि बिदुर बन्धुकूँ सम्मति देवें।
बिदुरनीति बिख्यात जाहि सज्जन सब सेवें॥
पूछी जब धृतराष्ट्र सत्य सम्मति यह दीन्हीं।
राजन्! घोर अनीति बन्धु पुत्रनि सँग कीन्हीं॥
भ्राता! भूलो गई जो, आगेकी सोचो सई।
धर्मराजके राजकूँ, देहु गई सो तो गई॥

जिनके सिरपै श्याम तिनिहिँ फिर कौन अँदेसो।
निश्चय ताकी बिजय जासु रथ हाँकें केशो॥
धर्मनीतितें डरो राज्य यह संग न जावै।
पाप-पुण्य ही जायँ बिपुल धन काम न आवै॥
आये मुट्ठी बाँधिकें, हाथ पसारे जायँगे।
पुण्य करें सुख पायँगे, पाप करें पछितायँगे॥

उल्ला०—बिदुर बचन धृतराष्ट्र सुनि, बोले-भैया! सुत सगे।
त्यागूँ कैसे?' बिदुर तब, मर्म बचन कहिबे लगे॥

छप्पय—राजन्! निकसै मैल देहतें कोइ न राखै।
डींगर तनमहँ होयँ तनय कोई नहिं भाखै॥
बिष्ठा बहु मल मूत्र देह ही तें नित होवें।
तनतें होवें पृथक् परसिकें सब तन धोवें॥
स्वयं तरें तरें कुलहिं, ते सत्पुत्र कहावते।
नहिँ तो मलके कीट सम, ऋषि मुनि तिनहिँ बतावते॥

यह दुरयोधन दुष्ट इष्टकूँ नहिँ पहिचानें।
मधुसूदनकूँ मूर्ख मन्दमति मानुष मानें॥
कपटी कुटिल कुबुद्धि क्रूर कलिकी यह मूरति।
तैसे ई सब सचिव शकुनि दुस्सासन खलमति॥
राजन्! चाहो कुशलता, कुलकी यह कारज करो।
कृष्णार्पण जाकूँ करो, सब जगको संकट हरो॥

सुनत विदुरके वचन दुष्ट दुरयोधन अघमति ।
भौंह चढ़ी म्हौं लाल अधर फरकें कोप्यो अति ॥
तिरस्कार करि कहै—क्रूर कोनें बुलवायो ।
काहे दासीपुत्र राजपरिषदमहँ आयो ॥
कान पकरिकें कुटिलकूँ, करि कारो म्हौं मूड़ि सिर ।
देहु निकासो देशतें, लौटे नहिं यह अधम फिर ॥

भौचक्के-से भये बन्धुकूँ विदुर निहारें ।
करै नीचता नीच न ताकूँ तनिक विचारें ॥
किन्तु अन्धकूँ मौन निरखिकें अति घबराये ।
सोचें-अब तो अन्त दिवस इन सबके आये ॥
बोले—भैया ! स्वयंही, तेरे घरतें जाउँगो ।
अब कब हूँ जा भवनमहँ, म्हौं तोकूँ न दिखाउँगो ॥

परम भागवत विदुर भये बाहर जब पुरतें ।
मानों सद्‌गुण पुण्य सबहिं निकसे वा घरतें ॥
करिवेकूँ व्यापार बनिक धन लैकें धावें ।
त्यों लाये सँग पुण्य, वृद्धि हित तीरथ जावें ॥
सभाद्वारपै धनुष धरि, नगे पाँइनि चलि दिये ।
शत्रु मित्र सम्बन्ध तजि, त्यक्तदंड मानों भये ॥

इति श्रीभागवत चरितके प्रथमाहमें विदुर हस्तिनापुर त्याग नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।

———

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

[१५]

दोहा—सूत कहैं-मुनि ! विदुर तब, सबईतें मुख मोरि ।
तीरथ करिवे चलि दये, हथिनापुरकूँ छोरि ॥

छप्पय—बन उपवन वर पुण्य सरोवर सरिता सुन्दर ।
चिह्नित देखे शंख चक्रतें मनहर मन्दिर ॥
कहूँ कृष्ण धरि विष्णु रूप श्रीरंग बिराजैं ।
विश्वनाथ श्रीशम्भु विविध रूपनिमहँ राजैं ॥
सब तीरथकी सार जो, आये ता व्रज-भूमिमहँ ।
नीलवाल क्रीड़ा करी, माखन खायो चोरि जहँ ॥

देखी रसमय भूमि विदुर हियमहँ हरषाये ।
कृष्ण विरहमें विकल तहाँ श्रीउद्धव आये ॥
पथ भ्रम वश ज्यों भूलि मिलै परकीया उपपति ।
गंगा यमुना सरिस मिले मन मोद भयो अति ॥
उद्धवतें बोले विदुर, कुशल कृष्ण कुलकी कहो ।
कृष्ण विना कस भ्रमत हो, संग सदा तुम तो रहो ॥

धन्य भाग हैं आजु भक्त उद्धव जी भेंटे ।
दर्शन दैकें देव ! दुरित दुख सब ई मेंटे ॥
भयो तिरस्कृत फिरूँ न मनमहँ हर्ष शोक है ।
विषय भोगमहँ फँस्यो बहिर्मुख अज्ञ लोक है ॥
यह हरिकी माया प्रबल, रचै खेल ठगिनी नये ।
जाते ते जगमहँ बचे, जे हरि शरणागत भये ॥

सखे ! कहो अब कुशल कुशलके कारण जे हैं।
शरणागत प्रतिपाल अबनिकें त्राता ते हैं॥
संकर्षण बलरामदेवकी कुशल सुनाओ।
हैं सुखतें वसुदेव सबनिकी बात बताओ॥
उद्धवजी ! प्रद्युम्न अनु-रुद्धादिक जे स्वजन हैं।
ते यदुबंशी कुशल हैं, जे सब हरिकी शरन हैं॥

पांडव प्रभुके भक्त सबनिकी कुशल सुनाओ।
अंध-बन्धु धृतराष्ट्र करें का सब समुझाओ॥
करिकें दर्शन यादि आपुके आये सबई।
इस्मृति पटपै खिँचे चित्र जीवितसे अबई॥
अथवा छोड़ो सबनिकूँ, चर्चा हरि ही की करौ।
तृषित हृदयकी शान्ति हित, कर्णनि हरि गुनतें भरौ॥

सुनि उद्धव हरिनाम देहकी सुधि बिसराई।
नाम धामतें रूप यादि लीला ह्वै आई॥
गद्गद बानी भई रूप सागरमहँ न्हाये।
रोमाञ्चित बपु भयो, अश्रु नयननिमहँ आये॥
भूले या संसारकूँ, नयन मूँदि तन्मय भये।
नित्य धाम बृन्दाबिपिन, ध्यान धरत मनतें गये॥

उद्धव देखे बिकल बिदुर पहिले घबराये।
प्रेम दशा पहिचानि कानमहँ नाम सुनाये॥
देखी दशवीं दशा बहुत मनमहँ हरषावें।
जानि कृतारथ कृष्ण-कृष्ण कहि चेत करावें॥
मङ्गलमय मधुमय मधुर, मनमोहनके नाम सुनि।
शनैः शनैः सम्हले सखा, परत श्रवनमहँ मधुर धुनि॥

बोले उद्धव सम्हरि धरी सिर रज ब्रज-थलकी।
बन्धु बिदुर! अब कहूँ कुशल कैसे यदुकुलकी॥
भाग्यहीन यह लोक अधिक यदुवंशी तामें।
पहिचाने प्रभु नहीं भये परगट कुल जामें॥
अजी, कुशल अब का कहें, यादवेन्द्रके सँग गई।
समृधिशालिनी श्रीसहित, द्वारावति बिधवा भई॥

हाय! कहाँ वो परम सुखद श्रीहरि की झाँकी।
मन्द मन्द मुसकान चित्तहर चितवन बाँकी॥
आँखिनिकूँ वा छ्टापानको चसको लाग्यो।
भये न जौलौं तृप्त, हमें हरि तौलौं त्यागो॥
उठवनि चितवनि कर परसि,हँसनि अंक भरि-भरि मिलनि।
चेष्टा ये सब श्यामकी, परम मधुर बोलनि चलनि॥

कारे-कारे कुटिल केश मलि तेल सम्हारें।
गोरोचनको तिलक मोर मुकुटादिक धारें॥
कंकन कुंडल हार करधनी अंगद नूपुर।
शोभित होवें स्वयं पाइ तनु सुन्दर मनहर॥
निरखहिं निज प्रतिबिम्बकूँ, अपन पपनपौ भूलिकें।
मुख मलूक मनहर स्वयं, चकित होहिं छबि देखिकें॥

देश देशके भूप यज्ञवर राजसूयमहँ।
निरखि मुग्ध सब भये नन्द नन्दनकी छबितहँ॥
घन-चातक, जल मीन शलभ-पावक उपमा सब।
फीकी सबरी भई एकटक लखें रूप जब॥
रचना विषयक चातुरी, बिधिकी सब पूरी भई।
सब थलकी सुषमा सकल, कृष्ण-मूर्तिमहँ धरि दई॥

जिनकी मधुमय हँसनि हृदयमहँ मिश्री घोरति ।
जिहिँ चितवहिँ चितचोर भटू पगली ह्वै डोलति ॥
मुरली अधरनि धरें बजावहिं स्वरतें गावहिं ।
छोड़ि-छोड़ि गृहकाज बिबस ब्रज-बाला धावहिं ॥
लखि मोहनकी माधुरी, चुप होहिँ नहिँ कछु कहति ।
आँखि मीचि थिर चित्त करि, आभीरिनि योगिनि बनति ॥

केशपाश ई पाश पास आवें फँसि जावें ।
भौंह कमान समान नाइ लखि डोरि चढ़ावें ॥
चितवन तिरछी तीर लगे घायल करि जावें ।
नहिं जीवें नहिं मरें अधमरी ह्वै बिललावें ॥
तब गोदीमहँ सिर धर्‌यो, भक्त भुक्तभोगी बिदुर ।
अजी, अबतलक जाँघमें, चिन्ह परम शुभ है मधुर ॥

बिदुर ! अजन्मा होहि जन्म लीयो मनमोहन ।
करुनावश बनि तनय करहिं गैयनिको दोहन ॥
मथुरामहँ लै जन्म भागि गोकुलमहँ आये ।
चोरीके अपराध दामतें श्याम बंधाये ॥
अज अविनाशी गुन रहित, वेद जाहि अच्युत कहहिं ।
डर डरपै जातें सतत, सो डरिकें ब्रजमहँ रहहिं ॥

व्यापक प्रकटै बह्नि काष्ठमहँ मंथन करिकें ।
जलतें हिम ह्वै जाय उछारो करपै धरिकें ॥
इच्छु अमल रस जमें मधुर मिश्री ह्वै जावै ।
माखन पयमहँ व्याप्त मथेतें सो बिलगावै ॥
सुखद मनोहर मधुर रस, घनीभूत नर तनु भयो ।
नेत्रनिकूँ ललचायकें, अन्तरहित अब ह्वै गयो ॥

जैसी पूजा करे देव तैसो फल देवें।
वैसो वेतन मिलहिं भूपकूँ जिहि विधि सेवें॥
किन्तु कृष्णकी बानि सबनितें परम निराली।
भाव कुभावहु आइ द्वारतें जाय न खाली॥
बालघातिनी पूतना, रक्तपान राक्षसि करहि।
दई दयावश मातुगति, तिहि बिनु को भवदुख हरहि॥

नाम जाति कुल कर्म भाव सम्बन्ध न पेखें।
कहहु जीव अल्पज्ञ अलखकूँ कैसे देखें॥
कैसे हूँ आ जाय ताहि श्रीहरि अपनावें।
दुर्जनता दुख मेंटि परम निज धाम पठावें॥
पापी, द्वेषी, गुनरहित, नित निन्दें नित अघ करें।
तामस, क्रूर, पिशाच खल, देखि मरें तेहू तरें॥

श्रीवृन्दाबन परम रम्य कालिन्दी कुंजनि।
नित बसंत जहँ बसै मधुर स्वर मधुकर गुंजनि॥
गावें रोवें हँसें तहाँ नर नाट्य दिखावें।
स्वरमय वेनु बजाय ग्वाल सँग गाय चरावें॥
मामाजी सौगातमहँ, भेजे भीषन असुर गन।
खेले तिनितें बालवत, मारि दई चरननि शरन॥

नाथ्यो कालिय नाग नीर—हृद निर्मल कीन्हों।
इन्द्रयागको भाग राज गिरवरकूँ दीन्हों॥
कर्‌यो कोप सुरराज प्रलयको जल बरसायौ।
ब्रजबासिनि करि अभय शैल कर कमल उठायौ॥
ग्वाल बाल गोपी गऊ, सब जलतें निर्भय भये।
रस बरसायौ रासमहँ, हरि अन्तरहित है गये॥

वृन्दाबनमहँ प्रकट चरित अनुपम दरसाये ।
मथुराजीतें गये फेरि मथुरामहँ आये ॥
मामाको आतिथ्य ग्रहण करि हरषि पधारे ।
गज मुष्टिक चाणूर दुष्ट सब पकरि पछारे ॥
सब असुरनिके मुकुटमनि, कुलकलंक वा कंसकूँ ।
मारि घसीट्यो गलिनिमहँ, अभय कर्यो यदुवंशकूँ ॥

बिदुर ! कृपावश कृष्ण करें क्रीड़ा जो जगमहँ ।
जहँ जहँ सुमिरहिं भक्त, होयँ परकट प्रभु तहँ तहँ ॥
कहूँ पुत्र बनि प्रेम सहित पितु पगकूँ पूजें ।
कहूँ धारिकें अस्त्र शस्त्र लै रनमहँ जूझें ॥
जाकी बानी वेद हैं, सबहिँ शास्त्र उच्छ्वास हैं ।
जाँहिँ पढ़न चटसार ते, सब उनिके परिहास हैं ॥

मथुराहूँतें भगे डरे द्वारावति आये ।
करै न कोई ब्याह दाव अरु पेच भिड़ाये ॥
कर्यो राकछस ब्याह छीनिकें कन्या लीन्हीं ।
रुक्मी क्रोधित भयौ दुरदशा ताकी कीन्हीं ॥
बाणासुर, शम्बर, द्विविद, दंतबक्त्र, वल्वल असुर ।
मरवाये मारे कछू, हर्यो भार भू सुरेश्वर ॥

हरि सोचें—भू भार न उतर्यो सबरो अबई ।
यदुकुलको संहार होइ उतरैगो तबई ॥
बहुत बढ़्यो यदुबंश अंश मेरे हैं सब ये ।
मदमाते ह्वै लड़ँ परस्पर नशिहैं तब ये ॥
प्रेम प्रदर्शित कर्यो बहु, पुनि मरवाये बन्धु सब ।
भार उतार्यो अवनिको, गवने हरि गोलोक तब ॥

जाते जब जे श्याम करावें जहँ जो जैसे ।
सो तब तुरतहि तहाँ करै प्रेरित है तैसे ॥
यदुकुलको संहार करन चितमहँ जब आयौ ।
तबई तपतें पूत मुनिनितें शाप दिवायौ ॥
ज्यों बाजीगर बानरहिँ, नाच नचावै जब जसहिं ।
त्यों इं ईश अधीन है, जीव नचै यह स्ववश नहिं ।

द्वारावतिमहँ कृष्ण दरश हित मुनिगन आये ।
कर्यो हास परिहास कुमारनि बहुत खिजाये ॥
कुपित तपोधन भये शाप कुलभरिकूँ दीन्हों ।
सुन्यो श्याम जब शाप समर्थन हँसिकें कीन्हों ॥
सब मिलि गये प्रभासमहँ, भयौ परस्पर युद्ध अति ।
वंश अग्नि-कलितें जरे, हरिप्रेरित अस भई मति ॥

मोतें हरिने कही—जाहु बदरीबन ऊधो ।
किन्तु दैवगति समुझि चल्यो हरि पीछे सूधो ॥
यदुकुलको संहार कर्यो हरि पीपर तरुतर ।
बैठे, हौं ढिँग गयो बिहँसि बोले श्रीयदुवर ॥
भले मिले उद्धव सखे! आये तुम हो बिमलमति ।
कहूँ भागवत सरस अति, सुनें पढ़ें होवै सुगति ॥

भूखेकूँ ज्यों खीरि पिपासितकूँ ज्यों पानी ।
त्यों अतिशय प्रिय लगी मधुर श्रीहरिकी बानी ॥
बिनय करी—हे प्रभो! भक्तिको तत्व बतावें ।
शुद्ध भागवत ज्ञान दान करि दुःख मिटावें ॥
कमलनयन बिनती सुनी, परमतत्व मोतें कह्यो ।
आयसु सिर धरि बन्दि पग, बदरीबनकूँ चलि दयो ॥

सूधो आयौ यहाँ आपुने दरशन दीन्हों।
शोक मोह संताप आपुने सब हरि लीन्हों॥
विदुर कहें—हे सखे! कृपा हमहूँपै कीजे।
हरितें पायौ ज्ञान ताहि हमहूँकूँ दीजे॥
उद्धव बोले—विदुरजी! बड़भागी हैं आपु अति।
जिनकूँ हरि सुमिरन करें, अन्त समयमहँ अखिलपति॥

मुनि मैत्रेय समीप कही हरिने यह बानी।
मोर भक्त है विदुर परमप्रिय अतिशय ज्ञानी॥
तिनिकूँ मेरो ज्ञान अवसि मुनिवर! उपदेसें।
जिनकूँ सुमिरें श्याम सराहें तिनकूँ कैसें॥
आपु पधारें गङ्ग तट, हौं बदरीवन जाइकें।
हरि आराधन करौं तहँ, कंद मूल फल खाइकें॥

कीन्हीं हरिने सुरति दीनकी अन्त समयमहँ।
विदुर भये अति विकल गिरे मूर्छित ह्वैकें तहँ॥
करिकें दण्ड प्रणाम चले उद्धव बदरीवन।
विदुर भये यों दुखित कृपनको ज्यों खोयो धन॥
कृष्ण-कथा सबरी सुनी, संसकार पिछले जगे।
सुमिरि सुमिरि लीला ललित, ढाह मारि रोवन लगे॥

विदुर संग नहिं गये चेतना उद्धव सँगई।
गई, चेतना शून्य भये ब्याकुल वे तबई॥
धर्‌यो धीर पुनि उठे शून्य सब देइ दिखाई।
पुनि कृपालुकी कृपा यादि तबई है आई॥
मुनि मैत्रेय समीप वे, तुरत तहाँतें चलि दये।
सुरसरि-तटको बाट गहि, हरिद्वार पहुँचत भये॥

इति श्रीभागवतचरितके प्रथमाहमें बिदुर उद्धव सम्बाद नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त

अथ षोडशोऽध्यायः

[१६]

पिता गोदतें जहाँ अवनिपै आइं गङ्गा।
हर-हर गायन करति तालदें तरल तरंगा ॥
कुशावर्त अति बिमल द्वार-गंगा मायापुर।
सप्त स्रोततें बहें देवसरि अति उमगै उर ॥
बास करें तहँ भक्तवर, मुनि मैत्रेय कृपायतन।
भये बिदुर संतुष्ट अति, सुठि स्वभाव लखि मुदित मन ॥

देखे मुनि आसीन प्रेममहँ तन्मय बिह्वल।
परम शान्त गम्भीर निरामय निरमल निश्चल ॥
करिकें दरशन शोक मोह सब भय भ्रम भागे।
जाइ दंड वत परे अवनिपै मुनिके आगे ॥
करत दंडवत बिदुरकूँ, लखि मुनिवर ठाढ़े भये।
बरबस तुरत उठाइकें, निज हियमें चिपटा लये ॥

विधिवत करि आतिथ्य कुशल पूछी सबकी मुनि।
कछु करिकें बिश्राम चलाई बात बिदुर पुनि ॥
हँसि बोले मुनि—बिदुर! यादि हरि तुमरी कीन्हीं।
करूँ तुम्हें उपदेश मोइ यह आयसु दीन्हीं ॥
पूछो जो शंका तुमहिँ, सब संशय अबही हरहुँ।
जो उपदेस्यो मोहिँ हरि, समाधान तातें करहुँ ॥

तब बोले श्रीबिदुर—बिभो! इक बात बतावें।
काहे ये सब जीव करम करि दुख ही पावें ॥

दुख निवृत्ति सुख हेतु करहिं शुभ अशुभ करम नर।
किन्तु न दोऊ होयँ क्लेश ही पाहिं निरन्तर॥
नर सुरतरु तर ज्यों मुदित, संत दरश त्यों सुख लहैं।
साधहिं पर-कारज सतत, संत देह धरि दुख सहैं॥

विभो! विशुद्ध चरित्र श्यामके मोइ सुनावें।
पावें शाश्वत शान्ति सुगम-सी गैल बतावें॥
धर्म काम अरु अर्थ पिता सन सब सुनि जाने।
तृप्ति न तिनितें भई क्षुद्र कैतवयुत माने॥
कृष्ण कथाकी लगन ई, बिषय बिरक्त बनावती।
मनमहँ मोद बढ़ावती, सबरे दुःख मिटावती॥

नित भारू जहँ लगै न कूरो करकट होवै।
त्यों मनके सब मैल कथा-जल तिनिकूँ धोवै॥
सुनिकें सिंह दहाड़ शशक गीदड़ भगि जावें।
कामादिक सब भगें कथातें हिय हरि आवें॥
शोचनीय ते पुरुष अति, हरि चरचातें जे बिमुख।
कथा—श्रवन कीर्तन बिना, जीव लहहिं नहिं शान्ति सुख॥

सुनी बिदुरकी बात बहुत मुनि हियमहँ हरषे।
रोमांचित तनु भयो नयन बरषा सम बरषे॥
बिदुर धन्य तुम धन्य धरम हो नर तनुधारी।
पावन कुरुकुल कर्यो व्याससुत दृढ़व्रतधारी॥
पर उपकार विचारि हिय, प्रश्न कर्यो पावन परम।
ज्यों हरि सिखयो त्यों कहहुँ, प.मधरमको सुनु मरम॥

खोजें जे सुख बिषय बासनामहँ ते जड़—मति।
जगके चंचल बिषय भोगतें रोग बढ़हिँ अति॥
सूआ सेमरि सेइ अंतमहँ सो पछितावै।
रोपै बृक्ष बबूर आम फल कैसे खावै॥

दुःख नाश सुख जे चहहिं, विषवत विषयनिकूँ तजहिं।
है अनन्य अखिलेशकूँ, सर्वभावतें नित भजहिं॥

नटनागर की नाट्य भूमि जा जगकूँ जानों।
जहाँ दृष्टि मन जाहि ताहि सब माया मानों॥
लीलातें गुण कर्म गहें पुनि विहरें तामें।
लीला ललित ललाम करहिं बहु तनु धरि जामें॥
बालकवत् क्रीड़ा करहिँ, हरष, शोक इच्छा रहित।
कटहिँ तुरत बन्धन जगत, सुनहिँ चरित श्रद्धा सहित॥
अन्तःकरण समेत बाह्य करणादिक सबई।
विषयनितें उपराम होइ दुख कटिहैं तबई॥
माया, मिथ्या--ज्ञान अविद्या—भ्रम भगि जावें।
होवै ज्ञान यथार्थ प्रतिष्ठा निज पद पावें॥
मायापति मैत्री करहु, माया चरचा त्यागिकें।
चवर—चवर दुलहिनि करै, पति लखि जावै भागिकें॥
कहें बिदुर—हे प्रभो! सृष्टिको सार बतावें।
नाना रूप बनाय विश्वपति काहि लुभावें॥
हँसि बोले मुनि–विदुर! धन्य कुरुकुलके भूषन।
कहूँ भागवत सुनत दूर होवें दुख दूषन॥
संकरषन भगवानने, सनकादिक मुनि सन कही।
तिनितें सांख्यायन सुनी, पूज्य पराशर पुनि लही॥
मैंहूँ चाहूँ किन्तु भागवत तत्व लहूँ कस।
श्रद्धा संयम रहित जाइ गुरु निकट कहूँ कस॥
मुनि पुलस्त्यने कही—चलो हम तुम्हें दिवावें।
शक्ति—पुत्र मम मित्र प्रेमतें तुम्हें सिखावें॥
करी कृपा गुरुदेवने, गुह्य ज्ञान मोकूँ दयौ।
तात तुरत तिहि तुम गहौ, हरिहू ने जो पुनि कह्यौ॥

अच्छा, अब उत्पत्ति सृष्टिकी तुमहिँ सुनाऊँ ।
ज्यों हरि माया संग रचें सब क्रम बतलाऊँ ॥
नाभिकमलतें ब्रह्म भये जल ई जल पेखें ।
ऊपर नीचे निरखि जनक हरिकूँ नहिं देखें ॥
बिफल मनोरथ जब भये, योग ध्यानमहँ लगि गये ।
योग-भाव भावित हृदय, महँ दरशन हरिके भये ॥
इस्तुत विधिनें करी ईश हँसि आयसु दीन्हीं ।
सृष्टि पूर्ववत रचौ सुनत दश बिधि की कीन्हीं ॥
अत्रि, अंगिरा, पुलह, दच्च, भृगु, श्रीनारद मुनि ।
रचे बसिष्ठ मरीचि और क्रतु मुनि पुलस्त्य पुनि ॥
इनि मानस सब सुतनितें, बृद्धि सृष्टिकी नहिं भई ।
चिंतित चतुरानन भये, युक्ति विचारी पुनि नई ॥
सृष्टि करनकूँ कहें जिनहिँ तें ते खिसिआवें ।
बेमनतें कछु करें, कछू बहु बात बनावें ॥
बिधि हरिको करि ध्यान देहतें नारि बनाई ।
आधेतें नर भये नारि लखि बुद्धि लुभाई ॥
हक्के बक्के सब भये, सृष्टि करन इच्छा भई ।
मृगनयनी मनहरमुखी, शतरूपा मनुकूँ दई ॥
बिधि सामग्री सुखद सृष्टिकी लखि हरषाये ।
उदासीन जे पूर्व निरखि तेऊ ललचाये ॥
बोले ब्रह्मा—वत्स ! ब्याह हम सबको करि हैं ।
कुंजी अब तो मिली सृष्टि करि जगकूँ भरि हैं ॥
नारद बोले—पिताजी ! श्रीहरिके गुन गाउँगो ।
कारेसिरकीके नहीं, हौं चक्करमहँ आउँगो ॥

इति श्रीभागवतचरितके प्रथमाहमें सृष्टिवर्णन नामक
सोलहवाँ अध्याय समाप्त
(मासिक पारायण चतुर्थ दिवस विश्राम)

अथ सप्तदशोऽध्यायः

[१७]

सुन्दर दुलहिनि पाइ कहें मनु पितु सन बानी।
करहुँ कहा अब काज रचहुँ कहँ निज रजधानी॥
बिधि हँसि बोले-अनघ ! सृष्टिको चक्र चलाओ।
पुत्र, पौत्र परपौत्र रचौ, बहु बंश बढ़ाओ॥
पयमहँ पृथिवी परी प्रभु, ताकूँ बाहर करहिं अब।
बसहिं जीव सुख लहहिं सब, होहि मही उद्धार जब॥
सुनिकें मनुके बचन ध्यान चतुरानन कीन्हों।
पृथिवी तो पाताल गई विधिने सब चीन्हों॥
अति ही चिंतित भये करूँ का अब हौं भाई।
सृष्टि चक्र तब चलै करें जब श्याम सहाई॥
हम तो उनके यन्त्र हैं, वेही कारण काम हैं।
अपनेतें होवै न कछु, करनहार घनश्याम हैं॥
ध्यान करत बिधि युगल नयन सरसिज सम बिकसे।
हरि शिशु सूकर वेष धर्यो नासातें निकसे॥
लघु अंगुष्ठ समान यज्ञ तनु वेद बखानें।
केवल किरपा प्राप्त मनस्वी जिनिकूँ मानें॥
अति अद्भुत तनु निरखिकें, बिधि बिस्मितवत् ह्वै गये।
तब तक सूकर रूप हरि, हस्ती सम नभमहँ भये॥
तुरत शिला सम बढ़े पर्बताकार भये पुनि।
कान्ति तेज ऐश्वर्य निरखि निर्वाक् भये मुनि॥
बिधि सोचें—ये यज्ञपुरुष मन मेरो मोहें।
रूप अनूप बनाय अधर नभमहँ अति सोहें॥
सूकर हरि पयमहँ घुसे, लाये पृथिवी दाढ़ धरि।
हिरण्याक्ष मार्यो असुर, धरी धरा जलके उपरि॥

सुनी विदुर हरि कथा सुखद संक्षिप्त सरस अति ।
तृप्ति न मनमहँ भई कथा कीर्तनमहँ दृढ़मति ।।
बोले—मुनि ! बाराह चरित का पूर्ण भयो है ।
नहिँ सुनिकें सन्देह हमारो नाथ गयो है ।।
हिरण्याक्ष काको तनय, कहाँ भेंट हरितैं भई ।
युद्ध भयो कस कहाँपै, कस पाताल मही गई ।।

कृष्णकथा रुचि होहि सफल जीवन है जबई
सुनें सुयश सब समय श्रवन सार्थक हैं तबई ।।
सोवें खावें करें पुत्र पैदा पशु पच्छी ।
नर तनु यही विशेष लगें हरि लीला अच्छी ।।
संत सरल चित-जगत् जन, चरण गहत सब सुख लहहिं ।
यदपि भक्त नहिँ हौं तदपि, कथा कृपा करिकें कहहिं ।।

बोले मुनि मैत्रेय—विदुर ! विस्तार बताऊँ ।
जस विधि सन इतिहास सुन्यों तस तोहिं सुनाऊँ ।।
इक दिन सन्ध्या समय दक्ष दुहिता दिति देवीं ।
ह्वैकें कामातुरा गईं, जहँ पति हरिसेवी ।।
कजरारे नैंनानितैं, घूँघट महँ तें चोट करि ।
चाहति पतितैं रति तुरत, शील त्यागि पटुका पकरि ।।

साम दाम अरु भेद दंडतें मुनि समुझावहिं ।
असमयमहँ यह कार्य निन्द्य पुनि पुनि बतलावहिं ।।
भीषण वेला कह्यो रुद्रको भय दिखलायो ।
किन्तु काम बस भई धर्म मत मन नहिं भायो ।।
कामातुर नर नारि ह्वै, सत्य, शील, संयम तजहिं ।
विनय विवेक विसारिकें, विषय वासना ही भजहिं ।।

हाथी वशमहँ करें सिंहकूँ पकरि पछारें।
परबत डारें तोरि सिन्धुतें रतन निकारें॥
जायँ रसातल फोरि गगनमहँ अधर उड़ावहिं।
विष हालाहल तीक्ष्ण खाहिँ पुनि ताहि पचावहिं॥
कबहुँ न पग पीछे धर्यो, सदा समर विजयी भये।
किन्तु कामके कुसुन सर, लगत तुरत ते गिरि गये॥

अहंकार अविवेक कामकूँ तुरत बुलावें।
नर नारिनि संमोह मान मद खींचि गिरावें॥
विद्या, जप, तप, शास्त्र, मौन, व्रत सबहिं भुलावैं।
रहें न विरति विवेक कुसुम सर हिय धँसि जावैं॥
कृष्णकथा कीर्तन सतत, होय काम आवै न तहँ।
जिनको मन मन्मथ मथ्यो, ते पुनि पावें शान्ति कहँ॥

कश्यप दितिकूँ ऊँच नीच सब विधि समुझायो।
किन्तु कामवश भई धर्म मत मन नहि भायो॥
होनहार अति प्रबल प्रजापति मनमहँ मानी।
विधिको यही विधान अवश्यम्भावी जानो॥
नारि विरोध अनिष्ट अति, तासु व्यथा मुनिने हरी।
करिकें गर्भाधान तब, दिति इच्छा पूरी करी॥

होत कामके शान्त भई दिति लज्जित भारी।
बोली गद्‌गद गिरा छिमहु प्रभु चूक हमारी॥
मुनि बोले—तव पुत्र होहिँगे पापी कामी।
बली साहसी बड़े हनहिँ तिनि अन्तरयामी॥
किन्तु पौत्र हरि भक्त है, यश जगमहँ फैलायगो।
वाके भक्ति प्रभावतें, कुल समस्त तरि जायगो॥

इति श्रीभागवत चरित के प्रथमाहमें दिति गर्भ स्थापन नामक
सत्रहवाँ अध्याय समाप्त

अथ अष्टादशोऽध्यायः

[१८]

सुने पुत्र अति क्रूर अधम सबकूँ संहारें।
शंकित ह्वै शत बरष रही गर्भहिं दिति धारें ।।
उग्र तेजतें भये हीन सूरज शशि जबई।
ब्रह्मलोककूँ गये देवता मिलिकें सबई ।।
इन्द्रादिक बोले—प्रभो ! ओज तेज सबको गयो।
दशहुँ दिशिनिमहँ दयामय ! अन्धकार काको भयो ।।

आपु कालके काल जगत्पति अन्तरयामी।
भूत-भविष्यत-वर्तमान सबईके स्वामी ।।
हस्तामलक समान विषय सब विदित जगतके।
करहिं कर्म नित सोहिँ होयँ जो जगके हितके ।।
देव, दैत्य, दानव, असुर, को प्रबिस्यो दिति उदरमहँ।
तेजहीन सबई करे, व्यथित भये अब रहहिँ कहँ ।।

हँसिकें ब्रह्मा कहें—विष्णु-पार्षद ये आये।
सनकादिक ह्वै कुपित शाप दै भूमि गिराये ।।
बोले विस्मित देव—विभो ! सब बात बताओ।
माया रहित कुमार दयो कस शाप सुनाओ ।।
ब्रह्मा बोले—मम तनय, हरि लीलामहँ नित निरत।
हरि दरशनकूँ गये मिलि, विष्णु-लोक घूमत फिरत ।।

दिव्य धाम बैकुंठ बसें हरि शुद्ध सत्वमय।
जहाँ न ईर्ष्या द्वेष दम्भ छल कपट कष्ट भय॥
नैःश्रेयस बन जहाँ दिव्य पादप सुखकारी।
सब ऋतु है साकार रहें अतिशय प्रियकारी॥
कमल कुमुदिनी सोहिं सर, लता माधवी मधुमई।
मधुप गुञ्जि गावें जहाँ, कृष्ण कथा नितई नई॥

कमला तुलसी हिलीं मिलीं निज नाथ रिझावें।
हृदय कंठमहँ लिपटि प्रेम परिरंभन पावें॥
तजि लक्ष्मी चांचल्य गहें कर कमल घुमावें।
मानो मनिमय भवन माँहि मार्जनी लगावें॥
कथा कीरतनतें विमुख, तिनको नर तनु ही वृथा।
ते नहिं निरखें नाकपुर, हरिपुरकी पुनि का कथा॥

श्रद्धा संयम सहित सुयश हरि सुनें सुनावें।
प्रेम पुलक तनु होहि गिरैं हँसि रोवें गावें॥
तुलसी पूजन करें भागवत भगवत मानें।
परधन लोष्ठ समान मातु सम परतिय जानें॥
त्रिभुवनकी सम्पति मिलै, तऊ न जावै विषय मन।
स्वाँस-स्वाँस पै हरि रटें, ते निरखें बैकुंठ जन॥

चित्र विचित्र विमान विभूषित परम दिव्य जहँ।
सनकादिक मुनि मुदित योग बलतें पहुँचें तहँ॥
चित्त न चंचल भयो निरखि शोभा उपवन की।
मनमहँ अतिई उग्र लालसा हरि दरशनकी॥
महल मनोहर मनि जटित, श्रीहरिके देखत भये।
द्वारपालके बिनु कहें, नंग धड़ंगे घुसि गये॥

छै ड्योढ़िनिकूँ लाँघि, सातवीँ पै पहुँचे सब।
दौवारिक द्वै कुपित लखे कर बेत्र लिये तब ।।
ज्योंई भीतर घुसे तुरत तिननें ते टोके।
मुनि बोले करि क्रोध—क्रूर ! कस हम सब रोके ।।
भू पै जनमो दैत्य है, फिर ऐसो न करो कहीं।
सुन्यो शाप पग परि कहैं, होवें हरि बिसरें नहीं ।।

दयासिन्धुने सुनी ब्रह्म मानससुत आये।
अपमानित है शाप दयो सुनिकें घबराये ।।
नंगे चरननि चले चरनदासी हूँ त्यागीं।
छत्र चँवर लै भृत्य भगे कमला सँग लागीं ।।
जिन चरननिको चाहमहँ, चारिहुँ चंचल चित भये।
मुनि ध्यावें हियमहँ जिन्हें, करि नंगे तिनकूँ गये ।।

गरुड़ कन्ध कर धरें कोटि मनमथ मन मोहें।
पद्मा पद्म घुमाय संग विद्युत् सम सोहें ।।
अस्त व्यस्त पग परें अनुग्रह हित अति आतुर।
प्रेम स्रोत बहि चल्यो हियो करुणातें कातर ।।
नयननिमहँ संजीवनी, अंजन रंजन सो करत।
सम्मुख निरखे मुनिनि हरि, शशि सम तम हियको हरत ।।

लखिकें रूप अनूप मुनिनिके भव भय भागे।
चरण कमलमहँ परे बिकल है रोवन लागे ।।
क्षमा प्रार्थना करी कह्यो सब दोष हमारो।
किन्तु कृपानिधि कहैं—कियो अपराध तिहारो ।।
कर्यो मलिन जय विजय ने, मुनिगन ! मेरो अमल यश।
अज्ञ न जानें मर्म मम, पराधीन हौं भक्तवश ।।

मेरी बानी वेद ताहि जो तप करि धारें।
अति चंचल जो चित्त योग करि ताकूँ मारें॥
पूजनीय ते विप्र तृप्ति करि तिन्हें जिमावें।
परम धाम वैकुंठ सुकृति ते निश्चय पावें॥

भुज उठाय करि शपथ हौं, सत्य सत्य बानी कहहुँ।
सबहिं सहन तो करहुँ परि, विप्र निरादर नहिँ सहहुँ॥

सनकादिक पुनि कहें—प्रभो! हम दास तिहारे।
दया दीन जन जानि करी नहिं दोष विचारे॥
आपु न ऐसो कहहिं विप्रकूँ फिर को मानें।
जगमहँ विप्र न रहहिं धर्मकूँ फिर को जानें॥

वेद धमके मूल हैं, विप्र तिनहिं धारन करहिं।
हानि होहि जब धर्मकी, तब तनु धरि प्रभु भय हरहिं॥

काम अनुज बस भये शाप हम दयो भूलतें।
अहंकार अब नाथ! हमारो नस्यो मूलतें॥
हरि हँसि बोले—नहीं विप्रवर! दुख मत मानो।
शाप अनुग्रह माहिँ सदा मम इच्छा जानो॥

तुष्टि भई हरि दरसतें, बचन सुनत निरभय भये।
चरण कमल सिर धूरि धरि, सनकादिक मुनि चलि दये॥

इति श्रीभागवत चरितके प्रथमाहमें जय विजय शाप नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त

(पाक्षिक पाठ द्वितीय दिवस विश्राम)

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

[१९]

जो जगकी उत्पत्ति प्रलय पालनके स्वामी ।
अच्युत अखिल अनादि अखंडित अन्तरयामी ॥
जिनकी माया कठिन पार पंडित नहिँ पावहिं ।
बेद दाममहँ बँधे जगतकूँ नाच नचावहिं ॥
जगकूँ जिनने रच्यो है, जो जाको पालन करहिं ।
जीव करें फल होहि का, श्रीहरि ही संकट हरहिं ॥

नर तनुको फल जिही विष्णु शरणागत होनों ।
विषय वासना माँहि व्यर्थ जीवन नहिँ खोनों ॥
स्वेच्छातें को रोग शोककूँ पुरुष बुलावे ।
बिनु प्रयत्न आ जाहिं सुक्ख त्यों ही आजावे ॥
कृपा प्रतीक्षा नित करहु, दुःख दयामय हरिङ्गे ।
मानि वचन बिधि चले सुर, प्रभु सब मंगल करिङ्गे ॥

दिति देवी इत डरी करहि नहिँ प्रसव सुतनिकूँ ।
कश्यप आयसु दई निकारो अब दैत्यनिकूँ ॥
पति आज्ञा सिर धारि यमज सुत जनमे दुरधर ।
स्वर्ग भूमि नभ माँहिँ भये उतपात भयंकर ॥
ब्रह्माजी पंडित बने, नामकरण तिनिको कर्यो ।
हिरनकशिपु बड़् नाम धरि, हिरण्याक्ष लघुको धर्यो ॥

दिति देवीके पूत भूत सम पल पल बाढ़े।
सिरतें छूयें स्वर्ग होहिं जब दोऊ ठाढ़े॥
सब डरिकें भगि जायँ दूरितें दैत्यनि देखें।
तेजहीन है जायँ जिनहिँ स्वाभाविक पेखें॥
करहिं उपद्रव नित नये, तीन लोक वशमहँ करे।
कबहुँ न कोई कछु कहें, दुबके देव रहें डरे॥

हिरनकशिपुने जगत कर्यो बश विधिके बरतें।
हिरण्याक्ष लै गदा विजयकूँ निकस्यो घरतें॥
स्वर्गलोकमहँ गयो भयो कोलाहल अतिशय।
इत उत सुर सब भगे छिपे सबकूँ भारी भय॥
सुरनि नपुंसक समुझि खल, दैत्य हँस्यो गरजन करी।
घूमि घामिकें चलि दयो, देव विपति सिरतें टरी॥

स्वर्गलोकतें निकसि दैत्य जलनिधि ढिँग आयो।
सुनि गर्जन गम्भीर समुझि ललकार रिसायो॥
गदा वेगतें तरल तरङ्गनि तोरत फोरत।
बरुणलोकमहँ गयो मत्त मद मूँछ मरोरत॥
अद्‌भुत जान्यो जन्तु जिहि, जलचर जीव भगे डरे।
किन्तु बरुणजी असुर लखि, सिंहासनतें नहिं टरे॥

पहुँचि कर्यो उपहास बिहँसि खल बचन उचार्यो।
लोकपाल डंडौत लट्ठ सिरपै जनु मार्यो॥
बरुण देवने कही—असुरपति! इत कित आये।
कैसे किरपा करी कहो कस भूप रिसाये॥
को करिके अपकार तुव, रहे जगतमें कुशल बसि।
बचन सरल मधुमय सुने, असुर अकड़ि बोल्यो बिहँसि॥

लोकपाल हैं आपु जगतमहँ यश बहु छायौ।
शौर्य वीर्य बल कीर्ति सुनी तुम्हरे ढिँग आयौ॥
द्वै—द्वै होवें हाथ गदा मेरी सहि लीजै।
गदायुद्ध वा द्वन्दयुद्धकी भिक्षा दीजै॥
बरुण हँसे बोले—असुर! ते दिन तो अब लदि गये।
लक्ष्मीपति तोतें लड़हिँ, अब हम तो बूढ़े भये॥

को लक्ष्मीपति कहाँ रहे कैसे वो पावे।
किहि विधि वो बल बीर समरमहँ सम्मुख आवे॥
असुर सुनत रिस भर्यो चल्यो श्रीहरिकूँ खोजत।
सम्मुख नारद लखे सुघड़ बीना कर शोभित॥
बर बीणाके सुरनिपै, गुन गावत गोविन्दके।
मत्त मधुप मकरन्दके, श्रीहरि पद अरविन्दके॥

हिरण्याक्ष मुनि लखे मन्द हँसि कीन्हों आदर।
दैत्यराज कहँ चले कहें नारद मुनि सादर॥
बोल्यो—मुनि! मम हाथ खुजावहिं युद्ध दिवाओ।
कैसेहूँ मुनिनाथ! विष्णुतें मोहिं मिलाओ॥
मुनि बोले—पातालमहँ, हरि बराह बपु धारिकैं।
बिचरहिं नाशहिं गरबकूँ, असुर! तोहि वे मारिकैं॥

बिष्णु वीर्य बल सुनत चल्यो निज गदा घुमावत।
श्रीबराह भू लिये लखे सम्मुख ही आवत॥
बोल्यो—सूअरशूर! कहाँकूँ भाग्यो जावे।
पूँछ दबाये भजत लाज तोकूँ नहिँ आवे॥
बिकट असुरको रूप लखि, पृथिवी देवी डरि गई।
तातें सो हरिने तुरत, जलके ऊपर धरि दई॥



पृथ्वी उद्धार पृ० ८२



शिव पार्वती पृ० ११६

धम्म धरा धरि दई उलटिके असुर निहारो ।
बोले—आओ असुर ! करूँ सत्कार तिहारो ॥
दाँत पीसि खल कहे—बके का सूअर ! आजा ।
मोकूँ जाने नहीं तीनि लोकनिको राजा ॥
हरि बोले—बक-बक न करि, बीर न बात बनावते ।
नहिं वे डींग बघारते, रण-कौशल दिखलावते ॥

असुर सुने हरि बैन क्रोध रग-रगमहँ छायो ।
किटकिटायकें दाँत गदा लै आगे आयो ॥
लपकि दुष्टने गदा हृदयमहँ हरिके मारी ।
करी व्यर्थ पुनि झपटि चोट करि फिरे मुरारी ॥
गदा गदामहँ लगहिं परि, दोउनिके बल नहिँ घटहिं ।
चटचटायँ धम धम बजहिं, चिनगारी चहुँदिशि उठहिं ॥

इततें मारै दैत्य देवपति उततें मारहिँ ।
छिन-छिन करहिँ प्रहार किन्तु दोऊ नहिँ हारहिँ ॥
असुर गदातें विष्णु गदा गिरि गई महीमहँ ।
चतुरानन अति डरे विष्णुतें विनय करी तहँ ॥
मङ्गलमय है शुभ घरी, अभिजितको शुभ योग है ।
अबई मारें जाइ हरि, जिहि सब जगको रोग है ॥

विधिके भोरे बैन सुने हरि अति हरषाये ।
चक्र तानि बाराह दैत्यकूँ मारन धाये ॥
मायावी खल कपट कर्यो हरिपै पुनि झपट्यो ।
ओठ काटि करि क्रोध विष्णुके तनुतें लिपट्यो ॥
निकसे वाकी भुजनितें, एक तमाचा जड़ि दयो ।
धम्म धड़ाको सो भयो, कटे वृक्ष सम गिरि गयो ॥

योग समाधि लगाइ जिनहिँ योगी जन ध्यावहिँ ।
नेति-नेति नित कहैं वेदहू पार न पावहिँ ॥
अन्तकालमहँ अस नाम लै नर तरि जावहिँ ।
चौरासीतैं छूटि जगतमहँ फिरि नहिँ आवहिँ ॥
बड़भागी दितिसुत असुर, हरि निरखत निज तनु तज्यो ।
प्रभु प्रहारतैं ई मर्‌यो, शत्रु भावतैं हरि भज्यो ॥

इति श्रीभागवतचरितके प्रथमाहमें हिरण्याक्ष वध नामक
उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त

इति प्रथमाह



अथ द्वितीयाह्न

अथ प्रथमोऽध्यायः

[१]

हे सरवेश्वर ! श्याम ! वेष तुम विविध बनाओ ।
करि नित नव नव चरित जगतकूँ सुख पहुँचाओ ॥
कमलासन सन कही,कथा निज सुख उपजावनि ।
तिनतें नारद सुनी व्यासतें कही सुहावनि ॥
सुत शुकतें तिनने कहो, सुनी परीक्षित नृपति पुनि ।
शौनकजीके सत्रमहँ, सूत कही शुकवदन सुनि ॥

प्रथम दिवस संवाद सूत शौनकको सुंदर ।
नारद व्यास चरित्र परीक्षित कथा मनोहर ॥
निजलीला संवरन सुनाई करुन कहानी ।
भक्तनि हित साकार नचाई भक्ति भवानी ॥
कह्यो वराह चरित्र अब, करी कृपा ध्रुवपै यथा ।
प्रभु पद पद्मनि नाइ सिर, कहूँ द्वितिय दिनकी कथा ॥

शौनक पूछें—सूत विदुरकी बात बताओ ।
पुनि जो पूछी कथा ताहि अब सौम्य ! सुनाओ ॥
कृष्ण कथा अति विमल गङ्ग सम सब अघहरनी ।
भवसागरके पार करनकूँ दृढ़तर तरनी ॥
खर कूकर सूकर सरिस, वृथा भार तनुको वहहिं ।
हतभागी मृतवत पुरुष, जो न कथा सुनि सुख लहहिं ॥

शौनक मुनिको प्रश्न सूत सुनि हरषे मनमहँ।
प्रेम बिकल अति भये रोम पुलके सब तनमहँ॥
बोले—ऋषिवर ! सुनहु गये मनु सतरूपा सँग।
दम्पतिमहँ अति प्रीति प्रेमतें पुलकित अँग अँग॥
द्वै जनमे अति सुघड़ सुत, प्रियब्रत अरु उत्तानपद।
जाई तनया तीन जग, यश छायो जिनतें बिशद॥

देवहूति जिहि भाँति बिबाही कर्दम ऋषितें।
कहूँ भयो कस प्रथम ब्याह सो वैदिक बिधितें॥
बिधिकी आज्ञा पाइ चले कर्दम तपके हित।
विषयनितें मन रोकि लगायो श्रीहरिमहँ चित॥
बरस सहस दश तप कर्‌यो, तनुतें कृश अतिई भये।
भीषन तपतें तुष्ट ह्वै, कमलनयन दर्शन दये॥

इत नारद मुनि देवहूति पितुके ढिँग आये।
कन्या हित अति खिन्न लखे तब बचन सुनाये॥
कन्यादान निमित्त जाहु ढिँग कर्दम मुनिके।
अति प्रसन्न नृप भये बैंन मुनिवरके सुनिकें॥
यदि कर्दम कन्या गहहिँ, मनबांछित फल पाउँगो।
पुत्री पत्नी संग लै, कालि तहाँ हौं जाउँगो॥

तपपति तपतें तुष्ट भये निज रूप दिखायौ।
अद्भुत शोभा सहित निरखि मुनि चित्त लुभायौ॥
चरन अधर कर अरुन मधुर सिर मुकुट मनोहर।
आयुध अस्त्र समेत कमल कर लिये गदाधर॥
श्रीपति सम्मुख निरखिकें, परम मुदित मुनिवर भये।
हड़बड़ायकें दंड सम, बिकल महीपै परि गये॥

कीन्हीं बहु विधि विनय बताई इच्छा अपनी।
कामधेनु सम सुखद सुन्दरी चाहूँ घरनी॥
हरि हँसि बोले—चहू मिलेगी सरसिजनयनी।
मनुपुत्री अति सुघर सुशीला कोकिलबयनी॥
नौ तव तनया होयँगीं, निज यशतें जग भरिङ्गी।
देहुँ ज्ञान तव तनय बनि, आपु तरें माँ तरिङ्गी॥

दीन्हों हरि वर बिन्दु अश्रु नयननितें निकसे।
बिन्दुसरोवर भयो विमल जल सरसिज विकसे॥
इत मनु पत्नी सहित संग कन्याकूँ लीन्हें।
नारद आज्ञा मानि बिन्दुसर नृप चलि दीन्हें॥
जहँ कदम्ब, चम्पक, बकुल, कुटज, कुद, मन्दार, नग।
पहुँचे मुनि आश्रम निकट, चहुँ दिशि कूजहिं वृन्द-खग॥

आवत देखे भूप उठे मुनि स्वागत कीन्हों।
वर आसन बैठाय अर्घ्य विधिवत पुनि दीन्हों॥
भावीपतिकूँ कुमरि ओटतें निरखे पुनि-पुनि।
दृष्टि बचाय तरेरि नेत्र लखि लेहिं कबहुँ मुनि॥
चीर बसन सरसिज नयन, जटा मुकुट मुनिवर बदन।
मन्द हँसनियुत मधुर मुख, निरखि कुमरिको लुभ्यो मन॥

कर्दम पूछें—प्रभो! कहो कस किरपा कीन्हीं।
सहपरिवार पधारि बड़ाई मोकूँ दीन्हीं॥
मनु बोले—मुनिराज! दयायुत मोहि निहारें।
चिन्तासागर मग्न पकरिकें हाथ उबारें॥
परम सुशीला गुणवती, कन्या स्यानी है गई।
चित चिन्ता निशि दिन यही, ब्याह योग तनया भई॥

मुनि नारदतें सुनी गृहस्थाश्रमकूँ भगवन् ।
स्वीकारेंगे यहो सोचि आयो तव चरनन ॥
कन्या तव अनुरूप जाहि मुनिवर स्वीकारें ।
पुत्री चिन्ता उदधि मग्न हौं नाथ ! उबारें ॥
मुनि बोले—इच्छा हती, परि झंझटतें हौं डरूँ ।
तनया लै आये स्वयं, फिरि नाहीं कैसे करूँ ॥

कपट रहित मुनि बचन सुने नृप मुदित भये अति ।
देवहूति मुखकमल खिल्यो समुझी मुनि अनुमति ॥
सबकी सम्मति समुझि ब्यांहकी बिधि सब कीन्हीं ।
राजा रानी हरषि सुता मुनिवरकूँ दीन्हीं ॥
दुलहा दुलहिनि मिलि गये, जंगलमहँ मंगल भयो ।
कनक अँगूठी जस सुघड़, तस सुन्दर नग जड़ि गयो ॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाहमें कर्दम-देवहूति-विवाह नामक
प्रथम अध्याय समाप्त



अथ द्वितीयोऽध्यायः

[२]

भये नृपति निश्चिन्त ब्याह करि मिलि कर्दमतें ।
दोउनिकूँ समुझाय चले मनु मुनि-आश्रमतें ॥
तनया निरखि वियोग मातु पितु हिय भरि आयो ।
छातीतें चिपटाय नेहको नीर बहायो ॥
वत्स धेनु बिलगत समय, बार बार बबराय जस ।
मनु शतरूपातें लिपटि, देवहूति बिललाय तस ॥

मातु पिता पुर गये कुमरिने धीरज धार्‌यो ।
पतिसेवा सर्वस्व सतीको धर्म बिचार्‌यो ॥
तजे दम्भ, छल, कपट, कामतें चित्त हटायो ।
संयम शौच समेत धर्म सेवा अपनायो ॥
असन वसन सुधि नहिं रही, मलिन, कुटिल कच सब बदन ।
तन मनतें सेवा निरत, करहिं सतत इन्द्रिय दमन ॥

दृढ़तर प्रेम कपाट कृपा करि मुनिवर खोले ।
सेवातें सन्तुष्ट प्रियातें हँसिकें बोले ॥
हे मनुनन्दिनि ! मोहि कर्‌यो सेवातें वशमें ।
देहुँ अतुल ऐश्वर्य्य दिव्य सुख भामिनि ! अब मैं ॥
बर माँगौ दुख भगि गयो, अब आई सुखकी घड़ी ।
अष्टसिद्धि नवनिद्धि ये, कर जोरें सम्मुख खड़ीं ॥

प्रीतियुक्त पति बचन सुने बोली प्रिय बानी।
हे द्विजवृषभ! तुम्हारि अतुल महिमा अब जानी॥
मुनि बोले—मनुपुत्रि! मोहि कस बैल बतावै।
देवहूति हँसि कहे—धेनुपति वृषभ कहावै॥
हँसे बात वर मुनि सुमिरि, प्रिया अंकमहँ भरि लई।
कटि कदली सम सिथिल ह्वै, पिय हियमहँ सटि गिरि गई॥

बोली—अब हृदयेश! तपस्या सिद्धि दिखाओ।
गृही सरिस सुख भवन सुभग इक नाथ बनाओ॥
सुनत तुरत मुनि दिव्य योगतैं भवन बनायो।
मणिमय सम्पतियुक्त भवन लखि चित्त लुभायो॥
सब सुख उपयोगी जहाँ, विविध वस्तु भवननि भरीं।
सुन्दर सैया सुखद अति, स्वर्ण जटित चौकी धरीं॥

दासी दास विहीन मलिन तनु भवन न भायो।
समुझि भाव मुनि बिन्दुसरोवर जल परसायो॥
भई दिव्य जल परसि सहस वर दासी आइं।
करि सेवा शृंगार भवनमहँ मुनि ढिंग लाइं।
इत मुनि मौंजी मूँजकी, तजि सुर सम सुन्दर भये।
उततैं हँसि आई प्रिया, उभय प्रेमतैं मिलि गये॥

सोलहहू शृङ्गार करैं कर कमल घुमावत।
कमला सम निज नारि निरखि मुनि मन मुसकावत॥
नव यौवन सम्पन्न अधर मुसुकानि मनोहरि।
शोभा भई सजीव तपस्या अथवा तनु धरि॥
जस मनुतनया मुनिहु तस, शोभैं सुन्दर तनु धरैं।
मानौं अङ्ग अनंग धरि, रति सँग सुख क्रीड़ा करैं॥

बोली भामिनि—विभो ! विश्व वैभवकूँ देखूँ ।
सुखद स्वर्ग सौन्दर्य इन्हीं नैननितें पेखूँ ॥
सुनि मुनि उड़्यो विमान कुलाचलपतिपै आयौ ।
सुख क्रीड़ा बर भूमि दिव्य ऐश्वर्य दिखायौ ॥
नन्दन, सुरसन, चैत्ररथ, वैश्रम्भक, मानस सुवन ।
पुण्यभद्र उद्यान सब, लखे भयो अति मुदित मन ॥
जहँ शुभ सुखद समीर सुगंधित सब श्रमहारी ।
मन्द-मन्द डरि बहे काल अनुरूप विचारी ॥
कोकिलकी कल कूँज गूँज मधुनय मधुकरकी ।
देवहूति ह्वै चकित लखै शोभा गिरिवरकी ॥
देव सिद्ध सुरबधुनितैं, पूजित मुनि विहरत भये ।
निरखि निखिल भूगोल पुनि, निज आश्रमकूँ चलि दये ॥
आये आश्रम लौटि सुरति सुख अतिशय दीन्हों ।
नवधा करि निज वीर्य यथाविधि थापित कीन्हों ॥
नौ कन्या वर भईं उभय कुल यश विस्तारिनि ।
कमल गंधमय देह जनक जननी सुखदायिनि ॥
बाल मरालिनिके सरिस, किलकें कूजें सुता सब ।
कुटुम बढ़त जब मुनि लख्यो, भयो उदित वैराग्य तब ॥
गह्यो कमण्डलु हाथ चले तप हित मुनि बनकूँ ।
कच्ची गृहथी निरखि तपस्विनिके दुख मनकूँ ॥
अञ्जलि बाँधे डरपि विनययुत बोली बानी ।
करी प्रतिज्ञा पूर्ण महामुनि हौं अब जानी ॥
किन्तु प्रभो ! पुत्रीनिकूँ, योग्य वरनितें व्याहिकें ।
कछु अवलम्बन छाँड़ि पुनि, करहिँ तपस्या जाइकें ॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाह्नमें देवहूति कर्दम विहार नामक द्वितीय अध्याय समाप्त

(मासिक पारायण पञ्चम दिवस विश्राम)

अथ तृतीयोऽध्यायः

[३]

आई घरकी यादि कमण्डलु पुनि धरि दीन्हों ।
मुनि दयार्द्र ह्वै गये दूरि दयिता दुख कीन्हों ॥
बोले—भामिनि ! दुःख शोक चिन्ता तजि डारौ ।
गर्भमाँहि तव प्रकट होहिं हरि शुभ व्रत धारौ ॥
हरषित ह्वै तब व्रत करहिं, हरि प्रसन्न अतिशय भये ।
उपजै अरणीतें अनल, त्यों प्रभु परगट ह्वै गये ॥

प्रकटे प्रभु परमेश पितामह सुनि तहँ आये ।
अत्रि अंगिरा पुलह आदि नव ऋषि सँग लाये ॥
कर्दम निरखे पिता यथाविधि स्वागत कीन्हों ।
ऋषि सँग पूजा करी सबनिकूँ आसन दीन्हों ॥
करहु ब्याह तनयानिके, विधि बोले इन ऋषिनितें ।
कपिल रूप धरि पुत्र बनि, हरि आये निज बरनितें ॥

विधि आज्ञा सिर धारि ऋषिनिकूँ कन्या दीन्हीं ।
वैदिक विधितैं व्याह करे विनती बहु कीन्हीं ॥
सब ऋषि पत्नी लई चले हिय हरिकूँ सुमिरत ।
कर्दम चिन्ता मिटी भयो मन अतिशय हरषित ॥
गृही बने सब सुख लहे, हरि प्रकटे कन्या दई ।
करुणाकरकी कृपातें, सब इच्छा पूरन भई ॥

पुत्र रूप हरि लखे एक दिन बैठे बनमहँ।
आज्ञा लै घर त्यागि चलूँ सोची मुनि मनमहँ॥
करिकें दंड प्रणाम विनय श्रद्धायुत बानी।
बोले—हे अखिलेश! तुम्हारी महिमा जानी॥
मायामोहित मूढ़ हौं, तुम महेश अज अखिलपति।
साधन सुलभ न दरश तव, प्रकटे कीन्हीं कृपा अति॥

भयो कृतारथ देव, पितृ, ऋषि ऋणतें छूट्यो।
जगके भोगे भोग मोहको नातो टूट्यो॥
एक कृपा अब करो मूर्ति हियमहँ तव धारूँ।
विचरूँ ह्वै निरद्वन्द तुमहिँ सर्वत्र निहारूँ॥
इच्छा द्वेष विहीन बनि देह गेह ममता तजहुँ।
सुख दुखमहँ सम भाव करि, ह्वै अनन्य तुमकूँ भजहुँ॥

जनक बचन सुनि कपिल कहें—जाओ पितु बनकूँ।
चंचल चितकूँ रोकि लगाओ मोमें मनकूँ॥
परम मधुर अति सरल बचन श्रीहरिके सुनिकें।
प्रभु बियोगकूँ सुमिरि नैन भरि आये मुनिके॥
चले मोह ममता तजी, बनि बिरक्त बन बन फिरहिँ।
पाई भागवती गती, सुनत चरित कलिमल टरहिँ॥

इत माताने आइ करी हरितें जिज्ञासा।
प्रभो! उबारो मोइ लगाई कबतें आसा।
प्रकृति पुरुषको भेद बताओ संशय नासो।
तम अज्ञान मिटाइ हृदय रबि ज्ञान प्रकासो॥
भव-भयभंजन करहु प्रभु, भक्त बछल अशरन शरन।
पार जगत जलनिधि करन, तरणि रूप तव शुभ चरन॥

मुनिकें परम पवित्र मोच्छ रतिकर बर बानी।
जिज्ञासा है गई मातु हिय हरिने जानी॥
हरि बोले—अध्यात्मयोग साधन भल सुखकर।
जाके आश्रय तरें जगत जलनिधि अति दुस्तर॥
जो मन विषयनिमहँ फँस्यो, सो बन्धनको हेतु है।
हरि चरननि महँ जो लगै, तो जग तारन सेतु है॥

मोच्छ भवनको द्वार संत-संगम मुनि भाखैं।
सरस कथा जहँ होहिं कृष्ण हिय जहँ सब राखैं॥
सत्संगतितैं बेगि होहि श्रद्धा सत्-पथमहँ।
श्रद्धातैं रति होहि भक्ति पुनि पद भगवतमहँ॥
भक्ति भवानी हिय बसैं, जग सुख विषवत होहिं सब।
करत करत अभ्यास दृढ़, होहिं कृतारथ पुरुष तब॥

भक्तियोग अति सरस सरल सबके हितकारी।
विप्र, शूद्र, नर-नारि सबहिं जाके अधिकारी॥
परमात्मा परब्रह्म पुरुष भगवान कहो हरि।
ज्ञानी करिकें ज्ञान लहैं नर भक्त भक्ति करि॥
कपिलदेवके बचन सुनि, मुदित मातु मन अति भयो।
हट्यो मोह आवरन सब, द्वन्द कटे तम नसि गयो॥

सिद्ध भई जब जननि जोरि जुग कर सिर नायो।
गद्गद गिरा गँभीर मातु गुरु गौरव गायो॥
हौं मतिमंद गँवारि नारि निज नाम सिखायो।
जाकूँ लैकें श्वपच परम शुचि श्रेष्ठ कहायो॥
जाको कीर्तन करत ही, कलि कल्मष छिनमहँ कटहिं।
बड़भागी ते नारि-नर, जे तब नामनिकूँ रटहिं॥

इस्तुति सुनिकें कपिल मातुतें आज्ञा लीन्हीं।
गृह तजि वनकूँ गवन करनकी इच्छा कीन्हीं॥
ज्ञान लाभ हू भयो तऊ जननी वियोग भय।
बछरा बिछुरत गऊ होहि व्याकुल ज्यों अतिशय॥
सुर मुनि पूजित कपिल हरि, गंगासागर ढिँग गये।
हरषि उदधि आलय दयो, सुखासीन प्रभु तहँ भये॥
कन्या निज गृह गईं पुत्र पतिने घर त्यागो।
मातु हृदय बैराग्य ज्ञान सुनि अतिशय जाग्यो॥
बहु वैभव सम्पन्न सर्व सुखमय तजि निज घर।
सत् चित् आनँद रूप ब्रह्ममें निरत निरन्तर॥
वस्त्रहीन सब खुले कच, तपो योगमय दिव्य तनु।
परमानन्द निमग्न मन, सिद्ध भई साकार जनु॥
छऊ भूमिका पार करीं सतवींमहँ निशि दिन।
रहैं, करैं नहिं कछू काज भगवत् चिन्तन बिन॥
यों माताने तुरिय भूमिका प्रकट दिखाई।
प्रेमयोगतें पराभक्तिकी पदवी पाई॥
मातृगया जो सिद्धपद, सिद्धि मातु पाई जहाँ।
दैहिक मलतें रहित तनु, सरिता बनि बिहरैं तहाँ॥
बोले मुनि मैत्रेय—कह्यो सम्वाद विदुर वर।
कपिल चरित अति रहस गूढ़ जिहि सुनहिं नारि नर॥
तिनिके शुभ अरु अशुभ करम सब ही नसि जावैं।
प्रभुपद प्रकटै प्रेम परमपद प्रियवर! पावैं॥
देवहूति करदम कथा, कपिल ज्ञानके सँग कहीं।
सुनु आकूति प्रसूतिकी, कथा सुता मनुकी रहीं॥

इति श्री भागवत चरितके द्वितीयाह्नमें कपिलचरित नामक
तृतीय अध्याय समाप्त

(मासिक पारायण षष्ठ दिवस विश्राम)

अथ चतुर्थोऽध्यायः

[५]

देवहूति की कथा सुनी मनुपुत्री मँझली ।
आकूती रुचि बरी प्रसूती पुत्री पिछली ॥
दक्षनारि बनि जने पुत्र पुत्री अति श्रेष्ठा ।
यज्ञ पुरुष अवतार जननि आकूती ज्येष्ठा ॥
अनसूया कर्दम सुता, तीन देव बश करि लये ।
पुत्र होहिँ प्रकटैं उदर, तैं तीनो मिलि बर दये ॥

पतिप्राना जगमाहिँ सरिस अनसूया नारी ।
को है बश जिन किये अखिलपति, बिधि त्रिपुरारी ॥
पुरुष योग जप करैं सिद्धि बाकूँ नहिँ पावैं ।
जाहि पाहि पतिप्रिया सहज जगतैं तरि जावैं ॥
जाके डरतें, देव मुनि, इन्द्र, चन्द्र, रवि सब डरहिं ।
पतिव्रता तिहिके चरन, बार-बार बन्दन करहिं ॥

सरस्वती श्रीरमा शिवा तीनिहुँ यह मानें ।
पतिव्रता हम श्रेष्ठ याहि सबरो जग जानें ॥
नारद सबके भरे कान अनसूया को सम ।
निज निज पतितें कहैं—पातिव्रत देखें बल हम ॥
बिधि, हरि, हर भिक्षुक बने, अनसूया आश्रम गये ।
पतिव्रताकी परीक्षा, हित भिक्षा मांगत भये ॥

देवी भिक्षा देहिँ, कहें—हम तब लैं भिच्छा।
वस्त्रहीन है देहु यही हम सब की इच्छा॥
सती ध्यान तें जानि, कही—तीनिहु सुत होवें।
पतिव्रता प्रन सत्य भयो, बनि बालक रोवें॥
उमा, रमा बाणी बिनय, करी देव फिरितैं भये।
तीनिहुँ तव सुत होहिँ हम, है प्रसन्न सब बर दये॥

पतिव्रता जग माहिँ अलौकिक चरित दिखावें।
जीवित मृतपति संग सती है सुरपुर जावें॥
पति परमेश्वर मानि अनलकूँ शीत बनावें।
सूर्य्य चन्द्र गति रोकि काल बिनु प्रलय करावें॥
पतिप्राना वेश्यासदन, कोढ़ी पति इच्छा समुझि।
जाति रही मुनि मग मिले, पति पग तिनतैं गो उरझि॥

कर्‌यो कोप मुनि शाप दयो जिहि कीन्ह अवज्ञा।
सूर्योदयके होत मरे मेरी यह आज्ञा॥
सती कहे—रबि उदय होहिगो नाहीं अबई।
तीन दिवस तक राति भई घबराये सबई॥
सुर अनसूया लै गये, सती सखी संतोष करि।
पति जिवाय रबि उदय करि, गई सबनिको दुःख हरि॥

अत्रि करें तप उग्र बायु भच्छन करि बनमें।
जगत ईश निज सरिस पुत्र दें सोचे मनमें॥
सिरतें निकसी अग्नि तपस्या तेज दिखावै।
सर्व भाव मुनि भये बिश्वकूँ आँच जरावै॥
सुर मुनि लखि लौ अनलकी, तपतैं सब बिस्मित भये।
बर दैवेकूँ विष्णु शिव, विधि तीनिहुँ मुनि ढिग गये॥

देखे तीनिहुँ देव तेजतैं दिशा प्रकासत।
हंस, गरुड़, वृष चढ़े पूर्ण शशि सम सुभ भासत॥
यश गावैं गंधर्व अप्सरा नाचैं आगे।
करि दरशन मन मोद भयो मुनिके दुख भागे॥
अविरल जल नयननि बहै, परे लकुटि सम अवनि पै।
ह्वै अधीन ममता भरी, डारी दृष्टी सबनि पै॥

चकाचौंध ह्वै गई चच्छु चित चरन लगायो।
हाथ जोरि सिर नाइ विष्णु विधि हर गुन गायो॥
जा जगके जो ईश पुत्र हित एक पुकारे।
किन्तु कृपाकेसिन्धु! दया करि तीनि पधारे॥
सुनि मुनि बच बोले सबहिं, तीनिहु ही जगदीश हम।
इच्छा बर माँगो अनघ! अब तुमकूँ सबई सुगम॥

बोले मुनिवर अत्रि—नाथ! माँगत सकुचाऊँ।
तुम सम सुन्दर सुघर सलौनो सुत हौं पाऊँ॥
हँसिकें बोले देव—हमारे सम हम तीन्हों।
जन्म रहित हम तऊ उग्र तप तुमने कीन्हों॥
जाओ हम हीं होंहिंगे, तनय तुम्हारे तपोधन।
सुनि मुनि अति हरषित भये, गहे चरन ह्वै मुदित मन॥

दै दुरलभ वरदान भये अन्तरहित देवा।
आये आश्रम अत्रि करें श्रीहरिकी सेवा॥
काल पाइ विधि चन्द्र नामतें प्रकटे आई।
शिव दुर्वासा भये शापकी छटा दिखाई॥
योगेश्वर श्रीहरि भये, दत्तात्रेय महान मुनि।
तरैं जगत्के जीव बहु, जिनको सुन्दर सुयश सुनि॥

दत्तदेव बपु परम सुघर सुन्दर सुठि सोहत ।
जनु सौन्दर्य्य शरीर धरैं घूमे जग मोहत ॥
एक बार जो लखैं संग सो फिर नहिं छोरत ।
मातु पिता घर कुटुम सबनितैं मुखकूँ मोरत ॥
खाँय अखाद्य पदारथनि, माया रचि कौतुक करहिँ ।
जानि अचारी शुचि रहित, ऋषि कुमार सँगतैं भगहिँ ॥

देवासुर संग्राम भयो सुर सबरे हारे ।
देखि देवपति दुखी देवगुरु बचन उचारे ॥
दत्तात्रेय समीप सफल ह्वै काज तिहारे ।
शरण गये लहि बिजय पाइ श्री भये सुखारे ॥
सहसबाहु अरजुन भये, ऋद्धि सिद्धि जगमहँ लहीं ।
पायौ अन्तहु परमपद, कहुँ हरि बिनु हारे नहीं ॥

अगिनि सरिस अवधूत खाहिँ सब तुरत पचावें ।
करहिं अल्प अनुकरन पतित नर ते ह्वै जावें ॥
अनल अनिल रवि अशुचि शुचिहुमहँ नहिं लपटावें ।
समरथकूँ का दोष, उमापति विषकूँ खावें ॥
बाहिरके आचरन लखि, दत्तदेवतैं घिनि करहिं ।
उभय लोक सुखतें रहित, होहिँ नरकमहँ मरि परहिँ ॥

जे श्रद्धायुत धैर्य्य धारि सेवें नित इनकूँ ।
ह्वै प्रसन्न सब सिद्धि मुक्ति देवें हू तिनकूँ ॥
यदुने पूछ्यो प्रश्न यथारथ उत्तर पायो ।
नृप अलर्क सुख लह्यो दत्तने ज्ञान सिखायो ॥
असुरराज प्रह्लादहू, सुनि शिक्षा निरभय भये ।
आयु नृपति सेवा करी, नहुष सरिस सुत हरि दये ॥

श्रद्धा पत्नी सती अंगिरा मुनि की गुणवति ।
कन्या राका कुहू सिनीवाली अरु अनुमति ॥
गुरु, उतथ्य द्वै पुत्र कहूँ अग्रिम संतति पुनि ।
ऋषि पुलस्त्यकी पत्नि हविर्भूने अगस्त्य मुनि ॥
द्वितिय विश्रवा सुत जने, धनाधीश तिनके तनय ।
कुंभकरन रावन भये, और विभीषन महाशय ॥

गति पत्नी तैं पुलह जने प्रिय तीनि योगयुत ।
कर्मश्रेष्ठ अरु वरीयान तीसर सहिष्णु सुत ॥
क्रतुकी पत्नी क्रिया बालखिल्यादिक मुनिवर ।
जने अरुन्धति माँहिं वशिष्ठहु शक्ति गुणाकर ॥
अमल अथर्वण पत्नि चिति, के दधीचि सुत है गये ।
भृगु सुत धाता ख्यातितैं, और विधाता श्री भये ॥

भृगु पुत्री श्री संग ब्याह कमलापति कीन्हों ।
तिहिके कारन शाप विष्णुकूँ मुनिवर दीन्हों ॥
हँसिके शौनक कहें—सूत जी ! गप्प न मारो ।
देवै हरिकूँ शाप जगतमें कौन बिचारो ॥
हँसे सूत बोले—विभो ! लीलापति लीला करैं ।
बैठे बनियाँ बाट गहि, तोलैं इतकी उत धरैं ॥

बोले शौनक—सूत ! सुनाओ शाप कहानी ।
कस भृगु दीयो शाप खुंस च्यौं हरितैं मानी ॥
सूत कहें—मुनि ! सुनो नगर इक विष्णु बनायो ।
ऋद्धि-सिद्धियुत निरखि ताहि मुनि निज बतलायो ॥
बोले विष्णु बिनोद प्रिय, दुहिता धन कस लेहु मुनि ।
वक्र भृकुटि भृगुकी भईं, जामाताके बचन सुनि ॥

शाप दयो तुम विष्णु जन्म दश भूपै धारौ ।
हरि बोले—मुनि शिरोधार्य है शाप तिहारौ ॥
पाणिग्रहण यों विष्णु कर्यो भृगु पुत्री श्रीतैं ।
श्री धातनि ने कर्यो ब्याह आयति नियती तैं ॥
तिनके तनय मृकण्ड अरु, प्राण भये भृगु तृतिय सुत ।
कवि तिनके उशना भये, असुर पुरोहित तेजयुत ॥

तीसरि पुत्रि प्रसूति दई मनु दक्षप्रजापति ।
सोलह कन्या जनीं कमल नयनी सुन्दरि अति ॥
श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, उन्नति अरु तुष्टी ।
क्रिया, तितिक्षा, बुद्धि, मूर्ति, मेधा, ह्री, पुष्टी ॥
तेरह दीन्हीं धर्मकूँ, स्वाहा अगिनीकूँ दईं ।
स्वधा त्रिताहीं पितृगण, सती शम्भुपत्नी भईं ॥

शुभ श्रद्धाके पुत्र दयाने अभय जन्यो सुत ।
मैत्री पुत्र प्रसाद शान्ति सुत सुख शोभायुत ॥
तुष्टि पुष्टि के तनय मोद अरु अहंकार वर ।
योग क्रियाके लाल दर्प उन्नतिके सुखकर ॥
बुद्धि, अर्थ, मेधा सिमृति, क्षेम तितिक्षाने जने ।
लज्जाके प्रश्रय तनय, देव सरिस ये सबजने ॥

सर्व गुननिकी खानि मूर्तिने पुरुष पुरातन ।
विश्वम्भर श्रीकृष्ण जने हरि नर नारायन ॥
जन्म समय सुर कुसुम गगनतैं बहु बरसामें ।
गामें गुन गन्धर्ब देव वर बाद्य बजामें ॥
सब जगमहँ मंगल भयो, साम गान ऋषि मुनि करहिं ।
प्रभु प्रकटे अब जगत्को, शोक मोह तम सब हरहिं ॥

मूर्ति तनय सुकुमार मार सम मोहक मनहर ।
नर-नारायन अमित तेज तपबल युत ऋषिवर ॥
लै अवतार प्रभाव तपस्याको प्रकटावें ।
जनक जननितैं कहैं, तीव्र तप हित हम जावें ॥
त्यागी तनयनि तप करन, हित गृह त्यागत माँ निरखि ।
करि दृढ़ हिय आज्ञा दई, बिकल भई रोई बिलखि ॥

उग्र तपस्या निरखि इन्द्र मन संशय करहीं ।
करिकें तप ऋषि प्रवर इन्द्र आसनकूँ हरहीं ॥
काम कलामहँ कुशल कामिनी तप नाशनकूँ ।
भेजीं बहु देवेन्द्र डिगा सकिं नहिंते इनकूँ ॥
भक्तराज प्रहलाद हू, लखि प्रभाव बिस्मित भये ।
नीमसारमहँ निवसि फिर, बदरीबन तप हित गये ॥

नर नारायण देव दया दीननिपै कीजै ।
भवसागर भयहरन शरन चरननि की दीजै ॥
लोकसंग्रही बने करें तप बदरीबन महँ ।
होहि विश्व कल्याण यही सोचें नित मन महँ ॥
तव चरननितें बिमुख नर, जाहिं कालके गाल महँ ।
भक्त तरें बिनु भक्तिके, फँसे जीव जग जाल महँ ॥

चौदहवीं जो दक्षसुता स्वाहा पितु प्यारी ।
अग्निदेव ने बरी कमलनयनी सुकुमारी ॥
पावक शुचि पवमान जने हविभुक तीनिहु सुत ।
पौत्र पाँचचालीस अग्नि सबई तेजोयुत ॥
बेदबिज्ञ जन यज्ञमहँ, आगनेय इष्टी करहिं ।
उनंचास सब मिलि भये, यज्ञ यागमहँ जो जरहिं ॥

एक अग्नि सर्बत्र रहैं ब्यापक सब थल महँ ।
एक करहिं पयपान रहैं नित सागर जल महँ ॥
जठर माँहि जो रहैं पचावैं अन्न पानकूँ ।
एक भाग यज्ञीय पठावैं उभय यानकूँ ॥
एक असंस्कृत घरेलू, अग्नि पाक जिहितें करहिं ।
आदि अग्नि तो एक ई, रूप त्रिविधि तेई धरहिं ॥

नित्य पितरगन षष्ठ वर्हिषद सोमक साग्निक ।
अग्निष्वात्ता और आज्यपा कहैं निरग्निक ॥
इन सबने मिलि स्वधा बिवाही दक्षकुमारी ।
इनतैं तनया उभय भईं जो प्रभुकी प्यारी ॥
कन्या वयुना धारिनी, स्वधा जनीं जगतें विरत ।
पारंगत परमार्थमहँ, ब्रह्मबादिनी तप निरत ॥

जे श्रद्धातैं करें श्राद्ध विधिवत तिल तरपन ।
तिनपै किरपा करें प्रजा हित निरत पितरगन ॥
अन्न श्राद्ध शुचि खायँ विप्रमुखतैं स्वीकारें ।
प्रजा बृद्धि बहु होय यही मन सदा बिचारें ॥
पितर स्वधा उच्चारतैं, सुर स्वाहा तैं लेत हैं ।
दाता श्रद्धा निरखिकें, मन वाँछित फल देत हैं ॥

दोहा—मनु पुत्रिनिके वंशकी, कथा कही शुभ धन्य ।
पढ़ैं सुनैं जे प्रेमतैं, होहि तिनहिं अति पुन्य ॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाहमें मनुपुत्री वंशवर्णन नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त

अथ पञ्चमोऽध्यायः

[५]

दक्षकुमरि लघु सती रूप गुन की जो खानी।
ब्याही शिवके संग भक्तितैं भई-भवानी ॥
अर्ध अङ्ग दै भये अर्धनारीनट ईश्वर।
सती सरिसको सती तज्यो तनु ततछिन नश्वर ॥
हठ अघको शोधन कर्यो, जग कीरति अक्षय करी।
पति निन्दा रूपी अनल, लगी देह छिनमहँ जरी ॥

बोले विस्मय सहित विदुर मुनिवरतैं बानी।
प्रभो ! कही का दक्ष-सती की अकथ कहानी ।
पुत्री प्रान समान प्रजापति दक्ष पियारी।
शान्त मूर्ति श्रीशम्भु चराचर गुरु त्रिपुरारी ॥
जामाता अरु ससुरमहँ, किहि कारन अनबन भई।
जा दुखतैं दुहिता दुखी, भई क्रोध करि जरि गई ॥

बोले मुनि मैत्रेय—विदुर ! सुनु शम्भु चरित प्रिय।
हर गुन अघ हरि लेत होत हरषित अतिशय हिय ॥
तीरथराज प्रयाग याग मिलि करें प्रजापति।
आये ऋषि मुनि देव सत्र शोभे अद्भुत अति ॥
श्वेत नील वसना बहिन, सुरसरि अरु रविजा जहाँ।
मिलैं मध्य वटके निकट, भीर भई भारी तहाँ ॥

दूरि दूरितैं दौरि दौरि देवादिक आये।
गङ्गा यमुना मध्य यज्ञ लखि सब हरषाये॥
उच्चासनपै विश्वजनक श्रीब्रह्म बिराजैं।
चन्द्रमौलि ढिँग दिव्य तेज रविसम बिभ्राजैं॥
दक्ष प्रजापति मानयुत, आये सब ठाढ़े भये।
बिधि सम अपनी पीठ पै, बैठे ही हर रह गये॥

समुझि अवज्ञा दक्ष कोपतैं भ्रष्ट भई मति।
अरुनबरन मुख भयो, भृकुटि चढ़ि बक्र भईं अति॥
नयन रक्त सम भये कोपकी किरनें छिटकैं।
कटकटाइकैं दाँत पैर पृथिवीपै पटकैं॥
भुज उठाइ शिवकूँ निरखि, अण्ड बण्ड बोले वचन।
ज्यों द्विप लखि भूखे कुकुर, कछु न कहैं हर त्यों मगन॥

बलबलाइ ज्यों ऊँट झूठ बानी बहु जलपै।
अहि सम उगलै गरल मनो बड़ पागल प्रलपै॥
बोल्यो —यह शिव अशिव मुंड माला नित धारै।
चिता भस्म तन लेपि हँसै रोवै किलकारै॥
हाय! अधम निरलज्जकूँ, सती सरिस तनया दई।
बिधि हठ मानी व्यर्थई, कन्या बिनु बर सम भई॥

बकै बात बहु बुरी बुद्धि बिधिने हरि लीन्हीं।
क्रोध मान बश भयो पेट भरि निन्दा कीन्हीं॥
तऊ नहीं संतोष भयो जल हाथ उठायो।
सम्बोधन करि शाप सबनिकूँ दक्ष सुनायो॥
सुनहु सभासद श्रवन दै, सबनि महँ शिव जायगो।
तो यह देवनिमें अधम, यज्ञभाग नहिं पायगो॥

दैकें शिवकूँ शाप क्रोधमें भरि चलि दीन्हों।
कछुने अनुचित कह्यो कछुक अनुमोदन कीन्हों॥
नन्दी दीन्हों शाप दक्ष अज्ञानी होवै।
बकराको मुख होहि प्रतिष्ठा अपनी खोवै॥
शिवद्रोही जो विप्रगन, ते जगमहँ याचक रहैं।
भृगु बोले—जो नामके, शैव अशुचि बनि दुख सहैं॥

शौनक बोले—सूत ! शापकी कथा सुनाई।
शिवनिन्दा तो हमें नेंकऊ नाहिं सुहाई॥
शिव महिमा कछु कहो जगत् दृढ़ बन्धन तोरै।
मनमहँ उपजै मोद सुधा श्रवननिमहँ घोरै॥
काशीवासी शम्भु हर, त्रिपुरारी शिव सतीपति।
नाम रटत भवभय कटत, गुन सुनि होवे चरन रति॥

सूत कहें—'सुत जाम्बवतीने हरितैं माँग्यो।
लखि सौतिनि सुत डाह सौतिया मनमहँ जाग्यो॥
श्रीहरि हँसिकें कहें—होहि सुत शिव आराधें।
विषय भोग तजि नियम कठिनव्रत यदि हम साधें॥
हरि पत्नी आग्रह लख्यो, गरुड़ चढ़े हिम गिरि गये।
निवसें जहँ उपमन्यु मुनि, लखि आश्रम हरषित भये॥

मुनिनें निरखे कृष्ण यथाविधि स्वागत कीन्हों।
अक्षत, तुलसी, पुष्प, अर्घ्य चन्दनयुत दीन्हों॥
करि पूजा स्वीकार कहें—मुनि ! हर गुन गाओ।
शिवके सुखद प्रसंग प्रेम तैं मोहिं सुनाओ॥
मुनि बोले—इहि थल विभो ! बहुत बरसतैं हौं रहूँ।
सिद्धि असुर सुर जिन लही, कछुक कथा तिनकी कहूँ॥

हिरनकशिपुने प्रभो ! यहीं बर दुरलभ पाये ।
विद्युन्प्रभ मन्दार बली बनि देव हराये ॥
याज्ञवल्क्य श्रीव्यास और शाकल्य महामुनि ।
ग्रन्थकार बड़ भये नाम शिव रटि हरगुन सुनि ॥
और कहाँ तक अत्र कहूँ, हौं दरिद्रता तैं दुखी ।
मातु बचनतैं शिव भजे, भयो शम्भु बरतैं सुखी ॥

मुनितैं पूछें कृष्ण—कहो सब कथा विप्रवर ।
व्याघ्रपाद सुत कहें—सुरभि नहिँ रही मोर घर ॥
एक दिना कहुँ पियो दूध घरपै नहिँ होई ।
माँग्यो माँतैं आइ सुनत जननी मम रोई ॥
मैंने हठ जब करी बहु, चून घोरि जलमहँ दयो ।
पीयो परि पय स्वाद नहिँ, मेरे मन अति दुख भयो ॥

अम्मा ! यह पय नाहिँ मोहिँ तू क्यौं बहकावै ।
अमृतोपम अतिश्वेत मधुर पय क्यौं न पिआवै ॥
मम हठ निरखी मातु नयनतैं अश्रु बहावै ।
बार बार पुचकारि हृदयतैं मोइ लगावै ॥
मैं पूछ्यो—घर सुरभि पय, होइ न क्यौं हे जननि ! कह ।
बोली—बेटा ! बिष्णुकी, सालीकी करतूत यह ॥

पुनि पूछ्यो—हे मातु ! भगै यह कुलटा कैसे ।
सुनि माँ बोली—वत्स ! बताऊँ जावै जैसे ॥
आशुतोष भगवान शम्भुकूँ जो आराधैं ।
तिनके दुरलभ काज कपर्दी छिनमहँ साधैं ॥
मधुसूदन ! मम मातुने, महादेव महिमा कही ।
उपजी सुनि शिवभक्ति हिय, शरन चरन हर की गही ॥

आराधे शिव सहस बरस सब सुख तनु त्यागे ।
दये देवने दरस दुःख दारिद सब भागे ॥
अजर अमर वपु कर्‌यो दूधको सागर दीन्हों ।
कृपा कपर्दी करी कृतारथ किंकर कीन्हों ॥
सुनि हरिहूने हर भजे, सहस सुतनि शिव बर दये ।
ह्वै सतकृत ऋषि मुनिनि तैं, कृष्ण द्वारकाकूँ गये ॥

ऐसे शिवकूँ शाप दक्षने दारुन दीन्हों ।
कर्‌यो न हरने कोप शाप सिर धारन कीन्हों ॥
शापाशापी निरखि विमन शिव निज गिरि धाये ।
सहस सालको सत्र पूर्ण करि सब मिलि न्हाये ॥
सुखद सिद्धिप्रद अघहरन, पावन पुण्य प्रयाग महँ ।
अवभृत मज्जन कर्‌यो सब, गङ्गा जमुना मिलहिँ जहँ ॥

दोहा—दक्ष प्रजापति मंदमति, हरतैं राखै द्वेष ।
जिनको मंगल नाम शिव, किन्तु अमंगल वेष ॥

इति श्री भागवत चरितके द्वितीयाहमें दक्षशाप नामक
पंचम अध्याय समाप्त

अथ षष्ठोऽध्यायः

[६]

कछुक कालमहँ बात सत्रकी भई पुरानी।
किन्तु ईरषा अधिक दक्षके चित्त समानी॥
सोच्यो अब इक यज्ञ करूँ यह प्रथा चलाऊँ।
सती शम्भुकूँ यज्ञमाँहिं हौं नाहिं बुलाऊँ॥
इहि बिधि मन महँ सोचिकैं, यज्ञ बृहस्पतिसव रच्यो।
पशुपति निन्दा रूप जो, पाप हृदयमहँ नहिँ पच्यो॥

नाहिँ द्रव्यकी कमी यज्ञके ठाट जमाये।
दौरि दौरि सब ठौर ठौर धावन धरि धाये॥
देव, उरग, गन्धर्व निमन्त्रन सबनि पठाये।
किन्तु यज्ञके अधिप सदाशिव नाहिँ बुलाये॥
अति उमंग ललना भरीं, सत्रमाँहि सजिबजि चलीं।
प्रिय पति संग बिमानमहँ, लागैं विद्युत् सम भलीं॥

निरखीं प्रमदा सती पतिनि सँग सुखतैं गावति।
बैठि विमाननि विहँसि सिहावति अति हरषावति॥
पूछें—"भैना! कहहु जाउ कहँ सब सुकुमारी"।
बोलीं—'तव पितु गेह यज्ञ उत्सव है भारी॥
अबई तुम क्यौं नहिं गईं, का कछु अनबन ह्वै गई।
अथवा रिस है प्रजापति, पत्री मखकी नहिं दई॥

विस्मय, लज्जा, हरष, मोद, उत्सुकता सब संग ।
भये महोत्सव सुनत पिता घर पुलके अँग अँग ॥
शिव समीप पुनि दौरि गईं बोलीं सुनु अघहर ।
श्वसुर तुम्हार उदार करहिं इक बृहत् यज्ञवर ॥
हँसि भोले बाबा कहें—यह जग पथिक निवास है ।
हाय हाय होवै कहूँ, कहुँ उत्सव उल्लास है ॥

सती प्रेमयुत कहहिं–प्रभो ! मति ज्ञान सिखाओ ।
मोइ संग लै चलो नाथ ! पितु यज्ञ दिखाओ ॥
दीना हूँ अति विभो ! व्यर्थ अब मत बहकाओ ।
चलो बैलपै चढ़ो मोइ हर ! पकरि चढ़ाओ ॥
शिव बोले—नहिं निमन्त्रण, कस जावैं भामिनि ! सुनो ।
छोटी बेटी बापकी, व्यर्थ लड़ैती तुम बनो ॥

बात सत्य है पिता मित्र गुरु घर बिनु बोलें ।
जावै यदि वे निरखि नेहतें हियकूँ खोलें ॥
दोष दृष्टितें देखि रोषवश मुँह मटकावें ।
तिनके घरमहँ भूलि कबहुँ नहिं सज्जन जावें ॥
सती तुम्हारे बापने, कहनो अनकहनी कहीं ।
सबके सम्मुख सभामहँ, भली बुरी गारी दईं ॥

सती कहें—तुम कृपा-सिन्धु योगेश्वर ज्ञानी ।
वेद न पावें भेद पाहिं फिर कस अभिमानी ॥
थूको जो कछु भई गईकूँ नाथ विसारो ।
पिता यज्ञ लै चलो, आसरो एक तिहारो ॥
शम्भु कहें—"दाक्षायणी ! त्यागो हठ हरि-हरि भजो ।
हौं कबहूँ नहिं जाऊँगो, जिह आशा मोतें तजो ॥

समुझाई शिव सती बहुत विधि तऊ न मानी ।
भई बुद्धि विपरीत विश्वपति हियमहँ जानी ॥
पितृ नेह इत शम्भु रुष्टताको भय भारी ।
फिरि फिरि आवैं जाइं, हिंडोले सरिस विचारी ॥
सर्पिनि सम निश्वास लै, कँपै देह विह्वल भईं ।
आँखिनिमहँ आँसू भरे, सती अनमनी ह्वै गईं ॥

बहुरि विचारें चलूँ शम्भु नहिं दैंगे अनुमति ।
छिन-छिन बीते कल्प कोटि सम चित चंचल अति ॥
राम करैं सो होहि चलूँ होवै सो होवै ।
वह पाछे पछिताय सुअवसर जो नर खोवै ॥
सती सतिनि महँ शिरोमणि, विकल वासना वश भईं ।
आज्ञा उल्लंघन करी, बिनु पूछे ही चलि दईं ॥

समुझे शिव सर्वज्ञ सतीके सुकृत सिराये ।
अनुचर नन्दी आदि तुरत हर संग पठाये ॥
विनती सब मिलि करी भवानी वृषभ विराजीं ।
चँवर छत्र सिर लगे दुंदुभी तुरही बाजीं ॥
यों सजि वजि पितु घर चलीं, असगुन बहु मग महँ भये ।
परि न ध्यान उतकूँ दयो, नन्दी खगपति सम गये ॥

शिव इच्छाके बिना पात नहिं हिलैं नगनिके ।
नाहिं सती कछु कर्यो काज करवाये इनिके ॥
धर्यो सती सिय रूप शम्भु तब मन तैं त्यागीं ।
इष्ट शक्ति मम मातु सरिस समुझीं तब भागीं ॥
गाजे बाजे बजहिं बहु, चहल पहल चहुँ दिशि हती
चढ़ि नन्दी पै गणनि सँग, यज्ञ माँहि पहुँची सती ॥

पिता न आदर कर्‌यो देखि म्हौं अपनो फेर्‌यो ।
डरके मारैं सती माँहि कोई नहिं हेर्‌यो ॥
जननी भगिनी मिलीं प्रेमतैं हिये लगाईं ।
किन्तु न कोई बात सतीकूँ फेरि सुहाईं ॥
जग जननी जगदम्बिका, अपमानित अतिशय भईं ।
व्यापौ तनमहँ कोप अति, आग बबूला ह्वै गईं ॥

इत उत निरखें कहूँ शम्भुको भाग न पायौ ।
तातैं लाखनि गुनों कोप देवीकूँ आयौ ॥
यश अनल तैं प्रबल सती हिय ज्वाला व्यापी ।
काली चण्डी बनी पिताकूँ समझ्यो पापी ॥
पापी तैं पैदा भयो, नाँहि तनु शिव उपभोग्य है ।
अशुचि ताहि पितुयश महँ, तजौं जिही तो जोग्य है ॥

ऐसो निश्चय कर्‌यो कोपतैं बोलीं बानी ।
क्यौं रे मङ्गलरहित शम्भुद्वेषी, अभिमानी ॥
कर्मकाण्डमें फँस्यो शम्भु महिमा नहिं जानै ।
सबतैं हौं ही बड़ो आप तू ऐसो मानै ॥
जिनके "शिव" जा नामकूँ, भाव कुभावहुँ जे रटें ।
तिनके सब दुख दुरित अघ, जगके छिन भरिमें कटें ॥

महत पुरुष मन मधुर चरन अरविन्द सरिस हर ।
पान करें मकरन्द मधुर भवभयहर सुखकर ॥
अर्थी पावें अर्थ काम सब पावें कामी ।
करें कामना पूर्ण सबनिकी अन्तरयामी ॥
अज अनादि सुख दुख न कछु, राग द्वेषतैं जो रहित ।
तिनतैं वैर बिसायकें, कैसे होवै तोर हित ॥

धरमहीन जो कुटिल करै निन्दा हरि हरकी।
गरम सड़ासी पकरि जीभ खींचे वा नरकी॥
नाहिं तु मूँदे कान जपै शत नाम रामके।
हरि हर द्वेषी सगे बन्धुहू नाहिँ कामके॥
तोतैं उपजी देह जिह, शिव उपयोगी रही नहिं।
कैसे ऊँचो म्हौं करूँ, जब हर दाक्षायणि कहहिं॥
ऐसे कहिकें सती ओढ़िकें पीरी सारी।
युगल नेत्र करि बन्द जगतकी सुरति बिसारी॥
नाभि चक्रतैं प्रान उठाये हियमें लाई।
कंठ भ्रुकुटिके मध्य अनिलतें अनल जराई॥
योग अगिनितें तनु तज्यो, लीन भईं शिव ध्यानमें।
किन्तु कुटिल पितु दक्षके, जूँ रेंगी नहिँ कानमें॥
देख्यो चरित विचित्र डरे सब जगके प्रानी।
जगत सून्य सम भयो प्रलय बेला सब जानी॥
धिक्कारें सब लोग दक्षकूँ देवें गारी।
सम्मुख दुहिता मरी नहीं बरजी सुकुमारी॥
पिता नहीं अति पतित यह, शिवद्रोही कलुषित हृदय।
सिंह व्याघ्रहू सुता लखि, छाँड़ि क्रूरता हौं सदय॥
सती देह निरजीव लखी शिवगण रिसियाने।
यज्ञ नाश हित चले; अस्त्र निज निज सब ताने॥
भृगुने देखे भूत भयंकर विघ्न करिङ्गे।
यज्ञ करहिँ विध्वंस दक्षके प्रान हरिङ्गे॥
यज्ञ विघ्ननाशक ऋचा, पढ़ीं प्रकट ऋभु सुर भये।
उनने मारे शम्भुगण, भये पराजित भगि गये॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाहमें सतीदेहत्याग नामक षष्ठ अध्याय समाप्त

(पाक्षिक पाठ तृतीय दिवस विश्राम)

अथ सप्तमोऽध्यायः

[७]

भूत प्रेत उत भगे, भगे इत नारद हरषै ।
देखे विभु विश्वेश विराजें हिमगिरिवरपै ॥
करी वन्दना विलखि विनयतें बोले बानी ।
पिता कर्‌यो अपमान जरीं योगाग्नि भवानी ॥
तव पार्षदगण अस्त्र लै, युद्ध करन उद्यत भये ।
किन्तु करे भृगु प्रकट ऋभु, तिनहिँ देखि गण डरि गये ॥

कर्‌यो कपरदी कोप अधर दाँतनितैं काटैं ।
चढ़ी भ्रुकुटि मुख लाल ओठ जिह्वातैं चाटैं ॥
भरिकें रिसमें एक जटातैं बारु उखार्‌यो ।
कटकटाइकें दाँत पट्ट पृथिवीपै मार्‌यो ॥
मारत ई अति विकट नर, कारो अंजन गिरि सरिस ।
प्रकट्‌यो भीषण सहस भुज, घेरीं तनुतै दशहु दिस ॥

बोल्यो—हे विश्वेश ! बताओ किनकूँ मारूँ ।
सोखूँ सबई सलिल सकल संसार सँहारूँ ॥
रुद्र कोप करि कहें—अस्त्र अपने संहारो ।
दम्भयज्ञमें जाय दक्षकूँ अबई मारो ॥
सुनत भयंकर रुद्र गण, हा-हा हू-हू करि चले ।
कर कंकण माथे मुकुट, कटि किंकिणि माला गले ॥

भूत, प्रमथ, बैताल, विनायक, बटुक, डाँकिनी।
गुह्यक, कर्पट, क्षेत्रपाल, सँग चली साँकिनी॥
नव दुर्गाऊ चलीं कोप करि गर्जति तर्जति।
वीरभद्रके संग नगनि मग मर्दति फर्दति॥
विकट वेष वाहन विविधि, भीषण कोलाहल करहिँ।
वीरभद्र सेना निरखि, नर नारी सबहीं डरहिँ॥

आव गिन्यो नहिँ ताव यज्ञकी आगि बुझाई।
ऋत्विक् लीन्हे पकरि धमाधम करी कुटाई॥
भृगुकी दाढ़ी मूँछ सफाचट करी उखारी।
भगकी फोरीं आँखि बतीसी पूषा झारी॥
प्रजापतिनिके जज्ञमें, जिनि जैसें शिवकूँ लख्यो।
दक्षयज्ञमें तिननि तस, ततछिन तांको फल चख्यो॥

सबतें पीछे शम्भुससुरकी बारी आई।
वीरभद्रने पटकि दक्षपै खड्ग चलाई॥
किन्तु न मार्यो-मरै सबनिकूँ चिन्ता व्यापी।
कौन जतनतें मरै सती-घाती जिह पापी॥
सहसा सूझी युक्ति इक, बलि पशु सम सिर मोरिकें।
फेक्यो जरती अगिनिमें, धड़तें सिरकूँ तोरिकें॥

शौनक पूछें—'सूत! कलहको बीज बताओ।
मान्यों कस शिव वैर दक्षने सो समुझाओ॥
सूत कहें—"मुनि! कलह कामनातें ई होवै।
काम क्रोधतैं उपजि सुमति सद्गुन सब खोवै॥
विधितैं उपज्यो काम जब, कामातुर ऋषि मुनि भये।
बरजे जब श्रीशम्भुने, तब सब लज्जित है गये॥

विधिने आज्ञा दई काम शिव चित्त बिगारौ ।
निरविकार श्रीशम्भु काम का करै विचारौ ॥
मलयानिल सुबसन्त सबनि मिलि शक्ति लगाई ।
किन्तु मलिनता नहीं महेश्वर मनमहँ आई ॥
अपनों-सो मुँह मदन लै, ब्रह्मादिक ढिँग फिरि गयो ।
निस्पृहता सुनि शम्भुकी, सबको मन विस्मित भयो ॥

दत्त कर्यो तप महाशक्ति आराधीं विधिवत ।
प्रकटीं जगकी मातु कह्यो वर माँगो इच्छित ॥
दत्त कह्यो मम गेह प्रकट है चरित दिखाओ ।
शम्भु संग करि ब्याह प्रेमको मरम जताओ ॥
"एवमस्तु" माता कह्यो, दै वर अन्तरहित भईं ।
ते ई रुद्राणी सती, दत्त कुमारी बनि गईं ॥

शिव होवें मम नाथ करें व्रत सती कुमारी ।
विधिसन सुनि शिव प्रकट भये जहँ दत्त दुलारी ॥
देखि तेज, तप, शील शम्भुके मन अति भाईं ।
नित्य शक्ति निज जानि शिवा सहचरी बनाईं ॥
चन्द्र चन्द्रिका प्रभा रवि, सम अभिन्न दोऊ भये ।
दत्तयज्ञके कलहमें, प्राण सतीने तजि दये ॥

सुनिकें शौनक कहें—कथा अब सूत ! सुनाओ ।
पिटि कुटि देवनि कर्यो कहा सो बात बताओ ॥
सूत कहें—सब देव बहुत व्याकुल घबरावत ।
छिन्न भिन्न सब अंग गये विधिसन बिललावत ॥
घाव दिखावहिँ रोइ सब, अंग भंग जो-जो भयो ।
देखि दशा दयनीय बिधि, देवनिकूँ ढाढ़स दयो ॥

ब्रह्मा बोले—"बहुत बुरो तुम सबने कीन्हों।
यज्ञनिके जो ईश तिनहिँ मख भाग न दीन्हों॥
किन्तु भई सो भई शम्भुकूँ जाय मनाओ।
चरननिमहँ सब परौ यज्ञ पूरो करवाओ॥
ऋषि मुनि बोले—"कृपानिधि ! हम सब शिवतें बहु डरें।
हम सबकूँ सँग लै चलें, दारुन दुख सबको हरें॥

मानि सबनिकी बात चले विधि गिरि कैलासा।
जहँ फूले वर वृक्ष केतकी, पनस, पलासा॥
देव, यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध सब शिवकूँ सेवें।
पशुपति तिनकूँ सदा मनोवांछित फल देवें॥
बारह मास वसन्त जहँ, कुहू कुहू कोकिल करहिं।
विहरें, खग, मृग, विहँगवर, करि कलरव मनकूँ हरहिं॥

चहुँ दिशि देखे सिद्ध विविध साधन सब साधत।
जप, तप, जोग विराग आदितें हरि आराधत॥
ओषधितें इक सिद्ध अपर मंत्रनिकूँ जपिकें।
कोई ठाढ़े रहें बहुत नानाविधि तपिकें॥
सिद्धेश्वर शिवकूँ सदा, सेवैं सतत सुसिद्धगन।
पितर, देवता, ऋषिनिको, निरखि भयो अति मुदित मन॥

झरना झर झर झरहिँ मनों गिरि हँसिकैं बोलत।
कारे घूमें नाग मनहुँ नग इत उत डोलत॥
कल्पवृक्षकी उठी शाख हिलि मनहु बुलावहिं।
थकित पथिक लखि अतिथि भावतें दया दिखावहिं॥
आम, अनार, अशोक वर, वट, कदम्ब, पाटल, वकुल।
पीपर, पाकर, विटप शुभ, शोभें बहु शतदल कमल॥

कमल कुसुम अति सरल विमल सरवरमहँ सोहैं।
मँडरावैं मदमत्त मधुपगन मुनि मन मोहैं॥
रति विलासतैं थकित चकित सुररमनी न्हावैं।
तनु कुंकुमकूँ धोइ सलिलकुँ पीत बनावैं॥
कहुँ किन्नर, किंपुरुषगन, प्रानप्रिया निज सँग लिये।
तनु पुलकित उल्लसित हिय, डोलें गलबाहीं दिये॥

सम्मुख निरख्यो विशद् विटपवर वटको सुखकर।
सौ योजन अति सघन स्वच्छ सुन्दर अति मनहर॥
ता तरु तर तपयुक्त तापसनि मध्य महेश्वर।
भूतनाथ भगवान् विराजें शिव परमेश्वर॥
अक्षमाल गल चन्द्र सिर, जटा मुकुट श्रीगंग युत।
करहिं ज्ञान उपदेश हर, जो पूछहिँ कछु ब्रह्मसुत॥

सुनि विधिको आगमन उठे संभ्रम सह श्रीहर।
अगवानीकूँ गये चरनमहँ नायो निज सिर॥
करत दण्डवत देखि शम्भु विधि तुरत उठाये।
श्रद्धा भक्ति समेत प्रेमतैं हिये लगाये॥
बोले ब्रह्मा—देव ! तुम, मकरी सम जगकूँ रचहु।
रचि पालौ क्रीड़ा करहु, जब चाहो छिनमहँ हरहु॥

यज्ञ अधूरो भयो कृपा करि दक्ष जिवाश्रो।
भृगुकी दाढ़ी लगै देव भग नेत्र बनाश्रो॥
कस पूषा बिनु दाँत खायँ कछु युक्ति बताश्रो।
जस जानों तस प्रभो जज्ञकूँ पूर्ण कराश्रो॥
हर हँसि बोले—यज्ञपशु, को सिर शव धड़पै धरो।
जीवित होवे दक्ष—भृगु, दाढ़ी बकराकी करो॥

मित्र नेत्रतें निरखि भाग भग अपनो पावें।
पूषा सत्तू पिसे पोपले मुखतें खावें॥
अध्वर्यू निज भाग अश्विनी करतें लेवें।
टूटे जिनके हाथ सबहिँ पूषा कर जेवें॥
छिन्न भिन्न जिनके भये, अंग नये फिरितें लगें।
जाओ, सबके दुख दुरित, देखत देखत ही भगें॥

साधु साधु सब कहें शम्भुकी करें बड़ाई।
बोले ब्रह्मा—'विभो ! बिगारी बात बनाई॥
अब चलिकें सब साज सत्रके शीघ्र सजाओ।
फिरितें रोपौ ठाठ, यज्ञकूँ सफल बनाओ॥
विधि आयसु सिर धारि शिव, सबकूँ सँगलै चलि दये।
बकरा सिर धरपै धर्यो, तुरत दत्त जीवित भये॥

निरखे सम्मुख शम्भु दत्त हिय स्वच्छ भयो अति।
रुद्र-द्रोहको मैल धुल्यो वर विमल भई मति॥
सती सुताकी यादि प्रजापतिकूँ है आई।
वाणी गद्‌गद भई प्रेममें सुधि बिसराई॥
जैसे तैसे रोकि मन, बहुविधि शिव विनती करी।
दई सान्त्वना विविध विधि, ससुर लाज शिवने हरी॥

विधि हर आज्ञा पाइ यज्ञ आरम्भ कर्‌यो फिरि।
ऋत्विक, होता, सभ्य कुण्ड चहुँ ओर रहे घिरि॥
भूत, प्रेत संसर्ग जनित सब मेंटि मलिनता।
पुरोडास हरि अरपि करी सब विधि पावनता॥
पुरोडास हवि हाथ लै, ज्योंही दत्त ठढ़े भये।
ध्यान करत अखिलेश हरि, त्योंही परगट है गये॥

निरखि भये सब मग्न उठे शिव सुरनि सहित विधि ।
नव जलधर सम वरन हरन दुख दुरित दयानिधि ॥
क्रीट मुकुट अति सुघर पीतवर वसन विराजें ।
श्वेत छत्र अरु चँवर गले वनमाला भ्राजें ॥
शङ्ख, चक्र, असि, गदा, सर, ढाल, पद्म, सारंग, धनु ।
अष्टबाहु आयुध लसैं, गिरि फूली कन्नेर जनु ॥

इस्तुति प्रभुकी करें दक्ष, ऋत्विक्, विद्याधर ।
लोकपाल, सुर, इन्द्र, सिद्ध, ऋषि, मुनि, योगेश्वर ॥
यजमानी अरु अग्नि, यक्ष, गन्धर्व, विप्रगन ।
विविधि भाँति करि विनय लगायौ हरि चरननि मन ॥
सबकी सुन्दर सुनि विनय, अति प्रसन्न श्रीहरि भये ।
जैसी जाकी कामना, तैसे ताकूँ वर दये ॥

विप्र कहैं—हे विभो ! आपुई यज्ञ, सोम, घृत ।
मंत्र, अग्नि, कुश, समिध देव ! तुम बलि पशु अरु व्रत ॥
पुरोडास, यजमान आपुई हविकूँ पावें ।
नाम कीरतन करत यज्ञ त्रुटि सब नसि जावें ॥
प्यावें प्रेम पियूष प्रभु ! पुनि पुनि पैरनिमें परहिँ ।
शिवगणकृत विध्वंस मख, ताहि विभो ! पूरन करहि ॥

विष्णु भये सन्तुष्ट सबनिकूँ शिक्षा दीन्हीं ।
हौं, विधि, शिव सब एक भेदकी व्याख्या कीन्हीं ॥
सबई हरषित भये कर्‌यो आरम्भ यज्ञ फिरि ।
क्यौं न होहि मख पूर्ण जहाँ तीनिहु विधि, हर, हरि ॥
अति प्रसन्न है प्रजापति, शिवजीको पूजन कर्‌यो ।
सती यादि करि दक्षके, नेह नीर नयननि भर्‌यो ॥

फिरि सब विधिवत विप्र पितर पूजे ऋषि मुनि सुर ।
भयो यज्ञ परिपूर्ण, गये सब जन निज-निज पुर ॥
प्रजापतिनिके ईश दक्ष मनमहँ अति हरषें ।
बजें दुन्दुभी आदि कुसुम सुरद्रुमके बरषें ॥
दक्ष-यज्ञकी कथा जिह, विदुर ! यथामति सब कही ।
पूछो तुम जो हृदयमहँ, शंका अब जो कछु रही ॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाहमें दक्षयज्ञपूर्ति नामक सप्तम अध्याय समाप्त ।



अथाऽष्टमोऽध्यायः

[८]

विदुर कहें—गुरुदेव ! सती तो शक्ति सनातन ।
शिव तजि अनत न जाहिँ सुनी जिह प्रथा पुरातन ॥
कैसे तजिकें देह मिलीं फिरि कस शंकरकूँ ।
जिहि ध्यावत तनु तजहिं फेरि पाँवहिं तिहि वरकूँ ॥
सुनि बोले मैत्रेय मुनि, बिदुर ! सुनो इतिहास सब ।
हिमगिरि मैंनाकी सुता, सती भईं जस कहूँ अब ॥

मैंना सेवा करी सुतासम सती देहमें ।
प्रकटीं तनया होय मातु गिरिराज-गेहमें ॥
चन्द्रकला सम बढ़त निरखि पितु अति हरषाये ।
विरही शिव तप हेतु पास गिरिके इत आये ॥
सुनत शैल सेवा करन, सुता सहित शिव सन गये ।
कन्याकूँ कैंकर्य हित, गिरि अरपी हरषित भये ॥

शिव योगी निष्काम विकार न मनमहँ आवै ।
इत तारक इक असुर प्रकटि सब सुरनि सतावै ॥
शिव सुत मारैं जाहि सुरनि मिलि निश्चय कीन्हों ।
भेज्यो शिव ढिँग काम छार हरने करि दीन्हों ॥
शिवहित तप गिरजा करहिं, ताप युक्त सब जग भयो ।
आशुतोष सन्तुष्ट है, मनवांछित फल दै दयो ॥

विविधि भाँतितें करी परीक्षा शिव गिरजाकी।
दृढ़ निष्ठा लखि वरी, कामना पुरी प्रजाकी॥
विधि, हरि, सुर, गन्धर्व सबनि मिलि धूम मचाई।
शिवकी निरखि बरात स्वयं शोभा सकुचाई॥
नित्य शक्ति शिवकी प्रिया, अपनाई फिरतें वरी।
शिव दुलहा दुलहिनि शिवा, रति लखि पति हित पग परी॥

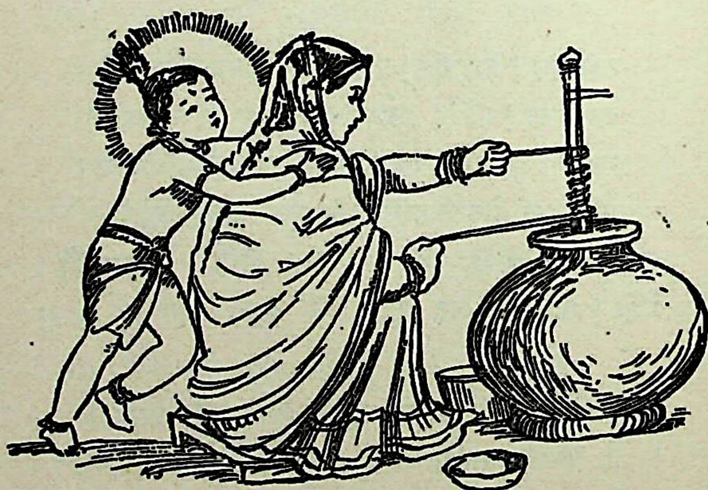
काली, गौरी भई हँसीमें कोप जतायो।
देवी दया दिखाइ मगरतें बाल छुड़ायो॥
गनपति और कुमार पुत्र द्वै अति ही प्यारे।
बाहन चूहो मोर भक्त भय हरिबेबारे॥
शक्ति युक्त शिव विविध विधि, लीला प्राकृतवत् करहिँ।
जाहि सुनहिं जे भक्तजन, तिनिके अघ छिनमहँ कटहिँ॥

स्वामिन्! पशुपति! प्रभो! दासके पाश छुड़ाओ।
जगदम्बा! माँ! उमाँ वत्सकूँ हृदय लगाओ॥
भटक्यो जगमहँ जनक! शरन चरननिमहँ दीजे।
माँ! अब गोद बिठाय चूमि मुख सुतको लीजे॥
यद्यपि हौं अति अधमहूँ, तऊ पिता! अपनाइ लै।
मैयो! साधन रहित सुत, कूँ हियतें चिपकाइ लै॥

है अधर्म विधि पुत्र मृषा है ताकी जाया।
द्वै तिनके सन्तान दम्भ सुत पुत्री माया॥
ते पति पतिनी बने लोभ शठता द्वै जाये।
दम्पति ह्वैकें तिननि क्रोध हिंसा उपजाये॥
हिंसा क्रोध विवाह करि, कलि दुरुक्ति जनि संतती।
अन्य युगनिमें छीन बल, होहिं बली कलिमहँ अती॥

कलि द्विरुक्तिने जने मृत्यु भय दोऊ बालक ।
दुलहा दुलहिनि बने क्रूर सब जगके घालक ।।
तिनि दोउनितें नरक यातना भये मूढ़मति ।
पापनिको दुख भोग करावें देहिँ दुःख अति ।।
जे अधर्मके वंशकूँ, स्वयं पढ़ैं सबतें कहैं ।
तिनके मनकी मलिनता, मिटै अन्त सुरपुर लहैं ।।

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाहमें अधर्म वंश वर्णन नामक
अष्टम अध्याय समाप्त



अथ नवमोऽध्यायः

[९]

दोहा—विदुर ! कहूँ अब ध्रुव-चरित, जिन कीये वश श्याम।
बालकपनमहँ घर तज्यो, पुनि पायो ध्रुव धाम ॥

छप्पय—शतरूपापति स्वायंभुव मनु तेज तपोयुत।
प्रियवत अरु उत्तानपाद तिनके द्वै शुभ सुत ॥
हों महिषीं उत्तानपादकी सुरुचि सुनीती।
किन्तु नृपतिकी अधिक सुरुचि पत्नीपै प्रीती ॥
सुरुचि पुत्र उत्तम जन्यो, नृपको अति प्रिय है गयो।
बड़ी सुनीति तिरस्कृता, तिनको शुभ सुत ध्रुव भयो ॥

परम सुन्दरी सुरुचि भूप वशमें करि लीन्हें।
ध्रुवकी मातु सुनीति दुःख ताकूँ बहु दीन्हें ॥
प्रभु सुमिरन नित करें पुत्रकूँ जिही सिखावें।
बेटा ! जगमहँ पुरुष भाग्यहीतें सब पावें ॥
हरि चिन्तन ही लाभ अति, हरि सुमिरन ही श्रेष्ठ सुख।
परम कष्ट हरि विसमरन, शरणागतकूँ कवन दुख ॥

एक दिनाकी बात गये ध्रुव महलनि भीतर।
उत्तमकूँ लै गोद मोदयुत बैठे नृपवर ॥
ललकि गोदमहँ चढ़न मनोरथ ध्रुवने कीन्हों।
किन्तु सुरुचि रुचि निरखि गोद सुतनृप नहिँ लीन्हों ॥
ध्रुव हियको इच्छा लखी, सौतेली माँ हँसि परी।
सुमिरि सौतियाडाहकूँ, ध्रुव माँकी निन्दा करी ॥

बालकतें यों बिहँसि बिमाता बोली बानी ।
बेटा ! व्यर्थ विषाद करै तू अति अज्ञानी ॥
यद्यपि राजा तनय किन्तु मम कोखि न जायो ।
तू सुनीतिके गरभमाँहि किहि अघतें, आयो ॥
अब तप करि मम उदरतें, लेहि जनम सम्भव जबहिं ।
उत्तम सम नृप अङ्कमहँ, बैठि सकैगो तू तबहिं ॥

सुनत विमाता वचन क्रोध ध्रुवकूँ अति आयौ ।
फरके दोऊ ओठ रोष सब तनमहँ छायौ ॥
खिसियानों फिरि रोइ मातु ढिँग चल्यो रिस्यानों ।
मार्‌यो बालक सर्प दण्डतें मणिधर मानों ॥
रुदन करत निज सुत लख्यो, दौरि गोद माता लयो ।
सुत मुखपै निज मुख धर्‌यो, चूम्यो पुनि धीरज दयो ॥

बोली—बेटा ! बात बतादै क्यौं तू रोवै ?
क्यौं निकासिकें नीर नयनको काजर धोवै ?
पुनि पुनि पूछे मातु बात कछु नाहिँ बताई ।
तब पुरवासिनि कथा आदितें अन्त सुनाई ॥
सुनि सुनीति सब सौतिकी, सुत संबन्धी दुख कथा ।
झुरसि अनलतें ज्यों लता, गिरै भई त्यों हियव्यथा ॥

सुत समुझायो मातु कृष्ण दुख दूरि करिङ्गे ।
वे अनाथके नाथ शोक संताप हरिङ्गे ॥
कमलनयन बिनु नाहिँ ताप-त्रय हरिवेवारो ।
दीनबन्धु बिनु वत्स ! हमारो कौन सहारो ॥
जो समृद्धि सुख परम पद, चाहो तो हरिपद गहहु ।
रटि रसना हरि रूप दृग, सुमिरि चरित मधुवन बसहु ॥

सुनी मातुकी बात पुत्र सुनि धीरज धार्यो ।
ऊँच नीच सब सोचि फेरि करतव्य विचार्यो ।।
जननीतें ध्रुव कहें—मातु अब आज्ञा दीजे ।
पथ मंगलमय होहि कृत्य अब सोई कीजे ।।
माँ इकलौते तनयकूँ, हिय लगाय आशिष दई ।
पितुपुरतैं ध्रुव चलि दये, फैलि बात घर-घर गई ।।

दये प्रलोभन बहुत न ध्रुव फिरि घरकूँ गदे ।
दुख वन पथके सोचि करी नहिं शंका हिरदे ।।
ज्योंही आगे बढ़े मिले मुनि नारद ज्ञानी ।
जग उपकारक देव बात ध्रुव मनकी जानी ।।
अघहर कर सिरपै धर्यो, बोले—बेटा ! बाल तू ।
अरे ! मान अपमान का, क्रीड़ासक्त कुमार तू ।।

बेटा ! जगमें जीव भाग्यतें दुख सुख पावै ।
जा घर अपने लौटि व्यर्थ च्यों धक्का खावै ।।
ध्रुव बोले—हे विभो ! बात नहिं बैठे मनमें ।
वाक बाण बहु विँधे विमाताके मम तनमें ।।
घर लौटूँगो तबहिं जब, सर्वोत्तम पद पाउँगो ।
नहिं तो मुनिवर ! घोर तप, करत करत मरि जाउँगो ।।

मुनि प्रसन्न अति भये देखि दृढ़ता बालककी ।
बोले—बेटा ! बात मातुकी अति ही हितकी ।।
सब रोगनिकी एक औषधी हरि पद-सेवन ।
जा कालिन्दी कूल धाम जहँ मनहर मधुवन ।।
गोवरधन गिरिवर जहाँ, कृष्ण करें क्रीड़ा कलित ।
ललित कुञ्ज झुकि झूमिकें, चूमें हरि पद-रज सतत ।।

जा करि मधुवन वास आश जगकी तजि दीजो ।
कालिंदीमें तीन काल मज्जन नित कीजो ।।
यम नियमनिकूँ साधि बाँधि आसन जो सुखकर ।
पूरक कुंभक और नित्य रेचक करियो वर ।।
मन, इन्द्रिय अरु प्रान मल, मेंटो प्राणायामतैं ।
प्रत्याहार सम्हारिकें, चित्त लगय्यो श्यामतैं ।।

धरियो हरिको ध्यान भान जगको नहिं होवै ।
श्रीहरिको शुभ ध्यान दुःख जगके सब खोवै ।।
मधुमय सुखकर मृदुल सुधासम मनहर वैंना ।
सुन्दर लोल कपोल कमलमुख विकसित नैंना ।।
कर कङ्कण केयूर वर, कुंडल काननिमें लसें ।
करुनासागर प्रनतप्रिय, मन्द मन्द माधव हँसें ।

करतल, पदतल, ओठ, अधर अति अरुन मनोहर ।
मन्द मन्द मुसकान सजल जलधर वपु प्रियतर ।।
काञ्चनकी कमनीय करधनी कटि में भ्राजें ।
शङ्ख चक्र अरु गदा पद्म करकमलनि राजें ।।
यों बेटा ! भगवान को, ध्यान करेगो नेमतें ।
तो निश्चय करुनायतन, प्रकट होयँगे प्रेमतें ।।

पूजा प्रभुकी प्रेम सहित करियो मधुवनमें ।
धरियो जो कछु मिलै भावतें हरि—चरननमें ।।
तुलसीदल, जल, फूल, मूल फल जो मिलि जावें ।
भाववस्य भगवान् प्रेमतें सोई पावें ।।
गोवरधनकी शिला वा, वटिया शालिगरामकी ।
करियो सेवा नेमतें, कृपा होहि घनश्यामकी ।।

द्वादश अच्छर सरिस श्रेष्ठ है मन्त्र न दूजो।
वाहीतें फल फूल सहित हरिकूँ नित पूजो॥
करि आवाहन प्रेम सहित आसन फिरि दैयो।
पाद्य अरघ आचमन स्नान जलतें करवैयो॥
वस्त्र और उपवीत दै, गंध धूप दीपादि करि।
तब नैवेद्य फलादि मुख, शुद्धि फेरि द्रव्यादि धरि॥

करिकें पूजा विविध भाँतितें विनती करियो।
यों सब मनके मैल मेंटि चितमें हरि धरियो॥
जो नर पूजैं भावभक्तितें बेटा! उनकूँ।
मन वांछित फल देहिं कल्पतरु सम हरि तिनकूँ॥
अरथ धरम अरु काम सुख, मोच्छ देहि आश्रितनिकूँ।
किन्तु न चाहैं भक्त कछु, केवल चाहैं भक्तिकूँ॥

शिच्छा दीच्छा पाइ गमनकी आज्ञा लीन्हीं।
अति प्रसन्न ध्रुव भये दण्डवत् चरननि कीन्हीं॥
मुनि सिरपै कर धर्यो, दई आज्ञा हिय हरषे।
दृढ़-प्रतिज्ञ ह्वै चले सुमन नभतें बहु बरषे॥
करि प्रदच्छिणा प्रेमतें, बार बार बिनती करी।
ध्रुव तप हित बन चलि दये, तनु पुलकित सुमिरत हरी॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाह में ध्रुव वनगमन नामक
नवमाँ अध्याय समाप्त।

अथ दशमोऽध्यायः

[१०]

इत सोचैं उत्तानपाद नृप महलनिमाहीं ।
च्यौं गोदीमें चढ़त पुत्रकूँ लीयो नाहीं ।।
हाय ! कुमति मन बसी फूल-सो लाल गँवायो ।
यों सोचत मन दुखित कमल मुख नृप कुम्हलायो ।।
ध्रुवकूँ इत करिकें विदा, नारद मुनि नृप ढिँग गये ।
विधिवत मुनि पूजा करी, अति हरषित भूपति भये ।।

पूछें नारद—नृपति ! कमल मुख च्यौं मुरझायौ ।
अरथ धरम अरु काम अपर करतव्य नसायौ ।।
ह्वेकें नृप अति दुखित कहें—"हौं नाथ ! अभागी ।
नारीके वश भयो कानि कुलकी सब त्यागी ।।
प्रमदा क्रीड़ामृग बन्यो, सुधि बुधि मेरी नसि गयी ।
कुसुम सरिस सुकुमार सुत, तज्यो कुमति मन बसि गयी ।।

हँसि नारद मुनि कहैं—नृपति ! चिन्ता नहिं कीजै ।
प्रभु सरबज्ञ समर्थ चित्त तिनि चरननि दीजै ।।
सुत प्रभाव नहिं विदित सुयशतैं भुवन भरैगो ।
करि न सकैं जो लोकपाल सो काज करैगो ।।
ह्वै कृतार्थ अति वेगि ही, तब चरननिमहँ आइगो ।
त्रिभुवनमहँ विख्यात ह्वै, यश तुम्हार फैलाइगो ।।

कहि सब सुत संबाद भये अन्तरहित मुनिवर।
नृप हिय फाटन लग्यो गये ध्रुवकी माता घर॥
परे पैर झट खींचि देवि चरननि लिपटानी।
सुरुचि स्वच्छ हिय कही सेविका हौं तुम रानी॥
त्याग बिना सुख होहि नहिं, त्याग प्रेम विकसित करत।
गृह तजि ध्रुव जब बन गये, तब तीनिहु हिलिमिलि रहत॥

इत ध्रुव आयसु पाइ गये पावन मधुबनमें।
अधिक चटपटी लगी कृष्ण दरशनकी मनमें॥
कालिन्दीके कूल पहुँचि अतिशय सुख पायो।
असित सलिलमें न्हाय खा दिना कछु नहिं खायो॥
तरणितनूजा तट बसहिं, हिय लागी लौ श्यामतें।
अब तक वह थल ख्यात है, ध्रुवटीलेके नामतें॥

फल फूलनितें लदे नम्र पादप जहँ मनहर।
शुक पिक मत्त मयूर करें कोकिल कलरव-वर॥
स्वच्छ सलिलतें भरे सरोवर सुखकर जहँ तहँ।
तिनमें विकसित कमल भ्रमरगन गुंजें जिनमहँ॥
कालिन्दीकी कलितधुनि, सुनि सब संशय भगि गये।
ऐसे मधुबनमहँ निवसि, ध्रुवजी अति प्रमुदित भये॥

करहिं कठिन तप सततचित्त प्रभु चरन लगायो।
कछु दिन तीसर दिवस फेरि कछु छटवें खायो॥
नौदिन बारह दिवस अंतमहँ भोजन त्याग्यो।
वायु खाइकें रहें ध्यान भगवतमहँ लाग्यो॥
एक पैरतें ठूँठ सम, निश्चल ह्वैकें थिर भये।
सब थल निरखें श्यामकूँ, तन्मय हरिमें ह्वै गये॥

रोके इन्द्रिय द्वार चित्त इतउत न चलायौ।
बिश्वम्भर हियधारि ध्येयमें ध्यान लगायौ॥
रुकी सबनिकी स्वाँस जीव सबई घबराये।
डगमग डोले धरनि लोकपालहुँ अकुलाये॥
सोचें असमयमें प्रलय, किहि कारन जगमें भई।
हेतु कहा सहसा अबहिं, स्वाँस सबनिकी रुकि गई॥

दीनबन्धु के द्वार गये दौरे देवादिक।
हाथ जोरि सब कहें—प्रभो ! जगके प्रतिपालक॥
भयो कहा जिह देव ! चराचर च्यौं दुख पावैं।
सबकी स्वाँस प्रस्वाँस च्यौं नहीं आवैं जावैं॥
शरणागतवत्सल बिभो ! भयहारी सब भय हरहिं।
बेगि छुड़ावहु बिपतितैं, बार बार बिनती करहिं॥

सुनि देवनिकी बिनय कहें प्रभु—मत घबराओ।
भयकी नहिँ कछु बात न चिन्ता मनमें लाओ॥
मचल्यौ मेरो बालभक्त इक अबई जाऊँ।
करिकें प्यार दुलार बिबिध विधतें समुझाऊँ॥
वाकबाणतें बिद्ध है, करे तपस्या कठिनतर।
मुँह माँग्यो बर देउँगो, सेवककूँ सब सुलभ बर॥

देव गये निजधाम सजे घनश्याम हमारे।
शङ्ख, चक्र, अरु गदा पद्म कर कमलनि धारे॥
पीताम्बर फहरात जात विद्युत सम चमकै।
मणिमय मनहर मुकुट अलक सँग दमदम दमकै॥
भक्त दरसकूँ व्यग्र अति, उपमा किहि सम देहि कबि।
गरुड़पीठि चढ़ि जाहिं ज्यों, अस्ताचलकूँ सहसरबि॥

माधव मधुबन लख्यो तहाँ थिर बालक ठाढ़ो।
देख्यो बालक हेज हियेमें हरिके बाढ़ो॥
अन्तरहित निजरूप हियेतें ध्रुवके कीन्हों।
इत उत निरखै नेत्र खोलि हरि सम्मुख चीन्हों॥
पर्यो दंडवत् भूमिमें, तनिक न तनकी सुधि रही।
तनु पुलकित गद्‌गद गिरा, प्रेम समाधि दशा लही॥

प्रेम मगन ध्रुव भये सतत श्रीहरिहिं निहारें।
इस्तुति कैसे करूँ विकल ह्वै बाल विचारें॥
जानी हरि हिय बात शङ्खतें बदन छुवायो।
भये वेदमय बचन ज्ञान विज्ञान लखायो॥
वेद शास्त्र सम्मत बचन, शङ्ख छुवत मनमहँ जगे।
गद्‌गद बानी मुदितमन, बिनती ध्रुव करिबे लगे॥

ध्रुव-स्तुति

जो सब हिय निवसहिँ घट घट प्रविसहिं, सब करननि विकसावैं।
जो एक अनूपा, सब जगरूपा, तिनि चरननि सिर नावैं॥

जो रचहिं जगतकूँ, करन असत्कूँ, जीव रूप ह्वै जावैं।
बनि एक अनेका, सबको लेखा, रखहिं फेरि भरमावैं॥

ते पुरुष अभागी, प्रभुपद त्यागी, विषय भोग जग माहैं।
जे तव पद ध्यावैं, पद तव पावैं, जनम मरन छुटि जाहैं॥

है कथा तुम्हारी, सब दुखहारी, जो नर सुनैं सुनावैं।
ते होहिं कृतारथ, भक्त यथारथ, भुक्ति मुक्ति ठुकरावैं॥

पुनि पुनि पद ध्याऊँ, यह बर पाऊँ, तव भक्तनि सतसंगा।
तव-जन अनुरागी, अतिबड़भागी, छिन छिन पुलकहिँ अँगा॥

तिनके तुम स्वामी, अन्तरयामी, सब तुममहँ मिलिजावैं ।
जिन अज शिव ध्यावैं, कमल कहावैं, तिनि चरननि सिरनावैं ॥

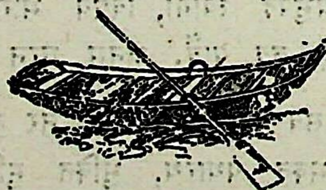
जो अज अविनासी, नित्य उदासी, जगहित धरि अवतारा ।
करि, पालि, सँहारैं, खलदल मारैं, होहि न नेंक विकारा ॥

तुमकूँ जो सरबस, अतिशय प्रियरस, समुझैं ते बड़भागी ।
हम मलिन मंदमति, दीन दुखित अति, विषयनिके अनुरागी ॥

कहुँ शरन न हमकूँ, जननी तुमकूँ, समुझि उतहिकूँ धावैं ।
पद पङ्कज मनहर, अघहर सुखकर, तिनमहँ शीश नवावैं ॥

सुनि बिनती हरि कहें करूँ—मन बाँछित तेरो ।
पावै दुरलभ श्रेष्ठ अन्त तू ध्रुवपद मेरो ॥
करि छत्तीस हजार बरष पृथिवीपै शासन ।
भोगो भोगनि किन्तु रहै मम चरननिमहँ मन ॥
यों बर दैकें बरद हरि, अन्तरहित छिनमें भये ।
करिकें पश्चात्ताप बहु, ध्रुव निज घरकूँ चलि दये ॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाहमें ध्रुवनारायण दर्शन नामक दसवाँ अध्याय समाप्त



अथ एकादशोऽध्यायः

[११]

कहें बिदुर—गुरु ! विष्णु दरस करि भयो ताप क्यों?
बोले मुनि—सुनि ध्रुवहिँ चित्तमहँ सोच भयो यौं ।।
अरे ! मोक्षपति पाइ मोक्ष मैंने नहिं मांगी ।
परुष विमाता बचन यादि करि ईर्ष्या जागी ।।
हाय ! नृपति ढिँग जाइ मम, माँगी चावलकी भुसी !
तुच्छ भोगहित भजे हरि, हिय कुबुद्धि कैसी घुसी ।।

हाय ! पाइकें लाल काँच लै ताहि गँवायो ।
हाय ! सुरनि मति भ्रष्ट करी ध्रुवपद अपनायो ।।
छै महिनामें मिले मोहि माधव मदहारी ।
तऊ न माँगी मुक्ति गई मेरी मति मारी ।।
माँग्यो सोनो एक पल, ढिँग सुमेरुके जाइकें ।
प्यासे गंगातट गये, पीयो पय न अघाइकें ।।

पूछें शौनक—"सूत ! दरश दुरलभ अति हरिके ।
पाये ध्रुवने मास मात्र छै ही तप करिके ।।
बहुत दिवस तक करत करत तप मुनि मरि जावें ।
किन्तु न झाँकी नटनागरकी छिनकूँ पावें ।।
कहें सूत—"मुनिवर ! सुनहु, होहि चरम जिनको जनम ।
नाम मात्र साधन करें, होहिं प्रकट पूरब करम ।।

एक करै तप सहस बरस परि सिद्धि न पावै ।
एक दिना दस करै सिद्ध चटपट ह्वै जावै ॥
एक राति दिन पढ़ै यादि संथा नहिं ह्वोवै ।
एक सुनतही यादि करै फिरि सुखतें सोवै ॥
पाप, पुण्य, दुष्कृत, सुकृत, होहिं उदित बहु जनमके ।
सिद्धि असिद्धि अधीन नहिं, ततछिन कीन्हें करमके ॥

पाँच दिना तप कर्‌यो भद्रतनु भये मित्र हरि ।
तिन गुरु तप अति कर्‌यो भये हरि दरश नहीं परि ॥
ऐसेही ध्रुव पूर्व जन्ममहँ हरि आराधे ।
जप, तप, संयम, नियम कृच्छ्र आदिक व्रत साधे ॥
संग दोषतें बिप्रतें, प्रकट राजकुलमें भये ।
मास षष्ट में सुकृत वश, सफल मनोरथ ह्वै गये ॥

मुक्ति चाह हिय होय संग विषयिनि को त्यागे ।
भोगनितें मन रोकि देखि कामिनिकूँ भागे ॥
जैसे जल थल नीच निरखि उतकूँई ढरके ।
तैसे भोगनि देखि चित्त उतकूँई सरके ॥
मुक्तिबन्धकी साधु खल, संगति सच्ची युक्ति है ।
बिषयिनिके सँग बन्ध है, साधुनिके सँग मुक्ति है ॥

पूर्वजन्ममहँ रहे तपस्वी ध्रुवजी मुनिवर ।
राजपुत्र सँग कर्‌यो विषय सुख लागे सुखकर ॥
चिन्तनमें आसक्ति बढ़ी विषयनिमहँ उनकी ।
इच्छा मनमें भई राजसी सुख भोगनि की ॥
अन्त समय मनमहँ रहै, जैसी इच्छा जासुकी ।
अपरजन्ममहँ भावना, पूरी होवै तासुकी ॥

काम करै कछु किन्तु न इच्छा फल की होवै।
सुखमें फूले नहीं दुःखमें दुखी न रोवै॥
कृष्णार्पण करि करै शुभाशुभ सौंपै उनकूँ।
करै करम करतव्य धरै हरि चरननि मनकूँ॥
कर्‌यो करूँ जो करुंगो, सब कछु प्रभु तुमई करो।
कर्त्ता भोक्ता हौं नहीं, कर्‌यो तुमनि तुमई भरो॥

जा विधि राखें राम रहें ताही विधि सज्जन।
जो करवावें करें भले ही निन्दें दुरजन॥
कृष्ण प्रीति ही करम कामना जगकी त्यागें।
प्रेम छाँड़िकें भक्त कृष्णतें कछु नहिं मागें।
ध्रुवजी यह सब सोचिकें, खिन्न मनहिं मन अति भये।
तप करिकें अपवर्गपति, तें जगके सुखई लये॥

पितानगर ध्रुव चले भाग्यकूँ दुरजय मानत।
इत नृप बार्ता सुनी सिद्ध ह्वै सुत पुर आवत॥
सुनत प्रेममें विकल भये निज भाग्य सराह्यो।
मानों मरि मम पुत्र मृत्युके मुखतें आयो॥
सुनत सुखद संबादकूँ, अति प्रसन्न भूपति भये।
अन्न, वस्त्र, धन, धान्य, मणि, मुक्ता विप्रनिकूँ दये॥

भूपति आयसु दई साज स्वागतके साजे।
शंख, दुंदुभी, पणव मांगलिक बाजे बाजे॥
वस्त्राभूषन पहिन कुमारी कन्या आवें।
दधि अक्षत लै फूल-खील ध्रुवपै बरसावें॥
आगे आगे विप्रगन, करत वेदध्वनि चलि दये।
मंत्री रानी सबनि लै, सुत स्वागत हित नृप गये॥

देख्यो उपवन निकट फूल सम सुतकूँ आवत ।
गावत गुन गोविन्द अमीरस-सो बरसावत ।।
उतरे रथतें झपटि तनयकूँ हृदय लगायो ।
बार बार मुख चूमि गोद में लाल बिठायो ।।
पर्यो पैरपै पुत्र जब, पुलकित सब अँग ह्वै गये ।
जनु प्रेमासव पान करि, भूप भाव भावित भये ।।

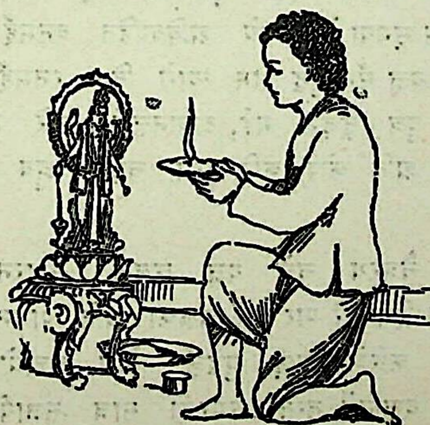
भेंटि पितातें तुरत मातुढिँग ध्रुवजी आये ।
दोऊ मातनि पैर कपट छल तजि लिपटाये ।।
भई सुनीती बिकल सुरुचि उठि आशिष दीन्हीं ।
भेंटे उत्तम ललकि मातु सुश्रूषा कीन्हीं ।।
मातु प्रेम मूर्च्छा तजी, सुतकूँ हिये लगाइकें ।
सिर सूँघ्यो चूम्यो बदन, कीन्हों प्रेम अघाइकें ।।

हथिनीपै इक संग चढ़े ध्रुव उत्तम भाई ।
धूम धामतें चले विविध विधि पुरी सजाई ।।
गली, द्वार, गृह, चौक, राजपथ झरे झराये ।।
केरा बन्दनवार बाँधि बहु भाँति सजाये ।।
दधि, अच्छत, फल, फूल, जल, पीरी सरसौं खील सब ।
छिरकें कन्या कुल वधू, ध्रुवजी जित जित जाहिं जब ।।

सबतें सतकृत भये गये महलनि के भीतर ।
लालित पालित भये जनक जननीतें ध्रुववर ।।
सब सुखके सामान सजे शालामें सुखकर ।
दुग्धफेन सम श्वेत सुखद शैया शुभ मनहर ।।
असन सरस अतिबर बसन, शोभायुत मणिमय भवन ।
विमल बाटिका कमलयुत, सर लखि होवै मुदित मन ।।

पाइ पिताको प्यार बिताई बाल अवस्था।
तरुन भये पितु संग करें सब राज व्यवस्था॥
सबकी सम्मति समुझि भूप सिंहासन दीन्हों।
मंत्री पुरजन प्रजा सबनि अभिनन्दन कीन्हों॥
राज्य भार ध्रुवकूँ दयो, नृप तपहित बनकूँ गये।
सुनत भूप ध्रुव अबनिपै, होवें मंगल नित नये॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाहमें ध्रुवराज्य तिलक नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।



अथ द्वादशोऽध्यायः

[१२]

बोली इक दिन मातु—बहू अत्र बेटा आवै।
मेरे पूजै पैर तोइ भोजन करवावै ॥
रुनु झुनु रुनु झुनु करति फिरै मन मोद बढ़ावै।
बहू संग लखि तोहि सफल जीवन ह्वै जावै ॥
हँसे जननि ममता लखी, मुदित मातु मन अति भयो।
कन्या भ्रमि शिशुमारकी, संग ब्याह ध्रुव करि लयो ॥

पुत्र भये द्वै कल्प और बत्सर सुखदाई।
दूसरि जाया इला पुत्र उत्कलकूँ जाई ॥
उत्तम मृगया हेतु गये अविवाहित बनमहँ।
भयो यक्ष सँग युद्ध प्रान त्यागे तिन रनमहँ ॥
सुरुचि पुत्र ढूँढ़न गई, दावानलमें जरि मरी।
यक्षनिपै अति कोप करि, तुरत चढ़ाई ध्रुव करी ॥

चढ़े चैत्ररथ चले यक्ष कुलकूँ संहारन।
देखी हिमगिरि पार पुरी अलका अति पावन ॥
धूधू करिके शङ्ख युद्धकूँ बेगि बजायो।
सुनि यक्षनिनें तुरत समरको साज सजायो ॥
लड़िबे आये यक्ष मिलि, नहिं अवसर ध्रुवने दयो।
मारे सबके सिरनि सर, बड़ बिस्मय सबकूँ भयो ॥

सबई मिलिकें यक्ष अकेले ध्रुवपै झपटे ।
चाप चक्र सम चले चहूँ दिशि चटचट चटके ॥
खड्ग, परिघ, तिरसूल, परश्वध, शक्ति, भुसुन्डी ।
चलें दनादन समरमाहिं विहरै रण चण्डी ॥
एक बार ध्रुवरथ ढक्यो, यक्षनि बाणनितें जबहिं ।
रवि नीहारहिँ फारि ज्यौं, प्रकटे रथ निकस्यो तबहिं ॥

ध्रुव फिरि मारे बान घुसे यक्षनिके तनमें ।
घायल ह्वैकें गिरे भगे गिरि बन उपबनमें ॥
फिरि प्रकटाईं विकट कपट माया शत्रुनिनें ।
ध्रुवकूँ नाम माहात्म्य जतायो स्वस्थ मुनिनिनें ।
तुरत चढ़ायौ धनुषपै, ध्रुव नारायण अस्त्रकूँ ।
यक्ष असंख्यहु मरि गिरे, बचे भगे तजि शस्त्र कूँ ॥

निरखि पौत्रको कृत्य दुखित मनु ध्रुव ढिंग आये ।
प्रेम भरे अति सरस बचन कहि कहि समुझाये ॥
बस, बेटा ! बध व्यर्थ न उपदेवनिको करि अब ।
बंशवृद्धिके हेतु न यक्षनितें तू लरि अब ॥
सहनशीलता दया अरु, मैत्री समतातें हरी ।
होहिं तुष्ट इन गुननितें, च्यौ हिंसा इनकी करी ॥

अरे, जगतमहँ कौन जिवावें को किन मारें ।
जगकूँ वेई रचें अंतमहँ वे संहारें ॥
जीवनिकूँ उपजाय जीवतें जीव जिवावें ।
मारें जीवनि जीव बड़े छोटनिकूँ खावें ॥
नहिँ यक्षनि तव बन्धुबध, कीन्हों सब हैं दैवबस ।
क्रोध बैरकूँ त्यागि अब, सब ईश्वरकृत समुझि अस ॥

लोकपाल शिवसखा, धनद यक्षनिके ईश्वर ।
क्षमा याचना करौ देहिंगे तुमकूँ शुभ बर ॥
जब तक करें न क्रोध पैरपरि बिनय सुनाओ ।
हाथ जोरि ह्वै नम्र शरन उनकी तुम जाओ ॥
विविध भाँति समझाइकें, मनु अन्तरहित ह्वै गये ।
करिकें पश्चात्ताप बहु, अति विनीत ध्रुवजी भये ॥

गुरुजन आज्ञा करें ताहि जे सिरपै धारें ।
छाँड़ें तर्क कुतर्क करें झट बिना विचारें ॥
ते जगमहँ धन धान्य सुयशके होवें भागी ।
अन्त परमपद पाहिँ बनें प्रभुके अनुरागी ॥
ध्रुव सुनि श्रद्धा सहित सब, मनु आज्ञा स्वीकृत करी ।
यक्षनि प्रति हिंसा जगी, ज्ञान अग्निमहँ सो जरी ॥

ध्रुवकूँ समुझ्यो शान्त धनद ढिँग उनके आये ।
बोले—बेटा ! बीरकाज करि काहि लजाये ॥
यक्ष न मारे तुमनि उननि नहिं उत्तम मार्‌यो ।
क्रूर काल सब करै कालतें सब जग हार्‌यो ॥
मनु आज्ञा मानी तुमनि, अति प्रसन्न मम मन भयो ।
बर माँगो मन भावतो; बिहँसि धनद ध्रुवतें कह्यो ॥

हाथ जोरि ध्रुव कहें—कृपा करुनाकर कीजे ।
हरि चरननिं अनुराग दयाकरि मोकूँ दीजे ॥
शंभुसखा सुनि कहें—सदा तुम भक्त भूपवर ।
कृष्ण चरनमहँ भक्ति तुम्हारी बढ़े निरंतर ॥
यों कुबेर बरदान दै; तत्छिन अन्तरहित भये ।
स्वप्न सरिस घटना भई, ध्रुव देखत हीं रहि गये ॥

आये निज पुर करे यज्ञ बहु वैभव बारे।
पुण्य भोगतें पाप यज्ञ तपतें सब जारे॥
सुत, दारा, धन, धान्य जानि नश्वर सब त्यागे।
राज पुत्रकूँ सौंपि सतत तपमें ई लागे॥
करे सुकृत सब सुख लहे, फिर ध्रुव वनबासी भये।
तजि सबरे गृह भोग सुख, बदरीबनकूँ चलि दये॥

बदरीबनमहँ जाय अलकनंदामें न्हाये।
ऋषि मुनि दीन्हें कंद, मूल, फल तेई खाये॥
रहें तहाँ ध्रुव करें साध्यहित नित प्रति साधन।
प्रेम भावमहँ मग्न निरन्तर हरि आराधन॥
परम प्रेमकी सब दशा, स्वतः प्राप्त तिनकूँ भईं।
द्रवित हृदय सागर बन्यो, अँखियाँ बर्षा बनि गईं॥

इक दिन लख्यो बिमान उतरतो नभतें आवत।
चकाचौंध-सी करत छटा चहुँदिशि छिटकावत॥
अरुण कमल दल नेत्र निहारे पार्षद हरिके।
करि प्रणाम ध्रुव उठे तुरत आये ढिँग उनके॥
ध्रुव जीत्यो हरिपद तुमनि, बोले नंद सुनन्द तब।
भेज्यो दिब्य बिमान हरि, चढ़ें करें नहिं देर अब॥

आज्ञा सबतें लई चढ़ूँ ध्रुव जिहो बिचारें।
आयो तबई काल—प्रभो! मोकूँ स्वीकारें॥
बोले ध्रुव—तू बैठ मान राखों तेरोऊ।
भक्त करें सत्कार चाहिं आवै ढिँग कोऊ॥
मृत्यु शीश पद दै चढ़े, हरि बिमान चट चलि दयो।
अपनो सो मोंहड़ो लिये, मृत्यु खिस्यानो रहि गयो॥

जब उड़ि चल्यो विमान यादि माताकी आई।
समुझि पारषद भाव मातु गति तिननि बताई॥
तुमतें पहिले जात मातु क्यौं चिन्तित होवैं।
क्यौं नहिँ पावैं सुगति जासु तुम सम सुत होवैं॥
सुनि अति हरषित ध्रुव भये, चित्त लगायौ श्याममहँ।
सप्त ऋषिनिकूँ पार करि, पहुँचि गये ध्रुव धाममहँ॥

ध्रुव जीत्यो हरि धाम जाइ नहिँ पापी पावें।
समदरशी शुभ शान्त शुद्ध जनइँ जहँ जावें॥
देवहु जिनके परम पुण्यको पार न पावें।
गुरुहू गुरता त्यागि शिष्य गुन गौरव गावें॥
धन्य धन्य ध्रुव धन्य तव, जननी मातु सुनीति है।
धन्य हृदय तुव जासुमहँ, प्रभुपदपंकज प्रीति है॥

सोरठा—नारद ध्रुव गुन गान, गुरु ह्वैकें गायौ मुदित।
बर बीनाकी तान, छेड़ि प्रचेतनि सत्रमहँ॥

पद

(१)

सुनीती धन्य जगत के माहीं।
जिनके लाल भक्त चूड़ामनि, जिन सम कोई नाहीं॥ सुनीती०
क्रोधित सुत समुझायो सब विधि, साँची सीख सिखाईं।
शिक्षा पाइ गये ध्रुव बनकूँ, अति मनमहँ हरषाईं॥ सुनीती०

जप व्रत साधे प्रभु आराधे, बनको मेवा खाइं।
प्रभु पद पायौ रोष गँवायौ, लखि ध्रुव सुरुचि सिहाइं॥ सुनीती०

(२)

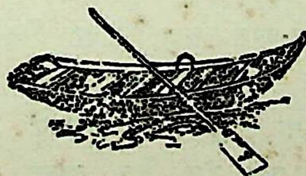
धन्य ध्रुव भक्तनि के सिरमौर।

सौतेली माँ वाकवाननें बेध्यौ हियो कुठौर॥ धन्य०
क्रोधित ह्वै वनकूँ चलि दीन्हें छोड़ी पितु की पौर।
बालक ह्वै हरि हियमहँ धारे, तजी आश जग और॥ धन्य०
मधुवन गये मानि मेरी सिख, हरिजू आये दौर।
प्रभुपद पायो दुर्लभ जगमहँ, पाइ सकै नहिँ और॥ धन्य०

छप्पय—अति पवित्र यह चरित जाहि जे निशिदिन गावें।
ते निश्चय नर नारि प्रेम प्रभुपदको पावें॥
जे श्रद्धातें पढ़ें सुनें पढ़ि सबनि सुनावें।
पाइँ परमपद पुण्य जगतमहँ नहिं फिरि आवें॥
बालसुलभ क्रीड़ा तजी, तप करि अक्षय पद लह्यो।
उन ध्रुवजी को विदुर! यह, विमल चरित तुमतें कह्यो॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाहमें ध्रुववैकुण्ठ पदाधिरोहण नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त।

(मासिक पारायण सप्तम दिवस विश्राम)



अथ त्रयोदशोऽध्यायः

[१३]

छप्पय—अति आनंदित भये विदुर बर बोले बानी ।
भगवन् ! ध्रुवकी कही, कलित कमनीय कहानी ॥
कहो प्रचेता कौन कहाँ शुभ सत्र रचायौ ।
कैसें नारद जाइ तहाँ ध्रुवको गुन गायौ ॥
सुनि अति पावन प्रश्नकूँ, हँसि बोले मैत्रेय मुनि ।
भये प्रचेता बंश ध्रुव, ताको बरनन विदुर सुनि ॥

ध्रुव के वत्सर पुत्र भये पुष्पार्ण तासु सुत ।
तिनके बेटा व्युष्ट सर्वतेजस् सुत तपयुत ॥
आकूतीमहँ पुत्र चक्षु मनु तिनके सुखकर ।
मनुके उल्मुक भये तिनहिँ के अंग पुत्रबर ॥
मृत्यु सुताको अंगने, पाणिग्रहण विधिवत् कियो ।
ताहीतें अति क्रूरतर, बेन पुत्र पैदा भयो ॥

सोरठा—भई क्रूर च्यौं मूढ़, मृत्यु सुता गुरुवर ! कहौ ।
विदुर प्रश्न सुनि गूढ़, कहन लगे मैत्रेय मुनि ॥

छप्पय—जो-जो कारज करत सदा माता पितु दीखें ।
वेई सबरे काज बालिका बालक सीखें ॥
सुता सुनीथा मृत्यु पिताकूँ सबकूँ मारत ।
निरखै नित प्रति दंड देत ताड़त हुंकारत ॥
तप सुशङ्ख बनमहँ तपत, मृत्यु सुता तहँ जाइकें ।
तड़ तड़ ताड़न नित करति, मारति तोत्र सिहाइकें ॥

वरजें बहुतं सुशङ्ख सुनीथा सदा सतावै।
दयो शाप अति क्रूर पुत्र तू दुष्टा जावै॥
भई खिन्न मुनिशाप समुझि नहिं ब्याह भयो जब।
तपहित बनमहँ गई अंग सँग मेल भयो तब॥
रम्भाने तिकड़म करी, अंग संग मन मिलि गयो।
भयो ब्याह रानी बनी, दुष्ट बेन ताकें भयो॥

अंग कर्यो इक राजसूय सुर नहिँ तिहिँ आये।
कारन पूछ्यो भूप विप्र अघ पूर्व बताये॥
तिनकी आज्ञा मानि यज्ञ पुत्रेष्टि रचायो।
यज्ञेश्वरतें भूप पात्र पायसको पायो॥
सूंघि सुनीथाकूँ दयो, खाइ गर्भ ताकें रह्यो।
गर्भवती रानी लखी, मन प्रसन्न सबको भयो॥

गर्भवती बनि सदा सुनीथा जिही विचारै।
होवे पापी पुत्र क्रूरता मनमहँ धारै॥
अङ्ग अङ्गको पाप सिमिटि वीरजमहँ आयौ।
शाप सुनीथा फल्यो क्रूरकर्मा सुत जायो॥
गर्भकालमहँ मातु जो, सोच सदा जैसो करै।
पूर्ण गर्भके होतईं, सुत पैदा तैसो करै॥

भयो पापमति बेन सदा मदमातो झूमे।
तीर कमन्टा लिये मृगनि मारत बन घूमे॥
छोरनि बाँधै दुष्ट ऐंचिकें जलमें डारै।
मगमहँ मूरख पकरि मार मुक्कनिकी मारै॥
शठता सुतकी सुनि सबहिं, दुःख अङ्गकूँ अति भयो।
सोचें मनुके बंशमहँ, कुल अलंक यह है गयो॥

समुझायो बहुभाँति किन्तु खल बेन न मान्यो ।
नहिं समुझैगो दुष्ट अंग यह निश्चय जान्यो ॥
सोचें कुलमहँ कोढ़ भयो खलमति सुत पापी ।
कैसे त्यागूँ जाहि जिही चिन्ता चित व्यापी ॥
कहा करूँ कछु बस नहीं, अब तजि घर हरिकूँ भजूँ ।
तबै दुष्टता जिह नहीं, तो बाकूँ हौं ही तजूँ ॥

निबिड़ तिमिरमय निशा नींद नृपकूँ नहिं आई ।
करिकें इत उत बात बेनकी मातु सुआई ॥
सबकूँ सोवत छोड़ि राजघरतें नृप निकसे ।
चन्द्रहीन लखि निशा अमित नभ उड़गन विकसे ॥
बनमे जा घरमें नृपति, बड़े भये राजा भये ।
केंचुल तजि अहि जाहि ज्यों, सुत दुखतें त्यों तजि गये ॥

ढुढ़वाये चहुँओर भूपको पतो न पायो ।
तब ऋषि मुनि मिलि दुष्ट बेनकूँ नृपति बनायो ॥
यद्यपि मंत्री सचिव सबहिं सहमत नहिं जाते ।
तऊ अंगको तनय मुनिनि नृप कीन्हों ताते ॥
एक गिलोय स्वभावतें, कड़वी फिरि नीमहिं चढ़ी ।
त्यों सिंहासन पाइकें, बेन दुष्टता अति बढ़ी ॥

फिरै निरंकुश भयो करै अपमान सबनिको ।
मानें बेद न यज्ञ करै पूजन न सुरनि को ॥
डोंड़ी दई पिटाय यज्ञ मख दान करो मति ।
मैंई इन्द्र, कुबेर, वरुण, यम, रुद्र, बृहस्पति ॥
मोइ छाँड़ि जे औरकूँ, जप तप करिकें भजिहैं ।
समुझो मेरे खड्गतें, प्रान तुरत ते तजिहैं ॥

जब नास्तिकता करत बेन घूमे भुवि माहीं।
तब सब ऋषि मुनि विप्र देवगन अति घबराहीं ।।
कहें परस्पर—दुष्ट देहि अति सबनि यन्त्रणा।
धरम करम कस होहिं करहिं मिलि विप्रमन्त्रणा ।।
सबकी सम्मति जिह भई, पहिले चलि समुझाइँगे।
जो नहिं माने मन्दमति, तो फिरि ताहि बताइँगे ।।

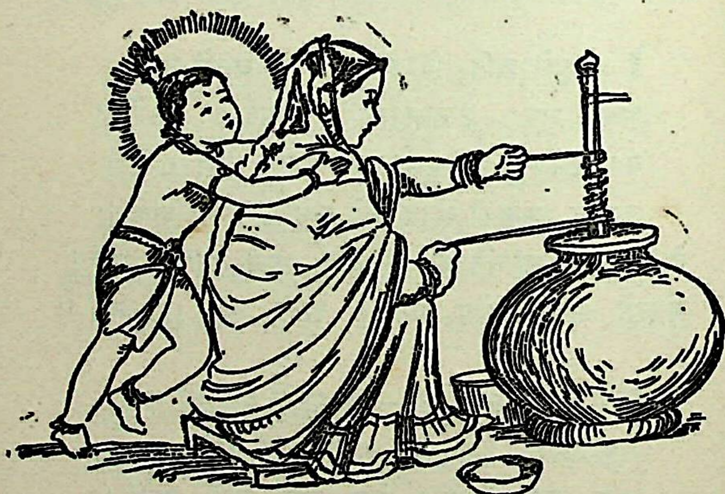
यों निश्चय करि गये भूपढिँग मुनि उपकारी।
बोले बचन विनीत—बेन ! सुनु विनय हमारी ।।
क्यों करवाये बंद यज्ञ, व्रत दान, धरम बर।
क्यों मेंटी मरजाद बेदकी अतिशय सुखकर ।।
राजन् ! तुमरे राजमहँ, होहिं यज्ञ जो विधि सहित।
तो होवें सबई सुखी, प्रजा व्याधि पीड़ा रहित ।।

है मनुको अति विमल बंश ध्रुव जनमे जामें।
भये भूप उत्तानपाद हरिपदरत तामें ।।
वर्णाश्रम शुभ धर्म करो पालन तुम ताकूँ।
उज्वल कुलकी कीर्ति करो कलुषित क्यों वाकूँ ।।
बेन कोपकी अगिनिमहँ, मुनिगण—बच घृत सम भये।
बोल्यो करिकें कोप अति, ये आये मम गुरु नये ।।

फिरि यों बोल्यो बेन—बड़े मूरख हो तुम सब।
मैंई सबको ईश मोइ पूजो तुम मिलि अब ।।
मोइ छोड़िकें और ईश कोई मति जानों।
मूरखताकूँ तजो, महेश्वर मोकूँ मानों ।।
जो अब बकबक करी तो, लुंगो जीभ निकारिकें।
जीवित चाम उतारिकें, भुस ढुँगो भरवाइकें ।।

सुनत कुपित मुनि भये पुकारें मारो मारो।
राजासनतें खेंचि दुष्टकूँ बेगि उतारो॥
पाइ परम ऐश्वर्य नीच अतिशय इतरावै।
करे वेद अपमान आज वाको फल पावै॥
यों कहि भरिकें क्रोधमें, सब मुनि मिलि हुंकृत करी।
तुरत वेनकी देह तहँ, प्रानहीन ह्वैकें गिरी॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाहमें बेन चरित नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त।



अथ चतुर्दशोऽध्यायः

[१४]

छप्पय—छाँड़ि ताहि निरजीव गये निज-निज आश्रम मुनि ।
मातु सुनीथा दुखित भई निजपुत्र मृत्यु सुनि ॥
राज्यमाँहि बहु भई अराजकता अतिभारी ।
लूट, पाट, व्यभिचार, कलह, चोरी अरु जारी ॥
मुनिनि देश देख्यो दुखी, दया हिये उमड़ी प्रबल ।
होहि तहाँ तप कस जहाँ, निरबलकूँ ताड़े सबल ॥

मुनि समदरसी शान्त, शान्ति हित सब पुर आये ।
देखि वेनको मृतकदेह अति हिय हरषाये ॥
वेन जाँघकूँ युक्ति सहित मुनि मथिवे लागे ।
निकस्यो कारो पुरुष निरखि मुनि नहिँ अनुरागे ॥
वेनदेह कल्मष कढ्यो, पृथक देहतें ह्वैगयो ।
मुनिनि निषीद कह्यो बचन, सो निषाद संज्ञक भयो ॥

मथीं भुजा फिरि युगल भये लक्ष्मीनारायन ।
पृथुल कीर्ति पृथु पुरुष अर्चि कमला जगपावन ॥
तेज, वीर्य्य, बल, प्रभा सुलक्षण लखि मुनि हरषें ।
गावें गुन गन्धर्व सुमन सुर नभतें बरषें ॥
दक्षिण करतें पृथु भये, वायेंतें लक्ष्मी भई ।
प्रभु प्रकटे सुनि प्रजाकी, चिन्ता सब ई नसि गई ॥

दोहा—वेद, विप्र, सुर, साधु मख, करि इनको अपमान ।
मर्‌यो वेन तब पुत्र बनि, प्रकट भये भगवान ।।

छप्पय—विप्रवृन्द करि बेदगान हियमहँ अति हुलसें ।
धेनु दूधकी धार बहावें सरसिज बिकसें ।।
स्वरगलोकतें सिद्ध पितर, सुर, मुनि मिलि आये ।
भये चराचर सुखी चहूँ दिशि बजत बधाये ।।
कमलासन विधि चरन कर, लखि लच्छन प्रमुदित भये ।
प्रकटे प्रभु पृथु रूपमहँ, सत्यलोक यों कहि गये ।।

मिलिकें मुनि वेदज्ञ करन अभिषेक लगे तब ।
बाजें तुरही शङ्ख राजसी साज सजे सब ।।
आये नदी, पहाड़, पेड़, पच्छी, पशु, पयनिधि ।
असन, बसन, मणि, रत्न, भेंट लाये बर बहुविधि ।।
कनक सिंहासन धनद शुभ, दयो छत्र बर बरुनने ।
वायु दये अति बर व्यजन, माला दीन्हीं धरमने ।।

लोकपाल सुरपाल सबनि मिलि सेवा कीन्हीं ।
जापै जो बर वस्तु हती ताने सो दीन्हीं ।।
स्वीकारे उपहार कर्‌यो सम्मान सबनिको ।
प्रजापाल प्रभु भये बढ़्यो उत्साह सबनिको ।।
सिहासन आसीन पृथु, सुर, नर, ऋषि, मुनि मन हरत ।
उमड़्यो आनँद दशहुँ दिशि, हिय हरषत जय जय करत ।।

मिलि मागध अरु सूत लगे विरदावलि गावन ।
तब लजित ह्वै लगे तिनहिँ हँसि पृथु समुझावन ।।
अरे ! मृषा गुन गाय समय च्यौं व्यरथ बिताओ ।
कीर्तनीय हरि एक तिनहिँ की कीरति गाओ ।।

पौंनी, सूत, कपास नहिं, अब प्रशंसा होय जस।
कीर्ति योग्य कछु कर्यो नहिं, करहु प्रशंसा फेरि कस ॥

सुनि सहमे सूतादि कर्यो संकेत मुनिनि जब।
तजिकैं सब संकोच करहिं गुन गान हरषि सब ॥
ये हुंहैं अति सहनशील शरणागतवत्सल।
परम तेज सम्पन्न एक सम समुझैं जल थल ॥
एक छत्र शासक सबल, सेवा सबकी करिहैं।
दुहिता करि धरनी दुहैं, कष्ट सबनिके हरिहैं ॥

प्रजापाल पृथु भये आइ बोले जन सब अस।
पृथिवीपै नहिं अन्न, करैं निर्बाह नृपति कस। ।
नृप सोचैं—सब बीज भूमि निज उदर छिपाये।
ताहीतें बिनु अन्न प्रजाजन अति घबराये। ।
भूख प्यास पीड़ित प्रजा, पृथु लखि चोट हिये लगी।
तानि धनुष मारन चले, धेनु रूप धरि भू भगी ॥

धरैं धनुषपै बान लखे पृथु भागी धरनी।
ज्यौं कर लीये पाश व्याध लखि भागे हरिनी ॥
त्रिपुर बिनाशन हेतु मनहुँ सर शंभु सजायौ।
धरमधेनु वधहेतु मनहुँ पंचानन धायौ ॥
मुरि मुरि निरखति भय सहित, जावै बसुधा जहाँ जहँ।
संधानें सर करें पृथु, पीछो ताको तहाँ तहँ ॥

बोली बसुधा—विभो ! व्यर्थ क्यौं मोकूँ मारौ।
अबला सदा अवध्य ताहि फिरि क्यौं संहारो ॥
बिना बात क्यौं बान चलाओ बात बताओ।
निरपराधिनी मोइ मारिकें का तुम पाओ

पृथु बोले—दुष्टे धरनि ! तोपै बान चलाउँगो ।
सबकूँ सुखी बनाउँगो, यमपुर तोहिं पठाउँगो ॥

धरनी धरिकें धीर बीरतें बोली बानी ।
मोइ न मारें नाथ ! आपु ज्ञानी विज्ञानी ॥
गऊ तिहारी बनी सबनितें दूध दुहाओ ।
दुहनी दोग्धा लाइ बीरवर बत्स बनाओ ॥
युक्ति सहित यदि दुहेंगे, तो इच्छित फल देउँगी ।
प्रकट सबहिं औषधि करूँ, दुहिता बनि यश लेउँगी ॥

सुनि बसुधाके बैंन बेन-सुत दुहिवे लागे ।
मनुकूँ कीयो बत्स पात्र कर कीयो आगे ॥
सुर-गुरु दोही इन्द्र बत्स करि कनक पात्रमहँ ।
अमृत रूप जो दुग्ध, ओज बल बीर्य गात्रमहँ ॥
असुर दैत्य प्रहलादकूँ, बछरा गौके करि लये ।
लोह पात्रमहँ सुरा अरु, आसव दुहिकें भगि गये ॥

विश्वावसु करि बत्स दुह्यो संगीत अप्सरनि ।
कपिल बत्स नभ पात्र सिद्धि लीन्हीं दुहि सिद्धनि ॥
करे रुद्रवर बत्स भूत प्रेतादिक गणने ।
लै कपालई पात्र दुह्यो रुधिरासव सबने ॥
पात्र बत्सके भेदतें, दुग्ध सबनि अभिमत लयो ।
तब पृथुनें पुत्री करी, पृथ्वी नाम तबहिं भयो ॥

ऊबड़ खाबड़ भूमि परी कहुँ पर्बत भारी ।
ऊँची नीची कहूँ कहूँ जंगल कहुँ झारी ॥
लैकें पृथुने धनुष करी चौरस सब वसुधा ।
गिरि उत्तर दिशि चुने करी खेतीकी सुबिधा ॥

भूमि समान करी नृपति, घर, पुर पत्तन रचे तब ।
पहिले हते न नगर पुर, इत उत तरु तर बसें सब ॥

रचे नगर अरु ग्राम भवन, गृह अटा अटारी ।
वापी कूप तड़ाग राजपथ अति सुखकारी ॥
नगरनि सीमा बनी पृथक सब प्रान्त बनाये ।
मंडलीक भूपाल सबनिके दुर्ग सुहाये ॥
करी व्यवस्था सबहिं विधि, दुःख सबनिके मिटि गये ।
राज्य नियामक नृपति, पृथु, आदि राज भूके भये ॥

सुखी भये नर नारि बने घर सुखद सुहाये ।
मिटे दम्भ पाखंड धरम प्रिय अति हरषाये ॥
वेद पढ़ें द्विज करें प्रजा पालन भूपति गन ।
कृषि गोपालन बनिज वैश्य करि जोरें सब धन ॥
करें शूद्र सेवा सतत, बरन व्यवस्था पुनि भयी ।
पृथुल कीर्ति पृथुकी विदित, वसुधा बेटी बनि गयी ॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाहमें पृथुराज्याभिषेक नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।



अथ पञ्चदशोऽध्यायः

[१५]

वर्णाश्रमकी मिटी व्यवस्था थापित कीन्हीं ।
ये सब करिकें काज यज्ञ शत दीक्षा लीन्हीं ॥
बहे सरस्वति जहाँ पुण्यप्रद भूमि सुहावन ।
गंगा यमुना मध्य ब्रह्मऋषि सेवित पावन ॥
मखपूजा त्रेता कही, अश्वमेध तातें करहिँ ।
कालक्षेप करि देहिं सिख, करहिं अनुकरन भव तरहिँ ॥

होहिं यज्ञ अति विषद करें सुरगन सब सेवा ।
देहिं वृक्ष बहु मूल, फूल, फल, मधुमय मेवा ॥
दूध, दही, घृत, तक्र, खीरि सरिता सब लावें ।
रुचि प्रिय परम पदार्थ प्रेमतें पंडित पावें ॥
हलुआ पूरी जलेबी, माखन मिसिरी जो चहो ।
खाओ पीओ पेट भरि, तानि दुपट्टा सो रहो ॥

यों नौ नब्बे यज्ञ भये अन्तिम जब आयौ ।
इन्द्रासन मम लेहिं अमरपति पेट गिरायौ ॥
वेष बदलिकें विघ्न करन मख अश्व चुरायौ ।
चोरी करिकें चल्यो अत्रि मुनि तुरत लखायौ ॥
करनी सुरपतिकी लखौ, विषय भोग दुख मूल हैं ।
जे विषयनि अनुकूल ते, मोक्ष मार्ग प्रतिकूल हैं ॥

चोर इन्द्रकूँ अत्रि दिखायौ पृथु कुमारकूँ।
वत्स! वेगि जा पकरि पुरंदर चोर जारकूँ॥
सुनत राजसुत शीघ्र शक्रकी ओर सिधार्यो।
साधु समुझिकें सहृद कुमर फिरि नहिं सर मार्यो॥
अश्व विजय करि इन्द्रतें, लायौ सुख सबकूँ भयो।
ऋषि मुनि मिलि विजिताश्व वर, नाम कुँवरकूँ तब दयो॥

इन्द्र हृदयमहँ मची कुलबुली बिगरे मख कस।
अबकें चुपके जाइ अश्व लाऊँ सोच्यो अस॥
अंधकार करि पकरि अश्वकूँ सुरपति भाग्यो।
अत्रि कीन्ह संकेत कुमर फिरि पीछे लाग्यो॥
साधुवेष लखि फिर कुमर, हिचक्यो मुनि मारो कह्यो।
छोड़्यो शर विजिताश्व तब, अन्तरहित शतक्रतु भयो॥

मख विध्वंसन हेतु इन्द्र जो वेष बनाये।
ते पाखंडिनि चिन्ह ऊपरी परम सुहाये॥
जटाजूट बनि नग्न लाल अरु श्वेत पहिन पट।
यही मोक्षको मार्ग अज्ञ नित करहिँ सतत हट॥
तम प्रधान विद्यारहित, मानें धर्म अधर्मकूँ।
लिङ्ग धर्म कारन नहीं, समुझें नहिं जा मर्मकूँ॥

समुझी शक्र कुचाल क्रोध नृप पृथुकूँ आयो।
इन्द्र मारिबे हेतु धनुष अरु बान उठायो॥
ऋत्विज बोले—विभो! विहित वध अब नहिं तुमकूँ।
हम सब कछु करि सकें देहिँ आयसु यदि हमकूँ॥
मंत्र शक्तितें शक्रकूँ, अबई यहाँ बुलाइँगे।
स्वाहा करिकें अग्निमें, यमपुर ताहि पठाइँगे॥

क्रोधित ह्वै पृथु कहें,—अवशि देवेन्द्र जराओ।
पढ़े विप्रवर मंत्र, अमरपति आओ आओ॥
गिरे स्वर्गतें इन्द्र कलामुंडी-सी खावत।
देखे सबने शक्र खिंचे पशु सम मख आवत॥
दौरे आये पितामह, अरे, अरे, का करत हो।
यज्ञ रूप इन इन्द्रके, व्यर्थ प्रान क्यों हरत हो॥

भैय्या श्रद्धा सहित जिन्हें मखमाँहि बुलाओ।
काहे तिनकूँ विप्र! अग्निमहँ आजु जराओ॥
राजन्! छोड़ो बैर व्यर्थ मति बात बढ़ाओ।
अब हठ करि पाखंड जगतमहँ मति फैलाओ॥
सौ मख करि का करोगे, मोक्ष मार्गके पथिक तुम।
बच्छा राखो इन्द्रकी, सबके हितकी कहहिं हम॥

विधि आज्ञा सिर धारि यज्ञ पृथु बन्द करायौ।
गुरु गौरवकूँ मानि बात आगे न बढ़ायौ॥
जो जो मखमहँ देव विप्र ऋषि मुनिवर आये।
सबको करि सत्कार विविध विधि दान दिवाये॥
पाइ दान सम्मान बहु, विप्र तुष्ट अतिशय भये।
दै आशिष अति मुदित ह्वै, अपने अपने घर गये॥

पृथु यज्ञनितें तुष्ट भये श्रीमधुसूदन अति।
भये यज्ञमहँ प्रकट शक्र लै संग यज्ञपति॥
पृथुतें पूजित भये फेरि बोले मृदु बानी।
राजन्! सबहिं कुचाल शतक्रतुकी हम जानी॥
हौं प्रसन्न तुमपै भयो, सिद्ध होहिं तव काज सब।
अति लज्जित यह इन्द्र है, जाहि क्षमा करि देहु अब॥

राजन् ! यह तनु नाशवान छिन भंगुर गुनमय।
आत्मा निरगुण शुद्ध सर्वगत साक्षी आश्रय ॥
करहिं दान तप धर्म विविध विधि यज्ञ रचावें।
करिकें अरपें मोहिं परमपद ते नर पावें ॥
पृथु ! पृथिवी पालन करो, मेरी सेवा जानिकें।
करहु प्रेम सब जननितें, सबमहँ मोकूँ मानिकें ॥

हरि आयसु सिर धारि चरनमहँ शीश नवायौ।
पर्यो पैरपै शक्र उठायो हिये लगायौ ॥
पुनि विधिवत अति प्रेम सहित प्रभु पूजा कीन्हीं।
अति प्रसन्न हरि भये प्रेमकी आशिष दीन्हीं ॥
हरि दरशन नहिं करि सकें, प्रेम अश्रु नयननि भरे।
कंठ रुद्ध निश्शब्द हरि-हियतें आलिंगन करे ॥

पृथु पकरे प्रभु पाद पदुम पावन अति मनहर।
स्रवे सदा मधु मत्त होहिं पी भक्त भ्रमर वर ॥
पलकनि पौंछि पराग नयन पयतें पुनि धोये।
नखद्युति के आलोक माँहि प्रिय पुनि पुनि जोये ॥
प्रभु प्रभुपनकूँ भूलिकें, पग पृथिवी परसत भये।
भक्त और भगवान ऊ, दोऊ बेसुधि बनि गये ॥

भक्तवच्छल भगवान् कहें—नृपवर वर मागौ।
मोइ कृतारथ करौ निसपृहा ऐसी त्यागौ ॥
अश्रु पौंछि पृथु कहें—प्रभो ! अब यह वर दीजे ॥
होहिं सहसदश कान, प्रतिज्ञा पूरी कीजे ॥
घर बैठें सब ठौरतें, सुयस तुम्हार सुन्यो करूँ।
सुनत श्रवन गुन थकित नहिं, होहि हिये तव छवि धरूँ ॥

सुयश सुधा मकरंद चरन कमलनितें निःसृत ।
साधु संग करि पान होहिं सबरो जग बिसमृत ॥
कमला जाके पान हेतु पगली-सी डोलें ।
सज्जन पीवहिँ सतत दूसरी बात न बोलें ॥
साश्रु नयन गद्गद गिरा, कहें परस्पर संतजन ।
इहि विधि हरि गुन श्रवन करि, अनत जाहि नहिं मोर मन ॥

पद्मा प्रभुके पाद पदुम प्रति पहर पलोटें ।
संत पुरुष ऊ सदा धूरि पगकीमहँ लोटें ॥
इच्छा मेरी जिही पलोटूँ तिनि पाइनिकूँ ।
करुनासागर कृष्ण ! कृतारथ करूँ करनिकूँ ॥
लक्ष्मी मोतें लड़िङ्गी, प्रभु तिनकूँ समुझाइलें ।
जगमाताकूँ घुड़किकें, सुतकूँ हिये लगाइलें ॥
जिन विषयनिकूँ छोड़ि भूमिपति वनकूँ भागें ।
तिनकूँ तुमरे दास भला क्यौं तुमतें मागें ॥
जगदीश्वर तुम जनक तनय हम नाथ तिहारे ।
तो फिरि जगके भोग आपु ई भये हमारे ॥
हौं बर माँगू जिही प्रभु ! तव पद पदुमनि प्रीति अति ।
सत्संगति हरि कथा रुचि, जग भोगनितें भीति अति ॥
पृथुकूँ सब बर दये भये अन्तरहित श्रीपति ।
करि सबको सम्मान चले पुरकूँ पृथिवीपति ॥
सुनत आगमन प्रजा गईं लैवेकूँ आगे ।
बीणा, बेनु, मृदंग बाद्य सब बाजन लागे ॥
ध्वजा पताकातें सजे, नगरमाँहिं आये नृपति ।
निजपति लखि चिरकालमहँ, भये मुदित नर नारि अति ॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाहमें पृथुयज्ञ नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।

अथ षोडशोऽध्यायः

[१६]

प्रविसे पुर पृथु करें, प्रजा सबको यों पालन ।
ज्यों माता पितु करें, नेहतें सुतको लालन ॥
महासत्र इक रच्यो धर्मकी वृद्धि करनकूँ ।
फैले नास्तिकभाव धरातें तिन्हें हरनकूँ ॥
देश देशतें सभ्यगन, आये जुर्यो समाज बर ।
तिनके सम्मुख कहन कछु, उठे भूप ज्यों दिवाकर ॥

अति सुन्दर अति मधुर भ्रान्तितें रहित बचन बर ।
बोले सबहिं सुनाय धर्म सम्मत अति हितकर ॥
सुनो शास्त्रको सार संत-मुख सुनी सुनाऊँ ।
सेवा सौंपी सबनि पुरुष करतब्य बताऊँ ॥
वेद बिहित सब यज्ञ तप, दान धर्म मिलि करहु अब ।
पितर, अतिथि, गुरु, देव, द्विज, पूजा सबकी करहु सब ॥

धन्य प्रजाके पुरुष करहिं जे पूजा प्रभुकी ।
ते अति आदरणीय करहि जे अर्चा बिभुकी ॥
धरम मूल हैं धेनु यज्ञ हित घृत जे देवें ।
दूसर भूसुर कहे वेद जे बिधिवत सेवें ॥
विप्र कमलपदरेणुकूँ, नित सिरतें धारन करहु ।
कृष्णार्पण करि करहु सब, करम व्यथा सबकी हरहु ॥

सुने वेन-सुत बैंन नैंन सबके भरि आये।
सुनि अभिभाषन साधु साधु सबई चिल्लाये ॥
उठे बृद्धसे पुरुष एक प्रतिनिधि परजाके।
धन्यबाद बहु दये मंचके ढिँगमहँ जाके ॥
पिता पुत्र द्वारा परम, प्राप्त पुण्य लोकनि करहिं।
भई सत्य बेदोक्ति जिह, पृथु पितुके पापनि हरहिं ॥

भये कृतारथ आजु हमनि अच्युत पति पाये।
प्रभो! धन्य मुनि भये अबहिं जो हरिगुन गाये ॥
जुग जुग जीवें नाथ सदा अस सीख सिखावें।
सुनि श्रीमुख हरि सुयश हृदय हमरे हुलसावें ॥
मति मलीन अति दीन हम, नहीं भेंट सम्मान है
केवल श्रद्धा सहित प्रभु! पद पदुमनि परनाम है ॥

सभामाहिँ सनकादि तबहिं नभ मारग आये।
प्रजा सहित पृथु उठे सबनि चरननि सिरनाये ॥
सिंहासन बैठाय बिबिध बिधि पूजा कीन्हीं।
राज, कोष, सम्पत्ति, देह अरपन करि दीन्हीं ॥
हाथ जोरि गद्‌गद गिरा, कहत बचन बिह्वल भये।
करे कृतारथ कृपानिधि! सुर दुरलभ दरसन दये ॥

अब हे दीनदयाल! मोक्षको मार्ग बताओ।
कस होवै कल्यान सरलतातें समुझाओ ॥
भटके भव मगमाँहि प्रभो! अवलम्बन देवें।
भवजल डूबत नाव आपु नाविक बनि खेवें ॥
तीनिहु तापनितें तपित, कबतें जगमहँ भ्रमि रहे।
दुखित देखि दरशन दये, भई शांति तव पद गहे ॥

बोले सनत्कुमार प्रश्न पृथुको सुनि करिकैं।
करहु होहि निस्संग काज सब हरि हिय धरिकैं॥
शास्त्र बचन गुरु दया भक्ति भगवत भक्तनिकी।
योग, ज्ञान, हरिकथा, टेव नित हरिकीर्तनकी॥
ऐसे और अनेक हू, हैं उपाय उत्तम अनघ।
करहिं तिनहिं जे प्रेमतें, होहि शुद्ध मन कटहिं अघ॥

बासुदेव भगवान् भक्तितें होवैं बश जस।
योग याग विज्ञान आदितें बश न होहिं तस॥
तातें तजि सब अन्य एक श्रीहरि आराधैं।
छाँड़ि क्लेशकर काज सुगम सो साधन साधैं॥
शेष न साधन तुमहिं कछु, सब तुम परहित करत हो।
ह्रास धरमको होहि जब, तब तब तुम तनु धरत हो॥

नृप पृथु सनत्कुमार मुखामृत पान कर्‌यो जब।
सब तनु पुलकित भयो कहें ह्वैकें प्रसन्न तब॥
प्रभो! सुधारस प्याइ कर्‌यो कृतकृत्य कृपानिधि।
पूजा प्रत्युपकार करहुँ हे मुनिवर किहि विधि॥
तन मन धन सब आपुको, का तुमकूँ अरपन करूँ।
तातैं श्रद्धा सहित तव, चरन कमलमहँ सिर धरूँ॥

विदुर! विष्णु-नट कुशल विविध विधि बेष बनावैं।
बनि ठनि जगमहँ स्वयं नचैं अरु सबनि नचावैं॥
जस जस बाने धरें आइ तस भाव दिखावैं।
सुर, नर, मुनि, गन्धर्व खेलको पार न पावैं॥
रङ्गमंच यह दृश्य जग, नाटक जगके काज हैं।
यह माया ठगिनी नटी, निरविकार नटराज हैं॥

भूमि विषम सम करी नगर पुर ग्राम बसाये।
जरा जानि जनराज तपोवन सब तजि धाये॥
पृथिवी पुत्री विरह व्यथामहँ अश्रु विमोचति।
तजी प्रजा सब दुखी विरहमहँ बिलखति रोवति॥
सबतें मुखकूँ मोरिकें, निरमोही भूपति भये।
पत्नी लीन्हीं संगमहँ, बानप्रस्थ बनि बन गये॥
बसिकें बनमहँ भूप अखिलपतिकूँ आराधें।
योग ध्यानमहँ निरत नियम व्रत मुनिके साधें॥
अति सुकुमारी. अर्चि करें सेवा सब तजि सुख।
पाणिपरस पति पाइ भुलावें बनके सब दुख॥
कछु दिन खाये भूप फल, कछु दिन पय पत्ता परे।
वायु खाय कछु दिन रहे, यों इन्द्रियगण बश करे॥
बेन-तनय तप करें, संग पतिंप्राणा लैकें।
भगवत चिन्तन करत प्रेम प्लावित हिय ह्वैकें॥
कर्‌यो बासना रूप बन्ध मन शुद्ध भयो जब।
अन्त काल ढिँग जानि ब्रह्ममय भये भूप तब॥
त्याग ग्यान बैराग्यतें, हृदय भक्ति भावित भयो।
तब अहि कैंचुल जीर्ण पट, सम भूपति तनु तजि दयो॥
अर्चि गई पति निकट देह निष्प्राण निहारी।
बिलखी पतिशव निरखि दुखारी भई विचारी॥
इंधन चुनि चुनि चिता सतीने स्वयम् बनाई।
विधिवत कीन्हें कृत्य देह पति सँग जराई॥
पृथु पत्नी सँग परम पद, विष्णु भक्ति ई तें लह्यो।
यों समासतें पृथु चरित, विदुर! यथामति हौं कह्यो॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाहमें पृथुवैकुण्ठगमन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त।

(मासिक पारायण—अष्टमदिवस विश्राम)

अथ सप्तदशोऽध्यायः

[१७]

बोले मुनि मैत्रेय—प्रचेता जनमे जस दश ।
कहूँ सुनो, पृथु तनय भये विजिताश्व पुण्य यश ॥
हविर्धान सुत भये वर्हिषद् तिनके आत्मज ।
शतद्रुति सँग करि ब्याह, धरी आज्ञा सिर पद्मज ॥
शील, रूप, गुण, वय, विनय, एक सरिस सबके भये ।
तातें सबई प्रचेता, एक नामके है गये ॥

सब सुन्दर सब सुघर सरिस सद्गुनहिं सबनिके ।
भये प्रचेता नाम एकसे सबके तिनिके ॥
पिता कहें तब एक संग सबई मिलि आवें ।
जाओ जावें संग संग सबई मिलि खावें ॥
एक प्राण दश देहमें, संचारन सँग सँग करत ।
मानों मन दश रूप धरि, करत काज जगमहँ फिरत ॥

पिता कह्यो—हे पुत्र ! तपस्या हित सब जाओ ।
तप करि संचय शक्ति करो फिरि प्रजा बढ़ाओ ॥
आयसु पितु सिर धारि चले सब मिलि जुलि भाई ।
मारगमहँ मनहरन पर्यो संगीत सुनाई ॥
सुनि विस्मित सबई भये, इत उत सब निरखन लगे ।
शिव सम्मुख गण सहित लखि, त्रिबिधि सबनिके भय भगे ॥

देखे सम्मुख शम्भु दौरि पकरे सब हर पग ।
अति आनंदित भये लख्यो निष्कंटक निजमग ।।
बिनय सहित सब कहें—कृतारथ भये दरस करि ।
दुष्कृत सबरे नसे नाथ निरखे नयननि भरि ।।
नीलकंठ शंकर कहें, तुम सब सुकृत स्वरूप हो ।
राजकुमर ऋषिरूप हो, भक्ति भवनके भूप हो ।।

रुद्रगीत हौं कहूँ जपो निश्चल है ताकूँ ।
होहि सिद्धि अति शीघ्र, जपोगे जो तुम जाकूँ ।।
प्रजापतिनिकूँ पूर्वकालमहँ जिह बिधि दीन्हों ।
पाइ तिननि अति हरषि सृजन परजाको कीन्हों ।।
यों कहि योगाधीश हर, रुद्रगीत सबकूँ दयो ।
पाइ शम्भु उपदेश अति, मन प्रसन्न सबको भयो ।।

सुनिकें बोले बिदुर—तनिक गुरुवर ! सुनि लीजे ।
रुद्रगीत है कौन मोहि प्रभु शिक्षा दीजे ।।
बोले मुनि मैत्रेय—प्रचेता दशहू मिलि जब ।
करि शिव दरशन धन्य भये पग पकरि कहें सब ।।
सरवेश्वर दरशन भयो, भगवन् ! अब भवभय भगे ।
देहिँ मंत्र सुनि सतीपति, रुद्रगीत कहिवे लगे ।।

रुद्र गीत

आपुहीं सर्वरूप घनश्याम ।
करें पुनि पुनि प्रभुपाद प्रनाम ।।

तुम्हारी जय होवै भगवान, करैं हम सबको प्रभु कल्यान ।
कियो जग व्यास तेजके सहित, आपु हैं क्षय वृद्धीतें रहित ।।
नाम है वासुदेव अभिराम, प्रनतपालक प्रभुपाद प्रनाम ।।१।।

भूत, चित, इन्द्रियगनके ईश, शान्त कूटस्थ स्वयं जगदीश।
लेत अवतार प्रेमके हेतु, नाम तव भवसागरके सेतु॥
पितामहके पितु शोभाधाम, जगत्पति तव पदपदुम प्रनामं॥२॥

सूक्ष्म इस्थूल अनंत महान, आपुही संकरसन भगवान।
आपु प्रद्युम्न और अनिरुद्ध, सच्चिदानंद शुद्ध अरु बुद्ध॥
तुम्हारो तेजरूप है नाम, करें पदपदुमनि माँहिँ प्रनाम॥३॥

आपुही स्वरग मोक्षके द्वार आपु भवउदधि तरनि पतवार।
आपु रवि अनिल अनल शशिरूप, आपुही जल जगविषयनि भूप॥
आपु अद्वैत जगत विश्राम, करें पुनि पुनि पद पदुम प्रनाम॥४॥

कृपा करिबेकी तुमरी टेव, देहिँ दरशन देवनिके देव।
चतुरभुज सुन्दर सुघर सरूप, चरन, कर, नयन, कपोल अनूप॥
रूप लखि लाजैं कोटिनि काम, अरुनपद पदुमनि माँहिँ प्रनाम॥५॥

कमलमुख मंद मंद मुसकान, कनक कुंडलयुत सुन्दर कान।
भ्रमर अवली सम कुंचितकेश, पीतपट पहिरे प्रियवर वेश॥
दिखावें सुखकर रूप ललाम, देव पद पदुमनि माँहिँ प्रनाम॥६॥

करें जे नित प्रति तुमरो ध्यान, न तिनकूँ रहै तनिक अभिमान।
प्रेम पीयूष करें नित पान, सुनहिँ यश करहिँ गुननिको गान॥
भक्त जो हैं अनन्य निष्काम, करें ते नित पदपदुम प्रनाम॥७॥

दयासागर निरमल अघहीन, शुद्ध शुचि सरल सहज अतिदीन।
हृदय जिनि जल पावन जिमि गंग, होहि नित तिनि भक्तनिको संग॥
लेहिँ तिनिसँगमिलि तुमरे नाम, करें सब मिलि पदपदुम प्रनाम॥८॥

करैं साधक तव चरननि मनन, न तिनि मन करहि विषय बनभ्रमन।
रहैं नहिँ तिनिके अघ दुख ताप, जगतमहँ दीखैं आपुहि आप॥
रमि रहे जो जगमाहीं राम, गंगकारन पदपदुम प्रनाम॥९॥

सकल जग ही तुमरी काया, सृष्टिके पूर्व सुप्त माया।
रचैं जग ज्यों जालो मकरी, प्रकृतितें विकृति होहिँ सबरी ॥
रूप तुमरे सब तुमरे नाम, अंश अंशीकूँ करै प्रनाम ॥१०॥

बनाओ अज ह्वै जगको जाल, करो संहार फेरि बनि काल।
भीत हम मरनशील प्रानी, अभय करि देहिं देव दानी ॥
प्रनतपालक प्रभु पालक श्याम, करें पुनिपुनि पदपदुम प्रनाम ॥११॥

दिखावें देव दौरि दाया, प्रबल प्रभु तुमरी यह माया।
शंभु हरि हर तुम ही स्वामी, अखिलपति अज अन्तरयामी ॥
तुम्हारे हैं हरि अगनित नाम, परावर ! तव पदपदुम प्रनाम ॥१२॥

दोहा—रुद्रगीत जो जन जपैं, होवें तिनि अघनाश।
दरशन दैकें दयानिधि, करें सतत हियवास ॥

छप्पय—करिकें हर उपदेश भये अन्तरहित तबई।
इत उत बिस्मित लखें जगे सपने से सबई ॥
सबने शिवकूँ करी दंडवत मनई मनमहँ।
रुद्रगीतकूँ जपत चले आगे सब बनमहँ ॥
करत सहसदश बरष 'जप, जलमहँ सब ठाढ़े रहे।
जप तप रूपी अनलमहँ, कल्मष सबके सब दहे ॥

इति श्रीभागवतचरितके द्वितीयाहमें प्रचेता चरित नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त।

अथ अष्टादशोऽध्यायः

[१८]

दोहा—गये प्रचेता तप करन, इत नारद मुनिराज।
सोचें इनके पितु तरें, तजि सकाम सब काज॥

छप्पय—विदुर! निरखि प्राचीनबर्हिकूँ फँस्यो करममहँ।
करन ज्ञान उपदेश गये नारद भूपति जहँ॥
बोले—राजन्! काम्य कर्म करि कहा विचार्‌यो।
क्यौं न ज्ञान वैराग्य खड्गतें मोह विदार्‌यो॥
नृप बोले—मुनि! मूढ़हौं, मुक्ति मार्ग जानूँ न कछु।
यज्ञ, याग, बलिदान पशु, स्वर्ग छाँड़ि मानूँ न कछु॥

मुनि बोले—'सुनु भूप! पुरञ्जन नृप इक भारी।
पाऊँ पावन पुरी चल्यो मनमाँहिं विचारी॥
चौरासी लख पुरीं लखीं मन एक न आई।
हिमगिरि दच्छिन ओर लखी शुभ पुरी सुहाई॥
सजी-बजी नववधू सम, उपबन सर सौन्दर्ययुत।
निरखि नयन विकसित भये, भयो दरस करि चपलचित॥

तामें निरखी एक नयन अभिरामा नारी।
नूतन वययुत परम सुन्दरी अति सुकुमारी॥
सरसिज सम बर नयन बदन सुन्दर मधुमय अति।
अलकावलि अति कुटिल राजहंसिनि सम शुभगति॥
नयन, नासिका, दन्त, मुख, भ्रुकुटि एकतें एक बर।
हिय श्रोणी उभरे पृथुल, कटि भीनी चितवन सुघर॥

प्रणयकटाक्ष सुवाण भ्रुकुटि कोदंड चढ़ायौ ।
मारि किरातिनि सरिस पुरंजन पट्ट गिरायौ ॥
लड़खड़ात घबरात विनययुत बोल्यो बानी ।
को तुम का की लली बनी कस पुरकी रानी ॥
सकुच त्यागि मुखकमलकूँ, मेरी ओर घुमाइकें ।
अपनाओ अब तुरत तुम, सेवक मोहिं बनाइकें ॥

कहे पुरंजनि—प्रभो ! नाम अरु गोत्र न जानूँ ।
किन्तु तुम्हैं हृदयेश प्रानधन सरबसु मानूँ ॥
आओ हिलिमिलि रहैं नयो एक जगत बनावें ।
आपसमें ही लखें और सब जगत भुलावें ॥
तन-तनमें मन-मन मिलहिं, प्रान-प्रानतें एककरि ।
हृदय सौंपि तव अंकमहँ, सोऊँ सुखतें शीशधरि ॥

को अबला अस पाहि तुमहिं नहिं धीर गँमावै ।
को तव हियलगि नहीं मनोवांछित फल पावै ॥
मधुर मंद मुसकानमयी चितवन हिय लागै ।
मिटै त्रिविधि संताप प्रबल रतिपति भय भागै ॥
आओ, अब सब दुख दुरित, दोउनिकेई मिटि गये ।
फँसे प्रेमके फन्द यों, पति-पत्नी दोऊ भये ॥

फँस्यो प्रेमके फन्द अन्ध सम भयो पुरञ्जन ।
निरखि नारि सब करै भुलाये भवभयभंजन ॥
पीवे वह तो पान करै खावे तो खावै ।
रोवे वह तो रुदन करै गावे तो गावै ॥
नारी धनकी, धर्मकी, बनी स्वामिनी गेहकी ।
करे कितव अनुकरन यों, जैसे छाया देहकी ॥

तनकी कोमल दिखे भीलिनी भोरी भारी।
किन्तु चित्तकी कुटिल बनी ज्यों लट घुँघरारी॥
रूप पाश लै हाथ पशुनिकूँ तुरत फँसावै।
निज बस करिकें विविध भाँतिके खेल खिलावै॥
पूँछ हिलावत फिरत ज्यों, स्वान स्वामिके संगमें।
त्यों मदमातो फिरै नर, फँस्यो नारिके अंगमें॥

सोरठा—फँसे प्रेमके जाल, दोऊ प्यासे-से रहैं।
जात न दीखत काल, उभय अघायँ न मुख निरखि॥

छप्पय—यद्यपि जाया संग त्यागिबो अति दुखकारी।
तोऊ रथ चढ़ि चल्यो पुरंजन बन धनुधारी॥
मृगयालोभी भयो गयो बर बहु मृग मारे।
सूकर, स्याहो, सिंह, शशक, शावक संहारे॥
मनमाने मारे मृगा, मृगया मतवारो भयो।
भूख प्यासतें थकित है, लौटि नगर निज नृप गयो॥

न्हाय खाय विश्राम कर्यो दारा सुधि आई।
काम बानतें व्यथित चल्यो नहिं दई दिखाई॥
अन्तःपुरकी नारि निरखि पूछै पछितावै।
स्वामिनि तुम्हरी कहाँ महलमें नाहिं दिखावै॥
रमनी बोलीं—भूपबर! आजु स्वामिनी रिस भरीं।
असन बसन भूषन तजे, खटपाटी लैकें परीं॥

सुनत बिकल अति भयो गयो महिषी जहँ सोवे।
अस्त व्यस्त-सी परी पुरंजन पग परि रोवे॥
अपराधी हौं सदा उचित शिक्षा अब दीजे।
देहु दासकूँ दंड क्षमा स्वामिनि अब कीजे॥
तिलकहीन अति म्लान मुख, मुरझायो अरविन्द सम।
राग रहित सुन्दर अधर, फटत हृदय लखि दशा मम॥

अब हौं समुझ्यो प्रिये ! पंचशर अवसर पायौ ।
जानि अकेली तुम्हें दुष्टने अधिक सतायौ ॥
पति अनुनय अस सुनत मानिनी मृदु मुसकाई ।
प्रनय कोप ततकाल प्रियाको गयो बिलाई ॥
पति पत्नीके प्रेमकूँ, प्रनय कोप उज्वल करत ।
वह मुँह फेरे तुनुककें, यह पुनि पुनि पगमहँ परत ॥

दृढ़ आलिंगन करत पुरंजन अति हरषावत ।
तजि निज परको ग्यान राति दिन व्यर्थ गमावत ॥
बाहु पाशमहँ कस्यो अज्ञ-सो भयो बिचारो ।
सूझत नहिं कब दिवस भयो कब भयो अँध्यारो ॥
फँस्यो पुरंजन मोहमहँ, सरबसु समुझी कामिनी ।
गई युवा लौटी न वय, जैसे बीतीं यामिनी ॥

ग्यारह सौ सुत भये शूरता बलमहँ भारी ।
दश ऊपर सौ भईं सुता अति ही सुकुमारी ॥
पुत्रनिकेंहू पुत्र भये चित चहुँ दिशि भटक्यो ।
पुत्र, पौत्र, गृह, कोश, दास, दासिनिमहँ अटक्यो ॥
ममतामहँ मदमत्त है, अंध कूपमहँ धँसि गयो ।
विषय भोग जग जालके, फंदामहँ खल फँसि गयो ॥

जग परिवर्तनशील एक-सो रहे न कोई ।
जनम मृत्यु सुख दुःख धूप छाया नित होई ॥
आवै उन्नति संग संग अवनतिकूँ लैकें ।
यौवनकूँ लै जाय जरा झाँसौ सो दैकें ॥
चन्डबेग गन्धर्वपति, पुरी पुरञ्जनकी चढ़्यो ।
बीर तीन सौ साठ सँग, बिजय करन आगे बढ़्यो ॥

गंधर्बों सँग साठ तीनसौ कारी गोरी।
करी चढ़ाई चण्डवेग सँग सेना थोरी॥
पाँच फननिको स्याँपु सबनितें लड़िबे लाग्यो।
किन्तु कहाँ तक लड़ै बली सब साहस त्यागो॥
घबरायो अति पुरंजन, बशीभूत नारी भयो।
लूटी नगरी सबनि मिलि, अति उदास नृप ह्वै गयो॥

भय भाई प्रज्वार काल कन्या सँग आयौ।
लखी पुरी अति छीन आइ अधिकार जमायौ॥
भूपति पूछे—प्रभो! कालकन्या को नारी।
बोले नारद—नृपति, कुरूपा फिरै कुमारी॥
पति चाहै जगमहँ फिरै, कौन कुरूपाकूँ बरै।
निरखि मोइ संकेत कछु, भौं चलाइ सैंननि करै॥

ब्याह करन संकेत समुझि बोल्यो मुनि चंडी।
ब्याह न हौं अब करूं भागि ह्याँतें मुस्टंडी॥
भई कुपति अति शाप दयो थिर रहौ न तुम मुनि।
हौं बोल्यो—भय बरो गई ताको वैभव सुनि॥
भय भाई प्रज्वार सँग, फिरै लोकमहँ बहिन बनि।
पुरी पुरंजनकी गई, ताकी नृप अब कथा सुनि॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाहमें पुरञ्जन पुरञ्जनी चरित नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त।

(पाक्षिक पारायण—चतुर्थ विश्राम)

अथ एकोनविंशतितमोऽध्यायः

[१९]

संग लियौ प्रज्वार पुरंजन पुरमें आई ।
भोगे पुरके भोग अराजकता फैलाई ॥
भयो पुरञ्जन कृपन नहीं मारग शुभ सूझै ।
पाँच फननिको स्याँपु कहाँ तक इकलो जूझै ॥
प्रबल वीर प्रज्वार ने, आगि लगाई जर्यो पुर ।
तोरि फोरि विध्वंस करि, कर्यो नाश नृपको नगर ॥

यवनराज भय आइ पुरञ्जन बाँध्यो तबई ।
पकरि चले लै भृत्य भये सँग परवश सबई ॥
जात पुरञ्जन लख्यो सर्प करि स्याँपु सिधार्यो ।
सब सैनिक उद्दंड पुरञ्जन पुरकूँ जार्यो ॥
यह वियोग दुस्सह प्रिये, नहीं जात मोपै सह्यो ।
नारीकी चिन्ता करत, अन्त नारि भूपति भयो ॥

नारीमहँ चितु फँस्यो भयो नृप नरतें नारी ।
नृप विदर्भके महल, भई कन्या सुकुमारी ॥
भई सयानी पिता स्वयंबर साज सजाये ।
रूप ख्याति सुनि देश-देशके भूपति आये ॥
पाण्ड्य देशके छत्रपति, मलयध्वज कन्या वरी ।
पति पायौ प्रमुदित भई, पटरानी नृपने करी ॥

सात पुत्र इक सुता जनीं सब भये सयाने।
भये सबनिके ब्याह भोग भोगे मनमाने॥
मलयध्वज दै सुतनि राज गमने बनमाहीं।
वैदरभी सँग चली देह सँग ज्यों परछाहीं॥
विषय भोग त्यागी नृपति, तप करि नित तनकूँ कसहिं।
कंद, मूल, फल, फूल, तृन, करि अहार बनमहँ बसहिं॥

पति सेवामहँ निरत रहै वैदरभी नितई।
एक दिना निरजीव देह पतिकी उत चितई॥
स्वामि शोकमहँ बिलखि काठ चुनि चिता बनाई।
मृतक देह धरि सती होनकू आग लगाई॥
पुरुष पुरातनको तबहिं, दरशन रानीकूँ भयो।
रोवति निरखी नारि तिन, दिव्य ज्ञान ताकूँ दयो॥

अरे सखा! हौं मित्र तिहारो हंस पुरातन।
विषय भोगमहँ फँस्यो भुलायौ रूप सनातन॥
नहीं पुरञ्जन मित्र! न रानी राजा हो तुम।
मानसके हैं हंस एक ही दोऊ तुम हम॥
पुरवारी जा बुद्धिने, ठग्यो ज्ञान सब नासे गयो।
सुनत सखाकी सीख शुभ, आत्मज्ञान ताकू भयो॥

राजा पूछें—प्रभो! ज्ञान अति गूढ़ सुनायो।
कौन पुरञ्जन हंस, कौन पुर, समझ न आयो॥
मुनि बोले—यह जीव पुरञ्जन धी है नारी।
सखा कर्ण हैं सबहिँ वृत्ति सब सखी बिचारी॥
देह पुरी हरि हंस हैं, प्रान पञ्च फन स्याँप है।
नौ दरवाजे छिद्र नौ, जीव संग मन जात है॥

नाक कान अरु आँखि तथा मुख शिश्न गुदा ये ।
नौ दरवाजे बने, जोव हित पुरुष बनाये ।।
शब्द, रूप, रस, गंध, परस पाञ्चाल कहावत ।
भोगे विषयनि जीव नित्य निज रूप भुलावत ।।
रुदन करै जब जीव जिह, हंस रूप हरि आइकें ।
करुना करि निज ज्ञान दै, करैं शुद्ध समुझाइकं ।।

स्वप्न देह रथ बन्यो कही मृगतृष्णा मृगया ।
काल कह्यो गन्धर्व जरा है ताकी तनया ।।
मृत्यु यवनपति सरिस अंतमहँ पुर संहारत ।
शीतज्वर अरु उष्ण यही प्रज्वार कहावत ।।
भ्रमत जीव प्रारब्ध बश, करहिं कृपा गुरु देव जब ।
कृष्ण कथा गुन श्रवनमहँ, बढ़ै चित्त अनुराग तब ।।

साधु संगमहँ बैठि कृष्ण गुन सुनें सुनावें ।
सरस बिमल हरि चरित सुनत जे नाहिं अघावें ।।
पान पात्र करि कान निरन्तर भरि भरि पीवें ।
श्रीमधुसूदन मधुर सुधारस पीकें जीवें ।।
कथाभवनमहँ भक्त मिलि, पीवें भागवती कथा ।
शोक मोह भय भूखकी, होहि न तिनि तनिकहु व्यथा ।।

करम परक हैं वेद मलिनमति पुरुष बतावें ।
भक्ति ज्ञान कछु नाहिं व्यर्थ सबकूँ बहकावें ।।
राजन् ! जब तक भक्ति योगमहँ चित न लगाओ ।
तब तक नहिं करि कर्म शान्ति सुख कबहूँ पाओ ।।
सबके आश्रय सर्बगत, जो शोभाके धाम हैं ।
आत्मरूप सबके सुहृद्, अबिनाशी घनश्याम हैं ।।

राजन् ! इन्द्रियजन्य विषयतें चित्त हटाओ।
मनकूँ करि एकाग्र कृष्ण चरननिमहँ लाओ ॥
काल भेड़िया खाय मृत्यु पीछेतें मारै।
किंकर्तव्यविमूढ़ बन्यो नर नाहिं बिचारै ॥
नित चरचा जहँ विषयकी, बसी कामिनी चित्तमहँ ।
तजि ताकूँ श्रीहरि भजो, मन न रहै गृह वित्तमहँ ॥

मन ही कारन बन्ध मोक्षको समुझो भूपति।
असत् वस्तु सत् समुझि फँस्यो करि कर्म जीव अति ॥
करमनिकूँ करि मुक्ति जगततें नहिं नृप पाओ
तन मन हरि पद सौंपि, भजनमहँ चित्त लगाओ ॥
सिरजें पालें जगतकूँ, काल पाइ पुनि लय करहिं ।
शरणागतवत्सल सकल, भव-भयकूँ ते हरि हरहिं ॥

श्री नारदमुनि कथित ज्ञानकूँ जो नर धारें।
ते न जनम पुनि लेहिं जाल जगके कूँ जारें ॥
कह्यो पुरंजन गृही बुद्धि सँग फँस्यो देहमहँ ।
मैं मेरी महँ बँध्यो पुत्र, धन, धाम, गेह महँ ॥
हरि हियमहँ जे धारिकें, पीवें प्रभुपय प्रेमतें ।
पावें ते नर परमपद, कहें सुनें जे नेमतें ॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाहमें पुरञ्जन मोक्ष नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।



अथ विंशतितमोऽध्यायः

(२०)

विदुर कहें—हे गुरो ! पुरञ्जन कथा सुनाई ।
किन्तु प्रचेता बात बीचमहँ विभो ! भुलाई ॥
रुद्रगीत उपदेश पाइ तिनि का का कीन्हों ।
कैसे तिनि ढिँग आइ जगत्पति दरशन दीन्हों ॥
मुनि बोले—सुनु विदुर अब, कहूँ प्रचेतनिकी कथा ।
रुद्रगीत जपि तप कर्यो, हरि दरशन पाये यथा ॥

तपतें भये प्रसन्न प्रचेतनि ढिँग हरि आये ।
दुरलभ दरशन दये दये वर चार सुहाये ।
सुमरें तुमकूँ रुद्रगीत जपि मोकूँ ध्यावें ।
भातृ प्रेम तिन बढ़ै मनोवांछित फल पावें ॥
होहि जगतमहँ कीर्ति अति, पुत्र प्रजापति होहि सम !
वार्क्षीकन्या संग सब, करो ब्याह मिलि बन्धु तुम ॥

सो०—मुनि पुनि बोले विदुर, को वार्क्षी का की सुता ।
कथा एक अतिरुचिर, मुनि मैत्रेय कहें बिहँसि ॥

कण्डु भये इक परम तपस्वी मुनि विज्ञानी ।
तपमहँ नितई निरत योगरत ज्ञानी ध्यानी ॥
घोर तपस्या करत निरखि सुरपति घबरायौ ।
प्रम्लोचा सुरबधू भेजि तप विघ्न करायौ ॥
सोलह हू शृंगार करि, सजि बजि मुनि ढिँग आइकें ।
यौवनतें इतराइकें, मुनि मन लियौ चुराइकें ॥

बरस सहस तक रही संग ऋषि समय न जान्यो ।
चेत भयो तब दिवस एकई मुनिवर मान्यो ॥
जब जान्यो वृत्तान्त क्रोध करि राँड़ भगाई ।
परम सुन्दरी छाँड़ि बालिका स्वरग सिधाई ॥
वृक्षनि पाली मारिषा, वार्क्षी ताईतें भई ।
करो ब्याह मिलि बन्धु सब, अब तो स्यानी ह्वै गई ॥

भगवत आज्ञा पाइ चले. सब वृक्ष जराये ।
वृक्ष जरत लखि तुरत तहाँ चतुरानन आये ॥
समुझाये बहु भाँति अरे, च्यौं वृक्ष नराओ ।
लेहु मारिषा बहू ब्याहि अपने घर जाओ ॥
विधि आज्ञा मानी सबनि, वार्क्षी कन्या ब्याहिकें ।
गृही धर्ममहँ रत भये, निज पितु पुरमहँ आइकें ॥

बेटा बहू निहारि नृपति नयननि जल छाये ।
परे पैरपै पुत्र प्रेमतें पकरि उठाये ॥
हृदय लाइ करि प्यार राज आसन बैठाये ।
राज काज सब सौंपि तपोबन भूप सिधाये ॥
करहिं करम प्रभु प्रीति हित, नित चित राखें श्याममहँ ।
बन्ध बासनातें कही, मोक्ष करम निष्काममहँ ॥

भोगे जगके भोग योग अब सब बिसरायो ।
इत वार्क्षी ने परम यशस्वी सुत इक जायो ॥
शंभु अवज्ञाकरी ब्रह्मसुत तब तनु त्यागौ ।
भये मारिषा पुत्र शाप नन्दीश्वर लाग्यौ ॥
चाक्षुष मन्वन्तर विषे, सृष्टि बुद्धि कारज कियो ।
प्रजा सृजनमहँ दक्ष अति, नाम दक्ष तातें भयो ॥

सौंपि पुत्रकूँ राज प्रचेता तप हित बनकूँ ।
गये सिन्धुके तीर समाहित कीन्हों मनकूँ ॥
रोकि, प्रान, मन, बचन, दृष्टि थिर करी योगतें ।
तनु तप करि कृश कर्यो हटायौ चित्त भोगतें ॥
सतसंगति बांच्छा भई, नारदजी दरशन दियो ।
एय प्रचेतनिके जगे, मुनि कृतार्थ सबकूँ कियो ॥

सबई पूछें—प्रभो ! सार उपदेश सुनाओ ।
मनकी काई सीख खटाई लाइ मिटाओ ॥
नारद बोले—सुनो, सफल वह जन्म करम मन ।
जातें सुमिरन होहि कृष्णको धन्य वही तन ॥
वेद पढ्यो तप करि कहा ? काल बितायो येग करि ।
प्रेम बिना सब व्यर्थ हैं, जो नहिं कीन्हीं भक्ति हरि ॥

है जग हरिको रूप उनहिँ तें पैदा होवै ।
उनमें ई थिर रहै अंतमहँ उनमहँ सोवै ॥
सबमहँ सत है व्याप्त रूप चैतन्य कहावें ।
सुख स्वरूप भगवान् जीव आनँद तहँ पावें ॥
शरणागतबत्सल अमल, स्वतः तृप्त परिपूर्ण प्रभु ।
भक्तबछल अशरनशरन, अज अबिनाशी अलख विभु ॥

बिना शरन हरि गये शान्ति सुख जीव न पावै ।
चौरासीमहँ भ्रमै बिबिध योनिनिमहँ जावै ॥
तातें सब कछु त्यागि शरन श्रीहरिकी जाओ ।
करिकें उनको ध्यान परमपद तुम सब पाओ ॥
बोले मुनि मैत्रेय—सुनि, ज्ञान प्रचेतनिकूँ भयो ।
विदुर ! सुखद संबाद यह, सारभूत तुमतें कह्यो ॥

शुक मुनि बोले—भूप ! विशद संवाद सुनायौ ।
सुनि मैत्रेय महान् विदुरजीके प्रति गायौ ॥
जो नर जाकूँ पढ़हिं प्रेमतें सुनहिं सुनावें ।
ते निश्चय परमेश परम पावन पद पावें ॥

स्वायम्भुव-सुत ध्रुव पिता, भूप भये उत्तानपद ।
बरन्यो तिनको वंश अब, सुनो प्रियव्रत को विशद ॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाह्नमें प्रचेता उपाख्यान नामक
बीसवाँ अध्याय समाप्त ।

(मासिक पारायण—नवम दिवस विश्राम)



अथ—एकविंशतितमोऽध्यायः

[२१]

दो०—शुक बोले—मनु प्रथम सुत, प्रियव्रत जिनको नाम ।
परमभक्त ज्ञानी महा, गृही बने निष्काम ।।

छप्पय—कहें परिच्छित—प्रभो ! परमज्ञानी नृप प्रियव्रत ।
करमबन्ध कस फँसे गृही बनि परम भागवत ।।
चरन शरन हरि लई जिननि ते फँसे मोह कस ।
घरमहँ भक्ति न होहि, भई शंका मो मन अस ।।
हँसि बोले शुक—भूपवर ! सत्य बात तुमने कही ।
कहूँ कथा सुनु कृष्णकी, जस नृप हरिपद रति लही ।।

परमभागवत भये प्रियव्रत ज्ञानी ध्यानी ।
गुरु नारदकी सीख प्रेमतें तिनने मानी ।।
लखि विरक्त सुत पिता राजको काज बतायौ ।
किन्तु कुमरके नहीं गृहस्थाश्रम मन भायौ ।।
इत मनु चिन्तामहँ परे, उत चतुरानन चित चढ़ी ।
यदि विरक्त प्रियव्रत बनै, तो होवै गड़बड़ बड़ी ।।

चढ़े हंसपै संग मरीचादिक मुनि घाये ।
सत्य लोकतैं उतरि तपादिक लोकनि आये ।।
विधिकूँ लखि सब अमर सुमन तिनपै बरसावें ।
स्वागतके हित सिद्ध, साध्य, ऋषि, मुनि मिलिआवें ।।
गावत गुन गन्धर्वगन, सुयश संग ऋषि मुनि सुनत ।
लखि विधि नारद कुमर मनु, उठे सबहिं संभ्रम सहित ।।

स्वागत श्रद्धा सहित सबनि करि पद सिरनाये।
विधिवत पूजा करी दिव्य आसन बैठाये॥
प्रेम सहित मुसकाय कहें ब्रह्मा—सुनु प्रियव्रत।
देहुँ सार उपदेश होहि जातें जगको हित॥
जीव बँधे गुण कर्मतें, करें कर्म ह्वैके अवश।
जनम मरन भय शोक दुख, सुख पावें प्रारब्ध वश॥

विषय भोग कछु नाहिं बन्धको कारन मन है।
इन्द्रिय मन आधीन यन्त्रके सम यह तन है॥
जाको मन आधीन ताहि बन काज कहा है।
इन्द्रिय वश जे भये तिनहिं बन हानि महा है॥
प्रभुपद पंकज कर्णिका, किलौ ताहि दृढ़मानिकें।
भोगो सुख अरि काम हनि, प्रभु प्रसाद जिय जानिकें॥

आयसु विधिकी मानि प्रियव्रत सिरतें धारी।
सोचें मनु अब सहज कामना पुरी हमारी॥
यों सबविधि समुझाइ ब्रह्म निज लोक सिधारे।
इत प्रियव्रतने राज काज सब आइ सम्हारे॥
ब्याह कर्यो रानी मिली, पतिप्राणा बर्हिष्मती।
परम सुशीला सुन्दरी, विनयवती अति गुणवती॥

भये पुत्र दस विश्वविदित धार्मिक ज्ञानी अति।
तिनमें त्यागी तीनि सात द्वीपनिके भूपति॥
उत्तम तामस पुत्र दूसरी रानी जाये।
तीसर रैवत भये सबनि पुनि मनुपद पाये॥
तनया इक ऊर्जस्वती, शुक्र संग ब्याही गई।
तासु गर्भतें गर्बिनी, सुता देवयानी भई॥

नृप सोचें—शुचि सूर्य प्रदच्छिन मेरु करे नित ।
होवै उतकूँ निशा दिवस होवै तबई इत ॥
करूँ दिवसकूँ राति न होवै तम जग माहीं ।
ज्योतिर्मय रथ चढ़े सूर्यके पाछे जाहीं ॥

सात प्रदच्छिणतें भये, सात द्वीप अरु उदधि सब ।
समुझाये विधि आइ जब, छोड़्यो नृप संकल्प तब ॥

कौन करि सके करम प्रियब्रत सम नृप जगमहँ ।
कीन्हें सात समुद्र चलत रथ नभके मगमहँ ॥
सौंपि सुतनिकूँ राज मोह ममता सब त्यागी ।
समुझे विष सम विषय बने नृपतें बैरागी ॥

सप्त द्वीपकी बसुमती, तृन सम त्यागी पलकमहँ ।
को तिनके सम है सके, तजि ईश्वर या जगतमहँ ॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाहमें प्रियब्रत चरितनामक
इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।

अथ द्वाविंशतितमोऽध्यायः

[२२]

राजपाटकूँ त्यागि चले राजा बनमाहीं ।
रानी बर्हिष्मती चली छायाकी नाईं ॥
सुत आग्नीध्र महान् भये भूपति जम्बूपति ।
पालें पुत्र समान प्रजाकूँ नित प्रति नरपति ॥
सुत हित सुर-सुन्दरि सदन, मन्दर गिरिकी गुहामहँ ।
तप करि पूजें प्रजापति, राज त्याग नृप रहहिं तहँ ॥

विधि नृप मनकी बात जानि बर बधू पठाई ।
पूर्वचित्ति आदेश पाइ भूपति ढिँग आई ॥
व्रीड़ा क्रीड़ा सहित मधुर चितवन मुसकावत ।
यौवनके मद भरी रूप रस—सो बरसावत ॥
भूप निहारी अपसरा, खोंयो मन मोहित भये ।
रूपासवको पान करि, मदमाते-से ह्वै गये ॥

राजा बोले—सखे ! परसपर महँ अपनावें ।
दोऊ हियको भार हार पहिनें पहिनावें ॥
मिलि जुलि खेलें खेल प्राणको दाव लगावें ।
द्वै मन एक मिलाय अंगतें अंग सटावें ॥
अब अपनाओ अधमकूँ, अनुचर अपनो मानिकें ।
प्रेम सुधारस प्यायकें, ज्याओ जड़मति जानिकें ॥

कहि कहि मीठे बैंन बढ़ाई प्रेम सगाई।
त्रिधिकी भेजी बधू भूप त्रिधिवत अपनाई॥
नृपति भामिनी संग विषय सुख भोगें निशि-दिन।
रहि न सकें पल एक अपसरा पूर्वचित्ति त्रिन॥
भये यशस्वी पुत्र नौ, भूप परम प्रमुदित भये।
ता प्रमदाके संगमहँ, सहस बरस दिन सम गये॥

नाभि और किंपुरुष, इलावृत, रम्यक, कुरु सुत।
केतुमाल, भद्राश्व, हिरण्मय, भये धर्मयुत॥
वर्षाधिप हरिवर्ष भये नौ परम यशस्वी।
नौ खंडनिके भूप मनस्वी अति तेजस्वी॥
पूर्वचित्ति तब छांड़ि सुत, तुरत गई निज लोकमहँ।
राजा अति ब्याकुल भये, ग्वा प्रमदाके शोकमहँ॥

काम्य कर्म करि नृपति पुण्य परलोक पधारे।
नौऊ बर्षाधीश भये अति प्रजहिं पियारे॥
मेरु-सुता नौ हतीं त्रिबाहीं तिनके सँगमहँ।
मेरुदेवि पति नाभि पाइ प्रमुदित अति मनमहँ॥
पुत्र हेतु मख नाभिने, रच्यो बिष्णु दरशन दये।
सहसा प्रभु प्रकटित भये, सब सम्भ्रममहँ परि गये॥

बिनती करिकें त्रिप्र यज्ञ उद्देश बतायो।
प्रभु समान सुत होय भूपको भाव जतायो॥
हरि हँसि बोले—अरे त्रिप्र, क्यौं जाल फँसाओ।
स्वामी सेवक करो पिताकूँ पुत्र बनाओ॥
अच्छा, हौं सुत बनुङ्गो, निज सम कहँ खोजत फिरूँ।
मोकूँ बाँधें भक्त ये, मुक्त सबनिकूँ हौं करूँ॥

अन्तरहित हरि भये राजरानी हुलसानी ।
गर्भवती पुनि भई मेरुदेवी पटरानी ।।
भये अवतरित ऋषभ त्यागको मग दरसावन ।
संन्यासी मुनि विमल दिगम्बर अतिशय पावन ।।
नाभि निरखि नय विनय युत, सुत जगपति जानत भये ।
प्रजा सचिव सम्मति समुझि, राजतिलक दै बन गये ।।

करिकें गुरुकुलवास राजको काज सम्हार्यो ।
लई जयन्ती ब्याहि ससुरको मद संहार्यो ।।
भये पुत्र सौ भरत ज्येष्ठ तिनमें नौ ज्ञानी ।
भूप भये नौ रचीं जाइ निज निज रजधानी ।।
इक्यासी हिंसा रहित, विप्र वृत्तिमहँ रत रहें ।
जप, तप, पूजा, पाठ, मख, करि समत्व सुख-दुख सहें ।।

करें ऋषभ शुभ करम हरषि लौकिक वैदिक सब ।
पुत्र भये जब युवक दई सत शिक्षा नृप तब ।।
इक दिन घूमत फिरत तृतिय सुत पुरमहँ आये ।
ब्रह्मावर्त निहारि पितहिं सब बन्धु बुलाये ।।
सम्बोधन करि सबनिकूँ, प्रेम सहित सबतें कहहिं ।
सुख हरि सुमिरनमें सतत, विषय भोगि नर दुख सहहिं ।।

विषय भोगिकें कबहुँ कोउ नर सुख नहिं पावै ।
ज्यौं नर जीवन रत्न काँच दै व्यर्थ गमावै ।।
सुख स्वरूप सरबेश सतत हिय माहिँ बिराजें ।
कस्तूरीमृग यथा विषय वन खोजें भाजें ।।
विषयी नर हैं विषसरिस, मोक्ष मूल हैं संत जन ।
चढ़े रंग जस होहि सँग, स्वेत बसन सम कह्यो मन ।।

ऋषभ चरित अति गूढ़ मूढ़ नर मरम न जानें ।
निरखि नग्न उन्मत्त सिड़ी पागल सब मानें ॥
प्रकट्यो पारमहंस धर्म करि शिक्षा दीन्हीं ।
कर्यो दिगम्बर वेष वेद विधि पूरी कीन्हीं ॥
बालक सम भोरे बने, पृथिवीपै विचरत फिरहिँ ।
मारें पीटें दुष्ट जन, सुखदुखमहँ इक सम रहहिँ ॥

कोई फेंकें ढेल सेलतें कोई मारें ।
त्यागि देहिँ मलमूत्र धूरि खल कोई डारें ॥
कोई गारी देहिं दुष्ट ढोंगी जिह आयो ।
ठग विद्याके हेतु धूर्तने वेष बनायो ॥
स्वारथ हित पागल बन्यो, सब समुझे स्यानो खरो ।
सब मिलि जा अवधूतकी, लाठीतें पूजा करो ॥

मारें पीटें मूर्ख होहि क्षत विक्षत तनु सब ।
तातें त्याग्यो गमन रहें अजगर सम नृप अब ॥
पानी पशुसम पियें लेटिकें भिक्षा पावें ।
त्यागि देहिं मलमूत्र अंग विष्ठा लिपटावें ॥
करें घृणित व्यापार जब, फटकैं नहिं खल पास तब ।
जनम कृतारथ करनकूँ, आईं तिनि ढिँग सिद्धि सब ॥

खल जन निन्दे चाहिँ करें पंडित बहु बन्दन ।
मलतें लिथिग्यो अंग चढ़ावें चाहें चन्दन ॥
ज्ञानी माला सरप एकसम करिकें जानें ।
होवें जड़ चैतन्य नारि नर भेद न मानें ॥
जो जग देखें ब्रह्ममय, उनको ज्ञानी नाम है ।
तिनके पावन चरनमहँ, श्रद्धा सहित प्रनाम है ॥

आईं सबईं सिद्धि सिद्धने सब ठुकराईं ।
करी विनय बहुभाँति नेंकहू नहिँ अपनाईं ॥
मन अति दानव दुष्ट करै विश्वास न कबहूँ ।
इन्द्रियजित ह्वै जाय बचै विषयनितें तबहूँ ॥
ब्रह्मा, विश्वामित्र, शिव, धोखो सबकूँ मन दयो ।
कबहुँ न माने भूलमहँ, मेरो मन वशमें भयो ॥

मन मतंग उद्दंड दुष्टता करै सदाहीं ।
संयम अंकुश सदा रखे अपने कर माहीं ॥
हरे हरे प्रिय धान ऊख मीठी लखि लखिकें ।
दौरावे निज सूँड़ होहि प्रमुदित अति भखिकें ॥
गज आरोही युक्तितैं, पेनों अंकुश धारिकें ।
प्रबल प्रलोभनतें विरत, करै चित्त गज मारिकें ।

मलिन बसनके सरिस लखैं ज्ञानी जा तनकूँ ।
सुख-दुखमहँ सम रहैं रखहिं संयत निज मनकूँ ॥
ऋषभ त्यागि अभिमान लिङ्ग अरु थूल देहको ।
त्याग्यो निजपन सबहिं पुत्र धन धाम गेहको ॥
योग वासनातें बची, तनिक अहं आभास मति ।
ताहीतें घूमत फिरत, चलत स्वास प्रस्वास गति ॥

कोङ्क बेङ्क अरु कुटक फिरत कर्नाटक ज्ञानी ।
कुटकाचलके निकट गये मुनिवर निर्मानी ॥
पवन बेणुसंघर्ष लगी दावानल बनमहँ ।
बैठे ह्वै निश्चिन्त नहीं शंका कछु मनमहँ ॥
तनु अनित्यता प्रकटहित, उपलखंड मुखमहँ धर्‌यो ।
भये लीन निजरूपमहँ, दावानलमहँ तनु जर्‌यो ॥

प्रियव्रत नृपको विमल बंश अति ही मन भावन ।
जामें प्रकटित भये ऋषभ हरि अग जग पावन ।।
कीयो पारमहंस्य धरम प्रचलित जगमाहीं ।
जाकूँ योगी सिद्ध विचारत मनतें नाहीं ।।
लोक, वेद, सुर, धेनु, द्विज, के स्वामी श्रीऋषभ हैं ।
करहिं आचरन घृनित अति, किन्तु मुनिनिमहँ वृषभ हैं ।।

ऋषभ पवित्र चरित्र कह्यो मंगलमय सुखमय ।
सुनत होत प्रभुचरन प्रेम छुटि जावै भव-भय ।।
अवतारनिकी कथा गंगसम शीतल करनी ।
पाप, ताप, संताप, क्लेश, दुख, चिन्ता हरनी ।।
जिनि करुनामय ऋषभने, धरम करे निषकाम हैं ।
तिनिके पद पाथोजमहँ, पुनि पुनि पुन्य प्रनाम हैं ।।

इति श्रीभागवतचरितके द्वितीयाहमें ऋषभ चरित नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त ।

इति द्वितीयाह



अथ तृतीयाह

अथ–प्रथमोऽध्यायः

[१]

दोहा—हे जगपालक ! जगतपति, जगरक्षक ! जगदीश ।
जगहित नित नव तनु धरत, नाऊँ तव पद शीश ॥

छप्पय—द्वितिय दिवसमहँ कही कपिलकी ललित कहानी ।
सती चरित ध्रुव चरित नृपति पृथु कथा बखानी ॥
पुनि प्रियव्रत शुभ चरित ऋषभ अवतार मनोहर ।
पुत्रनिकूँ उपदेश कही अवधूत वृत्तिवर ॥
सुनहु भरत शुभ चरित अब, सुनत मिटत भवकी व्यथा ।
प्रभु पद पदुमनि नाइ सिर, कहूँ तृतिय दिनकी कथा ॥

ऋषभ–तनय अति श्रेष्ठ ज्येष्ठ सबई पुत्रनिमहँ ।
भरत नाम विख्यात भये तीनिहु भुवननिमहँ ॥
न्याय धरमतेँ करेँ सदा पृथिवीको पालन ।
औरस सुत सम समुझि करेँ सबईको लालन ॥
बिश्वरूप तनया सुघर, पञ्चजनी सँग ब्याह करि ।
यज्ञ याग शुभ करमतेँ, आराधेँ नृप सदा हरि ॥

अग्निहोत्र नित करें दर्श अरु पूर्णमास मख
चातुर्मास्य अनेक करे सम समुझि दुःख—सुख ॥
सोमयज्ञ पशुयज्ञ प्रकृति अरु बिकृति भेदतें
करें क्रियाके सहित भाव अरु बिधी वेदतें ॥
सब अमरनिकूँ अंश लखि, अंशी हरिकूँ जानिकें
देहिं यज्ञको भाग नृप, प्रभु स्वरूप सब मानिकें ॥

भरत भूमिपति दुरित दूरि सब करें यज्ञ करि ।
भोगनितें करि पुण्यनाश आराधें श्रीहरि ॥
राजभोगको अन्त निरखि नृप वनहिँ सिधाये ।
पावन हरिहरक्षेत्र पुलह आश्रममहँ आये ॥
मिले गंडकी गंगजहँ, तहँ आराधें ईशकूँ ।
तुलसीदल, जल, फूल, फल, तें पूजें जगदीशकूँ ॥

पूजातें अनुराग हृदयमहँ बढ़्यो प्रबल अति ।
प्रियतमके पदपदुममाँहिँ उरझी उनकी मति ॥
पूर्यो पय आनन्द हृदय सर बुद्धि डुबाई ।
भये प्रेममहँ मगन बाह्य पूजा बिसराई ॥
कुटिल अलक लट बनि गये, जटा जूटको मुकुट सिर ।
भक्तराज बनि आजहीं, कियो कृष्णमहँ चित्त थिर ॥

ऐसें पूजा करत बिताये नृप बहु बत्सर ।
करें नियम ब्रत नित्य रहें पूजामहँ तत्पर ॥
इक दिन मज्जन हेतु भरत सरितातट आये ।
पढ़े वेदके मंत्र गंडकी जलमहँ न्हाये ॥
सन्ध्याकरि नृप जप करहिं, कूल छटा मनभावनी ।
सुनी सिंह ध्वनि मृगी इक, पार निहारी गरभिनी ॥

सुनि दहाड़ हरि मृगी भई भयतें अति चिन्तित।
मारी एक छलाँग नदीकूँ पार होन हित॥
भरे पेट श्रम भयो नदीमहँ गरभ गिरायौ।
पार जाइ गिरि मरी भरत मृगशिशु अपनायौ॥
करुनावश सँग लै गये, सुतसमान पालन कर्यो।
मोहमाँहिं तन्मय भये, हाथ हवन करतहिं जर्यो॥

हरिमहँ जो मन लग्यो हरिनमहँ फँस्यो भाग्यवश।
करै हरिन जस काज करैं भूपतिहू तसतस॥
चाटैं चूमैं प्यार करैं तनकूँ खुजिलावैं।
पुचकारैं तृन लाइ स्वयं निज करनि खवावैं॥
चलत फिरत सोवत उठत, छाया सम राखैं निकट।
तजि सरवसु मृगमोहमहँ, फँसे मोह महिमा विकट॥

औरस आत्मज तनुज धारमिक त्यागे निजसुत।
जो सबही सुकुमार सुघर सुन्दर सुशीलयुत॥
तृन सम त्याग्यो राज सुन्दरी महिषी त्यागीं।
रूपवती गुणवती मृतकसम ते सब लागीं॥
ठगे भाग्यने भरतजी, चढ़ि ऊँचे नीचे गिरे।
मूर्तिमान दुर्भाग्य मृग, के चक्करमहँ नृप परे॥

मृगशावक इकदिवस दूरि चरिबेकूँ धायौ।
सब दिन बीत्यो नहीं लौटि आश्रममहँ आयौ॥
विकल भये अति भरत रुदनकरि इतउत धावैं।
लै लै वाको नाम करुन स्वर ताहि बुलावैं॥
हाय! अभागो हौं लुट्यो, आजु कहाँ मम सुत गयो।
को करि क्रीड़ा देहि सुख, जग वा बिनु सूनौं भयो॥

कैसे तजिकें गयो कर्‌यो काहूने टौंना।
अतिसूधो अतिसरल सुघर वो मेरो छौंना॥
करिकें क्रीड़ा मधुर मोइ मृगबाल रिझावत।
चकित चित्ततें आइ अंग मेरे लिपटावत॥
हाय! कबहुँ पुनि आइकें, दूब यहाँ बो चरेगो।
का फिरि इत उत बालवत, मम सुत क्रीड़ा करेगो॥

इहि बिधि व्याकुल भरत फिरें बन मारे मारे।
मिल्यो न मृग बहु खोजि बिचारे भये दुखारे॥
इतने में ही अन्तकाल नृपको नियरायौ।
भूप मृत्यु के समय हरिन फिरि आश्रम आयौ॥
दशा देखि नृप सहमिकें, सुत समान रोवत सतत।
मृग पटकै सिर दुखित चित, भरत ध्यान वाको करत॥

दुस्सह काल कराल प्रबल बलशाली आयौ।
देह त्यागिकें भरत फेरि पशुको तनु पायौ॥
जाको चिन्तन करत जीव त्यागे या तनकूँ।
अगर जनममहँ योनि मिलै सोई जीवनकूँ॥
योगभ्रष्ट भूपति भये, मृगासक्त मन ह्वै गयो।
तातें मृग की योनिमहँ, भरत जनम फिरतें भयो॥

व्यर्थ भयो नहिं भजन तनिकहू भूले नाहीं।
पूर्वजन्मको वृत्त भरत मृग तनु के माहीं॥
यादि कर्‌यो पछिताइ मातु हरिनी हू त्यागी।
कालिंजर गिरि त्यागि भये फिरितें बैरागी॥
संग करहिं नहिं भूलि अब, नहिं सजीव तृनकूँ चरहिँ।
सूखे पत्ता खाइकें, ऋषि मुनि सम ब्रत तप करहिँ॥

यों भोगे प्रारब्ध कर्म मृगदेह पाइकैं ।
तज्यो हरिन तनु तीर्थ गंडकी नीर न्हाइकैं ॥
नारायण हरि कृष्ण यज्ञपति नाम उचारे ।
अंत समय लै नाम पाप उपपातक जारे ॥
पछिताये मृगमोह करि, कबहुँ न फिरि ऐसो कर्‍यो ।
यह भवजलनिधि अंतमहँ, गोखुर सम सुखतें तर्‍यो ॥

इति श्रीभागवत चरितके तृतीयाहमें भरतचरित नामक
प्रथम अध्याय समाप्त ।



अथ द्वितीयोऽध्यायः

[२]

दोहा—नारायनको नाम लै, भरत तजी मृग देह।
द्विज तनु पायौ अन्तमहँ, तज्यो गेह जगनेह ॥

छप्पय—मृगतैं ब्राह्मण वंशमाँहि प्रकटे मुनि ज्ञानी।
चरम देह है जिही भरत निश्चय करि जानी ॥
पिता पढ़ावें वेद मंत्र देवें जपिवेकूँ।
अंट संट कछु बकें जतावें जड़ अपने कूँ ॥
हतो जुड़ैली, बाहिन इक, दूसरि माँ के नौ तनय।
कर्मकांडमें फँसे ते, भरत लखें जग ब्रह्ममय ॥

पिता करें नित सोच भयो मम सुत लघु जड़मति।
मंत्र होहिं नहिं याद करूँ श्रम हौं अति नित प्रति ॥
कस होवे निरवाह कवन करि काज खाइगो।
को जाके सँग विप्र सुता अपनी ब्याहिगो ॥
करत मनोरथ विप्र श्रम, काल पाशमहँ फँसि गये।
सती पिता सँग माँ भई, नहिं रोये जड़ हँसि गये ॥

भये भरत निश्चिन्त फिरें मनमाने इत उत।
विस्मय सोच न करें रहें नितई प्रसन्न चित ॥
भीतर ज्ञान गँभीर भेद जगकूँ न बतावें।
पागल जड़मति बुद्धिहीन सम सबहिं जतावें ॥
जो लै जावै पकरिकें, चले जाहिँ सब कछु करहिँ।
बासो कूसो जो मिलै, उदर ताहि भखिकें भरहिँ ॥

बोझ ढुवावें पकरि ढोइ ताके घर डारें।
फरवावें जो काष्ठ ताहि हँसिकें वे फारें॥
भाभी जड़मति जानि स्वादयुत अन्न न देवें।
जर्‌यो भुन्यो जो देहिँ ताहि अम्मृत करि सेवें॥
हृष्ट पुष्ट तनु साँड़ सम, धूप शीत सब कछु सहहिँ।
रहें सदा निरद्वन्द बनि, संसारी सिर्री कहहिँ॥

भाइनि देख्यो कामकाज सबई करवावें।
तो फिरि हम बैठाइ व्यरथ च्यौं जाहि खवावें॥
ऐसौ चाकर कहाँ मिलै जो काम करे नित।
किन्तु न माँगे दाम न जावै कबहूँ इत उत॥
ऐसौ मनमहँ सोचिकें, दयो फावड़ो हाथमें।
क्यारी रचना करनहित, खेत चले लै साथमें॥

लयो फावड़ो हाथ खेतकूँ लागे खोदन।
गड्ढा भारी खन्यो लगे सब भाई रोकन॥
कहें परस्पर—बुद्धिहीन क्यारी न बनावै।
देहु मंच बैठाइ बैठिकें खेत रखावै॥
जैसो भाई कहहिं वे, तैसोई कारज करत।
नये बने अब खेत के, रखवारे श्रीजड़भरत॥

पुत्र हीन नृप-शूद्र मनौती मन में मानी।
मानुषकी बलि देहुँ पुत्र यदि देहिँ भवानी॥
भयो पुत्र इक पुरुष पकरि बलि हित सब लाये।
निशामाँहिँ भगि गयो दास अति ही घबराये॥
बलिपशुकूँ खोजत फिरैं, सोचें मूरख गयो कहँ।
आये खोजत खेतपै, बैठे द्विजवर भरत जहँ॥

तिनि बाँधे अवधूत भरत समदरशी ज्ञानी।
भये न विचलित तनिक मृत्यु सम्मुख हू जानी॥
न्हाइ पहिनि नव वस्त्र उड़ाई अधिक मिठाई।
खाइ भये निश्चिन्त फेरि बलिवारी आई॥
दस्यु पुरोहित पूजि असि, द्विजवरके सम्मुख धरी।
नहीं सोच विस्मय कछू, ज्ञानी लखि काली डरी॥

निरखि घोर अन्याय भई देवी विकराली।
मूर्ति फोरि पट प्रकट भई सहसा चट काली॥
तड़तड़ाइ करि क्रोध ओठ दाँतनितें काटे।
खड्ग लिये कर फिरै दस्यु सिर धड़तें काटे॥
उष्ण रक्त मद पान करि, अट्टहासतें नभ भर्‍यो।
कन्दुक सम सिर फेंकिके, जोगिनि सँग कौतुक कर्‍यो॥

दुखी होहिं कस सदा रहैं जे हरि पद सेवी।
काटि सबनिको शीश भई अन्तरहित देवी॥
उदासीन ह्वै चले महामुनि अतिशय ज्ञानी।
हरष विषाद न हृदय दैवकी इच्छा जानी॥
जग में जो जस करेगो, सो तैसोई भरेगो।
डूबेगो हरि विमुख ह्वै, प्रभुपदतें भव तरेगो॥

इक दिन आये भरत फिरत तट इक्षुमतीके।
लखे चौधरी तहाँ सिन्धुसौवीरपतीके॥
कपिलदेव ढिंग जायँ रहूगण भूप विचारे।
शिविका धीवर नहीं खोजि सेवक सब हारे॥
मोटे ताजे जड़ भरत, कूँ लखि सब प्रमुदित भये।
पकरि पालकीमें दिये, सब कहार सँग लगि गये॥

पदतल दबै न जीव दौरि इततें उत आवें।
डगमग शिविका होहि भूप बैठे हिलि जावें॥
व्याप्यो तनमहँ कोप कहैं—मैं मारूँ तोकूँ।
मैं हूँ सबको ईश मूर्ख माने नहिं मोकूँ॥
स्वामीके अपमानको, तोकूँ मजा चखाउँगो।
डंडनितें पिटवाउँगो, जीवत खाल खिचाउँगो॥

हँसिकें बोले भरत—कौन मोटो को पतरो।
को है स्वामी भूप कौन है सेवक तुम्हरो॥
राजा है तू आज काल्हि भिक्षुक बनि जावै।
इतनेपै ऊ मोइ नृपति उनमत्त बतावै॥
इच्छा, भय, तृष्णा, जरा, निद्रा, तन्द्रा जागनो।
आत्मरूप मोमें नहीं, पतरो अरु मोटोपनो॥

आत्म-ज्ञानमहँ मग्न मोइ नहिं भेद लखावै।
तू मोकूँ हे नृपति! मत्त उनमत्त बतावै॥
ज्ञानी सिरीं उभय भाँति तव बश नहिं आऊँ।
देह मोह नहिं नेक कर्म प्रारब्ध बिताऊँ॥
अस कहि शिबिका कन्ध धरि, चले भूप तम भगि गयो।
शिबिकातें कूद्यो तुरत, जड़ पैरनिमहँ परि गयो॥

सोरठा—रह्यो न संशय कोह, पर्यो महीपति महीपै।
भग्यो मान, मद, मोह, मनमहँ जिज्ञासा जगी॥

छप्पय—पूछै ह्वै आधीन—कौन तुम रहहु कहाँ प्रभु।
कस अस वेष बनाइ गुप्त बन बन बिचरो बिभु॥
योगेश्वर वा सिद्ध स्वयं नर बनि हरि आये।
करि करुना करुनेश, सुधा सम बचन सुनाये॥
या असार संसारमें, सार बस्तु जानन निमित।
कपिलाश्रमकूँ जात हौं, ब्रह्मभूत गुरु मिले इत॥

करुनासागर कपिल आपु हो मेरे स्वामी।
हो अनादि अखिलेश अलख अज अन्तरयामी॥
जड़को बेष बनाइ फिरौ सब जग अवलोकत।
निज ऐश्वर्य छिपाय अवनिपै निरभय विचरत॥
आत्माराम सुबोधमय, योगेश्वर निष्काम हो।
निरगुन मायातें परे, षट संपतिके धाम हो॥

दोहा—अब मेरी शंका सुनहिँ, कही बात जो नाथ।
करो पार भव जलधितें, गह्यो कृपा करि हाथ॥

छप्पय—कह्यो 'मोइ श्रम नाहिं' बात नहिं बैठी मनमहँ।
भार ढोइ पथ चलो होहि श्रम सबके तनमहँ॥
स्वामी सेवक भाव आपु व्योहार बतावें।
घड़ा मृत्तिका एक होहि पानी कस लावें॥
सुख, दुख, होवे पुरुषकूँ, देह करन मन बँधेतें।
जल चावल हैं पात्रमहँ, रँधैं अग्निके लगेतें॥

दोहा—शंका करि नृप लखहिँ मुनि, जैसे चंद चकोर।
भूप वचन सुनि मुनि हँसे, कीन्हीं करुना कोर॥

छप्पय—कहें भरत—सुनु भूप! भूत निर्मित जग जानो।
भेद भाव कछु नाहिं ज्ञानतें निश्चय मानो॥
शिवका ऊ है काष्ठ काटिकें ताहि बनावें।
रूपान्तर ह्वै जाय फेरि नहिं पेड़ बतावें॥
यह विभिन्नता जगतमहँ, नाम रूपके भेदतें।
नहीं, सत्य तो बात यह, सभी एक हैं तत्त्वतें॥

स्वामी सेवक भाव कल्पना जिह सब मनकी ।
आत्मा तो अद्वैत उपाधी ये हैं तनकी ॥
राजा होवै रंक रंक राजा बनि जावै ।
कल शिबिका जो चढ़्यो, आज सो ताहि उठावै ॥
जगको यह ब्योहार है, ज्ञानी जन मिथ्या कहैं ।
मूरख समुझैं सत्य सब, तातें नित नित दुख सहैं ॥

मूरख जड़मति पुरुष देहकूँ आत्मा मानें ।
क्षुधा तृषातें दुखित पुरुष होवै जिह जानें ॥
आत्मा तो निस्संग सर्व ब्यापक अज अच्युत ।
सदा रहै निरलेप ब्रह्म है जाहि ब्रह्मवित ॥
जब तक गुणमय रहे मन, चौरासी चक्कर भ्रमै ।
विषयनितें मुख मोरि जब, निरगुन होवै तब थमै ॥

आँख, कान, त्वक, नाक, जीभ ज्ञानेन्द्रिय जानो ।
हाथ, पैर, गुद्‌शिश्न वाक कर्मेन्द्रिय मानो ॥
अहंकारके सहित वृत्ति सब मनकी भाई ।
पञ्च कर्म तन्मात्र देह आधार कहाई ॥
अगणित मनकी वृत्ति हैं, तिनतें जग बन्धन भन्यो ।
मोहनाश जब है गयो, तब सब जग हरि ही बन्यो ॥

यह मन कपटी भूत जीवकूँ नाच नचावै ।
देवलोक लै जाय कबहुँ. पृथिवीपै आवै ॥
भेद भाव करवाइ बाँधिकें जगमें राखै ।
जो असत्य है वस्तु ताहि सत कहि नित भाखै ॥
गुरु हरि पद सेवा खडग, तातें रिपु मनकूँ हनों ।
तब सब दुखतें छूटिकें, निरबैरी जगमें बनों ॥

तप करि चाहै मोक्ष कालकूँ वो नर खोवै।
केवल करिकें करम धरम सत् ज्ञान न होवै॥
षट सम्पत्ति विवेक ज्ञान सोपान कहावैं।
विषयनितें वैराग्य ज्ञानतें मुक्ति बतावैं॥
होहि बसन वा रंगको, रँग्यो होहि जा रंगतें।
विषय संगते बन्ध है, मोक्ष होहि सत्संगतें॥

संतनिके ढिँग नित्य कथा होवै भगवतकी।
कृष्ण कथातें मिटै मलिनता नित नित चितकी॥
परनिन्दा अपवाद साधु जन करहिं न कबहूँ।
त्रिभुवन पावैं विभव भजन छोड़ैं नहिं तबहूँ॥
चाहे भवजलनिधि तरन, गहे संत चरननि शरन।
जग बन्धनके हेतु हैं, अधर-सुधा योषित नयन॥

वनिक रूप यह जीव चल्यो सुखधन अरजन हित।
प्रवृति मार्गमहँ फँस्यो लोभ अति बढ़यो तासु चित॥
इत उत भटकत फिरै राजपथ कबहुँ न पावै।
सिंह व्याघ्रतें डरै गहन बन क्लेश उठावै॥
वर्षा खुजली बवंडर, भूख प्यास मच्छर प्रबल।
देहिं क्लेश नहिं तहँ मिलै, सुन्दर भोजन मधुर जल॥

उठ्यो भभूरो तहाँ फँस्यो चक्कर महँ ताके।
भरीं धूरितें आँखि नचै संकेतहिं वाके॥
करें कर्ण कटु शब्द उलूकहु झींगुर बनमें।
यक्षनितें संतप्त डरै बनिया अति मनमें॥
छत्ता मधु मक्खीनिके, निरखि शहद भक्षन निमित।
कर डारत काटैं सबहिं, पथिक होहि अति ही दुखित॥

दुरगम पथ यह जगत जीव बनिया सुख धनकूँ ।
निज परिवार समूह संग लै निकस्यो बनकूँ ॥
बनीं बवंडर नारि राग-रज नेत्रनि डारें ।
मृग तृष्णा है विषय भोग दुर्जन अरि मारें ॥
परनारी हैं शहदकी, मक्खी मन जबई गयो ।
तबई ताको सुख सुयश, नस्यो मृतक सम नर भयो ॥
माया मोहित जीव जाहिँ जहँ तहँ दुख पावें ।
लखि समीप धन धान विविध बिधि ताहि सतावें ॥
पुत्र, मित्र, परिवार, सगे सम्बन्धी आवें ।
स्वारथ हित दर्शाय नेह सम्बन्ध लगावें ॥
जबतक जगमहँ मोह है, तबतक तृष्णा बढ़ैगी ।
भेड़ जहाँ जहँ जायगी, राजन् ! तहँ तहँ मुड़ैगी ॥
तजि जग को जञ्जाल जगतपतिमहँ मन लाओ ।
मैं हूँ सबतें बड़ो नीच जन जाहि भुलाओ ॥
यह मिथ्या संसार सत्य हैं जाके स्वामी ।
वे हैं शाश्वत सत्य सर्वगत अन्तरयामी ॥
मन विषयनितें मोड़िकें, जगतें नातो तोड़िकें ।
हरि चरननि चित जोड़ि कें, राम भजो सब छोड़िकें ॥
सुन्यो ज्ञान अतिगूढ़ कृतारथ भये रहूगन ।
मन प्रसन्न ह्वैगयो भयो पुलकित सबरो तन ॥
विधिवत पूजाकरी अरघ अश्रुनितें दीन्हों ।
तब स्वेच्छातें गमन भरत मुनिवर ने कीन्हों ॥
श्रद्धा, संयम सहित जे, भरत-चरितकूँ सुनिङ्गे ।
ते फिरि या भवसिन्धु महँ, भूलि कबहुँ नहिँ परिङ्गे ॥

इति श्रीभागवत चरितके तृतीयाह में जड़भरत चरित नामक
द्वितीय अध्याय समाप्त

(मासिक पारायण, दशम दिवस विश्राम)

: ..

अथ तृतीयोऽध्यायः

[३]

भये भरत सुत सुमति देवताजित सुत तिनके ।
तिनके देवद्युम्न भये परमेष्ठी जिनके ॥
पुत्र प्रतीह महान भये ज्ञानी तेजस्वी ।
अष्टम पीढ़ी माँहिँ भूप गय भये यशस्वी ॥
करमकान्डमें कुशल अति, सर्वमान्य सब शस्त्रवित ।
गय समान को होहि नृप, धरम, ज्ञान, नय, विनययुत ॥

स्वयं पधारे इन्द्र यज्ञमहँ देवनि साथा ।
अबतक जगमहँ विदित राजऋषि गयकी गाथा ॥
इतनो पीयो सोम भये उन्मत्त देवपति ।
स्वयं यज्ञपति प्रकट पाइँ हवि है प्रसन्न अति ॥
जिन बश कीन्हें विश्वपति, तिनकी समता को करें ।
निरत रहें सत्संग महँ, संत चरणरज सिर धरें ॥

रानी गयकी भई गयन्ती पतिकी प्यारी ।
भये चित्ररथ आदि तीनि सुत आज्ञाकारी ॥
तिनके सुत सम्राट पुत्र उनके मरीचजित ।
बिन्दुमान तिन पुत्र मधू मधुके सुबीरव्रत ॥
अन्तिम भूप भये बिरज, परम यशस्वो अति सदय ।
देववंश में बिष्णु जिमि, भये जगतमहँ कीर्तिमय ॥

राजन् ! सात समुद्र सात हैं द्वीप अवनि पै ।
प्रियव्रत सुत ई करें राज इन सब द्वीपनि पै ॥
भौमस्वरग दिविस्वरग स्वरग पाताल कहावें ।
तिनिमें करिकें पुण्य धरमप्रेमी जन जावें ॥
पुण्यनिको फल स्वरग है, शास्त्र वेद ऋषि मुनि कहें ।
पाप करेंतें नरकमें, नर नाना विधि दुख सहें ॥

इति श्रीभागवत चरितके तृतीयाहमें संक्षिप्त भूगोल नामक तीसरा अध्याय समाप्त ।

(पाक्षिक पारायण—पञ्चमदिवस विश्राम)



अथ चतुर्थोऽध्यायः

[४]

पाप करेंतें हृदयमाहिँ अति तम भरिजावै।
अन्तःकरन मलीन होहि नर बहु दुख पावै॥
सूक्ष्म देह जब जाइ यातना देह पाइकें।
नरकनिमें फिरि पचै भूमितें जीव जाइकें॥
सहै यातना नित नई, किन्तु दुःखमें मरे नहि।
अनुभव वैसेई करै, जैसे नरतनु कष्ट सहि॥

इन्द्रिय मन आधीन करें जो जिइ करवावै।
मन लैजावै स्वरग नरकमें जिहो पठावै॥
मनतें भोगै भोग जिहो देखे सपनेकूँ।
मायामोहित जीव कहै करता अपनेकूँ॥
यह मन चंचल चपलअति, नहिं काहूको मीत है।
मनके हारे हार है, मनके जीते जीत है॥

दोहा—बोले शौनक—सूतजी, सब नरकनिकेनाम।
कहाँ कौनमहँ जाइ को, करिकें कैसो काम॥
कहैं सूत सुनि मुनिबचन, करि सबको सम्मान।
नरकनिको बरनन करूँ, सुनहिँ आपु धरि ध्यान॥

रौरव, कुम्भीपाक, महारौरव सूकरमुख।
कृमिभोजन सन्दंश, शाल्मली, नरक देहिं दुख॥
तप्तभूमि, पूयोद, प्रानरोधन, बटरोधन।
पर्यावर्तन, शूलप्रोत, वैतरणी, विशसन॥
कोई कहैं अनेक हैं, अष्टाविंशति कछु कहैं।
इन नरकनिमहँ जाइकें, पापी जन बहु दुख सहैं॥

मारें जीवनि सदा मांसतें तनकूँ पोसें।
क्रोध मोह बश भये रक्त प्राणिनिको सोषें॥
चाहें जीवो जीव तिनहिँ हठ करि जो मारें।
ते पापी तनु त्यागि तुरत ई नरक सिधारें॥
औरनिकी दुरगति करी, कोटि गुनी तिनकी भई।
कुटें पिटें भूखनि मरें, सहें यातना नित नई॥

हिंसा परतिय गमन मांस मदिराको सेवन।
महापाप ये कहे फँस्यो इनमें जिनको मन॥
ते नर पापी महादुःख जग माँहिँ उठावें।
छटपटाइकें मरें फेरि नरकनिमहँ जावें॥
नाना दुख सहि अंतमहँ, सूकर कूकर योनि धरि।
चौरासीके चक्रमहँ, भ्रमैं विविध विधि करम करि॥

परधन, परसंतान, परस्त्री जे लै जावें।
ते नर रौरव नरक परें अति दुःख उठावें॥
चोरी जारी करें मूत्र विष्ठा ते खावें।
होहि वेदना अधिक नारकी फिरि पछितावें॥
विविध भाँतिकी यातना, परवश ह्वै पापी सहैं।
करे पाप क्यौं दुष्ट अर्म, पुनि पुनि यमकिंकर कहैं॥

विप्र हनन, मद्पान कनककी चोरी करिबो।
कामातुर ह्वै पूज्य अंगना शय्या चढ़िबो॥
इन पापिनिके रहें संग सोवें अरु खावें।
ये पाँचहु ही महापातकी मनुज कहावें॥
ये सब मरिकें नरकमहँ, महायन्त्रणा नित सहें।
चिल्लावें रोवें गिरें, हा मैया बप्पा कहें॥

पापिनिको संसर्ग पापमय तुरत बनावै।
संतनिको सत्संग कृष्ण चरननि पहुँचावै॥
डरें पापतें सदा प्रेमतें प्रभु आराधें।
जप, तप, तीरथ, बरत, करें यम नियमनि साधें॥
सदा सत्य बोलें बचन, ब्रह्मचर्यतें रहें नित।
जाइँ नहीं ते नरक नग, परतियपै न चलाइँ चित॥

इति श्रीभागवत चरितके तृतीयाहमें नरकवर्णन नामक
चतुर्थ अध्याय समाप्त।

(मासिक पारायण—ग्यारहवाँ दिवस विश्राम)



अथ पञ्चमोऽध्यायः

[५]

दोहा—कहैं सूत—'नृप परीक्षित, सुनिकैं नरक प्रसङ्ग।
छुटी कँपकँपी श्वेद तनु, शिथिल भये सब अङ्ग ॥

छप्पय—सुनी नरककी बात कँप्यो हिय दशा भुलानी।
करै प्रतिक्षण पाप कहैं नृप—प्रभु! जिह प्रानी ॥
ज्ञानी अति ही अल्प, अधिक अज्ञानी जगमहँ।
प्रतिपल हिंसा होय, उठत बैठत घर मगमहँ ॥

होयँ पाप तो का करैं, कैसे पापनितैं बचैं।
जीव भ्रमैं प्रारब्धवश, करम नचावैं त्यौं नचैं ॥

दोहा—नृप शंका सुनि शुक कहैं, सुनो भूप दै चित्त।
मिलहिँ पाप फल अवसि यदि, करै न प्रायश्चित्त ॥

छप्पय—जैसे सज्जी आदि बस्त्रके मलकूँ धोवैं।
तैसे प्रायश्चित्त सविधिकृत पापनि खोवैं ॥
स्वच्छ बस्त्र फटि जाय तऊ चित मोद बढ़ावै।
मलिन बस्त्र है जीर्ण मलिनता सँग लै जावै ॥

प्रायश्चित्त किये बिना, यमपुर जे नर जायँगे।
ते निश्चय ई नरक परि, बिबिध भाँति दुख पायँगे ॥

तनतें मनतें करे पाप जितने बचननि तें।
करिकें प्रायश्चित्त पृथक् होवैं नर तिनितें॥
श्रद्धा संयम युक्त करैं तप, ब्रह्मचर्य, शम।
सत्य, दान, तप, शौच, योग युत करैं नियम यम॥
ते निश्चय ही पापतें, छिनमें नर तरि जात हैं।
ज्यों दावानलके लगत, वेणु गुल्म जरि जात हैं॥

निज आहार विहार रखैं शुचि संयम धारें।
सदा पथ्यतें रहैं, बढ़े दोषनिकूँ जारें॥
होन न देवैं रोग होहिँ तो औषधि खावें।
तिनि पुरुषनि ढिँग रोग भूलि कबहूँ नहिँ आवें॥
प्रायश्चित्त यथार्थ जिह, सद्गुरु के ढिँग जायकें।
करै नाश अज्ञानकूँ, नारायन गुन गाइकें॥

पथ परमार्थ महान मार्ग बहुतेरे जावें।
भक्तिमार्गकूँ सुगम किन्तु सब संत बतावें॥
उभय भक्त जब मिलें मधुर हरिनाम उचारें।
नवें परस्पर विनय सहित पदरज सिर धारें॥
ऐसे शील स्वभावयुत, संत गहैं जा गैलकूँ।
क्यौं न फेरि चलि पथिक सब, धोवें मनके मैलकूँ॥

भक्ति मार्ग अति सुगम सरल सबके उपयोगी।
विप्र होहि वा शूद्र परम ज्ञानी वा भोगी॥
है निष्कंटक मार्ग कष्ट कछु जामें नाहीं।
पग पगपै फल फूल मिलें खल नहिं मग माहीं॥
सबरे साथी सरल सुठि, सरस मिलें जा पथ चलत।
प्रेम रुदन कबहूँ करत, हरिगुन सुनि कबहूँ हँसत॥

भक्ति भेद बहु भनै अधम ऊँचे अरु मध्यम ।
सङ्कीर्तन हरिनाम कह्यो सबईतें उत्तम ॥
नाम ग्रहणतें भक्ति मुक्ति निश्चय नर पावें ।
कैसे ऊ हों पाप नामतें तुरत नसावें ॥

मरन कालमहँ अजामिल, यमदूतनि लखि डरि गयो ।
नारायन सुत हित कह्यो, नाम लेत भव नसि गयो ॥

दोहा—पूछें शौनक सूतजी, कौन अजामिल दीन ।
नाम पुत्र मिस क्यों लयौ, कैसे प्रभु गति दीन ॥
अति पावन मुनि प्रश्न सुनि, कहें सूत हरषाइ ।
कही कथा गुरुने यथा, कहूँ यथामति ताइ ॥

छप्पय—कान्यकुब्ज शुभ देश अजामिल रहै विप्र इक ।
मितभाषी अनसूय तपस्वी परम धारमिक ॥
पितु आज्ञातें गयौ लैंन समिधा इक बनमहँ ।
तहँ लखि वेश्या सुघर काम सर लाग्यो मनमहँ ॥

वा बेश्याको रूप लखि, बिना दाम ई वह बिक्यो ।
रोक्यो चंचल चित्तकूँ, राजन्! परि खल नहिँ रुक्यो ॥

पत्नी माता पिता तजे बेश्या अपनाई ।
जाति पाँति निज लाज तजी कुल शील बड़ाई ॥
कैसे हूँ धन मिलै घातमहँ घूमे उत इत ।
अपने घरकूँ छाँड़ि रहै बेश्याके घर नित ॥

बेश्या सँग व्यभिचारतें, बहु बालक वाके भये ।
हिन्सा चोरी करत ई, बहुत दिवस छिन सम गये ॥

कहाँ बेदको पाठ कहाँ चोरी जूआ नित।
कहाँ धरम अनुराग पापमहँ फँस्यो कहाँ चित ॥
कहाँ कुलवती सती कहाँ बेश्या पण्यनारी।
किन्तु अजामिल बुद्धि भाग्यनें तुरत बिगारी ॥
व्रत पालन आचार सद्, बेश्या सँगतैं नसि गयो।
व्याधिनि वेश्या बनि गईं, द्विज फंदामहँ फँसि गयो ॥

पूर्वजन्म को पाप शाप मनमहँ रह जावै।
अपरजन्ममहँ आइ पाप फल निज दरशावै ॥
काऊको धन हर्यो सग्यो बनिकें सो लेगो।
ह्वैकें परवश पिता बन्यो वाकूँ वो देगो ॥
बिधवा बनि परपुरुषकूँ, पाप दृष्टितें लखें जे।
ब्याह होत ही मरे पति, पुनि पुनि बिधवा बनें ते ॥

कोई सब दिन संग रहे परिचय नहिं होवै।
निरखि काहुकूँ कोउ तुरत अपनोपन खोवै ॥
होहिं सहोदर बन्धु परस्पर प्रेम न तिनमें।
भिन्न जातिके होहिं, होइ मैत्री छिनभरमें ॥
पूर्बजन्म अपकार करि, इह तन होवै शत्रुता।
कर्यो जासु उपकार कछु, तातें होवै मित्रता ॥

पूर्वजन्ममें रह्यो अजामिल परम तपस्वी।
सदाचार सम्पन्न सत्यप्रिय परम यशस्वी ॥
शिशिरमाँहिं अति शीत लग्यो मूर्छा-सी आई।
तहाँ बैद्यने अपर बिप्रकूँ युक्ति बताई ॥
यौबनकी यदि उष्णता, युबती तनमें तन लगै।
जब जावै जिह शीतपन, तुरत तपस्वी तब जगै ॥

सोरठा—जहाँ रहे मुनि एक, निज तनया के संगमें।
दशा भयानक देख, तिनि निज कन्यातें कही ॥

छप्पय—मुनितनयाकूँ दया तपस्वीपै अति आई।
अंगनि लयो लगाय उष्णता तन पहुँचाई ॥
चेतनता जब भई क्रोध तपसीकूँ आयौ।
बनि वेश्या तू नारि, धरमतें मोइ डिगायौ ॥
मुनिकन्या हू ने दयो, शाप अधम तू बनेगौ।
धरम करम सब छाँड़िकें, मो वेश्या सँग फिरेगौ ॥
शाप भये सब सत्य अजामिल दुष्ट भयौ अति।
निरदय डाकू क्रूर करै पथिकनिकी दुरगति ॥
भ्रमत भाग्यवश संत एकदिन घरपै आये।
कीयो अति सत्कार आपने पाप सुनाये ॥
संत हृदय करुना उठी, बोले करियो काम तू।
धरियो अबके पुत्रको, नारायण शुभनाम तू ॥
मनमहँ निश्चय कर्यो अबसि जिह काम करुङ्गो।
अबकें होवै पुत्र नरायन नाम धरुङ्गो ॥
कछु दिनमहँ सुत भयो हरष चितमहँ अति छायो।
नारायण धरिनाम नेह अति अधिक बढ़ायो ॥
सबरो प्रेम बटोरिकें, नारायणमहँ धरि दयो।
भूल्यो सब जगके विषय, सुतमहँ तन्मय ह्वै गयो ॥
लै नारायण नाम प्रेमतें मुखकूँ चूमें।
गोदीमें बैठाय नरायन कहि कहि घूमें ॥
अपनें पीछे खाय नरायन प्रथम खवावै।
पीवै जो कछु पेय नरायन संग पिवावै ॥
नारायणकूँ संगलै, यों खावत पीवत चलत।
नारायण भूलै नहीं, जागत हू सोवत उठत ॥

इति श्रीभागवत चरितके तृतीयाहमें अजामिलचरित नामक
पञ्चम अध्याय समाप्त।

अथ षष्ठोऽध्यायः

[६]

दोहा—बोले शुक—नृप ! चित चपल, काहूमहँ लगिजाय ।
तौ सोवत बैठत उठत, सब थल वही लखाय ॥
चित्त अजामिलको फँस्यो, नारायन सुतमाहिँ ।
नाम नरायन प्रिय लगत, सुनत नयन भरिजाहिँ ॥

छप्पय—नारायनमहँ चित्त फँस्यो नारायण निशिदिन ।
सेवै प्रान समान रहै छिनहू नहिँ वा बिन ॥
बेश्यापति यों फँस्यो मोहमहँ मृत्यु बिसारी ।
हरि निरखार कराल कालकी आई बारी ॥

मृत्यु समय यमकिंकरनि, पकर्यो पापी अजामिल ।
नारायन मुखतें कह्यो, खेलत सुतकूँ लखि बिकल ॥

सुनि नारायन नाम बिष्णु पार्षदतहँ आये ।
यमदूतनिकूँ पकरि गदातें मारि गिराये ॥
डरिकें पूछें दूत—कौन तुम हमें भगाओ ।
मोल भाव बिनु किये तड़ातड़ मार लगाओ ॥

धर्मराजके दूत हम, पापीकूँ लै जात हैं ।
कर्यं न हम अपराध कछु, काहे आप खिस्यात हैं ॥

बिष्णु पारषद कहें—धरमको मरम बताओ।
दंड जोग जिह नाहिं जाइ क्यौं व्यरथ सताओ॥
बोले यमके दूत—धरम जो वेद बखान्यो।
है अधरम बिपरीत वेद हरि रूपहि मान्यो॥
हिंसक पापी सुरापी, कूँ यमपुर लै जायँगे।
नरक अगिनिमें डारिकें, जाकूँ बिमल बनायँगे॥

हरि पार्षद पुनि कहें—दूत ! तुम कछु नहिँ जानों।
व्यरथ बजाओ गाल बिज्ञ अपनेकूँ मानों॥
नारायण यह कह्यो अन्तमहँ मुखतें जानें।
तौ हम ताकूँ फेरि परम पावन नर मानें॥
चोर, जार, हिंसक, कुटिल, पापी चाहें होय अति।
नाम उचारनतें तुरत, होइ शुद्ध पावै सुगति॥

प्रायश्चित मनु आदि पापके विविध बतावें।
तिनतें छूटे पाप किन्तु जड़तें नहिँ जावें॥
रहै बासना बनी फेरि हू पाप करिङ्गें।
पुनि पुनि करिकें पाप नरकमहँ मनुज परिङ्गें॥
प्रायश्चित सब पापको, पुरुषोत्तमको नाम है।
तुम उच्चारन भर करो, फेरि नामको काम है॥

लेवें जाको नाम यादि गुन ताके आवें।
पुण्य कीर्ति भगवान नाम गुन ज्ञान करावें॥
हरि गुन मनमहँ धँसे फेरि क्यौं पाप रहिङ्गें।
बहुतक होवें हिरन सिंहकूँ देखि भगिङ्गें॥
इत उत भटके जीव क्यौं, करे व्यर्थ के काम तू।
सब प्रपञ्चकूँ छाँड़िके, क्यौं न लेइ हरि नाम तू॥

कैसे हू हरिनाम लेन, फल निश्चय देवै।
चाहें मनतें लेइ भले बेमनके लेवै॥
हरिको लैकें नाम मार्गमें आवै जावै।
कृष्ण कृष्ण संकेत करे सब वस्तु मँगावै॥
मोदक घी बूरो सन्यो, दिन में खाश्रो रातिमें।
सब थल मीठो लगेगो, घर खाश्रो या पाँतिमें॥

भक्त न करें विनोद विषय सम्बन्ध जोरिकें।
रहैं उदासी सदा जगत सम्बन्ध तोरिकें॥
लै लै हरिके नाम प्रेमतें हँसें हँसावें।
रामभक्त करि हँसी कृष्णकूँ चोर बतावें॥
कृष्ण भक्त हँसि रामकूँ बानरभालूपति कहत।
बनि बैरागी राम तो, बन बनमें रोवत फिरत॥

राग अलापन हेतु रामको नाम उचारें।
चाहें कहि कहि रामभक्तकूँ ताने मारें॥
राम कहत लड़िजायँ राम कहि प्रेम जतावें।
ते नर कबहूँ भूलि नरककी गैल न जावें॥
विनु इच्छा ऊ रुईपै, चिनगारी पावक परै।
जरे रुई तो अबसि हो, नाम नाश अघ त्यौं करै॥

गिरत परत मग चलत रपटि कीचड़महँ जावै।
अङ्ग भङ्ग ह्वै जायँ जीव हिंसकहु सतावै॥
काटे कोई आइ देहमहँ पीड़ा होवै।
ज्वर को होवै वेग चेतनाकूँ नर खोवै॥
कैसेहू नर विवश है, हरि उच्चारन करिङ्गे।
नाम प्रतिष्ठाके निमित, अघ तिनके हरि हरिङ्गे॥

निज शुककूँ करि प्यार नित्य गनिका पुचकारै।
मनविनोदके निमित रामको नाम उचारै॥
स्वयं कहै हरि नाम और खगतें कहवावै।
शुकमुखतें अति मधुर नाम सुनि हिय हरषावै॥
मग्न समय अब सुमिरिकें, वेश्या अति ब्याकुल भई।
संत चितायो अंत हरि, नाम कह्यो हरिपुर गई॥

हरिकीर्तन वा श्रवन करें श्रद्धा बिनु प्रानी।
निश्चय ते ऊ तरें, वेद संतनिकी बानी॥
राम विमुख लखि संत जोवपै यदि ढुरि जावें।
बिनु इच्छा ऊ देहिँ नाम तोऊ तरि जावें॥
कृष्ण नाम भव रोग की, है अचूक औषध सुगम।
चाहें ज्यों सेवन करो, निश्चय देगी पद परम॥

संत अनुग्रह करी विमुखकूँ नाम सुनायौ।
मर्‌यो अधम जब दूत तुरत यमपुर पहुँचायौ॥
नाम श्रवनको पुण्य सुन्यो सब सुर घबराये।
ब्रह्मलोक शिवलोक फेरि सब हरिपुर आये॥
सुनि सब हरिने अंकमहँ, प्रेम सहित वाकूँ लयो।
भवबन्धनतें मुक्त ह्वै, प्रभु पार्षद वह बनि गयो॥

सुनिकें यमके दूत नाममहिमा हुलसाये।
पाश मुक्त सो कर्‌यौ दौरि संयमनी आये॥
इत सुनि शुभ संवाद नामको महिमा जानो।
निज पापनिकूँ सुमिरि अजामिल मन अति ग्लानी॥
करि पापनिकूँ यादि जो, पछितावें दुख अति करें।
तिनके अब सन्तार प्रभु, जानि हृदय मल-सब हरें॥

बारबार धिक्कार अजामिल देवै मनकूँ ।
हाय ! पापमहँ फँस्यो भुलायो निज द्विजपनकूँ ।।
तजे पिता अरु मातु दुःख जिन सहि सुख दीन्हों ।
तजी सती निज नारि मोह वेश्यातें कीन्हों ।।
करे पाप अति भयानक, करूँ न ऐसे काम अब ।
बिगरी मेरी बात तो, किन्तु बनाई नाम सब ।।

यों करि पश्चाताप मोह ममता सब त्यागी ।
वेश्या अरु सुत त्यागि राग तजि भये बिरागी ।।
हरिद्वारमहँ जाइ योगको आश्रय लीन्हों ।
बिषयनितें मुँह मोरि युक्तितें मनबश कीन्हों ।।
दृश्यवर्गतें पृथक करि, आत्मा ज्ञान स्वरूपमहँ ।
फेरि अजामिल भक्तियुत, भये पारषद रूपमहँ ।।

आयौ दिव्य विमान निहारे पार्षद तेई ।
पहिचाने ततकाल नाम दाता गुरु येई ।।
पंचभूतकी देह त्यागि पार्षद बपु धार्‌यो ।
तब फिर चल्यो विमान दिव्य वैकुण्ठ सिधार्‌यो ।।
अधम अजामिल हू तर्‌यो, नारायन कहि पुत्रहित ।
ते फिर क्यौं नहिं नर तरें, लेहिँ नाम जे शुद्धचित ।।

संयमनीपति निकट गये यमदूत खिस्याने ।
बिना भावके मार पड़ी सब अंग पिराने ।।
हाथ जोरि सब कहें—प्रभो ! तुमई जगस्वामी ।
या तुमतें हू अपर ईश बड़ अन्तरयामी ।।
लावत ए हम नरकमहँ, जा पापीकूँ पकरिकें ।
चारि पुरुष आये तहाँ, छुड़वायो अति झिरकिकें ।।

शङ्ख चक्र बनमाल गदाभृत सेवक किनिके।
काके हैं वे दूत कौन स्वामी हैं तिनिके॥
सबके शासक आपु जीव प्राननिके हरता।
शासन सबको करें शुभाशुभ निरनय करता।।
इतने पै ऊ आपकी, आज्ञा उल्लंघन भई।
बिना बातके बीचमें, हमरी दुरगति ह्वैगई॥

नारायन है मन्त्र जंत्र वा जादू टौंना।
काहू नरने मृत्यु समय जिह नाम कह्यो ना॥
सुनि नारायन नाम भयो तनु पुलकित यमको।
प्रेम मगन ह्वै कर्‌यो ध्यान भगवत चरननिको॥
जलद सरिस अति बिमलबर, जो हरि नित्य नवीन हैं।
शिव विरञ्चि इन्द्रादि हम, तिनके नित्य अधीन हैं॥

गुह्य भागवत धरम देवता सिद्ध न जानें।
फिर नर, दानव, दैत्य ताहि कैसे पहिचानें॥
अज, शिव, नारद, जनक, कपिल, मनु, बलि, शुक, ज्ञानी।
भीष्महु, सनत्कुमार, धरम, प्रहलाद, अमानी॥
जानि भागवत धरमकूँ, परम भागवत ये भये।
अन्य भक्त हू भक्तितें, नाम लिये हरिपुर गये॥

दूत कहें—अब, नाथ! नियम हमकूँ बतलावें।
जाइँ न किनके पास पकरि किनकूँ हम लावें॥
धरमराज तब कहें—नाम हरि जे न उचारें।
चितमें कबहूँ चरन कमल हरिके नहिं धारें॥
नहीं नवें सिर कृष्णकूँ, हरिचर्यातें जे विमुख।
लाओ तिनकूँ पकरिकें, आइ उठावें नरक दुख॥

नामगान सम जगतमाँहिँ साधन नहिं दूजो।
करो यज्ञ व्रत दान भले प्रेतनिकूँ पूजो॥
नाम उचारत तुरत मलिनता मनकी जावै।
माया मोह नसाय प्रेम प्रभुको हिय आवै॥
नामकीरतन जे करहिं, जाउ न तिनके ढिंग कबहुँ।
पहिले पापी रहे वे, आवें मम गृह नहिँ तबहुँ॥

कृष्ण कीरतन गुन गौरव जे गान करहिं नर।
वे कबहूँ नहिँ भूलि निहारें नीरस मम घर॥
सब पापनिको एक प्राइचित मुनिनि बखानों।
होयँ नामके रसिक उनहिँ मेरो गुरु मानों॥
यम आज्ञा दूतनि सुनी, शिरोधार्य सबने करी।
हरिकीर्तन करिकें चले, सब मिलि बोले जयहरी॥

सोरठा—ता दिनतें यमदूत, नाम सुनत भगि जात झट।
होत नामतें पूत, या दिनतें निश्चय भयो॥

छप्पय—पुण्य अजामिल चरित महा पापी हू गावें।
गाइ हियेमहँ धरें पाप पुनि चित्त न लावें॥
तिनके पाप पहाड़ भस्म सबरे ह्वै जावें।
जीवत सब सुख लहें अन्तमहँ प्रभुपद पावें॥
अरथवाद जाकूँ कहें, ते नर कोरे रहिजें।
जीवत जग निन्दा लहें, मरि नरकनिमहँ परिजें॥

इति श्रीभागवत चरितके तृतीयाहमें नामसंकीर्तन महिमा नामक छठा अध्याय समाप्त।

अथ सप्तमोऽध्यायः

[७]

कहैं परीक्षित—प्रभो ! सुनाई सरस कहानी ।
कथा अजामिल सुनी नाम महिमा हू जानी ॥
ताप शाप संताप नाम ध्वनि सुनि भगि जावें ।
सब मिलि ऐसे भगें लौटिकें फिर नहिं आवें ॥
सुनी नाम महिमा प्रभो ! प्रकृत कथा चालू करौ ।
सृष्टि प्रसंग सुनाइकें, मेरे सब संशय हरौ ॥

बोले शुक—सुनु नृपति ! दक्ष प्राचेतस प्रकटे ।
करी सृष्टि तिनि विविध देव नर करमनि लिपटे ॥
तऊ सृष्टि नहिं बढ़ी दक्ष अतिशय घबराये ।
विन्ध्याचलके निकट तपस्या हित तब आये ॥
अघमर्षण इक विमल बर; तीर्थ ताहि तट जाइकें ।
कीन्हों तप अति उग्र तहँ, कंद मूल फल खाइकें ॥

करें प्रजापति कठिन तपस्या तीर्थवास करि ।
प्रजा सृष्टिके हेतु, नाम लैं राम कृष्ण हरि ॥
हंसगुह्यको पाठ करें, तप नियमनि साधें ।
गुण अभिव्यंजक नाम लेइँ श्रीहरि आराधें ॥
धरम अरथ अरु मोक्ष वा, होइ बासना कामकी ।
सब इच्छा पूरन करें, शरन गहें जे रामकी ॥

दोहा—शुक बोले—सुनु भूपवर ! हंसगुह्य इस्तोत्र ।
गिरा गाइ पावन बने, होहिं सफल सुनि श्रोत्र ॥

छन्द

जय स्वयं प्रकाशक श्याम हरी। जिनि सब प्रपञ्चकी सृष्टि करी।
जिनि जीव न जाने संग रहै, जिनि वेद निरंतर नेति कहै।
सब भूत, विषय, तन, प्रान करन, जाने न स्वयं निज रूप बरन।
सबकूँ जानें जिह जीव विभू, परि जीव न जाने तुमहिं प्रभू।
जय हो अनन्त अखिलेश प्रभो! जय जय करुनाके धाम विभो।
जिनको समाधिमहँ होहि ज्ञान, जो शुद्ध चित्तमें होत भान।
जो शुद्ध सच्चिदानन्द राम, तिनके पद पदुमनिमहँ प्रनाम।
जो मोक्ष रूप अनुभव स्वरूप, जो सर्वनाम अनुपम अनूप।
होवें प्रसन्न मोपै अनाम, तव चरननिमहँ पुनि पुनि प्रनाम!
जो मन वानी को विषय नाहिँ, जिनिकूँ पुरान, श्रुति, शास्त्र गाहिं।
जो भेदभावतें रहित श्याम, जिनितें होवें सब जगत काम।
है जिनकी माया अति अपार, फँसि जीव जनम ले बार बार।
जिन नाम लेत भव होत पार, तिनि चरन कमलमहँ नमस्कार!
जो अस्ति नास्तितें बोध होत, जो भवसागरके प्रबल पोत।
जो नाम रूपतें रहित राम, तिनि चरननिमहँ पुनि पुनि प्रनाम।
जो भक्त हेतु धरि रूप नाम, अवतार लेहिँ हरि पूर्ण काम।
जो भाववश्य सुरतरु समान, अभिमत फल दाता सुखनिधान।
सतचित स्वरूप जो मुक्तिधाम, तिनि प्रभु पद पदुमनिमहँ प्रनाम।

दोहा—देवें दरशन दयानिधि, गहे चरन तव नाथ।
यों करि इस्तुति दक्ष नित, पुनि पुनि नावें माथ॥

छप्पय—दक्ष भावकूँ समुझि भावग्राही बनवारी।
प्रकट तुरत तहँ भये विष्णु पीताम्बरधारी॥
मुकुट कटक कर अंगुलीय कंकण नूपुर पग।
त्रिभुवन मोहन रूप निरखि मोहित होवै जग॥
परे लकुट सम भूमिमहँ, दक्ष निरखि घनश्यामकूँ।
बार बार निरखें मुदित, श्रीहरि शोभा धामकूँ॥

बोले हरि—तुम प्रजा हेतु क्यौं कष्ट उठाओ।
मनतैं बढ़ै न सृष्टि मैथुनी सृष्टि बनाओ॥
पञ्चजन्यकी सुता असिकनी बहू ब्याहिकें।
संतति करि रति धरम बढ़ाओ उभय जाइकें॥
बिनु आकरषन सृष्टि नहिं, कबहुँ बढ़ै हियमहँ धरौ।
तातैं चटपट जाइकें, बर बिबाह बेटा करौ॥

ब्याह दच्छने कर्यो बिष्णु आज्ञा सिरधारी।
अति प्रसन्न मन भयो, बहू लखि अति सुकुमारी॥
सुधी प्रजापति दच्छ तपस्वी दृढ़व्रत धारी।
दश सहस्र सुत जने, सरलचित आज्ञाकारी॥
सब समान गुण रूप रँग, शील एक-सी वय नई।
तातैं सबकी एकई, हर्यश्व हिं संज्ञा भई॥

पिता कह्यो—हर्यश्व! करौ तप बंश बढ़ाओ।
पुत्र पौत्र करि अधिक जगतमहँ कीर्ति कमाओ॥
पितु आयसु सिर धारि चले तपकूँ सब भैया।
नारायन सर बसें मिले मुनि बीन बजैया॥
श्रद्धा संयमके सहित, जाय तीर्थ जे न्हात हैं।
होत हृदय तिनिको बिमल, फिरि सतगुरु मिलि जात हैं॥

आये नारद तहाँ दच्छपुत्रनितैं बोले।
सृष्टि करो क्यौं बिना भूमि सबरीपै डोले॥
एक पुरुषको राष्ट्र मार्ग बिनु बिल तुम देख्यो?
उभयबाहिनी नदी नारि कुलटापति पेख्यो?
घर पच्चीस पदार्थको, बहुरंगी इक हंसकूँ।
बिनु जाने छुरचक्र तुम, बृद्धि करो कस बंशकूँ॥

जो हैं सच्चे पिता सबनिके अतिशय ज्ञानी।
का उनकी हर्यश्व वास्तविक आज्ञा जानी॥
पुत्रो! कैसे करो सृष्टि इन बातनि जानें।
बिना करें उपदेश हमारो नहिँ मन मानें॥
इतनो कहिकें देव ऋषि, प्रेम सहित पेखत भये।
कूट बचन सुनि दक्ष-सुत, ध्यानमग्न सब है गये॥

नारदके सुनि कूट प्रश्न मिलि ध्यान लगायौ।
लिंग देह ई भूमि अंत कब जाको पायौ॥
नित्य मुक्त हरि लखे बिना फल करमनिको नहिं।
ब्रह्मरूप बिल प्रबिशि लौटि फिरि आयो को कहिं॥

बुद्धि स्वैरिणी नारि है, पति अज्ञानी जीव है।
उभय बाहिनी नदी जिह, माया जिहि पति शीव है॥

आश्रय पुरुष पचीस तत्वके क्षेत्र गेह भल।
हरि प्रतिपादक शास्त्र हंस है अतिई निरमल॥
कालचक्र अति तीक्ष्ण शास्त्र ई पिता सरिस है।
निबृत्ति मार्ग ई मुख्य कही ताकी आयसु है॥
यों मनतें सब सोचिकें, नारदके चेला भये।
मोक्ष धरमकी राह गहि, बाबाजी सब बनि गये॥

नारायण सरमाँहिँ भई नारदतें भेटा।
सुनी दक्ष जिह बात बने बाबाजी बेटा॥
भयो हृदय अति दुखित बहुत मनमहँ पछिताये।
जैसे तैसे धर्यो धीर सब बिधि समुझाये॥
पाञ्चजनीने फिरि सहस, जने पुत्र शवलाश्व बर।
पितु आयसुतें गये वे, तपहित नारायण सु-सर॥

करत तहाँ इस्नान भये हिय पावन तिनके।
जब सब तप मिलि करें बिचारें नारद अबके॥
ये बालक हू सौम्य मोक्षपदके अधिकारी।
देखूँ चलिकें तहाँ ध्यानतें इनको नारी॥
पर उपकारक ब्रतनिरत, चले देवऋषि तुरत तहँ।
करें कठिन नियमादि ब्रत, पहुँचे मुनि शबलाश्व जहँ॥

प्रश्न पुराने करे दक्षसुत सहस फँसाये।
फिरि दश वे ही कूटबचन कहि कहि समुझाये॥
ज्येष्ठ बन्धु जिहि गैल गये तुम सबहू जाओ।
श्रेष्ठ मार्गमहँ जाय नित्य सुख तुम सब पाओ॥
सृष्टि वृद्धि बिपरीत यों, पढ़ो तुरत पढ़ाइकें।
नारद मुनि चम्पत भये, बीना मधुर बजाइकें॥

मुनिकें सब शबलाश्व भये भिक्षुकगृहत्यागी।
दक्ष सुने सब वृत्त हृदय क्रोधानल जागी॥
आग बबूला भयो क्रोध व्याप्यो नस नसमहँ।
तुरत दयो तिनि शाप रह्यो नहिं मन निज बशमहँ॥
कहें दक्ष—तू जगत महँ, कबहुँ न कुटी बनाइकें।
थिर न रहै घूम्यो करै, तुमड़ी तान बजाइकें॥

नारद मुनिकूँ शाप दक्षने दीयो नरपति।
सिर धरि करि स्वीकार भये मुनि मुदित हृदयअति॥
बन्धनको है हेतु कुटी आश्रम बनवानों।
खंदकमेंतें निकसि कूपमहँ पुनि गिरि जानों॥
हरि भक्तनिकूँ शाप वर, दोऊ एक समान हैं।
तिनको निश्चय अटलजिह, सबईमहँ भगवान हैं॥

शाप कर्‌यो स्वीकार देवर्षि सुरपुर धाये।
देखि दक्षकूँ दुखी हंस चढ़ि इत विधि आये॥
सृष्टि करन पुनि कही, दक्ष बोल्यो घबरायो।
नारद पीछें पर्‌यो प्रभो ! कछु युक्ति बताओ॥
विधि बोले—अबकें सुता, करौ बंश बढ़ि जाइगो।
छोरिनिके ढिँग भूलिके, नारद मुनि नहिं आइगो॥

इति श्रीभागवतचरितके तृतीयाहमें दक्षनारदशाप नामक सप्तम अध्याय समाप्त।



अथ अष्टमोऽध्यायः

[८]

दोहा—दैकें आज्ञा पितामह, गमने अपने लोक।
कीयौ गरभाधान पुनि, दक्ष त्यागि सुत शोक॥

छप्पय—विधि आज्ञातें साठि दक्ष कन्या उपजाईं।
तेरह कश्यप लईं चन्द्र सत्ताइस ब्याईं॥
अंगिर भूत कृशाश्व दईं द्वै द्वै सुकुमारी।
शेष तार्क्ष्य सँग चारि बिवाहीं पुत्री प्यारी॥
पुत्र पौत्र सबके बहुत, भये जगत सब भरि गयो।
बहुसंतति लखि दक्षको, हृदय सरोरुह खिलि गयो॥

भानु, मुहूर्ता; ककुप, जामि, बसु लम्बा साध्या।
मरुत्वती, संकल्प, धर्मकी ये सब भार्या॥
स्वधा सती ये नारि अंगिरा मुनिकी प्यारी।
बिनता कद्रू और पतंगी यामिनि नारी॥
तार्क्ष्य बहू ये चारि हैं, धिषणा, अर्चीं गुणवती।
पत्नी कहीं कृशाश्वकी, सबईं सुन्दर सब सती॥

अब कश्यपकी नारि त्रयोदशकी संतति सुनि।
अदिती, दिति, दनु, इला, अरिष्टा सुरसा अरु मुनि॥
काष्ठा, सरमा, सुरभि, कही तिमि, क्रोधवसा पुनि।
ताम्रा पत्नी पाइ भये अति आनंदित मुनि॥
लोक मातु ये जगतकी, सब इनकी सन्तान हैं।
देव, असुर, पशु, पक्षि, नर, लघु बड़ क्षुद्र महान हैं॥

देव ऋषभ सुत भानु जन्यो लम्बा विद्योतहिं ।
ककुभ, बंशमहँ भये देव जो दुर्गनिमहँ रहिं ।।
देव, मुहूर्ता, जने मुहूर्तनि के अभिमानी ।
मरुत्वतीके पौत्र जयन्त उपेन्द्र सुज्ञानी ।।
संकल्पा, संकल्पसुत, जाके सुत ये काम हैं ।
अष्टवसू वसुने जने, द्रोण आदि जिन नाम हैं ।।

साध्याके सुत साध्य, विश्वके विश्वेंदेवा ।
भूत सरूपा नारि रुद्रगण जने कुदेवा ।।
दूसरि पत्नी पुत्र भूत प्रेतादि विनायक ।
स्वधा अंगिरा नारि पितृगण जने प्रभावक ।।
सती, सुमाता वेदकी धिषणा, अर्चि, कृशाश्वकी ।
नारि पतंगी यामिनी, बिनता कद्रू तार्क्ष्यकी ।।

बिनता कद्रू बहिन सौतिया डाह भयो मन ।
उच्चैःश्रवा निमित्त दासताको कीन्हों प्रन ।।
कद्रू रूँगटि करी पूँछ सुत अहि लिपटाये ।
दासी विनता बनी गरुड़ जनि दुःख भुलाये ।।
अरुण भये आधे गरुड़, अमृत लाइ अहि पुनि हने ।
वरतें हरिध्वज महँ रहे, हरि वर दै वाहन बने ।।

सत्ताइस नक्षत्र चन्द्र पत्नी सुकुमारी ।
औरनितें नहिं नेह रोहनी अतिशय प्यारी ।।
पितु समीप सब गईं दुःखकी कथा सुनाई ।
दयो दक्ष सुनि शाप होय क्षय सोम सदाई ।।
बात शापकी सोमने, सुनी बहुत चिन्तित भये ।
अपराधी बनि ससुरके, विनय सहित पुनि ढिंग गये ।।

चन्द्र विनय बहु करी प्रजापति किरपा कीन्हीं।
कृष्णपक्ष ईं कला होयँ क्षय आज्ञा दीन्हीं॥
शुक्लपक्षमहँ पूर्ण होयँ ऐसो बर दीन्हों।
अति अनुनय करि दक्ष तुष्ट शशिने करि लीन्हों॥
दक्षसुता दस सत्तरह, संतति बिनु सब रह गईं।
पक्षपात पतिने कर्यो, दुखित सबहिं जाते भईं॥

काष्ठाके सुत अश्व, सुरभिके गौ पशुगन हैं।
तिमिके जलचर जीव, दनूके सब दानव हैं॥
सरमा के व्याघ्रादि बाज ताम्राकी संतति।
सुरललना मुनि जनीं, दैत्य दितिके हिंसक अति॥
क्रोधवशाके सर्पगन, करें क्रोध जो नित्य हैं॥
सुरसाके राक्षस भये, अदितीके आदित्य हैं॥

इला जने सब वृक्ष जगतके जे सुखदायक।
जने पुत्र गन्धर्व अरिष्टा सुन्दर गायक॥
जो बारह आदित्य बड़े तिनि विवस्वान् रवि।
इते अर्यमा द्वितिय भये तिनतें मानुष कवि॥
दक्ष यज्ञमें पिष्टभुक्, दन्तहीन पूषा भये।
विश्वरूप त्वष्टा तनय, सुरगुरु कछु दिन बनि गये॥

इति श्रीभागवतचरितके तृतीयाहमें दक्षसुता वंशवर्णन नामक
अष्टम अध्याय समाप्त।

अथ नवमोऽध्यायः

[९]

छप्पय—नृप पूछें—गुरु विश्वरूप क्यौं सुरनि बनाये।
सुरगुरु देवनि छोड़ि स्वरगतैं कहाँ सिधाये॥
बोले शुक—नरदेव! शक्र हिय मद अति आयौ।
करि गुरुको अपमान तुरत फल ताको पायौ॥
कहैं परीक्षित् चकित ह्वै, क्यौं मद सुरपतिकूँ भयो।
कथा सुनावें सकल प्रभु, दंड देवगुरु का दयो॥

दोहा—सुन्यो परीक्षित् प्रश्न शुक, कर्यो कछुक छिन ध्यान।
कहन लगे इतिहास सब, इन्द्र भयो ज्यों मान॥

छप्पय—हम सबतें हैं ऊँच भयो अभिमान देवपति।
क्यौं देवें सम्मान बृहस्पतिकूँ हम नित प्रति॥
ऐसो निश्चय कर्यो सभामहँ जब गुरु आये।
नहिं आसनतें उठे बचन नहिं मधुर सुनाये॥
समुझि गये गुरु इन्द्रकूँ, अहंकार अतिशय भयो।
तुरत लौटि आये भवन, भलो बुरो नहिं कछु कह्यो॥

तुरत इन्द्रकूँ चेत भयो मनकूँ धिक्कारैं।
कैसो कीयो काम दुखित अति होहिँ बिचारैं॥
हाय! बुद्धि मम नसी अनादर गुरुको कीन्हों।
सम्मुख आये देव नहीं उठि आसन दीन्हों॥
श्रीचरननिमहँ शीश धरि, रोउङ्गो पछिताउँगो।
बारबार बहु बिनय करि, गुरुकूँ जाइ मनाउँगो॥

गुरुगृह गमने इन्द्र बृहस्पति तहाँ न पाये।
अन्तरहित गुरु भये देव अतिशय घबराये॥
सुरगुरु त्यागे असुर प्रीति हियमहँ अति छाई।
स्वरग विजयके हेतु सुरनिपै करी चढ़ाई॥
शुक्राचार्य सहायतें, गुरुप्रिय सुररिपु बढ़ि गये।
गुरुद्रोही सुरसंघपै, अस्त्र शस्त्र लै चढ़ि गये॥

निरुत्साह ह्वै देव समरमहँ सम्मुख आये।
किन्तु न कछु बल चल्यो तनिक लरिकें घबराये॥
मरतें ह्वै उन्मत्त असुर देवनिकूँ डाटैं।
हाथ, पैर, सिर अङ्ग कठिन बाननितें काटैं॥
जब असुरनि की मारतें, अति ब्याकुल सुरगन भये।
भागे रनकूँ छोड़ि सुर, कमलासनके ढिँग गये॥

सुनिकें सबरी बात कहें विधि—भलो न कीन्हों।
मूरखता अति करी नहीं गुरु आदर दीन्हों॥
जाईतें तुम बली अबल असुरनितें हारे।
ह्वै घरबार विहीन फिरौ सब मारे मारे॥
सुखी कृपा गुरुतें दुखी, जिहि पर गुरु प्रतिकूल हैं।
होहिं अमगल तासु कस, जाके गुरु अनुकूल हैं॥

निज अपराधी जानि करैं हरि छमा जीवकूँ।
कहु पौरुषतें जीव तुष्ट कस करे शीवकूँ॥
कृपासिन्धु भगवान कौनपै कब ढुरि जावैं।
कब कापै करि कृपा अनुग्रह रस बरसावैं॥
दुष्ट दैत्य भगवानकूँ, परुष बचन नितई कहें।
गनें न तिनके दोषकूँ, अज्ञ जानि सब कछु सहें॥

सबको ही निस्तार करें हरि क्षमा सबनिकूँ।
किन्तु न पशुपति करें क्षमा खल गुरुद्रोहिनिकूँ॥
हरि रूठें तो चरन शरन गुरुकी नर आवें।
गुरु रूठें तो कहहु जीव किहिके ढिँग जावें॥
जे तन मन धन आदितें, गुरु सेवा नितई करें।
प्रभुपद पावें प्रेमतें, भवसागर छिनमहँ तरें॥
गुरु प्रसादतें कौन वस्तु है दुरलभ जगमहँ।
गुरु-प्रसाद पाथेय चलो लै निरभय मगमहँ॥
गुरु चाहें तो रुष्ट देवकूँ तुरत मनावें।
गुरु चाहें तो तुरत क्रूरकूँ साधु बनावें॥
गुरु चरननिकी शरनमहँ, होहि न भवभयकी व्यथा।
है प्रसिद्ध संसारमें, काकभुशुण्डीकी कथा॥

दोहा—यों देवनिकूँ डाँटिकें, भये पितामह मौन।
कछुक देर सोचत रहे, बनें पुरोहित कौन॥

छप्पय—बोले ब्रह्मा—विश्वरूप ढिँग सुर सब जाओ।
करिकें अनुनय विनय उन्हें गुरुदेव बनाओ॥
विधिसम्मति सिर धारि चले सब आयसु पाई।
त्वष्टासुत ढिँग जाइ विपतिकी बात बताई॥
सब सुनि बोले त्वाष्ट्र मुनि, कैसे अब नाहीं करूँ।
उपरोहित निंदित करम, तिहि करि कस अघ सिर धरूँ॥
देखो, पौरोहित्य करम अतिई निन्दित है।
लोक वेद सर्वत्र देवगण! बात विदित है॥
उपरोहितको अन्न पाप ई विज्ञ बतावें।
अति प्रसन्न ह्वै कुमति ताहि हरषित ह्वै खावें॥
निष्किञ्चनकी वृत्ति तो, कन कनकूँ संग्रह करै।
पूजि पितर, सुर, अतिथि, ऋषि, उदर शेषतें मुनि भरै॥

कहें देव—प्रिय विश्वरूप ! तुम पुत्र हमारे ।
आये ह्वैकें दुखित वत्स ! हम पास तुम्हारे ।।
अनुचित उचित बिसारि पुरोहित पद स्वीकारो ।
बिपति उदधिमहँ मग्न पकरिकें हमें उबारो ।।
करो न मन संकोच कछु, छोटे कस गुरुपद गहें ।
ज्ञानवृद्धकूँ वेदबिद्, वन्दनीय सबकौ कहें ।।

बिनय सहित पुनि बिस्वरूप बोले मृदुबानी ।
आप देवगन परम पूज्य ज्ञानी बिज्ञानी ।।
लोकेश्वर हैं आपु पुत्रकूँ देहिँ बड़ाई ।
गुरु आज्ञामहँ होहि शिष्यकी सदा भलाई ।।
होवें अब निश्चिन्त हौं, पुरोहिताई करुङ्गो ।
तुम सबकी आज्ञा बिहँसि, प्रेम सहित सिर धरुङ्गो ।।

सुनिकें सबई देव हृदयमहँ अतिशय हरषे ।
बजें दुंदुभी आदि कुसुम नभतें बहु बरषे ।।
बिश्वरूपको बरन कर्यो गुरु पद बैठाये ।
धरम करम ब्रत नियम सुरनि सब बिप्र सिखाये ।।
विश्वरूप गुरु पाइकें, देवनि की चिन्ता गई ।
अबसि मिलें पुनि स्वरग सुख, यह प्रतीति सबकूँ भई ।।

विश्वरूप गुरु बने नाकपति निरभय कीन्हों ।
रक्षाके हित दिव्य कवच नारायन दीन्हों ।।
नारायनको कवच धारि जे रनमहँ जावैं ।
होहिँ पराजय नहीं विजय शत्रुनिपै पावैं ।।
पाई विद्या वैष्णवी, अति प्रसन्न सुरपति भये ।
करी चढ़ाई सुरनिने, असुर पराजित करि दये ।।

पूछें नृप—है कौन कवच नारायन गुरुवर।
बोले शुक—है दिव्य अस्त्र अष्टाक्षर नृपवर॥
करिकें विधिवत न्यास ध्यान करि विनय करे अति।
आठ भुजातें युक्त सिद्धि देवें जग अधिपति॥
जलमहँ बनिकें मीन प्रभु! थलमहँ वामन तनु धरें।
विश्वरूप बनि गगनमहँ, चहुँदिशि हरि रक्षा करें॥

वन, रन, दुरगनिमाँहिँ करें रक्षा श्रीनरहरि।
डगरमाँहिँ वाराह परशुधर शिखरनिपै गिरि॥
परदेशनिमहँ रामलखन सँग मोइ बचावें।
नर नारायन गरव प्रमादहिँ तुरत भगावें॥
रक्षा दत्त कुयोगतें कपिल करम बन्धन नसें।
कामदेवतें सनत् शिशु, हयग्रीव मग अघ नसें॥

पूजाके अपचार नसें नारद मुनि ज्ञानी।
कच्छप रक्षा करें नरक कछु करें न हानी॥
धन्वन्तरि दें पथ्य द्वन्द्वतें ऋषभ बचावें।
यज्ञ लोकअपवाद नसें बल दुःख नसावें॥
शेष सरप रक्षा करें, व्यास नसें अज्ञानकूँ।
बुद्ध नसें पाखण्ड सब, कल्कि दोष कलिकालकूँ॥

करें प्रात लै गदा हमारी रक्षा केशव।
मुरलीधर गोविन्द करें रवि उदय होहिँ जब॥
करें कलेऊ समय सदा रक्षा नारायन।
चक्रपानि श्रीविष्णु मध्यदिन रक्षें पावन॥
रक्षा तीसर पहरमहँ, मधुसूदन श्रीधनुरधर।
त्रय मूरति माधव करें, रक्षा सायंकाल वर॥

हृषीकेश परदोष कालमहँ रच्छें नित विभु।
आधी राति निशीथ समयमहँ पद्मनाभ प्रभु॥
जिन लाञ्छन श्रीवत्स पहर पिछलेमहँ रच्छन।
उषाकालमहँ करें खड्ग धरि कृपा जनार्दन॥
सूर्योदयके प्रथम ही, दामोदर रच्छा करें।
विश्वेश्वर श्रीकाल प्रभु, सब सन्ध्यनिको दुख हरें॥

करो सुदरशन! भस्म शीघ्र तृन सम सब शत्रुनि।
कुचलि कुचलि करि चूर्ण गदे! तू भूत राच्छसनि॥
करि रव भीषन शङ्ख! रिपुनिके हिये कँपाओ।
तीच्छण धारतें खड्ग! विपच्छिनि शीश उड़ाओ॥
हे चमकीली ढाल! तू, चकाचौंध करि रिपुनिकूँ।
तुम सब प्रभुके अस्त्र हो, करौ पराजित सबनिकूँ॥

रवि, ग्रह, दानव, दैत्य, भूत प्रेतादि भयङ्कर।
प्रतिबन्धक जे अपर सिंह सरपादिक विषधर॥
नसें करत हरि नाम, रूप, आयुधको कीर्तन।
पार्षद विश्वक्सेन गरुड़ दुख मेंटें ततछिन॥
नाम, रूप आयुध सकल, हरि पार्षदगन दुख हरें।
बुद्धि, करन, मन, प्रानकी, सब क्रमतें रच्छा करें॥

जग प्रपञ्च सत् असत् सकल हरि रूप कहावें।
है यदि यह ध्रुव सत्य अबहिँ मम दुःख नसावें॥
है निरगुन निज जननि हेतु नाना वपु धारें।
है सत तो सरवत्र सकल विपतिनि हरि टारें॥
अट्टहास करि भयङ्कर, जो भक्तनिके भय हरें।
ते नरहरि अति तेजयुत, दशहु दिशनि रच्छा करें॥

विश्वरूपने जिही कवच सुरपतिकूँ दीयो।
दै नारायन मन्त्र अभय सबईकूँ कीयो॥
शुभ नारायन कवच मिल्यो सुरश्री पुनि आई।
असुरनिपै सजि सैन, सुरनिनैं करी चढ़ाई॥
श्रीहरि कवच प्रभावतें, असुर स्वरग तजि भगि गये।
राजभ्रष्ट सुरराज तब, अमरावतिपति पुनि भये॥

इति श्रीभागवत चरितके तृतीयाहमें विश्वरूप सुरपुरोहित वर्णन नामक नवम अध्याय समाप्त।



अथ दशमोऽध्यायः

[१०]

त्वष्टासुत गुरु पाइ भये स्वर्गेश इन्द्र पुनि ।
करवावें नित यज्ञ पुरोहित विश्वरूप मुनि ॥
उच्चस्वरतें बोलि सुरनिकूँ आहुति देवें ।
चुपकेतें कछु यज्ञभाग दै असुरनि सेवें ॥
मातृपक्ष अनुराग लखि, देवनि संशय ह्वै गयो ।
उपरोहित अविनय निरखि, क्षोभ इन्द्र मन अति भयो ॥

निरखि स्वार्थमहँ विघ्न इन्द्रने खड्ग निकार्‌यो ।
त्वष्टा-सुत सिर तीन काटि उपरोहित मार्‌यो ॥
सोमपीथ सिर भयो कपिञ्जर सुरापीथ सिर ।
भयो पक्षि कलविङ्क तीसरो नरसिर तित्तिर ॥
द्विजहत्या सुरपति निकट, आई अञ्जलिमहँ लई ।
हत्यारे देवेन्द्र हैं, यह प्रसिद्धि जगमहँ भई ॥

बनि हत्यारे फिरें बरष भरि सुरपति जहँ तहँ ।
बाँटी हत्या इन्द्र धरा, नग, नारि, बारिमहँ ॥
गड्ढा पुनि भरि जायँ लह्यो बर धरा प्रेमतें ।
कटिकें पनपें वृक्ष इन्द्र बर दयो नेमतें ॥
व्यय करिकें हू नित बढ़े, बदलेमहँ बर जल लह्यो ।
रतिसुख शक्ति सदा बनी-रहे कामिनिनि वर दयो ॥

ऊसर पृथिवी होय ब्रह्महत्याके लच्छन।
यज्ञादिक शुभ करम नष्ट होवें तहँ तच्छन ॥
गोंद तरुनिमहँ होय करें जे वाकूँ भच्छन।
राग सहित तिहिं खायँ पापमय होवै तन मन ॥
दीखें मैले फैंन जे, जल प्रवाहमहँ जाइकें।
द्विजहत्या लखि पियो जल, बुदबुद फैंन बचाइकें ॥

चौथे दीन्हों भाग इन्द्रने नारिनिकूँ जब।
मास मासमहँ प्रकट होहि अस्पर्श होहिं तब ॥
रजोधर्ममहँ निरत नारिकूँ नर जो जोहैं।
धरम करमतें हीन पापमय खल जन सो हैं ॥
भूलि समागम अज्ञ नर, रजस्वलातें करिहें।
हत्यारे सम पातकी, अवसि नरकमहँ परिहें ॥

नारि, वृच्छ, जल, भूमि पाइ बरदान सिहाये।
इन्द्र भये निष्पाप मुदित ह्वै स्वरग सिधाये ॥
द्विजहत्या तो गई शत्रुता सिरपै आई।
बिश्वरूप पितु कुपित भये सुनि इन्द्र ढिठाई ॥
त्वष्टा मन निश्चय कर्‌यो, इन्द्र नीचता हरुङ्गो।
जो मारै जा इन्द्रकूँ, अस नर पैदा करुङ्गो ॥

ऐसो मनमहँ सोचि हवन मुनिवरने कीन्हों।
इन्द्र शत्रु बढ़ि जाव, मंत्र पढ़िकें हवि दीन्हों ॥
मंत्र शक्ति अति अमित, तुरत इक उपज्यो प्रानी।
महा भयंकर वृत्र बली अतिशय अभिमानी ॥
लाल मूँछ दाढ़ी अरुन, बरन नयन प्रलयाग्नि सम।
अञ्जनपरबतके सरिस, सुररिपु तेजस्वी परम ॥

छिन छिनमहँ बहु बढ़े लोक तीनहु ढकि लीन्हें ।
देव मारतैं बिकल असुर सब निरभय कीन्हें ।।
पूछे पितुतें वृत्र—तात ! हौं करूँ कहा अब ।
मोकूँ कछु न अ शक्य, काज हौं पिता करौं सब ।।
त्वष्टा मुनि सुनि इन्द्रको, कह्यो वृत्त सब वृत्रतें ।
इन्द्र मारि देवनि करो, रहित चमर अरु छत्रतें ।।

वृत्रासुर सुनि पिता बचन सब असुर बुलाये ।
क पुरोहित आइ विजयके कृत्य कराये ।।
मदमाते सब असुर चले रन शस्त्र घुमावें ।
गर्जन तर्जन करत वृत्र बल समुझि सिहावें ।।
आवत देख्यो असुर दल, सब शस्त्रनि लै भिरि गये ।
वृत्र पराक्रम निरखि कें, बिस्मित सब सुरगन भये ।।

बोल्यो उनतें वृत्र—देव ! तुम सब अज्ञानी ।
अरे, तुमनि मम देह, बज्रकी बनी न जानी ।।
अति कोमल मम जीभ ताहिपै शस्त्र चलाओ ।
एक साथ मिलि मोहिँ युद्धकी कला दिखाओ ।।
सुनि सुर सब मिलि जीभपै, अस्त्र शस्त्र मारन लगे ।
लीले सबके अस्त्र जब, है निशस्त्र डरि सुर भगे ।।

भागत देखे देव असुर जय पाइ सिहाये ।
नहीं शरन लखि अन्य विष्णु ढिँग सुर सब धाये ।।
हाथ जोरि सब बिनय करें हरि हमें बचाओ ।
बहुत अवज्ञा सही जगतपति अब अपनाओ ।।
गुरु अपमान स्वरूपमहँ, वृत्र बिपति सिरपै परी ।
गो द्विज देवनिकी तुमनि, युग युगमहँ रच्छा करी ।।

त्रिपति उदधिमहँ मगन भये हरि आइ उबारो ।
अन्य शरन नहिं नाथ ! गहो अब हाथ हमारो ।।
सुनि देवनि की बिनय तुरततहँ प्रगटे श्रीहरि ।
अति प्रसन्न सब भये देव दुरलभ दरशन करि ।।
देखि दुखी देवनि दया, करी बिष्णु बोले बचन ।
शुभ सम्मति सबकूँ दऊँ, ताहि सुनो एकाग्र मन ।।

मुनि दधीचिके निकट देव सब मिलिके जाओ ।
निज बिपत्तिके बृत्त जाइ मुनिबरहिं सुनाओ ।।
बिद्या ब्रततें पूत तपस्याके प्रभावतें ।
उनकी हड्डी बिमल सरल सच्चे स्वभावतें ।।
बनें वज्र मुनि अस्थितें, बृत्रासुर मरि जाइगो ।
सबरो दुख कटि जायगो, गयो राज फिर आइगो ।।

हरिकी सुनिकें बात देव ह्वैकें बिस्मययुत ।
चिन्ता भयतें बिकल भये निरखें सब इत उत ।।
कहें—प्रभो ! हम दुखित असंभव कहो न बानी ।
देहि न जीवित अस्थि होहि चाहे नर ज्ञानी ।।
को जगमहँ अस करि सकै, प्रानदान दुषकर करम ।
हमरी देनों दयानिधि ! दुखदायी होवै परम ।।

हरि हँसि बोले—देव ! सबनि अपु सम मति जानों ।
परउपकारी पुरुष देहिं सरबसु सचु मानों ।।
शिवि, बलि अरु, हरिचंद करम दुषकर जग कीन्हों ।
परकारजके हेतु मोह तनको तजि दीन्हों ।।
सिर कटाइ उपदेश शुभ, ज्ञान अश्वशिरतें कर्यो ।
का अदेय जिनकूँ सदा, हृदय ज्ञान घनतें भर्यो ।।

विष्णु कहैं—सुरराज ! काज ऋषिबर ई साधैं ।
तनय-अथर्वा नित्य नियमतैं हरि आराधैं ॥
नाहीं सुरपति करी बिबिध बिधि धमकी दीन्हीं ।
यमजनितैं जो कही प्रतिज्ञा पूरी कीन्हीं ॥
कही ब्रह्मविद्या सकल, हयसिरतैं मुनिऋषभ जो ।
अश्वसिराके नामतैं, है प्रसिद्ध अब तलक जो ॥

मिलि सब जाओ करो बन्दना ऋषि चरननि की ।
माँगो ह्वैकें दीन अस्थि अति पावन मुनिकी ॥
अवसि देइँगे कबहुँ मनैं मुनिवर न करिङ्गे ।
तुम सबके हित बिहँसि नेहतैं देह तजिङ्गे ॥
उनकी तपमय अस्थितैं, सुघर बज्र बनि जायगो ।
वाईतैं जा वृत्रको, सिर धड़तैं कटि जायगो ॥

बिश्वरूपने तुमहिँ कवच नारायन दीन्हों ।
पितु त्वष्टातैं बिश्वरूप द्विजबरने लीन्हों ॥
मुनि दधीचिने दयो तपस्वी त्वष्टाकूँ पुनि ।
अस्थिनिमहँ बँधि गयो भयो अतिई पावन मुनि ॥
परउपकारीकूँ कहो, कौन कठिन जग काज है ।
परकारजके हेतु तो, तुच्छ देह, धन, राज है ॥

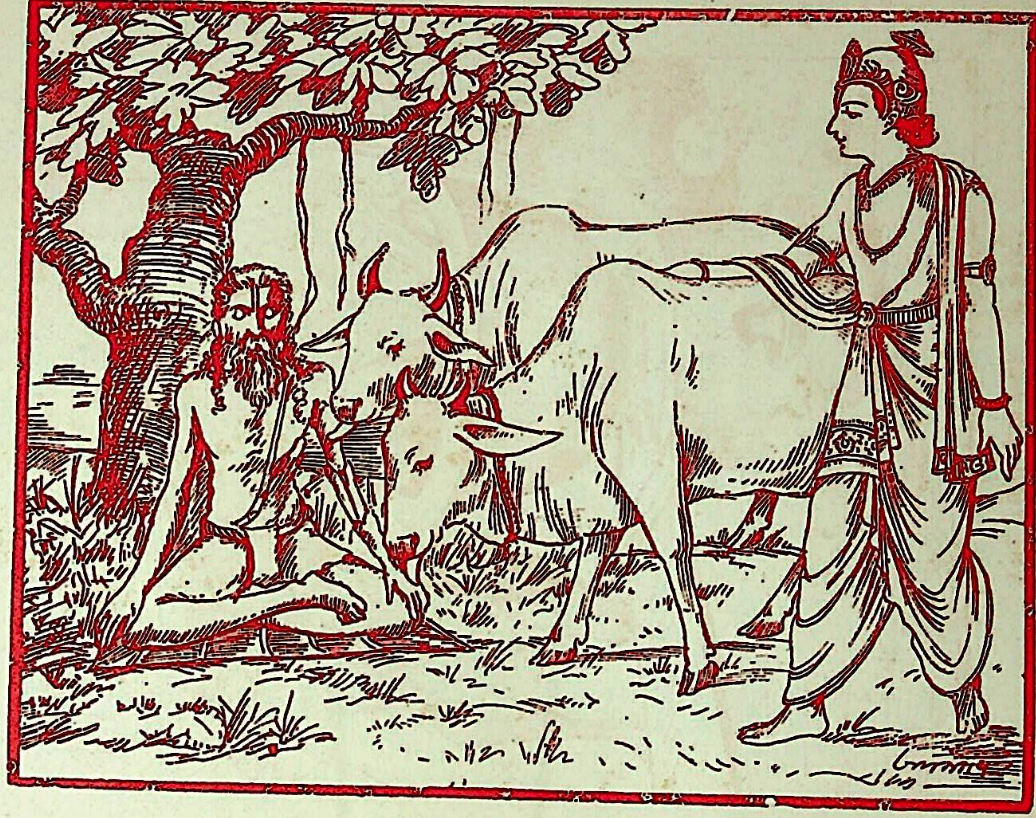
सोरठा—सुनिकें हरिकी सीख, देवनिकूँ निश्चय भयो ।
माँगन मुनितैं भीख, चले अमर स्वारथ निरत ॥
शौनक पूछें—सूत, मुनि अस्थिनिमहँ तेज क्यौं ।
किहि कारन ते पूत, सुनिकें बोले सूतजी ॥

छप्पय—मुनि दधीचि ढिँग गये देव असुरनिकूँ जय करि।
मुनितें बोले अमर—महामुनि ! देवनि भय हरि ॥
इन अस्त्रनितें हमनि असुर सब ई संहारे।
अब ये सबई दिव्य अस्त्र हैं ब्यरथ हमारे ॥
नष्ट असुर करि देइँगे, प्रभु ! इनकी रच्छा करहु।
रहैं सुरच्छित यहाँपै, इनकूँ निज आश्रम धरहु ॥

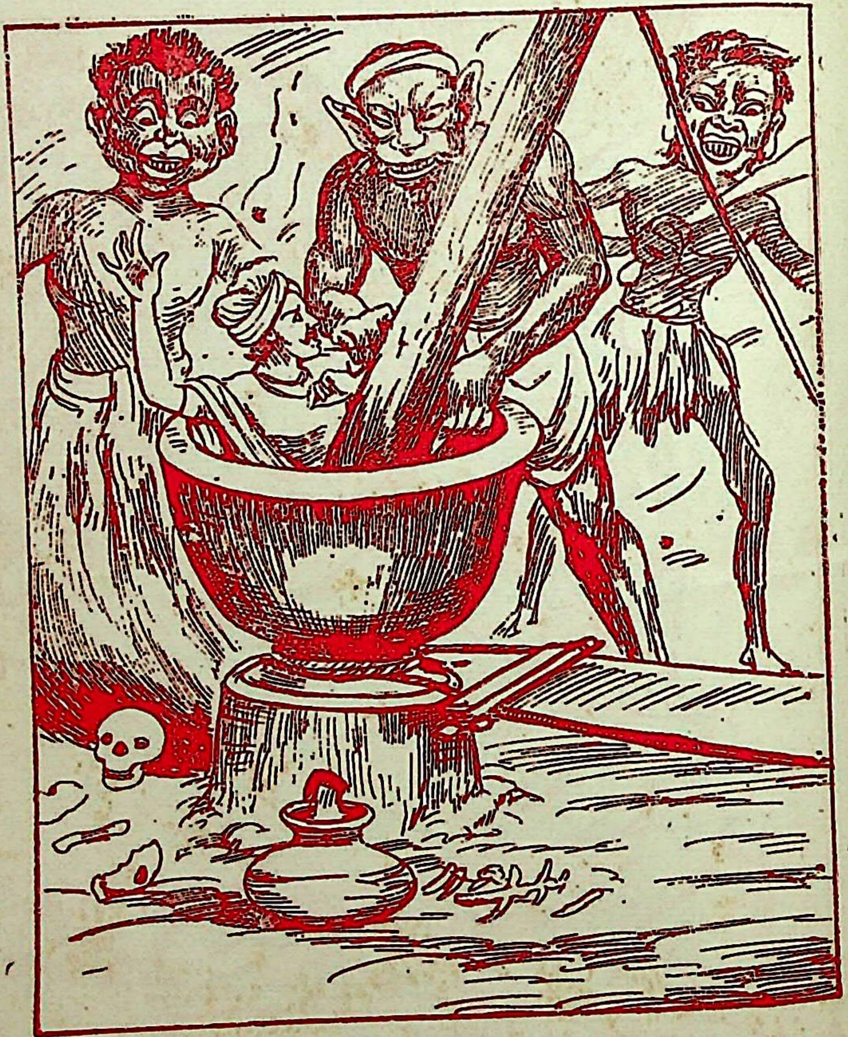
स्वीकारी सुर बिनय अस्त्र मुनिनें धरि लीन्हें।
गभस्तिनीतें डरे देव मुनि निरभय कीन्हें ॥
सुर लैवे नहिं गये न्यास रच्छाके भयतें।
पीये मुनि सब धोय पचाये अपने तपतें ॥
ते अस्थिनिमहँ बिधि गये, बज्र सरिस सबरी भइँ।
शुद्ध हतीं तबतें प्रथम, परम शुद्ध अब है गइँ ॥

ताहीतें हरि कही—अस्थि मुनिकी लै आओ।
फिरितें अपने अस्त्र शस्त्र अरु बज्र बनाओ ॥
हरि आयसु स्वीकारि चले सुर मुनि ढिँग तबई।
पढ़ी पढ़ाई बात सुनाई देवनि सबई ॥
सुनि दधीचि बोले बिहँसि, कठिन फन्द तनुनेहको।
माँगें चाहैं विष्णु ई, दैवो दुरलभ देह को ॥

स्वेच्छातें नहिं जीव देह अपनीकू त्यागै।
पापी, रोगी, मूढ़, देह सबकूँ प्रिय लागै ॥
सहैं दुसह दुख किन्तु मृत्यु तोऊ भयकारी।
क्यौं तुम माँगो देव ! देहकी अस्थि हमारी ॥
बोले सुर स्वारथ सहित, साधु सदा पर हित निरत।
दुखित देव सब आपु प्रभु, दुखियनि दुख मेंटत सतत ॥



दधीचि का अस्थिदान पृ० २४२



नरक की कोल्हू यातना पृ० २०६

जिनको व्रत है सतत दया जीवनिपै करिबो।
उनकूँ एक समान जगत्‌महँ जीबो मरिबो॥
परकारज हित हरषि साधु प्राननिकूँ देवैं।
दाता देहिं अनित्य नित्य बदलेमहँ लेवैं॥
कहें संतजन जगत् महँ, एक त्यागई श्रेय है।
परउपकारी के लिये, नहिं कछु बस्तु अदेय है॥

इन्द्र बने बर बाज कबूतर अनल बनाये।
दोऊ झगड़त परम यशस्वी शिवि ढिँग आये॥
अति ई दुखी कपोत कहे—प्रभु! रक्षा कीजे।
बाज भूखतें दुखित कहे—भोजन मम दीजे॥
शरनागतकी कष्ट सहि, पीड़ा भूपतिने हरी।
मांस दयो निज देहको, रक्षा शिवि वाकी करी॥

सब स्वारथके मीत न देखें परहित कोई।
होवै मेरो लाभ हानि भल औरनि होई॥
परउपकारी सदा दुःख औरनिकौ लेवैं।
दुखियनिके हित बिहँसि प्रान तन मन धन देवैं॥
यह कारज मैंने कियो, नहीं करें अभिमान वे।
उनको सहज स्वभाव यह, दोष न देवैं ध्यान वे॥

हाड़ मासके बने देहमें ममता सबकूँ।
चाहें सबहों दुखो सदा सुख होवै हमकूँ॥
परउपकारी त्यागि देहिं सरबसुकी ममता।
देहिं देहको दान रखहिँ सबईमहँ समता॥
मोरध्वजने सही सब, साधु सिंह हित सुत व्यथा।
हैं अब तक जगमहँ विदित, शिवि, दधीचि, बलिकी कथा॥

दोहा—देवनिको उपदेश सुनि, मुनि सोचें मनमाहिँ ।
परमारथतें श्रेष्ठ जग-महँ कारज कछु नाहिँ ॥

छप्पय—हँसि दधीचि मुनि कहें—धरमको मरम जतायो ।
ताहीतें अस व्यंग देवगन बचन सुनायो ॥
विषयनितें नहिं मोह नहीं है ममता तनकी ।
लगी रहे नित वृत्ति ब्रह्ममहँ मेरे मनकी ॥
इक दिन छूटे अवशि ई, नाशवान यह है अनित ।
क्यौं न तजूँ फिरि स्वतः ई, तनु तुम्हरे हितके निमित ॥

अहो कष्ट अति घोर करै नर तनमहँ ममता ।
नहिं साधे परलोक करै धनमाँहिँ कृपनता ॥
परमधरम है जिही दुखी परदुखमहँ होनों ।
दया धरमतें हीन व्यरथ जीवनकूँ खोनों ॥
छिन भंगुर नितनाशयुत, व्यरथ मोह धन गेहमहँ ।
क्यौं न बितावै समयकूँ, परमारथके नेहमहँ ॥

सुनि मुनिको उपदेश देवता अति ई हरषे ।
बजें दुंदुभी गगन सुमन सुर-तरु के बरषे ॥
मुनि पुनि इच्छा करी तीर्थ मैंने नहिं कीन्हे ।
तुरत तीर्थ तहँ सुरनि बुलाये सब मुनि चीन्हे ॥
न्हाय धोय निश्चिन्त ह्वै, सब तीरथ करि भक्तितें ।
बैठे तनु त्यागन निमित, तप संयमकी शक्तितें ॥

परब्रह्ममहँ चित्त लीन कीन्हों मुनि अपनों ।
यह सब दृश्य प्रपंच लख्यो सबरो जस सपनों ॥
मनकूँ करि एकाग्र तत्त्वमय दृष्टि करी तब ।
संयत कीन्हें प्रान करीं बसमहँ इन्द्रिय सब ॥

सुरनि बुलाई सुरभि सब, चाटि मांस बिनु तनु कियो।
यों परकारजके निमित, मुनिने निज तनु तजि दियो॥

सूखी हड्डी रहीं तेजयुत अतिशय मनहर।
रच्यो बज्र शुभ दिव्य बिश्वकरमा अति सुन्दर॥
हरिको प्रबिश्यो तेज सुरनि सँग मुदित भये अति।
ऐरावतपै चढ़े सुशोभित होयँ स्वरगपति॥
परउपकारीकूँ नहीं, तनिकहुँ तनमहँ राग है।
धनि दधीचि मुनि धन्य तप, धनि धनि उनको त्याग है॥

इति श्रीभागवत चरितके तृतीयाहमें विश्वरूपवध वृत्रोत्पत्ति दधीचि अस्थिदान नामक दशम अध्याय समाप्त।



अथ एकादशोऽध्यायः

[११]

दोहा—मुनि दधीचिकी अस्थितें, बने बज्र अरु शस्त्र ।
लखि सुर अति हरषित भये, चले समर लै अस्त्र ॥

छप्पय—सब सुर शस्त्र सम्हारि समरमहँ सजि बजि धाये ।
उततें असुरहु अस्त्र शस्त्र लैकें चढ़ि आये ॥
गदा, परिघ, शर, शूल लगे बहु शस्त्र चलन तहँ ।
रनके बाजे बजें बीर बर लड़ें समरमहँ ॥
देवासुर संग्राम अति भयो भूमिपै भयङ्कर ।
सुरसेना बिजयी भई, भगे असुर तजिके समर ॥

असुरनि भागत देखि बृत्र बोल्यो बर बानी ।
अरे, असुरगन ! समरत्यागि का मनमहँ ठानी ॥
आगे भगि कहाँ मृत्यु तो सँग ई आवै ।
बिना कालके मृत्यु कहूँ ढिँग हू नहिं जावै ॥
जे जगमहँ पैदा भये, ते निश्चय ई मरिङ्गे ।
तो फिर मरिकें बीरबर, च्यौं न अमर यश करिङ्गे ॥

असुरनिकूँ यों बृत्र धरमयुत बचन सुनाये ।
किन्तु समरतें भगे एकहू नहिं मन भाये ॥
असुर प्रान लै भगे देवता तिनहिं खदेरें ।
लड़ें भिड़ें नहिं तऊ जाइ सुर पुनि पुनि घेरें ॥
बृत्रासुर अन्याय लखि, कहे इन्द्रतें कटु बचन ।
अरे, अधरमी धरम तजि, करै काहि यह कपट रन ॥

है पुरुषारथ, तेज, ओज, बल तोमें सुरपति ।
तो करि मोतें युद्ध करूँ तेरी अब दुरगति ।।
मेरे सम्मुख आव समरको स्वाद चखाऊँ ।
अबई तोकूँ मारि मृत्युके सदन पठाऊँ ।।
यौं कहिके गर्जन करी, सुनि रव सबरे सुर डरे ।
बज्राहतके सरिस है, देव अवनिपै गिरि परे ।।

असुर पराक्रम निरखि इन्द्रने गदा चलाई ।
तुरत वृत्रने छीनि इन्द्र गजमाँहिं घुमाई ।।
ऐरावत सिर लगी फट्यो मुँह अति घबरायो ।
तिलमिलायकें हट्यो बहुत सो रुधिर बहायो ।।
व्याकुल सुरपतिकूँ लख्यो, पुनि प्रहार कीयो नहीं ।
सम्हरि समर सम्मुख भयो, वृत्र बात कड़वी कहीं ।।

वृत्र कहे—रे इन्द्र ! ब्रह्महत्यारे ! पापी ।
अबई मारूँ तोइ असुरकुलके सन्तापी ।।
अथवा मैं ई दिव्य अस्त्रतें यदि मर जाऊँ ।
तो हरि सुमिरन करत मोक्ष पदबीकूँ पाऊँ ।।
भक्तशिरोमणि असुरवर, ध्यान मग्न यों कहि भये ।
श्रीहरिने तब वृत्रकूँ, समरमाँहिँ दरशन दये ।।

करि हरि दरशन वृत्र विनययुत बोल्यो बानी ।
दीन्हे दरशन देव जानि सेवक अज्ञानी ।।
तब दासनिको दास दयानिधि पुनि पुनि होऊँ ।
चिंतन चित नित करे, गुणनिको तव हित रोऊँ ।।
करें काज कैंकर्य कर, गुन गावै बानी सतत ।
जो कछु होवै देहतें, सो तुम्हरी सेवा निमित ।।

नहीं चाह है स्वरग ब्रह्मपद हू नहिं चाहूँ।
भूमि रसातल राज न चाहूँ ऋषि बनि जाऊँ॥
नहीं सिद्धि सब पाइ सिद्ध बनि जगत लुभाऊँ।
बाञ्छा चितमहँ नहीं मुक्तिकी पदवी पाऊँ॥
है मेरे मन लालसा, चरन कमल चिंतमहँ धरूँ।
सेवक बनिकें सदाई, नित सेवा तुम्हरी करूँ॥

हरितें हेतु हटाय विषय जगमाँहिँ फँसावें।
हरि बिनु जगके भोग मोइ तनिकहु नहिं भावें॥
मूरति मनमहँ मधुर मचलि माधवकी जावै।
रसना निसिदिन सुखदगीत गोबिंदके गावै॥
दयासिन्धु द्वारे खड़ो, दरस दासकूँ दीजियो।
कलपूँ कबतें कृपानिधि, कृष्ण! कृपा अब कीजियो॥

कैसे चाहूँ तुम्हें जगत उपमा कहँ पाऊँ।
तोऊ हियकी बिरह चाह सरवेश! सुनाऊँ॥
खग शावक बिनुपंख मातुकूँ जैसे चाहें।
भूखे बछरा मातु दूधहित ज्यों डकराहें॥
भये प्रबासी प्राणपति, नित्य निहारें नारि ज्यों।
जीवनधन! उतसुक बन्यों, झाँकी चाहूँ नाथ त्यों॥

प्रिय आवनके दिवस प्रिया ज्यों व्याकुल होवै।
आशातें है मुदित निराशातें पुनि रोवै॥
पुनि पुनि देखै द्वार अटा चढ़ि पीव निहारे।
कबहुँ निहारे शकुन कबहुँ कछु बस्तु सम्हारे॥
छिन-छिन पल-पल निमिषमहँ, ज्यों प्रियतम सुमिरन करे।
त्यों हरि तुम्हरे नेहमहँ, नीरस हिय मेरो भरे॥

धन, जन, वैभव, स्वरग, ब्रह्मपद मुक्ति न चाहूँ ।
भ्रमत जगतमहँ जनम ग्रहण करि यदि पुनि आऊँ ।।
तौ मेरी है साध नाथ ! तुम पूरी कीजौ ।
विषयिनिको नहिं संग होय हरि यह बर दीजौ ।।
सुत कलत्र धन धाममहँ, जिनको मन आसक्त अति ।
कबहूँ मोकूँ भूलि प्रभु, तिनको दैयो संग मति ।।

सदा साधुको संग होहि मन अनत न जावै ।
कान कृष्ण की कथा सुनें रसना हरि गावै ।।
साधुनिमें ई रहूँ सीथ परसादी पाऊँ ।
पादोदक सिर धारि प्रेमतें चरन दबाऊँ ।।
प्रभु पूजामहँ निरत जे, कथा कीरतन करहिं नित ।
तिन हरिभक्तनिके चरन, महँ मेरो अति रमे चित ।।

इस्तुति करिकें वृत्र उठ्यो सुरपतिपै धायौ ।
गर्जन तर्जन करी फेंकि तिरसूल चलायौ ।।
इन्द्र न विचलित भये बाहु निज रिपु की काटी ।
मार्‌यो अरिने परिघ इन्द्रकी ठोढ़ी फाटी ।।
वज्र हाथतें गिरि पर्‌यो, सुरपति लज्जित है रहे ।
नहीं उठायो शस्त्र जब, वृत्र वचन तब प्रिय कहे ।।

इन्द्र ! करो मत सोच वज्रकूँ फेरि उठाओ ।
सदा कौनकी भई विजय यह मोइ बताओ ।।
यश अपयश, जय अजय, दुःख सुख रहें संगमहँ ।
रोग शोक भय हर्ष होहिं नहिं कवन अङ्गमहँ ।।
युद्ध द्यूतक्रीड़ा सरिस, दोउनिमहँ को कब थके ।
जय होवे या पराजय, निश्चय कोउ न कहि सके ।।

सुनी भक्तिमय मधुर वृत्रकी सुरपति बानी ।
बोले आदर सहित—अहो दानव ! तुम ज्ञानी ॥
सब जीवनिकूँ बिश्वमोहिनी मोहै माया ।
असुर होहि अस कृष्ण करी कस तुमपर दाया ॥
तुम बिजयी हौं पराजित, तोऊ सम्मुख लरुङ्गो ।
छुद्र स्वरग सुखके निमित, समर असुर बर करुङ्गो ॥

तुम कृतार्थ ह्वै गये भक्ति भगवतकी पाई ।
परउपकारक असुर ज्ञान दै करी भलाई ॥
हम तो भैया ! बिषय भोगमहँ सदा निरत हैं ।
इन्द्रासनके हेतु करें हम यतन सतत हैं ॥
प्रभु पदपद्मनिमहँ परे, बिजय पराजय सम तुम्हें ।
धरम युद्ध कर्तव्यहित, करनो चहिये अब हमें ॥

यों कहि दोऊ भिरे परिघ अरु बज्र घुमावें ।
क्रोधित ह्वैकें फिरें परस्पर शस्त्र चलावें ॥
वृत्र चलाई शक्ति बीच महँ सुरपति डाटी ।
मार्‌यो तकिकें बज्र बाहु दूसरिहू काटी ॥
असुर भुजा दोऊ कटीं, परबत सम घूमत फिरत ।
भीषन मुखकूँ फारिकें, इन्द्र ओर दौर्‌यो तुरत ॥

ऐरावतके सहित लीलि लीन्हे सुरपति जब ।
असुर उदरमहँ इन्द्र गये सुर दुखित भये सब ॥
नारायन शुभ कवच अमरपति कीयो धारन ।
बाल न बाँको भयो, नाम श्रीहरिके कारन ॥
वृत्रासुरके पेटकूँ, फारि इन्द्र बाहर भये ।
नारायन महिमा लखी, सुर मुनि बिस्मित ह्वै गये ॥

आये बाहर इन्द्र असुरके सिरकूँ काटें।
वज्र वेगतें घिसें असुरकी अस्थि न फाटें॥
सबरी शक्ति लगाय कर्‌यो धर सिरतें न्यारो।
एक बरष यों लग्यो मर्‌यो पुनि वृत्र बिचारो॥
मुनि दधीचिकी अस्थितें, वज्र बन्यो सुररिपु मर्‌यो।
अब चरित्र अगिलो सुनो, जो दधीचि पत्नी कर्‌यो॥

लै दधीचिकी अस्थि गये सुर अति हरषाई।
उत मुनि पत्नी न्हाइ धोइ आश्रममहँ आई॥
सब सुनि काट्‌यो पेट पुत्र तजि सती भई पुनि।
पीपल पाले पुत्र भये ते पिप्पलाद मुनि॥
पिप्पलाद मुनि सुरनिपै, कोप शंभुबरतें कियो।
सुरनि शरन शिवकी लई, रुद्र शान्त मुनि करि दियो॥

इति श्रीभागवत चरितके तृतीयाहमें वृत्र-चरित नामक
ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।

(मासिक पारायण बारहवें दिवसका विश्राम)



अथ द्वादशोऽध्यायः

[१२]

त्वष्टा दूसर तनय बृत्र यों मार्यो सुरपति ।
बृत्रासुरके मरत भये मुनि देव सुखी अति ॥
मार्यो ब्राह्मण पुत्र ब्रह्महत्या पुनि आई ।
चाण्डालिनि अति मलिन इन्द्र के ऊपर धाई ॥
डरे इन्द्र तहँतें भगे, अति व्याकुल मनमहँ भये ।
मिली शरन जब कहूँ नहिँ, मानस सरमहँ घुसि गये ॥

कमलनालमहँ रहें ब्रह्महत्यारे शचिपति ।
मिलै न तहँ आहार भई सुरपतिकी दुरगति ॥
स्वरग इन्द्र बिनु भयो नहुष सुरइन्द्र बनाये ।
पाइ स्वर्ग सम्पत्ति मनुज भूपति बौराये ॥
इन्द्रानीतें कहें नृप, पौलोमी अब हठ तजो ।
मैं शासक हूँ स्वरगपति, इन्द्र मानि मोकूँ भजो ॥

नये इन्द्रकी बात शची सुनि अति घबराई ।
चिन्तित व्याकुल दुखी डरी सुरगुरु ढिँग आई ॥
गुरु प्रसन्न है युक्ति अनौखी ताहि बताई ।
कामी विषयासक्त नृपतिपै बात पठाई ॥
ऋषि कंधनि शिबिका धरें, चढ़ि मम ढिँग आवें अबसि ।
तो निज पतिके ई सरिस, बरन करूँ तिनकूँ हरषि ॥

दोहा—सुनि संदेशो शचीको, ऋषि मुनि लिये बुलाय।
कहन लग्यो अति मुदित ह्वै, शिविका चलो उठाय॥

छप्पय—चढ़्यो पालकी नहुष सहस मुनि ताहि उठावें।
सर्प सर्प नृप कहें अनसुनो ऋषि करि जावें॥
अति जब्र करिबे लग्यो कोप कुम्भज मुनि कीन्हों।
दुष्ट होइ तू सर्प शाप मुनिवरनें दीन्हों॥
चट्ट पट्ट अजगर भयो, औंधे मुखतें गिरि पर्‌यो।
तुरत पापको फल चख्यो, इन्द्राणी प्रति जस कर्‌यो॥

भयो पापको अंत गये सब मिलिकें ऋषि मुनि।
देवराजकूँ लाइ करायौ अश्वमेध पुनि॥
ज्यों कुहरा नसि जाय उदित दिनके ह्वैवेतें।
पाप पुञ्ज त्यों नसें नाम हरिको लैवेतें॥
इन्द्र नाकपति पुनि भये, त्रिभुवन अति हरषित भयो।
यों दधीचिको त्याग अरु, वृत्रासुरको वध कह्यो॥

यह पवित्र अति चरित सुखद शिक्षाप्रद भारी।
पढ़ें सुनें नर नारि होहिं ते अवसि सुखारी॥
मुनि दधीचिको त्याग वृत्रकी भक्ति अनूठी।
ये ही द्वै हैं सार और जग चरचा झूठी॥
शौनक बोले—सूत ! कस, वृत्र असुर देही लही।
सूत कहें—शुकने कथा, नृपति प्रश्नपै सब कही॥

कहें परीक्षित—प्रभो ! वृत्र को पूर्व जनममहँ।
च्यौं दृढ़ हरि पद भक्ति रह्यो च्यौं अटल धरममहँ॥
शुक बोले—सुनु भूप ! नृपति इक चित्रकेतु बर।
शूरसेनको ईश साधुसेवी सुठि सुन्दर॥
विद्या रूप उदारता, संपति सब अगनित भरीं।
नृपकी रानी दश अयुत, हतीं कुलवतीं सुन्दरीं॥

किन्तु न तिनके पुत्र हतीं सब वन्ध्या रानी।
यातें नृपके चित्त माहिँ नित रहै गलानी॥
सब सुख बिषवत लगें भार सम शासन लागत।
निसि दिन चिन्ता रहै भूपकूँ सोवत जागत॥
दान, धरम, ब्रत, नियम, जप, करें पुत्रहित बहु नृपति।
किन्तु न संतति सुख लख्यो, तातें चिन्तित भये अति॥

एक दिना नृप भवन अङ्गिरा मुनिवर आये।
करि सेवा सतकार कनक आसन बैठाये॥
पूछी मुनि कुशलात नृपतिकी नीति बताई।
पुनि पूछें—नृप! रह्यो कमल मुख च्यौं मुरझाई॥
चित्रकेतु बोले—बिभो! कहूँ कहा प्रभु बिज्ञ हैं।
तप समाधि अरु योगतें, आप नाथ! सरबज्ञ हैं॥

निष्कल्मष हैं सन्त आबरन तम नहिं तिनकूँ।
भूत भबिष्यत बर्तमान दीखें सब उनकूँ॥
बड़भागी ते गृही सन्त जिनके घर आवें।
करि पूजा स्वीकार बिष्णु-परसादी पावें॥
होहिं दुरित दुख दूरि सब, करें कृपा यदि ते कहीं।
घटघटकी जानत सकल, अबिदित तिनकूँ कछु नहीं॥

तोऊ आज्ञा मानि दुःखको हेतु बताऊँ।
प्रजानाथ सम्राट जनेश्वर हौं कहलाऊँ॥
सब सुख मेरे यहाँ किन्तु सुत एक न स्वामी।
ताई तें अति दुखी रहूँ सुनि अन्तरयामी॥
प्रभु सर्वज्ञ समर्थ हो, कृपा कृपानिधि करो तुम।
देउ एक सुत मनोहर, बनें लोक परलोक मम॥

करि न सकें का संत बिष्णु हित जे व्रत धारें।
भाग्य अन्यथा करें रेखपै मेखहु मारें॥
हरि जिनके आधीन भाग्य तिनको है चेरो।
सन्त दरस जब भये भयो तब सब हित मेरो॥
सात जनम सन्तति नहीं, नारदतें बच हरि कहे।
सन्त कृपातें सात सुत, भक्त सेठ सो ऊ लहे॥

चित्रकेतु मुनि बिनय दया मुनिवरकूँ आई।
त्वष्टाके हित खीर ब्रह्मसुत सविधि बनाई॥
यजन कर्‌यो जो बची बड़ी महिषीकूँ दीन्हीं।
जाते होवै पुत्र अङ्गिरा आयसु कीन्हीं॥
रानी कृतद्युति मुदित अति, राजा हू हरषित भयो।
खाइ खीर मुनिकृपातें, गर्भ नृपति पत्नी रह्यो॥

शुक्ल पक्षको चन्द्र बढ़ै ज्यों बढ़ै गर्भ त्यों।
त्यों-त्यों आनँद बढ़े गर्भ दिन बीतें ज्यों-ज्यों॥
समय पाइकें पुत्र भयो सब लोग सिहाये।
राजमाँहिँ सरबत्र नगर पुर बजत बधाये॥
सुनत पुत्रके जन्मकूँ, अति आनन्दित नृप भये।
गौ, धन, बर भूषन, बसन, पुर पत्तन बिप्रनि दये॥

दिन दिन बाढ़्यो नेह गेह सुत तनिक न त्यागें।
नहिं औरनि घर जाइँ कृतद्युति महल बिराजें॥
सौतिनि मन अति डाह पुत्र नहिं शत्रु भयो है।
जबतें जनम्यो दुष्ट छीनि पति प्रेम लयो है॥
जा कंटककूँ काटिकें, निष्कंटक हम होहिँ कस।
विष दै मारौ शत्रुकूँ, सब मिलि निश्चय कियो अस॥

भई सबनिकी बुद्धि भ्रष्ट ईर्ष्या मन आई।
सोवत शिशुकूँ एक दिवस विष दियो पिवाई॥
मर्‌यो सौतिको पुत्र सबनि मन सुख अति होवै।
इत कृतद्युति निश्चिन्त कुमर मम सुखतें सोवै॥
कच्ची नींद जगे लला, नहिं अनबन मन होहि कहिँ।
ममता बश अस सोचिकें, सुतहिं जगावत मातु नहिँ॥

देर बहुत जब भई मातु मन भय अति लाग्यो।
नित तो सोवत नैंक आजु अब तक नहिं जाग्यो॥
धाइ पठाई तुरत ललाकूँ लै आ प्यारी।
धाइ जाइ तहँ मृतक चीख सुतकूँ लखि मारी॥
हाय! अभागिनि लुटि गई, हाय! दई जिह का भई।
हा! मम छौंना! लाल! सुत! यों कहि दासी गिरि गई॥

दासीकूँ लखि विकल गई तहँ भगिकें रानी।
मृतक बत्स लखि मातु धेनु सम गिरि डकरानी॥
करुना क्रंदन सुन्यो सेविका सब घबराई।
कपट बेदना प्रकट करत रानी सब आईं॥
समाचार भूपति सुन्यो, हृदय विदारक अति बिकट।
पहुँचे अन्तःपुर तुरत, गिरत परत सुत शव निकट॥

फटै कृतद्युति हृदय रुदन भूपतिको सुनि सुनि।
अस्त व्यस्त तनु भयो भूमिपै लोटैं पुनि पुनि॥
कज्जल कालिख मिले अश्रु मोचन करि रोवै।
चन्दन चर्चित पीन पयोधर सतत भिगोवै॥
अहो बिधाता निरदयी, तोइ दया नहिं नेकहूँ।
कहूँ मिलावै प्रेम तें, बिछुरावै दुखतें. कहूँ॥

हाय कहा जिह भयो कुमरने नातो तोर्यो।
छल करि यमपुर गयो भाग्य मेरो पुनि फोर्यो।।
बेटा ! मोकूँ छोरि अकेलो मति तू जावै।
दूर देशमहँ दूध तोइ को तहाँ पिआवै।।
बेटा ! सोवत आज तो, देरी तोकूं है गई।
यों अतिशय सुत शोकमहँ, रानी बहु ब्याकुल भई।।

रानी राजा शोक सिन्धुमहँ डूबें पुनि पुनि।
आये दैवे धीर अङ्गिरा अरु नारद मुनि।।
देखे बेसुधि भूप उठें नहिं विप्र उठावें।
कहि कहि सुन्दर युक्ति उभय मुनि यों समुझावें।।
जीव काल क्रमतें मिलै, समय पाय बिछुरे तुरत।
रचि माया मायेश पुनि, बालक वत क्रीड़ा करत।।

हैं निरीह अखिलेश अजनमा भूमा श्रीहरि।
शिशु सम खेलें सदा योगमाया आश्रय करि।।
रचें जीवतें जीव जीवतें पुनि मरवावें।
कबहूँ जग करि जगें कबहुँ लय करि सो जावें।।
नहिं त्रिकाल बाधित अजर, अमर नित्य प्रभु जगत् पति।
तजि तिन पद भ्रम बश करहिं, अज्ञ जगतमहँ मोह रति।।

सुनि सचेत नृप भये मुनिनि सन बोले बानी।
को हैं दोऊ आप परम तेजस्वी ज्ञानी।।
कहैं अङ्गिरा—भूप ! अङ्गिरा मोकूँ जानों।
ब्रह्माजीके पुत्र इन्हें नारद मुनि मानों।।
ज्ञान दैन आये उभय, आपु शोक संतप्त हैं।
शोभे नहिं अस मोह भ्रम, जे नर भगवत् भक्त हैं।।

को कलत्र को मित्र पुत्र को का को भाई।
जगके सब सम्बन्ध अन्तमहँ अति दुखदाई॥
सम्पति सब ऐश्वर्य, विषयसुख, राज, कोष, धन।
पृथिवी, सैना, भृत्य, सुहृद, आमात्य बन्धुगन॥
स्वप्न समान अनित्य ये, शोक, मोह, भय देहिं दुख।
तजो द्वैत भ्रम जालकूं, तब पाओ नृप नित्य सुख॥

कह्यो अंङ्गिरा ज्ञान फेरि बोले नारद मुनि।
देहुँ मंत्र उपनिषद ताहि नृप सावधान सुनि॥
जगके सब सम्बन्ध संग तनके ई जावें।
माता पत्नी बने पिता पुनि पुत्र कहावें॥
यों कहि मृतक कुमारकूँ, मुनि जीवित-सो करि दयो।
दुखित भूपतें जीवने, आत्मज्ञान अति प्रिय कह्यो॥

इति श्रीभागवत चरितके तृतीयाहमें चित्रकेतुचरित नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त।

(पाक्षिक पारायण षष्ठ दिवस विश्राम)



अथ त्रयोदशोऽध्यायः

[१३]

नारद बोले—जीव ! पिता माता ये तेरे ।
शोकाकुल अति भये पकरि पग रोवें मेरे ॥
जीवित ह्वै कें राज्य विषय सब भोगो सुखतें ।
अति ई दोऊ विकल छुड़ाओ इनकूँ दुखतें ॥
सुनि हँसि बोल्यो जीव वह, काके को पितु मात हैं ।
सब मुँह देखेके स्वजन, सुहृद बन्धु सुत तात हैं ॥

जीव नित्य अति सूक्ष्म प्रकाशक स्वयं निरंजन ।
मायाके गुण रोपि करे योगिनि मनरंजन ॥
मायिक गुण सम्बन्ध भयो दीखे मदमातो ।
जब तक रहे शरीरमाँहिँ तब तक ई नातो ॥
अगनित योनिनिमहँ भ्रमे, काकूँ निज पर कहि गने ।
कबहूँ नर, पशु, देव बनि, पिता, पुत्र, भ्राता बने ॥

निज परतें है रहित आतमा नित्य निरंतर ।
अक्रिय त्रिगुन विहीन सर्वगत अजर शुद्धतर ॥
साक्षी सर्व स्वतन्त्र दोष गुनहूतें न्यारो ।
कर्ता भोक्ता नहीं दीपवत करहि उजारो ॥
मृतकुमारको आतमा, यों कहि अन्तरहित भयो ।
सुनी ज्ञानमय बात जब, तब नृपको भ्रम भगि गयो ॥

जिनि राननि बिष दयो तिननि हू अति दुख कीन्हों।
पूर्वजन्मको बैर बिमाता बनिकें लीन्हों॥
मुनिके पकरे पाँइ पाप निज सत्य सुनायौ।
सब मुनि प्रायश्चित्त सबनितें सबिधि करायौ॥
हतप्रभ लज्जित नारि सब, यमुनाजीमें न्हाइकें।
पछिताईं कल्मष रहित, भईं कृष्ण गुन गाइकें॥

राजन्! सुख दुख देइ न कोई कबहुँ अकारन।
पूर्व बैर करि यादि करें उच्चाटन मारन॥
चींटी पूरब जनम माँहिं ये सबई रानी।
क्रीड़ामहँ अति उष्ण कुमरने छोड़्यो पानी॥
उष्ण तोयके परत ई, ये सबकी सब मरि गईं।
चित्रकेतुके भवनमहँ, ते ई सब रानी भईं॥

बिष दै सुतकूँ भयी ग्लानि मन अति पछितायो।
मुनि चरननिमहँ जाइ सबनि निज पाप बतायो॥
बालक बध अघ महा भईं हतप्रभ सब रानी।
दुखित अङ्गिरा निकट कही सब सत्य कहानी॥
समुझी मुनि भवितव्यता, ब्रत बताइ दीयो द्विजनि।
भेजीं ते यमुना निकट, प्रायश्चित कीन्हों सबनि॥

राननि कीन्हों जाय बालहत्या नाशक ब्रत।
नारदतें लै मंत्र नृपति घरतें निकसे इत॥
केवल जल पी रहे सात दिन मन्त्र जपत नित।
शोक मोह सब गयो लग्यो संकरषनमहँ चित॥
असन शयन तजि भूप वर, शेष चरन दरशान निमित।
जगकी सुरति बिसारिकें, करत रहे इस्तुति सतत॥

संकर्षण-स्तुति

जय जय संकर्षन, सब जग कारन, करहुँ प्रनाम अनंता।
जय चतुरव्यूह वर, भवभय दुखहर, ज्ञान रूप भगवन्ता ॥
नहिं द्वैत दृष्टि तब, ब्रह्मरूप सब, प्रणतपाल निरद्वन्दा।
मन इन्द्रिय स्वामी, अन्तरयामी, जयति सच्चिदानंदा ॥
मन बानी जावें, अन्त न पावें, लौटें विनु ही पावें।
नहिँ नाम न रूपा, सत्य स्वरूपा, तिनि चरननि सिर नावें ॥
जिनितें जग उपजै, नित नित विकसै, जो संहारें अन्ता।
जग ओत प्रोत हैं, शक्ति-स्रोत हैं, तिनि प्रनमें भगवन्ता ॥
जो गगन सरिस प्रभु, व्यापि रहे विभु, मन बुधि करन न पावें।
नहिं प्रानहु परसें, चक्षु न दरसें, शेष चरन सिर नावें ॥
जय नमो नमस्ते, नमो भगवते, महापुरुष जय देवा।
जिन चरन कमल वर, सेवित सुखकर, करहिँ असुर सुर सेवा ॥
जय जय धरनीधर, जय विश्वम्भर, पाँइ न सुर मुनि अन्ता।
तव चरन मृदुलतर, सुखकर अघहर, नित नित सेवहिँ सन्ता ॥
जय जय संकरषन, सब जग कारन, करहुँ प्रनाम अनंता।
जय चतुरव्यूहवर, भवभय दुखहर, ज्ञान रूप भगवन्ता ॥

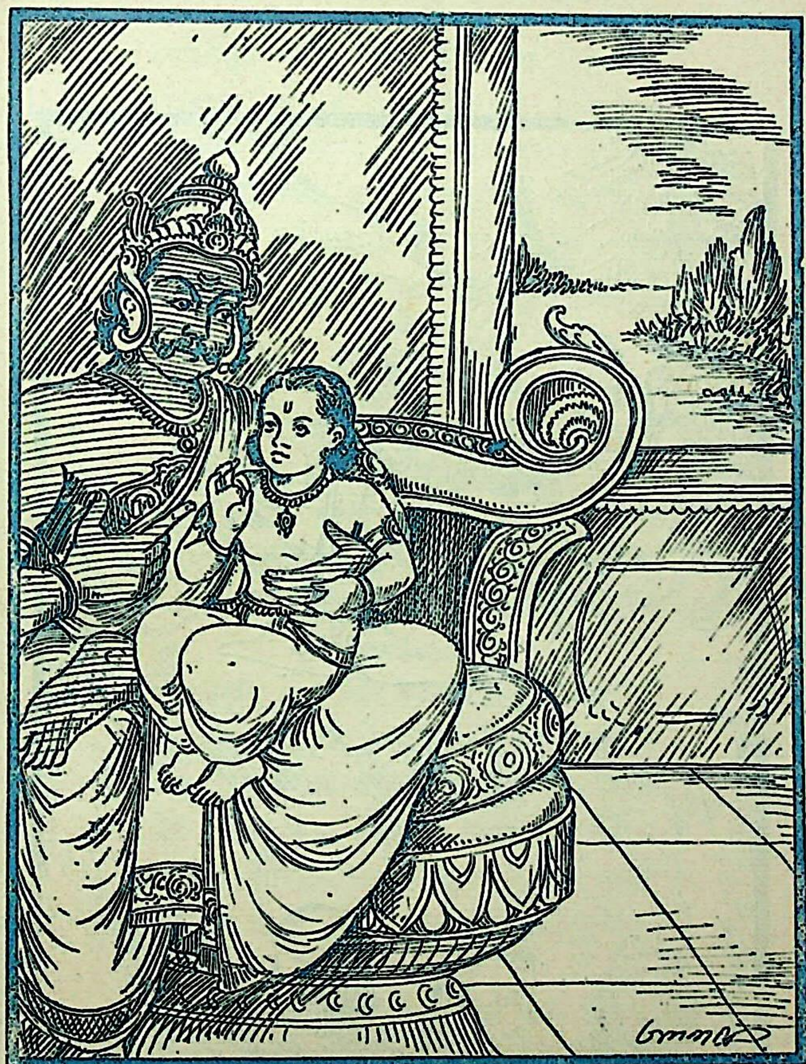
छप्पय—चित्रकेतुको चित्त चरन संकर्षन लाग्यो।
अव्याहत गति भई आवरन तम को त्याग्यो ॥
सात दिवसमहँ सिद्ध भये संशय सब भागे।
कर्‌यो निरन्तर जाप भाग भूपतिके जागे ॥
विद्याधरपति ह्वै गये, मनुज देह ही तें नृपति।
पहुँचे संकर्षन, निकट, बढ़ी योगतें विपुलगति ॥

कनक मुकुट मणि जटित फणनि पै चहुँदिशि चमकें।
गौर बरनपै परम रम्य नीलाम्बर दमकें ॥
कंकणादि कटिसूत्र सबनितें शोभा अद्भुत।
सुधापानतें अरुन नयन अति ई आभायुत ॥
श्रीअनंत दरशन करत, बढ़ी हृदयमहँ भक्ति अति।
गद्गद वानीतें विनय, प्रेम सहित कीन्हीं नृपति ॥

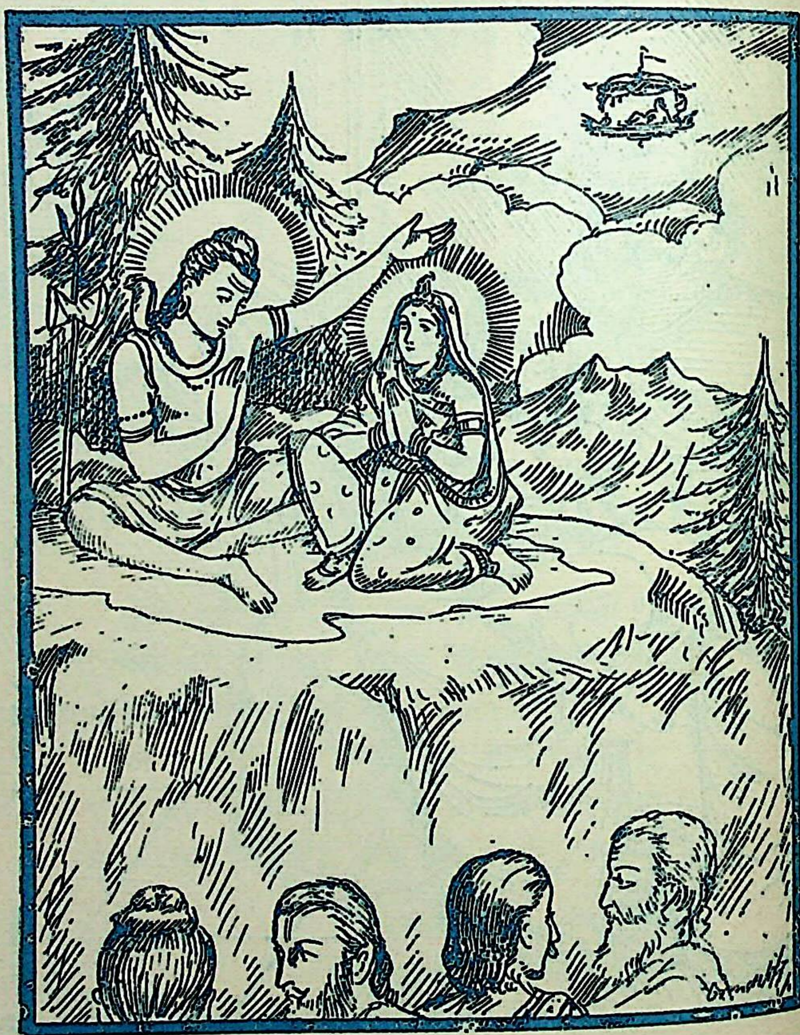
समदरशी जय अजित! दयासागर! सुरपूजित।
उत्पति थिति अरु प्रलय करौ लीलातें नितनित ॥
आदि मध्य अरु अन्तमाँहिं तुम ही संकरषन।
सब कछु पायौ तिननि भये जिनकूँ तव दरशन ॥
स्वयं तेज ज्ञानाग्नि तुम, करहु वासना भस्म सब।
कैसे अङ्कुर बीजमहँ, उठै फेरि जरि जाय जब ॥

तुमने दीयो देव भागवत ज्ञान मुनिनिकूँ।
करि लीये सुर असुर ब्रह्मसुत शिष्य सबनिकूँ ॥
दिब्य भागवत धरम मोह ममता सब नाशै।
करै अविद्या नाश भक्त हिय ज्ञान प्रकाशै ॥
कर्यो भागवत धरम को, नाथ! निरूपन अति सुखद।
होवै समदरशीपनों, सब जीवनिकूँ लाभप्रद ॥

मङ्गलमय अति मधुर नाम जे जन उच्चारैं।
होहिं श्वपच अति पतित तुरत तव धाम सिधारैं ॥
जगत प्रकाशक, सत्य परमगुरु नित्य निरञ्जन।
प्रेरक, प्रभु, परमेश, करैं पद पदुमनि वन्दन ॥
भूमण्डलकूँ शीश पै, सरसों सम धारन करैं।
सहसबदन तिन शेषके, पुनि पुनि हम चरननि परैं ॥



हिरण्यकशिपु और प्रह्लाद पृ० २८०



चित्रकेतु का शिवजी पर आरोप पृ० २६३

चित्रकेतुको विनय पाठ मुनि शेष सिहाये।
तत्वज्ञान मय गूढ़ बचन हितकर समुझाये॥
दुरलभ है नरदेह भाग्यतें कोई पावें।
पाइ करें नहिं भक्ति अन्तमहँ ते पछितावें॥
ज्ञान दयो श्रीशेषने, भक्तप्रवर भूपति भये।
पुनि करि सेवक श्रम सफल, अन्तरहित हरि ह्वै गये॥

हरि अन्तरहित भये रहे विद्याधर विस्मित।
भौचक्के से होइ निहारें पुनि पुनि उत इत॥
करि धरनीधर दरश मनोरथ सफल भये सब।
मिट्यो सकल संताप कृतारथ भये भूप अब॥
संकरषन जिहि दिशामहँ, दै सिख अन्तरहित भये।
करि प्रनाम तिहि दिशाकूँ, चढ़ि बिमानमें उड़ि गये॥

अष्ट सिद्धि नव निद्धि नृपतिके निकट बिराजें।
विद्याधरपति भये तेजमहँ रवि सम भ्राजें॥
एक दिना कैलास गये शिव शिवा संग महँ।
बैठे लैकें अङ्क मिलायें अङ्ग अङ्ग महँ॥
हँस्यो देखि शिवसन कहे, बचन कठिन अति व्यङ्गतें।
तजि लज्जा लिपटे रहें, शम्भु शिवाके अङ्गतें॥

खिलखिलाय हर हँसे नृपतिके व्यङ्ग बचन सुनि।
निरखि शम्भु रुख मौन रहे सुर असुर देव मुनि॥
किन्तु सहन नहिं भये कुपति अति भई भवानी।
जान्यो यह है धृष्ट नीच अतिशय अभिमानी॥
रोष सहित बोलीं शिवा, हमरे गुरु आए नये।
ब्रह्मा, हरि, नारद, कपिल, ये सब तो बूढ़े भये॥

ब्रह्मादिक नित लखें नहीं बरजें श्रीशिवकूँ।
आये ये आचार्य धर्म समुझावन हमकूँ ॥
ऋषि मुनि साधक सिद्ध आइ हर पद सिरनावें।
विद्याधर ये तिन्हें नियम आचार सिखावें ॥
अपराधी बाचाल अति, मानी परम अशिष्ट है।
जाते जिह क्षत्रिय अधम, दण्डनीय अति दुष्ट है ॥

यों कहि दीयो शाप शिवाने शिक्षाके हित।
अधम आसुरी योनि पाइ फल भोगे परिमित ॥
करै न शिव अपराध अधिक अपमान कहीं तू।
विष्णु चरणकी शुद्ध दासता योग नहीं तू ॥
शोक मोह नहिं कछु भयो, शम्भु-प्रियाको शाप सुनि।
वचन सती सन यह कह्यो, चित्रकेतु पद बन्दि पुनि ॥

मातु तुम्हारो शाप हरषयुत ग्रहण करूँ मैं।
परम अनुग्रह मानि शीश निज जननि! धरूँ मैं ॥
शाप अनुग्रह देव नहीं स्वेच्छातें देवें।
करे पूर्व जस कर्म उ नहिंकूँ सब जन लेवें ॥
चक्र सरिस संसारमहँ, सुख दुख आवत भाग्य बश।
शाप अनुग्रहके निमित, करम करै नर है अवश ॥

शाप अनुग्रह करहु बिनय यहि हेतु करौं नहि।
होहि भोग को नाश भाग्य बश दुःख आदि सहि ॥
अबिनय मेरी समुझि मातु तुम कुपित भई अति।
तातें बिनती करौं और कछु तुम समुझो मति ॥
सती शम्भु पद बंदिकें, चित्रकेतु पुनि चलि दये।
सती सभासद सभाके, समता लखि बिस्मित भये ॥

हर हँसि बोले—शिवा ! लखी महिमा भक्तिनिकी ।
सदा एक मति रहै स्वरग नरकनिमहँ इनकी ॥
जो हैं भगवतभक्त कहो तिनकूँ का को भय ।
तीनि कालमहँ सदा निहारें जगकूँ प्रभुमय ॥
देइ न सुख दुख दूसरो, भ्रम बश नरपशु कहत हैं ।
मायाके वश जीवने, करे करम सो सहत हैं ॥

भक्तनिके जो दास दोष देखें नहिं जनके ।
अनुचित यदि कछु करें करम निन्दें नहिं उनके ॥
ऋषि मुनि सुर नर चरनकमल पूजें नित जिनके ।
मेरे हू जो इष्ट नृपति अनुगत हैं तिनके ॥
गत विस्मय है नृप गये, घोर शाप दीयो इन्हें ।
जे अच्युतप्रिय भक्त हैं, नहिँ अशक्य है कछु तिन्हें ॥

यों महिमा गिरिजेश विष्णु भक्तनिकी गाई ।
सुनि अति सहमी शिवा चित्तमहँ समता आई ॥
बोले शुक—अभिमन्युतनय ! तब ई त्वष्टा मुनि ।
कर्‌यो इन्द्रपै कोप मरण सुत विश्वरूप सुनि ॥
चित्रकेतु वे ई नृपति, असुर योनिकूँ पाइकें ।
भये प्रकट दक्षिण अनल, तें मुनि मखमहँ आइकें ॥

जे पवित्र यह चरित वृत्रको सुनें सुनावें ।
बड़भागी ते मनुज परमपद निश्चय पावें ॥
कहें उत्तरातनय—अदितिके शेष बंशकूँ ।
प्रभो ! सुनावें अवसि कथाके बचे अंशकूँ ॥
शुक बोले—सविता बरुण, मित्र विधाता उरुक्रम ।
धाता भगके बंशकूँ, कहूँ सुनेतें भजें भ्रम ॥

इति श्रीभागवत चरितके तृतीयाहमें वृत्रासुर पूर्वजन्मवृत्त नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

[१४]

सविता पत्नी पृश्नि जने तिनि सत्र यज्ञादिक ।
भगकी पत्नी सिद्धि जने सुत तीनि सुता इक ॥
धाता पत्नी कुहू सिनीवाली राका अरु ।
अनुमति चौथी पत्नि भये सुत सबके सुन्दरु ॥
सायं प्रातः दर्श अरु, पूर्णमास सुत अति विमल ।
क्रिया विधाताकी बहू, जने पुरीष्यादिक अनल ॥

वरुण चर्षणीमाँहिं भये भृगु मुनि पुनि तिनतें ।
सुत वसिष्ठ बाल्मीक अगस्तहु जनमे इनतें ॥
मित्र रेवती नारिमाँहिँ सुत तीनि भये बर ।
इन्द्र शचीतें ऋषभ जने मीढुस जयन्त सुर ।
बामन पत्नी कीर्तिने, बृहच्छ्लोक शुभ सुत जने ।
श्रीउपेन्द्र बलि यज्ञमें, छोटे-से बौना बने ॥

हिरनकशिपु हिरनाच्छ भये दितिसुत खल भारी ।
हिरनकशिपुकी बहू कयाधू अति पतिप्यारी ॥
अनुह्लाद, संह्लाद, ह्लाद, प्रह्लाद जने सुत ।
सुता सिंहिका भई जासु सुत भयो बिप्रचित ॥
जन्यो पंचजन असुरकूँ, कृतितें सुत संह्लादने ।
इल्वल बातापी जने, धमनि पत्नितें ह्लादने ॥

अनुह्लादकी नारि भई सूर्म्या सुकुमारी।
तातें द्वै सुत भये बली सुररिपु अतिभारी॥
प्रथम बाष्कल भयो द्वितिय महिषासुर मानी।
चढ़्यो स्वर्गपै बली भगे सुर तजि रजधानी॥
स्वर्ग छोड़ि सुर भगि गये, महिषासुर सुरपति भयो।
दुखित पराजित सुरनि मिलि, वृत्त जाय विधि सन कह्यो।

महिषासुरकी सुनी बात विधि हू घबराये।
लैकें देवनि संग सुरत श्रीहरि ढिँग आये॥
सम्मति करिकें तेज निकार्‌यो सबने निज निज।
दुर्गा देवी भई शक्ति दश दश धारें भुज॥
गर्जों तर्जों चंडिका आयुध लै रिपु ढिँग गई।
महिषासुरकूँ मारिकें, जगत माँहिँ पूजित भई॥

दुर्गा देवी दया करहु दुख दुरित नसाओ।
शक्तिहीन संतान परीं माँ! आय जगाओ॥
भये भवानी भीत आय भय भूत भगाओ।
खड्‌ग हाथमहँ देहु युद्धको पाठ पढ़ाओ॥
कलि क़राल कलुषित करहि, करि कल्यान कपर्दिनी।
मेटो ममता मोहकूँ, महिषासुर मदमर्दिनी॥

हिरनकशिपु लघु पुत्र भये दैत्यनि कुलभूषन।
भक्त मुकुट प्रह्लाद भये तिनि पुत्र विरोचन॥
तिनि सुत दानी परम भये बलि जग विख्याता।
जिनने कीये विष्णु द्वाररक्षक पुरत्राता॥
बलि असनामहँ जने सुत, शत सबके सब श्रेष्ठ हैं।
तिन सबमहँ शिवभक्त अति, बाणासुर ही ज्येष्ठ हैं॥

उनंचास जे मरुत पुत्र तेऊ दितिके हैं।
किन्तु भये नहिं दैत्य मरुत् गण सुर सब ते हैं॥
राजा पूछें—दैत्य देवता भये विभो! क्यों।
असुर भावकूँ त्यागि राग सुरपति कीयो क्यों॥
श्रीशुक बोले—भूपवर! दितिके द्वै जब मरे सुत।
शत्रु इन्द्र वधके निमित, पति सेवामहँ भई रति॥

मन्द मन्द मुसकाइ मधुर वर बोलै बैंना।
कजरारे अनुराग नयनके छोड़े सैंना॥
प्रतिपल पति मुख जोहि भावकूँ समुझि सयानी।
करै काज अनुकूल सदा ई रहै सिहानी॥
त्रिया चरित समुझ्यो नहीं, मुनि मोहित-से ह्वै गये।
सुठि स्वभाव सेवा निरखि, अति प्रसन्न दितिपै भये॥

बोले दितितें—प्रिये! माँगु वर इच्छित मोतें।
तव सेवा लखि तुष्ट भयो भामिनि हौं तोतें॥
हैं प्राननितें अधिक पियारे निजपति जिनिकूँ।
तब जगमहँ फिरि कौन वस्तु है दुरलभ तिनिकूँ॥
माँगे वर हिय वज्र करि, दिति लखि पति अति प्रीतियुत।
जो मारे देवेन्द्रकूँ, अमर एक अस देहिं सुत॥

दितिके वरकूँ सुनत भये व्याकुल कश्यप मुनि।
हाय कहा हौं कर्यो भयो परवश सोचें पुनि॥
नारिचरित अतिप्रबल वचन सर बड़े कँटीले।
कमल कुसुमके सरिस मधुर मुख बैंन रसीले॥
छुर धाराके सरिस हिय, जो चाहैं जे करि सकें।
क्रुद्ध भये पति पुत्रके, प्राननिकूँ हू हरि सकें॥

सोचि कहें—व्रत एक बताऊँ तोइ पुंसवन।
करै ताहि निरविघ्न होहि इच्छित सुत शोभन॥
होहि तनिक हू छिद्र फेरि सुत सुरप्रिय होवै।
यदि ह्वैकें अपवित्र जूठ मुखतें तू सोवै॥
सदाचार पालन करै, कदाचारकूँ त्यागिकें।
व्रत वैष्णव यदि बर्ष भर, करै समयपै जागिकें॥

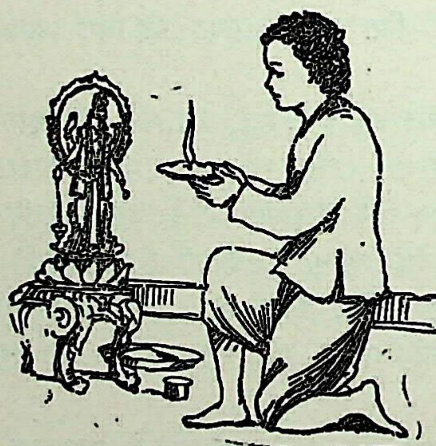
यों कहि बिधिके सहित बतायो मुनिवरने व्रत।
धार्‌यो दितिने तुरत लगायो निज हितमहँ चित॥
मौसीको संकल्प जानि सुरपति घबराये.
परे सोचमें अधिक तुरत तिहि आश्रम आये॥
छिद्रान्वेषनके निमित, बेष बदलि बालक बने।
करें टहल नित कपटतें, सदा रहें चित अनमने॥

लावें नित प्रति फूल, मूल, जल, फल अरु अङ्कर।
छिद्रान्वेषी बने रहें सेवामहँ तत्पर॥
बिनु पग धोये साँझ समय सोई इकदिन दिति।
व्रतको छिद्र निहारि उदरमहँ प्रबिशे सुरपति॥
करे बज्रतें गर्भके, सात खंड पुनि रुदन सुनि।
मा रुद् कहि मारुत् भये, एक एकके सात पुनि॥

उनंचास सुत भये इन्द्र प्रकटे सुरपालक।
दिति पूछें—व्रत कर्‌यो एक हित क्यौं बहु बालक॥
इन्द्र आदितें अन्त सत्य सब बृत्त बतायो।
छद्म वेष क्यौं धर्‌यो बिना छल कहि समुझायो॥
सुनि दिति अति सन्तुष्ट ह्वै, बोलीं काट्यो गर्भकूँ।
होहिं बन्धु तब मरुद्‌गण, सब जाओ मिलि स्वर्गकूँ॥

दिति आयसु सिर धारि मरुद्गण स्वरग सिधाये।
इन्द्र भये अतिमुदित प्रान फिरितें जनु पाये ॥
यों दितिके ये पुत्र इन्द्र पार्षद कहलाये।
मातृ दोषकूँ त्यागि असुरकुलतें बिलगाये ॥
परम पुण्यप्रद मरुद्गन, को चरित्र तुमतें कह्यो।
अन्य प्रश्न पूछो नृपति! यह प्रसंग पूरन भयो ॥

इति श्रीभागवत चरितके तृतीयाहमें मरुत् चरित नामक
चौदहवाँ अध्याय समाप्त।



अथ पञ्चदशोऽध्यायः

[१५]

अब पूछें पुनि नृपति—प्रभो! शंका इक भारी।
समदरसी भगवान सुहृद सबके सुखकारी॥
तब च्यौं देवनि हेतु फेरि दैत्यनिकूँ मारें।
च्यौं अमरनिको पच्छ लेहिं असुरनि संहारे॥
नारायन के गुननि प्रति, शंका मो मनमहँ भई।
ताहि नाश भगवन्! करें, बात हिये की कहि दई॥

हँसि बोले शुकदेव—करी शङ्का नृप सुन्दर।
यह सब माया रचैं प्रकृतिपालक विश्वम्भर॥
आत्मा निरगुन नित्य प्रकृतिके ये तीनिहु गुन।
कबहुँ सत्त्व बढ़ि जाय कबहुँ तम कबहुँ रजोगुन॥
जब जैसे गुन बढ़त हैं, हरि तब तैसोई करहिं।
सत्त्व वृद्धिके समयमहँ, असुर मारि सुर दुख हरहिं॥

राजसूयके समय युधिष्ठिर नारदमुनि सन।
पूछ्यो विस्मय सहित प्रश्न नृप जिही बिलच्छन॥
सदा करै शिशुपाल कृष्णकी निन्दा पापी।
मुक्त भयो च्यौं दुष्ट अधम भक्तनि संतापी॥
धर्मराजकी बात सुनि, नृप सन मुनि बोले बचन।
निरभिमान हरिमहँ नहीं, राग द्वेष निन्दा स्तवन॥

जाकूँ है अभिमान देहको अतिशय भारी।
मैं अतिसुन्दर सुघर सुन्दरी मेरी नारी ॥
पाप पुण्य जे करें कर्मवश सुख दुख पावें।
जिनमहँ नहिँ अभिमान द्वन्द्व तिनि ढिँगनहिं जावें ॥
क्रीड़ावश हरि अवतरहिं, तिनि महिमा को कहि सकै।
धर्महेतु सुररिपु दलन, हिंसा तिमि कस लगि सकै ॥

कैसेहू सम्बन्ध कृष्णतें जो जुरि जावै।
काम, द्वेष, भय, भक्ति प्रेमवश चित फँसि जावै ॥
तो होवै कल्यान भयो जगमहँ बहुतनिको।
कामभाव व्रजवधू थापि पद पायौ हरिको।
भयतें मामा कंसने, यादवगन सम्बन्ध करि।
शिशुपालादिक द्वेषतें, मुक्त भये हरि हृदय धरि ॥

धर्मराज तुम धन्य धन्य तुमरे पितु माता।
बने सुहृद घनश्याम तुम्हारे ये भयत्राता ॥
हरि शोभाके धाम मंगलनिके मंगल हैं।
उनमहँ जिनको चित्त फँस्यो तिनके मंगल हैं ॥
दन्तवक्र शिशुपाल हरि, करतें मरि हरिपुर गये।
प्रभु पार्षद जय विजय जे, विप्र शाप बस खल भये ॥

कहें युधिष्ठिर—नाथ ! शापकी बात बताओ।
प्रभु पार्षद जय विजय असुर कस भये सुनाओ ॥
बोले नारद-प्रभो ! गये हरिपुर सनकादिक।
गदा बेत्र लै खड़े द्वारके दोऊ पालक ॥
नंग धड़ंगे बाल लखि, रोके हरि दरसननितें।
शाप दयो सुररिपु बनों, ये डरि बोले मुनिनि तें ॥

विप्र, रहै कब तलक असुर तनु समय बताओ।
मुनि बोले—फिरि यहाँ तीनि जनमनिमहँ आओ॥
हिरनकशिपु हिरनाक्ष भये ते प्रथम जनममहँ।
नरहरि अरु बाराह हने दोऊ तिनि रनमहँ॥
कुम्भकरन रावन बने, राम हाथ मारे गये।
दन्तबक्र शिशुपाल पुनि, हरि हाथनि मरि सुर भये॥

नारद बोले—नृपति ! चरित नरसिंह सुनाऊँ।
हिरनकशिपु ज्यौं हन्यो भक्त महिमा अब गाऊँ॥
सूकर बनि लघु बन्धु हन्यो बड़ भयो दुखारी।
विष्णु हमारो शत्रु असुर कुलको संहारी॥
मारूँ पहिले विष्णुकूँ, तब देवनिकूँ बश करूँ।
करिकें बिष्णु बिहीन जग, असुर बंशको दुख हरूँ॥

हे शम्बर ! हे नमुचि ! शकुनि ! सब मिलिके जाओ।
बेद, बिप्र, गौ, यज्ञ अवनितें जाइ मिटाओ॥
यज्ञ रूप हैं बिष्णु देवता यज्ञ सहारे।
बिष्णु यज्ञ मिटि जाइँ देव का करें बिचारे॥
दुरबल देवनि पच्छ लै, बिष्णु कपट सूअर बन्यो।
समदरशीने छल सहित, सुहृद सहोदर मम हन्यो॥

अनुशासन सुनि असुर अवनिपै मिलि सब आये।
सब वर्णाश्रम धर्म यज्ञ यागादि मिटाये॥
भये देव अति दुखित यज्ञ आहुति बिनु पाये।
हिरनकशिपु इत मातु बन्धुसुत पास बिठाये॥
दई सान्त्वना सबनिकूँ, शोकमग्न जे अति भये।
यह झूठो संसार सब, उदाहरन बहुतक दये॥

देखो माता ! कौन बन्धु काको सम्बन्धी ।
करें मृतक हित शोक प्रथा जगकी यह अन्धी ।।
नदीधार तृन बहैं परस्परमहँ मिलि जावें ।
संग संग कछु चलें फेरि इत उत बिलगावें ।।
आत्मा अविनाशी अमर, सदा एकरस सर्वगत ।
मायिक गुण सम्बन्धतें, भ्रमबश दीखे भ्रान्तवत ।।

नृप सुयज्ञ इक मर्‌यो युद्धमहँ शत्रु हाथतें ।
दुःखित परिजन भये भूपकी मृत्यु बाततें ।।
मृतक देहकूँ घेरि बन्धु रोवें डकरावें ।
छाती सबई धुनें दीन ह्वैकें बिललावैं ।।
रानिनि रोवति देखिकें, यमबालक बनिकें गये ।
विविध भाँतिके ज्ञानतें, सबकूँ समुझावत भये ।।

बोले अपने आपु—अहो ! अद्‌भुत हरि माया ।
पति है काको कौन कौन काकी है जाया ।।
नित्तई देखें मरत न सोचें तोऊ प्रानी ।
काल न देखें दीन दुखी राजा अरु रानी ।।
आयो जहँतें जीव जिद, करै तहाँ ई गमन है ।
स्वयं तहाँ सब्र जायँगे, व्यर्थ शोक दुख रुदन है ।।

शिशुपनतें ई हमें पिता माताने त्याग्यो ।
काई ढिंग नहिं रखे, कहें सब—बड़ो अभागो ।।
है अनाथ बनमाँहिं फिरें तरुतर सो जावें ।
भोजन हू मिलि जाय भेड़िया सिंह न खावें ।।
मृत्यु समय यदि निकट नहिं, रहै चाहिं बनमहँ पर्‌यो ।
करें सदा पालन जिननि, गर्भमाँहिं पालन कर्‌यो ।।

मारन चाह्यो धृष्टबुद्धिनें चन्द्रहासकूँ।
बधिकन सौंप्यो बिबिध करे उद्योग नासकूँ॥
किन्तु मृत्यु नहिं भई राज द्वै देशनि पायो।
द्वै द्वै रानी मिलीं श्वसुर हू मृतक जिवायो॥
बिष बदले विषया मिली, भिक्षुक तें राजा भयो।
भयो भाग्य अनुकूल जब, तब सब बानिक बनि गयो॥

पुरुष बली नहिं होहिं दैव ई बली कहावै।
जैसो होनो होइ दैव तस बुद्धि बनावै॥
नष्ट होंनको समय जासुको अबई नाईं।
अति करिकें पुरुषार्थ सकें नहिं लोग नसाईं॥
गिरी गैलमें बस्तु हू, ज्यों की त्यों रहि जायगी।
नष्ट होनको यदि समय, तौ घरमहँ नसि जायगी॥

ब्याघ्र पकरि लै गयो हतो इक मुनि सुत वाकूँ।
आयु शेष कछु हती पुत्रवत पाल्यो ताकूँ॥
ब्याघ्रनिमहँ ई रहै संग उनके बन जावै।
हाथ पैरतें चले मांस तिनिके सँग खावै॥
परशुराम नरशिशु निरखि, आश्रमकूँ सँग लै गये।
पाल्यो पुनि सुतके सरिस, अकृतबृण मुनि ते भये॥

आत्मा है निरलेप रहै नित पृथक देहतें।
जैसे गेही रहै भिन्न ई सदा गेहबें॥
जलमहँ बुदबुद होंहिं नहीं ते जल कहलावें।
अनल एकरस रहै हार कंकण मिटि जावें॥
अनल काठतें अलग है, बायु देहतें पृथक ज्यों।
है असंग नभ सर्बगत, आत्मा हू निरलेप त्यों॥

माया वश ई कर्मबन्धमहँ फँस्यो जीव है।
माया बन्धन कटै जीव नहिं फेरि शीव है॥
मनतें मोदक खायँ मुदित होवें हरषावें।
सपनेमहँ धनहीन चक्रवर्ती बनि जावें॥
स्वप्न मनोरथ ये सबहिं, जैसे सत्यातीत हैं।
तैसेही जगके विषय, भ्रमबस होत प्रतीत हैं॥

फँसी कुलिंगी एक जालमहँ तजि निज सुत पति।
लखि कुलङ्ग निज बधू फँसी मन भयो दुखित अति॥
नैंननि नीर बहाय कहै—कैसे जीऊँ अब।
प्रिया विरह अति दुसह भये असहाय पुत्र सब॥
देइ दैवको दोष पुनि, कहै—विधाता का कर्यो।
ब्याधा मार्यो बान तकि, लगत बान मरि गिरि पर्यो॥

कितनो ही दुख करो भूपकूँ अब नहिं पाओ।
तातें तजिके शोक मोह अपने घर जाओ॥
सुनि बालककी बात शोक सबने तजि दीन्हों।
मिलि सम्बन्धी सविधि दाह नृप शवको कीन्हों॥
हिरनकशिपु सबतें कहे, बन्धु शत्रुकूँ मारि हम।
बदलौ बधको लेइँगे, तजो शोक संताप तुम॥

दोहा—यों बहु विधि समुझाइकें, हिरनकशिपु अति बीर।
भयो चुप्प दिति, भ्रातुसुत, सबने धार्यो धीर॥

इति श्रीभागवतचरितके तृतीयाहमें हिरनकशिपु उपदेश नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।

अथ षोडशोऽध्यायः

[१६]

यो सबकूँ समुझाइ चल्यो तपकूँ असुराधिप।
अजर अमर रनजयी बनन हित करै घोर तप॥
मन्दरगिरिकी गुहा माँहिँ एकाकी रहिकें।
करै तितिच्छा असुर शीत उष्णादिक सहिकें॥
माँस दीमकनि भखि लयो, अस्थि मात्र ई बचि गई।
असुर उग्र तपतें जगत, महँ अशान्ति अति मचि गई॥

दौरे दौरे देव गये धाताके ढिँग सब।
बोले—ब्रह्मन्! बढ्यो बबन्डर बिश्वमाँहिँ अब॥
असुर करै तप देव! ब्रह्मपद चाहे लैवो।
ब्रह्मा बनिकें चहे आपुकूँ धक्का दैवो॥
सुनि बिधि बोले—देवगन, असुर निकट हौं जाउँगो।
दैकें इच्छित बर तुरत, तपतें ताहि हटाउँगो॥

यो कहि ब्रह्मा गये ढेर दीमकको देख्यो।
तृन बाँसनितें ढक्यो अस्थिमय सुररिपु पेख्यो॥
दिव्य कमण्डलु नीर छिरकि तनु सुघर बनायो।
बोले—बेटा! माँगु तोहिं वर दैबे आयौ॥
करि पूजा बोल्यो असुर, माँगू बर ये देहिं बिभु।
रचे तुम्हारे जीवतें, मृत्यु न मेरी होहि प्रभु॥

भीतर बाहर नहीं मरूँ निशि तथा दिवसमहँ ।
अस्त्र शस्त्रतें नहीं कटूँ सब हौं मम बशमहँ ॥
होहि न मेरी मृत्यु मनुज, मृग, नाग असुरतें ।
नहिं नभ थलमहँ मरूँ होहि भय नहिं सुर नरतें ॥
प्रभु जस जगमहँ मान्य हैं, तस मेरी हू वृद्धि हो ।
बलमहँ तपमहँ तेजमहँ, योगिनि सम सब सिद्धि हो ॥

ब्रह्मा बोले—वत्स ! बहुत बर दुरलभ माँगे ।
तोऊ दुंगो अवसि करूयो प्रन तेरे आगे ॥
बर दै अन्तरधान भये सुररिपु घर आयौ ।
विधिबर मदमहँ मत्त, उपद्रव आइ मचायौ ॥
सुरपुर यमपुर बरुनपुर, धनपतिपुर निज करे बश ।
सबको स्वामी बनि गयो, फीको सब को करूयो यश ॥

शतक्रतु दयो निकारि इन्द्र बनि सुख सब भोगै ।
इन्द्रभवनमहँ बसै स्वर्गको। वैभव भोगै ॥
मरकत मनिकी भूमि बनी सीढ़ी बिद्रुमकी ।
नन्दन कानन कल्पवृक्ष बर गंध कुसुमकी ॥
दुग्धफैन सम स्वच्छ मृदु, शैयाबर वाराङ्गना ।
तऊ तृप्ति नहिँ असुरकी, नित नव बाढ़ै कामना ॥

सुरनर वाके उग्र दण्डतें दुखित भये जब ।
अन्य शरन नहिँ लखी गये हरिकी शरनहिँ सब ॥
क्षीरसिन्धु ढिँग जाय करें मिलिकें सुर तप अति ।
जहाँ लगावें लेट शेष शैयापै श्रीपति ॥
अन्न खायँ नहिँ पियें जल, तजि निद्रा निशि दिन जगे ।
बायु पान करि विष्णु को, आराधन करिवे लगे ॥

कछुक कालमहँ तहाँ भई सहसा नभ बानी।
देव दुखित मति होहु बात मैंने सब जानी॥
वेद, देव, गो, विप्र, साधु सन द्वेष करै जब।
मोतें बाँधै बैर असुर संहार करूँ तब॥
शान्त दान्त निरवैर सुत, भक्त वीर प्रहलाद मम।
मारूँ तब हौं तुरत ही, देइ यातना जब अधम॥

नभवानी सुनि देव लौटि निज निज घर आये।
हिरनकशिपुने देव भक्त इत अधिक सताये॥
चौथो ताको पुत्र अवस्थामहँ छोटो अति।
किन्तु भक्तिमहँ श्रेष्ठ आसुरी नहिं जाकी मति॥
विद्या, कुल, धन, रूपको, जाकें नहिँ अभिमान चित।
सुहृद सदाचारी सरल, सब सद्गुण जामें निहित॥

सुख दुखमहँ सम सदा सत्व स्वाभाविक जामें।
मिथ्या मायिक भोग होहिं अनुरक्त न तामें॥
तन मन इन्द्रिय प्रान रखें नित अपने बशमहँ।
स्वाभाविक ई प्रीति श्यामसुन्दरके यशमहँ॥
सतत हियेमहँ जरि रही, ज्योति प्रेमके जोगकी।
भक्ति भाव भावित हृदय, नहीं कामना भोगकी॥

शत्रु मित्रको भाव कबहुँ मनमहँ नहिं आनें।
जिनकी शुद्धा भक्ति निरखि सुर लोहो मानें॥
सोवत जागत चलत उठत खावत अरु पीवत।
रहें अनमने सबनि सिर्री से दीखत॥
गावें नाचें प्रेमतें, हृदय सदा श्रीहरि बसें।
कृष्ण भूत सिरपै चढ्यो, कबहूँ रोवें पुनि हँसें॥

जिनकी लखिकें भक्ति सबहिँ जन होहिं सुखारे ।
हिरनकशिपु हरि नाम सुनत फटकारे मारे ।।
गुरुगृह भेजे पढ़न पढ़ँ का पढ़े पढ़ाये ।
राजनीतिके दाव पेंच तिनि मन नहिं भाये ।।
पूछै इन दिन पुत्रतें, अंक लाइ पुनि चूमि मुख ।
सुत ! प्रिय तोकूँ का लगै, कौन काजतें होहिं सुख ।।

सुनि बोले प्रहलाद—पिता जी ! बुरो न मानें ।
हम तो जगमहँ भली बात जाईकूँ जानें ।।
रहै सदा उद्विग्न चित्त घर दारा धनमहँ ।
तातें तजिकें मोह सबनिको जावै बनमहँ ।।
यह अपनो यह परायो, अभिनिवेश मिथ्या तजै ।
जगकी आशा छोड़िकें, प्रेम सहित प्रभुकूँ भजै ।।

सुन हँसि बोल्यौ असुर-होहिं भोरे बालक अति ।
जो दें जैसी सीख होहि तैसी तिनकी मति ।।
बेष बदलिकें बिष्णु-भक्त जाके ढिँग आवें
कहि कहि हरिको सुयश सरल शिशुकूँ बहकावें ।।
सेवक शासन सुनो सब, सावधान सबई रहौ ।
बाबाजिनितें बचावें, गुरु पुत्रनितें तुम कहौ ।।

आज्ञा सुनि प्रहलाद तुरत गुरुगृह पहुँचाये ।
असुर कहे जे बचन सेवकनि जाय सुनाये ।।
पूछें सरडामर्क कुमरतें नेह सहित अस ।
किनके बश तू भयो भई बिपरीत बुद्धि कस ।।
हँसि बोले—प्रहलाद—गुरु ! कौन काहि को वश करें ।
हरि ई सबकी बुद्धिकूँ, जब चाहें तब तस करें ।।

अति कोप्यो गुरुपुत्र कहे अति खल जिह बालक।
कुलाङ्गार दुरबुद्धि असुर कुलको संहारक॥
लाओ मेरो बेंत न मानें बात पिताकी।
हड्डी पसली तोरि उधेड़ूँ चमड़ी जाकी॥
चंदनबन यह असुर कुल, विष्णु कुल्हाड़ी सम भयो।
मूलोच्छेदन करन हित, बेंट सरिस जिह है रह्यो॥

यों डराइ धमकाइ पढ़ाई राजनीति पुनि।
लख्यो लालकूँ चतुर गये लै ढिँग भूपति पुनि॥
पर्‌यो पैरमहँ पुत्र असुरपति तुरत उठायौ।
सिर सूँध्यो करि प्यार प्रेमतें गोद बिठायौ॥
कहा श्रेष्ठ समुझ्यो तुमनि, पुनि पुनि पूछै पुत्र अब।
निज स्वभावतें विवश है, बोले श्रीप्रहलाद तब॥

श्रवन कीरतन करै विष्णु सुमिरन, पदसेवन।
अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य अरु आत्मनिवेदन॥
है जिह नवधा भक्ति करे जगमें जो इनि कूँ।
यही बात अति श्रेष्ठ गनूँ हौं उत्तम तिनिकूँ॥
सुनि खिसियानो असुर अति, गुरु पुत्रनिपै क्रोध करि।
डाँटि कहै—ओ अधम द्विज, गयो पुत्र कैसें बिगरि॥

बोले गुरुके पुत्र—असुरपति कोप न कीजे।
देवें लखि अघ दंड बात सबरी सुनि लीजे॥
नहिं हम कबहूँ जाइ कृष्ण को नाम सिखायो।
नहीं बदलिके बेष गुप्तचर कोई आयौ॥
यह मति जाकी सहज है, बिना पढ़ाये कहै सब।
हिरनकशिपु अति क्रोध करि, बोल्यो सुतकूँ झिरकि तब॥

क्यौं रे छोरा ! बात सिखाई कौनें तोकूँ ।
सुनि बोले प्रह्लाद—पिता ! सिखवै को मोकूँ ।।
विष्णु भक्ति तो नहीं सिखाये ई तें आवै ।
सोई होवै भक्त कृष्ण जाकूँ अपनावै ।।
तजै न जब तक छल कपट, सत्संगति नहिं नित करै ।
पावै कस प्रभु भक्ति रज, संतचरण सिर नहिं धरै ।।

कुपित भयो अति असुर पुत्र पृथिवी पै पटक्यो ।
गर्जन करिके उठ्यो चर्र सिंहासन चटक्यो ।।
दैत्यनितें यों कहै—दुष्टकूँ मारो मारो ।
जीवत खाल खिंचाय चील गीधनिकूँ डारो ।।
सुनत असुर झपटे तुरत, बज्र हृदय विकराल मुख ।
छेदें अंगनि शूलतें, बिबिध भाँतितें देइँ दुख ।।

सबरी शक्ति लगाय असुर मिलि जुलिके मारें ।
चट्ट पट्ट सुनि सिंह व्याघ्र भयतें चिङ्घारें ।।
फूल सरिस सब शस्त्र भये दितिसुत घबरायौ ।
सोच्यो और उपाय मत्त गजराज मँगायौ ।।
रुँदवाये पैरनि तरे, गज बकरी सम बनि गयौ ।
सूँघि सूँड़ितें सिर धरे, अति सूधो हाथी भयौ ।।

पुनि विषधर बुलवाइ कटावै सुतकूँ खलमति ।
सरल स्याँप सब भये करें क्रीड़ा सुन्दर अति ।।
करवायौ अभिचार मूँठ जादू टौंना सब ।
भये बिफल सब जतन भयो संकित सुररिपु तब ।।
गिरवाये गिरि शिखरतें, बहुतक माया हू करी ।
काल कोठरीमहँ दये, पैरनि हू बेड़ी भरी ।।

हालाहल बिष दयो नहीं कछु भोजन दीयो।
शीत-वाततें त्रास दयो जल भीतर कीयो॥
होरी लैकें अग्निमाँहिं बैठी मारन हित।
भये नहीं प्रहलाद तनिकहू प्रनतें बिचलित॥
सागरमें बैठाइकें, पर्बत ऊपर चुनि दये।
मरे नहीं निकसे तुरत, सबरे पर्बत गिरि गये॥

कीन्हें बिबिध उपाय सफलता नहिं कछु पाई।
मनमहँ चिन्ता करै—करूँ का अब हौं भाई॥
कहे कठिन कटु बचन बहुत बिधितें मरवायो।
बार न बाँको भयो तनिकहू नहिं घबरायो॥
अवसि शत्रुता मानिकें, बिष्णु पच्छ लै लरेगौ।
मैं चाहें मरि जाउँ परि, जिह बालक नहिं मरेगौ॥

चिन्ता बहुबिधि करै बुद्धिमहँ कछु नहिं आवै।
पुनि पुनि सम्मति हेतु पुरोहित मित्र बुलावै॥
ठकुरसुहाती कहें असुरकूँ देइँ बढ़ावो।
च्यौं अबोध शिशु हेतु नाथ! ऐसे घबरावो॥
तब सम्मुख जिहि नेंक सो, छोरा कैसे लरैगो।
गुरु पितुको अपमान करि, बिना मौतके मरैगो॥

बोले गुरुके पुत्र—नाथ! मति जाकूँ मारो।
भयवश भागि न जाय बाँधि पाशनितें डारो॥
आवें श्रीगुरुदेव लौटिके जब तक पुरमहँ।
तब तक जाकूँ रखें प्रभो! हम अपने घरमहँ॥
सेवा गुरुजन की करै, कछु बय हू बढ़ि जाय जब।
बालकपनकी बुद्धि जिह, बिना यतन हटि जाय तब॥

विवश भयो सुरशत्रु बात तिनकी स्वीकारी।
कह्यो जाइ लै जाउ देउ शिच्छा हितकारी ॥
संग लियो प्रहलाद गये गुरुपुत्र भवनमहँ।
सुधरै कैसे बाल जिही सोचें ते मनमहँ ॥

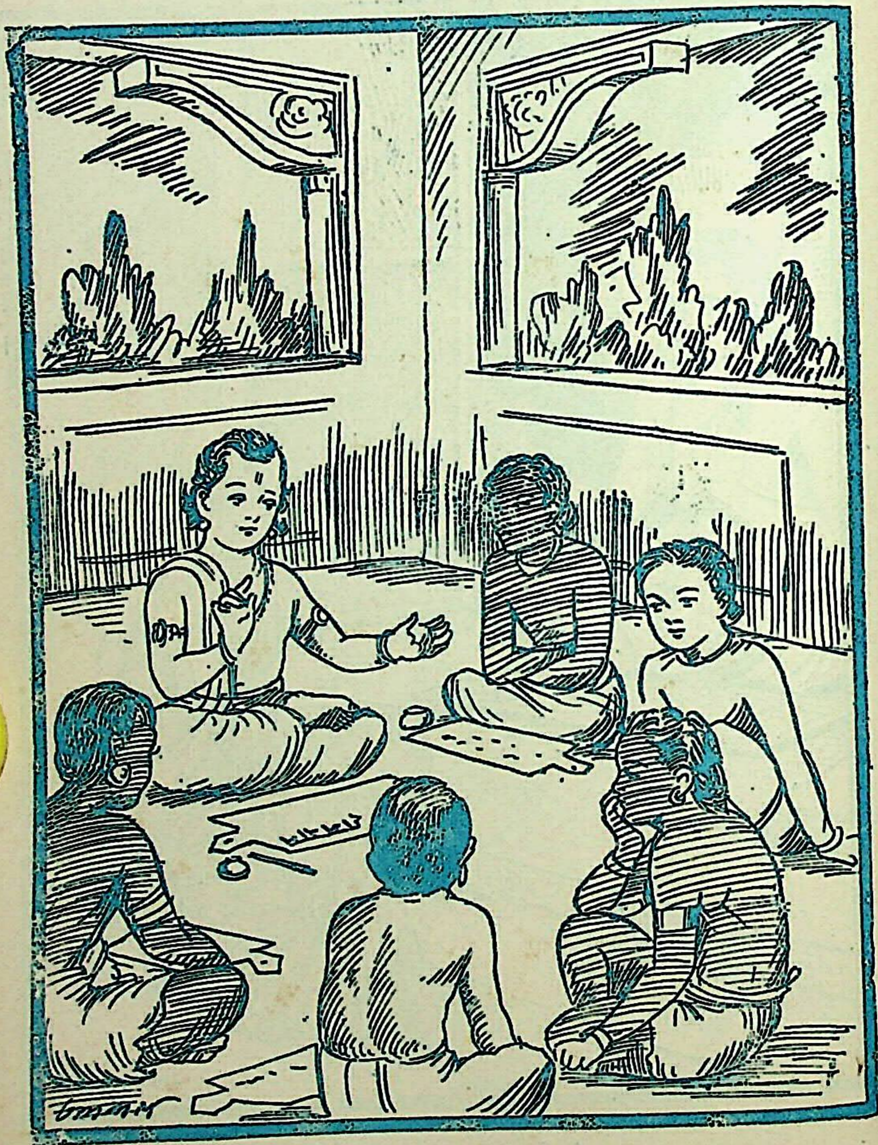
अर्थ काम अरु नीतिकी, शिच्छा देवें जाइकें।
सहपाठिनि प्रहलादजी, सिखवें अवसर पाइकें ॥

इति श्रीभागवतचरितके तृतीयाह्नमें प्रह्लादचरित नामक
सोलहवाँ अध्याय समाप्त।
(मासिक पारायण तेरहवें दिनका विश्राम)





प्रह्लाद-जननी को नारद जी द्वारा उपदेश पृ० २८८



प्रहलाद द्वारा रामनामोपदेश पृ० २८५

अथ सप्तदशोऽध्यायः

[१७]

दोहा—शुक्रतनय सिखवें सतत, धरम कामको सार ।
कबहुँ भक्त प्रह्लादकी, लगै भक्ति चटसार ।।

छप्पय—एक दिना गुरु गये करन घरके काजनिकूँ ।
ढिँग बिठाइ प्रह्लाद देहिँ शिक्षा छात्रनिकूँ ।।
है दुरलभ नरदेह नाश होवैगो जाको ।
होवै प्रभुपद प्रेम सारथक जीवन ताको ।।
सुख तो होवै दैव बश, क्यौं जाकूँ पचि पचि मरो ।
प्रभुपद पदुमनि प्रेम हित, होवै जिह चिन्ता करो ।।

करै कवल कब काल कहो को जाने जगमहँ ।
सदा घातमहँ रहै पकरि लै जावै पलमहँ ।।
क्रीड़ामहँ कौमार व्याधिमहँ बिती बुढ़ाई ।
मादकता अँग अँग युवावस्थामहँ छाई ।।
तातें शिशुपनतें सतत, भूलि जगतके करमकूँ ।
करो आचरन प्रेमतें, शुद्ध भागवत धरमकूँ ।।

नहीं कठिन बैराग्य होहि नहिं यदि द्वै जगमहँ ।
कनक कामिनी पाश न लिपटैं यदि नर पगमहँ ।।
प्राननि पै ऊ खेलि करै पैदा जा धनकूँ ।
तामें अति आसक्त हटावै कैसे मनकूँ ।।
अति प्यारी प्रियतमाकी, बानी सरस सुबासनी ।
कैसे छोड़े शिशुनिकी, तोतरि बानी सोहनी ।।

कन्या रोवति जाइ दुखित पतिगृह सुकुमारी ।
भोली भाली बहिन भला कस छाड़ें प्यारी ॥
आज्ञाकारी बन्धु पुत्र सुकुमार दुलारे ।
छोड़े कैसे जाइँ मातु पितु वृद्ध दुखारे ॥
दुग्धफैन सम शुभ्र शुभ, शैया सुखद सुहावनीं ।
स्वेच्छातें कैसे तजै, वस्तु सरस मन भावनीं ॥

कुलगत अपनी वृत्ति छोड़ि जावें कस बनमहँ ।
हाथी, घोड़ा, गाय बसे सुठि सेवक मनमहँ ॥
सबतें ममता जोरि मोहको जाल बनायौ ।
पूर्यो चारिहुँ ओर जानि निज अंग फँसायौ ॥
होहि बिरक्त न बिपति सहि, सुमिरै नहिं सर्वेश हरि ।
पोसै निज परिवारकूँ, आयु गँवावै पाप करि ॥

भोगै ज्यों ज्यों भोग बढ़ै त्यों त्यों तृष्णा नित ।
परधन अरु परनारिमाँहिँ नित फँस्यो रहे चित ॥
करै पाप नित नये झूठतें द्रव्य बटोरै ।
धन हित तनकूँ वेचि हाथ नीचनिके जोरै ॥
पोथी पत्रा पढ़ि भये, पंडित हू विख्यात है ।
मोह ग्रस्त ह्वै मोक्षतें, बञ्चित ते रहि जात हैं ॥

विषयिनिकूँ तजि संग शरन श्रीहरिकी जाओ ।
जगचक्रतें छूटि मोक्ष पदबीकूँ पाओ ॥
हरि व्यापक सर्वत्र अनत ढूंढ़न मति जानों ।
सब भूतनिमहँ बसैं तिनहिँ हिय इँ महँ मानों ॥
मायाके परदा पर्यो, ज्ञान रूप दीखें नहीं ।
दरशन होवें तुरत यदि, तम आबरन हटै कहीं ॥

धरम अरथ अरु काम मोक्ष हरि भक्त न चायें।
प्रभु पादोदक पान करहिं नित हरिगुन गायें॥
ते ई करम यथार्थ कृष्णकी भक्ति दृढ़ावें।
अन्य जगतके कर्म अधिक भवबन्ध बढ़ावें॥
शुद्ध भागवत धर्म जिह, श्री नारद मुखतें सुन्यो।
दैत्यपुत्र सुनि हँसि परे, हँसत उदर सबको फुल्यो॥

हँसि सब बोले—मित्र! व्यर्थ क्यों बादर फारै।
नारद कब कहँ मिलै, गप्प हमतें मति मारै॥
सुनि बोले प्रहलाद—गये पितु तप हित जबई।
जानि सुअवसर देव चढ़े दैत्यनिपै तबई॥
हारे असुर रह्यो तबहिँ, मैं माताके उदरमहँ।
मम जननीकूँ अमरपति, पकरि लै चल्यो स्वरगमहँ॥

नारदजी मग मिले इन्द्रकूँ बहु धिक्कारे।
जानि उदरमहँ मोइ मातु तजि स्वरग सिधारे॥
मम माताकूँ लाय रख्यो निज आश्रम मुनिवर।
मोकूँ करि उपदेश सुनावें कथा मनोहर॥
माँ मुनिकी सेवा करै, पायौ इच्छा प्रसवबर।
सुन्यो भागवत धर्म तहँ, उदरमाँहिँ मैंने सुघर॥

असुर तनय सब कहें—हमेंहू ताहि सुनाओ।
बोले श्रीप्रहलाद—सुनाऊँ इत मन लाओ॥
जन्म बृद्धि परिणाम जीर्णता नाश तथा क्षय।
ये सब तनमहँ होहिँ आतमा नित्य अनामय॥
कनकमाँहिँ मल मिलि गयो, साधनतें नर पृथक् करि।
त्योंही आत्मा देहतें, करे पृथक तब मिलें हरि॥

यह संसार असार स्वप्नवत सत्य लखावै।
आत्मज्ञान गुरु कृपा बिना नर कबहुँ न पावै॥
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति वृत्ति को साक्षी जो है।
सत् चित् आनँद रूप ब्रह्मपद आत्मा सो है॥
जन्म मरन चक्कर छुटे, कर्मबीज जाते नसै।
करै योग साधन सतत, दिव्य ज्ञान हियमें बसै॥

आत्मा अनुभव हेतु उपाय असंख्य जगतमहँ।
गुरु सुश्रूषा भक्ति निरंतर संतचरनमहँ॥
हरि उपासना कथा कीरतनमहँ रति नित नित।
प्रभु प्रतिमामहँ प्रेम कृष्ण चरननि चिंतन चित॥
काम, क्रोध, मद, मोह अरु, मत्सर, लोभ विहाय सब।
निरखै सबमहँ श्यामकूँ, पावै प्रभुपद-प्रेम तब॥

गोविँदको गुरु रूप जानि श्रद्धा चित लावै।
गुरु मेरे सरबस्व कबहुँ नहिं तिनहिं भुलावै॥
गुरुतें पहिले उठे अंतमहँ गुरुके सौवै।
गुरु आज्ञा का देहिँ सतत तिनको मुख जोवै॥
गुरु मूरतिको ध्यान करि, गुरु चरनामृत लेइ नित।
गुरुहित सौंपै देहकूँ, गुरु चरननिमहँ रखइ चित॥

गुरु सेवा जिन करी कर्यो तिन सब जगमाहीं।
गुरु सेवन नहिं कर्यो करयो तिनने कछु नाहीं॥
गुरुकी मूरति मधुरे ज्ञानकी ज्योति जगावै।
गुरु अनुकम्पा करैं हियेको तम नसि जावै॥
प्रभु प्रसाद समुझै सबहिं, कहे—नाथ! नहिं कछू मम।
करि अरपन बिनती करै, हे हरि! हियकौ हरौ तम॥

सदा साधु सत्संग करै विषयिनितें बचिकें।
समुझै सरबसु साधु करै सेवा रचिरचिकें॥
तनतें मनतें और द्रव्यतें जथा शक्ति नित।
हरि उपासना करै हृदय तब होवै प्रमुदित॥
जे उपासना ईसकी, करें नहीं जगमहँ फसें।
तें पामर पशु पतित नर, मरिकें नरकनिमहँ बसें॥

कृष्ण कथा दै चित्त प्रेमतें सुनें सुनावें।
नित नव नव अनुराग बढ़े कबहूँ न अघावें॥
ज्यों मधुमहँ अनुरक्त रहे मधुलोलुप मधुकर।
त्यों ई हरि गुन गान कृष्ण कीर्तनमहँ तत्पर॥
कथा कीरतन गुन श्रवन, करि करि हरि हिय महँ धरें।
इत उत कबहुँ न जाय चित, चरन कमल चिन्तन करें॥

अर्चामहँ अति प्रेम नेमतें पूजें नित हरि।
सबरी सेवा करें इष्टकूँ सदा हिये धरि॥
दिव्यदेशमहँ जायँ भक्तितें भगवत सेवें।
सिर धरि हिय निरमाल्य विष्णु पादोदक लेवें॥
अरचन पूजन निरखि जे, अतिशय हिये सराहिँगे।
ते सब पापनि ते छुटें, कृष्णचरन रति पाइँगे॥

इष्ट विषयकी प्रीति कहें रति ताकूँ बुधजन।
जामें नित ई फँस्यो रहे व्याकुल ह्वैकें मन॥
कान भनक परि जाय नाम होवै तनु पुलकित।
सुमिरि सुमिरि गुन करम होहिं अति उत्कंठित चित॥
ह्वै अधीर रोवें कबहुँ, गद्‌गद गिरा गँभीर स्वर।
हँसें कबहुँ पुनि पुनि कहें, गिरधर नटवर ब्रजेश्वर॥

कबहू करें विलाप ध्यानमहँ मग्न होहिं पुनि।
गावें कबहूँ गान होहिँ हरषित हरि गुन सुनि॥
सम्मुख देखें जाइ पैर परि परिकें रोवें।
कबहूँ नाचें ठुमकि कबहुँ पृथिवीपै सोवें॥
लोकलाज संकोच तजि, यों तन्मय ह्वैकें रहें।
नारायण, हरि, जगतपति, राम, कृष्ण, वामन, कहें॥

लड़खड़ात मग चलैं परैं पग इत उत अनिमित।
चलत चलत पुनि गिरैं फिरैं उतकंठित जित तित॥
रहै प्रेमकी ज्योति प्रज्वलित हिये निरंतर।
जरैं बासना बीज दिखैं जब श्रीराधाबर॥
फँस्यो चित्त चितचोरकी, रूप माधुरीमें सतत।
जगबंधन कटि जात सब, होहिं फेरि जगतैं विरत॥

मलिन हृदय जे मनुज फँसे जग चक्करमाँहीं।
काटन बन्ध उपाय कृष्ण चरननि तजि नाहीं॥
तातें तजि ब्यौहार जगतके हरि चित धारौ।
ज्ञान खड्गकूँ धारि काम क्रोधादिक मारौ॥
जिही मुक्ति निर्वान है, जाहि परमपदहू कहें।
हृदयेश्वर हरि सर्वदा, हृदयमाँहिं दीखत रहैं॥

धन, दारा, पशु, पुत्र अश्व, सम्पति, रथ, हाथी।
नाशवान सब छनिक जीवके जे नहिं साथी॥
जो सबके हैं सुहृद आतमा अन्तरयामी।
अविनाशी अखिलेश चराचर जगके स्वामी॥
ते अति घाटेमें रहैं, हरि तजि विषयनिकूँ भजैं।
चाकचिक्य लखि काँच को, करगत हीराकूँ तजैं॥

भैया ! सोचो नैंक जगतमें कितने सुख हैं।
गर्भवासतैं मरन काल तक दुखई दुख हैं॥
करिकैं नाना करम जीव फँसि जाय जगतमहँ।
करै कामना सहित कर्म चित देइ न हितमहँ॥
देह कर्म अविवेकतैं; होहिं तिन्हैं तातैं तजौ।
आश्रय जिनके विश्व है, तिन सर्वेश्वरकूँ भजौ॥

नहीं नियम है जिही तिनहिँ आराधैं द्विज ई।
होहिं असुर, विट, शूद, नारि चाहैं अन्त्यज ई॥
करिकैं भक्ति अनेक तरे नर पशु गीधादिक।
नहीं रिझावैं तिन्हैं दान, तप, व्रत, शौचादिक॥
आवश्यक नहिं विप्रपन, ऋषिपनहू अरु अमरपन।
प्रभु प्रसन्नताके निमित, आवश्यक परि अपनपन॥

सुखद सारको सार शास्त्र सिद्धान्त सुनाऊँ !
मुख्य जीवको धरम कह्यो जो ताहि बताऊँ॥
हरिमय सबकूँ जानि करौ सम्मान सबनिको।
विषय चिन्तना त्यागि रहे नित चिन्तन उनिको॥
खग, मृग, नर, सुर असुर अब, नाम लेत तरि जाइँ सब।
तातैं तजि मद मोह तुम, गहौ कृष्णकी शरन अब॥

दोहा—सुन्दर सुखमय सरस सिख, शिशु सब सुनहि सिहायँ।
असुर सुननि प्रह्लादजी, भक्ति रसामृत प्यायँ॥

इति श्रीभागवत चरितके तृतीयाहमें प्रह्लाद असुरबालक सम्वाद नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त।

अथ अष्टदशोऽध्यायः

[१८]

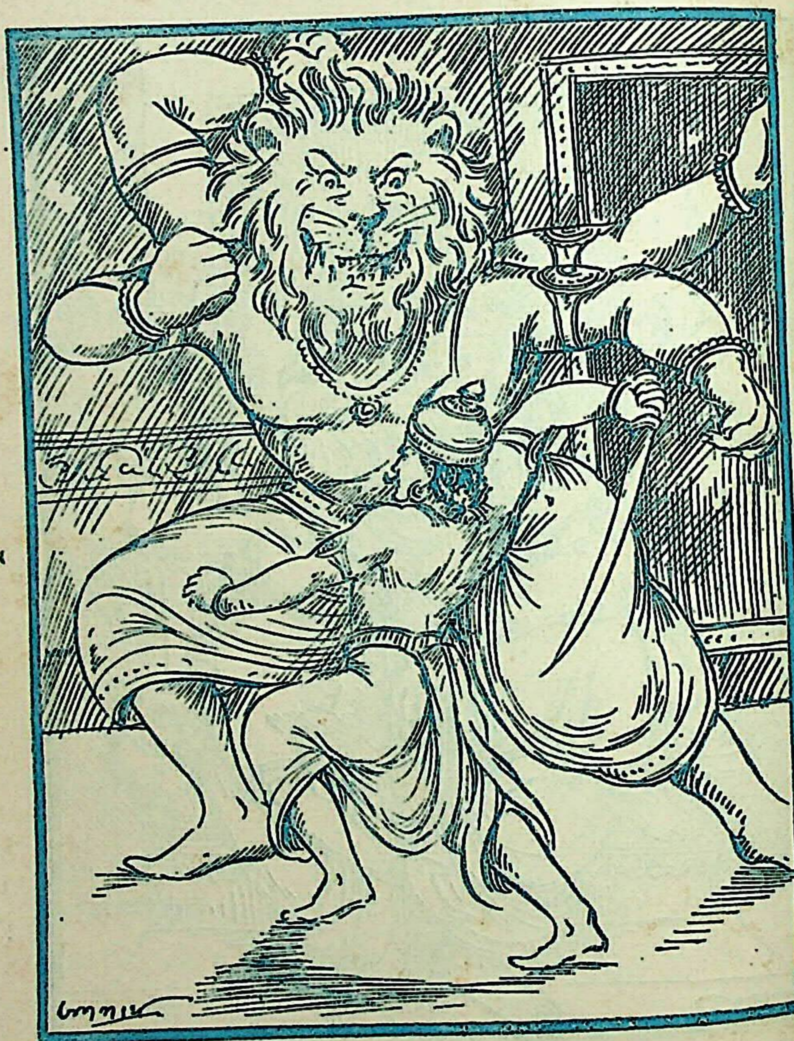
देइँ सीख प्रहलाद असुर सुत अति हरषावैं ।
मानैं श्रद्धा सहित प्रेमतें हरि गुन गावैं ।।
आये इत गुरुपुत्र निरखिकैं अति घबराये ।
ह्वैकें अति भयभीत दैत्यपतिके ढिँग आये ।।
कहैं दीन ह्वै—प्रभो ! अब, कुमर बिगारै सबनिकूँ ।
कृष्ण नाम कीर्तन करो, यों सिखवै सब शिशुनिकूँ ।।

सुनत दुखद संवाद दैत्यपति बहुत रिस्यान्यो ।
भगवद् भक्त सुशील तनयकूँ रिपुसम मान्यो ।।
कहै—ढीठ अति भयो म्यानतें खड्ग निकारूँ ।
नेंक कृपा नहिंकरूँ दुष्टकूँ अबई मारूँ ।।
पठये पकरन पुत्रकूँ, सेवक तुरतहिँ गये सब ।
करत कीरतन सबनि सँग, आये श्रीप्रहलाद तब ।।

मुखतैं मधुमय मधुर नाम माधवके गावत ।
शीलवान अति सरल लख्यो सुत सम्मुख आवत ।।
किटकिटायकें दाँत दैत्य गर्जन करि बोल्यो ।
मानौं विषतैं भर्‌यो स्याँपने निज मुख खोल्यो ।।
दुर्विनीत कुलरिपु अधम, बोल्यो बिष उगिलत बचन ।
बोलि बिष्णु तेरो कहाँ, पठऊँ तोकूँ यमसदन ।।



हिरण्यकशिपु-वध पृ० २६४



नृसिंह और हिरण्यकशिपु पृ० २६३

बिष्णु कहाँ रे ! दुष्ट, ताहि यमसदन पठाऊ ?
यत्र तत्र सरवत्र कहाँ हौं तिन्हें बताऊँ ॥
मो में ? हाँ, का सभामाहिं ? है अवसि तहाँ हूँ ।
खम्भमाँहिं ? कहि दई पिताजी ! रहें वहाँ हूँ ॥
सुनि सिंहासन तैं उठ्यो, खम्भ माहिं घूँसा दयो ।
तुरत तहाँते भयङ्कर, सिंहनाद भीषण भयो ॥

प्रकटे हुं हुं करत फिरत गर्जत अरु तर्जत ।
बदन महा बिकराल क्रोधतैं अँग अँग फरकत ॥
सिर तो सिंह समान शेष धड़ नर सम सुन्दर ।
लपलपात अति जीभ भयङ्कर मुख जनु कन्दर ॥
जन्तु बिचित्र निहारि खल, नहीं डर्‌यो ठाढ़ौ रह्यो ।
हरि मायावी है जिही, दैत्यराज हँसिकें कह्यो ॥

मायावी तू बिष्णुमारिवे मोकूँ आयौ ।
बहुरूपी सुरअधम आजु अस वेष बनायो ॥
तकिकें मारूँ गदा धरनिपै तोइ गिराऊँ ।
मिल्यो बहुत दिनमाँहिं बन्धु ऋण आजु चुकाऊँ ॥
यौं कहि दौर्‌यो गदा लै, अट्टहास नरहरि कर्‌यो ।
प्रभुकै बलयुत तेजमहँ, खल पतङ्ग सम गिरि पर्‌यो ॥

ज्यों ई दौर्‌यो दैत्य पकरि नरहरिने लीन्हों ।
छुटपटाइकें यत्न निकसिबे को बहु कीन्हों ॥
श्रीहरि लीला करी ढीलि दीयो छुटि भाग्यो ।
जानि असुरकूँ बली सुरनि अति बिस्मय लाग्यो ॥
हरि हाथनितैं निकसिकें, बेग सहित इत उत फिरै ।
नीचे ऊपर उछरिकें, रन कौतुक बहुविधि करै ॥

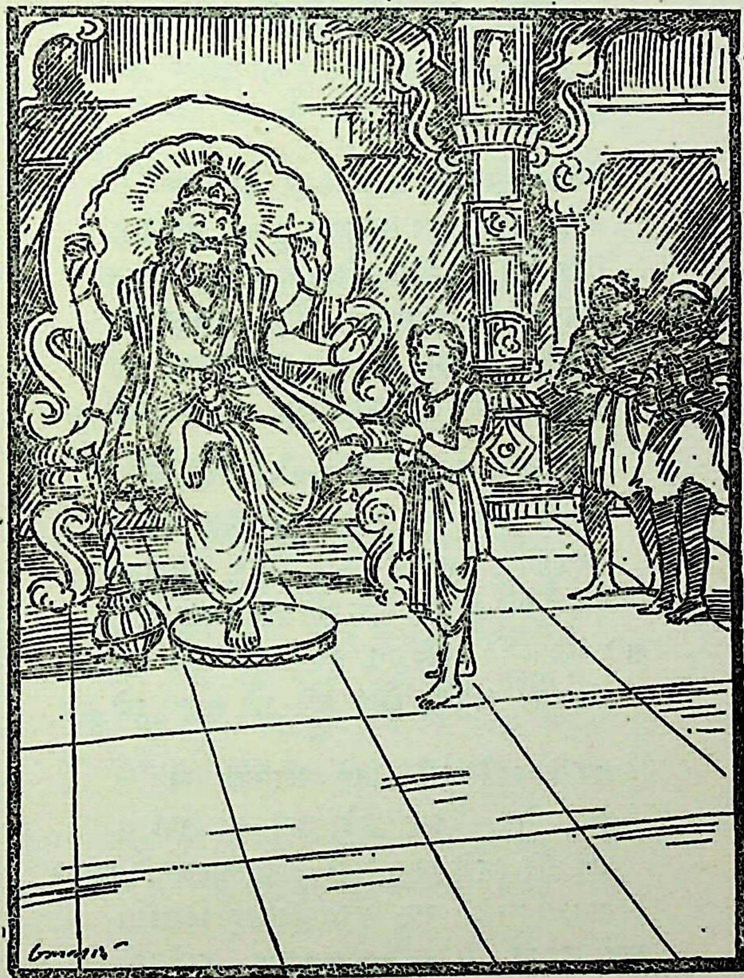
कछुक भुलाइ खिलाइ ठठाको मारि हँसे हरि।
गरुड़ सरपकूँ गहै असुर त्यौं पकरि लयो फिरि ।।
छटपटाइ अकुलाइ निकसिवेकूँ व्याकुल अति।
किन्तु छूटि कस सकै जाइ कसि पकरैं श्रीपति ।।
पर्यो असुर पुनि फन्दमें, भूल्यो सब फ फंद अब।
सिंहनाद हरिने कर्यो, नेत्र ह्वै गये बन्द तब ।।

अति विकराल कराल नयन नरहरिके चमकैं।
गर्जन तर्जन करैं केश कंधाके दमकैं ।।
लपलपाइ हरि जीभ ओठकूँ चाटैं पुनि पुनि।
काँपैं सबरे असुर भयङ्कर सिंहनाद सुनि ।।
सभा द्वार सन्ध्या समय, जाँघनिपै धरि नखनितैं।
फार्यो नरहरिने उदर, बच्यो नहीं विधि बरनितैं ।।

फर्र फारिकें पेट सर्रतें आँत निकारीं।
अट्टहास करि गरेमाँहिं माला समधारीं ।।
रक्त-बिन्दुतें रँगे केश अति सुन्दर लागैं।
देखि भयंकर रूप असुरगन भयतैं भागैं ।।
अस्त्र शस्त्र लै धृष्ट कछु, असुर चले रनहित तुरत।
नख आयुधतें मरत कछु, गिरत बचे रन तजि भगत ।।

तितिर बितिर घन होयँ केश नरहरि फटकारैं।
ग्रहगन फीके परैं क्रोध करि जबहिँ निहारैं ।।
प्रलयानल सम स्वाँस नाद सुनि सब डरि जावैं।
जब पटकैं प्रभु पैर असुर भयतैं मरि जावैं ।।
सिंहासन खाली लख्यो, जाइ बिराजे धम्मतैं।
यों सेवक हित सर्बगत, प्रगटे नरहरि खम्मतैं ।।

दो०—सिंहासन पै सिंहनर, बैठे मुख बिकराल।
नख आयुध भ्रुकुटी कुटिल, आँतनिकी गल माल॥



इति श्रीभागवतचरितके तृतीयाङ्कमें नृसिंहप्रादुर्भाव हिरण्यकशिपुवध नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त।

अथ—एकोनविंशतितमोऽध्यायः

[१९]

मृतक असुरकूँ निरखि उतरि सुर नभतैं आये।
नरहरि क्रोधित लखे विनययुत वचन सुनाये॥
विधि बोले—हे विभो! विश्व के तुमही करता।
पालनहू तुम करो अंत होओ संहरता॥
शिव बोले—अब क्रोध को, काम कहा केशव रह्यो।
करहु कृपा प्रह्लाद पै, अधम असुर तो मरि गयो॥

इन्द्र कहैं—हरि हमें असुर मख भाग न दीये।
करवाये लघु काज सदा अपमानित कीये॥
करुणासिन्धु कृपालु कृपा करि सुररिपु मार्‌यो।
सुरगन अति ई दुखित दुष्ट हनि दुख सब टार्‌यो॥
ऋषि बोले—तब तप हि तनु, करैं सदा परि भय भयो।
मैटे सब तप असुरने, तिहि हनि तप अवसर दयो॥

अब तो क्रमतैं करहिं विनय नरहरिकी सबई।
ब्रह्मा, शिव, देवेन्द्र, हटे आये सुर तबई॥
पुनि मुनि, ऋषि, मनु, पितर, सिद्ध, चारन, विद्याधर।
नाग, प्रजापति, यक्ष, भूत, वैतालहु किन्नर॥
आईं मृदुतनु अपसरा, देव और उपदेवगन।
हरि पार्षद नन्दादि हू, विनय करहिं भयभीत मन॥

दूरहिँ तैं डंडौत करैं सुर पास न जावैं।
तू जा तू जा करैं दूरितैं सैंन चलावैं॥
लक्ष्मी बोलीं—अबहिँ करूँ बश क्यौं घबरावत।
करि सोलह शृंगार चलीं नूपुर खनकावत॥
हरि चिंघारे श्री डरीं, भगीं लौटि आइं तहीं।
थर थर काँपैं पुनि कहैं, जे मेरे दुलहा नहीं॥

कमलयोनि प्रहलाद बुलाये बोले बानी।
बेटा ! बिभु अति कुपित डरीं कमला पटरानी॥
तुम प्रभुके हो भक्त चरन ढिँग उनिके जाओ।
करि बिनती परि पैर कुपित नरहरिहिं मनाओ॥
तब बोले प्रहलाद—बिधि ! नरहरि ढिँग हौं जाउँगो।
बिनय करौं अतिदीन है, सब बिधि प्रभुहिँ मनाउँगो॥

हैं जो जगके ईश प्रनतके प्रनप्रतिपालक।
हौलैं हौलैं गये जोरि कर प्रभु ढिँग बालक॥
परे दण्डवत भूमि माँहिं चरननि लिपटाये।
देखि दया बश दौरि देवने तुरत उठाये॥
शिशुकपोल करतें गह्यो, पुनि पुनि मुख चुम्बन कर्यो।
सिर सूंघ्यो पुनि लाइ उर, अभयकरन सिर कर धर्यो॥

दोहा—नरहरि कर परसत तुरत, झरत नयनतें नीर।
करन लगे प्रहलादजी, इस्तुति गिरा गँभीर॥

प्रहलाद-स्तुति

जब परी जनपिपै भीर तबहिँ दुख टारे।
हे कृपानाथ करुणेश जगत रखवारे॥

नित सत्य प्रकृति सुर तुमहिँ रिझावैं ध्यावैं ।
अज शिव सनकादिक पार न पावैं गावैं ॥
हम नीच असुर अति क्रूर अधम कहलावैं ।
क्यौं करी कृपा शुभ दरशन दीये प्यारे ॥१॥ हे कृपा०

नाहँ कोई तुमकूँ तप प्रभावतैं पावैं ।
यदि भक्त होहि तो पशुपै हू ढुरि जावैं ॥
हों भक्तहीन द्विज तहँ तिनि मखमहँ आवैं ।
अगणित खल शत्रुचहु भक्त भक्तितैं तारे ॥२॥ हे कृपा०

जो जैसे तुमकूँ नरहरि भगवन् ! ध्यावै ।
वह तैसो दरशन नाथ ! तुम्हारो पावै ॥
ज्यो दरपनमें प्रतिविम्ब स्वरूप लखावै ।
ह्वै प्रकट खंभतें मेंटे दुःख हमारे ॥३॥ हे कृपा०

भक्तनि हित नित नव कच्छ मच्छ वपु धारी ।
जो शत्रु भावतें भवैं तिनहिँ संहारी ॥
असुरनिकूँ दैकें मुक्ति सुरनि दुख टारी ।
जग जीवनि हित अति मधुर चरित विस्तारे ॥४॥ कृपा०

नित तुमरे चरितनि भक्त जननिमें गाऊँ ।
तिन रूप मनोहर तुमरो नरहरि ध्याऊँ ॥
भव-तरनि चरन गहि नाथ ! पार ह्वै जाऊँ ।
हैं जग जीवन अति सुखमय चरन विहामे ॥५॥ हे कृपा०

यह जीवन जगतमें तुमकूँ तजिकें भटक्यो ।
मायाके फन्दे फँस्यो गुननिमहँ अटक्यो ।
चौरासी चक्कर माँहिँ अविद्या पटक्यो ।
हो तुमही नरहरि केवल एक सहारे ॥६॥ हे कृपा०

नहिँ उत्तम मध्यम अधम बुद्धि है तुमरी।
है तुमकूँ सृष्टि समान चराचर सबरी॥
हम काल व्यालने डसे लेउ सुधि हमरी।
ये काम क्रोध मद लोभ मोह अहि कारे॥७॥ हे कृपा०
यह मन मेरो है नरहरि! चंचल भारी।
नहिँ सुनै तुम्हारी कथा सकल अघहारी॥
हौं दीन हीन अति छीन गँवार भिखारी।
हे नाथ! लगाओ डूबत नाव निवारे।८॥ हे कृपा०
है माया अपरम्पार तुम्हारी स्वामी।
कैसे पावें हम तुम्हें असुर खल कामी॥
हो घट घट व्यापी प्रभुवर अन्तरयामी।
निगमागम सबरे नेति नेति कहि हारे॥९॥ हे कृपा०
हे कृपानाथ करुणेश जगत रखवारे।
जब परी जननिपै भीर तबहिँ दुख टारे॥
छप्पय—बोले श्रीप्रहलाद—कृतारथ भयो नाथ! अब।
परसे पावन पाद पदुम दुख दूरि भये अब॥
किहि विधि विनती करूँ आपु हरि अन्तरयामी।
भटकैं जगमहँ जीव उबारौ तिनकूँ स्वामी॥
विनतीसुनि प्रहलादकी, भये मुदित श्रीरमापति।
मधुर बचन बोले बिहँसि, बारबार करि प्यार अति॥
अति प्रसन्न हौं बत्स माँगु तूँ बर मन चाह्यौ।
सकल मनोरथ सफल करन हितही हौं आयौ॥
सुनि बोले प्रहलाद—न हरि बरतैं ललचावैं।
विषयनितैं करि दूरि अखिलपति अब अपनावैं॥
नहिं माँगहुँ बर विषय सुख, सदा नाथ! हियमहँ बसहिँ।
करुनामय करुना करहु, कबहुँ कामना उठहिं नहिँ॥

हँसि बोले भगवान—विषय चाहें नहिं हरिजन ।
करहिं निरन्तर भक्ति सदा राखें मो में मन ॥
मन्वन्तर तक तऊ भोग सब भोगो जगमहँ ।
कथा निरन्तर सुनौ चित्त बाँधौ मम पगमहँ ॥
सुखतैं पुन्यनि नाश करि, दुखहू मल करिकें नसौ ।
पुन्य पापतैं मुक्त है, मम समीपमहँ फिरि बसौ ॥

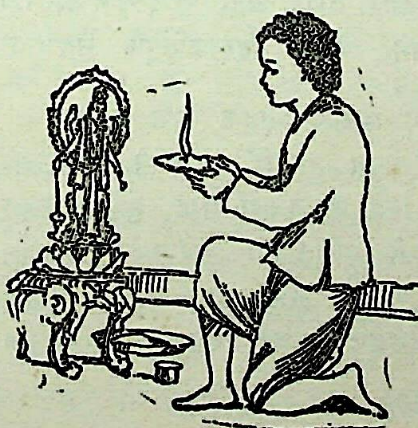
बारबार बर हेतु कही तब बर जिह माँग्यो ।
मेरो शुभ आचरन पिताकूँ खोटो लाग्यो ॥
हरि निन्दा नित करी दासकूँ दुख बहु दीन्हों ।
पग पग पै अपमान नाथको मम पितु कीन्हों ॥
अति दुरन्त दुस्तर दुसह, दोष दैत्यपतिने करे ।
छुपें नाथ ! यद्यपि सबहिँ, दृष्टि मात्रतें अघ हरे ॥

नरहरि बोले—वत्स ! तरे कुल पितु महतारी ।
पीड़ी पावन भईं पुत्र । इक्कीस तुम्हारी ॥
तुम सम जाके तनय नरक कैसे वह जावै ।
पुत्र पुन्य परभाव परमपद पितु तब पावै ॥
मृतक करम पितुके करो, अब बेटा ! तुम जाइकैं ।
नित मम परिचर्य्या करो, मो में चित्त लगाइकैं ॥

हरि आयसु सिरधारि, असुरके करे कर्म सब ।
राज्यासन अभिषिक्त मुनिनि प्रहलाद करे तब ॥
कीन्हीं बपु बिधि बिनय बिश्वपति भल अति कीन्हों ।
असुर मारि प्रहलाद तथा देवनि सुख दीन्हों ॥
हँसि बिधि तैं नरहरि कहैं, बीज तुम्हारे ई बये ।
तुमने बाबा बिधाता, दुरलभ बर जाकूँ दये ॥

अब कबहूँ नहिं देइ दुष्ट दैत्यनिकूँ अस वर।
करैं सुधाको पान सदा विष उगलैं विषधर ॥
यों सबकूँ समुझाइ भये अन्तरहित नरहरि।
विदा करे प्रहलाद देव ऋषि अति आदर करि ॥
हिरनकशिपु उद्धार अरु, चरित असुरसुतको कह्यो।
यों द्वेषी शिशुपाल हरि, हाथनि मरि तन्मय भयो ॥

इति श्रीभागवत चरितके तृतीयाहमें प्रह्लादप्रसाद नृहरि तिरोभाव नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।



अथ विंशतितमोऽध्यायः

[२०]

छप्पय—पूर्व जन्ममहँ हते, बिप्र प्रहलाद यशस्वी।
मातु पिताके भक्त धर्मरत परम तपस्वी॥
लैंन परीक्षा पिता देहमहँ कुष्ट बनायो।
घृना तनिक नहि करी, अमृत को घड़ा भरायो॥
पुत्र भक्तितें पिताहू, अति प्रसन्न तिनितै भये।
आशिष दै दीक्षा दई, पत्नी सँग बनकूँ गये॥

मातु पिता बन जाइ मुनिनिके सब ब्रत धारे।
अंत समय तनु त्यागि धाम बैकुण्ठ सिधारे॥
करैं योग ब्रत नियम सोमशर्माहू सब बिधि।
सुख दुखमहँ सम रहैं त्यागतैं भये तपोनिधि॥
अन्त समय आयौ जबहिं, असुर शब्द सुनि डरि गये।
दैत्य भाव हियमहँ भर्‌यो, हिरनकशिपुके सुत भये॥

नाम धर्‌यो प्रहलाद मातुके अति ई प्यारे।
देवासुर संग्राम माँहिँ श्रीहरिने मारे॥
रुदन करै नित जननि तहाँ नारद मुनि आये।
कमला देखी दुखित दया करि बचन सुनाये॥
प्रकटैं तेरे उदरतैं, तजो सोच सुत जिही तब।
नाम होहि प्रहलाद ही, वही रूप गुण शक्ति सब॥

होहि भागवत परम आसुरी भाव न उनमें ।
होवै प्रेम अनन्य सदा श्रीहरि चरननिमें ।।
यों कहि नारद गये जनम प्रहलाद लयो पुनि ।
उदर माँहिं शुभ ज्ञान दयो तिनि श्रीनारद मुनि ।।
श्रीनरहरिको चरित अति, पावन यह मैंने कह्यो ।
ऐसे श्रीप्रहलादने, जनम असुर कुलमहँ लयो ।।

जामें भगवत भक्त चरित अति मधुर मनोहर ।
ज्ञान भक्ति वैराग्य ललित लीला अति सुन्दर ।।
नारद बोले—धर्मराज ! तुम अति बड़भागी ।
सेवैं जिनकूँ सदा भक्त ज्ञानी वैरागी ।।
रहैं सदा सेवक सरिस, ते हरि तुम्हरे पास नित ।
सम्बन्धी प्रिय सुहृद बनि, रहैं नित्य हितमहँ निरत ।।

अज शिव, ऋषि, मुनि इन्द्र भेद जिनको नहिं पावैं ।
नेति नेति कहि जिन्हें वेद चारिहु डरि गावैं ।।
जप, तप, जोग, विराग, करैं जिनहित मुनि सब तजि ।
होवें खल अति विमल नाम जस तस जिनको भजि ।।
निज कैंकर्य कराइकें, कृपा करैं करुनायतन ।
दूर करैं दुख दरस दै, सफल करैं निज जन नयन ।।

राजन् ! जिनकरि त्रिपुरनाश शिव यश विस्तार्यो ।
त्रिपुरारी शिव भये असुर मायासुर हार्यो ।।
कनक रजत पुर लोह मयासुर तीनि बनाये ।
नभमहँ घूमैं गुप्त दैत्य लखि अति हरषाये ।।
डरे देव शिव ढिँग गये, पशुपति तान्यो निज धनुष ।
हर सरतैं मरि मरि असुर, गिरत तुरत पुरतैं निकस ।।

मरैं असुर जे तिन्हें बेगि मायासुर लावै।
अमृतकुंडमहँ डारि सबनिकूँ तुरत जिवावै॥
त्रिपुरारी मय सिद्धि निरखि अतिशय घबराये।
मायापतिकी शरन शम्भु मनही मन आये॥
कामधेनु श्रीहरि बने, विधि बनाइ बछरा लये।
अमृतकुन्डके जाइ ढिँग, पान अमृत सब करि गये॥

फिरि हरि हर ढिँग आय धरम रथ दिव्य बनायो।
ज्ञान सारथी कर्‌यो धनुष तप तीव्र सुहायो॥
ध्वजा विरक्ति बनाय अश्व ऐश्वर्य लगाये।
धार्‌यो विद्या कवच क्रियाके बान चढ़ाये॥
अस रथपै चढ़ि सदाशिव, प्रभु सुमिरत आगे बढ़े।
बान धनुषनै धारिकैं, त्रिपुर निवासिनितैं भिड़े॥

कीन्हौं त्रिपुर विनाश भये त्रिपुरारी शंकर।
ऋषि, मुनि, सुर, गन्धर्व कहैं—जय शंकर शिवहर॥
सबको यश विस्तार करैं ये ही श्रीनरहरि।
करे पूज्य प्रहलाद हिरनकशिपू को बध करि॥
नारदजीके वचन सुनि, धरमराज प्रमुदित भये।
पुनि वर्णाश्रमधर्मकूँ, मुनिवरतैं पूछत भये॥

चारि बरनके धरम देव-ऋषि पृथक बताये।
कौन कौन का कर्म करैं कहि सब समुझाये॥
पुनि नारिनिके धर्म कहे मुनि सहमी शारद।
ब्रह्मचर्य व्रत गृही धर्म भाखे सब नारद॥
बानप्रस्थ संन्यासके, पृथक् पृथक् लक्षण कहे।
धर्मराज नारद निकट, यदुनन्दन बैठे रहे॥

यह प्रसंग अति धन्य पुण्यप्रद परम सुहावन ।
धर्म वृद्धि नित करै मोक्षप्रद अतिशय पावन ॥
भक्ति सहित नर नारि जाइ जे सुनैं सुनावैं ।
जगबन्धनतें छूटि मोक्षकी पदवी पावैं ॥
धर्मराज प्रति देवऋषि, कह्यो सुखद संवाद अति ।
श्रवन मननतैं अवसि ही, हरिचरननिमहँ होहि रति ॥

इति श्रीभागवतचरितके तृतीयाहमें धर्मराज नारद सम्बाद नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ।

इति तृतीयाह

(मासिक पारायण चौदहवें दिवसका विश्राम)



अथ चतुर्थाह

प्रथमोऽध्यायः

(१)

दो०—पद्मनाभ पद पदुमकी, पावन पुण्यपराग ।
सिर धरि चाहूँ नित बढ़ै, प्रभुपद-रज अनुराग ॥

छप्पय—कह्यो चरित तृतियाह माँहिं जड़ भरत सुहावन ।
अमल अजामिल चरित नाममहिमा अति पावन ॥
पुण्य प्रचेता वृत्त दक्षकन्यनिकी सन्तति ।
सुर असुरनि को वंश हिरनकशिपू को तप अति ॥
करी कृपा प्रहलादपै, भक्तवछल नरहरि यथा ।
सुनहु विमल अति पुण्यप्रद, चौथे दिनकी शुभ कथा ॥

कहैं परीक्षित—प्रभो ! प्रथम मनु वंश सुनायौ ।
मनुपुत्रिनि पति भये प्रजापति सर्ग बढ़ायौ ॥
अन्य मनुनिको वंश कृपा करि और सुनावें ।
भये कौन अवतार कर्म गुन नाम गिनावें ॥
शुक बोले—जा कल्पमहँ, छै मनु बीते आठ अरु ।
होंगे, प्रकटैं हरि सबनि, महँ भूपति सब श्रवन करु ॥

यज्ञ पुरुष प्रभु भये प्रथम मन्वन्तर माहीं ।
तप स्वायम्भुव करत असुर सोचें तिनि खाई ॥
जान्यो तिनको भाव मारि उद्धार कर्यो प्रभु ।
मन्वन्तर जब द्वितिय भयो प्रकटे वे ई विभु ॥
ब्रह्मचर्य व्रत आयुभर, पालनकी शिक्षा दई ।
सहस अठासी मुनिनिने, उनहीतें दीक्षा लई ॥

उत्तम प्रियव्रत पुत्र तीसरे मनु विख्याता ।
इन्द्र सत्यजित हते भये प्रभु तिनिके त्राता ॥
धर्मपत्नि सूनृता उदरतैं प्रकटे श्रीपति ।
सत्यसेन विख्यात सुरनिको एकमात्र गति ॥
ता मन्वन्तर मध्यमहँ, सखा सत्यजितके बने ।
सुरद्रोही दुःशील खल, दुष्ट यक्ष राक्षस हने ॥

चौथे मनु जगमाँहिँ भये तामस प्रियव्रत सुत ।
मन्वन्तर अवतार भये हरि अति शोभायुत ॥
पितु हरिमेधा भये मातु हरिनी कहलाई ।
कीन्हों गज उद्धार ग्राहतैं तुरत गुसाईं ॥
ज्यौं गज पकर्यो ग्राहने, शंका राजाने करी ।
भयो युद्धकहँ, कै दिवस, कैसे दुख मेट्यो हरी ॥

बोले शुक-मुनि नृपति ! क्षीर सागर ढिंग गिरिवर ।
हतो त्रिकूट प्रसिद्ध सहसदश योजन सुन्दर ॥
लता गुल्म द्रुम सघन शृंग सुखकर सब सोहें ।
झर झर झरना झरैं सिद्ध सुर मुनि मन मोहें ॥
क्रीड़ा कानन जहँ वरुण, को सुन्दर ऋतुमान अति ।
सुरललना घूमत फिरत, रति निरत निज सहितपति ॥

तहँ मनहर सर स्वच्छ सलिलयुत सुखकर सुन्दर ।
खिले अरुन वर कमल नील कह्लार मनोहर ॥
लता तीरके निकट लिपटि द्रुम नेह दिखावैं ।
पुष्पित शाखा हिलहिं मनहुँ कर पथिक बुलावैं ॥
रहैं जन्तु जलके बहुत, मत्स, सरप, कच्छप, मगर ।
तहीं ग्राह बलवान इक, बिपुलकाय निवसै निडर ॥

तिहि बनमहँ गजराज वसै जनु जीवित गिरिवर ।
सिंह व्याघ्र भगि जायँ गन्धतें मृग, अहि, सूकर ॥
छोटे बड़े अनेक पुत्र पौत्रादिक तिहि सँग ।
क्रीड़ा करैं अनेक सूँड़तें सूँघे पितु अँग ॥
इक दिन सबकूँ संगलै, जल पीवन सर ढिँग गयो ।
घुस्यो सरोवर सलिलमहँ, हथिनिनि सँग खेलत भयो ॥

कबहूँ जल भरि सूँड़ि बहुनिके अंग उड़ेलै ।
कबहूँ मारै हुड्ड पकरिकें दूरि ढकेलै ॥
यों ह्वैकें मदमत्त ज्ञान विज्ञान बिसार्‌यो ।
कुंजर करत कलोल काल नहिं निकट निहार्‌यो ॥
चट आयो तहँ ग्राह इक, पट्ट पैर पकर्‌यो जकड़ि ।
कछु न गिन्यो बल दर्पतैं, खींचै तिहि पुनि पुनि अकड़ि ॥

पूरो कर्‌यो प्रयत्न यथामति शक्ति लगाई ।
करीं अनेकनि युक्ति एकहू काम न आई ॥
ग्राह सलिलको जन्तु बढ़ै नित नित वह बलमहँ ।
भगे संगके छोड़ि होहि गज निरबल जलमहँ ॥
अन्य शरन जब नहिं लखी, शरन गही घनश्यामकी ।
करे शिथिल साधन सबहिं, टेर करी हरि नामकी ॥

गजेन्द्र-स्तुति

जो निराकार साकार सार, उन परमपुरुषको नमस्कार।
जो जगत रूप सब करें काज, वे राखें मेरी आइ लाज ॥
जिनकी "दृष्टी है नित अलुप्त, जो जगें सतत होवें न सुप्त।
जग प्रलय काल जब तम गँभीर, तब रहें पार तमके सुधीर ॥
मुनि देव सिद्ध जानें न जिन्हें, कैसे पहिचानें अन्य तिन्हें।
नटराज करें क्रीड़ा अपार, उन परम पुरुषको नमस्कार ॥१॥
ऋषि मुनि जिनके दर्शन निमित्त, तजि विषय भोग गृह नारि वित्त।
करि कंद मूल फलको अहार, वनमें बसि तनकूँ करें छार ॥
जो जीवनि के हैं आत्मरूप, सच्चे सुहृद् पितु मातु रूप।
जिनि जनम करम नहिँ नाम रूप, जो जड़ चेतनके एक भूप ॥
तिनकूँ ध्याऊँ हौं बारबार, तिनि परम पुरुषको नमस्कार ॥२॥
जो स्वीकारें जग हेतु देह, लीलातें मानें कुटुम गेह।
जिहि जोनि माहिँ प्रकटें अनन्त, रच्चें सुर सज्जन धेनु सन्त ॥
जो मोक्षधाम सबगुण निधान, नित करैं भक्त गुन नाम गान।
जो नित निरीह नव निरविशेष, जो रहें अन्तमें एक शेष ॥
जो मूल प्रकृतिके आदि सार, उन परम पुरुषको नमस्कार ॥३॥
जो कारन कारज करन प्रान, जो सत्य सनातन नित्य ज्ञान।
पशु पास निकुन्दन दया सिन्धु, मम पशुपै डारैं कृपाबिन्धु ॥
जो चतुरवर्ग दाता दयालु, जो अभिमत फलप्रद अतिकृपालु।
जीवनको मोकूँ नहीं मोह, मिटि जाय मान मद काम कोह ॥
हे विश्वनाथ हरि अति उदार, तव पद पदुमनि महँ नमस्कार॥४॥
जो शक्तियुक्त सबके स्वरूप, जो अज अनादि अच्युत अनूप।
जो जीव ईश माया अतीत, जो सबके स्वामी सुहृद मीत ॥
हौं ग्रस्यो ग्राहने सहज आय, थाक्यो करि करके सब उपाय।
अवलम्ब लयौ तव कमल चरन, लैं कमल एक अशरनशरन ॥
पद पदुमनिमहँ है बारबार, प्रभु नमस्कार प्रभु नमस्कार ॥५॥

छप्पय—हे हरि! अशरन शरन दीन दुख मेंटन हारे।
हे करुनाके अयन! प्रनतप्रन पालनवारे॥
आइ ग्रस्यो तम ग्राह सच्चिदानंद उबारो।
कैसे हू करि कृपा कष्ट हरि हरो हमारो॥
निरविशेष बिनती सुनत, नहिं आये सुर अन्य जब।
गरुड़ध्वज चढ़ि गरुड़पै, आये गज ढिंग तुरत तब॥

बिनती गद्गद कंठ करै नयननिकूँ मूदे।
गजकूँ निरख्यो बिकल गरुड़तैं श्रीहरि कूदे॥
एक हाथतैं पकरि ग्राह सँग गजहिं उबार्यौ।
जलतैं बाहर कर्यो चक्रतैं मुहड़ौ फार्यौ॥
नयनानंद निहारि हरि, शान्ति हृदय गजके भई।
भवभयहारी विष्णुने, मुक्ति ग्राह हू कूँ दई॥

ग्राह योनि तजि भयो तुरत गन्धर्व मनोहर।
पूर्व जन्ममहँ करत रह्यो क्रीड़ा जल अन्दर॥
देवलमुनिको चरन हँसीमहँ हूहू पकर्यो।
चौंके मुनि ह्वै भीत तबहि हँसि बाहर निकर्यो॥
समुझि अवज्ञा शाप तब, ग्राह बननको दै दयो।
सुर गायक गन्धर्व सो, नक्र शाप बश ह्वै गयो॥

पूर्व जन्म गज चरित सुनौं श्रद्धातैं अब तुम।
इन्द्रद्युम्न द्रविडेश हतो राजा सुरपति सम॥
ध्यान मग्न इक दिवस रह्यो मलयाचल माहीं।
शिष्यनि सहित अगस्त्य गये नृप निरखे नाहीं॥
करै तपस्या मौन ह्वै, बाल बढ़े व्रतमहँ निरत।
अतिथि धर्मतैं च्युत निरखि, मुनि अगस्त्य कोपे तुरत॥

बोले मुनिवर—अधम ! करै तू अतिथि निरादर ।
ह्वैकें क्षत्रिय नहीं करै विप्रनिको आदर ॥
गज सम बैठ्यो रह्यो होइ तू जड़मति गजई ।
दैकें दारुन शाप गये तत्क्षण मुनि तबई ॥
हर्ष न बिस्मय नृपतिकूँ, समुझि दैवगति रहि गये ।
तेई दूसर जन्ममहँ, बारणेन्द्र भूपति भये ॥

करि गजको उद्धार भये आनंदित श्रीहरि ।
बोले करुणा सिन्धु सबनिकूँ सम्बोधित करि ॥
ये मेरे हैं रूप कंदरा बन, गज, सरवर ।
बिधि हरिहरके धाम, बाँस, परबत, गिरि गह्वर ॥
शेष, शारदा, सप्तऋषि, सूर्य्य, चन्द्र, ध्रुव, धर्म हैं ।
गंगा, यमुना, सरसुती, यज्ञ आदि शुभ कर्म हैं ॥

कौस्तुभ मणि, श्रीवत्स और मेरी बनमाला ।
पाञ्चजन्य शुभ शंख गदा मम दिव्य विशाला ॥
असुर बिनाशक चक्र सुदर्शन मेरो भारी ।
सुर मुनि अरु अवतार पुरुष सब शुभव्रत धारी ॥
इन सबकूँ जो प्रात उठि, श्रद्धातैं सुमिरन करैं ।
भवसागरकूँ मनुज ते, बिनु प्रयास निश्चय तरैं ॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थांहमें हरि अवतार, गजग्राह मोक्षण नामक प्रथम अध्याय समाप्त ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

[२]

दोहा—कहैं सूत—मुनिवर! कहे, मन्वन्तर ये चारि।
अब पंचम मनुको चरित, सुनो हृदय हरि धारि॥

छप्पय—भये पाँचवे रैवत मनु मन्वन्तर अधिपति।
लियो विष्णु अवतार नाम 'वैकुण्ठ' रमापति॥
कमला हित बैकुंठ रच्यो सबलोक नमस्कृत।
मन्वन्तर पति भये छटे चाक्षुष मनु श्रीयुत॥
सम्भूतीके गर्भतैं, भये विष्णु वैराजसुत।
अजित नाम अच्युत रख्यो मथ्यो, सिन्धु श्री अमृत हित॥

धरि कछुआको रूप मंदराचलकूँ धार्‌यो।
सुरनि संग इक अजितरूप धरि अमृत निकार्‌यो॥
अमृत कलश लै प्रकट भये हरि धन्वन्तरि बनि।
दैत्य छले ह्वै नारि अमृत दैदीयो देवनि॥
कहैं परीक्षित—कथा सब, सिन्धु मथनकी कहहु प्रभु।
श्री अन्तरहित भई च्यौं, चार रूप च्यौं धरे विभु॥

शुक बोले—इक दिवस गये बन दुर्वासा मुनि।
श्यामा विद्याधरी खड़ी चौंकी पग-धुनि सुनि॥
सर समीप स्रग् लिये सुगंधित सुन्दरता जनु।
मुनि मन चंचल भयो निरखि माला बाला तनु॥
बोले विद्याधरी यह, माला मोकूँ दै अबहिं।
लखि दुर्वासा डरी वह, माला दै भागी तबहिं॥

माला धारी जटनिमाँहिँमुनि मगन चलैं मग ।
चितवन इत उत मत्त अटपटे परैं पंथ पग ॥
मगमहँ निरखे इन्द्र जटनितें माल निकारी ।
फैंकी सुरपति उपरि गर्वतें इन्द्र न धारी ॥
ऐरावत मस्तक धरी, कुचली पैरनि तासु जब ।
दुर्वासा क्रोधित भये, शाप इन्द्रकूँ दयो तब ॥

जा, तेरी श्री नष्ट होहि तीनिहु लोकनिकी ।
शाप होत ही कान्ति परी फीकी देवनि की ॥
असुरनि घेर्‌यो स्वर्ग देवता मारि भगाये ।
राज्यहीन श्रीभ्रष्ट दुखी सुर विधि ढिँग आये ॥
ब्रह्मा बाबा सबनिं सँग, क्षीर सिन्धुके ढिँग गये ।
लक्ष्मीपति सर्वेशको, करि बिनती गद्गद भये ॥

सोरठा—करि मन करन निरोध, श्रुति सम्मत, शिव सर्वगत
जो अवगत अविरोध—अज इस्तुति करिबे लगे ॥

अजित—स्तुति

जय निर्विकार हरि, सब जगकूँ करि, रहौ नित्य निस्संगा ।
जय सत्य सनातन, पुरुष पुरातन, प्रकटी जिन पद गंगा ॥
जय अलख अगोचर, अच्युत अक्षर, आदि अन्ततें रहिता ।
जय अपरम्पारा, चक्र अधारा, रहौ सदा श्री सहिता ॥
जय मायातीता, परमपुनीता, जय अनादि असुरारी ।
जय जग के करता, हरता भरता, जय मदहरन मुरारी ॥
जिनि स्वेदज उद्‌भिज, अंडज, पिंडज, रचे त्रिविध विधि पालैं ।
जो जनक जननि बनि, सुर शत्रुनि हनि, सखा सुहृद बनि लालैं ॥

जिनिको जगही तन, उड़गनपति मन, जो जल अन्न पचावें।
जो सर्वसार हैं, मुक्ति द्वार हैं, तिनि पद शीश नवावें॥
जय प्राननि प्राना, प्रभु भगवाना, जय जय सर्वस्वरूपा।
जय ब्रह्म छत्रवर, वैश्य शूद्र नर, सरब वरन जिहि रूपा॥
शुभ अशुभ बनावें, खेल रचावें, सबमें व्यापें सब छिन।
जय अजित अकारन, मुनिमन हारन, करहिं सकल सुर सुमिरन॥
यह जगत कल्पना सब जग सपना, जिनबिनु जीव न जानें।
जो अनिल सरिस शुभ, सत्यरूप ध्रुव, वेद उपनिषद मानें॥
ज्यों जड़ जल पावै, तरु हरिआवै, त्यों ही तुमरी सेवा।
जो तुमकूँ ध्यावैं, सब सुख पावें, तुष्ट होहिं मुनि देवा॥
जय जय जग जीवन, जय आनँदघन, जय जय कमला कन्ता।
जय जय प्रभु पावन, जनमन भावन जय जय अजर अनन्ता॥

छप्पय—हे अच्युत ! अखिलेश ! दया देवनिपै कीजै।
दुखी द्वारपै परे दयानिधि दरसन दीजै॥
विभो ! भये ऐश्वर्य हीन तव चरननि आये।
रिपुनि स्वर्गतैं भ्रष्ट करे हम मारि भगाये॥
बिधि बिनती विश्वेश सुनि, तुरत तहाँ परकट भये।
सुरगन हरि दरशन लहे, अति प्रसन्न सब ह्वै गये॥

इति श्रीभागवत चरितके चतुर्थाहमें सुरविनय नामक द्वितीयोऽध्याय समाप्त।

(पाक्षिकपाठ-सप्तमदिवस विश्राम)

अथ तृतीयोऽध्यायः

[३]

छप्पय—सुर प्रसन्न अति भये विष्णुकी करिकें झाँकी।
कीन्हीं गद्गद गिरा सबनि मिलि बिनती बाँकी॥
है प्रसन्न खिलवाड़ करनकूँ बोले नटवर।
मम सुर सम्मति सुनो करो मिलिकें सब सत्वर॥
कच्छ छिपावै अंग ज्यौं, त्यौं निज भाव छिपाइकें।
असुरनितैं कछु कालकूँ, करो मित्रता जाइकें॥

दोहा—सम्मति सुनि सरवेशकी, सुरगन शीश नवाय।
कहें—जायँ शत्रुनि निकट, कैसे भाव दुराय?

छप्पय—स्वाभाविक जो प्रेम द्वेष छूटे नहिं कबहूँ।
करैं मित्रता दैत्य करैं फिरि भगवन्! हमहूँ॥
देवनिकी सुनि बात हँसे प्रभु अन्तरयामी।
क्रीड़ाके हित रचें बिबिध कौतुक सुरस्वामी॥
हरि बोले तब सुरनितैं, स्वार्थ जगत्महँ श्रेष्ठ है।
सधै स्वार्थ जब जाहि सौं, सोई जगमहँ ज्येष्ठ है॥

घुस्यो पिटारीमाँहिं सर्प इक निज भोजनकूँ।
मोटो मूसो तहाँ घुस्यो काटे कपड़निकूँ॥
करीं पिटारी बन्द लगायो स्वामी तारो।
मूसक अतिशय डरै भयो चिंतित अहि कारो॥
सर्प बिचारै भूखबश, जो जाकूँ भखि जाउँगो।
तो फिरि घुटिकें पिटारी, में ही हौं मरि जाउँगो॥

सोचि समुझिकें करी मित्रता मूसकतें अहि।
कटवाई सन्दूक प्रेमकी बातें कहि कहि॥
जब जान्यो पथ बन्यो तुरत मूसक भखि लीन्हों।
यों बैरी तैं मेल कर्‌यो कारज निज कीन्हों॥
देवनितैं श्रीहरि कहैं, ऐसे ही तुम जाइकें।
दैत्यनितैं मैत्री करौ, साधौ स्वार्थ फँसाइकें॥

हरि सम्मति सिर धारि गये असुरनि ढिँग सुरगन।
शत्रुनि आवत निरखि दैत्य सोचें मनहीं मन॥
किहि कारन सुर शस्त्र त्यागि हमरे ढिँग आये।
करि स्वागत सत्कार असुरपति बलि बैठाये॥
बोले सुरपति सबनितैं, भाई हैं हम सुर असुर।
पिता एक माता पृथक, क्यौं फिरि झगरैं परस्पर॥

करिकैं सब पुरुषार्थ उदधितैं अमृत निकारैं।
मरन धरमकूँ त्यागि अमर बनि मृत्युहिं मारैं॥
लड़ैं परस्पर बीर मरैं नहिं कोई रनमहँ।
मनमहँ हो विद्वेष घाव होवै नहिं तनमहँ॥
असुरनि सुर सम्मति सुनो, साधु साधु सबने कही।
अमृत निकारैं मिलि उभय, बात जिही पक्की रही॥

सबतैं पहिले चले उभय लैवे गिरि मन्दर।
लीयो तुरत उखारि चले लैकें देवासुर॥
भार सह्यो नहिं जाय सबनिकूँ चक्कर आवै।
सब अकुलाये कहैं—भाड़महँ अम्मृत जावै॥
अड़ड़ धम्म करि गिरि गिर्‌यो, पिचे देव दानव सबहिं।
हतोत्साह जब सब भये, प्रकटे गरुड़ध्वज तबहिं॥

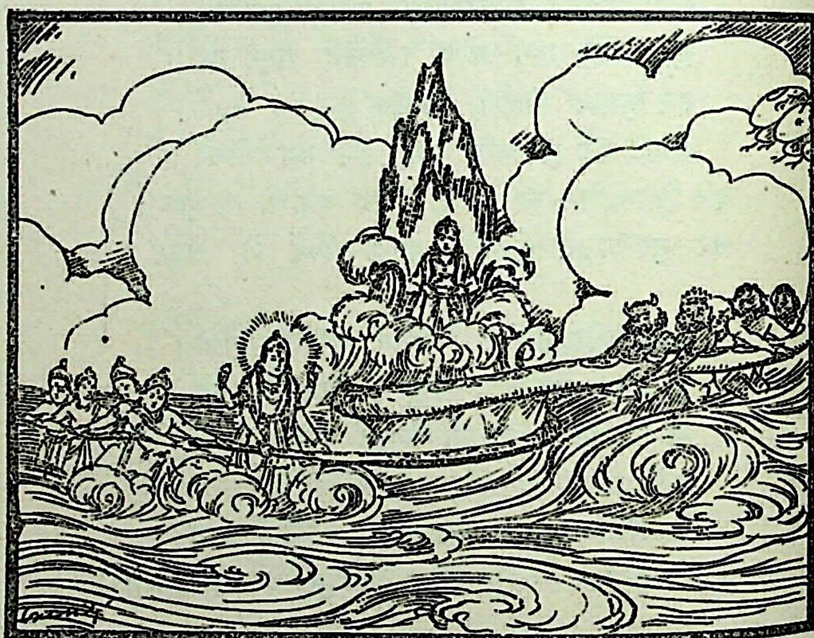
हँसिकें बोले विष्णु—डारि गिरिवर च्यौं दीयो।
व्यथित दुखित सुर लखे गरुड़पै गिरि धरि लीयो ॥
लाइ सिन्धुढिँग धर्यो गरुड़तैं बोले—जाओ।
पुनि देवनितैं कहैं—वासुकी नागहिं लाओ ॥
गये वासुकी निकट सब, अम्मृतको लालच दयो।
लाइ लपेटे दाम करि, मथो विहँसि हरिने कह्यो ॥

पीताम्बर की फैंट बाँधि हरि पकर्यौ मुख जब।
सुरहू पीछे लगे क्रोध करि कहैं असुर सब ॥
हम कुलीन विद्वान् अमङ्गल पूँछ न पकरैं।
रूँगटि यदि तुम करो यहाँतैं हम सब निकरैं ॥
हरि हँसि बोले—व्यर्थ च्यौं, वाद बढ़ाओ बन्धुवर।
सब सुर पकरो पूँछकूँ, मुखकूँ पकरैं जे असुर ॥

युक्ति सहित यों देव विपतितैं अजित बचाये।
तुरत सर्प मुख छोड़ि पूँछ ढिँग हर सँग आये ॥
यौं करि पृथक् विभाग सिन्धुकूँ मथिवे लागे।
कसि कसिकें सब फेंट, होड़ करि खींचें आगे ॥
पहिले खींचें असुर सब, पुनि सुर खींचें दामकूँ।
धँस्यो जाइ गिरि उदधिमहँ, सुमिरैं सुर सब श्यामकूँ ॥

असुर कहें—सुर ढीलि देहिँ ये कम सब बलमहँ।
सुर सोचें—यह निराधार गिरि डूबत जलमहँ ॥
कछुक कहें—विघ्नेश न पूजे अब फल पाओ।
कछु अनन्य यौं कहैं—हृदयतैं अजित मनाओ ॥
हरि निरखे भयभीत सुर, तुरत कूर्म तनु धारिकें।
धार्यो मंदर पीठिपै, उछरे बुड़की मारिकें ॥

मन्दर उठतो निरखि सुरासुर सबई हरषे।
भये मुदित मुनि सिद्ध सुमन बहु नभते बरषे ॥
नीचे ऊपर देव दैत्य मन्दरमहँ श्रीहरि।
बासुकि तनमहँ घुसे रूप तिनिमहँ तस तस धरि ॥
घरँमरँ करि मथैं सब, मन्दर मथनी सम फिरै।
कच्छप प्रभुकी पीठिपै, जनु प्रमदा खुजली करै ॥



बायु विषैली लगी दैत्य मुखसे रिसियाने।
अम्मृत निकसैं नहीं सुरासुर सब खिसियाने ॥
सबकूँ निरख्यो बिकल अजित हँसि बोले बानी।
हो कश्यप संतान थाह तुम सबकी जानी ॥

लाओ मारूँ हाथ द्वै, अम्मृत देउँ निकारिकें।
मोऊकूँ मिलि जाय कछु, खेंचूँ रई रिस्याइकें॥

अजित उठाई नेति रईकूँ खींचि घुमावैं।
कुटिल केश जनु हिलें सर्प सुत-शीश डुलावैं॥
पीताम्बर बनमाल श्याम तनुपै सोहैं जनु।
इन्द्रधनुष नभमाँहिं लपेटें विद्युतकूँ मनु॥
सोहैं अपर सुमेरु सम, गिरिधर गिरिवर ढिंग खड़े।
द्वन्द युद्ध हित मल्ल जनु, कसि कछुनी निज प्रन अड़े॥

कसिकें मारे हाथ जीव जलके घबराये।
मेढ़क मछली मगर मत्स्य ऊपर उठि आये॥
खलबलाइ सब उदधि जीव चिंघारी मारैं।
विश्वविजयिनी बाँह घुमावैं नहिं हरि हारैं॥
हालाहल सबतैं प्रथम, निकस्यौ विष अति उग्रतर।
दशहु दिशनिमहँ व्याप्त वह, भयो भगे सब सुर असुर॥

दोहा—देव असुर सब ई भये, गरल निरखि भयभीत।
विष निकस्यौ अम्मृत नहीं, कहें वचन विपरीत॥
छोड़ि मथन लड़िवे लगे, कौन करै विष पान।
प्रथम ग्रास मक्खी मिली, हँसे अजित भगवान॥

इति श्रीभागवत चरितके चतुर्थाहमें समुद्रमन्थन नामक तृतीय अध्याय समाप्त।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

[४]

दोहा—कौतुक हित हरि कौतुकी, दोउनिको लखि भाव ।
बीच आइ ठाढ़े भये, करिबे बीचबिचाव ।।

छप्पय—हरि बोले—हर निकट प्रजापति सँग सब जाओ ।
करिकें अनुनय बिनय हलाहल उनहिँ पिआओ ।।
शिव सँग बिहरैं शिवा प्रेमतैं पुलकित अँग अँग ।
पहुँचे बिषतैं दुखी प्रजापति सब सत्वनि सँग ।।
दंड सरिस सब भुइँ परे, कहहिँ दयानिधि दुख हरहु ।
सब जग भयवश अति दुखित, निरभय करुणाकर करहु ।।

शरन तिहारी लई जगतके तुम हो स्वामी ।
अज अच्युत अखिलेश अनामय अन्तरयामी ।।
पालन अरु संहार करौ तुमहीं जग रचिकैं ।
तीनिहु कारज करो बिष्णु हर बिधि बपु धरिकैं ।।
रुण्डमाल गल गंग सिर, मस्तक शशि शिव नाम है ।
उमा सहित सर्वेश पद, पदुमनि माँहिं प्रनाम है ।।

हे शम्भो ! सुख शान्ति शक्ति सरबसुके दाता ।
आशुतोष अखिलेश भवानीपति भयत्राता ।।
कालकूटतैं दुखी बिपतितैं नाथ बचाओ ।
पान हलाहल करो दुखिनिके दुःख मिटाओ ।।
उमा बिचारैं स्वारथी, हैं सबरे ये प्रजापति ।
कालकूट बिष पान हौं, करन न दुंगी तीक्ष्ण अति ।।

अन्तरयामी शम्भु उमाके मनकी जानी।
सती करन संतोष मधुर वर बोले बानी॥
प्रिये! प्रजा अति दुखित परी संकटमहँ भारी।
शरणागत प्रतिपाल करनकी बानि हमारी॥
जीवनिपै किरपा करैं, हरि प्रसन्न तिनपै रहैं।
पान हलाहल विष करूँ, दुखित होहि ये सब कहैं॥

दया धरमको मूल मरम मूरख नहिं जानैं।
छिनभंगुर यह देह अज्ञ अजरामर मानैं॥
शिवको सद् उपदेश सती सुनि दीन्हीं सम्मति।
पान करन विष चले शम्भु मनमहँ अति हरषित॥
व्यापि रह्यो विष जगत्महँ, जीव दुखी सबई रहैं।
पान कर्‌यो विष शम्भुने, सज्जन परहित सब सहैं॥

लीयो तुरत समेंटि बनायो विषको गोला।
पान करन हर लगे उमापति शंकर भोला॥
राम नाम सँग लीलि गरेतैं नाहिं उतार्‌यो।
निगल्यो उगल्यो नहीं कंठमें ही विष धार्‌यो॥
जलमल हालाहल हरषि, पान सतीपति करि गये।
कंठ नील विषतैं भयो, नीलकंठ तबतैं भये॥

हृदय माँहिँ हरि बसैं विश्वपति विष नहि निगल्यौ।
अघ अंगीकृत त्याग सोच बाहर नहिं उगल्यौ॥
दोषनि लेहिं पचाय दोष अपनेमहँ आवैं।
प्रकट दोष यदि करैं तुरत निज अँग लपटावैं॥
तातैं कंठहिमहँ धर्‌यो हर शोभा अतिशय बढ़ी।
सुनिकें शोभा सुरनितें, सुरसरि शिव सिरपै चढ़ी॥

है आराधन श्रेष्ठ त्यागि सब हरि आराधैं।
जप, तप, पूजा, पाठ, योग नियमादिक साधैं॥
इन सबतैं उत्कृष्ट परम आराधन भारी।
परदुखमहँ हों दुखी यही पूजा प्रभु प्यारी॥
समुझैं सबमहँ श्यामकूँ, ते ही भक्त अनन्य हैं।
परकारज हित सहहिँ दुख, जगमहँ ते नर धन्य हैं॥

फैली जगमहँ बात शम्भु हालाहल पीयो।
दुखी प्रजाको कष्ट वृषध्वज सब हरि लीयो॥
साधु साधु सब कहैं बिष्णु, विधि,शिव, यश गावैं।
दुँदुभि नभतैं बजैं सुमन सुरगन बरसावैं॥
हर भोलाकी भूलतैं, गोलातें कछु बिष गिर्यो।
सो अहि, बिच्छू औषधिनि, थाबर जंगम विष कर्यो॥

दोहा—महादेव हर है गये, करिकें विषको पान।
जे परकारजमहँ निरत, ते पावें बहुमान॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाह में शंकर बिषपान नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

[५]

शिव पीयो विष सिन्धु सुरासुर मथिवे लागे।
कामधेनु पुनि प्रकट भई रत्ननितैं आगे॥
अग्निहोत्रके हेतु सुरभि मुनिगन स्वीकारी।
उच्चैःश्रवा महान अश्व फिरि प्रकट्यो भारी॥
घोड़ा राजा बलि लयो, पुनि ऐरावत गज भयो।
सो वाहन देवेन्द्रको, हरि अनुमतितैं ह्वै गयो॥

पुनि कौस्तुभमनि भई चित्त चितचोर चलायौ।
रत्न अमोलक निरखि हरषि श्रीहरि हथियायौ॥
कल्पवृच्छ सुरबधू भईं सुर असुर सिहाये।
सार्बजनिक करि दईं, सुनत सबई हरषाये॥
सुरललना गति ललित अति, चुभी चित्त चितवन चपल।
पठईं हरि सुरपुर तुरत, लखि सुर असुरनिकूँ विकल॥

पुनि प्रकटीं प्रभुप्रिया रमा निजशोभा बिकसित।
बिधुवत् शुभ्र प्रकाश करत जगकूँ अनुरञ्जित॥
यौबन रूप सुबर्ण भाव गुणगरिमा अनुपम।
सुर, नर, किन्नर, असुर, भये लखि सबई जड़ सम॥
करैं भेंट बहुमूल्य मिलि, रमा-प्रेम महँ सब पगे।
लैवेकी इच्छा भई, सब सेवा करिबे लगे॥

स्वीकारे उपहार वाद्य बहु बजहिँ मनोहर।
हरषि विप्रगन पढ़हिं वेद मंत्रनिकूँ सस्वर ।।
पितु पीताम्बर दयो पहिनकें हरषी बाला।
पहिनी बरुणप्रदत्त वृहद बैजन्ती माला ।।
बस्त्राभूषन पहिनकैं, श्रीशोभा अनुपम भई।
निज बर खोजनके निमित, जयमाला करमहँ लई ।।

माला करमहँ हिलत भ्रमत मधुलोभी मधुकर।
कुन्डल लोल कपोल हास मधुमय मुख ऊपर ।।
पीनोन्नत वरवक्ष मृदुल कटि भार नमित-सी।
छीन उदर वर नयन मृगी सम चितै चकित-सी ।।
नूपुर कंकन करधनी, कलरव पग पगपै करत।
हंसिनिकी गतितैं चलत, चितवत सबको मन हरत ।।

सब सद्गुनसम्पन्न करै अन्वेषन निज बर।
तेज ओज तप युक्त होहि सुरवर अजरामर ।।
लखि सबकें गुण दोष फिरत पतिहित गजगामिनि।
नहिँ निरखे निरदोष चकित ह्वै चितवत भामिनि ।।
आभा अतसी कुसुम सम, निरखे नयनानन्द हरि।
गुणसागर निरवद्य लखि, ठिठकी नीचे नयनकरि ।।

निरगुन सबगुन युक्त सरस सुन्दर सुखसागर।
सरस सलौने श्याम सनातन शोभा आकर ।।
मम अभीष्ट बर जिही बिष्णु निश्चय करि जाने।
रमा मुदित अति भई पुरातन पति पहिचाने ।।
नव कमलनिकी मालपै, गुंजें बहु मधुकर निकर।
करकमलनि तैं कंठमें, डारि बरे श्री अजित बर ।।

हरिको वक्ष विशाल निरखि श्री अति हरषाईं।
रमाभाव पहिचानि विष्णु उर-माल बनाईं॥
हरि हिय आसन मिल्यो जगन्माता पद पायो।
लखे जीव श्रीहीन कृपा करि तेज बढ़ायो॥
विधि, हर, सुर, मुनि, ऋषि सबहिं, मंत्र पढ़हिँ विनती करहिं।
नाचैं मिलि सुरसुन्दरी, विविध बाद्य विधिवत बजहिं॥

तब पुनि मथ्यो समुद्र बारुनी कन्या निकसी।
हरि असुरनिकूँ दई पाइ तिनिकूँ सो हरसी॥
घमर घमर सब मथैं भये पुनि पुरुष पुरातन।
अमृत कलशकूँ लिये विष्णुके अंश सनातन॥
सुन्दर सौम्य शरीर सुभ, देवनिकूँ देखें बिहँसि।
मुखपै लटकैं लट मनहुँ, अहि शिशु पीवें सुधा शशि॥

धन्वन्तरि भगवान भये भक्तनि सुखदाई।
कुंडल मंडित करन हृदय बनमाल सुहाई॥
हरषे दानव दैत्य दौरिकें देखें पुनि पुनि।
गुन गावें गन्धर्व पढ़ैं मंत्रनिकूँ ऋषि मुनि॥
अजितेन्द्रिय अति ई असुर, अमृत निरखि व्याकुल भये।
आव गिन्यो नहिं ताव कछु, छीनि अमृतकूँ भगि गये॥

देवनिके मुख फक्क परे अतिशय घबराये।
कहि कहि सुन्दर बचन अजित सब विधि समुझाये॥
ठगिकें छीनूँ अमृत अंतमहँ सींग दिखाऊँ।
चिन्ता कछु मति करो पेट भर तुमहिँ पिआऊँ॥
सुरनि सान्त्वना दई पुनि, अन्तरहित श्रीहरि भये।
मैं पीऊँ तू पिये कस, असुर अमृत हित लड़ि गये॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थांशमें रत्नोत्पत्ति नामक
पञ्चम अध्याय समाप्त।

अथ षष्ठोऽध्यायः

[६]

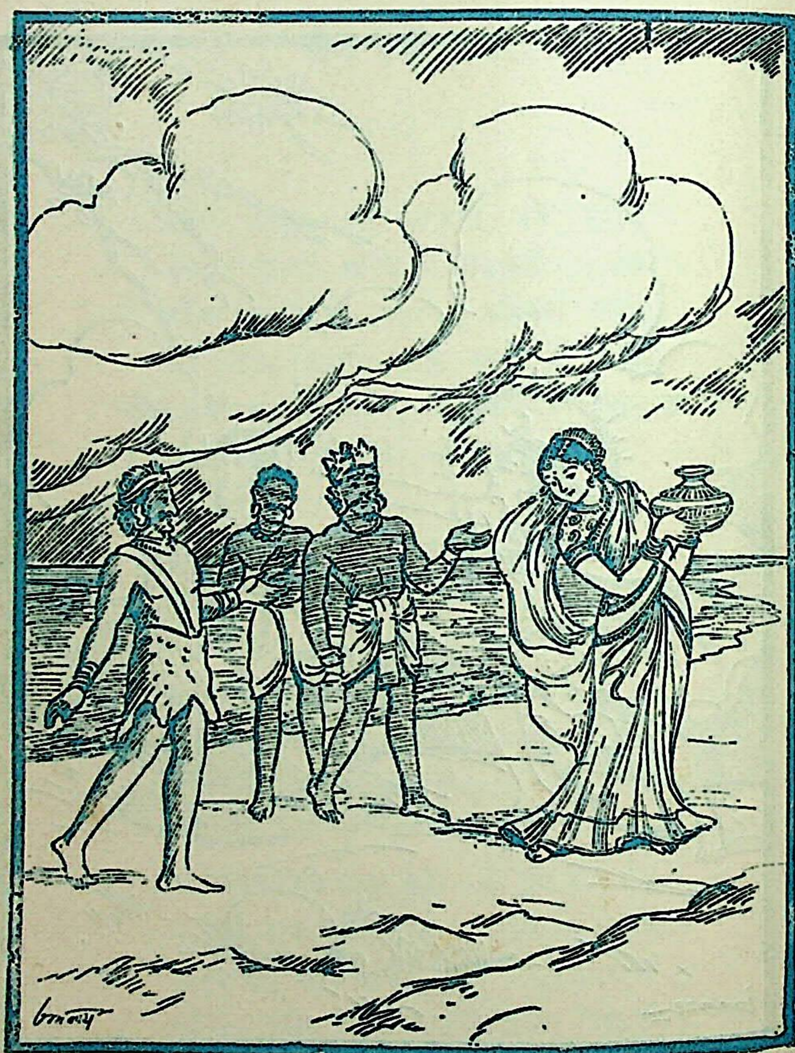
असुरनि मोहन हेतु मोहिनी बने मुरारी।
पँचरँग चूनरि ओढ़ि नासिकामहँ नथ धारी॥
लहँगा धारीदार हरी-सी पहिनी चोली।
करि सोलह शृंगार नारि सम बोलें बोली॥
नील कमल सम श्यामरँग, अँग अँगमहँ यौवन उठनि।
हंसगमनि अनुपम हँसनि, लीलायुत चितवनि चलनि॥

कारे कुंचित केश भालपै बेंदी मनहर।
नयन, नासिका, गंड अंग सब अतिशय सुन्दर॥
बस्त्राभूषण धारि चली यौवन मदमाती।
कंदुक क्रीड़ा करति फिरति इत उत अलसाती॥
सुन्दरता साकार है, शोभा भई सजीव मनु।
असुर मृगनिकूँ फाँसिवे, ब्याधिनि बिहँसति चली जनु॥

आये सब मिलि असुर कहें—को तुम का नामा।
को पति काकी नारि फिरहु अस कस वन श्यामा॥
अमृत हेतु हम लरहिँ हमारी रार मिटाओ।
बटवारो करि देउ यथामति अमृत पिआओ॥
सुनि हँसि बोली मोहिनी, कश्यपसुत सिर्री भये।
मम वेश्याके रूपपै, च्यौं मदमाते है गये॥



शिवजी और मोहिनी पृ० २२४



ठगिनी मोहिनी पृ० ३२७

बालाकी सुनि बात बढ़्यो बिश्वास सबनिकूँ।
अमृत कलशकूं लाइ तुरत दै दीयो तिनिकूँ॥
तिरछी चितवन निरखि बिहँसि बोली बर बानी।
कहियो फिरि मति कछू, करौंगी हौं मनमानी॥
सब बोले—परमेश्वरी, हमकूँ सब स्वीकार है।
तुम जो चाहौ सो करौ, मार तुम्हारी प्यार है॥

हाव भाव बर कुटिल कटाच्छनितैं मन मोहै।
बैंणी झोटा खाइ कलश करमहँ शुभ सोहै॥
भूलि न जावें भूप! फिरै जो भामिनि सुन्दर।
नाहिं कामिनी अन्य स्वयं मायावी नटवर॥
असुर मोहिनीने ठगै, अमृत पिआयो सुरनिकूँ।
समुझि सकै को जगत महँ, तिरियनि के चक्करनिकूँ॥

राहु समुझि हरि कपट देव बनि रवि शशि ढिँग गई।
बैठ्यो पीयो अमृत जानि मार्‌यो प्रभु तबई॥
राहु केतु द्वै अमर भये ग्रह संग बिराजैं।
नवग्रह तबतैं भये असुर सुरवत् बनि भ्राजैं॥
अमृत सुरनिकूँ प्याइकैं, असुरनि सींग दिखाइकैं।
त्यागि मोहिनी रूपकूँ, बनै पुरुष पुनि आइ कैं॥

ठगिया है यह बिष्णु समुझि पुनि दैत्य रिस्याने।
खिसियाये करि कोप अस्त्र देवनिपै ताने॥
अमृत हेतु इक काल कर्म सबने सम कीयो।
कोरे दानव रहे अमृत देवनिने पीयो॥
हरि हिय धरि श्रद्धा सहित, कर्म करैं जे भक्तितैं।
उत्तमल फ पावैं अवसि, मनमोहनकी शक्तितैं॥

अबला रूपी परम प्रबल माया है भारी।
मोहे सुर अरु असुर इन्द्र ब्रह्मा त्रिपुरारी॥
मित्र शत्रु बनि जायँ नृपति सर्बस्व गँवावैं।
सहज प्रेम तजि बन्धु नारिहित लरि मरि जावें॥
पुरुषनि नारायन लखैं, नारिनिकूँ लक्ष्मी गनहिँ।
ते साधारन नर नहीं, कवि तिनकूँ हरिही भनहिं॥

जग रक्षाके हेतु बिष्णु अवतारनि धारैं।
भक्तनिको करि त्राण दुष्ट दैत्यनिकूँ मारैं॥
ऊँच नीच लघु ज्येष्ठ भेद उनमहँ कछु नाहीं।
कच्छ मच्छ नर नारि कबहुँ सूकर बनि जाहीं॥
शिव स्वरूप मङ्गलभवन, जीव मात्रके सुहृद हरि।
करैं बिश्व कल्यान नित, बिबिध भाँतिके वेष धरि॥

सुन्द और उपसुन्द बन्धु दोऊ अति प्यारे।
एक प्रान द्वै देह होहिं कबहूँ नहिं न्यारे॥
उग्र तपस्या करी कठिन वर बिधितैं पाये।
जीते तीनहु लोक स्वर्गतैं अमर भगाये॥
बिश्वबिजय करि बिषय सुख, महँ दोऊ ई फँसि गये।
मृत्यु गर्तमहँ गर्बतैं, असुर मोहबश धँसि गये॥

कामी दैत्यनि हेतु सुघर बिधि बधू बनाई।
खलनि फँसावन रूप जाल लै भामिनि आई॥
मेरी मेरी करत परस्पर भिड़े प्रेम तजि।
मरे नारिके हेतु लड़े दोऊ ही सजि बजि॥
करैं कर्म हरि भावतैं, जीवमात्रकूँ होहिं सुख।
स्वार्थ हेतु श्रम जे करैं, ताको ध्रुव परिणाम दुख॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें मोहिनी चरित नामक
छठवाँ अध्याय समाप्त

अथ सप्तमोऽध्यायः

[७]

अमृत पान सुर कर्यो असुर मिलि लरिवे आये ।
अमर सबल सुर भये न पीछे पैर हटाये ॥
दोऊ ही रनसूर परस्पर शस्त्र चलावैं ।
नाना वाहन चढ़े युद्ध कौशल दिखलावैं ॥
गुत्थम गुत्था ह्वै गई, मारो काटो मचि गई ।
कटि काट सिर वसुधा भरी, सरिता शोणितकी भई ॥

चढ़िकें दिव्य विमान विरोचन सुत बलि आये ।
इत ऐरावत चढ़े शचीपति परम सुहाये ॥
निज निज शङ्ख बजाइ सुरासुरपति हरषावत ।
दिव्य अस्त्र लै भिड़ैं बज्र अरु गदा घुमावत ॥
युद्ध इन्द्र बलिको लख्यो, सब जोड़ी खोजन लगे ।
वीर हृदय उमगन लगे, कायर रन तजिके भगे ॥

तारक संग कुमार मयासुर सँग शिल्पी सुर ।
वरुण हेतितैं लड़ैं त्रिपुररिपु सँग जम्भासुर ॥
त्वष्टा शम्बर संग सूर्यतैं लड़ैं विरोचन ।
अपराजित सँग नमुचि वृहस्पतितैं इकलोचन ॥
वृषपरवा सुर वैद्य सँग, राहु चन्द्रमातैं लड़ैं ।
महिषासुर सुरमदन सँग, सौ बलिसुत रवितैं भिड़ैं ॥

नरकासुर शनि संग कामके सँग दुरमरषन।
क्रोधवशनितैं करैं युद्ध निर्भय है शिवगन॥
अष्टवसुनितैं कालकेय मुनि सँग बातापी।
देवी काली संग लड़ैं खल शुम्भ प्रतापी॥
एक दूसरेतैं लड़ैं, छोड़ि प्राणके मोहकूँ।
छोड़ि सकैं नहिं देवहू, सहज रिपुनिके द्रोहकूँ॥

बलि सुरपतितैं लड़ैं करैं बाननिकी वृष्टी।
छूटत अस्त्र अमोघ प्रलय होगी जनु सृष्टी॥
शतक्रतु मारन हेतु विविध विधि अस्त्र चलाये।
बार न बाँको भयो विपतितैं विष्णु बचाये॥
दैत्यराज ढिंग युक्ति जब, कोई नहिँ बाकी बची।
तब मायावी असुरने, अति अद्भुत माया रची।

माया निर्मित अंधकार सब जगमहँ छायो।
विद्युत चमकै तीक्ष्ण बिना ऋतु घन घिरि आयो॥
नभतैं बरषैं सर्प व्याघ्र सिंहादिक तरजैं।
राक्षस प्रेत पिशाच भूतगन घूमैं गरजैं॥
चंडी मुंडी कालिका, लै त्रिसूल घूमत फिरत।
मारौ काटो सुरनिकूँ, डाँइन करकस रव करत॥

माया निरमित जन्तु जगतमहँ चहूँदिशि छाये।
निरखी माया प्रबल आसुरी सुर घबराये॥
अन्य शरन नहिं लखि, शरन श्री हरिकी लीन्हीं।
ह्वै कें परम अधीर विनय देवनि मिलि कीन्हीं॥
प्रभु प्रकटे माया नसी, करी कृपा करुनायतन।
मनमोहनकी माधुरी, निरखि भये सुरगन मगन॥

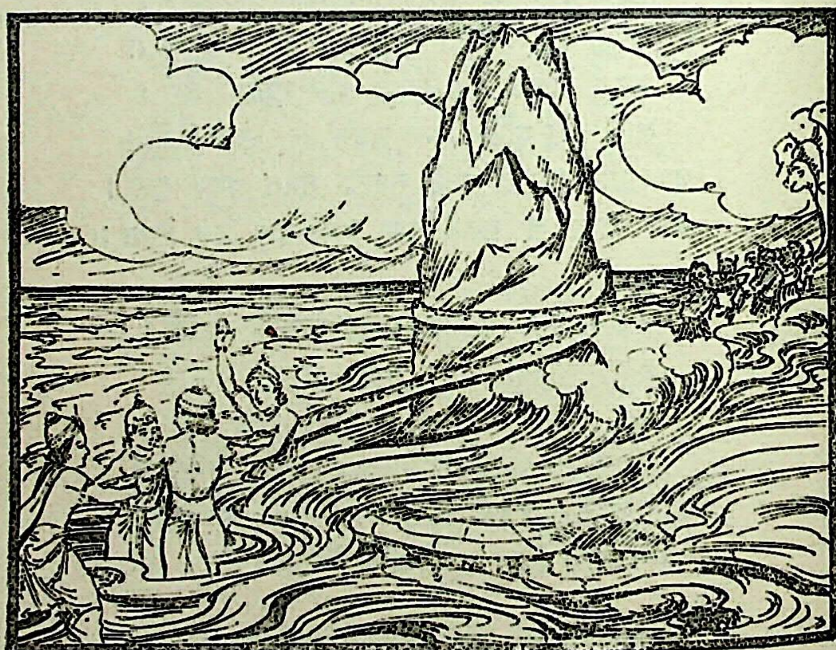
कालनेमि लखि विष्णु सिंह चढ़ि लरिबे आयो।
मार्यो तकि तिरशूल असुर यमसदन पठायो॥
पुनि माली अति बली सुमाली माल्यवान जब।
अस्त्र शस्त्र लै आइ करैं घनघोर युद्ध सब॥
हरि संहारे देवरिपु, सद्गति शत्रुनिकूँ दई।
अति प्रसन्नता सुरनिकूँ, असुरनिके हृयतैं भई॥

वज्रपाणि देवेन्द्र लड़न पुनि बलि सँग आये।
अरिकूँ सम्मुख लख्या बहुत कटु बचन सुनाये॥
मार्यो तकिकें वज्र गिर्यो बलि मूर्छित ह्वैकें।
लखि बलि मूर्छित जम्भ लड़न सर आयो लैकें॥
जम्भ मारि सुरपति दयो, नमुचि सुनत आयो तुरत।
अस्त्र शस्त्र लै युद्धमें, रण दुर्मद इत उत फिरत॥

नमुचि, पाक, बल असुर बान मिलिकैं बरसाये।
इन्द्र, सारथी अश्व ढके सुरगन घबराये॥
इन्द्र निकसि बल पाक वज्रतैं दोऊ मारे।
मरै नमुचि जब नहीं गिरानभ बचन उचारे॥
आर्द्र शुष्क तजि हनौ रिपु, वज्र फैनमय कर्यो हरि।
नमुचि शीश छेदन कर्यो, हृदय विष्णुको ध्यान धरि॥

जीते देवनि शत्रु दैत्य दानव घबराये।
ब्रह्मा बाबा डरे तुरत नारन बुलवाये॥
कह्यो जाइकें सुरनि करौ उपरत तुम रनतैं।
विधि आज्ञा सिर धारि आइ बोले देवनितैं॥
अमृत पियौ जय श्री लही, करी कृपा श्री अजित अति।
आयसु विधि मानो करो, दैत्यनि को संहार मति॥

मुनि वचननिकूँ मानि युद्धतैं विरत भये सुर ।
जयको शंख बजाय इन्द्र हरषित पहुँचे पुर ॥
बलि सँग मृत सब असुर लाइ इत शुक्र जिवाये ।
यदपि पराजित भये तदपि नहिँ बलि सकुचाये ॥
देवासुर संग्राम अरु, क्षीरसिन्धु मन्थन कथा ।
सुनहिँ पढ़हिँ जे प्रेमतैं, तिनकूँ नहिँ व्यापै व्यथा ॥



[देवता और असुरों द्वारा समुद्र मंथन]

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थांश में देवासुरसंग्राम नामक सप्तम अध्याय समाप्त ।

अथ अष्टमोऽध्यायः

[८]

श्रीपशुपति जब सुनी बने हरि नरतैं नारी।
रूप मोहिनी लखन भई उत्कंठा भारी॥
चढ़े बैलपै लई संग गिरिराजकुमारी।
पहुँचे हरिपुर हरषि कामरिपु हर त्रिपुरारी॥
करि बिनती हँसि हर कहैं, नाथ! बात अदभुत सुनी।
मोहन रूप दुराइकैं, आपु बने प्रभु मोहिनी॥

हरि हँसि बोले—देव! भये च्यौं ऐसे उत्सुक।
असुर अमृत लै भगे कर्यो तब मैंने कौतुक॥
रूप मोहिनी धर्यो आँधरे दैत्य बनाये।
सुर संतोषित करे प्याइकैं अमृत छकाये॥
इच्छा उत्कट उमापति, तौ पुनि तुमहिँ दिखाउँगो।
सरस मोहिनी रूपकी, झाँकी अबहिँ कराउँगो॥

अन्तरहित हरि भये तुरत हर निरखैं इत उत।
उत्सुकता अति प्रबल प्रेमतैं चहुँ दिशि चितवत॥
इतनेमें ई लखी नारि उपबनतैं आवत।
कंदुक क्रीड़ा करत कपरदी चित्त चुरावत॥
दमकै सौदामिनी सरिस, कटि तटपै अति छीन पट।
पीन पयोधर भारतैं, नमित फिरत सरबर निकट॥

पग युग अटपट परत उदर कृश नमत निरंतर ।
कंदुक श्रमतैं श्वेद बिन्दुयुत मुख अति सुन्दर ।।
अलकनि पलकनि और कपोलनिकी झलकनिपै ।
छटकि सरसता रही भामिनीके अंगनिपै ।।
तिरछी चितवनिते लखे, भूलि अपनपौ शिव गये ।
छाँड़ि शील संकोच सब, मृगनयनी सँग चलि दये ।।

आवत देखे शम्भु चली द्रुत गति मुसुकावति ।
सकुचि सहमि हँसि चलत मनहुँ मग रस बरसावति ।।
गाय वृषभ उन्मत्त फिरै करिणी सँग जनु करि ।
खिसके बस्त्र सम्हारि भगै पुनि देखै फिरि फिरि ।।
बैणी झोटा खाइ जनु, लता चढ़ी नागिनि हिलै ।
हार हृदयको करन हित, हर सोचें कैसे मिलै ।।

बढ़े बेगतैं केश पास पकरे त्रिपुरारी ।
लीन्हें हृदय लगाय सहमि सकुची सुकुमारी ।।
हर हिय नभ हरि-बदन इन्दु सम शोभा पावै ।
इत ये पुनि पुनि कसैं मोहिनी बिबस छुड़ावै ।।
बिखरी अलकावलि सुघर, झूमत लागै अति भली ।
बाहुपाशतै पृथक ह्वै, तुरत तहाँतै भगि चली ।।

चली मोहिनी भागि उमापत्ति दौरे परकन ।
नदी सरोवर शैल फिरैं दोऊ बन उपबन ।।
ऋषि मुनि आश्रम जाइ दरश दैकरैं कृतारथ ।
हरि हर दरशन होहिं यही जग साँचो स्वारथ ।।
तेज पतित पृथिवी भया, स्वर्ण रूप्य आलय भये ।
समुझी माया मोहिनी, निवृत तुरत हर ह्वै गये ।।

तब बोले भगवान—मोहिनी देखी शङ्कर।
कहैं शम्भु—दुष्वार तुम्हारी माया प्रभुवर ॥
है दुस्त्यज दुष्पार कहैं हरि माया मेरी।
अब न पराभव करैं होहि माया तब चेरी ॥
चन्द्रमौलि ! चितपै चढ़ै, चपलाकी चितवन चपल।
तो फिर को थिर रहि सकै, होहि चाहिँ जितनो सबल ॥

पुनि हरितैं ह्वै विदा उमा सँग चले उमापति।
मगमहँ बोले—प्रिये ! लखी हरि मायाकी गति ॥
मैं हूँ मोहित भयो जीव का करें विचारे।
वे बचि जावें अवसि होहिँ जिन श्याम सहारे ॥
आये शिव कैलाश पुनि, वृत्त मुनिनि सन सब कह्यो।
परम मनोहर मोहिनी—को चरित्र पूरन भयो ॥

इति श्रीभागवत चरितके चतुर्थाहमें शिवमोहिनी चरित नामक अष्टम अध्याय समाप्त।

(मासिक पारायण पन्द्रहवें दिनका विश्राम)

अथ नवमोऽध्यायः

[९]

छप्पय—बिवस्वान सुत भये सातवें मनु सुखदाई।
बामन बनि भगवान ठगे बलि देह बढ़ाई॥
संज्ञा छाया संग ब्याह दिनकरने कीन्हों।
श्राद्धदेव यम, यमी भये संज्ञाके तीनों॥
छायाकी तपती सुता, सुत सावर्णी शनैश्चर।
कर्‌यो सौतिया डाह जब, समुझे तब सब दिवाकर॥

संज्ञा छाया छोड़ि गई बन बडवा बनिकें।
दुखित दिवाकर भये ससुरतैं सब कछु सुनिकैं॥
बडवा बनिकें बैद्य अश्विनी कुमर जनाये।
संज्ञाकूँ लै संग ससुर ढिँग सूरज आये॥
ससुर कर्‌यो कछु तेज कम, रवि द्वादश ह्वै गये तब।
विवश्वान को बंश यह, राजन्! तुमतैं कह्यो सब॥

अष्टम मनु सावर्णि होहिंगे सार्वभौम हरि।
नवें दक्षसावर्णि प्रकट हरि ऋषभ नाम धरि॥
दशम ब्रह्मसावर्णि विश्वसेनहु होंगे बिभु।
एकादश सावर्णि धर्म मनु धर्मसेतु प्रभु॥
रुद्रसवर्णी बारवें, अंग सुधामा श्यामकें।
देवसवर्णी तेरवें, योगेश्वर हरि नामके॥

चौदहवें सावर्णिइन्द्र मनु होहिं तपस्वी।
सत्रायणसुत वृहद्भानु हरि होहिं यशस्वी॥
यों भविष्य अरु भूत कहे ये मन्वन्तर सब।
इन सबको का काज, करूँ ताको बरनन अब॥
मन्वन्तरको पुण्यमय, सुनैं कथा जे प्रेमतैं।
हरिपद पावैं करैं जे, कथा कीरतन नेमतैं॥

मन्वन्तर पर्यन्त करैं पालन मनु जगकूँ।
सब सप्तर्षि समूह बतावैं श्रुतिके मगकूँ॥
पृथिवी पालन करैं होहिं जे मनुके बंशज।
लैकें हरि अवतार करैं पालन सुरपति अज॥
पावैं सब ही देवगन, भाग यज्ञ अरु हवनमहँ।
सुरपति बनि देवेन्द्र हू, पूजित होवें सुरनिमहँ॥

सिद्ध रूप धरि करैं ज्ञान उपदेश निरन्तर।
कर्मकांड बिस्तार करैं जगमहँ है ऋषि बर॥
योगेश्वरको रूप बनावैं ज्ञान सिखावैं।
यों सबकूँ दै ज्ञान जगततैं अभय बनावैं॥
हरि माया अति प्रबल है, बरनन को नर करि सकै।
हरि बिनु या अज्ञानकूँ, दूसर नर नहिं हरि सकै॥

कहैं परीक्षित—देव! बने क्यौं बामन श्री हरि।
लघु बनि भिक्षाकरी बढ़े क्यौं पुनि प्रभु छल करि॥
बोले शुक—सुनु भूप! पराजित दैत्य भये जब।
अस्ताचल लै जाय जिवाये शुक्र असुर सब॥
गुरु सेवा ई अभ्युदय—को कारन बलि जानिकें।
शुक्रहिँ सौंप्यो राज्य तनु, इष्ट देव सम मानिकें॥

सेवातैं सन्तुष्ट शुक्र इक यज्ञ रचायौ ।
नाम विश्वजित बिदित बेदबिद विप्र करायौ ॥
पूजित ह्वैकें अग्नि दिव्य सुन्दर रथ दीन्हों ।
द्वै अक्षय तूणीर कवच धनु अर्पण कीन्हों ॥
दीन्हीं माला पितामह, दिव्य शंख गुरुने दयो ।
यों रनको सामान सब, एकत्रित बलिपै भयो ॥

सजि सेना सुर विजय हेतु नृपवर चलि दीन्हें ।
सुरपुर घेर्‌यो हृदय रिपुनिके कंपित कीन्हें ॥
सुर समृद्धि अति रम्य हृदय इन्द्रिनि सुखदाई ।
बन उपबन बर वृक्ष चहूँ दिशि शोभा छाई ॥
झुकि झूमैं चूमैं अवनि, सुरतरु फल दल सुमनयुत ।
मधुकर खग कलरव करहिँ, सुर ललना झूमत फिरत ॥

श्यामा सुभगा सदा सुहागिनि बिहरैं बाला ।
केशपाशमहँ ग्रथित दिब्य सुमननिकी माला ॥
तिनतैं लै आमोद अनिल मग सुरभि बखेरै ।
बनि परिखा नभ गंग अमरनगरीकूँ घेरै ॥
नहिँ प्रबेश पापी करहिं, पुण्यप्राप्त जहँ भोग सब ।
गुरु आशिषतैं सुरपुरी, घेरी असुरनि आइ तब ॥

सुरपति गुरु ढिंग जाय कहैं—गुरु ! असुर बढ़े कस ।
ओज तेज उत्साह बढ़्यौ क्यौं असुरनि बल अस ॥
बोले सुरगुरु—करी कृपा गुरुने असुरनिपै ।
हारैं हरि बिनु नहीं अबहिं ये स्वर्ग अवनि पै ॥
तातैं तजिकै स्वर्गकूँ, करो प्रतीक्षा कालकी ।
मेटि सकै नहिं कबहुँ नर, लिखी रेख जो भाल की ॥

गुरु आयसु सिर धारि अमरगन छाँड़ि स्वरगसुख ।
कामरूप धरि फिरैं अवनिपै सहैं विविध दुख ॥
सुरपुर सूनों समुझि असुर अधिकार जमायौ ।
बलिकूँ शुक्राचार्य इन्द्र पदपै बैठायौ ॥
अश्वमेध शत बलि करै, इन्द्रासन ध्रुव होइ तब ।
भृगुवंशी द्विज सोचि जिह, करवावैं मिलि यज्ञ सब ॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें बलि बिजय नामक नवम अध्याय समाप्त ।



अथ दशमोऽध्यायः

[१०]

छप्पय—अमर अवनिपै फिरैं कपट तनु धरिकैं इत उत।
अदिति सुतनि दुरदशा समुझि अति दुःख भयो चित॥
आये कश्यप जबहिं लखी घर अधिक उदासी।
पत्नी तनु अति छीन मलिन जनु भूखी प्यासी॥
मुनि पूछी कुशलात जब, अदिति दुखित बोली बचन।
इन दैत्यनि तव अमरसुत, करे पदच्युत तपोधन॥

मम सुत यश ऐश्वर्य हीन असुरनिने कीये।
दुष्ट दैत्य मिलि दुसह दुःख देवनिकूँ दीये॥
सुरपुरकूँ सुर त्यागि फिरें सब मारे मारे।
साधारन जन सरिस भूमिपै रहें बिचारे॥
सब समर्थ सर्वज्ञ प्रभु, आपु प्रजापति महामुनि।
नाथ! कृपा ऐसी करैं, पावैं सुत ऐश्वर्य पुनि॥

प्रिया बचन सुनि भये चकित कश्यप मुनि ज्ञानी।
पुत्र शोकतें दुखित अदितिकी पीड़ा जानी॥
सोचें—माया प्रबल बिष्णुकी बिश्व नचावति।
मिथ्या मति चित धारि नारि पति पुत्र बतावति॥
सोचि समुझि बोले बचन, कृष्ण कृपा सब करिङ्गे।
सेवातें सन्तुष्ट है, हरि हियगत दुख हरिङ्गे॥

अदिति कहे—हे देव ! कृपा करि कष्ट मिटाओ ।
व्रत मन इच्छा पूर्ण करन हित तुरत बताओ ॥
कश्यप बोले—करो पयोव्रत प्रभु आराधौ ।
हरिकूँ हियमहँ धारि नियम व्रतके सब साधौ ॥
अति उत्कंठित अदिति ह्वै, बोली—नाथ ! बताइ दैं ।
कहा करूँ त्यागूँ कहा, विधि विधान समुझाइ दैं ॥

बोले कश्यप—है जीवन जा जगमहँ छिनको ।
हरि आराधन करो पयोव्रत बारह दिनको ॥
केवल पीकें दूध करो पूजन आराधन ।
इच्छा पूरन हेतु यही सर्वोत्तम साधन ॥
वित्तशाठ्यकूँ त्यागिकें, व्रत श्रद्धातें जे करहिं ।
सिद्ध करैं हरि काज सब, अवसि दुःख दारिद हरहिं ॥

हरिपूजन अरु हवन विप्रभोजन बारह दिन ।
कथा कीरतन करै नृत्य बादन अरु गायन ॥
जा विधितैं जे भक्ति सहित श्रीहरिकूँ सेवैं ।
प्रभु प्रसन्न ह्वै इष्ट वस्तु निश्चय करि देवैं ॥
अदिति सुने व्रतके नियम, अति प्रसन्न मनमहँ भई ।
सर्वयज्ञमय पयोव्रत, विधितैं करिवे लगि गई ॥

निरखि अदिति व्रत नियम भये अति तुष्ट गदाधर ।
भये प्रकट अखिलेश चतुरभुज विष्णु मनोहर ॥
सम्मुख श्रीपति लखे प्रेममहँ बिह्वल माता ।
परी दण्डवत भूमि निरखि हरि भवभयत्राता ॥
अति उत्कंठित भरित हिय, लज्जातें पुनि झुकि गई ।
विनय करन इच्छा भई, गद्गद बानी रुकि गई ॥

पुनि सुरमातु सम्हारि अपनपौ बोली बानी ।
हे अनादि ! अखिलेश ! अखिलपति ! इच्छादानी ।।
हे सुररक्षक देव ! विष्णु ! अज भंजन खल दल ।
हे यज्ञेश्वर ! यज्ञरूप ! शरणागतवत्सल ।।
निरखैं कृपा कटाक्ष तैं, नासै तिनकी सब व्यथा ।
सिद्ध मनोरथ करैं पुनि शत्रु, विजयकी का कथा ।।

हँसि हरि बोले—मातु बात सब हियकी जानी ।
कीन्हें सुर श्रीहीन बढ़े दिति सुत अभिमानी ।।
स्वर्गहीन सुत भये बिजय चाहो तुम तिनिकी ।
मिलै स्वर्ग ऐश्वर्य वृद्धि होवै देवनिकी ।।
यद्यपि असुर अजेय हैं, गुरुसेवामहँ निरत सब ।
होहिं न निष्फल मम भजन, तदपि करहुँ कछु यत्न अब ।।

निज महत्त्वकूँ त्यागि बनूँ लहुरो देवनितैं ।
तब सुत बनिकें करूँ कपट छल इन दैत्यनितैं ।।
कश्यप तपमय बीर्य माँहिँ हौं होहुँ अवस्थित ।
पति परमेश्वर समुझि करो सेवा सब समुचित ।।
काहूतैं कहियो न जिह, यौं मोतैं प्रभु कहि गये ।
यो दैकें वरदान सिख, श्रीहरि अन्तरहित भये ।।

अदिति गर्भमें कछुक दिवसमहँ हरि अज आये ।
दम्पति उर आनन्द भयो सुर सिद्ध सिहाये ।।
जानि गर्भगत बिष्णु आइ बिधि विनती कीन्हीं ।
शुभ मुहूर्त शुभ लग्न स्वतः सब शिव करि दीन्हीं ।।
भादौं शुक्ला द्वादशी, अभिजितयुत अति दिन परम ।
अज अविनाशी अदिति घर, लीयो बामन बनि जनम ।।

इति श्रीभागवत चरितके चतुर्थाहमें श्रीवामनप्रादुर्भाव नामक दशम अध्याय समाप्त ।

अथ एकादशोऽध्यायः

[११]

छप्पय—रूप चतुर्भुज गदा शङ्ख चक्रादिक धारे।
सुन्दर श्याम शरीर कमलमुख कच घुँघुरारे॥
कर कंकन गल माल करधनी कटिमहँ सोहै।
मणि मुक्ता मय मुकुट मुनिनिके मनकूँ मोहै॥
दरशन करि कश्यप अदिति, सहसा भौचक्के भये।
लीलामहँ बाधा लखी, पुनि बामन बटु बनि गये॥

जात कर्म संस्कार भये पुनि बामन बाढ़े।
घुटुअनके बल चलैं, लगे पुनि ह्वैवै ठाढ़े॥
पाँच बरसके भये पिता उपनयन करायौ।
रवि सावित्री दई जनेऊ गुरु पहिनायौ।
कश्यप दीन्हीं मेखला, अजिन अवनि उत्तम दयो॥
मातातैं कौपीन पट, दण्ड चन्द्रमातैं लयो॥

धन कुबेरने दयो पात्र भिक्षाको भारी।
माँ जगदम्बा उमा बिहँसिकें भिक्षा डारी॥
लोभी बामन बने लाभतैं लोभ बढ़ायो।
जग ठगिवेके हेतु कपट को वेष बनायो॥
अश्वमेघ नृप बलि करैं, चले ब्रह्मचारी सुनत।
बिश्वभार लादैं अखिल, पृथिवी पग पगपै नमत॥

दण्ड कमण्डलु लिये ओढ़ि तनपै मृगछाला ।
पहिन मेखला मूँज चले बलिकी मखशाला ।।
तेजपुंज सम लखे विप्र बामन ब्रतधारी ।
सहसा सबई भये खड़े लखि बटु लटधारी ।।
भये प्रभावित बिप्रगन, अधिक मोद मन बलि भयो ।
पद पखारि पुनि अर्घ्य दै, बैठनकूँ आसन दयो ।।

बिधिवत पूजाकरी हृदय फूले न समाये ।
पादोदक सिर धारि पान करि अति हरषाये ।।
रानी पुनि पुनि लखैं रूपपै बलि बलि जाईं ।
चरनामृत करि पान कहैं—गङ्गा घर आईं ।।
तनु पुलकित मन मोदयुत, पात्र निरखि अतिशय मगन ।
बहु स्वागत सत्कार करि, दानी बलि बोले बचन ।।

कहो बिप्रसुत ! कृपा दासपै कीन्हीं कैसे ।
है अति दुरलभ दरश बिना कारन बटु ऐसे ।।
मेरे मन अनुमान आपु कछु माँगन आये ।
किन्तु निरखि द्विज भीर बाल मनमहँ सकुचाये ।।
मम ढिँग कछु न अदेय है, शङ्का तजि द्विजवर ! कहहु ।
अन्न, पान, धन, धान, पट, जो इच्छा सोई गहहु ।।

चाहो मनहर महल गुदगुदी सुखकर शैया ।
अथवा गज रथ अश्व दूधकी सूधी गैया ।।
या जस बौने आप बौनटी दुलहिनि चाहो ।
अबई करूँ बिबाह न मनमहँ बटु सकुचाओ ।।
बहु सम्पतियुत ग्राम अरु, जो चाहो सोई कहहु ।
अथवा मेरे महलमहँ, भूपति बनि द्विजवर रहहु ।।

सुनि नृप बलिकी बात विप्र कपटी सुख पायौ।
असुर फँसावन हेतु कपटको जाल बिछायौ॥
बूढ़े बाबा सरिस कहें—बलि! तुम बड़भागी।
क्यौं न होहि अस शील जहाँ भार्गव गुरु त्यागी॥
पिता विरोचन विप्र हित, प्रान दये प्रन तज्यो नहि।
भये भक्त प्रहलाद नर-हरि प्रकटाये कष्ट सहि॥

सत्यहीन अरु कृपन भये तुमरे कुल नाहीं।
असुर बंशको सुयश व्याप्त सबरे जगमाँहीं॥
कल्पवृक्षके सरिस भये पूर्वज तुमरे सब।
इच्छा पूरन करो सबनिकी तुमहू नृप अब॥
हिरनकशिपु हिरनाक्षहू, प्रपितामहँ तुमरे भये।
लड़े विष्णुतैं समरमहँ, नाम अमर जग करि गये॥

हिरण्याक्ष नहिँ समरमाँहिँ काहूतैं हार्यो।
बनिकें विष्णु बराह कपटतैं ताकूँ मार्यो॥
हरि हनि भये हताश पराजित आपुहिँ मान्यो।
बन्धु मृत्यु सुनि हिरनकशिपुने सर सन्धान्यो॥
चले विष्णुतैं लड़न हित, सोवततैं श्रीपति जगे।
देखि वीरके तेजकूँ, तजि शैया पुरतैं भगे॥

नहीं दुबकिबे जोग ठौर देख्यो श्रीपति जब।
धारि सूक्ष्मतनु असुर हृदयमहँ प्रविशे डरि तब॥
खोजे स्वर्ग पताल भूमिपै पतो न पायो।
समुझि भगोड़ो छोड़ि लौटि अपने घर आयो॥
तुम उपजे तिहि बंशमहँ, विश्वविदित रणधीर हो।
याचक इच्छा कल्पतरु, सब दानिनिमहँ वीर हो॥

राजन् ! तुमतैं तनिक भूमि हौं आयो याचन ।
केवल जपके हेतु लगै जामें सुख आसन ।।
दान ग्रहन अति अधम तऊ निर्वाह करन हित ।
लैवेमें नहिं दोष अधिक तृष्णा है निन्दित ।।
केवल अपने पाँइतैं, तीनि पैर पृथिवी चहूँ ।
अधिक लेउँ नहिं एक डग, सत्य सत्य भूपति कहूँ ।।

हँसि बलि बोले—वटो ! बात वृद्धनिवत भाखो ।
किन्तु स्वार्थमहँ बुद्धि तनिक बामन नहिँ राखो ।।
मोकूँ करि सन्तुष्ट तीनि पग पृथिवी भिक्षा ।
माँगी, मानों मिली नहीं स्वारथकी शिक्षा ।।
कपटी बटु बोले—बिभो, हौं लोभी बामन नहीं ।
तुरत देहु संदेह मन, फिर नाहीं करदैं कहीं ।।

इति श्रीभागवत चरितके चतुर्थांहमें वामन याचना नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।



अथ द्वादशोऽध्यायः

[१२]

दोहा—कपटी बामनको कपट, नहिँ समुझे बलिराज ।
दैंन तीनि डग भूमिमें, तिनि अति लागी लाज ।।

छप्पय—लै सुबर्ण जलपात्र कहैं बलि—अच्छा लीजे ।
शुक्र बीचमहँ रोकि कहैं—नृप ! भूमि न दीजे ।।
यह बटु बामन नहीं बदलिकें वेष बनायौ ।
कमलापति यह बिष्णु कपटतैं ठगिवे आयौ ।।
जब फैलावै पैर जिह, बटु बिराट बनि जायगो ।
राज्यभ्रष्ट असुरनि करै, अमरनि अधिप बनायगो ।।

धर्मभीरु बलि कहैं—गुरो ! क्यौं पाप कमावैं ।
दान धर्ममहँ व्यरथ आपु रोड़ा अटकावैं ।।
वैसे ही बटु सकुचि बहुत धन दान न चायें ।
उल्टी पट्टी तऊ आपु पुनि मोइ पढ़ायें ।।
भई कहावत सत्य यह, जो प्रसिद्ध जग बात है ।
बामन बामनकूँ लखै, कूकर वत गुर्रात है ।।

बोले शुक्राचार्य—व्यर्थ तू बात बनावै ।
धर्म मर्म बिनु लखे मोइ उपदेश सिखावै ।।
अर्थवृद्धि, यश, भोग, धर्म अरु स्वजन हेतु नर ।
करै द्रव्य व्यय सदाग्रहीको यह मग सुखकर ।।
अन्न वस्त्र बिनु नारि अरु, बालक भूखे घर मरैं ।
करैं दान यश हेतु जे, बुध तिनकी निन्दा करैं ।।

घरमहँ बालक नारि मातु पितु तजिकें भाई ।
बिनु पूछे जो दान करें सो पाप कमाई ॥
बोले बलि—गुरुदेव ! दान दै दीन्हों मनतें ।
अब कस झूठो बनूँ ब्रह्मचारी बामनतें ॥
कहिकै देऊँ दान नहिं, तो पीछे पछिताउँगो ।
दोषी हौं है जाउँगो, अन्त नरकमहँ जाउँगो ॥

सुनिकैं शुक्राचार्य कहैं—तू धर्म न जानें ।
धर्म तत्त्व अति गूढ़ विज्ञ नर ही पहिचानें ॥
हाँ देंगे, ये बचन; अर्थ व्यापकके द्योतक ।
सदा कहैं नहिं देहिं धर्म यशके ये शोषक ॥
बिनु बिचार दै देहिँ जे, ते पीछे माँगत फिरहिँ ।
ऐसे दाताकूँ सदा, भिक्षुक नित पीड़ित करहिँ ॥

नहीं सर्बथा करै न निज सर्बस्व गँमावै ।
भिक्षुक आवैं देइ कछू कछु टाल बतावै ॥
अपनी वृत्ति बचाय बित्त सम करै दान नित ।
लोक और परलोकमाँहिं राखै अपनो चित ॥
रक्षा तन धनकी करै, सदा सत्य बोले बचन ।
कहुँ असत्य बोले बिबश, है प्रसंगवस बिज्ञजन ॥

हँसीखेलमहँ और कामिनीक्रीड़ा माहीं ।
होहि जीविकानाश प्रान काहूके जाहीं ॥
निज प्रातनिके हेतु बिप्र गौ रक्षा होवै ।
तो विशेष नहिँ दोष सत्यकूँ यदि नर खोवै ॥
मातु पिता अति वृद्ध हैं, बालक अति अज्ञान हैं ।
जस तस प्राननिकूँ रखें, मुख्य देहमहँ प्रान है ॥

होहि स्वार्थ नहिं नाश काम सुखहू बचि जावै।
बाधा काहू भाँति जीविकामहँ नहिं आवै॥
होहि न अपयश जगतमाँहिँ कुत्सित कामनितैं।
गृहीधर्म है जिही शास्त्र सम्मत बचननितैं॥
हाथ पाँवकूँ बचानों, मूँजीकूँ टरकावनों।
कछु असत्य कछु सत्यतैं, अपनो काम चलावनो॥

सुनि बलि बोले बीर बचन गुरुतैं सकुचाई।
भगवन्! सुन्दर स्वार्थ सिद्ध हित नीति बताई॥
किन्तु लोभ बश देव! सत्यकूँ कैसे त्यागूँ।
कैसे रिपु ललकारि, युद्धतैं डरिकैं भागूँ॥
हाँ कहि ना करिबो नहीं, दितिकुलके अनुरूप जिह।
पिता प्रान द्विज हित दये, प्रन नहिं छाँड्यो पितामह॥

शिबि दधीचिने तजे प्रान दुस्त्यज हू परहित।
भूमि आदि अति तुच्छ भोग जगके जे परमित॥
नाशवान धन, धरा, बिश्वके सबहिं पदारथ।
अबिनाशी यश एक यही जग जीवन स्वारथ॥
सहज शत्रु सँग शूरता—सहित समरमहँ मरन है।
किन्तु पात्रकूँ प्रेमयुत, द्रव्य दैन अति कठिन है॥

यदि ये हैं भगवान बिष्णु सब जगके पालक।
बेष बदलि बिश्वेश बने बटु बौने बालक॥
तो चिन्ताकी कौन बात ये मखके स्वामी।
जो जे चाहैं करैं अखिलपति अन्तरयामी॥
सब साधनको यही फल, होहि कृष्ण पद सुदृढ़मति।
यह मेरो सौभाग्य अति, याचन आये बिश्वपति॥

विप्र वेषतैं दंड देहिँ वा मोकूँ मारैं ।
अथवा धन गृह राज्य छीनिकैं देश निकारैं ॥
दीयो जो कछु दान करौं नहिं फिरि हौं नाहीं ।
धन तो आवत जात रहै कीरति जगमाहीं ॥
चाहैं बामन विप्र हों, शत्रु होहिं अथवा सुहृद ।
देहुँ तीन डग भूमि अब, पग लघु हों अथवा बृहद ॥

लखि बलिकी हठ शुक्र क्रोध करि बोले बानी ।
अरे मंदमति ! मूर्ख ! अज्ञ ! शठ ! पंडितमानी ॥
साधारण द्विज भिक्षु मोइ निज आश्रित जानैं ।
करै उपेक्षा अधम बात मेरी नहिं मानैं ॥
जा तेरो ऐश्वर्य धन, छिनमहँ सब नसि जाइगो ।
गुरु आज्ञा अवहेलना—को फल अब तू पाइगो ॥

इति श्रीभागवत चरितके चतुर्थांहमें बलि शुक्राचार्य सम्वाद नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ।



अथ त्रयोदशोऽध्यायः

[१३]

भये देव प्रतिकूल भाग्यने पलटो खायो ।
कहाँ इन्द्रपन अटल करनहित यज्ञ रचायो ।।
गुरुने दीयो शाप पाप पूरबके प्रकटे ।
तऊ न विचलित भये दान दैकें नहिं पलटे ।।
अपने जानै जीव सब, कारज सुखकर ही करहिं ।
किन्तु दैववश होहिं फल, हाथ हवन करतहु जरहिं ।।

जल कुश लै संकल्प पढ़्यो भू बामन दीन्हीं ।
नन्हें नन्हें हाथ बढ़ाये वटु लै लीन्हीं ।।
अब पुनि बामन बढ़े लोभवश पग फैलाये ।
उनके तनमहँ भूमि दिशा नभ सबहिं समाये ।।
भुवन चतुरदश भूत सब, काल करम मनु इन्द्रसुर ।
बटु बामनके देहमहँ, चकित होहिं निरखहिं असुर ।।

शुक्र बचन प्रत्यक्ष भये वटु बामन बाढ़े ।
अद्‌भुत अनुपम रूप असुर सब निरखै ठाढ़े ।।
दंड कमंडलु त्यागि अस्त्र आयुध निज धारे ।
लखि विराटकूँ कँपैं असुर सब भयके मारे ।।
चक्रसुदरशन, धनुष, सर, गदा, खड्ग धारन किये ।
ढाल, शङ्ख, क्रीड़ाकमल, आठहुँ हाथनिमहँ लिये ।।

फूली जनु कनेर अष्ट कर शस्त्र विराजै।
अंगद कुंडल मुकुट मेखला अंगनि भ्राजै।
भ्रमर निकर गुञ्जायमान बनमाला सुन्दर।
मधु लोलुप मधु पियें गान कर मादक मधुकर ॥
लम्ब तड़ङ्गे बिश्वमय, बने बिष्णु वामन छली।
जब नापैं पगतैं महीं, सो शोभा अति ई भली ॥

सागर कानन शैल नदी, नद, सर निरझरिनी।
सात भूमि पाताल सहित सबरी यह धरनी ॥
बलिकी जहँ लगि भूमि नापि बामनने लीन्हीं।
फैलाये पग विशद पाद अन्तरगत कीन्हीं ॥
कायातें आकाशकूँ, अष्ट करनितें अष्ट दिशि।
गयो द्वितिय पद स्वर्गमहँ, जन तप सत्यहुमें प्रबिशि ॥

फोर्‌यो अंडकटाह चरन नख पार गयो जब।
वही सलिलकी धार कमण्डलु बिधि धारी सब ॥
बिष्णुपदी पुनि भई पखारे पद श्रीहरिके।
श्रीगंगाजी चलीं भूमिपै बहीं उतरिके ॥
शतयोजनपै बैठिकें, जे गंगा गंगा कहहिं।
ते नर पावें परम पद, भूखे नंगे नहिं रहहिं ॥

जग जननी माँ गङ्ग! अंग अँग सुख सरसावें।
मन पुलकित पयपान लहर लख हिय हरसावें ॥
पाप पहाड़ ढहाय पुण्यको पोत उठावैं।
तापै चढ़ि माँ! भक्त सहज भवनिधि तरि जावैं ॥
प्रभु पद-रज तुलसी सहित, ब्रह्म कमंडलुतें निकसि।
सब स्वर्गनि पावन करति, गिरि भू पुनि जलनिधि प्रबिसि ॥

द्वै डगतैं जग नापि बने पुनि हरि बटुबालक।
लखि छल सबई दैत्य भये क्रोधित पुरपालक॥
मारौ, यह द्विज नाहिं बिष्णु छलिया असुरारी।
स्वामीकूँ छलि ठगी सबहिँ सम्पत्ति हमारी॥
जीवित जान न पाइ जिह, अब यमपुरको मग गहै।
क्रोधित असुरनितैं बिहँसि, महा मनस्वी बलि कहै॥

अरे असुरगन! बात सुनो, मति शस्त्र चलाओ।
असमय लखि तुम तुरत लौटि रनतैं सब जाओ॥
समय सबल ही करै-करै दुरबल वह भाई।
काल जनित यह विपति, असुरकुलपै अब आई॥
मन्त्र, बुद्धि अरु दुर्गबल, अब न काम कछु करिङ्गे।
बनि बिराट बटु बिप्रवर, सरबसु हमरो हरिङ्गे॥

सुनिकें बलिकी बात लौटि सुररिपु सब आये।
बाद बिबाद न बढ़ै असुर पाताल पठाये॥
अच्युत आशय समुझि गरुड़ बलि बाँधे बरबस।
जगमहँ हाहाकार मच्यो हरि छीन्यों सरबस॥
चलित चित्त बलि नहिँ भये, हर्‍यो विष्णुने भुवन धन।
लखि लज्जित बलितैं बिहँसि, बटु बामन बोले बचन॥

हे दानिनिमहँ श्रेष्ठ! तीनि पग पृथिवी दीन्हीं।
प्रथम पादतैं स्वर्ग द्वितियतैं भू सब लीन्हीं॥
तीसर पगके हेतु अवनि कहुँ अनत बताओ।
करो प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं नरकनिमहँ जाओ॥
दान प्रतिज्ञा प्रथम करि, पुनि पूरी जे नहिं करहिं।
ते पापी पामर पुरुष, सब नरकनिके दुख सहहिं॥

कनक सरिस बलि बहुत दुसह दुख अनल तपाये।
परि न व्यथित बलि भये मनस्वी नहिँ घबराये॥
बोले—हे विश्वेश ! सत्यतें नहिं मुख मोरूँ।
तीन पैरकी करी प्रतिज्ञा ताहि न तोरूँ॥
तीसर पग मम सिर धरो, बिना बात बटु क्यौं लड़ौ।
दान वस्तुकी अपेक्षा, दाता तौ सब विधि बड़ौ॥

हो हरि माता पिता सुहृद सर्वस्व हमारे।
पकरि पितामह तरे पोत पदपदुम तिहारे॥
बन्धनतैं नहिं डरौं नरकतैं भय नहिं प्रभुवर।
स्वामी देवै दंड होहि सेवककूँ सुखकर॥
बैर भावतैं भक्ति करि, तरे असंख्यनि असुरगन।
जग सुख भोग्यो अंतमहँ, लह्यो परमपद त्यागि तन॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें बलिबन्धन नामक
तेरहवाँ अध्याय समाप्त।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

[१४]

छप्पय—बलि बामन बतराइँ भये प्रहलाद उदित रबि ।
अरु ननयन पट पीत कृष्ण तनु अति मनहर छबि ।।
निरखि पितामहँ नेह नीर बलि नयननि छायौ ।
पूजा कैसें करहिँ बँधे ही शीश नवायौ ।।
बलि सिकुर्‍यो संकोच बश, बामन हरि सन्मुख खरे ।
पुलकित तनु प्रहलाद जी, ह्वै प्रसन्न प्रभु पग परे ।।

पुनि बोले प्रहलाद–प्रभो ! यह अति भल कीन्हों ।
दयो इंन्द्रपद आपु आपु ही पुनि हरि लीन्हों ।।
धन बैभवमें कहा होहि तब चरननिमहँ रति ।
धन मदमहँ मदमत्त करैं नर अघ अति नितप्रति ।।
विनती करि प्रहलाद जो, पुनि कीयो चरननि नमन ।
तब विन्ध्यावलि बलिप्रिया, विनय सहित बोली बचन ।।

करता भरता और जगतके हरता तुम हरि ।
अश सहैं दुख व्यर्थ राज धनमहँ ममता करि ।।
का हम दीयो देव ! आपु आपनो स्वीकार्‍यो ।
यों कहि बैठी सती फेरि विधि बचन उचार्‍यो ।।
विधि बोले–विश्वेश बिभु, बलि सरबसु अरपन कियो ।
फिर उदार यश असुरकूँ, बंधन करि च्यौं दुख दियो ।।

विधिके सुनिकें बचन कहैं हरि हँसिके बानी।
ब्रह्मन्! तुम सर्वज्ञ वेदवित् पंडित ज्ञानी॥
जनम, करम, ऐश्वर्य, अवस्था अरु सुन्दर तन।
विद्या धन ये सबहिं प्रशंसित जगमें हैं गुन॥
इन सबमहँ मद रहतु है, धनमद अतिही प्रबलतम।
धनमदमहँ उनमत्त नर, नेत्र सहित हू अंध सम॥

अपने आगे धनी गनहिं नहिं काहू जनकूँ।
बढ़ै लाभतें लोभ पाप करि जोरै धनकूँ॥
तातैं जापै कृपा करहुँ हौं सब मदहारी।
नासूँ धन ऐश्वर्य बनाऊँ ताहि भिखारी॥
धन, पशु, पुत्र, कलत्र जे, करें बिघन हरि भजनमहँ।
देखि सकहुँ नहिं तिनहिं हौं, नासि लेउँ निज शरनमहँ॥

जे जन सब कछु त्यागि शरन मेरीमहँ आवें।
ते तजि सब अभिमान निरन्तर मम गुन गावें॥
जाति बरन अभिमान करें नहिं धनमहँ ममता।
परहितमहँ नित निरत तजें सब मद उद्धतता॥
त्यागि मान मद सबनिमहँ, निरखें श्री भगवान हैं।
सब अनर्थके मूल ये, मिथ्या ही अभिमान हैं॥

माया मोहित जीव जगतमहँ सुख दुख देखें।
किन्तु भक्त सबमाँहिँ निरन्तर मोकूँ पेखें॥
हरि जस राखें रहैं खवावें जो सो खावें।
राखें जहँ रहि जायँ बिष्णु बाँधें बँधि जावें॥
ऐसी जिनकी मति सदा, कृपा प्रतीक्षा नित करहिं।
परम अनुग्रहपात्र मम, ते भवसागरतें तरहिं॥

ब्रह्मन् ! बलिने जीति लई दुर्जय मम माया ।
अजर अमर ह्वै गई कीर्ति अरु इनकी काया ॥
धन सम्पतितैं हीन बँधे बन्धनमहँ भूपति ।
करे तिरस्कृत सुरनि यातना हू दीन्हीं अति ॥
दयो भयङ्कर शाप गुरु, जाति बन्धु सब तजि गये ।
छल करिकें सरबसु हर्‌यो, तोऊ बिचलित नहिं भये ॥

यों बिधिकूँ समुझाइ कहैं बलितैं बामन हरि ।
इन्द्रसेन नृपवर्य ! करो मम आयसु सिर धरि ॥
सुतल लोकमहँ बसौ दिब्य होवै तब सब अँग ।
द्वारपाल बनि रहूँ द्वारपै हौं तुम्हरे सँग ॥
भक्तानुग्रह निरखि बलि, बोले ह्वै गद्‌गद बचन ।
अनुकम्पा अनुपम करी, हे अच्युत ! अशरनशरन ॥

पुनि हरि आयसु पाइ शुक्र मख पूर्ण करायौ ।
बलि बामनको सुयश बिहँसि बलि गुरुने गायौ ॥
यों करि सरबसु दान दैत्यपति अति हरषाये ।
जगबन्धनकूँ, तोरि बिष्णु आधीन बनाये ॥
आगे करि प्रह्लादकूँ, जाति बन्धु सब सँग लये ।
रक्षक प्रभु वामन बने, सुतल लोककूँ चलि दये ॥

दोहा—रहैं सुतलमें बलि सतत, आगे होवें इन्द्र ।
जिनके द्वारे छरीलै, निवसहिँ नित्य उपेन्द्र ॥

छप्पय—बलिके द्वारे द्वारपाल बनि बसैं जगत्पति ।
बलि बिरुद्ध जे होहिं करैं तिनकी ते दुरगति ॥
इक दिन रावन जाइ कहे बलितैं बल गरबित ।
विष्णु विजय हौं करूँ काज कीयो जिनि निन्दित ॥
बलि बोले—पितु पितामह, हिरनकशिपु हरि सँग लरे ।
श्री नरहरि बनि बिष्णुने, हने कान कुंडल गिरे ॥

मृतक असुरके प्रथम जाइ कुन्डलहिं उठाओ ।
तब उन हरितें लड़न हेतु तिनके ढिँग जाओ ॥
इसतैं मस नहीं भयो लगायो रावन बल सब ।
हँसि बोले बलि—वीर ! बिष्णु बल कछु समुझे अब ॥
जा कुन्डलकूँ कानमहँ, जे पहिनत ते हने हरि ।
विजय प्राप्त कैसे करो, तिनि प्रभुतैं तुम युद्ध करि ॥

बलि बामनको बिजय चरित यह नृपवर ! गायो ।
अब तक बलि को सुयश चतुरदश भुवननि छायो ॥
सुतल लोक बलि गये बिष्णु नित वहाँ बिराजैं ।
बलि बैभवकूँ निरखि अमर सुरपतिहूं लाजैं ॥
यों बलि छलिके बिष्णुने, स्वर्ग-राज्य देवनि दयो ।
अदिति कामना पूर्ण करि, पुनि उपेन्द्र पदहू लह्यो ॥

इति श्रीभागवत चरितके चतुर्थाहमें उपेन्द्रावतार नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

[१५]

बिबिध बेष वपु धारि बिष्णु बिश्वेश्वर बिहरें।
रहें सदा रबि किन्तु कहें नर—सूरज निकरें॥
कच्छ मच्छ बाराह कबहुँ नरहरि तनु धारें।
साधुनि रच्छा करें दैत्य दानव खल मारें॥
लोक बिनिन्दित मत्स्य तनु, लीलातैं श्री हरि बर्यौ।
प्रलय सरिस घूमत फिरे, गो द्विज सुर कारज कर्यौ॥

बोले शुकतें नृपति—मत्स्य प्रभु चरित सुनावें।
क्यौं हरि ऐसे विश्व विनिन्दित वेष बनावें॥
शुक हँसि बोले—भूप! बिष्णु घटघटके बासी।
बन्दित निन्दित कछु न बिश्वपति अज अबिनासी॥
धेनु, बिप्र, सुर, संत अरु, बेदनिकी रच्छा निमित।
धर्म अर्थ रच्छित रहैं, धारें तनु जग हित अजित॥

धरम मूल भगवान धरम धरनीकूँ धारें।
जगमहँ होहिं न धर्म मातु संततिकूँ मारें॥
दृढ़तर रच्छित धर्म करै रच्छककी रच्छा।
लैकें हरि अवतार धर्मकी देवैं शिच्छा॥
सत्य सनातन धर्मकी, प्रभु युग युग रच्छा करत।
जलचर थलचर गगनचर, धर्म हेतु हरितनु धरत॥

प्रथम एकरस रह्यो धरम सतयुग ही होवै।
किन्तु कपट व्यवहार नित्यता नरकी खोवै॥
पिप्पलादि मुनि पत्नि परीक्षा लई धरम जब।
कहे अटपटे बचन सती अति क्रुद्ध भई तब॥
पतिव्रताके शाप वश, धर्म वृद्धिक्षययुत भये।
त्रेता, द्वापर, सत्य, कलि, तबईतें युग बनि गये॥

होहि धर्मकी हानि तबहिं हरि प्रकटित होवें।
तानि दुपट्टा अन्य समय पयनिधिमहँ सोवें॥
जब जस अवसर लखैं तबहिँ तस वेष बनावें।
नाना लीला करैं वेद हू पार न पावैं॥
नैमित्तिक लय जब भयो, ब्रह्माजी निद्रित भये।
सत्यव्रत राजर्षि हित, श्रीहरि मछली बनि गये॥

कृतमालामहँ करहिं द्रविणपति जलतैं तरपन।
अञ्जलिमहँ लघु मत्स्य निरखि कीयो जल अरपन॥
मछली ह्वैकें दीन कहे—नृप! रक्षा कीजै।
आई तुमरी शरन सत्यव्रत! आश्रय दीजै॥
दीन बचन सुनि लाइ नृप, कलश रखी सो बढ़ि गई।
नाद, सरोवर, तालमहँ, धरी तहाँ लम्बी भई॥

एक दिवसमहँ मत्स्य बढ़्यो नृप चकित भये अति।
बाढ़ै छिन छिन माँहिँ वृद्धिकी अति अद्भुति गति॥
शतयोजन सर घेरि लियो नहिं वृद्धि रुकी जब।
ह्वैकें अतिही दीन मीन नृपतैं बोली तब॥
नृप! निर्वाह न होहि मम, सर छोटो हौं बड़ी बहु।
कैसे जीवित रह सकूँ, सोचि समुझि भूपति कहहु॥

विस्मित नृपवर भये विहँसिकें बोले बानी।
नहीं मत्स्य हैं आपु विष्णु अव्यय हौं जानी॥
काहे कारन धर्यो रूप मछलीको प्रभुवर।
नित नवलीला करो भक्त भयहारी सुखकर॥
हरि हँसि बोले—सात दिन, महँ होवै त्रैलोक्य लय।
एक होंहिं सातहुँ उदधि, जगत होहि सब सलिलमय॥

मम इच्छातैं तरनि निकट इक तुमरे आवै।
सप्तर्षिनिके संग चढ़ावै तुमहिं बचावै॥
बासुकि बरत बनाइ सींग मेरेमहँ बाँधौ।
जल विहार मम संग करौ परमारथ साधौ॥
कहि हरि अन्तरहित भये, करैं प्रतीक्षा भूप अब।
अति उत्कंठा हिय बढ़ी, आवै नौका दिव्य कब॥

सात दिवस जब भये भई पृथिवी जलमय सब।
आई नौका एक ऋषिनि सँग चढ़े भूप तब॥
बाँधी शफरी सींग प्रलय जलमहँ बिचरैं हरि।
पूछे पावन प्रश्न नृपतिने अति बिनती करि॥
जो जगमय जगतें पृथक, देहिं ज्ञान गुरु रूप धरि।
गुरुके गुरु हरि हो तुमहिं, नाम सुमिरि बहु गये तरि॥

देहिं मोइ उपदेश जगतगुरु सबके स्वामी।
देहिं ज्ञान का अज्ञ अंध नर लोभी कामी॥
परमदेव, गुरु, पिता, सुहृद सम्बन्धी सब तुम।
छाँड़ि जगतकी आश शरन आये तुमरी हम॥
सुनत नृपतिके बचन हरि, मुस्काये प्रमुदित भये।
फिर भूपति सब ऋषिनिके, प्रश्ननिके उत्तर दये॥

जगमहँ मत्स्यपुराण कहैं पंडित जन जाकूँ।
ते नर प्रभुपद पाहिं पढ़ें श्रद्धातै वाकूँ ॥
यों विश्वंभर विष्णु रूप मछलीको धार्‌यो।
हयग्रीय खल दैत्य पकरि पाताल पछार्‌यो ॥
भक्त भूप रक्षा करी, ज्ञान ऋषिनिके सँग दयो।
सुनत मोहतम नसि गयो, ततछिन भव भय भगि गयो ॥

परम पुण्यप्रद मत्स्यचरित जे सुनैं सुनावैं।
प्रभु पद प्रकटै प्रेम परमपद ते नर पावैं ॥
सुनि शफरी हरि चरित परीक्षित अति हरषाये।
कथा प्रसंग चलाय, सामयिक बचन सुनाये ॥
तेरह मन्वन्तर कथा, नाथ कृपा करिकें कही।
वैवस्वत मनु वंशको कहहु कथा जो बचि रही ॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें मत्स्यावतार नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।

(मासिक पारायण सोलहवें दिनका विश्राम)



अथ षोडशोऽध्यायः

[१६]

बोले श्री शुक—श्राद्धदेव मनुबंश सुनहु अब ।
महाकल्प पश्चात् शयन सर्वेश करैं जब ।।
होहिं निशाको अंत नाभितें प्रकटै पंकज ।
तातें ब्रह्मा होहिं चतुर्मुख कमलासन अज ।।
मनतें पुत्र मरीचि मुनि, तिनिके कश्यप प्रजापति ।
बिवस्वान तिनके तनय, जिनको जगमहँ तेज अति ।।

बिवश्वानके पुत्र भये श्रीवैवस्वत मनु ।
तिनतें श्रद्धा माँहिं भये दश सुत इन्द्रिय जनु ।।
इक्ष्वाकु, शर्याति, दृष्टि अरु धृष्ट, नभग, कवि ।
नृग करूष नरिसन्त पृषध्रहु बंश बिदित रवि ।।
इन सबके पहले भये, सुत सुद्युम्न बिचित्र अति ।
नरतें नारी बनि गये, है बिचित्र श्रीशम्भु गति ।।

श्राद्धदेव सुतहीन यज्ञ पुत्रेष्टि करायौ ।
मुनि बसिष्ठ आचार्य यज्ञको साज सजायौ ।।
रानी इच्छा करी पुत्र नहिं पुत्री होवै ।
होता आहुति दई लोभ संकल्पहिं खोवै ।।
इला नाम कन्या भई, मनु मनमहँ चिन्तित भये ।
गुरुसन बोले दुखित है, मंत्र व्यर्थ क्यों है गये ।।

मुनि बसिष्ठ धरि ध्यान कहैं—सब ज्ञान भयो अब ।
रानी सम्मति मान कर्यो होता कौतुक सब ।।
किन्तु न नृप घबराउ मंत्रबल देखो मेरो ।
करि पुत्रीतैं पुत्र करौं हौं कारज तेरो ।।
यों कहि प्रभु बिनती करी, है प्रसन्न हरि बर दयो ।
सुता इला मुनि कृपातैं, पुनि सुद्युम्न कुमर भयो ।।
एक दिवस सुद्युम्न सैंन सजि मृगया खेलन ।
होहि अश्व असवार गयो सँग सचिवनिके बन ।।
मृग लखि पीछो कर्यो अश्व अपनो दौरायौ ।
गिरि सुमेरु ढिँग खण्ड इलावृतमहँ नृप आयौ ।।
परी दृष्टि जब देह पै, नरतैं नारी बनि गये ।
परम चकित इत उत लखत, सब घोड़ा घोड़ी भये ।।
पूछें नृप—गुरु ! नृपति भये च्यौं नारी नरतैं ।
अद्भुत देश प्रभाव भयो जिह किनके बरतैं ।।
हँसिकैं श्रीशुक कहैं—भूप अचरज मति मानों ।
जगकूँ क्रीड़ाभूमि भवानीपतिकी जानों ।।
मेरु निकट अति सुघर बन, जहँ झर झर झरना झरहिं ।
उमा संग तहँ कपरदी, कमनीया क्रीड़ा करहिं ।।
शिव दरशनके हेतु तहाँ इक दिन बहु ऋषि मुनि ।
आये सोचत होहिं कृतारथ शिव शिक्षा सुनि ।।
किन्तु प्रिया सँग करें रमण कामारि उमापति ।
अङ्क बिराजें उमा विवस्त्रा चित प्रसन्न अति ।।
दाढ़ीवाले ऋषिनि लखि, पारवती लज्जित भईं ।
उठीं अंकतें तुरत ई, लता ओटमहँ छिपि गईं ।।

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें शिवाशिवक्रीड़ा नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त

अथ सप्तदशोऽध्यायः

[१७]

निरखि रमणको समय भये लज्जित लौटे मुनि ।
गये समुझि ऋषि, उमा अङ्क पतिकी बैठीं पुनि ॥
पारबती प्रिय करन हेतु शिव बोले बानी ।
आवत होवे नारि पुरुष इहँ कोई प्रानी ॥
श्राद्धदेव-सुत भाग्यबश, भये पुरुषतैं नारि तहँ ।
सखिनि संग घूमत फिरत, पहुँचे बुध तप करहिं जहँ ॥

इला कामना करी बिकृति चित बुधके आई ।
नेत्र नेत्र मिलि गये सरसता हियमहँ छाई ॥
बिधिवत भयो बिबाह इला अति मन हरषाई ।
भूले बुध जप जोग भाग्यतैं पत्नी पाई ॥
छिन सम बीते बरष बहु, गृहीधर्ममहँ है निरत ।
बुध प्रमुदित बनमहँ बसत, इला संग क्रीड़ा करत ॥

पुरूरवा सुत इला प्रिया बुधकी ने जाये ।
नारदतैं सुनि बृत्त पुरोहित सँग मनु आये ॥
कीये शिव संतुष्ट दयो बर अद्भुत शङ्कर ।
एक मास नर रहे नारि दूसरमहँ मनहर ॥
लैकें सुत सुद्युम्न सँग, प्रतिष्ठानपुर चले मनु ।
पुरूरवा अतिशय सुघर, मनहर दूसर चन्द्र जनु ॥

पुरूरवा ही चन्द्रवंशके पहिले थापक।
प्रतिष्ठानपुर बसैं भये सुत जिन त्रय पावक॥
शौनक पूछें—सूत! चन्द्रवंशी इल कैसे?
इला और बुध भये सोम सम्बन्धित जैसे॥
सोमवंश क्रमकी कथा, हमकूँ सार सुनाइकें।
मेटो संशय सूतजी—कहन लगे हरषाइकें॥

भये ब्रह्मसुत अत्रि चन्द्रमा जनमे तिनिके।
विधि कीये पति सर्व ओषधिनि अरु विप्रनिके॥
राजसूय मख कर्यो गर्वतें सुरगुरु—दारा।
बलपूर्बक हरि लई बृहस्पति पत्नी तारा॥
देवासुर संग्राम अति, भीषण तारा हित भयो।
कमलासन परि बीचमहँ, निर्णय ताको करि दयो॥

गर्भवती गुरु नारि गर्भ निज त्याग्यो तबहीं।
मेरो मेरो करैं चन्द्र गुरु सुतहित जबहीं॥
बालक डाँटी मातु—सत्य तू च्यौं न जतावै।
तारा विधितैं कही—सोम ही सुतकूँ पावै॥
निशानाथकूँ सुत दयो, बुध ब्रह्माने नाम धरि।
चन्द्रवंश थापित कर्यो, इला संग सम्बन्ध करि॥

इति श्रीभागवत चरितके चतुर्थाहमें चन्द्रवंशी सुद्युम्न चरित नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त।

अथ अष्टादशोऽध्यायः

[१८]

इक्ष्वाकू नृग आदि भये सुत मनुके पुनि दश ।
प्रथम पृषध्र चरित्र कहूँ फिरि औरनिको यश ।।
कीये गुरु गोपाल कुमर रक्षक गाइनिकूँ ।
हिंसक आवैं सिंह व्याघ्र मारैं नित तिनिकूँ ।।
एक दिना निशि धेनुकूँ, पकरि सिंह भाग्यो तहाँ ।
डकराई गैया जबहिं, लै असि सो पहुँच्यो वहाँ ।।

व्याघ्र न दीख्यो अंधकारमहँ खड्ग चलायो ।
भ्रमबश व्याघ्र न मर्‌यो धेनु सिर काटि गिरायो ।।
जानि दोष गुरु निकट जाइ सब बृत्त सुनायो ।
सुनि पुनि दीयो शाप क्षत्रतैं शूद्र बनायो ।।
कीयो नहीं बिबाह पुनि, जीवन भर हरि ही भज्यो ।
बन दावानलमहँ प्रविशि, अंत समयमहँ तनु तज्यो ।।

मनु सुत लघु सब माँहिं नाम कवि अतिशय त्यागी ।
राज पाट परिवार त्यागि बनि गये बिरागी ।।
जो करूष मनुपुत्र भये उत्तरके भूपति ।
धृष्ट पुत्रतैं धार्ष्ट्र भये द्विज ताकी संतति ।।
मनुसुत नृगके सुमति सुत, भूतज्योति तिनतैं भये ।
नरिष्यन्तके वंशधर, आगे द्विज सब बनि गये ।।

दिष्ट पुत्र नाभाग कर्मतैं बैश्य भये ते।
पुत्र भलन्दन भये चात्र कुलमाँहिँ रहे ते ।।
शौनक बोले—सूत! कथा यह अति अचरजयुत।
कौन कर्मतैं भये बैश्य नाभाग दिष्ट-सुत ।।
बैश्य भलन्दन पुत्रहू, पुनि चत्रिय कैसे भये।
पिता बैश्य नृपतैं भये, सुत-पुत्र नृप बनि गये ।।

सुनि शौनक के बचन सूत हँसि बोले बानी।
बैश्य सुता इक हती रूप यौबनकी खानी ।।
दृष्टि परी नाभाग बैश्यतैं कन्या माँगी।
नृपति वैश्य अरु द्विजनि बात अति अनुचित लागी ।।
बलपूर्वक कन्या हरी, पिता पुत्रको रन भयो।
बैश्य बनायो मुनिनि सुत, भूप भलन्दन बनि गयो ।।

मातु भलन्दन पुत्र पठायो गोपालन हित।
गयो नीप मुनि निकट बैश्य बनिवेतैं दुःखित ।।
नीप सिखाये अस्त्र युद्ध भाइनितैं कीन्हों।
करे पराजित बन्धु राज्य पुनि अपनो लीन्हों ।।
भये भलन्दन भूमिपति, सुमति चरित पत्नी कहे।
अति आग्रह पितुतैं कर्यो, बने न नृप बैश्यहि रहे ।।

बत्सप्रीति सुत भये भलन्दनके उत्साही।
दानव हन्यो कुजृम्भ बिदूरथ कन्या ब्याही ।।
मुदावतीतैं भये पुत्र बारह तेजस्वी।
ज्येष्ठ श्रेष्ठ नृप प्रांशु जगत्महँ भये यशस्वी ।।
भये प्रांसुके प्रमति सुत, उनके पुत्र खनित्र हैं।
अति पवित्र जगमहँ बिदित, तिनके चारु चरित्र हैं ।।

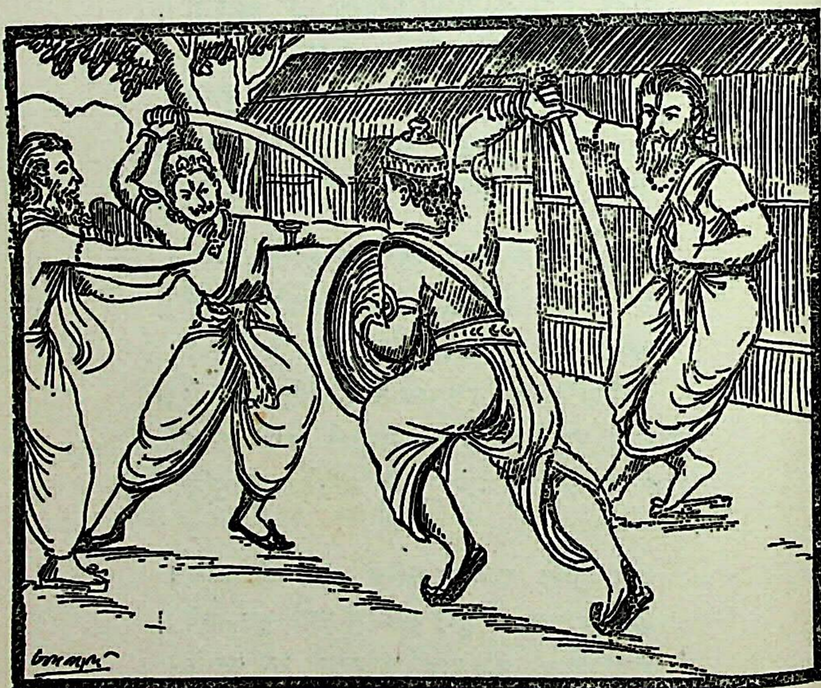
नृप खनित्र अति विनयशील सेवक वृद्धनिके।
शौरि, उदावसु, सुनय, महारथ भ्राता उनिके॥
चारि दिशनिको राज दयो चारिहु भाइनिकूँ।
स्वयं बने सम्राट प्राण सम मानैं तिनकूँ॥
शौरि सचिवने द्रोहवश, बन्धुनिमहँ विग्रह करी।
शौरि सिखायो वन्धु हति, हरहु राज्य जड़ मति हरी॥

शौरि लोभ बश भयो दुष्ट मंत्री मति मानी।
अन्य बन्धु हू फोरि पुरोहित सब अज्ञानी॥
चारिहु मिलि अभिचार भयङ्कर मारण कीन्हों।
प्रकटी कृत्या चारि सबनिकूँ दरशन दीन्हों॥
बोले—जाइ खनित्रकूँ, मारो प्रमुदित सब भईं।
लै त्रिशूल गर्जन करति, नृप खनित्रके ढिँग गईं॥

निरखि नृपति अति तेज डरीं कृत्या घबराईं।
नृप तनु परस्यो नहीं लौटि तिनहींपै आईं॥
सहित पुरोहित चारि विश्ववेदी हू मार्यो।
सुनि खनित्र सब वृत्त राज तजि बनहिं सिधार्यो॥
चाक्षुष पुत्र खनित्रके, चाक्षुषके सुत बिबिंशति।
रम्भ विबिंशतिके भये, तिनि खनिनेत्र हु भूमिपति॥

कौन नृपति खनिनेत्र सरिस मख करै करावै।
कौन इन्द्र करि तुष्ट करन्धम सम सुत पावै॥
शत्रु सैन्य करि दाह करन्धम भूप कहाये।
वीर्यचन्द्र नृप सुता स्वयम्बरतैं बरि लाये॥
पुत्र अवीक्षित तासुके, गर्भमाँहिँ पैदा भये।
सूर्यबंशमहँ एकतैं, एक ख्याति नृप ह्वै गये॥

भयो करन्धम पुत्र नृपति दैवज्ञ बुलाये।
सप्तम गुरु अरु शुक्र चन्द्र चौथे बतलाये ॥
सूर्य शनैश्चर भौम अवीक्षित है यह बालक।
पारंगत परमार्थ पूर्ण पृथिवीको पालक ॥
ग्रह फल सुनि नृप मुदित मन, विप्रनिको आदर कर्यो।
रवि शनि मङ्गलतैं अलख, नाम अवीक्षित नृप धर्यो ॥



भये अवीक्षित युवक करन्धमके सुत प्यारे।
वैदिश नृपकी सुता स्वयम्बर माँहिं सिधारे ॥

कन्या लै जयमाल कुमरके ढिंग जब आई।
बलपूर्वक सो पकरि अबोधित रथ बैठाई॥
सब नृप मिलि पकरे कुमर, आइ छुड़ाये पिता जब।
कन्या दई विशाल जब, नहिं स्वीकारी कुमर तब॥

नहिँ कन्या वर बर्यो तपस्यामहँ चित दीयो।
इत व्रत बीरा मातु किमिच्छक सुत हित कीयो॥
पितुने माँगी भीख पौत्रकी सुत स्वीकारी।
तोरि प्रतिज्ञा बरी कुमरने राजकुमारी॥



कुमर और वैशालिनी, धर्मसूत्रमहँ बँधि गये।
गये लोक गन्धर्वमहँ, सुत मरुत्त तिनके भये॥

दयो करन्धम राज अवीक्षित नहिं स्वीकार्यो ।
राज्य करूँ नहिँ कबहुँ समर शत्रुनितैं हार्यो ।।
राजा करे मरुत्त करन्धम बनहिँ सिधारे ।
नागनि मुनि गन डसे मरुतने शस्त्र सम्हारे ।।
नाग अवीक्षित शरनमहँ, गये अभय तिनकूँ दई ।
सुत पितुमहँ अहि विषयपै, तनातनी भारी भई ।।

नृप नागनिके हेतु अस्त्र संवर्तक छोड्यो ।
पिता कर्यो अति कोप न सुत रनतैं मुख मोर्यो ।।
परिकैं ऋषिगन बीच अहिनि मुनि फेरि जिवाये ।
ऐसैं सुत अरु पिता समरतैं मुनिनि बचाये ।।
द्रव्य दानमहँ व्यय कर्यो, बल निर्बल दुखहरनमहँ ।
नृप मरुत्त यश अब तलक, छायो तीनिहु भुवनमहँ ।।

सुत मरुत्तके पुत्र भये दम भूपति भारी ।
नृप दशार्णकी सुता सुन्दरी सुमना प्यारी ।।
बरे स्वयंबरमाँहिँ अन्य कामी ललचाये ।
सब मिलि कन्या हरी कुमर दम नहिं घबराये ।।
कर्यो युद्ध सब रिपु हने, निज बलतैं बाला वरी ।
बैदिक विधितैं ब्याह करि, सुमना प्रिय पत्नी करी ।।

नृप दमके सुत भये राज्यबर्धन तेजस्वी ।
प्रजा पुत्रवत पालि भये अति भूप यशस्वी ।।
श्वेत बाल लखि चले मानिनी सँग बन नरपति ।
प्रजा दुखित अति भई, अराधे सब मिलि दिनपति ।।
बरस सहस दश रवि दई, आयु भूप रवि पुनि भजे ।
सबकी निज सम आयु करि, सबने ही सँग तनु तजे ।।

नृप मरुत्ततैं नवम भये पीढ़ीमहँ भूपति।
पृथिवीपति तृणविन्दु रूप गुण महँ सुन्दर अति॥
अलम्बुसा अप्सरा काम वश ह्वैकें आई।
विधिवत कर्‌यो विवाह इडविडा कन्या जाई॥
सुत पुलस्त्य मुनि विश्रवा, ता दुहिताके पति बने।
धनाध्यक्ष उत्तर अधिप, श्री कुबेर तानें जने॥

सुत विशाल तृणबिन्दु नृपति वैशालि बसाई।
हेमचन्द्र सुत तासु भये जग कीरति छाई॥
सुत तिनके धूम्राक्ष तासु सुत संयम श्रीयुत।
तिनके पुत्र कृशाश्व सोमदत्तहु तिनके सुत॥
सोमदत्तके सुमति सुत, जनमेजय तिनके भये।
यशवर्धक तृणबिन्दुके, कुलमहँ ये नृप ह्वै गये॥

इति श्रीभगवत चरितके चतुर्थाहमें पृषध्रादि मनुपुत्रचरित्र
नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त।



अथ–एकोनविंशतितमोऽध्यायः

[१९]

मनु सुत नृप सर्यांति वेद शास्त्रनिके ज्ञाता ।
तिनकी कन्या भई सुकन्या जग विख्याता ।।
इक दिन कन्या सहित गये नृप घूमन वनमहँ ।
कन्या सखियनि संग फिरै वन प्रमुदित मनमहँ ।।



च्यवनाश्रमके निकट इक, दीमकको टीलो निरखि।
चकित भई जुगनू सरिस, द्वै चमकीली वस्तु लखि॥

यौवनको उन्माद कुतूहल कन्या उरमहँ।
उत्सुकता शमनार्थं लये द्वै कंटक करमहँ॥
आँखिनि दये चुभोइ बही धारा शोणितकी।
डरी भगी लखि रक्त बढ़ी व्याकुलता चितकी॥
इत मुनिवरके कोपतैं, सैनिक सब व्याकुल भये।
बेग रुक्यो मलमूत्रको, मृतक सरिस ते है गये॥

लखि दैवी उत्पात च्यवनको कोप समुझि मन।
सोचें—है यह शांत च्यवन मुनिको पावन बन॥
पूछें नृप—उत्पात कर्यो जिनि मोहिँ बतावें।
जानि सुकन्या कृत्य नृपति मनमहँ घबरावें॥
दुहिता लीन्हीं संगमहँ, चले तुरत मुनिके निकट।
विकट कर्यो प्रस्ताव मुनि, ह्वैकें बामीतें प्रकट॥

कन्या फोरीं आँखि भयो हौं अन्धो भूपति।
नेत्रहीन नर जगतमाँहिं पावै दुख नितप्रति॥
धरम करम कस करूँ पुण्यपथ कैसे पेखूँ।
कन्या करो प्रदान नेत्र जाकेतैं देखूँ॥
सुनि नृप अति विचलित भये, परि कन्या सहमत भई।
समुझि बलाबल भूपने, मुनिकूँ पुत्री दै दई॥

करिकें कन्यादान गये भूपति रजधानी।
पतिसेवा ही तरनि सुकन्या उत्तम मानी॥
अमर वैद्य इक दिवस च्यवन मुनि आश्रम आये।
करि सेवा सत्कार महामुनि बचन सुनाये॥

अति प्रसिद्ध सुरभिषक् तुम, तौऊ हौं अति दुख सहूँ ।
करौ वृद्धतैं युवक यदि, जो माँगो सोई दऊँ ॥
कहैं अश्विनीकुमर—हमें हू सोम पिश्राश्रो ।
सोम मखनिंमहँ सदा देव पंगति बैठाश्रो ॥
स्वीकारी यह बात कुंडमहँ च्यवन न्हवाये ।
आयुर्वेद प्रभाव वृद्धतैं युवक बनाये ॥
भये एकसे तीन नर, विनय सुकन्याने करी ।
अति प्रसन्न ह्वै सुरभिषक्, च्यवन दये माया हरी ॥

करिकैं मुनिकूँ तरुन गये रुजहा पुर जबहीं ।
आये नृप सर्याति च्यवनमुनि आश्रम तबहीं ॥
तरुण निकट निज सुता निरखि नृप अति दुख पायौ ।
ह्वै प्रसन्न वृत्तान्त सुकन्या सब समुझायौ ॥
सुता बचन सर्याति सुनि, मुनि तनु लखि प्रमुदित भये ।
मख हित कन्या सहित मुनि-बर कूँ लै निज पुर गये ॥

सोमयाग करवाय भूपको मान बढ़ायो ।
सुर बैद्यनि बुलवाइ सोमरस तिनहिँ पिश्रायो ॥
तान्यो सुरपति वज्र करयो जब स्तंभित करकूँ ।
सोमपान अधिकार सुरनि दीयो बैद्यनिकूँ ॥
लखि प्रभाव मुनि च्यवनको, सबकूँ अति विस्मय भयो ।
तनया नृप सर्यातिकी, को चरित्र पावन कह्यो ॥

दोहा—सुखद सुकन्या चरित जे, नारि सुनहिं सुख पाइँ ।
पुण्य पुरुष सुनि अति लहैं, वृद्ध तरुन ह्वै जाइँ ॥

इति श्रीभागवत चरितके चतुर्थाहमें च्यवन सुकन्या चरित नामक
उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।

अथ विंशतितमोऽध्यायः

[२०]

छप्पय—अब मनुसुत सर्याति वंश शुभ सुनहु भक्तियुत।
भूरिषेण उत्तानबर्हि आनर्त भये सुत॥
छोटे सुत आनर्त द्वारका जिननि बसाई।
रेवत सुत तिन भये तासु शत सुत सुखदाई॥
ज्येष्ठ, ककुद्मी सबनितैं, जनक रेवतीके भये
सुता रेवती संग लै, बर खोजन बिधि ढिँग गये॥

तपप्रभावतैं ब्रह्मलोकमहँ पहुँचे भूपति।
निरख्यो सरस समाज होहि संगीत मधुर अति॥
गावें गुन गोबिन्द चतुर गंधर्व तहाँ सब।
नृत्य अपसरा करैं अनवसर समुझ्यो नृप तब॥
कछुक देर ठाढ़े रहे, जब समाप्त गायन भयो।
तब प्रणाम करि ककुद्मी, निज कारज बिधि सन कह्यो॥

प्रभो! रेवती सुता भई लम्बी अति भारी।
किन्तु योग्य बर मिल्यो नहीं अब ही यह क्वारी॥
जिहि सँग आयसु करें ताहि सँग जाहि बिवाहूँ।
हँसि कमलासन कहें—नृपति! अब कहा बताऊँ॥
चारिहुँ युग छब्बीस इक, बार बीति भूपति! गये।
पुत्र पौत्र पीढ़ी सहस, नष्ट भूप सुत सब भये॥

प्रकट भये भगवान भक्त भय हरिवे वारे ।
ज्येष्ठ बन्धु बलराम भये तिनिके अति प्यारे ॥
तिन सँग करो विवाह ककुद्मी सुनि हरषाये ।
लईं रेवती संग द्वारका छिनमहँ आये ॥
हरषि नृपतिने रेवती. बलदाऊकूँ दै दई ।
खैंचो हलतैं बल बहू, लम्बी ठिगनी करि लई ॥



मनुके इक सुत नभग भये कै ई तिनिके सुत।
तिनिमहँ इक नाभाग वेदबिद् पंडित गुनयुत॥
पढ़न गये घर बन्धु कर्यो पीछे बटवारो।
लौटि कह्यो नाभाग—कहाँ है भाग हमारो॥
बन्धु कहैं—नाभाग! तब, पिता भाग तुम्हरे रहे।
करि प्रनाम नाभागने, बन्धु बचन पितुतैं कहे।

सुनि सुत बचन उपाय नभगने नयो बतायो।
करैं यज्ञ आङ्गिरस षष्ठ दिन कृत्य भुलायो॥
तिन्हैं बताओ जाय सुनत नृप सुततहँ आये।
कृत्य बताओ द्विजनि दयो धन स्वरग सिधाये॥
रुद्र द्रव्य अपनो कह्यो, नभग समर्थन हू कर्यो।
तब अर्पित सरबसु कर्यो, शिव प्रसन्न है वर दयो॥

हर बरतैं नाभाग भयो जगमहँ अति ज्ञानी।
अम्बरीष सुत तासु यशस्वी दृढ़ब्रत दानी॥
सप्तद्वीपको अधिप अतुल बैभव सब पायौ।
किन्तु स्वप्न सम समुझि कृष्ण चरननि चित लायौ॥
भयो चित्त चितचोरकी, सरस माधुरी पान करि।
भई जीभ यश नामको, नित्य निरन्तर गान करि॥

करैं कृष्ण-कैंकर्य कमल कर नृपके नित प्रति।
कृष्णकथा सुनि कान उभय होवैं प्रमुदित अति॥
माधव मन्दिरमाँहिं निरखि मनमोहन मूरति।
छल छल छलकैं नयन कमल सम होवैं विकसित॥
मिलैं भक्त भगवानके, गाढ़ालिङ्गन नृप करहिं।
पुलकित होवैं अंग अँग, पाप ताप जगके जरहिं॥

चरन चढ़ी चितचोर मंजरी तुलसीजीकी।
घ्राणेन्द्रिय लै गंध जगावै सुधि निज पीकी ।।
नन्दनँदन नैवेद्य पाइ रसना हुलसावै।
विनु अर्पित यदि अमृत मिलै तोऊ नहिं खावै ।।
निरखि नमित ह्वै जात सिर, निज प्रभुपद पंकजनिकूँ।
चरन चलैं अति हुलसिकैं, हरि क्षेत्रनि दरशननिकूँ ।।



राजकुमरि इक सुनी भक्ति नृप पति बरि लीन्हे।
भगवद्भक्ति प्रभाव भूप निज बशमहँ कीन्हे॥
अन्यहु रानिनि सुनी बिष्णुपूजा स्वीकारी।
प्रजा भूप रुख निरखि भये सब भक्त पुजारी॥
भरी भक्ति सब देशमहँ, नृपहिं सराहैं साधुगन।
सबहिँ कहैं—जस होहिं नृप, तस ही होवैं प्रजाजन॥

करहिं भूप जो काज कृष्ण अरपन करि देवैं।
सेवा श्रद्धा सहित करहिं नित प्रति हरि सेवैं॥
धन जन सुत परिवार कबहुँ अपनें नहिँ जानें।
बिषय भोग सब रतन जगतके मिथ्या मानें॥
तन्मय नित हरि भक्तिमहँ, रहैं सोच हरिकूँ भयो।
रिपु भय हेतु नियुक्त प्रभु, चक्र सुदरशन करि दयो॥

काम क्रोधकूँ जीति दुष्ट मनकूँ नृप मारें।
हरिबासर उपवास करहिं बैष्णव ब्रत धारैं॥
पूछैं शौनक—सूत! कह्यो हरिबासर काकूँ।
करैं मनुज उपबास अन्न खावैं नहिं जाकूँ॥
एकादशी महान व्रत, सूत कहैं सब पापहर।
करहिं नियमतैं ब्रत सदा, ते जावैं वैकुंठ नर॥

दो०—शौनक पूछैं—सूत! कहु, एकादशि उतपत्ति।
देहि मुक्ति बिनु अन्नके, जाकी ऐसी शक्ति॥
सूत कहैं—एकादशी, हरिबासर जिहिनाम।
मुनि गन! ताको महाफल, कहूँ धारि हिय श्याम॥

छप्पय—सुरनि कह्यो—मुर करै पाप हरि चले हननकूँ।
सोच्यो एक उपाय असुर खलके मारनकूँ॥
बदरीवनकी गुफामाँहिं सोये खल आयो।
तनुतैं कन्या निकरि असुरकूँ मारि गिरायो॥
सोई एकादशी तिथि, पावन अति जगमहँ भई।
पापनाशिनी मुक्तिप्रद, श्रीहरिने सो करि दई॥

हरिबासर उपवास करैं ते नरक न जावैं।
ऋद्धि सिद्धि सम्पत्ति सहज फल चारिहु पावैं॥
रुक्माङ्गद भूपाल राज्यमहँ व्रत करवावैं।
सब राखैं उपवास दार, सुत सहित न खावैं॥
सप्तद्वीपके अधिप नृप, सबई आज्ञा सिर धरैं।
कछु भयवश कछु भक्तितैं, हरिबासर सब व्रत करैं॥

व्रती भक्त क्यौं परै भयङ्कर यमके पल्ले।
नरक न कोई जाय भये यमराज निठल्ले॥
चित्रगुप्त की बही फटी, टाँके सब टूटे।
भयो नरक सब शून्य यातनागृह सब फूटे॥
चित्रगुप्त यम सँग लये, कमलासनके ढिँग गये।
त्यागपत्र सम्मुख धर्‌यो, हाथ जोरि ठाढ़े भये॥

ब्रह्मा पूछें—त्यागपत्रको हेतु सुनाओ।
क्यौं तुम बौरे भये विपतिको वृत्त बताओ॥
सकुचि कहें यमराज—व्यरथमें वेतन पाऊँ।
काम काज कछु रह्यो न क्यौं जग अयश कमाऊँ॥
रुक्माङ्गद व्रत सबनितैं, हरिबासर करवाइ नित।
सबकूँ पठवै विष्णुपुर, नरक न कोई आइ इत॥

रुक्माङ्गद व्रत वृत्त सुन्यो विधि मन मुसकाये।
व्रत प्रभाव बहु कह्यो बहुत बिधि यम समुझाये॥
जब बहु हठ यम करी मोहनी नारि बनाई।
गई भूप ढिँग मोहि बनी रानी पुर आई॥
हरिबासर व्रत छोड़िवे, को आग्रह रानी कर्यो।
व्रत न तज्यो सुत सिर तज्यो, तब श्रीहरि दरशन दयो॥

ताही व्रतको अम्बरीष उद्यापन कीन्हों।
धेनु रतन धन धान दान विप्रनिकूँ दीन्हों॥
विधिवत विप्र जिमाइ पाइ पारणकी अनुमति।
जेंवन बैठे जबहिं तबहिं आनन्द भयो अति॥
दुर्वासा मुनिवर तहाँ, आये नृप ठाढ़े भये।
दयो निमंत्रन भोजहित, हाँ कहि संन्ध्या हित गये॥

आधी रही मुहूर्त द्वादशी नृप घबराये।
पारन कैसे करहिं वेदविद विप्र बुलाये॥
जल पी पारन करो द्विजनि मिलि दीन्हीं अनुमति।
द्विज आयसु सिर धारि कर्यो व्रत पारन भूपति॥
दुर्वासा आये तबहिं, क्रोध अवज्ञा लखि कर्यो।
कृत्या केश उखारिकें, करी प्रकट नहिं नृप डर्यो॥

कृत्या तत्च्छण मारि सुदर्शन चक्र गिराई।
निरपराध भूपाल भक्त की भीति भगाई॥
कृत्याकूँ करि भस्म चक्र मुनिवरके आगे।
झपट्यो डरिकें तुरत तहाँतें मुनिवर भागे॥
पृथिवी, जल, आकाशमहँ, सबहिं लोक दौरे गये
दई शरन का नहीं, दुर्वासा ब्याकुल भये॥

रच्छा कहुँ नहिं भई डरे विधि ढिँग मुनि आये।
समाचार सब सत्य सकुचि दुख सहित सुनाये ॥
सब सुनि कहें बिरंचि—करूँ का अब मैं भाई।
हमहूँ हैं परतन्त्र पार हमरी न बसाई ॥
ह्वै निराश शिव ढिँग गये, हर बोले—गहु शरन हरि।
कृपा करहिं करुनायतन, विनय करहु तुम पैर परि ॥

हर आयसु सिर धारि गये हरिपुर दुर्वासा।
शरनागत प्रतिपाल करहिं मुनि मन बड़ आसा ॥
त्राहिं त्राहि कहि पैर परै प्रभु हों अघ कीन्हौं।
महिमा जाने विना शाप वैष्णवकूँ दीन्हौं ॥
भक्ताधीन सदा रहौं, विश्वम्भर बोले गरजि।
और बात हों सब सहौं, निज जनको अपमान तजि ॥

जे सरबसुकूँ त्यागि शरन मेरीमहँ आये।
मम हित मख-तप तीर्थ करे जिन दुख बहु पाये ॥
धन, सुत, दारा, बन्धु लोष्ठ सम सबकूँ जानें।
मोकूँ तजि सब तुच्छ स्वर्ग अपवर्गहि मानें ॥
वस्तु जगतकी अन्य कछु, मोकूँ तजि जानें नहीं।
ऐसे भक्तनिकूँ कबहुँ, त्यागि सकें स्वामी नहीं ॥

फिरहू एक उपाय बताऊँ तुमकूँ मुनिवर।
अम्बरीष नृप निकट जाहु चूको नहिं अवसर ॥
शान्त होइगो चक्र मिटैंगे दुःसह दुख सब।
प्रभु आज्ञा स्वीकारि चले मुनि नृपके ढिँग तब ॥
दुःखित दुर्वासा तुरत, नृप पैरनिमहँ परि गये।
अस प्रयत्न मुनिको निरखि, अति लज्जित भूपति भये ॥

चक्र बिनय नृप करी लखे भययुत दुर्वासा।
शान्त सुदर्शन भयो भई मुनिवरकूँ आसा॥
बोले—नृप! तुम धन्य धन्य तुमरी है जननी।
धन्य नभग शुभ वंश प्रजा दारा धन धरनी॥
महिमा भक्तनिकी लखी, गर्व खर्ब मेरो भयो।
दुतकार्‌यो मोकूँ सबनि, शरन हेतु जहँ जहँ गयो॥

दुर्वासाकी विनय निरखि नृप अति सकुचाये।
करि सादर सत्कार स्वादयुत अन्न जिमाये॥
दीयो आशिर्वाद भक्तकी महिमा जानी।
भक्ति श्रेष्ठ जग माँहि महामुनि मनमहँ मानी॥
अम्बरीष नृप भक्ति करि, अति प्रसिद्ध जगमहँ भये।
राज्यभार सुत सिर धर्‌यो, भजन करन बनमहँ गये॥

अम्बरीषके तनय तीन त्रिभुवन विख्याता।
भूपति बड़े विरूप प्रजाके भय दुख त्राता॥
केतुमान अरु शम्भु बन्धु अनुकूल रहैं नित।
सुत विरूप पृषदश्व रथीतर तिनके शुभ सुत॥
नृपति रथीतर सुत रहित, भये आङ्गिरस क्षेत्रसुत।
बीर्य अङ्गिरातैं भये, क्षात्र कर्म द्विज तेजयुत॥

इति श्रीभागवत चरित के चतुर्थाह में शर्याति नभग वंश वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त।

अथ एकविंशतितमोऽध्यायः

[२१]

छप्पय—ज्येष्ठ श्रेष्ठ मनुपुत्र भये इक्ष्वाकु यशस्वी।
प्राणिमात्रके सुहृद पितामह सम तेजस्वी॥
पालैं सुत सम प्रजा दया जीवनिपै राखैं।
करैं संत सम्मान अनृत कबहूँ नहिं भाखैं॥
नारि सुदेवाके सहित, मृगया हित बनमहँ गये।
सिंह व्याघ्र बाराह बहु, हिन्स्र जन्तु मारत भये॥

सूकर मार्यो एक सूकरी कथा सुनाई।
द्विज कन्या हौं रही बुद्धि बिपरीत बनाई॥
कीयो पति अपमान नरकमहँ दुःख उठायो।
भोगि यातना बिबिध सूकरीको तनु पायौ॥
पातिब्रत इक बर्षको, पुण्य सुदेवाने दयो।
छुटी सूकरी योनितैं, दिव्य देह ताको भयो॥

पृथिवीपति इक्ष्वाकु तनय शत सूर भये अति।
सबतैं बड़े शशाद बिकुक्षी भये भूमिपति॥
पिता श्राद्धहित मेध्य जन्तु पठये लैवेकूँ।
लाये बहु मृग मारि पिंड पितरनि दैवै कूँ॥
मगमहँ खायो शशक इक, सुनि नृप क्रोधित ह्वै गये।
देश निकास्यो दयो पितु, ते शशाद नरपति भये॥

दोहा—सबहिं सराहैं कुमरको, तेज, ओज, बल, रूप ।
गये स्वरग इक्ष्वाकु जब, भये विकुक्षी भूप ॥
छप्पय—पालन सुत सम कर्यो प्रजाको रञ्जन कीन्हों ।
यज्ञ याग बहु करे दान बहु विप्रनि दीन्हों ॥
भये पुरञ्जय पुत्र बने जिनि वाहन सुरपति ।
भये ककुत्स्थ प्रसिद्ध इन्द्रवाहहु ते नरपति ॥
दैत्यनिके सँग सुरनिको, रण अति ही भीषण भयो ।
वीर पुरञ्जयके निकट, आइ देव निज दुख कह्यो ॥

सब सुनि बोले भूप—अवसि आयसु स्वीकारूँ ।
किन्तु इन्द्र यदि बनैं वृषभ तो असुरनि मारूँ ॥
लज्जित सुरपति भये जगतपति हरि समुझाये ।
हरिआज्ञा सिर धारि, वृषभ शतक्रतु बनि आये ॥
वृषभ ककुद्पै चढ़े नृप, असुर नगरपै चढ़ि गये ।
लखी वीरता भूपकी, भौचक्के सुररिपु भये ॥

भीषण रण अति भयो, दैत्य जे सम्मुखआये ।
शूरवीर भूपाल तुरत ते मारि गिराये ॥
भगे छोड़ि रण असुर सुरनि आनंद मनायौ ।
धन सम्पतियुत स्वरग देवतनि सहजहिं पायौ ॥
इन्द्र बने बाहन समर, इन्द्रवाह सब कहहिं नर ।
रिपुपुर जीत्यो पुरञ्जय, स्वरग माँहिं भाषैं अमर ॥

पुत्र पुरञ्जय भये अनेना तिनके पृथुसुत ।
विश्वरन्धि तिन तनय चन्द्र तिनके सुत श्रीयुत ॥
चन्द्र तनय युवनाश्व कीर्ति जिन विपुल कमायी ।
तिनके सुत शावस्त जिननि शाबस्ति बसायी ॥

भये पुत्र वृहदश्व तिन, कुवलयाश्व तिनके तनय ।
मुनि उतङ्क बध धुन्धु हित, जिनहिं लै गये करि बिनय ॥

असुर धुन्धु अति बली बालुके भीतर सोवै ।
छोड़े जब फुफकार प्रजा सब दुखतैं रोवै ॥
मुनि उतङ्क वृहदश्व बली भूपति ढिँग आये ।
कह्यो वृत्त· सुनि भूप तुरत निज पुत्र पठाये ॥
कुवलयाश्व पुत्रनि सहित, मुनि प्रसन्न अतिहीं भये ।
मुनि उतङ्ककूँ संग लै, धुन्धु मारिवे चलि दये ॥

धुन्धु बदनतैं अनल भई जारे सुत सबई ।
रहे तीनि ही शेष हन्यो दानव नृप तबई ॥
नृपने मार्यो धुन्धु देव नर सब हरषाये ।
तबई ते जग धुन्धुमार भूपति कहलाये ॥
सुत दृढाश्व कपिलाश्व अरु, रहे शेष भद्राश्व बर ।
नृप दृढ़ाश्व हर्यश्व सुत, शूर बीर अति श्रेष्ठ नर ॥

सुत हर्यश्व निकुम्भ भये तिनि बर्हणाश्व सुत ।
तिनके भये कृशाश्व सेनजित तिन सुत बलयुत ॥
नृपति सेनजित् पुत्र भये युवनाश्व यशस्वी ।
मान्धाता तिनि पुत्र चक्रवर्ती तेजस्वी ॥
माता बिनु पैदा भये, पिता गर्भमहँ बास कर ।
सुनहु कथा आश्चर्य्युत, पुण्य प्रदायिनि मनोहर ॥

इति श्रीभागवत चरितके चतुर्थाहमें इक्ष्वाकु वंशवर्णन
नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।

अथ द्वाविंशतितमोऽध्यायः

[२२]

छप्पय—पुत्रहीन युवनाश्व नारि शत संग लिये बन।
गयो तनय बिनु खिन्न भूपको परम दुखित मन॥
बनमहँ मुनि मिलि पुत्र हेतु इक यज्ञ करायौ।
मंत्रपूत घटनीर निरखि निशि नृप तहँ आयौ॥
प्यासो नृप जल शीत लखि, मनमहँ अति प्रमुदित भयो।
बिनु पूछे अनजानमें, घटको जल सब पी गयो॥

प्रातकाल मुनि उठे कहैं—जल कौनें पीयो।
हाथ जोरि भूपाल वृत्त सबतैं कहि दीयो॥
सुनि मुनि धार्‌यो मौन समुझि गति प्रबल बिधाता।
कुक्षि फोरिकें प्रकट भये नृपतैं मान्धाता॥
बिन्दुमती रानी बरी, स्वयं जाइ नृप स्वयम्वर।
जने पुत्र पुरुकुत्स अरु, अम्बरीष मुचुकुन्द बर॥

कन्या जनीं पचास सुन्दरी अति सुकुमारीं।
बड़ी भईं सब संग कमल नयनी पितु प्यारीं॥
ब्रजमंडलमहँ परम तपस्वी सौभरि मुनिवर।
यमुना जलमहँ पैठि तपस्या करें उग्रतर॥
बाल ब्रह्मचारी रहे, भये वृद्ध तनु छीन अति।
बरस सहसदश तप कर्‌यो, नहिं निरखी संसार गति॥

इकदिन जलमहँ मत्स्य राजकूँ निरख्यो मुनिवर ।
निज पत्नीके संग करत क्रीड़ा अति सुखकर ।।
अति अनुराग समेत नीर नयननिमहँ भरिकैं ।
किलकैं इत उत पुत्र पौत्र पैरनिमहँ परिकैं ।।



इच्छा मुनि मन महँ भई, व्रत करि करि अति सहे दुख ।
जप तप महँ जीवन गयो, नहिं चाख्यो संसार सुख ।।

ब्याह करन अभिलाष भई सब नियम भुलाये।
मान्धाता ढिँग पुरी अयोध्यामहँ मुनि आये॥
बोले—पुत्री हैं पचास तुमरें हे भूपति।
करूँ याचना एक ब्याहकी इच्छा चित अति॥
सुनि नृप अति विस्मित भये, घबराये सब अँग थके।
वृद्ध देह तप अधिक लखि, हाँ ना कछु नहिं करि सके॥

पुनि नृप बोले सम्हरि—महामुनि भीतर जाओ।
बरण सुता जो करै ताहि सुख तैं ले आओ॥
समुझि भूपको भाव योग तैं युवक भये मुनि।
आये मुनिवर सुघर भई प्रमुदित कन्या सुनि॥
प्रथम बरे पति मुनि हमनि, कलह करन कन्या लगीं।
सब स्वीकारों ऋषि बिहँसि, निरखि प्रेममहँ सब पगीं॥

विधिवत कर्यो विवाह फेरि सुनरख मुनि आये।
सबकूँ सुन्दर महल पृथक सौभरि बनवाये॥
सबकूँ भूषन बसन सुखद शैयादिक दीन्हीं।
सबकी इच्छा पूर्ण तपस्यातैं मुनि कीन्हीं॥
सब महलनिमहँ सरोवर, स्वच्छ नीर नीरज सहित।
असन बसन उबटन सतत, रहहिं पवन सुखप्रद बहत॥

मुनि पचास धरि बेष रमण नित सब सँग करहीं।
तब प्रभावतैं ताप व्यथा तनमनकी हरहीं॥
आये नृप इक दिवस देखि वैभव विस्मित अति।
भये, सबनि ढिँग गये कहैं नित इतहिं बसहिं पति।
सुरपुरको सुख अवनिपै, लखि प्रमुदित नृप ह्वै गये।
सब सुख भोगे तृप्ति हित, किन्तु तृप्त मुनि नहिं भये।

शाप गरुड़कूँ दयो न सौभरिसर पुनि आवें।
रमणक नामक द्वीप तहाँ नागनि नित खावें।
पारीतें सब जाहिं गरुड़ सँग सन्धि कराई।
कछुक दिवसमहँ काली अहिकी पारी आई॥
काली अहिने मत्त ह्वै, भंग गरुड़को प्रन कर्यो।
लड़्यो पराजित ह्वै गयो, सौभरिसरमहँ छिपि गयो॥

गरुड़ शापवश तहाँ फेरि कबहूँ नहिं आये।
अहिकूँ दीयो वास शेष मुनि अति हरषाये॥
कालिय ह्रद अहिवास भयो विख्यात जगतमहँ।
अहि बहु युग पर्यन्त रह्यो परिवार सहित तहँ॥
अब तक जगमहँ ख्यात हैं, हलधरपूजक विप्रवर।
अहिवासी के नाम तैं, सौभरिऋषिके वंशधर॥

स्वस्थचित्त इक दिवस बैठि मुनि सोचें मनमहँ।
हाय पतन मम भयो रहूँ मुनि ह्वै महलनिमहँ॥
तजिकें सब जन संग सलिलमहँ ध्यान लगायौ।
ठग्यो तहाँ हू दैव मत्स्य संभोग दिखायौ॥
मिथुन धर्ममहँ निरत नर-नारींको जे सँग करैं।
ते पुनि जनमें पुनि मरें, स्वरग जाहिँ नरकनि परैं॥

रहै सदा निस्संग चित्त श्रीहरिमहँ राखै।
वाणी संयम करै व्यरथ तनिकहु नहिं भाखै॥
साधु संग ही करै कथा कीर्तनमहँ जावै।
नहिं तो है चुपचाप ध्यान एकान्त लगावै॥
नर फँसिकें निकसत नहीं, मायिक गुण हैं प्रबल अति।
इत उत भटकै लोभ बश, होवै नहिं जग विमलमति॥

यों करि पश्चात्ताप त्यागि गृह बनहिँ सिधाये।
पत्नी लागीँ संग विषय अरु भोग भुलाये॥
कर्‌यो घोर तप बुद्धि विमल करि काटे कल्मष।
ब्रह्म सत्य जग असत् कर्‌यो दृढ़ निश्चय मुनि अस।
ब्रह्मलीन सौभरि भये, संग सती पत्नी भईं।
अगिनि बुझतही लपट जनु, मनहुँ शान्त सब ह्वै गईं॥

सौभरिऋषिको विमल चरित जे सुनैं सुनावैं।
श्रद्धातैं जो मनन करैं ते प्रभुपद पावैं॥
यौं मान्धाता सुता विवाहीं सौभरि मुनिवर।
यौवनाश्व अब वंश कहूँ पुनि अति पावन तर॥
भये भूप पुरुकुत्स सुत, मान्धाताके विमल मति।
नारि नर्मदा नागकी, व्याही तनया सुघर अति॥

इति श्रीभागवत चरितके चतुर्थाहमें सौभरि ऋषि चरित नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त।

(पाक्षिक पारायण-अष्टम दिवस विश्राम)

अथ त्रयोविंशतितमोऽध्यायः

[२३]

त्रसद्दस्यु सुत तासु भये अनरण्य पुत्र तिन।
तिनके सुत हर्यश्व अरुण तिन तिनहिं त्रिबन्धन ॥
भूप त्रिबन्धन तनय सत्यव्रत भये कुमति अति।
शङ्कु तीनि जिन करे त्रिशंकू ख्यात भूमिरति ॥
गुरु वशिष्ठके शापतैं, श्वपच भये अति दुख सहे।
चांडालनिके बीचमहँ पितु आयसुतैं ते रहे ॥

दारा विश्वामित्र भरन पोषन नृप कीन्हों।
ह्वै प्रसन्न मुनि नृपहिं मनोवाञ्छित फल दीन्हों ॥
इच्छा राजा करी सहित तनु स्वर्ग सिधाऊँ।
बोले विश्वामित्र—यज्ञ करि तुरत पठाऊँ ॥
तपतैं भेजे स्वर्ग नृप, सुरनि ढकेले गिरे नभ।
लटके अधर त्रिशंकु तब, मध्यहिं डाँटे मुनि ऋषभ ॥

सुत त्रिशंकु हरिचन्द्र भक्ति जिन दृढ़ श्रीहरिपद।
सन्तति बिनु अति दुखित बरुण ढिँग पठये नारद ॥
बरुण कह्यो हाँ होहि होमि यदि देवो तिहि सुत।
स्वीकार्यो भूपाल भये सुन्दर सुत रोहित ॥
भयो मोह भूपालकूँ, सुत पठयो बन बरुन भय।
सुरपति रोक्यो किन्तु, लै आयो बदले द्विज तनय ॥

पिता बरुनकी इष्टि करी बुलवाये मुनि सब ।
कौशिक युक्ति बताइ बचायो शुनःशेप तब ॥
बरुन भये सन्तुष्ट दयो रथ हरिश्चन्द्रकूँ ।
लख्यो वंशधर पुत्र भयो सुख परम इन्द्रकूँ ॥
हरिश्चन्द्र दानी महा, भये दुःख कौशिक दयो ।
विश्वामित्र वशिष्ठमें, महा युद्ध जिहि हित भयो ॥

मृगया हित इक दिवस गये नृप क्रंदन धुनि सुनि ।
गये लक्ष्य करि नारि लखी तहँ अरु कौशिक मुनि ॥
अबला सुनत विलाप धनुषपै बान चढ़ायो ।
अन्तरहित ते भईं क्रोध कौसिककूँ आयो ॥
बोले—तू दाता बड़ो, हौं सुपात्र हूँ योग्य अति ।
करो दान सर्बस्व तुम, दयो तुरत सब भूमिपति ॥

दीयो सरबसु दान नगरतैं निकसे नरपति ।
लखि सुत दारा जात प्रजाजन भये दुखित अति ॥
करिकैं हमें अनाथ नाथ ! तुम कहँ अब जाओ ।
संग हमहिँ लै चलौ नहीं मझधार डुबाओ ॥
प्रजारुदन सुनि दुखित नृप, ज्यों ही मग ठाढ़े भये ।
त्यों ही डंडा मारि मुनि, रानीकूँ धक्का दये ॥

मुनि रोक्यो मग कह्यो साङ्गता धन अब दीजै ।
नृप बोले—मुनि ! एक मास धीरज अरु कीजै ॥
यों कहि काशी गये कपर्दीकी रजधानी ।
अवधि पूर्ण लखि पहुँचि गये कौशिक अभिमानी ॥
द्रव्य याचना करी मुनि, नृप रानी विक्रय करी ।
रोहित हूबेच्यो स्वयं, बिके दक्षिणा द्विज भरी ॥

श्वपच दास बनि मृतक बस्त्र धरि मरघटमाहीँ ।
लेवैं नृप तहँ बसहिँ दार सुधि बिसरत नाहीँ ।।
डस्यो सर्प सुत गोद लिये शैब्या तहँ आई ।
पहिचानी पुनि कथा भूप दुख सहित सुनाई ।।
मृत सुत सँग नृप नारि लै, जरिवेकूँ उद्यत भये ।
त्यों ही देवनि सहित बिधि, धर्म इन्द्र दरशन दये ।।

तन धन सरबसु तज्यो धर्म हरिचन्द न छोर्‌यो ।
परी बिपतिपै बिपति नहीं सत तैं मुख मोर्‌यो ।।
गये नृपति बैकुंठ भये रोहित नृप श्री-युत ।
रोहितके सुत हरित हरितके चम्प भये सुत ।।
चम्प नृपति चम्पापुरी, रची वीर बर तिन तनय ।
नृप सुदेव हैं बिदित जग, भये तासु सुत नृप बिजय ।।

इति श्रीभागवत चरितके चतुर्थाहमें त्रिशंकु हरिश्चन्द्रादि चरित नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त ।



अथ चतुर्विंशतितमोऽध्यायः

[२४]

भये त्रिजय के भरुक भरुकके वृक तिनि बाहुक।
शत्रुनि छीन्यो राज गये बन पृथिवीपालक॥
वनमहँ नृप तनु तज्यो गाभिनी तिनकी रानी।
सौतिनि गर दै दयो सगर सुत जनम्यो मानी॥
भये सगर अतिही बली, शत्रुनिको शासन कर्यो।
दान पुण्य मख अधिक लखि, सुरपति हू तिनतैं डर्यो॥

द्वै रानी तिन हतीं एकके सुत असमंजस।
दूसरि साठिसहस्त्र जने सुत मानी नीरस॥
अश्वमेध नृप सगर धूमतैं यज्ञ रचायौ।
भय बश सुरपति आइ यज्ञको अश्व चुरायौ॥
कपिलाश्रममहँ इन्द्र ने, मख हय बाँध्यो कपट करि।
साठिसहस सुत भूमि खनि, पहुँचे नाना रूप धरि॥

सप्तद्वीपके मध्य द्वीप जम्बू अति पावन।
तामें हैं नववर्ष इलावृत मध्य सुहावन॥
कमल कर्णिका सरिस इलाबृतकूँ पहिचानों।
अन्य आठ जो वर्ष कमल दल सम तुम मानों॥
पहिले नौऊ एक हे, सगर सुतनि खोदी मही।
तातैं भारत भूमि चहुँ, दिशितैं है गई जलमयी॥

कपिलाश्रमपै अश्व निरखि नृपसुत हरषाये।
कोलाहल अति कर्यो कपिल मुनि चोर बताये॥
इन्द्र रच्यो षडयन्त्र बुद्धि नृप सुतनि बिगारी।
मुनि मारन हित चले देहिँ गिनि गिनकैं गारी॥
कोलाहल सुनि सहज ही, नेत्र कपिलके खुलि गये।
दृष्टि परत निज पापतैं, सगरपुत्र सब जरि गये॥

सुत नहिँ आये सोचि सगरने पौत्र पठाये।
अंशुमान चलि दये कपिल मुनि आश्रम आये॥
कुमर विनय अति करी महामुनि अति हरषाये।
गंगा लाओ पितर हेतु ये बचन सुनाये॥
अश्व पाइ मख पूर्ण करि, सगर तपोबन चलि दये।
तदनन्तर मनु बंशके, अंशुमान भूपति भये॥

अंशुमान तप कर्यो अवनिपै गंगा आवैं।
मृतक पितर पय परसि नरक तजि सुरपुर जावैं॥
भये कुमार दिलीप राज तजि जाय बसे वन।
गंगा आईं नहीं स्वरग नृप गये त्यागि तन॥
कुमर दिलीप पराक्रमी, पितु पीछे भूपति भये।
गंगा हित तप करनकूँ, हिमगिरिपै तेहू गये॥

करत करत तप भूप दिलीपहु स्वर्ग सिधारे।
तिनके सुत नृप भये भगीरथ सबके प्यारे॥
पिता पितामह मरे नहीं श्रीगंगा आईं।
पितर परे यमसदन दुःखतैं ते विललाईं॥
भूप भगीरथ राज तजि, गंगाजी लैवे गये।
अबकें जननी तुष्ट है, नरपतिकूँ दरशन दये॥

गंगा बोलीं—वेग बड़ो रोकै को मेरौ।
औरहु चिन्ता एक करूँ हौं कारज तेरौ॥
हौं सबके अघ हरूँ हरै मेरे को अघ नर।
कहैं नृपति—तब वेग सहैंगे शिव हर शंकर॥
अघहारी हरि हिय बसहिं, साधु पाप काटहिं सबहिं।
है प्रसन्न अवतरन हित, गंगाजी गमनी तबहिं॥

गर्जत तर्जत चलीं वेगतैं गंगा माता।
गिरीं जहाँ गिरिजेश विराजैं भवभय त्राता॥
सोचैं शिवकूँ संग लिये पाताल पधारूँ।
जीजाजीकी जटनिमाँहिं जल धारा डारूँ॥
भोले बाबा भंगकी, बैठे सहज तरंगमहँ।
जटनिमाहिँ गंगा गिरीं, परी भंग तिनि रंगमहँ॥

इत उत सुरसरि फिरहिँ जटनिमहँ मग नहिँ पावैं।
भूप भगीरथ निरखि खेल अतिशय घबरावैं॥
शिव सन बिनती करी जटनितैं छोड़ी गंगा।
ह्वैकें चंचल चलीं अवनिपै तरल तरंगा॥
हिमगिरि नग तोरति बहहिँ, सुर नर मुनि जय जय करहिँ।
रथ पीछे पीछे फिरहिँ, चलत दरशतैं अघ हरहिँ॥

उतरि हिमालय अंक अवनिपै नीचे आइं।
सामग्री मुनि जह्नु यज्ञकी सबहिं बहाइं॥
लखि अविनय मुनि कर्यो कोप गंगा पी लीन्हीं।
भूप भगीरथ बिनय बहुत बिधि मुनिकी कीन्हीं॥
छोड़ी गंगा कानतैं तनया तिनकी ह्वै गइं।
तबई तैं भागीरथी, ख्यात जाह्नवी जग भइं॥

अवनि उतरि अब नदीं रहीं नहिं गंगा छोटी ।
चंचलता छुटि गई भई अब कृश तैं मोटी ॥
संग भगीरथ लिये कपिल मुनि आश्रम आये ।
गंगाजलकूँ परसि पितर सब स्वरग सिधाये ॥
भस्मभूत माँ पय परसि, सगर सुतनि छूटी व्यथा ।
तट निवसैं नित पय पियैं, तिन सुकृतिनिकी का कथा ॥

गंगा गंगा कहैं नित्य गंगाजल पीवैं ।
सदा बसैं तट निकट गंग जलतैं ई जीवैं ॥
गंगारज तन लाइ नहावैं गंगा जलमहँ ।
बसैं गंग पय परसि, अनिल विहरैं जिहि थलमहँ ॥
श्रीगंगा के नाम तैं, कोटि जन्म पातक नसहिं ।
भोगें भूपै भोग बहु, अन्त जाहि सुरपुर बसहिं ॥

इति श्रीभागवत चरितके चतुर्थाहमें श्रीगंगावतरण नामक
चौवीसवाँ अध्याय समाप्त ।



अथ पञ्चविंशतितमोऽध्यायः

[२५]

घन्य भगीरथ गंग लाइ जग कीन्हों पावन।
तिनके सुत श्रुत भये तासु सुत 'नाभ' सुहावन॥
सिन्धु द्वीप तिनि तनय भये तिनिके अयुतायू।
तिनके सुत ऋतुपर्ण सखानलके परमायू॥
दमयन्तीपति नल भये, तिनि कलि दीये दुःख अति।
ह्वै विरूप ऋतुपर्णके, बने सारथी भूमिपति॥

दमयन्ती पति तजी भाग्यवश आई पितु घर।
पति खोजन हित रच्यौ दुबारा मृषा स्वयम्बर॥
नल ऋतुपर्ण समेत ससुर गृह रथ लै आये।
नल दमयन्ती मिले, सुनत सब जन हरषाये॥
काया तैं कलियुग भग्यो, जब नृपके दिन फिर गये।
गयो राज फिरितैं मिल्यो, जग यश भागी नल भये॥

हयविद्या ऋतुपर्ण नृपतिवर नलतैं लीन्हीं।
पासो फेंकन कला तिनहिं बदलेमहँ दीन्हीं॥
सर्वकाल ऋतुपर्ण पुत्र बलवान शूर अति।
सुत सुदास तिनि भये सुरानी मदयन्तीपति॥
मृगया हित बनमहँ गये, हन्यों राकक्षस भूप तहँ।
तिहि भ्राता धारि सूद वपु, करै रसोई महलमहँ॥

राँध्यो नरको माँस परोस्यो नृपति पुरोहित ।
देखि अमेध्य पदार्थ भये गुरुवर अति कोपित ।।
दयो शाप पुरुषाद बने भूपति अति कोप्यो ।
दैवे गुरुकूँ शाप चल्यो मदयन्ती रोक्यो ।।
शाप-नीर पैरनि धर्‌यो, भयो भूप कल्माष पग ।
नरभक्षी नृप मित्रसह, भये ख्यात सौदास जग ।।

मुनि वशिष्ठको शाप नृपति राक्षस बनि विचरैं ।
द्विज दम्पति बनमाँहिँ सुवर संतति हित विहरैं ।।
लगी बुभुक्षा भूप पकरि द्विज खायौ जबहीं ।
द्विजपत्नी अकृतार्थ शाप नृप दीन्हों तबहीं ।।
गर्भाधान करौ जबहिं, तबहिँ होइगी मृत्यु तब ।।
वंशनाश को शाप सुनि, भये दुखित अति सचिव सब ।।

बीते बारह बरस शाप उद्धार भयो जब ।
करिवे गर्भाधान भये उद्यत भूपति तब ।।
बरजे रानी नृपति शाप की याद दिखाई ।
महिषी संतति बिना बहुत रोई घबराई ।।
वंशनाशको भय समुझि, लख्यो न अन्य उपाय तब ।
गुरु वशिष्ठतैं विनय करि भूप प्रार्थना करी तब ।।

बोले नृप सौदास—प्रभो ! अब रक्षा कीजै ।
चलै जासु मनु वंश पुत्र इक गुरुवर दीजै ।।
कीयो गर्भाधान भई अति हर्षित रानी ।
नष्ट वंश नहिं होय बात जिह सबने जानी ।।
सात बरस तक उदरतें, नहीं पुत्र पैदा भयो ।
मदयन्ती अति दुखित ह्वै, बचन पुरोहिततैं कह्यो ।।

भगवन्! का भरि दयो उदर महँ जो नहि निकसत।
अटक्यो एकहि ठौर तनिक तहँ तैं नहिं खिसकत॥
मुनि हँसि लीयो अश्म मन्त्र पढ़ि उदर छुवायो।
मदयन्तीने तुरत सुघर सुत श्रम बिनु जायो॥
प्रमुदित सबही जन भये, राजारानी पुरोहित।
तेई अश्मक नामतैं, भये भूप जगमहँ बिदित॥

अश्मकके सुत भये राजकुलके जो मूलक।
तबई प्रकटे परशुराम क्षत्रियकुल·शूलक॥
नारिनि कवच बनाइ बचाये मनुकुल त्राता।
नारीकवच कहाय भये जगमहँ विख्याता॥
मूलक सुत दशरथ भये, एडबिड हु सुत तासुके।
पुत्र एडबिड बिश्वसह, खट्वाङ्ग हु नृप जासुके॥

दो०—रहें स्वरग खट्वाङ्ग जब, देव कहें वर लेहु।
वय मुहूर्त सुनि नृप कहें, सुर! सत्संगति देहु॥

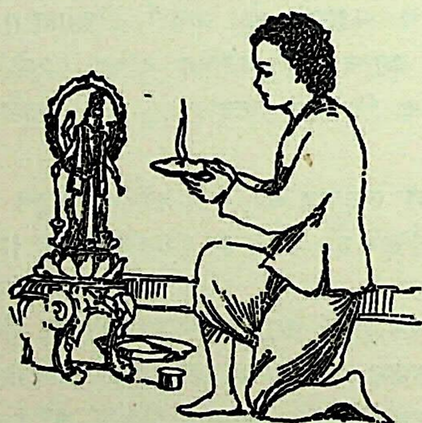
छप्पय—जानी एक मुहूर्त आयु सब जग बिसरायो।
करि कें ध्यान अखण्ड परमपद नृपने पायो॥
तिनके पुत्र दिलीप यशस्वी दीर्घबाहु बर।
सन्तति बिनु अति दुखित गये निबसैं जहँ गुरुवर॥

महिषी संग सुदक्षिणा, लिये जाय गुरुपद गहे।
आशिष दै निज शिष्य तैं, वचन मुदित मन गुरु कहे॥

गौ-सेवातैं पुत्र होहि यह मैंने जानी।
करि सादर स्वीकार नंदिनी सेवा ठानी॥

कृपा नन्दिनी करी भये रघु रविकुल भूषन ।
रघुके अज सुत भये तनिक जिनमहँ नहिं दूषन ॥
अज अति अनुपम नृप भये, इन्दुमतीने जो वरे ।
एकछत्र जगमहँ नृपति, अगणित मख जिनने करे ॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें रघुवंशवर्णन नामक पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ।



अथ षड्विंशतितमोऽध्यायः

[२६]

छप्पय—दाशरथी श्रीराम रमे योगीजन जिनिमें।
प्रथम वन्दना करूँ मृदुल तिनिके चरननिमें॥
रघु कुल पावन परम अधिक यश श्रीहरि दीयौ।
जामें लै अवतार कृतारथ कुल करि दीयौ॥
को कवि उपमा करि सकै, अवधपुरी सुखधाम की।
कहूँ कथा करुनामयी, अब श्री सीताराम की॥

अजके दशरथ पुत्र यशस्वी अति ई पावन।
जिनके यशतैं विमल धवल अब तक यह त्रिभुवन॥
भूपति परम उदार दान बहु विप्रनि दीन्हें।
भूरि दक्षिणायुक्त विषद मख जिन बहु कीन्हें॥
देवासुर संग्राममहँ, असुर पराजित जिन करे।
दिव्य अस्त्र आघात तैं, अगनित सुर कंटक मरे॥

सब सुख नृपके निकट पुत्र बिनु परि अति चिन्तित।
रानी सब सुतरहित वंशधर बिनु अति दुःखित॥
बिनती गुरुतैं करी रचायौ मख सुतके हित।
ऋष्यशृंग पुत्रेष्टि यज्ञ करवायो प्रमुदित॥
बढ़्यो भूमिको भार बहु, सुर सब मिलि हरि ढिंग गये।
सेतु करन भव उदधिपै, अज अच्युत प्रकटित भये॥

अगिनि कुण्डतैं प्रकट भये पायस नृप दीन्हों।
तीनिहु रानिनि दियो भाग न्यायोचित कीन्हों॥
गर्भवती सब भईं सबनिके हिय हुलसाये।
शुभ मूहूर्त शुभ समय राम कौशल्या जाये॥
शुक्लपच्छ मधुमासकी, नवमी अति पावन परम।
प्रकटे रघुकुलचन्द्र शुभ, भयो अजन्माको जनम॥

कैकेयीने कुमर भरत कुलदीपक जाये।
जनम सुतनिकों सुनत अवनिपै बजत बधाये॥
सती सुमित्रा जने संग लछिमन रिपुसूदन।
चारि पुत्र मुख निरखि भूप को अति प्रमुदित मन॥
नामकरन संस्कार गुरु, सबके कीन्हें नेमतैं।
ह्वै हरषित महिषी सबहिं, पुत्रनि पालैं प्रेमतैं॥

अब कछु घुटुअन चलत फिरत इत उत महलनिमहँ।
बलि बलि जावैं मातु बुलावति हँसि सैंननिमहँ॥
छोटी छोटी लटैं लटकि आनन पै बिथुरैं।
चमकीली लखि वस्तु दौरि ताहीकूँ पकरैं॥
पानीकूँ पप्पा कहैं, हप्पा मागैं मातुतैं।
बप्पा भूपतिकूँ कहत, धूलि मलत निज गाततैं॥

चलिबो सिखवन हेतु मातु पग घुँघुरू बाँधे।
पाँ पाँ पैंया चलैं मातुकी उँगली साधे॥
कुत्ता बिल्ली काक पकरिबे हाथ बढ़ावैं।
जब नहिं आवैं हाथ रोइ जननी ढिंग जावैं॥
सम्मुख निरखत वस्तु जो, कर उठाय मुखमहँ धरत।
तोरत फोरत हँसत सब, मनहर शिशु क्रीड़ा करत॥

सखनि संग मिलि करैं खेल अब चारिहु भैया।
चरित निरखि नृप सहित मुदित हों तीनिहु मैया ॥
बड़े भये उपनयन कर्यो गुरु-गृह भिजवाये।
मुनि वशिष्ठ प्रभु शिष्य पाइ अति हिय हरषाये ॥
गुरु सुश्रूषा करहिं सब, पढ़हिँ पाठ एकाग्र चित।
समय शील संकोचयुत, सुनहिँ शास्त्र श्रुति तन्त्र नित ॥

सीखे राखे राम लोक व्यौहार दिखावें।
गुरु महिमाको मर्म शिष्य बनि सबहिँ सुनावें ॥
स्वल्प समयमहँ शास्त्र पढ़े गुरु चकित भये अति।
स्वयं सच्चिदानन्द समुझि अति विमल भई मति ॥
वयकिशोरने वरे जनु, ओठनि छाई कालिमा।
पदतल, अधर, कपोलनिहिँ बढ़ी सबनिकी लालिमा ॥

दोहा—तबहिँ सरसता रामके, कहै कानमें आइ।
बिना शक्ति का करि सकौ, खोजो ताकूँ जाइ ॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें राघवेन्दुचरित अन्तर्गत
प्रथम बालचरित नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त।



अथ सप्तविंशतितमोऽध्यायः

[२७]

हे सीतापति राम! प्रणतपालक परमेश्वर।
हे मिथिलापथपथिक! मुनिनि मखरच्छक सुखकर॥
हे लछिमन सरवस्व! जानकीजीवन जगपति।
हे रघुकुलके तिलक! दीन दुखियनिकी गति मति॥
खण्डन करि हर चापकूँ, अपनाई सीता यथा।
तव पदरज सिर धारि प्रभु, कहूँ ब्याहकी शुभ कथा॥

राम-नाम अति मधुर सुखद सबकूँ सुखकारी।
राम-धाम अति विमल पुण्यप्रद सब अघहारी॥
राम-रूप अति सुघर मनोहर सुख सरसावन।
राम-प्रिया जग जननि जीव जग-जरनि जरावन॥
राम-अनुज आदरश अति, राम भक्त सुख सार हैं।
राम-चरित पावन परम, होवें सुनि भवपार हैं॥

वनमें विश्वामित्र करें तप यज्ञ रचावैं।
यातुधान तहँ आइ यज्ञको अगिनि बुझावैं॥
बार बार बहु विघ्न करें मिलिकें खल आवैं।
मुनि मन सोचें—शाप देहुँ सब सुकृत नसावैं॥
करन कृतारथ जननि हरि, धरम सेतु बाँधन निमित।
भये अवधमहँ अवतरित, भक्त, धेनु, सुर, संत हित॥

जाऊँ तिनिकी शरन तिनहिँ सब विपति सुनाऊँ।
दशरथकूँ समुझाइ अनुजयुत उनकूँ लाऊँ॥
मखपति जगपति सकल विश्वपति बनमहँ आवें।
तो संतनिके सकल शोक दुख भय भगि जावें॥
प्रभु दरशन करि सब सुकृत, जप तपको फल पाउँगो।
द्वार देवके जाइकें, अवसि तिनहिँ लै आउँगो॥

तिनिकी बिछुरी शक्ति मिलाऊँ जग यश पाऊँ।
जोरी बनै मजूक युगल छविकूँ नित ध्याऊँ॥
शक्ति सिया मिलि जाइँ होहिं अवतार सरस अति।
कविगन होंहिँ कृतार्थ भनैं शुभ चरित यथामति॥
विश्वामित्र विचार करि, अति प्रसन्न मनमहँ भये।
राम लखन याचन निमित, अवधपुरीकूँ चलि दये॥

आये विश्वामित्र राम लछिमन तिनि माँगे।
बचन शूल सम नृपति हियेमहँ मुनिके लागे॥
गुरु बशिष्ठ समुझाइ दये मुनिकूँ दोऊ सुत।
मुनिके पीछे चलें राम लछिमन अति प्रमुदित॥
मिली ताड़का पन्थमहँ, मारी गुरु आज्ञा दई।
प्रभु छोड्यो शर सरतैं, लग्यो हियेमहँ मरि गई॥

मारि ताड़का चले फेरि सिद्धाश्रम आये।
गुरु मख दीक्षित भये राम रक्षक कहलाये॥
पूर्णाहुति के दिवस निशाचर दल इक आयौ।
मार्यो राम सुबाहु लंक मारीच पठायौ॥
मखरक्षक श्रीरामपै, अति प्रसन्न मुनिवर भये।
आशिष दुलहिनि देनहित, धनुषयज्ञमहँ लै गये॥

सोरठा—सम्मुख निरखे राम, अति विनीत शोभासदन ।
प्रेम सहित लै नाम, कौशिक सिर सूँघन लगे ॥

छप्पय—बोले विश्वामित्र—तात ! मिथिला मख भारी ।
भूप जनककी परम सुन्दरी एक कुमारी ॥
चलो तहाँ सो मिलै धनुष मख अति सुखदायक ।
मुनिवर की सुनि बात सहमि सकुचे रघुनायक ॥
सिर नीचो करि सिकुड़िकें, बोले श्री रघुनाथ तब ।
चाहें जहँ प्रभु लै चलें, सौंपे पितु हम हाथ तब ॥

कौशिक मुनि हँसि परे कहें-तुम च्यौं सकुचाओ ।
मिथिला मम सँग चलो अवसि दुलहिनि तुम पाओ ॥
यों कहि लैकें संग चले मुनि कथा सुनावत ।
निरखें मुनि हँसि जबहिं राम तबही सकुचावत ॥
चलत चलत मगमहँ मिली शिला, नारिके सरिस बन ।
प्रभु पूछें—कैसी शिला, सुनि मुनि बोले तपोधन ॥

गौतम ऋषि की नारि अहल्या है यह रघुबर ।
छल कर नास्यो धरम कपटपति बन्यो पुरन्दर ॥
आये मुनि सब समझि इन्द्रकी दुरगति कीन्हीं ।
शाप नारिकूँ दयो शिला सम सा करि दीन्हीं ॥
निज पदरज दै अब हरहु, गुरु अनुशासन मानि हरि ।
परसी पगतैं सो तुरत, करै विनय उठि पैर परि ॥

(१)

हे हरि ! हों अति निन्दित नारी ।
नहिँ प्रभु जप तप पूजा कीन्हीं, करी न विनय तुम्हारी ।
विषय भोगमहँ सब छिन खोये, पाप करे अति भारी ॥ हे हरि०

यौवन मदमहँ है मदमाती, नहीं भजे मदहारी।
निजपति परपति भेद न समुझ्यो तन मन, बुद्धि बिसारी॥ हे हरि०
हौं पतिप्राना परमप्रेयसी, अति सुन्दर सुकुमारी।
पतन हेतु अभिमान बढ़ायो, मदन मोर मति मारी॥ हे हरि०
पतित उधारन सब जग पावन, आये द्वार खरारी।
करी कृतारथ भई यथारथ, चरन कमल बलिहारी॥ हे हरि०

(२)

प्रभुजी! तुमरो एक सहारो।
पाप करत निसि बासर बीते, रट्यो न नाम तिहारो।
भववारिधि में डूबि रही हूँ, दीखै नाहिँ किनारो॥ प्रभुजी०
माता पिता सगे सम्बन्धी, कोई नहीं हमारो।
शरन गही है तब चरननिकी, अशरनसरन उबारो॥ प्रभुजी०
परमारथ पथ लगै न हितकर, पाप लगै अति प्यारो।
पतित उधारन हौ तुम रघुवर, पापिनिकूँ हू तारो॥ प्रभुजी०
बनी पषान परी प्रभु पगमहँ, नाहिँ कोई रखवारो।
स्वयं आइ अपनाई राघव, अब नहिँ कबहुँ बिसारो॥ प्रभुजी०

छप्पय—सुनी अहल्या विनय राम मनमहँ मुसकाये।
करि सेवा स्वीकार सरल शुभ वचन सुनाये॥
पतिपदमहँ अनुराग करो तिनि ईश्वर जानों।
भामिनि-मेरो रूप उनहिँकूँ निशि दिन मानों॥
यों शिक्षा दै राम पुनि, जनकपुरीकूँ चलि दये।
शुद्ध अहल्याकूँ निरखि, गौतम अति प्रमुदित भये॥

मगमहँ गौतम नारि तारि मिथिलापुर आये ।
राम सहित मुनि पूजि जनक निज महिलनि लाये ।।
राम निहारी सीय हियेमहँ तुरत छिपाई ।
निरखैं सीता राम मनहुँ खोई निधि पाई ।।
भूप स्वयम्वर सीय हित, रच्यो शम्भु धनु धरि दयो ।
खींचि धनुष सिय बर बनैं, शतानन्द नृप प्रन कह्यो ।।

सबई थाके भूप धनुष नहिँ उठै उठाये ।
गुरु आयसु सिर धारि राम सम्मुख धनु आये ।।
सीय दीठितैं दीठि मिली दोऊ मुख मोर्‌यो ।
सिय मुख दीठि न लगै रामने धनु तृन तोर्‌यो ।।
धनुष भंग शिवको भयो, अङ्ग अङ्ग सियके खिले ।
चकवा चकवी सरिस सिय, राम नसैं धनु तम मिले ।।

भेजे भूपति दूत सुनत दशरथ हरषाये ।
सजि बरात गुरु भरत शत्रुहन सँग नृप आये ।।
राम लखन इत भरत शत्रुहन चारिहुँ भाई ।
उत सीता उर्मिला मांडवी कीर्त्ति सुहाई ।।
विधिवत भये विवाह शुभ दुलहा दुलहिन संगमहँ ।
सुतनि बहूनि समेत लखि, नृप समाइँ नहिँ अंगमहँ ।।

बिदा करन बर बधुनि सकुचि महलनिमहँ आये ।
माता पुत्रिनि परम पतिब्रत धरम सिखाये ।।
जनक जननि तैं मिलीं बिलखि चारिहुँ सुकुमारी ।
पुत्रिनि रोवत निरखि जनक सुधि देह बिसारी ।।
करि बिवाह ह्वै कें बिदा, बधुनि सहित नृप घर चले ।
क्षत्रिय कुलनाशक परशु—राम कुपित मगमहँ मिले ।।

गर्जे तर्जे परशुराम रघुपति मुख मोर्‌यो ।
दयो विष्णु को धनुष ताहि रघुनायक तोर्‌यो ॥
जामदग्न्यकी आँखि खुलीं बिनती बहु कीन्हीं ।
गिरि महेन्द्रकूँ गये शक्ति तिनकी हरि लीन्हीं ॥
नृप दशरथ ह्वैकें मुदित, आये पुर वरबधुनि सँग ।
ज्यों-ज्यों पुर आवत निकट, होहिँ सबनिके पुलक अँग ॥

इत महलनिमहँ मातु मनावें कब सुत आवें ।
कब सुकुमारी सकल सुन्दरी दुलहिनि लावें ॥
इतनेमें संवाद सुन्यो दुलहिनि सब आवत ।
भई मुदित मन मातु हरष हिय नाहिँ समावत ॥
कर्‌यो आरतो अरघ दै, नेग जोग सबही करहिँ ।
दुलहिनि घूँघट मारिकें, सब सासुनिके पग परहिँ ॥

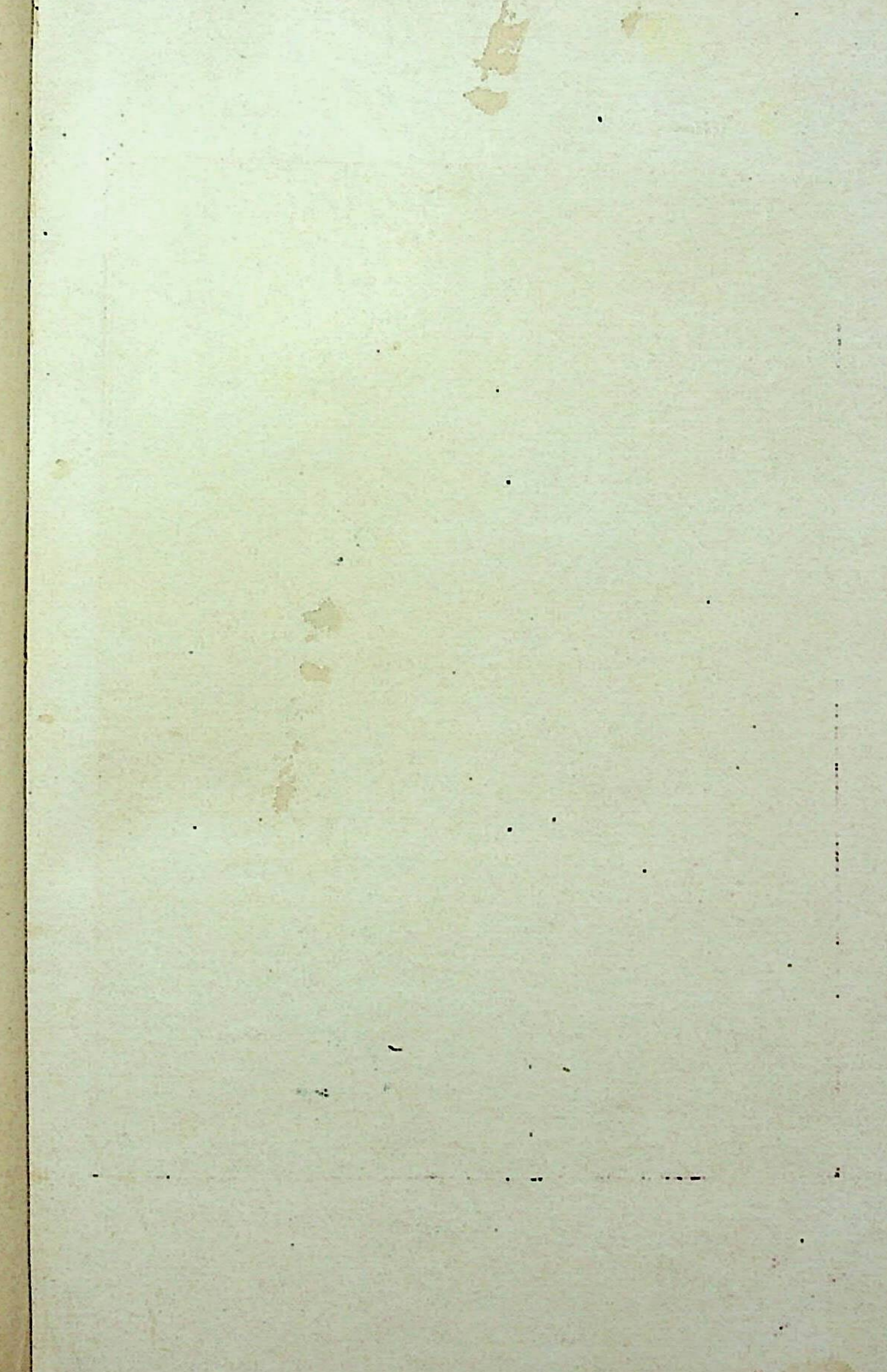
सबके पाँइनि लगीं सुतनि सँग बहू निहारीं ।
लेइँ बलैयाँ मातु रूप लखि जावें वारीं ॥
मुँह दिखाव को नेग भयो सब धन मनि देवैं ।
सकुची सहमी बहू देखि घूँघटतैं लेवैं ॥
कनकभवन कैकेयिने, जनकदुलारीकूँ दयो ।
देउँ कहा हौं बहूकूँ, सोच मातुके मन भयो ॥

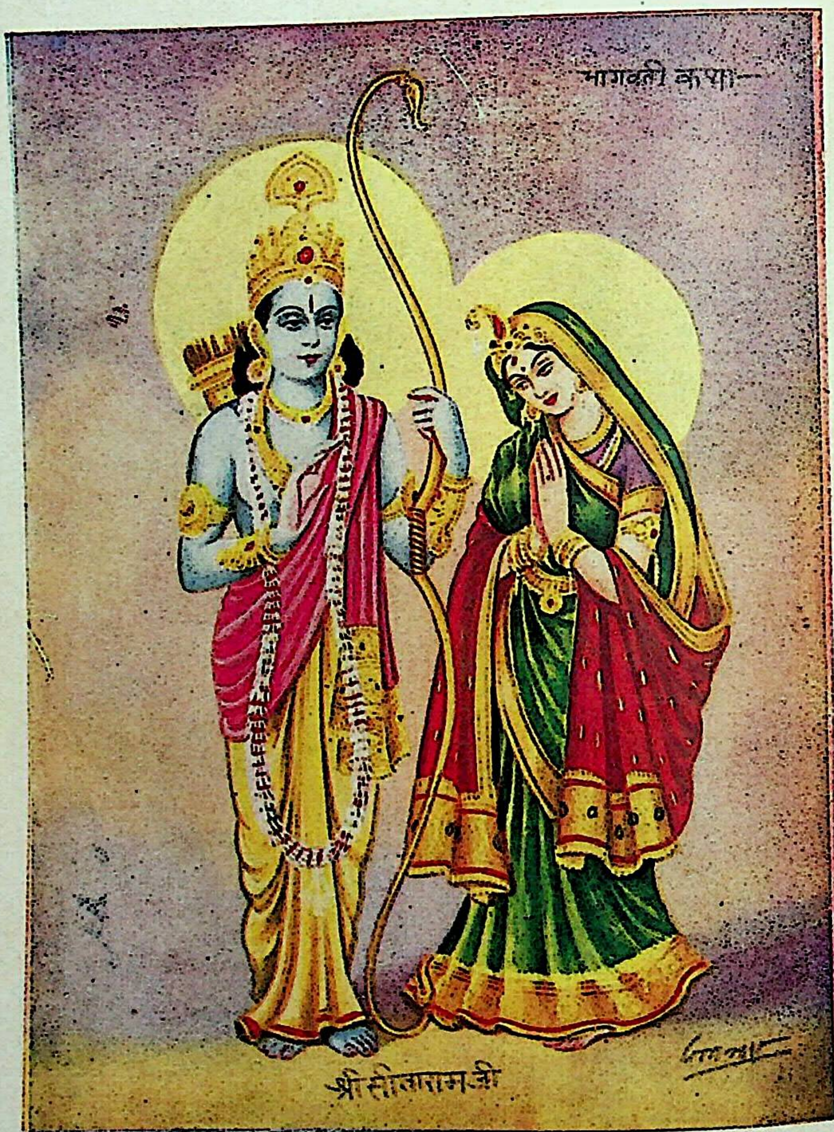
कौशल्या सुत-बधू रूप छवि पुनि पुनि पेखें ।
मन न हिये समाइ चकित चित दोउनि देखें ॥
मनि मुक्ता धन रत्न, देहुँ का तुच्छ सबहिँ हैं ।
मेरी जीवन मूरि परम धन रामललहिँ हैं ॥
यों माता मन सोचिकें, राम कमलकर कर लयो ।
जनकदुलारीके मृदुल, करकमलनिपै धरि दयो ॥

मन मुसुकाईं सीय राम अतिशय सकुचाये ।
सब दुलहिनि इस्नान शयन भोजन करवाये ।।
चारिहु विहरें रमा उमा रति शचि सम दुलहिनि ।
हरि हर काम सुरेन्द्र संग लै मानों महलनि ।।
होहिँ मुदित माता सकल, पुत्र वधुनि लखि कमलमुख ।
करि क्रीड़ा रघुनाथ, प्रिय पितु मातनि नित देहिँ सुख ।।

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें राघवेन्दु चरित अन्तर्गत
द्वितीय विवाह चरितनामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ।







श्री सीताराम

अथ अष्टाविंशतिमोऽध्यायः

[२८]

भरत शत्रुहन गये मातुगृह कैकयपुरमहँ ।
राम हिँ युवराज भई इच्छा नृप उरमहँ ।।
सबनि समरथन कर्यो तिलककी भई तयारी ।
किन्तु कूबरी कुटिल बीचमहँ बात बिगारी ।।
कान केकयीके भरे, मँगवाये द्वै बर तुरत ।
बसैं चतुरदश बरस बन, राम राज्य पावहिं भरत ।।

दशरथ अनुनय विनय करी रानी न पसीजी ।
बज्र हृदय बनि गई मन्थरा विषमहँ भीजी ।।
प्रात सूततैं तुरत भूप रघुबर बुलवाये ।
मातु पिताकी दशा देख रघुपति घबराये ।।
जब नहिं बोले नृपति कछु. कथा केकयी सब कही ।
उठे बिलखि नृप राम कहि, परि पापिनि बैठी रही ।।

कौशल्या ढिँग जाय राम चरननि सिर नायो ।
लखन कोप अति कर्यो नृपति मत नहिं मन भायो ।।
माताकूँ समुझाय बन्धुकूँ शिक्षा दीन्हीं ।
जस तप धर्म बताइ जननितैं अनुमति लीन्हीं ।।
बैदेही बन चलन हित, हठ अति कीन्हीं सँग लई ।
चले राम पाछें लखन, मध्य जानकी चलि दई ।।

सुनी कालि युवराज बनें परि अब बन जाहीं ।
हक्की बक्की भई मातु तनकी सुधि नाहीं ।।
भोरी भारी कुसुमकली सी सिय सुकुमारी ।
जाइ राम सँग मातु निरखि अति भई दुखारी ।।
राम कहाँ मेरे तनय, कहाँ जनककी नन्दिनी ।
रहूँ हाय ! कैसे यहाँ, हौं बैरिनि बनि बन्दिनी ।।

तड़पै पुनि पुनि गिरै उठै इत उतकूँ भागै ।
राम कौन मग जाइँ शून्य सबरो जग लागै ।।
हे सुकुमारी प्रानपियारी बेटी सीता ।
जनकदुलारी अरी होहि बनमहँ भयभीता ।।
राम मोइ बन लै चलो, अवधपुरी नहिँ रहुङ्गी ।
सहौं विपति तेरे निमित, बेटा ! अब नहिँ सहुङ्गी ।।

मेरो भोरो राम निरदयी कौनें कीन्हों ।
मोइ संग नहिँ लेइ लखन हू सँग लै लीन्हों ।।
बेटा लछिमन पैर परूँ सँग लै चलि मोकूँ ।
छाँह करति मग चलूँ कष्ट दुङ्गो नहिँ तोकूँ ।।
डकरावै निज सिर धुनै, माँ पगली अट पट बकै ।
दशा देखि दयनीय अति, धीरज को नर धरि सकै ।।

इत नितुके पग बन्दि केकयीतैं पट पाये ।
पहिने बलकल वसन सीय सँग रघुबर आये ।।
लछिमन पीछें चलें निरखि पुरजन डकरावें ।
रघुनन्दन तजि कबहुँ लौटि हम घर नहिँ जावें ।।
हरष विषाद न राम मन, रथपै बैठे आइकें ।
निरखि मातु विह्वल भई, घेर्‌यो रथकूँ जाइकें ।।

बिना बत्सके धेनु सरिस माता रथ घेर्यो ।
रोवत लखि नर नारि राम मुख रथमें फेर्यो ॥
बिहरै बाल बखेरि राम कहि रोवै जननी ।
बहैं नयन जलधार भई गीली सब धरनी ॥
राम कहाँ ? लछिमन कहाँ ? बड़भागी सीया कहाँ ?
मैं हूँ जाऊँ संगमहँ, जाइँ लाल मेरे जहाँ ॥

सोरठा—इतने में चिल्लात, निकसे भूपति महलतैं ।
रोवत नंगे गात, डगमग डगमग परत पग ॥
राम कहैं बिलखाइ, दृश्य भयो जब करुन अति ।
अब नहिँ देख्यो जाइ, हाँकौ रथकूँ सूतजी ॥
हाँकि दयो रथ सूत, नृप धड़ामं धरनी गिरे ।
कहाँ गये मम पूत, नृप कौशल्या मिलि कहें ॥

छप्पय—राम गये बन नृपति फेरि सुरलोक सिधारे।
गुरु बुलवाये भरत बृत्त सुनि भये दुखारे ॥
पितुके सब करि करम मनावन चले राम बन ।
रटत राम रज चरणमाँहिँ तनु छबिमहँ लय मन ।
चित्रकूटपै लखन सिय, राम भरत लखि पग परे ।
ह्वै अधार रोये भरत, नयन नोर सबके भरे ॥

पुचकारे लघुबन्धु धरम अरु नीति सिखाई ।
पितु गौरवकी बात बिबशता राम बताई ॥
भरत मरम सब समुझि दण्डवत् पग परि कीन्हीं ।
रामरजायसु पाइ पादुका प्रभुकी लीन्हीं ॥
निवसैं नन्दीग्राममहँ, छाल बसन अति छीन तन ।
राम रटहिँ यवब्रत करहिँ, राम चरनमहँ लीन मन ॥

चित्रकूटतैं चले राम इत दंडकवनमहँ ।
निरखि राम सिय लखन होहिँ मुनि प्रमुदित मनमहँ ।।
अत्रि अगस्त्य सुतीक्ष्ण आइ मुनि पावन कीन्हें ।
भये कृतारथ सबहिँ स्वयं हरि दरशन दीन्हें ।।
बसहिँ राम सिय संगमहँ, पंचवटीमहँ करि कुटी ।
रामरूप फँसि भई जहँ, रावणभगिनी नककटी ।।

दूषण खर अरु त्रिशिर रामतैं लड़िवे आये ।
निशिचर चौदह सहस राम यमसदन पठाये ।।
निशिचर कीट पतंग राम लौमहँ जरि जावैं ।
गूलर सम गिरि जायँ राम जब बान चलावैं ।।
यातुधान जब सब मरे, चली लंककूँ नककटी ।
मरहिं निशाचर बेगि कब, लगी रामकूँ चटपटी ।।

रावणके ढिँग जाय रोइ बोली नकटी सुनि ।
पंचवटीमें रहैं राम लछिमन बनिकें मुनि ।।
सङ्ग सीय इक सुघर नारि रति सम सुकुमारी ।
भाभी मेरी बनें बात मनमाँहिँ विचारी ।।
तिनि सुनि मम प्रस्तावकूँ, नाक काटि मेरी लई ।
खर, दूषण, त्रिशिरा मरे, अपकीरति तेरी भई ।।

निरखि बहिन अपमान रक्त खौलै नहिं तेरो ।
रावण बोल्यो—बहिन ! निरादर है जिह मेरो ।।
छल बल तैं तिनि मारि नारि तिनकी लै आऊँ ।
मृग बनाइ मारीच तहाँ हौं अबई जाऊँ ।।
हरि रावनतैं कनकको, बनि मरीच मृग चलि दयो ।
पंचवटी ढिँग फिरहि खल, सीताकूँ विस्मय भयो ।।

इति श्रीभागवत चरितके चतुर्थाहमें राघवेन्दुचरित अन्तर्गत तृतीय वनचरित नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ।

अथ एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः

[२९]

हे सीतापति ! लखनबन्धु ! भक्तनि सुखदाता ।
हे अनाथके नाथ ! पतित पावन भयत्राता ॥
हे शोभाके धाम ! राम ! जग रमिवे वारे ।
हे वनवासी राम ! मुनिनि मन हरिवे वारे ॥
हे जगपावन ! तव चरन-रेखारञ्जित धूरि जो ।
कहूँ कथा सिर धरि विमल, भक्तनि जीवनि मूरि जो ॥

राम ! हृदयमहँ बसो कामकूँ तुरत भगाओ ।
राम ! मलिन मारीच बन्यो मन मारि गिराओ ॥
राम ! सिन्धु भव बहत सेतु करि पार लगाओ ।
राम ! निहारैं राह आइ तन तपन बुझाओ ॥
राम ! न साधन भजन मन, बने परे पाषान हम ।
राम ! छुआओ चरन निज, हो जड़ चेतन करन तुम ॥

कनक हिरन बनि गयो दुष्ट मारीच निशाचर ।
मनि मुक्ताकी पूँछ रूप अति अद्‌भुत सुन्दर ॥
क्रीड़ाकानन जनकनन्दिनीके में आयो ।
चरिबे लाग्यो दूब सीय लखि मन ललचायो ॥
करति प्यार अति मृगनितैं, नृप विदेहकी प्रिय लली ।
जाइ जिवाऊँ सुघर अति, सोचि प्रानपति ढिँग चली ॥

बोली पतितैं लिपटि—हरिन जिह अद्भुत प्रियतम ।
पकरो जाकूँ खेल कर्‌यो करिहैं मिलि हम तुम ।।
सीताकूँ सुख दैंन चले शर धनु लै रघुवर ।
अति उत्सुकता बढ़ी कनक मृगको हित हरिउर ।।
धनुधारी रघुनाथकूँ, लखि पीछे भाग्यो असुर ।
मारहिं नहिं पकर्‌यो चहें, सोचहिं प्रभु मृग अति सुघर ।।

नहिं जब आयौ हाथ तीर तकि सियपति मार्‌यो ।
हा सीता ! हा लखन ! रामस्वर माँहिं पुकार्‌यो ।।
लखि रजनीचर राम भये व्याकुल इत सीता ।
पति आरत सुनि शब्द भईं भामिनि भयभीता ।।
पग पगपै प्रिय प्रेममहँ, अनहित आशङ्का रहत ।
बचन कहे कछु कटु कुमरि, दास लखन सिर धुनि सहत ।।

बोले लछिमन—त्रियाचरित मत मातु दिखाओ ।
कहें जानकी—मरूँ राम ढिँग यदि नहिं जाओ ।।
लखन दुखित ह्वै चले दशानन तब तहँ आयो ।
साधु समुझिकें सीय सहमि सादर बैठायो ।।
दुष्ट सीय लै चलि दयो, धेनु बधिक फंदे परी ।
दुखित गीध स्वर सुनि भयो, जानि दशानन सिय हरी ।।

टूट्यो नभतैं गीध झपट्टा रथपैं मार्‌यो ।
तोर्‌यो रथ हय मारि सारथी हू संहार्‌यो ।।
रुदन जानकी करें तात कहि कहि चिल्लावैं ।
इत उत दौरें गिरें परें मूर्छित ह्वै जावैं ।।
करि विलाप पुनि पुनि कहति, हे खग मृग तुम बन फिरत ।
कहियो मम पति तें तुरत, लै हरि रावन गयो इत ।।

बैंनी झोटा खाइ गिरैं केशनि की माला।
जेट नगनिकी भरैं फिरैं ब्याकुल बनि बाला॥
सचर अचर सम भये डरैं सबई रावन तें।
जनकसुता दुरदशा लखैं खग मृग छिपि बन तें॥
हा प्यारे देवर लखन! हा जीवनधन प्रानपति।
परी दुष्टके फंदमें, गीधहु पाई परमगति॥

समर दशानन सङ्ग गीधने अद्भुत कीन्हों।
अश्व सारथी मारि निशाचर मूर्छित कीन्हों॥
पुनि घायल करि गृद्ध चल्यो सीता लै रावन।
किष्किन्धापै फैंकि दये सिय पट आभूषन॥
पुरी लंक लै जाय सिय, बन अशोकमहँ रखिदई।
असन बसन तिनि सब तजे, पति बियोगमहँ कृश भई॥

इत मारीचहिं मारि लखन लखि राम रिस्यावत।
कुटी सीय बिनु निरखि बिलखिरोवत पछितावत॥
जड़ चेतनको भेद भूलि भामिनि हित भटकैं।
खग मृगतैं सिय पतो पूछि सिर धुनि कर पटकैं॥
इत उत चितवत चकित ह्वै नयन नीर धारा बहत।
तात धीर धारन करो, राम अनुज पुनि पुनि कहत॥

सोरठा—दुखी प्रिया बिनु राम, राजिवलोचन भुवनपति।
लै लै सियको नाम, पूछत सबईतैं फिरैं॥

छप्पय—निम्ब! कदम्ब! रसाल! पनस! सिय पतो बताओ।
प्रिया छिपी तुम कहाँ शीघ्र शशिबदन दिखाओ॥
जाइ तरुनि ढिंग कहत जनकतनया तुम देखी।
सरिता गोदावरी! कहो सखि सिय तुम पेखी॥

यों प्रलाप पुनि पुनि करें, सिरी सरिस राघव भये।
सर, सरिता, बन, कन्दरा, ढूँढ़त दिशि दच्छिन गये ।।

निरखि सीय पद चिन्ह पुष्प मृत हियट्यो धनु।
सियसिर सेवित सुमन भये लखि मृत अम्मृत जनु ।।
गृद्धराजकी दशा देखि भूले सिय बिछुरन।
चाचा कहि-कहि चरन पकरि प्रभु लागे रोवन ।।
जनम मरनतैं छूटि तनु, तज्यो गीध भरि मोद महँ।
रामरूप हिय राम मुख, देह रामकी गोद महँ ।।

गीध कर्म सब करे परमगति ताहि दिखाई।
कियो कबन्ध कृतार्थ सुरति शबरीकी आई ।।
शबरी निरखे राम धाम शोभा शुभ खानी ।।
समुझि साधना सफल सकल फलकर्म भुलानी।
आतिथ करि रघुनाथको, भगतिनि अति प्रमुदित भई।
राम नाम मुख हृदय छबि, धरि तनु तजि हरिपुर गई ।।

ढूँढ़त ढूँढ़त राम गये सबरीके आश्रम।
निरखि मुदित अति भई तापसी समुझि सफल श्रम ।।
चखि चखि लाई बेर प्रेम लखि हरि हुलसाये।
लखन संग अति ललकि बेर भिल्लिनिके खाये ।।
सबरी बोली—जगतपति, पंपासर ढिंग जाइकें।
कपिपतितैं मैत्री करो, लावै सिय ढुढ़वाइकें ।।

प्रेम बेर चखि चले सोच सीता हित भारी।
कपि कस होवै मित्र मिलै कस जनकदुलारी ।।
अगनित जे छिनमाँहिँ बिश्व ब्रह्माण्ड बनावें।
ते कपि मैत्री चहैं करुन नरनाट्य दिखावें ।।

राम लखन सुग्रीव लखि, पवनतनय पठये तहाँ।
सिर चढ़ाइ लाये तुरत, हरि कपिवर बैठे जहाँ॥

रघुवर परिचय पाइ आइ बैठे सब बानर।
करे सखा सुग्रीव राम करुनाके सागर॥
रोइ रोइ सुग्रीव दुखद निज कथा सुनाई।
दशा देखि अति दीन दया राघवकूँ आई॥
भुज उठाइ प्रभु प्रन कर्यो, सखा काज हौं करहुँ सब।
सिय पट भूषन कपि दये, लखि प्रभु ब्याकुल भये तब॥

एक बानतैं सात ताल बेधे जब रघुपति।
भइ प्रतीति कपि हृदय हर्ष मनमहँ बाढ़्यो अति॥
संग लिये सुग्रीव बालि बध हित हरि आये।
समर हेतु सुग्रीव बालि ढिंग तुरत पठाये॥
बालि भिड़्यो सुग्रीवतैं, गुत्थम गुत्था ह्वै गई।
भग्यो दुखित लघु बन्धु जब, पुनि पठये उर स्रग दई॥

मालातैं पहिचानि बालि उर शर हरि मार्यो।
राम बानतैं मरत तुरत हरिलोक सिधार्यो॥
सुत अङ्गदकूँ सौंपि परमपद पायो कपिपति।
राज पाइ सुग्रीव काममहँ फँसी तासु मति॥
चारि मास गिरि गुहा महँ, बसे राम कपि काममहँ।
फँस्यो, किन्तु हनुमानमन, सदा बसै श्रीराममहँ॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें राघवेन्दुचरित अन्तर्गत चतुर्थ सीताहरणचरित नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त।

अथ त्रिंशत्तमोऽध्यायः

[३०]

हे रघुनायक राम ! गीधकूँ शुभ गति दाता ।
हे भुवनेश्वर ! सकल जगतके तुम पितु माता ।।
हे सबरी सरबस्व ! भिल्लिनी प्रिय रघुनन्दन ।
हे बदरी प्रिय ! सखा कपिनिके दुष्ट निकंदन ।।
हे प्रनपालक विरहरत, हे सीताहित दुखित अति ।
सीय मिलनकी शुभ कथा, कहूँ होहि तब चरन रति ।।

राम कामनाहीन करें क्रीड़ा करुणाकर ।
नीरस जगकूँ सरस करन प्रकटें प्रभु दुखहर ।।
मनुज सरिस शुभ चरित दिखावहिँ जन मनरंजन ।
सुखी करन निज जननि करहिँ हरि करुणाक्रंदन ।।
करें कामना भक्त जब, तब तैसे बनि जात हैं ।
ह्वैकें सर्व समर्थ प्रभु, भक्तनि हाथ बिकात हैं ।।

हनुमत सिखतें सीय खोजिवे दूत पठाये ।
राम रजायसु पाइ लखन कपिपति धमकाये ।।
त्यागि काम सुग्रीव काम रघुपतिके आये ।
इत उत भेजे और पवनसुत लंक पठाये ।।
अंगदादि कपि सँग चले, दई मुद्रिका सीयपति ।
सिन्धु लाँघि लंका गये, हनुमत हिय उत्साह अति ।।

इत उत ढूंढ़त फिरे मिली नहिँ जनकदुलारी।
करूँ कहा मरि जाउँ पवनसुत बात विचारी॥
पुनि कछु धरिकें धीर गये जब पुरके बाहर।
उपवन लख्यो अशोक लखीं जननी तहँ तरुतर॥
वृक्ष शिंशिपा छाँहमें, राम राम प्रति पल रटत।
निरखी कपि साकार छवि, आलोकित उपवन करत॥

निकट पहुँचि हनुमान रामको चरित सुनायो।
सुनत राम गुन गान हृदय माँको भरि आयो॥
पूछें—को तुम तात! उड़ैलो श्रवननिमहँ रस।
प्याओ मधुमय अमृत परम दुरलभ रघुपति यश॥
अञ्जलि बाँधैं पवनसुत, आये सम्मुख सीयके।
भक्त समुझि पूछन लगीं, समाचार सब पीयके॥

विनय सहित इतिहास पवनसुत सकल सुनायौ।
सुनत रामको विरह सीय नयननि जल छायौ॥
रोवैं अरु पछिताइँ शोकमहँ गिरि गिरि जायें।
नेह नाथको सुमिरि लखनकी भक्ति सराये॥
प्रभुपद कपिको नेह लखि, आशिष सीताने दई।
अरपन कीन्हीं मुद्रिका, निरखि मुदित अतिशय भई॥

मातु कहें—कछु कंद मूल फल बेटा! खाओ।
छिपिकें पत्तनिमाहिँ राति इक यहाँ बिताओ।
कपि हिय हर्ष अपार खाइ फल वृच्छनि तोरें।
दूरि उखारें फेंकि कछुनिपै चढ़ि झखझोरें॥
आये लड़िबे निशाचर, मारि पठाये यमसदन।
नागपाशमहँ बँधि गये, कुपित कहै लखि दशानन॥

मारौ कपिकूँ तुरत बिभीषन नीति बताई।
कपड़ा तेल लपेटि पूँछमहँ आगि लगाई॥
कपिहित शीतल अनल भये सब पुरकूँ जारैं।
पकरन आवें निकट पूँछ कसि मुँहपै मारैं॥
मैया बप्पा करि भगें, खिलखिलाय हनुमत हँसें।
बिना जरे निरखें भवन, कूदि तुरत तामें घुसें॥

अनल लपट अति उठत जरत सब चटचट चटकत।
निकरि निकरि सब भगत फिरत बिलखत सिर पटकत॥
यातुधानिनी जरहिँ देहिँ रावनकूँ गारी।
जिह हरि लायो सीय रूपमहँ मृत्यु हमारी॥
इरि फिरि जार्‌यो नगर सब, पवनतनय प्रमुदित भये।
पुनि सागरमें न्हायकें, जगजननीके ढिँग गये॥

हाथ जोरि कपि कहें—चिन्हारी दें कछु माता।
आवें सजिकें सेन अनुज सँग भवभयत्राता॥
अनुमति सियकी पाइ चले पुनि गर्जत तर्जत।
करत सबनि भयभीत यातुधाननि मद मर्दत॥
यों लंकाकूँ जारिकें, कूदि पार सागर गये।
निरखे विजयी पवनसुत, अंगदादि प्रमुदित भये॥

है प्रसन्न सब चले रामढिँग मिलि कपि आये।
सुखद सीय सम्वाद आइ सियपतिहिँ सुनाये॥
चूड़ामणि हनु दई पाइ प्रभु हिये लगाई।
उर अस बाढ़्यो प्रेम मनहु वैदेही पाई॥
कपिपति सेना बानरी, साजि समर हित चलि दये।
लाँघि नदी गिरि नीरनिधि, तीर पहुँचि बिस्मित भये॥

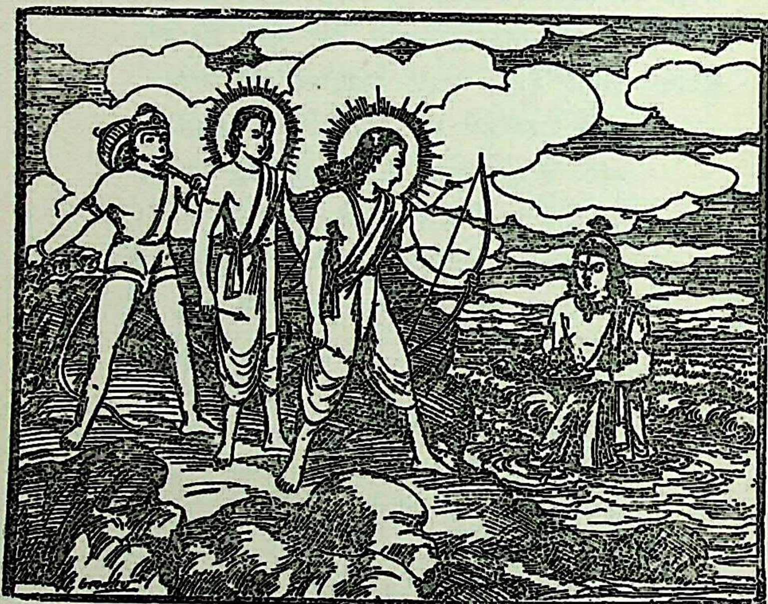
इत जारी कपि लंक शङ्क रावन हिय पैठी ।
देहुँ जानकी नहीं बात खलके मन बैठी ॥
सब सुत सचिव बुलाइ समर हित सम्मति पाई ।
किन्तु न सहमत भये बिभीषन छोटे भाई ॥
नीति बिभीषनकी सुनी, भयो कुपित अति दशानन ।
नाश समय लखि भक्त बर, तुरत गये तब हरि शरन ॥

दोहा—सचिवनि सँग रावन अनुज, पहुँचे प्रभुढिँग जाय ।
बिलखि बिनय लागे करन, सीतापतिहिँ सुनाय ॥

छप्पय—आयो तुमरी शरन दीनवत्सल सुनि स्वामी ।
सुनत शरन हरि लये कृपानिधि अन्तरयामी ॥
सचिवनि करी कुतर्क राम एकहु नहिँ मानी ।
तनिक न शङ्का करी भक्तहियकी सब जानी ॥
बन्धु तिरस्कृत बिभीषन, लखे राम दुःखित भये ।
तुरत मँगायो सिन्धुजल, झट लंकापति करि दये ॥

पाइ बिभीषन राज चरन प्रभुके गहि लीन्हें ।
कहें—कृपानिधि ! प्रनतपाल प्रन पूरे कीन्हें ॥
तामस तनु रिपुअनुज बन्धुने मारि भगायो ।
साधनहीन अनाथ नाथ ! फिरिहू अपनायो ॥
राज पाट ऐश्वर्य सुख, नहिँ चाहूँ अपवर्ग गति ।
जब जब जनमूँ तब चहूँ, प्रभु पद पद्मनि सुदृढ़ रति ॥
सुनी बिमीषन बिनय कृपामय बोले बानी ।
मोकूँ पावैं भक्त नहीं पावैं अभिमानी ॥
अब जलनिधितें पार होनकी युक्ति बताओ ।
कहें बिभीषन—सिन्धु शरनमें प्रभुवर जाओ ॥
लछिमन यह मत नहिँ रुच्यो, किन्तु राम अनशन कर्यो ।
कुश बिछाय मौनी बने, लधि जध तीर धरनो धर्यो ॥

पार जान हित सिन्धु विनय रघुपति अति कीन्हीं ।
किन्तु जलधि जड़ गैल नहीं रघुबरकूँ दीन्हीं ॥
कर्यो कोप करुणेश धनुषपै शर सन्धान्यो ।
लख्यो वेष बिकराल नाश निज जलनिधि जान्यो ॥
तुरत रूप रखि भेंट लै, आयो राघवकी शरन ।
हाथ जोरि गद्गद गिरा, लग्यो विनय इस्तुति करन ॥



हे अनाथके नाथ ! दीन दुखियन दुखत्राता ।
हे कृपालु करुणेश ! शान्ति सत सुखके दाता ॥
हे अनादि अखिलेश ! अनामय अज अघहारी ।
हे अच्युत अवधेश ! अमरपति लीलाधारी ॥
जीव बिबश गुण प्रकृतितैं, करै कर्म ह्वै कें अबश ।
मोइ अगाध अपार तुम, रच्यो तजौं मर्याद कस ॥

हौ हरि सर्वसमर्थ बिश्व छिनमाँहि बनाश्रौ ।
मोपै बाँधौ सेतु पार प्रभुवर पुनि जाश्रौ ॥
बालमीक मुनि चरित सेतु करि जगकूँ तारैं ।
सिन्धु सेतु कपि करैं सैन्य सब पार उतारैं ॥
रामचरित मुनि सेतु करि, स्वयं अवशि तरि जाएँगे ।
बने रहैं पुनि जगतमहँ, सब सेवैं सुख पाएँगे ॥

बोले करुनासिन्धु—सेतु शत योजन भारी ।
वेगि बँधे सो युक्ति बताश्रो अति हितकारी ॥
कहै सिन्धु—नरनाट्य नाथ यदि आपु दिखावैं ।
तो नल डारैं शिला नीरमें सो उतरावैं ॥
लावैं कपि पाषान मिलि, जोरैं शिल्पी नील नल ।
प्रभु यश व्यापै जगतमें, होहिँ न जलचर हू बिकल ॥

नल सुरशिल्पी-तनय सेतु सुखकर बाँधै वर ।
सुघर सेतु बनि जाइ ताहितैं जावैं वानर ॥
मम मर्यादा रहै रहै यश तुमरो जगमहँ ।
नरलीला हरि करहु नहीं नाप्यो जग पगमहँ ॥
राम बुलाये नील नल, अन्तरहित सागर भयो ।
बाँधौ बानर सिन्धुपै, सेतु बिहँसि राघव कह्यो ॥

राम रजायसु पाइ सेतु सब बाँधन लागे ।
लैंन वृत्त अरु उपल बीरबर वानर भागे ॥
उपल उठाइ उठाइ सलिलमहँ फेकें सबई ।
देहिँ सबहिँ उत्साह बँध्यो पुल बीरो ! अबई ॥
घम्म घम्म पत्थर गिरैं, धूम घड़ाको मचि गयो ।
आर पारतैं सूधिमहँ, सूत सामने खिंचि गयो ॥

बानर चंचल दौरि दौरिकैं इत उत जावैं।
नाना कौतुक करें परस्पर हँसें हँसावैं॥
वृच्छनि सहित उखारि शिला परवतकी लावैं।
नभतें कूदें फेरि धम्म जलमें गिरि जावैं॥
हनूमान डपटें सबनि, चंचलता अति मति करौ।
हिलि मिलि लाओ शिला सब, हौलेंतैं जलपै धरौ॥

सोरठा—आइ गये नल नील, राम लखन पद बन्दिकें।
दोऊ परम सुशील, श्रीगणेश अब करि दयो॥

छप्पय—माप दण्डतैं नापि बनायो चौदह योजन।
द्वितिय दिवस जब बीस बन्यो तब कीयो भोजन॥
तृतिय दिवस इक्कीस बन्यो बाइस चौथे दिन।
पहुँचे पंचम दिवस पार रचि तेइस योजन॥
सिन्धु सेतु पूरो भयो, रामेश्वर थापित करे।
आशुतोषके दरश करि, नयन नीर सब के भरे॥
पार पहुँचि सुग्रीव निशाचरपति समुझायो।
मूढ़ न मानी बात राम अंगदहु पठायो॥
रणके बाजे बजे घुसे लंकामहँ बानर।
तोड़ें फोड़ें उछरि कूदि सब घूमें घर घर॥
बन उपबन सब नगरमहँ, बानर ही बानर भरे।
छत बिछत नगरी भई, घर टूटे निशिचर मरे॥
नख दाँतनितैं काटि करी छत लंका नगरी।
मनु मसली नर करिनि नायिका सरिता सगरी॥
इत उत बानर फिरहिं करहिं मिलि धक्कम धक्के।
निरखि कपिनि उत्साह, छुटे रावनके छक्के॥
उत निशिचर इत भालु कपि, दोऊ सेना सजि गईं।
दोऊ बिजयी बनन हित, करि रव भीषण भिड़ि गईं॥

पठये कुम्भ निकुम्भ इन्द्रजित निशिचरपति जब।
समर करन सब चले विभीषन भेद कह्यो सब॥
मेघनाद रन छोड़ि भग्यो माया फैलाई।
नर लीला प्रभु करी गिरे रन दोऊ भाई॥
निशिचरदलमहँ हर्ष अति, कपिदलमहँ चिन्ता भई।
राम जगे कपि लखन हित, लाये संजीवनि दई॥

आये विनतातनय नाग सब तनुतैं भागे।
सूँघि सँजीवन लखन उठे जनु सोवत जागे॥
राम लखन लखि स्वस्थ भये कहि प्रमुदित भारी।
सोचें माया व्यर्थ रामपै भई हमारी॥
मायापतिपै निशाचर, करिकें माया नहि डरत।
जनु नानीके ब्याहकी, बात सुतासुत मिलि करत॥

चले राम रनमाँहि संग सुग्रीव सहायक।
जाम्बवान, नल, नील, पनस, अंगद सब नायक॥
धनुष, प्राश, शर, शक्ति युक्त रावनकी सैना।
पकरि पकरि कपि भालु चबावैं मनहुँ चबैना॥
सर्र सर्र शर समरमहँ, चलें चपत हूँ चटाचट।
जहँ देखो तहँ है रही, पटका पटकी खटापट॥

अंगद मार्यो बज्रदंष्ट्र धूम्राक्ष पवनसुत।
आयो लड़न प्रहस्त भये नहि बानर विचलित॥
मरे मुख्य सब वीर दशानन अति खिसियायो।
स्वय साजि सब सेन रामतें लड़िवे आयो॥
हनूमान अरु बालिसुत, नील लखन मूर्छित करे।
पवनतनयकी पीठ चढ़ि, रावनतैं राघव लरे॥

रामबानतैं विकल दशानन लंका आयौ।
कुम्भकर्ण लघु बन्धु नीदतैं तुरत जगायौ॥
जगिकें बोल्यो बीर—रामतैं रनमहँ लरिहौं।
लहूँ बिजय करि कीर्ति नहीं हरि सम्मुख मरिहौं॥
यों कहि अंजन-गिरि सरिस, चल्यो देखि बानर भगे।
भगदड़ कपिदलमहँ निरखि, अंगद समुझावन लगे॥

अंगदकी सुनि सीख रुके कपि लड़िबे लागे।
कुम्भकर्ण सुग्रीव लखन सेनाके आगे॥
भयो भयानक समर लखन रन अद्भुत कीन्हों।
पुनि राघवतैं भिड़्यो असुरकूँ अवसर दीन्हों॥
रामबानतैं कर कटे, पग मस्तक हू कटि गये।
कुम्भकर्ण खल मरि गयो, सुनि हर्षित सुर मुनि भये॥

कुम्भकर्ण सुनि निधन दशानन दुख अति पायो।
तबहिँ तनय अति शूर युद्धकूँ तुरत पठायो॥
देवान्तक अतिकाय गये पुनि आये नहिँ फिरि।
इन्द्रजीत पुनि छले राम सौमित्र गये गिरि॥
है चेतन लछिमन चले, सुनत सबनि अति सुख भयो।
यतिबर लछिमन हाँथतैं, इन्द्रजीत मार्‌यो गयो॥

इन्द्रजीत रन मरन दशानन सुनि घबरायौ।
बैदेही बध हेतु खड्ग लै निशिचर धायौ॥
अनुचित कहिकें सचिव निवार्‌यो सम्मति मानी।
मारूँ या मरि जाउँ लंकपति मनमहँ ठानी॥
समर हेतु रथ चढ़ि चल्यो, राम बिरथ लखि अमरपति।
पठयो रथ मातलि सहित, चढ़े राम कपि मुदित अति॥

समर निशाचरनाथ लख्यो प्रभु कोप दिखायो।
नयन अरुन करि कहैं—नीच सम्मुख अब आयो॥
चोर भीरु निरलज्ज निशाचर पामर कामी।
पींठ पिछारी प्रिया हरी तू है खल नामी॥
अति सुकुमारी जानकी, दयिता दुःख दुसह दये।
पृथक करहुँ धड़तैं शिरनि, उदय पाप खल तव भयो॥

सुनत राम के बचन क्रोध करि रावन धायौ।
धनुषबानकूँ तान समरमहँ सम्मुख आयौ॥
उभय ओरतैं बान चलैं सुरमुनि सुख पावहिँ।
भयो समर अति कठिन उभयशर दिब्य चलावहिँ॥
ज्यों सागर, नभ, चन्द, रवि, की उपमा अनुपम कहीँ।
त्यों रावन अरु राम की, रन समता जगमहँ नहीँ॥

लीला रघुपति करहिँ लरहिँ जीतें अरु हारें।
श्रमित होहिं जय करहिं सहहिँ शर पुनि पुनि मारें॥
कबहूँ आगे बढ़हिँ फिरहिँ घूमें मुरि जावहिँ।
कबहूँ उछरें दुबकि कुदकि झट सम्मुख आवहिँ॥
भक्तनि हित अवतार धरि, नरलीला रघुबर करहिँ।
बँधहि सेतु प्रभुचरितको, जाते सब भवनिधि तरहिँ॥

खेंचि कान तक बान राम रावनके मार्यो।
काट्यो धड़तैं शीश धम्म धरतीपै डार्यो॥
उदित भयो पुनि शीश तुरत पुनि काट्यो रघुपति।
ज्यों ज्यों काटहिँ उगहिँ नये लखि प्रभु बिस्मित अति॥
मोहित सम चेष्टा करहिँ, मातलि बोल्यो बचन तब।
च्यौं नर लीला करहु हरि, ब्रह्म अस्त्रकूँ लेहु अब॥

मातलि सम्मति मानि ब्रह्मसर धनु पै धार्यो ।
करि अभिमंत्रित तुरत निशाचरपति तब मार्यो ॥
मरत निशाचर देव, विप्र, ऋषि, मुनि सुख पायो ।
सुनि रावन वध बन्धु विभीषन ढिँग तब आयो ॥
लंकापतिको निधन सुनि, आईं तहाँ निशाचरीं ।
शिर पटकहिँ छाती धुनहिँ, मृतक पतिहिँ लखि गिरि परीं ॥

बार बार पति देह अङ्कमहँ धरि धरि रोवैं ।
मृतक बदन लखि दुखित होहिँ धीरजकूँ खोवैं ॥
दृढ़ आलिङ्गन करहिँ शीश धरनीमें मारैं ।
पटतैं पोछैं रक्त धूरि पतिशवकी झारैं ।
निशाचरी रोवैं सतत, क्रन्दन ध्वनि नभमहँ भरी ।
तबई रानिनितैं घिरी, आई तहँ मन्दोदरी ॥

प्राणनाथकूँ निरखि मृतक मन्दोदरि रोई ।
ह्वैकें व्याकुल गिरी बिरहमहँ तनु सुधि खोई ॥
प्राणनाथ हृदयेश प्राणपति कहि डकरावै ।
क्रन्दन कुररी सरिस करै दुखतैं बिललावै ॥
राम बवंडर बायुतैं, पति पादप जड़तैं कट्यो ।
बिधवा लंका ह्वै गई, मम सिँदूर सिरको मिट्यो ॥

परे धरनिपै प्रभो ! न दासिनितैं बोलें अब ।
लाये जिनकूँ जीति प्रिया रोवैं ठाढ़ी सब ॥
रावनके सब कर्म विभीषणने सोचे अब ।
घृणा हृदयमहँ भई मृतक नहिँ कर्म करे जब ॥
रघुनन्दन अति प्रेम तैं, प्रेत करम आयसु दई ।
समुझाई मन्दोदरी, पृथक देह पतितैं भई ॥

राम रजायसु पाइ विभीषन अनुमति दीन्हीं ।
सामग्री सब पितृ करम एकत्रित कीन्हीं ।।
चन्दन चिता बनाइ ताहिपै धर्यो बन्धु तन ।
निरखत मृतक शरीर सबनिको दुखित भयो मन ।।
धू-धू करिकें चिता जब, जरी निशाचर नाथकी ।
एक संग फूटी तबहिं, चूड़ी रानिनि हाथकी ।।

डकरावें सब नारि दृश्य अति ई दुखदायक ।
दाह करम करि दई तिलाञ्जलि निशिचरनायक ।।
धूम धामके सहित विभीषन क्रिया कराई ।
भस्म देहकी भई परमगति रावन पाई ।।
सब सौतिनिकूँ संग लै, मन्दोदरि महलनि गई ।
सब बानर प्रमुदित भये, विजय रामदलकी भई ।।

आइ विभीषन रामचरनमहँ शीश नवायो ।
पूँछे राघव—सीय कहाँ तब पतो बताओ ।।
जानि नगरतैं दूरि गये रघुनायक नेही ।
विरह व्यथातैं लखी तहाँ बैठी वैदेही ।।
मलिन वसन कच जटा बनि, बिथुरे इत उत म्लान मुख ।
पति दरशनतैं भयो अति, सीय हृदयमहँ परम सुख ।।

पवनतनय सुग्रीव विभीषन लछिमन आये ।
वैदेही पद पदुम आइ सब शीश नवाये ।।
लज्जित देवी भई अधिक आभार जनायो ।
राम रजायसु पाइ विभीषन यान मँगायो ।।
रथ चढ़ि वैदेही सहित, उपवनमहँ राघव गये ।
जगजननी जगजनककूँ, लखि बानर प्रमुदित भये ।।

दोहा—कुमुदिनि सम सिकुरीं सिया, खिलीं पाइ रघुचन्द्र।
भईं मुदित मनमहँ मनहु, मिली चकोरी चन्द्र॥
चकवा चकवी राम सिय, रावन रात्रि समान।
इत उत सागर पार बसि, मिले निशाअवसान॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें राघवेन्दुचरित अन्तर्गत पंचम सीतासंयोगचरित नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त।



अथ एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः

[३१]

सीता के सरवस्व ! सकल जगपालक ! प्रभुवर !
रावणारि ! रघुतिलक ! राम ! रघुनायक ! रघुवर !!
कैसे कैसे करुन चरित रघुनाथ दिखाये ।
प्रिया हेतु करि सेतु कपिनि सँग लंका आये ॥
खल दल दलि रावन हन्यो, हरी सियाकी सब व्यथा ।
कहूँ युगल पदबन्दिके, राजतिलककी शुभ कथा ॥

मारि दशानन प्रिया शोक सन्ताप मिटायो ।
दरश युगल छबिकरें कपिनि अतिशय सुख पायो ॥
करि सोलह शृंगार पिया निज पति सँग भ्राजें ।
बरसावें सुर सुमन दुंदुभी नभतें बाजें ॥
जबहिं विभीषन शरनमहँ, गये तिलक तबही कर्यो ।
अब लछिमन बुलवाइकें, सिंहासन विधिवत दयो ॥

लंकामहँ अभिषेक विभीषनको करवायो।
जानि अवधिको अंत यान पुष्पक मँगवायो॥
पवनतनय सुग्रीव लखन अंगद बैठाये।
बैठे सीया सहित स्वयं रघुपति हरषाये॥
प्रानप्रियाकूँ सबहिँ थल, लीलाके दिखरावते।
यानमाँहिँ नभमहँ चले, प्रेम सहित बतरावते॥

जनक सुतातैं कहैं—प्रिये! देखो लीला थल।
यह त्रिकूट गिरि समर भूमि यह सागरको जल॥
है यह सुन्दर सेतु नील नल कपिनि बनायो।
यह रामेश्वर धाम विभीषन यहि थल आयो॥
किष्किन्धा पम्पापुरी, पंचवटी गोदावरी।
चित्रकूट सीते! लखो, यह तिरबैंनी सुखकरी॥

जहाँ गंग अरु जमुन मिलें मन मोद बढ़ावैं।
जहाँ सिद्ध सुरवृन्द नित्य दरशनकूँ आवैं॥
जहाँ सरसुती धार गुप्तहू अति सुखदैंनी।
गंगा यमुना संग होहि मिलिकें तिरबैंनी॥
जहँ अक्षयवट वर विटप, सोमेश्वर भगवान हैं।
तहँ उतर्यो प्रभु भाव लखि, पुष्पक पुण्य विमान हैं॥

पग पग प्रभुजी चले संगमहँ जनकदुलारी।
अति सुशील लघु बन्धु लखन पाछैं धनुधारी॥
भरद्वाज जब सुन्यो राम आगमन सुहावन।
दौरि द्वारपै आइ निहारे प्रभु जगपावन॥
पग पकरन मुनिके बढ़े, ज्योंही शोभा धाम विभु।
त्योंही भरि मुनि अंकमें, कसि चिपटाये राम प्रभु॥

सीता अनुज समेत निहारत मुनि हरषावत ।
बार बार छवि निरखि सिहावत भाग्य सराहत ॥
दरशनतैं मम भये सफल जप तप व्रत आजू ।
धन्य धन्य हौं भयो धन्य यह तीरथराजू ॥
सोई आश्रम पुण्यप्रद, परैं जहाँ भगवान पग ।
पदरजतें पावन बनें, पशु, पामर, पाषान, खग ॥

भरद्वाज मुनि लखे राम सौमित्र सीय सँग ।
निरखि सबनिकूँ कुशल भये मुनिके पुलकित अँग ॥
करि बहु विधि आतिथ्य सबनिकी कुशल-बताई ।
भरत तपस्या सुनी दया हरि उरमहँ आई ॥
पवनतनय पठये तुरत, भरत जहाँ विरही बसहिँ ।
स्वाँस स्वाँस रघुपति जपहिँ, तप करिकें तनकूँ कसहिँ ॥

निरखि भरतकी दशा वायुसुत अति हरषाये ।
बोले—हे नरदेव ! अवधपति अब ई आये ॥
सुनत सुखद शुभ बचन सुधा रसमहँ साने जनु ।
ब्यापो अँग अँग हरष भयो पुलकित सबरो तनु ॥
सुनि रघुपतिको आगमन, भरत मुदित मनमहँ भये ।
समाधान सब भाँति करि, पवनतनय प्रभु ढिँग गये ॥

सब सुनि मुनितें कहें राम—भगवन् ! अब जाऊँ ।
मातु भरत सब प्रजा दुखी तिनि दुःख मिटाऊँ ॥
मुनि भरि नयननि नीर कहें—प्रभु हिय बसि जाओ ।
छाँड़ि हृदय मम नाथ अनत कितहूँ मति जाओ ॥
एवमस्तु कहि कृपानिधि, पुष्पकपै पुनि चढ़ि गये ।
सीता सखनि समेत उड़ि, अवधपुरीकूँ चलि दये ॥

इत सजिकें सब साज भरत स्वागत हित धाये।
बाल वृद्ध नर नारि चले उठि सुनि प्रभु आये॥
चले पढ़त द्विज वेद गीत ललना शुभ गावत।
बाहन चढ़ि चढ़ि चले हरषि हय बीर नचावत॥



रामपादुका शीश धरि, राम 'चरनमहँ रोवते।
परे लकुटसम भरतजी, अँसुअनि भूमि भिगोवते।

लखे भरत कृशगात राम रघुनायक रोये।
आलिङ्गन करि नयन नीरतैं चीर भिगोये॥
भरत रामको मिलन निरखि उपमा सकुचावै।
करुणा हू ह्वै द्रवित नयनतैं नीर बहावै॥
जनकसुता चरननि परे, रोवत अति बिलखात हैं।
मातु भरतकी दशा लखि, हृदय द्रवित ह्वै जात हैं॥

लछिमन पकरे चरन भरत अति ही सकुचाये।
लीये हृदय लगाय अश्रु इस्नान कराये॥
बार बार पुचकारि कहैं—लछिमन बड़भागी।
कीयो जीवन सफल राम हित बने बिरागी॥
सीता लछिमन सहित प्रभु, मिलि सबतैं पुष्पक चढ़े।
ह्वैकें सत्कृत सबनितैं, बिनय सुनत आगे बढ़े॥

नरनारिनितैं घिरे राम पुष्पकमहँ भ्राजैं।
मनहुँ ग्रहनिके बीच पूर्ण शशि नभमहँ राजैं॥
भरत पादुका लिये बिभीषन चँवर डुलावैं।
श्वेत छत्र हनुमान ब्यजन सुग्रीव हिँलावैं॥
धनु रिपुसूदन तीर्थजल, सीय लिये अंगद खड्ग।
ढाल भालुपति लैं खड़े, जनु शोभित शचिपति स्वरग॥

बोलें नर अरु नारि मुदित मन जय जय मिलि सब।
सबकूँ दरशन देत चले पुष्पकतैं राघव॥
अटा अटारी चढ़ी सुमन सब तिय बरसावैं
रामदरश हित बाल वृद्ध इततैं उत धावैं॥
तजि पुष्पक शिबिका चढ़े, जनसमूह अति राम लखि।
नयननीर सबके भरे, मुनिब्रतयुत रामहिँ निरखि॥

करि सबको सम्मान मातु महलनि प्रभु आये।
सबतैं पहिले भरतमातु चरननि सिर नाये॥
झेंप छुड़ाइ हँसाइ सुमित्राके पग पकरे।
कौशल्या रघुनाथ मिलन लखि रोये सबरे॥
चूमें चाटें प्रेमतैं, धेनु वत्स अति लघुहिँ लखि।
कौशल्या प्रमुदित भईं, त्यों रघुनन्दनकूँ निरखि॥

डगमँगात सब गात हृदय उमड़त तनु पुलकित।
कंठ भयो अवरुद्ध नयन जल अविरल बरसत॥
कहन चहति कछु बात न निकसति बानी मुखतैं।
भये शिथिल सब अंग राम दरशनके सुखतैं॥
सीता लछिमन रामकूँ, निरखि निरखि मन नहिँ भरत।
तनु कृश हरष अपार अति, बार बार वेटा कहत॥

राम मातु कृश गात निरखि बालक सम रोये।
सिकुड़े अति सुकुमार चरन अँसुअनितैं धोये॥
सीय लखन प्रति प्यार कर्यो माँ आशिष दीन्हीं।
तबहिँ सुअवसर पाइ भरत यह बिनती कीन्हीं॥
राम सम्हारे राजकूँ, हम सब मिलि सेवा करहिँ।
पावें प्राणी परम पद, बिनु प्रयास सब भव तरहिँ॥

भरतबचन सुनि सचिव सहित सब जन हरषाये।
निरखि राम रुख तुरत पुरोहित बिप्र बुलाये॥
बिधिवत छौर कराइ बस्त्र आभूषन पहिने।
सासुनि सीय न्हवाय दिव्य पहिनाये गहने॥
सप्तद्वीप अंकित करे, बाघंबरपै बिप्र गन।
शुभ सिंहासन सजि गयो, आइ बिराजे सुखसदन॥

चहुँ दिशि जय-जयकार जुर्‌यो सब बरन समाजा ।
सब हिय हरष अपार भये रघुनायक राजा ।।
अवनि गगनमहँ मधुर मधुर बर बाजे बाजें ।
सुर, नर, मुनि, गन्धर्व सकल शोभायुत भ्राजें ।।



सब नर नारिनिके नयन, भये तृप्त लखि राम नृप ।
चिर आशा पूरन भई, भये अवध अच्युत अधिप ।।

सीय सहित रघुनाथ राजसिंहासन राजैं।
शोभा अमित अपार काम रति सँग लखि लाजैं॥
करि नखशिख शृँगार बिराजैं सिय निज पिय सँग।
झाँकी करि नरनारि, समावें नहिँ फूले अँग॥
गुरु बशिष्ठ मंत्री सचिव, प्रजा सहित प्रमुदित भये।
धन, आभूषन, अश्व, गज, रथ, पट, पुर बिप्रनि दये॥

जबतें राजा राम भये सब सुख जगमाहीँ।
आधि,ब्याधि,भय, शोक,जरा,दुख, श्रम कछु नाहीं॥
जोते बोये बिना अवनि ओषधि देवे अन्न।
बन, परबत,नद, नदी,द्वीप, सागर सुखकर सब॥
भये बिटप सुरद्रुम सरिस, चिन्तामनि सम भूमिकन।
भई अवनि पावन परम, परे जहाँ रघुबर चरन॥

क्षमा, दया, बिश्वास,शील,तप,संयम शम दम।
ब्रह्मचर्य, नय, बिनय राममहँ राज ऋषिनि सम॥
भरत शत्रुहन लखन सदा सेवामहँ तत्पर।
रहै प्रजा सब सुखी करे नहिँ कोई मत्सर॥
हरहिं चित्त रघुनाथको, नारी सुलभ विलासतैं।
सती शिरोमनि जानकी, बिनय हास परिहासतैं॥

रामराजमहँ परम मुदित जड़ चेतन प्रानी।
लखि तृन तोरैं मातु राम राजा सिय रानी॥
लौकिक गति दरसाइ रामने यज्ञ रचाये।
वेद-बिज्ञ आचार्य, बिप्र, ऋषि, मुनि बुलवाये॥
उत्तम सामग्री सहित, सहस यज्ञ रघुपति करे।
सरबसु दीन्हों दानमहँ, धन रतनिनि द्विज घर भरे॥

ह्वैकें अति सन्तुष्ट द्विजनि आशिष मिलि दीन्हीं ।
इष्ट देव सम राम सबनिकी पूजा कीन्हीं ॥
यों महत्व तप योग यज्ञको राम जतायो ।
गृही धरम करि स्वयं लोककूँ पाठ पढ़ायो ॥
श्रेष्ठ करें जिह कर्मकूँ, अनुवर्तन सब नर करें ।
जावें जा पथ महत जन, तिहि पथ सब रज सिर धरें ॥
भूमि दान सब करी कोष धन धान लुटाये ।
चारिहुँ दिशि दै दई दान करि परम सिहाये ॥
विप्र बासनाहीन परा विद्या जे जानें ।
दानपात्रतें श्रेष्ठ राम यह मनमहँ मानें ॥
त्याग प्रेम अरु दान लखि, गद्‌गद ह्वैकें विप्र गन ।
राजपाट लौटाइकें, प्रेम सहित बोले बचन ॥
प्रभो ! कहा नहिं दयो हमें तुम सरबसु दाता ।
करहु मोह तम नाश तिमिरहर भवभयत्राता ॥
हम नित तपमहँ निरत राजको काज न जानें ।
तुमहिं विश्वपति सकल जगतको पालक मानें ॥
पुण्यश्लोक शिरोमणे, हे विश्वम्भर ! जगतपति ।
देहिं दया करि दान यह, तव चरननिमहँ होहि रति ॥
समुझि द्विजनिको न्यास प्रजाकूँ पालैं सुत सम ।
राम शील,संकोच,न्याय, नय,शम,दम अनुपम ॥
सोवत जागत सतत प्रजाकी चिंता राखैं ।
निरखें नहिं रिसियाय कबहुँ कटुबचन न भाखैं ॥
त्रेतामें सतयुग कर्‌यो, रामराज आदरश अति ।
अधरम रह्यो न सबनि की, भई धरममहँ सहज मति ॥

इति श्रीभागवत चरितके चतुर्थाहमें राघवेन्दुचरित अन्तर्गत षष्ठम राज्याभिषेकचरित नामक इकत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।

अथ द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः

[३२]

हे राजा रघुनाथ ! प्रजारञ्जक ! परमेश्वर ।
हे कोमल अति कठिन ! सत्यपालक सरवेश्वर ॥
हे सीता सरवस्व ! प्रेम आदर्श निब्राहक ।
हे दयिता दुख दुखी ! दयानिधि दीननि पालक ॥
जनकसुता प्रति कठिनता, करी प्रजाहित दुखमयी ।
श्रद्धायुत तव बन्दि पद, कहूँ कथा करुनामयी ॥

वैदेही पदधूरि धरूँ सिर आँजूँ नयननि ।
दीयो जीवनदान जगतके पीड़ित जीवनि ॥
पतिव्रतनिकूँ पुण्यपाठ पतिप्रेम पढ़ायौ ।
सहि सहि भीषण विपति धरमको मरम जतायौ ॥
अति कोमल माँ कमल सम, तव चरननि आश्रित रहूँ ।
हृदयविदारक दुखकथा, वन बियोगकी अब कहूँ ॥

जननि जानकी ! जड़ जीवनि ढिँग क्यौं तुम आयीं ।
क्यौं अति करुनामयी दुखद लीला दरसायीं ॥
तव करुना के पात्र अज्ञ जड़ जीव नहीं माँ ।
करुनावश ह्वै जगत हेतु अति विपति सहीं माँ ॥
हाय ! कहाँ अति मृदुल पद, कहँ कंकड़युत पथ विकट ।
ह्वैकें अति प्रिय रामकी, रहि न सकीं तनतें निकट ॥

बन्धु पुरोहित सचिव प्रभुहिं श्रद्धायुत सेवें ।
राजधर्ममहँ निरत राम सबकूँ सुख देवें ॥
दुख सुख सबको सुनहिं सतत संतोष सिखावें ।
सदाचार करि स्वयं सबनितें नित करवावें ॥
पिता करहिं जस सुतनिकी, तस चिन्ता रघुपति करहिं ।
बेष बदलिकें निशामहँ, गुप्त रूप पुरमहँ फिरहिं ॥

जिनमहँ योगी रमें ज्ञानतें ज्ञानी जानें ।
अन्तरयामी राम भाव सबके पहिचानें ॥
मोते को है दुखी उठी उत्कण्ठा उरमहँ ।
नरलीलाके हेतु फिरैं छिपि छिपिके पुरमहँ ॥
रजक एक दिन रातिमें, निज नारीके कच पकरि ।
रही रातिमें कहाँ तू, पुनि पुनि पूछै क्रोध करि ॥

दाँत पीसि यों कहै लाज कुलटा नहिँ तोकूँ ।
परघर कैसे रही राम तू समुझैं मोकूँ ॥
सीयरूरमहँ फँसे रामने वही लुगाई ।
रावन घर दस मास रही फिरितें अपनाई ॥
बड़े करें सो सत्य सब, छाजै सबई रामकूँ ।
करूँ दूसरो ब्याह मैं, जा तू अपने गामकूँ ॥

सुनि अपयस अति बिकल भये रघुबर मनमाँहीं ।
सोचें—सेवा सरल सुखद यहि जगमहँ नाहीं ॥
कठिन हृदय करि त्याग सती सीताको करिहौं ।
मन ही मन निशि दिवस बिरह ज्वालामहँ जरिहौं ॥
दृढ़ निश्चय करि बात प्रभु, भरत 'शत्रुहनतैं कही ।
सुनत तुरत बिष सरिस बच, मूर्छा दोउनिकूँ भई ॥

भरत शत्रुहन लखे मूरछित राम बिचारें ।
सुकुमारी सिय परम कवन विधि जाहि निकारें ।।
वन निरखनकी करी सीय इच्छा मोतें कलि ।
पठऊँ लछिमन संग प्रियाकूँ गंगा तट छलि ।।
बुलवाये लछिमन तुरत, दई शपथ निज देहकी ।
अति विनीत प्रिय बन्धुकी, लई परीच्छा नेहकी ।।

लछिमन हाँमी भरी कहें—सीता लै जाओ ।
छोड़ि घोर बनमाहिँ आइ सम्वाद सुनाओ ।।
अति व्याकुल ह्वै गये महलमहँ बोले माता ।
ऋषि मुनि दरशन हेतु चलो बन भेज्यो भ्राता ।।
सब सासुनि पाइँनि लगीं, चली मुदित मन ह्वै तुरत ।
मुनि-पतिनिनि पूजा निमित, पट आभूषन लै अमित ।।

बैठी रथमहँ आइ कहें—कहँ तुमरे भ्राता ।
राजकाजमहँ फँसे कहें लछिमन सुनु माता ।।
मनसा बन्दन कर्यो भवन परदच्छिन कीन्हीं ।
सहज भावतैं विहँसि लखन सँग बन चलि दीन्हीं ।।
लछिमन अति चिन्ता करत, परम दुखित मगमहँ चलत ।
इत उत चितवत व्यथित अति, बिलखत विलपत हिय फटत ।।

सेवकको अति कठिन धरम समुझ्यो घबराये ।
प्रभु आयसु सिर धारि सीय सँग बनहिँ सिधाये ।।
सीय सिहावत जाइ तापसिनि के बन्दौं पद ।
करिकें सुरसरि पार लखन रोये ह्वै गद्गद ।।
सुनि निर्वासन सहमि सिय, पति प्रति श्रद्धा प्रकट करि ।
शून्य सरिस संसार लखि, बोली नयननि नीर भरि ।।

आरज सुतने त्याग कर्‌यो देवर! किहि कारन।
अति कठोरता करी कान्तने कैसे धारन॥
प्राननाथ बिनु देह रखूँ कैसे हौं लछिमन।
मेरे तो सरवस्व प्रानपति ही जीवनधन॥

हाय! वत्स हौं लुटि गई, कितहूकी अब नहिँ रही।
अवधपुरीतें चले जब, तब तुमने क्यों नहिँ कही॥

थर थर काँपैं लखन बहुत रोवैं बिललावैं।
है अधार भयभीत निरन्तर अश्रु बहावैं॥
बिलखि कहैं—हे मातु! राम राजा को शासन।
है कठोर अति गुप्त मिली आज्ञा निरबासन॥

पराधीन हूँ मातु हौं, बिक्यो रामके हाथमें।
भयो विवश बनि बज्र हिय, आयो परवश साथमें॥

रजक बात पै करयो मातु! यह अनरथ आरज।
जगमें अतिइ कठिन प्रजारंजनको कारज॥
छाँड़ि अकेला तुमहिँ अवध अब कैसे जाऊँ।
दोष न मोकूँ देहिँ जननि! चरननि सिर नाऊँ॥

हौं मरिवे में हू अवश, नृप आयसु भीषन जननि।
करि निरवासन लौटिकें, आइ देहु सम्वाद पुनि॥

जिनने परजा हेतु तजी माँ! तुम सुकुमारी।
ऐसे भूप कठोर करैं का प्रीति हमारी॥
इक दिन मोकूँ तजैं नहीं कछु दुष्कर उनकूँ।
बालमीक इत बसहिँ बिताओ बिपति समयकूँ॥

लखन विवशता समुझि सिय, भई दुखित अति खिन्न मन।
सती धरम पुनि सोचिकें, कहन लगीं—सुनु प्रिय लखन॥

मंगलमय पथ होहि जाउ देवर! रजधानी
अब भिखारिनी बनी रही जो कल तक रानी ॥
दिवरानिनितैं जाइ अवसि आशिष मम कहियों।
नृपकूँ अवसर पाइ यादि मेरी करवइयों ॥
दोष देहुँ काकूँ लखन, हौं अभागिनी जनमकी।
सासुनिकी कबहूँ नहीं, सेवा समुचित करि सकी ॥

पति यश जगमहँ अमर होहि तुम सब सुख पाओ।
देवर! मेरो उदर निरखि नृपके ढिँग जाओ ॥
गरभवती हूँ दोष फेरि मोकूँ मत दइयों।
पति परमेश्वर चरन कमलमहँ बन्दन कहियों ॥
लखन सुनत मूर्छित भये, गिरे भूमिपै ह्वै विकल।
लखि प्रसङ्ग अति ई करुन, भये विकल खग मृग सकल ॥

बोले लज्जित लखन—मातु! मत पाप लगाओ।
अति लज्जित हूँ प्रथम देवि नहिँ अधिक लजाओ ॥
बनमहँ चौदह बरस रामके सँगमें तबहूँ।
केवल चरननि छाँड़ि अपर अँग लख्यो न कबहूँ ॥
अब अरण्य एकान्तमें, उदर लखूँ कैसे कहो।
वज्र परै संसारपै, तुम बनमहँ निरभय रहो ॥

निन्दा प्रिय संसार खलनिकी निन्दित करनी।
कुटिल हृदयके जीव तुम्हारे योग न जननी ॥
बिलखि बिलखिकें मातु वत्स सम्मुख मत रोओ।
होवैं पुत्र कुपुत्र कुमाता तुम मत होओ ॥
परे दंडवत भूमिपै, करि प्रनाम आगे बढ़त।
पुनि लौटत चितवत चकित, गिरत परत रोवत चलत ॥

चरन धूरि सिर धारि लखन लौटे इत जबहीं।
ह्वकें मूर्छित गिरीं जगतजननी पुनि तबहीं॥
करुना क्रन्दन सुन्यो मुनिनिशिशु दौरे आये।
लखि सीता सौंदर्य जाइ मुनि बचन सुनाये॥
भगवन्! वनमें अति सुघर, बैठी रोवति सुन्दरी।
नहीं मानवी सी लगति, है देवी या किन्नरी॥

शिशुनि संग बाल्मीक जनकतनया ढिँग आये।
बेटी! धारो धीर मृदुल मुनि बचन सुनाये॥
मुनि के चरननि परी बिलखि बोली सुकुमारी।
प्रभो! पापिनी भई उभयकुल कीर्ति बिगारी॥
परित्याग पतिने करयो, कैसे अब जगमहँ रहूँ।
दोष रहित हौं सर्वदा, कैसे निज मुखतें कहूँ॥

धरिकें सिय सिर हाथ कहें मुनिवर विज्ञानी।
बेटी! तू अति शुद्ध योगतें मैंने जानी॥
जनक हमारे शिष्य पुत्रि मम पीछे आओ।
निज पितुको घर समुझि सकुच तजि समय बिताओ॥
गंगाजल सम शुद्ध तुम, रघुवरहू जानत मरम।
किन्तु प्रजारञ्जन परम, क्रूर कठिन निरदय करम॥

यों आश्वासन पाइ चली मुनि सँग सुकुमारी।
पहुँची आश्रममाँहिं जनककी पुत्री प्यारी॥
मुनि पतिनी सँग रखी सुता सम राजदुलारी।
सेवा मुनिकी करैं सबनिकी भई पियारी॥
समय पाइ द्वै सुत जने, मुनि सब अति हरषित भये।
करन जाति संस्कार मुनि, तुरत जानकीढिँग गये॥

रिपुसूदन तिहि समय लवन बध हित मधुबनमहँ ।
जात रहे विश्राम करन उतरे आश्रममहँ ॥
तहाँ सुन्यो सुतजनम सीयके ढिंग तब आये ।
गुप्त रहे यह बात शत्रुहन मुनि समुझाये ॥
सुनि शौनक शंका करी, कौन लवन जिहि हनन हित ।
पठये रघुपति शत्रुहन, बल प्रभाव जिनको अमित ॥

सूत कही सब कथा लवन मधु राच्छस को सुत ।
पायो शिव सन शूल दिव्य अति ई प्रभाव युत ॥
क्रूर समुझि मधु सुतहिँ शूल दै सिन्धु सिधार्‌यो ।
शिव त्रिशूलतें लवन न कबहूँ रनमहँ हार्‌यो ॥
ताहि अजेय बिचारि मुनि, गये दुखित हरिकी शरन ।
लवन हनन हित तुरत हरि, पठये रघुबर शत्रुहन ॥

जाइ लवन के द्वार शत्रुहन बैठे जबहीं ।
करिकें खल आखेट द्वारपै आयो तबहीं ॥
दौर्‌यो लैंन त्रिशूल शत्रुहन जान न दीन्हों ।
गुत्थम गुत्था भई शत्रु मरमाहत कीन्हों ॥
राम दत्त शर तानिकें, मार्‌यो तकि उर शत्रुहन ।
मरयो शत्रु शिव शूल हू, गयो तुरत शिवकी शरन ॥

यों लवनासुर मारि करी मथुरा रजधानी ।
रहें शत्रुहन तहाँ रामकी आयसु मानी ॥
वृद्ध पुरोहित भेजि युधाजित भरत बुलाये ।
करन विजय गन्धर्व तच्छ पुष्कल सँग धाये ॥
कोटि पुत्र सैलूषके, अति दुर्मद रनमहँ निपुन ।
आये लड़िबे भरत हू, भिड़े धारि हिय हरिचरन ॥

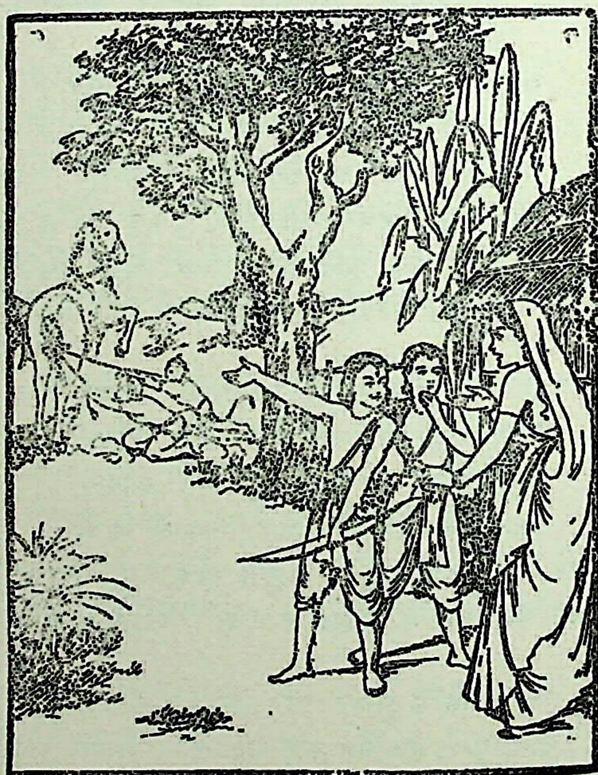
सात दिवस तक युद्ध उभय दल कीयो डटिकें ।
लड़े बीर गन्धर्व गये नहिँ कोई हटिकें ॥
भरत और सैलूष भिड़े लखिं सब घबराये ।
विजय भरतकी भई शत्रु सुरसदन सिधाये ॥
तच्छशिला सुत तच्छकूँ, पुष्कलकूँ पुष्कलवती ।
चले सुतनि दै द्वै पुरी, रखि सेना तहँ बलवती ॥

भरत अवधमहँ आइ राम चरननि सिर नायो ।
बोले प्रभु नहिँ लखन कहूँको भूप बनायो ॥
लछिमनके सुत चन्द्रकेतु अङ्गद नृप होवें ।
तब हम है निश्चिन्त नींद फिरि सुखकी सोवें ॥
देश कारुपथ सुघर अति, भूमि उरवरा बिपुल जल ।
कही भरत सुनि विजयहित, चले लखन सँग बिपुल बल ॥

पुरी कारुपथमाहिँ अङ्गदीया रचवाई ।
अंगद राजा करे प्रजा सुनि अति हरषाई ॥
चन्द्रकेतु हित चन्द्रकान्त शुभ पुर बनवायो ।
लखन तनय नृप भये, हृदय हरिको भरि आयो ॥
सब बन्धुनिके पुत्र नृप, भये सुनो अब सिय कथा ।
अति करुनामय अति दुखद, सुनत होहिँ हियमहँ व्यथा ॥

सियवियोग में दुखित राम नित मख करवावें ।
दान, पुन्य, तप, यज्ञ माहिँ सब समय बितावें ॥
अश्वमेध मख बृहद् रच्यो बहु ऋषि बुलवाये ।
छोड़्यो मखको अश्व शत्रुहन संग पठाये ॥
चल्यो अश्व स्वच्छन्द गति, घूमत देशनि बन विकट ।
आयो चहुँदिशि घूमिकें, बालमीक आश्रम निकट ॥

द्वै सीताके तनय नाम लव कुश अति सुन्दर।
मुनि आश्रममहँ पले शूर तेजस्वी दुरधर ॥
धनुरवेद अरु वेद शास्त्र बाल्मीक पढ़ाये।
अस्त्र शस्त्रके भेद यथाविधि सबहिँ सिखाये ॥



उभय वीररसके सरिस, सुर वैद्यनि सम सुघर अति।
धरें रूप द्वै काम जनु, विहरहिँ बनमें यथामति ॥

इक दिन घूमत लख्यो अश्व वनमहँ अति भारी।
पकरें चड़ी लेहिँ बात मनमाहँ विचारी॥
अश्वमेधको अश्व पकरि लव कुशने लीयो।
नहिं छोड़्यो नहिं डरे समर डटिकें तिनि कीयो॥
भयो घोर संग्राम अति, सब सैनिक मूर्छित भये।
पवनतनय सुग्रीव कपि, पूँछ बाँधि हयकीं दये॥

अति प्रसन्न ह्वै गये मातु ढिँग दोऊ भैया।
भरि उमंगमहँ कहें--विजय कर आये मैया॥
अति ही सुंदर अश्व पकरि हम अबई लाये।
बँधे पूँछ द्वै कीश मनोहर परम सुहाये॥
अवधपुरी को राम नृप, भाई तिनिको शत्रुहन।
घोड़ा तिनिके यज्ञको, लै आये हम जीति रन॥

सेना मूर्छित करी शत्रुहन हमने मार्यो।
पुष्कल राजकुमार लड़्यो सोऊ संहार्यो॥
सुनत रामको नाम भई ब्याकुल अति सीता।
मरन शत्रुहन जानि दुखित चिंतित भयभीता॥
बोलीं—तुम अति ढीठ हो, चाचा तुमरे शत्रुहन।
अश्व तुम्हारे पिता को, कर्यो तुमनि अति लड़कपन॥

द्वै कपि लाये कौन तुरत चलि मोइ दिखाओ।
तुम अति चंचल भये नई नित रारि मचाओ॥
सुनि माताकी डाँट आइ कपि मातु दिखाये।
पहिचाने कपि डरीं तुरत दोऊ छुड़वाये॥
बिलखि बिलखि बोलीं वचन, पवनतनय! सुग्रीव! अब।
हौं तो बनवासिनि बनीं, है करमनिको खेल सब॥

ज्यौं मोकूँ कपिराज! जीति लंकातैं लाये।
ज्यौं बिछुरे पतिदेव सबनि मिलि मोइ मिलाये॥
मरि जाती हौं तहाँ धीर बँधि जातौ उनकूँ।
नहिँ मिलते अपमान सहित ये दिन देखनकूँ॥
अपकीरति जगमहँ भई, निज पतिने हू तजि दई।
मरी नहीं पापिनि तऊ, दुख देखनकूँ रहि गई॥

आजु सुमंगल घरी, मिले तुम दऊ वनमहँ।
कर्‌यो लड़कपन शिशुनि बुरो मत मानों मनमहँ॥
कपि बोले—ये मातु! हमारे स्वामीसुत हैं।
स्वामीतें तो सतत पराजित सेवक नित हैं॥
तुमरी कीरतितैं सतत, जननि! व्याप्त त्रिभुवन रहै।
सतीशिरोमनि भगवती, को तुमकूँ अनभल कहै॥

सिय कीयो संकल्प जगी तब सबरी सेना।
रिपुसूदन इत लखे उभय कपिपति तहँ हैं ना॥
सीय चरन सिर नाइ फेरि कपि दोऊ आये।
नहीं दुरदशा कही न सिय संवाद सुनाये॥
भूमण्डलकूँ विजय करि, पुनि पहुँच्यो हय अवधपुर।
हरषित सबई जन भये, सिय चिन्ता नित राम उर॥

रामचन्द्र मख 'अश्वमेध सुनि मुनिगन आये।
बालमीक भगवान सहित आदर बुलवाये॥
लीये लवकुश संग आइ डेरा कीयो मुनि।
प्रभु प्रमुदित अति भये आगमन मुनिवरको सुनि।
संग सचिव नृप बन्धु सब, मुनि चरननिमहँ परि गये।
दयो अरघ मधुपरक प्रभु, कुशल प्रश्न इतउत भये॥

रामायन मुनि रची कंठ कुश लवने कीन्हीं।
बाल्हमीक स्वर सहित यथाविधि शिक्षा दीन्हीं॥
आयसु मुनिने दई करो गायन सब मखमहँ।
करौ सबनिकूँ मुग्ध न सकुचाओ तुम मनमहँ॥
लवकुश बीना लै चले, गायन रामायन करत।
अम्मृत की बरसा करत, नर नारिनि के मन हरत॥

राम प्रशंसा सुनी कुमर द्वै मखमें आये।
सबकी इच्छा समुझि सभामें तुरत बुलाये॥
सुनिकें गायन मधुर राम अति भये सुखारी।
सब तनु पुलकित भयो देहकी सुरति बिसारी॥
समाचार सब जानिकें, जनकसुताकूँ लैंन हित।
पठये लछिमन रथ सहित, पहुँचे तिनिं ढिंग खिन्न चित॥

कही राम की बात लखन सिय पग परि रोये।
नयन नीरतें मृदुल चरन माता के धोये॥
है अधीर सिय कहें—न देवर! मख लै जाओ।
ज्यों त्यों काटूँ दिवस खिलौंना अब न बनाओ॥
सुतनि शुद्ध समुझें नृपति, तो राखें निज पासमें।
ब्याह समय जो छवि लखी, तिहि सुमिरूँ प्रति स्वासमें॥

दुखित भये सुनि लखन लौटि पुनि प्रभुढिँग आये।
सब सुनि दै सन्देश तुरत पुनि लखन पठाये॥
पति आयसु सिर धारि सहमि सिय अनुमति लीन्हीं॥
सबतैं मिलि जुलि रोय बैठि रथमें चलि दीन्हीं॥
उतरीं मखमहँ मुनि निकट, पद वन्दन ऋषि के करे।
लिपटे लवकुश मातुतें, लखि सिय सबके उर भरे॥

आज्ञा रघुवर दई सभामें सीता आवै।
है चरित्र मम शुद्ध सबनि विश्वास दिलावै॥
मुनि स्वीकारी बात चले सीताकूँ लैकें।
सुनिवे सीता शपथ चले सब उत्सुक ह्वैकें॥
सहमी सुकुड़ी लाजतें, मुनि पाछे श्रुति सरिस सिय।
जनु करुना सँग शान्तरस, चलहि रामपद धारि हिय॥

सीय तापसी वेष लख्यो रोये नर नारी।
चहुँदिशि हाहाकार मच्यो सब सुरति बिसारी॥
मुनिको आदर कर्‌यो न सिय रघुवीर निहारी।
पतिपद मनतें वन्दि खड़ी तहँ जनकदुलारी॥
बालमीक मुनि उठे तब, सम्बोधन करि सबनिकूँ।
कहन लगे गंभीर स्वर, साक्षी दै मख सुरनिकूँ॥

बालमीक मम नाम प्रचेता सुत व्रतधारी।
सत्य शपथ करि कहूँ विशुद्धा जनककुमारी॥
अब तक मैंने करे यज्ञ तप तीरथ सेवन।
यदि अघ सियमें होंहिँ होहिँ सब निष्फल तत्छिन॥
प्राचेतस को शपथ सुनि, भये राम अति ही विकल।
शुद्ध जाह्नवी सरिस सिय, लगे कहन मिलिकें सकल॥

राम सभामहँ शपथ प्रचेता सुतने कीन्हीं।
सुर नर ऋषि मुनि सबनि विशुद्धा सीता चीन्हीं॥
पाइ राम रुख सीय धरातैं बोली बानी।
पतिपरायणा मोइ जननि! यदि तुमने जानी॥
तो अपनेई उदरमहँ, करहु लीन अपनाउ अब।
सुनत भूमि फाटी तुरत, धँसन लगीं सिय दुखित सब॥

धरा धँसत लखि मातु भगे लवकुश जब पकरन ।
बोलीं सिय—पितु ! गहैं सुतनिकूँ राखैं चरनन ॥
लवकुश लीये पकरि महामुनि दोऊ रोवत ।
हाय हाय करि विकल सभासद इतउत बिलखत ॥
मणिमय सिंहासन परम, दिव्य तहाँ प्रकटित भयो ।
सिय बिठाइ पुनि तुरत ही, धरनी भीतर धँसि गयो ॥



निरखि विकल रघुनाथ भये साहस सब छूट्यो ।
पुरुषारथ अब घट्यो धैर्य को दृढ़ पुल टूट्यो ॥
प्रेम सहित ढिंग बैठि मातु सम कौन खवावै ।
हाय ! प्रिये ! कहँ गई कौन अब सीख सिखावै ॥
को रम्भाके सरिस सुख, देहि बात केहि सँग करूँ ।
जीऊँ काको मुख निरखि, क्रोड बदन काको धरूँ ॥

सुनि विधि रघुवर शोक लोक आनेतैं आये।
करि विनती बहु भाँति सीयसर्वस्व मनाये॥
त्यागि तुरत सब शोक बात ब्रह्माकी मानी।
यज्ञ पूर्ण करि गये दुखित रोवत रजधानी॥

सिय वियोग हिय धारिकें, राज काज सब ई करत।
भूले भटकेसे रहत, नयन नीर झर झर झरत॥

इति श्रीभागवत चरितके चतुर्थांहमें राघवेन्दुचरित अन्तर्गत सप्तम सीता-वियोगचरित नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त।



अथ त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

[३३]

जय जय सीतानाथ ! जयति कौशल्यानन्दन ।
जय रघुकुलके तिलक ! जयति भक्तनि उर चन्दन ॥
जय जय प्रभु परमेश प्रणतपालक रघुनायक ।
जय जय करुणासिन्धु धर्मरक्षक प्रणपालक ॥
बनि भूपति निज सुख तजे, उन्नति करी समाजकी ।
चरनवन्दना करि कहूँ, कथा रामके राजकी ॥

बरष सहसदस तीनि राज करि राम बिताये ।
एक दिवस मुनि बिकट निकट रघुबरके आये ॥
लखन आगमन कह्यो राम मुनि तुरत बुलाये ।
इति उत शंकित चकित निरखि मुनि बचन सुनाये ॥
अति रहस्यमय बात इक, कहहुँ ताहि प्रभु चित धरहिं ।
बीच आइ कोई सुनहिं, ताको निश्चय बध करहिं ॥

पण प्रभु करि स्वीकार द्वारपै लखन बिठाये ।
पुनि मुनिसन प्रभु कह्यो:—काल किहि कारन आये ॥
समय समुझिकें काल बेष मुनिको धरि आयो ।
प्रभु आयसु सिर धारि ब्रह्म संदेश सुनायो ॥
अंशनियुत अवतार धरि, भार उतार्यो अवनिको ।
नियत काल जितनों कर्यो, भयो पूर्ण सो सबनिकों ॥

अब इच्छा यदि होइ नाथ ! निज धाम पधारें ।
करि नरतनु संबरन नित्यलीला बिस्तारें ।।
कृशायतन मुनि काल कथन बोले मृदु बानी ।
तिरोभाव तिथि काल प्रथम हम सबने जानी ।।
कही कालतैं प्रभु—करहुँ, होवे जातैं जगत हित ।
तबई आये द्वारपै, क्रोधी दुर्वासा कुपित ।।

रामचन्द्रतैं मिलहुँ कहैं पुनि पुनि दुर्वासा ।
मुनि नहिं माने लखन गये तजि जीवन आसा ।।
बुलवाये मुनि बिदा काल रघुवरने कीन्हों ।
करि आदर सत्कार स्वादयुत भोजन दीन्हों ।।
पूर्ण प्रतिज्ञा करनहित, रघुपति लछिमन तजि दये ।
राम बिरहमें तनु सहित, दुखित लखन सुरपुर गये ।।

लखन बिरह अति दुसह राम तेहि सहि न सके जब ।
लवकुश कीन्हें नृपति चले तन धन जन तजि सब ।।
भरत शत्रुहन संग चले पुरके नर नारी ।
खग, मृग, बानर, बृद्ध, भीर लागी सँग भारी ।।
राम प्रेमके पाशमहँ, बँधे चले सब हरषिकें ।
अति प्रमुदित सुरपति भये, हरष जतावें बरषिकें ।।

अवध पुरीतैं सकल चले सियपतिहिं धारि उर ।
निखिल जीव निर्मुक्त भये सब शून्य भयो पुर ।।
कीयो प्रभुपद प्रेम सफल तनु तिननें कीन्हों ।
जगजीवनको लाभ जथारथ तिनही लीन्हों ।।
बिधि बिमान अगणित लिये, सरयूतट आये तुरत ।
बैठि पधारे परमपद, रघुनन्दन निज तनु सहित ।।

जिहि पदपावन हेतु करहिँ जप जोग विरागी ।
त्रिविध भाँति तनु कसहिँ तेजयुत तपसी त्यागी ॥
सो पद पायो सहज अवधवासी जीवनिनें ।
रामकृपातैं लोक उच्चतम पायो तिनिनें ॥
पल्लो पकरें प्रेम तैं, आत्म समरपन जे करहिँ ।
ते तप तीरथ जोग बिनु, भवसागर छिनमहँ तरहिँ ॥
विरहमाँहि अवसान चरित रघुनन्दनको सुनि ।
शौनक अतिई दुखित सूतजीतैं बोले पुनि ॥
सूत ! चरित दुःखान्त नेंक नहिं हमहिँ सुहावै ।
सुमिरि राम निर्वाण हृदय पुनि पुनि भरि आवै ॥
सब सुनि बोले सूत जी, मुनिवर ! राम अखंड अज ।
तिनकी आद्या शक्ति सिय,जाहि कबहुँ नहिँ तिनहिँ तजि ॥
सुनहु सुखान्त चरित्र राम स्वामी त्रिभुवनके ।
भरत लखन रिपुदलन रहें आज्ञामहँ तिनके ॥
पतिकूँ सरबसु समझि सदा सीया सुख पावें ।
राम निरखि सिय कमल बदन छिन छिन हरषावें ॥
कनकभवन अति ई सुघर, सब सामग्री सुखद जहँ ।
हरषित है रघुबंशमनि, रमन करहिं सिय संग तहँ ॥
राम मातु पितु सुहृद सखा स्वामी बनि जावें ।
पति परमेश्वर पुत्र रूप धरि सबहि कहावें ॥
जो जैसे ही भजै भजें वे ताकूँ तैसें ।
क्रीड़ा अनुपम करें भक्त पावें सुख जैसें ॥
मन विषयनितैं मोड़िकें, प्रभु सेवा संलग्न चित ।
ते रघुबरलीला लखहिँ कनकभवनमहँ होहि नित ॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थांहमें राघवेन्दुचरित अन्तर्गत
अष्ठम उत्तरचरित नामक तेंतीसवाँ अध्याय समाप्त

अथ चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

[३४]

जय शोभाके धाम ! राम ! चरननि सिर नाऊँ ।
वरदाता ! वर देहु रूप तुमरो नित ध्याऊँ ॥
रटूँ तुमारो नाम अन्य बानी नहिं भाखूँ ।
निरखूँ जग तव रूप भक्ति भक्तनिमें राखूँ ॥
धाम तुम्हारेमें बसूँ, नित लीला चिन्तन करूँ ।
राम राम रटिवो करूँ, अन्त राम कहिकें मरूँ ॥

राम नाम ही नाम और सब नाम असत हैं ।
राम रटैंतैं पाप कटैं सब सन्तनि मत हैं ॥
राम नामके लेत मधुर बानी ह्वै जावै ।
राम स्वादरस मिल्यौ जिनहिँ तिनि अन्य न भावै ॥
राम नाम काननि प्रविसि, हियके मेंटै शोक सब ।
रोम रोम रमिजात है, राम रूप ह्वै जाय तब ॥

राम रूप लखि अचर सचर बनि द्रवहिँ पसीजें ।
धन्य धन्य ते पुरुष रामरसमें जे भीजें ॥
यातुधानहू रूप लखैं मोहित ह्वै जावें ।
इकटक निरखत रहें समरमहँ लड़िवे आवें ॥
रूपजालमें जे फँसें, खल जन लखि उनकूँ हँसें ।
तिनिके भवबन्ध नसें, रामधाममें जे बसें ॥

परमधाम साकेत अयोध्या सुख सरसावनि।
हरन सकल संताप जगतके दुःख नसावनि॥
सरयूको शुभ नीर पीर सब ई हरि लेवै।
हियकूँ शीतल करै अन्तमें प्रभु पद देवै॥
करैं धाममहँ बास जे, ते निश्चय तरि जायँगे।
धामी सब अब मेंटिकैं, धाम प्रभाव दिखायँगे॥

जीवनको फल जिही रामलीलाको सुमिरन।
अष्टयाममहं करै चित्त चरितनिको चिन्तन॥
लीला अपरम्पार शेष शारद सकुचावैं।
कैसे प्राकृत पुरुष तुच्छ भाषामें गावैं॥
नरतनु धरि लीलाकरी, जग जीवनि कल्यान हित।
तिनहिँ सुनहिँ समुझहिँ पढ़हिँ, होवै तिनिकूँ सुख अमित॥

जो अज अच्युत राम जनम तिनि रघुकुल लीयो।
दशरथ कोशलसुता जनक जननी पद दीयो॥
भरत शत्रुहन लखन भये अंशनि सँग प्रकटित।
जननि, जनक, जगजीव जनम सुनि भये प्रफुल्लित॥
प्राकृत शिशु सम दिव्य अति, करी सरस लीला सुघर।
जिनिके सुमिरनतें हृदय, होहि विमल अतिशय मधुर॥

दशरथ सुखमयसदन कर्‌यो क्रीड़ा करि पावन।
बालकालके खेल करे अतिशय मनभावन॥
पढ़न गये गुरुगेह गुरुनिको मान बढ़ायो।
यों शिशुपनको चारु चरित अति मधुर दिखायो॥
पुनि कौशिक मुनि सँग गये, मारे मखके शत्रु सब।
धनुषयज्ञ मिथिला सुन्यो, राम लखन मख चले तब॥

तारि अहल्या गैल गये तिरहुत हुलसावत।
लैंन सुमन चहुँ ओर फिरहिँ रस सो वरसावत ॥
राजा रानी सोय प्रजा सबके मन धाये।
निश्चय सबकूँ भयो सियाके दुलहा आये ॥
राम लखन तप तेज सम, शोभित धनुधर मुनिनि सँग।
भये मुग्ध नर नारि सब, निरखि नयन तनु रूप रँग ॥

शिवको तोर्‌यो धनुष वरीं सिय अति सुकुमारी।
जोरी भोरी लखी भये प्रमुदित नर नारी ॥
चारिहुँ भाइनि संग ब्याह करि पुर चलि दीये।
परशुराम मग मिले मर्दि मद बिनु मद कीये ॥
जननिनि नयननि सफल करि, सिय सँग सुख सरसाइकें।
चोरि चित्त सबके लिये, दम्पति दृश्य दिखाइकें ॥

कैकेयी चित कुमति बसी कुबरी मतिमानी।
राम न राजा भये गये तजि निज रजधानी ॥
गमने सुरपुर भूप भरत सुनि पुरमहँ आये।
पुरजन, मन्त्री, सचिव, मातु, गुरुने समुझाये ॥
नहिँ मानी सिख सबनिकी, चित्रकूट प्रभु ढिँग गये।
राम लखन सिय वेष मुनि, निरखि भरत विह्वल भये ॥

चरन पादुका लईं न लौटे जब रघुनन्दन।
नन्दिग्राममहँ बसहिँ भरत करि करुनाक्रंदन ॥
इत रघुवर सिय लखन संग लै बन बन विहरत।
कन्द मूल फल खात मुनिनिके आश्रम ठहरत ॥
पंचवटीमें लखननें, सूपनखा नकटी करी।
राम निरखि हिय कामकी, लपट लगी कुलटा जरी ॥

ह्वैकें रावन कुपित हरिन मारीच बनायो।
निरखि कनक मृग सिया पकरिबे चित्त चलायो ॥
गये हरिन सँग राम लखन पीछेंतें धाये।
रावन आयो तहाँ कपट मुनि वेष बनाये ॥
करि छल बल हरि सीयकूँ, गीध मारि पुर लै गयो।
बगदे प्रभु सिय नहिं लखी, हृदय शोक भीषन भयो ॥

खोजत खोजत राम करी मग पावन शबरी।
ऋष्यमूक मग मिले पवनसुत प्रभुके प्रहरी ॥
सुग्रीवहिं करि मित्र बालि कपि मार्यो छलतें।
कीये कपि एकत्र गये हनु लंका बलतें ॥
सुन्यो सीय सम्बाद सब, सागर सेतु बनाइकें।
गए विभीषन लंक लै, शरनागत अपनाइकें ॥

रावन सेना सहित मारि सुर कष्ट मिटाये।
जनकसुता अपनाइ विभीषन भूप बनाये ॥
अवधि अन्त जब भयो अवधपुर रघुवर आये।
भरत हृदय अति हरष चरन कमलनि सिर नाये ॥
राजतिलक रघुनाथको, भयो राम राजा भये।
शोक मोह भ्रम दुःख भय, सब प्रानिनिके भगि गये ॥

राखी प्रजा प्रसन्न सती सीता-सी त्यागी।
आज्ञापालन कठिन करी लछिमन बड़भागी ॥
तेऊ त्यागे अंत संबरन लीला कीन्हीं।
त्याग ग्रहनतें श्रेष्ठ राम जग शिक्षा दीन्हीं ॥
लीला मधुमय रामकी, सुनि हिय करुनातें भरै।
राम बिना या जगतकूँ, मर्यादायुत को करै ॥

रामचरित जे पुरुष प्रेमतें पढ़ें पढ़ावें।
तिनके छूटें बन्ध परम पदवी ते पावें॥
श्रवनिपुटनितें पिये हिये आवे कोमलता।
मिटहिं कठिनता निखिल होहि जीवनमहँ मृदुता॥
नित प्रति नव दिन नियमतें, रामायन जे नर सुनहिं।
ते न भूलि भवजालमहँ, श्रवन रसिक कबहूँ फँसहिं॥
ग्राम्यकथामहँ व्यर्थ जीव जीवन सब खोवें।
अंत समय यमदूत निरखि डरि पुनि पुनि रोवें॥
रामकथा यदि सुनहिं दुःख काहेकूँ पावैं।
देखें नहिं यमसदन नित्य बैकुन्ठ सिधावैं॥
चिन्ता, दुख, भय, शोकयुत, नीरस यह संसार है।
है यदि जामें तत्व तो, रामचरित ही सार है॥

सोरठा—सुनें भक्त दै चित्त, राघवेन्दु को शुभ चरित।
ते पावें 'प्रभुदत्त, भक्ति भक्त भगवन्त की॥

इति श्रीभगवत चरितके चतुर्थांहमें राघवेन्दुचरित अन्तर्गत
नवम महिमाचरितनामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त।



अथ पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः

[३५]

कुशके सुत नृप अतिथि निषध नृप तिनके नभ सुत।
हिरण्नाभ नृप दशम पीढ़िमहँ भये योगयुत॥
जैमिनि मुनितैं योग सीखि कीरति बहु पाई।
याज्ञवल्क्यकूँ जिननि योग विधि सरल सिखाई॥
तिनकी छठवीं पीढ़िमहँ, भूप वंशधर मरु भये।
वंश बचावनके निमित, अजर अमर नृप है गये॥

मरुतैं अष्टम पीढ़िमाँहि नृप भये वृहद्बल।
जिनकी द्वापरमाँहिँ भई कीरति अति उज्वल॥
भारतमहँ अभिमन्यु संग लड़ि स्वर्ग सिधारे।
कुमर वृहद्रण बचे बने राजा अति वारे॥
पीढ़ी उन्तिसमहँ भये, अन्तिम नृपति सुमित्र बर।
फिरि कलिमहँ इक्ष्वाकुके, रहे विशुद्ध न वंशधर॥

अब इक्ष्वाकु कुमार द्वितिय निमि वंश सुनाऊँ।
गुरु बशिष्ठतैं कह्यो नृपति—हौं यज्ञ कराऊँ॥
ऋत्विज बनि गुरुदेव! यथा विधि मख करवावें।
बोले गुरु—सुरराज बुलायो तहँ है आवें॥
भये मौन सुनि निमि नृपति, इन्द्र यज्ञ हित गुरु गये।
छिनभंगुर जीवन निरखि, चिन्तित नृप सोचत भये॥

हे यह देह अनित्य यज्ञ अविलम्ब कराऊँ।
यदि गुरु आवें नहीं अन्य आचार्य बुलाऊँ॥
करि दृढ़ निश्चय तुरत यज्ञ आरम्भ करायो।
मुनि बशिष्ठ पुनि आइ नृपति प्रति क्रोध दिखायो॥
देहपात को शाप मुनि, दयो भूप क्रोधित भये।
नृपहु शाप मुनिकूँ दयो, तनु दोउनिके गिरि गये॥

तनु तजि मित्रावरुण बीर्यतैं प्रकटे पुनि मुनि।
निमिहू नेत्रनिमाँहिँ बसहिँ नित पलक निमिष बनि॥
निमिको मृतक शरीर मथ्यो वैदेह भये सुत।
आदि जनक मिथिलेश मुक्त जीवन समाधियुत॥
तबतैं निमि बंशी नृपति, जनक विदेह कहाहिँ सब।
छिनभंगुर समुझैं सबहिँ, राज पाट वाहन विभव॥

उन्निस पीढ़ीमाँहि ह्रस्वरोमा जनमे सुत।
सीरध्वज तिनि पुत्र जगतमहँ परम कीर्तियुत॥
भये यशस्वी पुत्र कुशध्वज तिनिके प्यारे।
पुत्री सीता भईं उभय कुल जिनने तारे॥
जनकदुलारी मैथिली, जनकसुता सीता सती।
वैदेही जनकात्मजा, जिनहिं जपहिं जोगी जती॥

सीरध्वज मख करन भूमि शोधन हित आये।
ऋषि मुनि ज्ञानी विप्र शोधिवे तहाँ बुलाये॥
शोधी सबने भूमि जनक हल तहाँ चलायौ।
तबहिं अवनितैं प्रगटि, सीय निज रूप दिखायौ॥
सीर माँहि सीता भईं, लखि कृतार्थ नृप ह्वै गये।
याकी पुत्री मानिकें, सीरध्वज तातैं भये॥

सीय पिता बनि जगतमाँहिँ यश बिपुल कमायो।
कियो राम सँग ब्याह नृपति निज भाग्य सरायो॥
आदि शक्ति हैं सीय जगत छिनमाँहिँ बनावें।
पालें पोसें सतत अंतमहँ प्रलय करावें॥



यह प्रपंच सब शक्तिको, क्रीड़ा थल ऋषि मुनि कह्यो।
जगदम्बाके पिता बनि, सीरध्वज अति यश लह्यो॥

सीरध्वज सुत भये कुशध्वज जनक अमानी।
धर्मध्वज तिनि पुत्र कर्मयोगी अति ज्ञानी॥
लोकवेदमहँ निपुण सबनिकूँ ज्ञान सिखावैं।
परमारथके प्रश्न पूछिवे पंडित आवैं॥
भयो सुखद संवाद शुभ, सुलभा योगिनी संगमहँ।
घुसी योगिनी योगतैं, जनक नृपतिके अंगमहँ॥

भये योगिनी संग जनक नृपके प्रश्नोत्तर।
योग ज्ञान अध्यात्मयुक्त सुन्दर अति सुखकर॥
दोऊ ज्ञानी परमज्ञानकी गंग बहाई।
जनक त्याग तप तेज निरखि सुलभा हरषाई॥
स्वयं तरे तारे बहुत, द्वै तिनिके अनुरूप सुत।
भये कृतध्वज प्रथम नृप, द्वितिय मितध्वज योगयुत॥

पुत्र कृतध्वजमाँहिँ भये केशिध्वज ज्ञानी।
मितधूवज तनय भये खाण्डिक्य अमानी॥
केशिध्वज अध्यात्म ज्ञानमहँ बिदित दिवाकर।
कर्म तत्व परबीन नृपति खाण्डिक्य उजागर॥
क्षत्रिय धर्म कठोर अति, समर उभय दलमहँ भयो।
हार्यो लघु खाण्डिक्य नृप, डरिकें बनमहँ भगि गयो॥

इत केशिध्वज कर्यो यज्ञ इक अतिशय भारी।
सिंह यज्ञकी धेनु खाइ सब बात बिगारी।
पूछ्यो प्रायश्चित्त सबनि खाण्डिक्य—बताये।
तिन ढिँग भूपति गये, वृत्त सब तिनहिँ सुनाये॥
प्रायश्चित्त सुन्यो जनक, आइ कर्यो बिधिवत सकल।
सोचें गुरु, खाण्डिक्यकूँ, दई दक्षिना नहिं बिपुल॥

दैंन दच्छिना गये न याच्यो राज कोष धन।
कह्यो दच्छिना देहु असत सत समुझे कस मन॥
हँसि केशिध्वज कह्यो—लाभ जग तुमही पायो।
समुझि विषय विष सरिस न तिनिमहँ चित्त फँसायो॥
देही देह पृथक् सतत, सुनहु ज्ञान परमार्थयुत।
देही नित्य अनित्य तनु, तत्सम्बन्धी गेह सुत॥

यों दीयो बहु ग्यान भये कृतकृत्य जनक जब।
कीयो बहु सत्कार गये केशिध्वज गृह तब॥
करन योग खाण्डिक्य गये बन भूपति करि सुत।
केशिध्वज हू क्लेश कर्म तजि भये योगयुत॥
जगमहँ जीवनमुक्त नृप, केशिध्वज हू है गये।
तिनिके पीछे तनय तिनि, भानुमान भूपति भये॥

पीढ़ी सत्ताईसमाँहिँ अंतिम मैथिल कृति।
भये जनक कुलमाँहिँ परम ज्ञानी सब भूपति॥
ऋषि मुनि नित प्रति आइ करहिँ सतसंग सदा हीं।
या कुल कोई कृपण अज्ञ नृप प्रकट्यो नाहीँ॥
शुक सम त्यागी जनक ढिँग, परमारथ सीखन निमित।
आये तिनिके शुभ चरित, करहिँ सतत संसार हित॥

जनक बंशको बिमल चरित अति सुखद सुनायो।
तिहि जगमहँ यश ज्ञान दानदैं बिपुल कमायो॥
प्रकटीं आद्या शक्ति अमर कुल भयो भुवनमहँ।
करन जीव कल्यान फिरीं प्रभुसँग बन बनमहँ॥
यों बिकुच्छि निमि वंशकी, कही कथा अति सुखमयी।
दंडक तीसर तनयकी, सुनहु कथा अब दुखमयी॥

सुत इक्ष्वाकु तृतीय गयो दंडक बनमाँहीं ।
शुक्रसुता लखि भई बिकलता अति मनमाँहीं ॥
अनुचित करि प्रस्ताव कुपित कन्या तिनि कीन्हीं ।
भयो कामवश शिखा पकरि कन्याकी लीन्हीं ॥
गुरुकी कन्या द्विजसुता, विरजा संगमतैं रहित ।
बुद्धि भ्रष्ट नृपकी भई, करि अनुचित कीयो अहित ॥

लज्जित पितु ढिँग गई शुक्रतनया जब रोवति ।
दुहिता देखी दुखित कुपित तब भये शुक्र अति ॥
दयो शाप नृप राज नष्ट ह्वै जावै सबई ।
बरसी बालू तप्त भयो दंडक-बन तबई ॥
घोर पापतैं पलकमहँ, धूरि माँहि वैभव मिल्यो ।
नष्ट भयो परिवार सब, फिर दंडक कुल नहिं चल्यो ॥

इति श्रीभागवत चरितके चतुर्थाहमें निमि दंडक चरित नामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।

(मासिक पारायण सत्रहवें दिवसका विश्राम)



अथ षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

[३६]

कहैं सूत—अब प्रथम शीश शुक चरननि नाऊँ।
तब अति पावन चन्द्रवंशकी कथा सुनाऊँ॥
नारायण के नाभि-कमलतैं अज चतुरानन।
प्रकटे तिनके पुत्र अत्रि कुल जिनको पावन॥
चन्द्र तनय तिनिके भये, अति तेजस्वी तपस्वी।
राजसूय करि दिग्विजय, भये जगतमहँ यशस्वी॥

यौवन, धन, सम्पत्ति और प्रभुता जगमाँहीं।
होवै यदि अविवेक सहित तो फल शुभ नाहीं॥
यौवनतैं उन्माद मान धनतैं है जावै।
सम्पति प्रभुता पाइ सबनिकूँ कुटिल सतावै॥
सुन्दरताकी ठसकमहँ, सोमकार्य अनुचित कर्यो।
यौबन मद ऐश्वर्यने, सब विवेक तिनिको हर्यो॥

अत्रि तनय अद्वितीय सुघर अतिशय त्रिभुवनमहँ॥
लखैं उनहिं जे नारि काम प्रकटै तिनि मनमहँ॥
रूप निरखि आसक्त भईं मुनिपत्नी सबहीं।
निज निज पति तजि गईं समुझि सोमहिं सरबसुहीं॥
अति साहस तब सोमको, बढ़्यो पाप मनमहँ धँस्यो।
तारा गुरुपत्नी हरी, रूप अनूपम चित बस्यो॥

दाराको सुनि हरन देवगुरु दुख अति पायो ।
धर्मनीति कहि चन्द्र विविध विधिगुरु समझायो ।।
भयो काम बश चन्द्र सीख गुरुकी नहिं मानी ।
लियो सोमको पच्छ शुक्रने अवसर जानी ।।
शिव सुरगुरुको पच्छ लै, तारा हित लड़िवे चले ।
अस्त्र शस्त्रतैं सजि असुर, आइ चन्द्रमातैं मिले ।।

कमलयोनिढिँग जाइ अङ्गिरा वृत्त सुनाये ।
सुनि चतुरानन तुरत शुक्र शिवगुरु ढिँग आये ।।
झिड़के आकें चन्द्र कोप करि डाँट बताई ।
कीयो बीच बिचाव देवगुरु दार दिवाई ।।
देखि गर्भिणी बृहस्पति, आग बबूला ह्वै गये ।
कछुक कहे कटु दुर्वचन, पत्नीपै क्रोधित भये ।।

पूछ ताँछ विधि करी भेद तारा बतलायो ।
जानि चन्द्रको तनय तुरत बुध तिन्हैं दिवायो ।।
गुणी तपस्वी परम सुघर बुध वनमहँ तपहित ।
निवसैं तबई फँस्यो इलामहँ चन्द्र पुत्र चित ।।
मनु कुमार सुद्युम्न इक, दिवस सेन सजि बन गये ।
तहँ शिवजीके शापतैं, छोरातैं छोरी भये ।।

घोड़ा घोड़ी भये लोग सब भये लुगाई ।
नरतैं कैसे नारि बने सुधि बुधि बिसराई ।।
परम सुन्दरी भई फिरैं इत उत सब बनमहँ ।
इला रूप सर काम घुस्यो श्रीबुधके मनमहँ ।।
सैंननिके संकेत तैं, सट्ट पट्ट कछु ह्वै गई ।
सहमत दोऊ ई भये, इला बधू बुध की भई ।।

नृप पुरूरवा भये इलामहँ बुधसुत मनहर।
मुनि बशिष्ठ तहँ आइ शैव मख कीन्हों सुन्दर ॥
भये तुष्ट शिव कह्यो मास भरि नृप नर हौवै।
रहैं मास भरि नारि जाइ महलनिमहँ सोवै ॥

प्रतिष्ठानपुर आइ गय, पुत्र विमल उत्कल भये।
नृप पुरूरवहिं राज दै, तपहित पुनि बनमहँ गये ॥
प्रतिष्ठानपुर अधिप जगत महँ अति ही सुन्दर।
भूप रूप लखि धँस्यो उरबशी हृदय काम शर ॥
निज ऊरूतैं प्रकट करी नारी-नारायन।
भई उरवशी श्रेष्ठ स्वरगको सुन्दर-भूषन ॥
सो पुरूरवा रूप पै, भ्रमरी सम मोहित भई।
अमृत, इन्द्र, सुर स्वरग तजि, विह्वल ह्वै नृपपुर गई ॥

बन उपबन सर हाट बाट बिस्मित ह्वैकें अति।
निरखै इत उत चकित भइ भूली अमरावति ॥
लै रम्भाकूँ संग उरबशी पहुँची पुरमहँ।
प्रतिष्ठानपुर निरखि भई प्रमुदित अति उरमहँ ॥
पल पल भारी ह्वै रह्यो, बनी भ्रमरिका रूपकी।
महल बाटिकामहँ सखी, करें प्रतीक्षा भूपकी ॥

आवत निरखे नृपति सखा सँग अति हरषाई।
किन्तु न लखि एकान्त भूप सम्मुख नहिं आई ॥
नृपति मनोगत भाव जानिबेकूँ छिपि इत उत।
सुनैं करें जो बात सखातैं नृप बिह्वल चित।
चित्त उरबशीमहँ फँस्यो, नृपको रम्भा जानिकें।
आई सम्मुख सखीसँग, हरषे नृप पहिचानिकें ॥

करि स्वागत नृप कहैं—आजु हौं भयो कृतारथ ।
पृथिवीपति नरदेव नाम मम भयो जथारथ ॥
देवि उरबशी देखि चन्द्रमुख तब हौं हरष्यो ।
मनहु मृतक द्रुम उपरि सुधारस बरबस बरस्यो ॥
प्रानदान दयिता दयो, दुरलभ दरश दिखाइकें ।
जनम सफल मेरो करो, अनुचर मोहि बनाइकें ॥

कहे उरबशी—देव ! कौन ललना जग माहीं ।
जो लखि तुमरो रूप होहि बरबस बश नाहीं ॥
प्यारे पुत्र समान मेष बालक द्वै मम सँग ।
पालन तिनको करहिं न रति तजि लखहुँ नगन अँग ॥
घृतको भोजन करहुँ नित, दुख सुख सब कछु सहुङ्गी ।
प्रन यदि पूरे भये नहिँ, तो न यहाँ फिर रहुङ्गी ॥

सब स्वीकारे नियम उरबशी नृप अपनाये ।
पाइ ऐल सुरबधू हियेमहँ अति हरषाये ॥
सचिवनि शासन सौंपि प्रिया सँग ह्वै प्रमुदित अति ।
बन उपबन गिरि निकट नदीतट बिहरहिं भूपति ॥
जने पाँच सुत अप्सरा, आयु श्रुतायु शतायु रय ।
सब सुन्दर सब सर्वविद्, भये पाँचवें सुत विजय ॥

इत सुरपति लखि स्वरग उरबशी बिनु घबराये ।
प्रेरित करि गन्धर्व ऐलपुरमाँहिँ पठाये ॥
लै मेषनि गन्धर्व रातिमहँ छिपिकें भागे ।
सुनिकें तिनको शब्द उरबशी सँग नृप जागे ॥
भूपतिकूँ कोसन लगी, चोरनि सुत मेरे हरे ।
भये ब्यरथ नृपके नियम, लगन समयमहँ जो करे ॥

प्रियाबचन सुनि परुष नगन नृप असि लै धाये।
करि प्रकाश गन्धर्व मेष तजि तुरत बिलाये॥
जब नृप निरखे नगन–उरबशी अति सकुचाई।
अन्तरहित ह्वै गई, फेरि सुरपुरमहँ आई॥
फिरे नृपति नहिं लखी तहँ, प्रिया अधिक बिह्वल भये।
अन्वेषण हित तुरत ही, रोवत बनकूँ चलि दये॥

सुमिरि सुमिरि गुन रूप भूप रोवैं पछितावैं।
कस्तूरी मृग सरिस फिरैं विह्वल डकरावैं॥
जड़ चेतनको भेद भाव भूले भ्रम छायो।
पूछें पक्षी पशुनि पतो कोई न बतायो॥
जाति, बरन, पद, प्रतिष्ठा, सब अभिमान बिसारिकें।
इत उत भूले फिरहिं हिय, रूप उरबशी धारिकें॥

बैठें तरु तर तनिक तुरत औचक उठि धावैं।
भ्रम वश प्रिया निहारि बढ़ैं आगे गिरि जावैं॥
अंट संट कछु बकैं सिड़ी पागल सम रोवैं।
निशिबासर पथ चलें करें भोजन नहिँ सोवैं॥
चलत चलत द्वादश दिवस, महँ पहुँचे कुरुक्षेत्र ढिँग।
भूख प्यास श्रम नींदतैं, भये नृपतिके शिथिल अँग॥

लखी उरबशी तहाँ पाँच सखियनि के सँगमहँ।
अति प्रसन्नता भई प्रिया लखि नृप अँग अँगमहँ॥
बोले—जाया! प्रान तुम्हारे बिनु ये जावैं।
तब निरखत तन मृतक होहि गीदड़ बृक खावैं॥
कहै उरबशी—कामिनी, करैं प्रीति निज स्वार्थतैं।
नष्ट करहिं सर्वस्वकूँ, भ्रष्ट करहिं परमार्थतैं॥

नृपवर धारो धीर कष्ट कब तलक सहोगे।
एक बरष पश्चात् रात्रि मम संग रहोगे॥
होवेगो सुत और शोक सब मनको त्यागो।
गन्धर्वनिकूँ पूजि मोइ उनतैं तुम माँगो॥
नृप सँग निशि बसि गई पुनि, राजा तप लागे करन।
भये तुष्ट गन्धर्व तब, भूपतितैं बोले बचन॥

बर माँगो सुनि नृपति नीर नयननिमहँ छायो।
बोले—यदि बर देहु उरबशी मोइ दिवाओ॥
अग्निस्थाली दई कह्यो करि तीनि भागमहँ।
करो यजन पुनि जाइ उरबशी बसहिं सदा जहँ॥
तब ई आई उरबशी, दै सुत निज पुरकूँ गई॥
थाली रखि सुत संग पुर, गये लुप्त पावक भई॥

बिनु पावकके पात्र लख्यो चित चिन्ता छाई।
गन्धर्वनिने आइ नृपतिकूँ युक्ति बताई॥
मथो अरनि द्वै प्रकट होहिं पावक मानो सुत।
कीन्हो मन्थन भये प्रकट लै गये अनलयुत॥
यज्ञ याग पुर पहुँचिकैं, करे उरबशी मिलन हित।
दान,धरम,शुभ करम, मख,करहिं प्रिया महँ फँस्यो चित॥

भयो कामतैं क्रोध शाप बिप्रनिने दीन्हों।
जीवित ह्वै तप घोर जाइ बदरीबन कीन्हों॥
नारायणने कृपा करी नृप स्वरग सिधाये।
निज शरीरके सहित गये सुर लखि हरषाये॥
सुरपति सँग बैठाइकैं, सब सुख सामग्री दई।
पतिहिं पाइ पुनि उरबशी, प्रेम सहित प्रमुदित भई॥

पाइ अपसरा संग सुखी भूपति अति मनमहँ।
दिव्य बिमान बिठाइ प्रिया सँग बिहरें बन महँ॥
नित अमरामृत पान करें सुधि बुधि बिसराई।
नहिँ जाने कब दिवस होहि पुनि निशि कब आई॥
मोह दाममहँ फँस्यो मन, रहै अतृप्त दुखी सतत।
विषयनिमहँ संतोष नहिँ, भयो फेरि नृप चित बिरत॥

नृपकूँ भयो बिबेक मोह निद्रातैं जागे।
निज स्वरूप पहिचान विषय विष सम अब लागे॥
अब न उरबशी भली लगे गुन सब बिलाने।
समुझि दोष की खानि हाथ मलि मलि पछिताने॥
हाड़, माँस, मल, मूत्रिको, तनु थैला दीखन लग्यो।
भक्त भये भगवानके, बिषय भोग मल भ्रम भग्यो॥

भयो ज्ञान तन नाशवान अबिनाशी श्रीहरि।
साधक तरे अनेक काम तजि प्रभु चिन्तन करि॥
नारि फँसे नर रूप निरखि नर नारि रूपमहँ।
दोऊ तजि परमार्थ गिरैं जग अंध कूपमहँ॥
चरम, मांस, रज, बीर्यमहँ, अज्ञ लिपटि समुझैं सुखी।
ज्यों-ज्यों बिषयनिमहँ फसें, होहिँ अधिक त्यों-त्यों दुखी॥

करै न कबहूँ संग कामिनी कामुक जनको।
नहीं करै बिश्वास पंचइन्द्रिय अरु मनको॥
योगी ज्ञानी सिद्ध बिवेकी हू फँसि जावें।
त्यागि तपस्या योगकाम भोगनि अपनावें॥
तातैं ह्वै निस्संग नित, निरत भजन ही महँ रहै।
बिषयनितैं बचिकें चलै, मम मनबश कबहुँ न कहै॥

यों करि मनहिं प्रबोध भये विषयनितैं उपरत ।
त्यागि उरबशी लोक आत्म सुखमाहिं निरत नित ॥
बिखरी मनकी वृत्ति योगतैं वशमहँ कीन्हीं ।
करि स्वरूप संधान चित्तकूँ शिक्षा दीन्हीं ॥

मन पुरूरवा उरबशो—माया पुर तनकूँ कहें ।
फँसिकें ताके फंदमहँ, जीव विविध विधि दुख सहें ॥

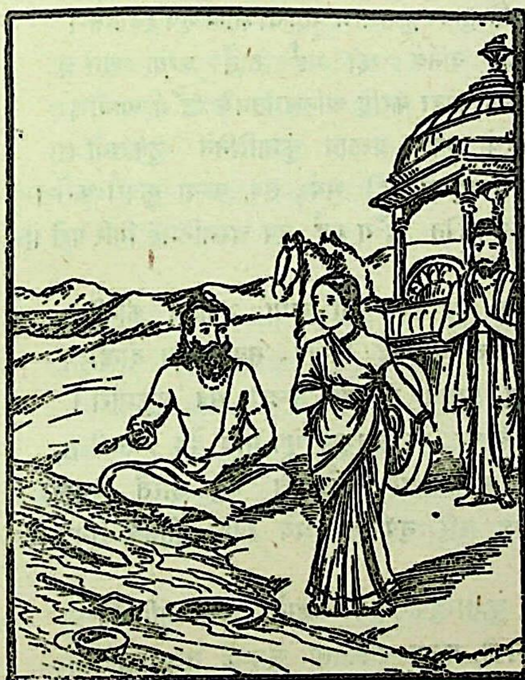
इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थांहमें चन्द्रवंशी ऐल चरित्र नामक छत्तीसवां अध्याय समाप्त ।



अथ सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः

[३७]

भये ऐलके विजय विजयके भये भीम सुत।
तिनिके काँचन भये होत्र तिनि भये धरमयुत ॥
होत्र पुत्र जगमाहिं जह्नु ऋषि बड़े तपस्वी।
गंगा सब पी गये जगतमहँ भये यशस्वी ॥



मख सामग्री गंगने, जलमहँ दई डुबोइ सब।
पान करीं जनि कानतें, भयो जाह्नवी नाम तब ॥

जह्नु तनय नृप पुरू पुरूके पुत्र बलाक हु ।
परम प्रसिद्ध बलाक भये तिनके सुत अजक हु ॥
अजक जगतमहँ भये यशस्वी तिनके कुश सुत ।
तिनतैं कौशिक गोत्र भयो जगमाँहिं धरमयुत ॥
पुत्र चारि तिनके भये, भिन्न भिन्न पुरके अधिप ।
श्री कुशाम्बु भूतप बसू, चौथे भये कुशाम्बु नृप ॥

अति सुन्दर कुशनाभ घृताची लखि नृप दृढ़ व्रत ।
पत्नी बनिकें रही भईं तातैं कन्या शत ॥
कन्या क्रीड़ा करहिं अनिल तिनके ढिँग आयौ ।
करयो ब्याह प्रस्ताव कुमारिनिने ठुकरायौ ॥
कुपित बायु अति ही भयो, सब कन्या कुबरी करीं ।
रोवत सब पितु ढिँग गईं, नृप चरननिमहँ गिरि परीं ॥

बायु बात सब सुनी चमा भूपतिने कीन्हीं ।
ब्रह्मदत्त बुलवाइ तिनहिं सब कन्या दीन्हीं ॥
पति परसत ही भईं सुन्दरी सब सुकुमारी ।
लखि घर बर अनुकूल भूप सुधि देह बिसारी ॥
कन्या अपने घर गईं, पुत्र हेतु हरितैं बिनय ।
करी यज्ञ करि नृपतिने, भये गाधि तिनके तनय ॥

ते कुशाम्बुके पुत्र कहाये गाधि भूमिपति ।
तिनकी कन्या सत्यवती जगमहँ सुन्दर अति ॥
आइ महर्षि ऋचीक याचना कन्या कीन्हीं ।
सुनि घबराये बात बदलि भूपतिने दीन्हीं ॥
बोले—देउ सहस्र हय, स्वच्छ, शुभ्र जिनको बरन ।
बेगवान अति कान्तियुत, एक कृष्ण होवै करन ॥

सुनि मुनि नृपमन भाव समुझि जललोक पधारे।
वरुण कर्‌यो आतिथ्य प्रेमतैं पाद पखारे॥
श्यामकरन हय सहस दये लै नृप ढिँग आये।
मुनि प्रभाव तप निरखि गाधि अतिशय सकुचाये॥
सत्यवती कन्या दई, मुनि प्रसन्न अति ह्वै गये।
मिले प्रेमतैं बर वधू, अंगुलीय नग सम भये॥

सत्यवती सुत और बन्धुहित इच्छा कीन्हीं।
क्षात्र ब्रह्म द्वै पृथक् तेज धरि पायस दीन्हीं॥
सुता भागकूँ श्रेष्ठ समुझि माताने खायौ।
स्वयं मातुको भाग खाय सब वृत्त छिपायौ॥
जानि योगतैं मुनि कह्यो, निज अनर्थको भोगि फल।
तब सुत क्षत्रिय दंडधर, करै बन्धु तब तप प्रबल॥

पति चरननिमहँ सत्यवती बिनती बहु कीन्हीं।
होहि पुत्र नहिं पौत्र घोर मुनि आयसु दीन्हीं॥
भयो कछुक संतोष जने जमदग्नि तपोनिधि।
जाति नाम सब करम करे मुनि हरषि यथाविधि॥
रेणुसुता श्रीरेणुका, संग ब्याह मुनिने कर्‌यो।
परशुराम तिनतैं भये, भूमिभार जिनने हर्‌यो॥

छोटे से बटु राम धनुष कंधापै धारें।
शस्त्र शास्त्रमहँ निपुण निशानों तकिकै मारें॥
परशु प्राप्त जब भयो निरखि अतिशय हरषाये।
तबहीतैं मुनि परशुराम जगमाँहि कहाये॥
क्षत्रिय अति निर्दय भये, अभिमानो अब नित करहिं।
वेद विप्र मानें नहीं, ऋषि मुनिहू तिनतै डरहिं॥

तिनके बध हित विष्णु विप्र बनि बसुधा तलपै ।
प्रकटे लै कें परशु विजय कीन्हीं शत्रुनिपै ।।
कर्‌यो न मनमहँ मोह जनक हित माता मारी ।
आज्ञा अनुचित उचित पिताकी सिरपै धारी ।।
पितु रुख लखि कारज करहिं, डरहिं न रूठहिं पितु कहीं ।
पितृभक्तिको दिव्य अस, उदाहरन जगमहँ नहीं ।।

पूछें शौनक—सूत ! रामकी कथा सुनाओ ।
सूत कहहिं—सब कहहुँ कथामहँ चित्त लगाओ ।।
एक दिवस जल भरन रेनुका गई लखे तहँ ।
सुर बनितनि सँग करहिं चित्ररथ खेल नदीमहँ ।।
रति क्रीड़ा नृप रूप लखि, भयो कामयुत तिय हृदय ।
बीत्यो मुनिको तबतलक, अग्निहोत्र सन्ध्या समय ।।

आई अति भयभीत रेनुका कोपे तब मुनि ।
कही सुतनितैं मातु हनो चुप रहे पुत्र सुनि ।।
सोचें मुनिवर—अधिक धृष्टता पुत्रनि कीन्हीं ।
आये तबई राम सबनि बध आज्ञा दीन्हीं ।।
पितु प्रभाव तप राम लखि, मातु भ्रात मारे तुरत ।
पितु प्रसन्नता बर लह्यो, सब जीवित ह्वैकें फिरत ।।

सहसबाहु बलवान भूप हैहय कुल भूषन ।
दत्त प्रभुहिं आराधि प्राप्त कीन्हें जिन बहुगुन ।।
तेज, ओज, पुरुषार्थ, सहसभुज, अव्याहत गति ।
यश अजेयता आदि लहे गुन भयो मत्त अति ।।
रावन त्रिभुवन विजय करि, घूमत बल मदमहँ भर्‌यो ।
पशु समान तिहिं पकरिकें, दलन दर्प ताको कर्‌यो ।।

सुनि पुलस्त्य निज पौत्र पराभव अति सकुचाये।
उतरि अवनिपै तुरत नृपति अर्जुन ढिँग आये॥
कार्तवीर्य सत्कार कर्यो मुनि आयसु दीन्हीं।
छोड़ो रावण तबहिं मित्रता गाढ़ी कीन्हीं॥
यों जग जीत्यो जोगतैं, अतिशय मद बलको बढ्यो।
मम समान जगको बली, भूत भूपके सिर चढ्यो॥

एक दिवस आखेट करन बन भूप पधारे।
तेज पुञ्ज जमदग्नि निजाश्रममाँहिं निहारे॥
हैहय बंशी नृपति समुझि मुनि कीन्हों आदर।
कर्यो निमंत्रन सैन्य सहित नृप मान्यो सादर॥
कामधेनुकी कृपातैं, करे तृप्त सैनिक सकल।
धेनु सिद्धि लखि सहसभुज, लोभ भयो मनमहँ प्रबल॥

माँगी नृप मखधेनु नहीं मुनिवरने दीन्हीं।
बल प्रयोगकरि पकरि धेनु भृत्यनिने लीन्हीं॥
बारबार चिल्लाइ नयनतैं नीर बहावै।
बछरा बनिकें बिकल लखै जननी डकरावै॥
नृपहठ जगमहँ अति बिकट, कामधेनु पुर लै गये।
परशुराम आये तबहिं, सुनत रुद्र सम ह्वै गये॥

फरसा लीन्हों हाथ चले नृप कुल संहारन।
राम रूप लखि उग्र लगे हाथी चिंघारन॥
सहस करनि शर धनुष लिये नृप लरिबे आयो।
सम्मुख निरख्यो शत्रु राम तकि परशु चलायो॥
कर शर धनु तनु मृग चरम, अरुन नयन रिसयुत बदन।
मनहुँ परसु लै बीररस, दर्प-दर्प आयो दलन॥

भयो युद्ध घनघोर बीर हैहयपति रथ चढ़ि ।
आयो इततैं परशुराम नृप लखि आये बढ़ि ॥
तीक्ष्ण परशुतैं भुजा काटि अर्जुनकी दीन्हीं ।
सुत सैनिक सब भगे राम गर्जन पुनि कीन्हीं ॥
नृपसिर धड़तैं पृथक् करि, कामधेनु लै चलि दये ।
कही कथा पितु सन सकल, सुनि मुनि हरषित नहिं भये ॥

बोले मुनि जमदग्नि—राम ! भल कियो न कारज ।
बिप्रनि भूषन क्षमा जिही मर्यादा आरज ॥
अरे, कहा जिह कर्यो विप्र है नरपति मार्यो ।
कर्यो कर्म अति क्रूर कलंकित कुल करि डार्यो ॥
नृपबध द्विजबधतैं अधिक, प्रायश्चित जाको करहु ।
हरि चित धरि कीर्तन करत, पावन तीर्थनिमहँ फिरहु ॥

पितु गौरवकूँ मानि हरषि आयसु सिर धारी ।
तीर्थनिमहँ अघ हरन फिरहिँ द्विजबर अघहारी ॥
सम्बंतसरमहँ सकल अवनि परदक्षिन कीन्हीं ।
पुनि पितु आये निकट निरखि आशिष बहु दीन्हीं ॥
इत पितु आज्ञातें परशु—राम यज्ञ जप तप करत ।
उत हैहय क्षत्रिय अधम, बदलौ लैबेकूँ फिरत ॥

परशु पराक्रम पराभूत पापी पामर खल ।
क्षात्रधर्म तजि फिरहिँ करहिँ नहिं रण सब निरबल ॥
एक दिवस सँग बन्धु गये बन परशुराम जब ।
आये छिपिकें सहसबाहु सुत अस्त्र लिये सब ॥
बिष्णु ध्यान लवलीन मुनि, निरखि भये हर्षित सकल ।
प्रतिहिंसा हियमहँ जगी, बध हित उद्यम करहिँ खल ॥

लखि आश्रम सब शून्य शीघ्र सिर मुनिको काट्यो ।
मृतक लख्यो पतिदेह रेणुकाको हिय फाट्यो ।।
रोवै कुररी सरिस पुकारै राम धुनै सिर ।
सुनि जननीको रुदन राम तब आये सत्वर ।।
जनक मृतक तनु निरखि तब, परशुराम रोवन लगे ।
गये तात तजि हमहिँ कहँ क्रूर कालने हम ठगे ।।

पितुतनु बन्धुनि सौंपि चले क्षत्रिनि संहारन ।
पहुँचे पुरमहँ तुरत परशु लै लागे मारन ।।
हैहय कुल संहार कर्यो पुनि जे ई पाये ।
क्षत्रिय सब ई मारि मारि यमसदन पठाये ।।
युवक, वृद्ध, शिशु उदरमहँ लखहिँ जहाँ क्षत्रिय तनय ।
तुरत पठावें यमसदन, सुनहिँ नहीं अनुनय विनय ।।

करयो क्रूर अति काज कृपा कीन्हीं नहिँ तिनपै ।
नहीं बचें ते कोप कालको होवै जिनपै ।।
खिड़ गजनितैं भई जहाँ देखें तहँ मारैं ।
पकरैं बलिपशु सरिस साथ सबकूँ संहारैं ।।
रक्त कुन्ड नौ भरि दये, सम्मुख नहिँ कोऊ लर्यो ।
पितरनिको ग्वा रक्ततैं, परशुराम तरपन कर्यो ।।

पुनि पितु सिर धड़माहि जोरि मंत्रनितैं दीन्हों ।
सर्वदेवमय यज्ञपुरुषको पूजन कीन्हों ।।
करे यज्ञ अति विषद भूमि कश्यपकूँ दीन्हीं ।
करि अवभृत इस्नान प्रतिज्ञा पूरी कीन्हीं ।।
त्यागि रोष अति शाँत है, भूमि द्विजनिकूँ सौंपि सब ।
पूजित प्राणिनितैं भये, गिरि महेन्द्रपै बसहिँ अब ।।

जब जस निरखें समय रूप तब तस हरि धारैं।
साधुनि रच्छा करहिँ नीच खल दुष्टनि मारैं ।।
करन धरम उत्थान सदा प्रकटे जगमाहीं।
ऊँच नीच ब्यौहार जगत को उनमहँ नाहीं ।।
छत्रानिनिके उदरतैं प्रकटे सुररिपु अवनिपै।
राम प्रशुत ते हने, करी कृपा सुर नरनिपै ।।

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें श्री परशुराम चरित नामक सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त।



अथ अष्टात्रिंशत्तमोऽध्यायः

[३८]

सत्यवती की मातु ब्रह्ममंत्रनि चरु खायो।
तातैं द्विज गुनयुक्त परम ज्ञानी सुत जायो।।
तेई विश्वामित्र कर्‌यो जिन तप अति दुष्कर।
विघ्ननि सिर धरि पैर भये क्षत्रियतें द्विजवर।।
विश्वामित्र वशिष्ठमहँ, लागडाँट अतिशय भई।
कामधेनु हित परस्पर, गुत्थम गुत्था ह्वै गई।।

भयो परस्पर युद्ध गाधिसुत रनमहँ हारे।
ब्रह्मतेजहित करन तपस्या वनहिं सिधारे।।
कामक्रोधने आइ तपस्या नष्ट कराई।
आई रम्भा कबहुँ मेनका कबहूँ आई।।
पुनि पुनि आये विघ्न बहु, किन्तु निराशा नहिं भई।
ह्वै प्रसन्न विधि ब्रह्म ऋषि, की पदवी तबई दई।।

मुनिवर विश्वामित्र करें तप पुष्करमाहीं।
शुनःशेपकूँ भूप यज्ञ बलि हितलै जाहीं।।
मामा विश्वामित्र विनयके मंत्र सिखाये।
अति प्रसन्न सुर भये यज्ञमहँ प्रान बचाये।।
मातु पिता ढिँग पुनि नहीं, शुनःशेप कबहूँ गये।
गाधितनय सुत सम करे, भार्गवतैं कौशिक भये।।

निज सुत विश्वामित्र प्रेमतैं पास बुलाये।
देवरातकूँ ज्येष्ठ करो बहु विधि समुझाये॥
आधे माने नहीं शापदै म्लेच्छ बनाये।
शेषनि करि स्वीकार मनोवांछित बर पाये॥
ब्राह्मण क्षत्रिय म्लेच्छ हू, कौशिक गोत्री ही रहे।
विमल चरित संक्षेपमहँ, गाधितनयके कछु कहे॥

अब पुरूरवा पुत्र आयुकी बरनौं संतति।
नहुष, रम्भ, रजि और अनेना क्षत्रवृद्ध अति॥
वीर पाँच सुत भये पाँचहू परम यशस्वी॥
क्षत्रवृद्धके काशि काशिके राष्ट्र तपस्वी॥
धन्वन्तरि तिनि सुत तनय, बनि हरि प्रकटित ह्वै गये॥
कुवलयाश्व ज्ञानी नृपति, पंचम पीढ़ीमहँ भये॥

भूप शत्रुजित वत्स ऋतध्वज शूरवीर अति।
पालहिं पितु सम प्रजा धर्ममहँ रखहिं सदा मति॥
गालव दीन्हों अश्व पवन मनतैं द्रुतगामी।
तापै चढ़ि पातालकेतु, मार्यो खल नामी॥
कुवलयाश्वकी कृपातैं, नृप पतालतलमहँ गये।
विश्वावसु तनया तहाँ, मिली पाइ प्रमुदित भये॥

सँग मदालसा लई ऋतध्वज पितुपुर आये।
जननी पितु अति सुघर बहू लखि अँग न समाये॥
अति प्रगाढ़तर प्रेम परस्पर कुँवरि कुँवर महँ।
जन रक्षा हित गये अश्व चढ़ि नृप-सुत बनमहँ॥
तालकेतु पातालको, बन्धु कपटतैं बन्यो मुनि।
छल मदालसातैं कर्यो, मरी प्राणपति मृत्यु सुनि॥

नाग अश्वतर पुत्र ऋतध्वजके प्रेमी अति।
करिवे प्रत्युपकार करी सुत पितु मिलि सम्मति॥
पितु मदालसा फेरि तपस्या करि प्रकटाई।
कुमर पताल बुलाइ प्रिया फिरि तिननि मिलाई॥

पाइ परस्पर प्रियाप्रिय, अति प्रसन्न दोऊ भये।
पितु प्रयाण सुरपुर कर्‌यो, भूप ऋतध्वज ह्वै गये॥



सुत मदालसा जने चारि ज्ञानी ते सबई।
तीनि त्यागि घर गये नृपति लखि बोले तबई॥
चौथेकूँ मति मोक्षधर्मको पाठ पढ़ाओ।
गृहीधर्मकी सीख देहु निज बंश चलाओ॥
सुत अलर्क राजा करे, धर्म प्रवृत्ति सिखाइकें।
गुप्त मंत्र दै बन गई, बन्धु प्रबोधे आइकें॥

सेना सहित सुबाहु काशिराजा सँग आये।
पुर अलर्कको घेरि लयो नृप अति घबराये॥
दत्तात्रेय समीप गये माँ मंत्र मानिकें।
पाइ ज्ञान समभाव दिखायो रिपुहिं आनिकें॥
लखि अलर्ककूँ बोधयुत, काशिराज निजपुर गये।
पायो पुनि निर्बान पद, तिनि सुत संतति नृप भये॥

संतति सुतहु सुनीथ सुकेतन सुत शुभ तिनिके।
धर्मकेतु तिनि पुत्र सत्यकेतू सुत उनिके॥
क्षत्रवृद्धको वंश कह्यो कुल रम्भ भयो द्विज।
नृपति अनेना छठी पीढ़ि तक चल्यो वंश निज॥
आयु तनय रजि अति बली होहिं चरनमहँ इन्द्र नत।
भये पुत्र रण बाँकुरे, तेजस्वी तिनि पंचशत॥

गये पिता परलोक पंचशत राजा बनिकें।
सब ई हैं हम इन्द्र कहैं शतक्रतुतैं तनिकें॥
सुर गुरुने अभिचार यज्ञ करि भ्रष्ट बनाये।
भये धर्मरिपु तुरत इन्द्र यमसदन पठाये॥
इन्द्र वज्रतैं मरे सब, चलयो नहीं रजिवंश पुनि।
आयु तनय नृप नहुषको, विशद चरित अब सुनहु मुनि॥

दत्त दयो फल आयु नृपतिपत्नीने खायो।
फल प्रभावतैं इन्दुमतीने सुत इक जायो॥
नहुष नाम विख्यात हुण्डने ताहि चुरायो।
पाचक राँधन दयो प्रेमवश कुँअर छिपायो॥
मुनि वशिष्ठ पालन कर्‌यो बड़े भये रिपु हनन हित।
चले दैत्य ढिंग जासुको शिवपुत्रीमहँ फँस्यो चित॥
दो०—शौनक जी शंका करी, सूत! सुता शिव कौन।
सूत कहें—मुनि! उमाशिव, गये शक्रके भौन॥

छप्पय—सुरपुर उमा अशोकसुंदरी पैदा कीन्हीं।
कल्पवृक्षतैं भई शिवा पुत्री करि लीन्हीं॥
नहुष होहिँ पति हरषि उमा आशिश तिहि दीन्हीं।
विप्रचित्ति सुत हुँड करी माया सो चीन्हीं॥
कर्‌यो ब्याह नृप नहुषने, गुरु आज्ञातैं हुँड हनि।
गये पितृ गृह निरखि सुत, प्रमुदित जनु अहि पाइ मनि॥

रानी पाइ अशोकसुन्दरी नहुष सुखी अति।
गये आयु वन करी तपस्या लही परम गति॥
सुत यति और ययाति वयति संयाति यशस्वी।
आयति कृति सब षष्ठ भये यति ज्येष्ठ तपस्वी॥
वृत्त मारि हत्या ग्रसित, है शतक्रतु जब छिपि गये।
तब सुर-सम्मतितैं नहुष, स्वर्गमाँहि सुरपति भये॥

इन्द्रासनपै बैठि नृपति मनमाहिँ सिहावें।
देव, उरग, गन्धर्व, सिद्ध सिर आइ झुकावें॥
ऋषि मुनि विनती करें अप्सरा चँवर डुलावें।
गुन गावें गन्धर्व नृत्य सुरवधू दिखावें॥

अमृत असन, भूषन परम, दिव्य गन्ध, नन्दन भ्रमन ।
सुरललननिको सतत सँग, पाइ भयो उन्मत्त मन ।।
पाइ स्वर्गको राज नहुष मन गर्ब भयो अति ।
लह्यो अतुल ऐश्वर्य भूपकी भई भ्रष्ट मति ।।
शची समीप सँदेश पठायो मोइ भजो अब ।
सती भई भयभीत वृहस्पति निकट गई तब ।।
करि सम्मति गुरुतैं शची, कहवायो तब बरुङ्गी ।
ऋषि ढोवें शिविका जबहिं, इच्छा पूरी करुङ्गी ।।

शिबकामहँ ऋषि लगे नहुष चढ़ि शचिगृह गमने ।
पद प्रहार करि सर्प, कहें मुनि भये अनमने ।।
दुष्ट होहि तू सर्प—शाप कुम्भज मुनि दीन्हों ।
तुरत सर्प ह्वै गिर्यो, पापको फल चखि लीन्हों ।।
धर्मराज सत्संगतैं, सर्प योनितैं छुटि गये ।
सब तजि यति जब बन गये, तब ययाति भूपति भये ।।

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें पुरूरवा वंशवर्णन
नामक अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ।

अथ एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

[३९]

उल्ला०—ईश भजनतें सब तरहिँ, होहिँ वासनातें पतित ।
अति शिक्षाप्रद मुनि ! सुनहु, अब ययातिको शुभ चरित ॥

छप्पय—नृप ययातिने ब्याह शुक्र तनया सँग कीन्हों ।
शौनक शंका करी धर्म नृप च्यौं तजि दीन्हों ॥
सूत कहैं—मुनि ! सुनो, कथा अति कहौं मनोहर ।
गुरु-सुत कच सुरस्वार्थ हेतु व्रत कीन्यो दुष्कर ॥



सीखन मृतसंजीवनी, विद्या उशना ढिंग गये ।
मारे असुरनि द्वेषबश, गुरु प्रसाद जीवित भये ॥

असुरनि कच बाँधे सुरा संग गुरु उदर पठायो।
शुक्र सिखायो मंत्र मृतकतैं फेरि जिवायो॥
ह्वै कृतार्थ कच चले देवयानी बोली तब।
करो ब्याह मम संग न कचने स्वीकार्यो जब॥
शाप दयो विद्या नहीं, होहि फलवती निकट तब।
मिलहि न तोकूँ विप्रवर, कचहु कुपित ह्वै कह्यो तब॥

वृषपर्वाकी सुता नाम शर्मिष्ठा युवती।
लै सखियनि बन गई देवयानी सँग हँसती॥
शोभा निरखि बसंत मोदमहँ नाचैं गावैं।
ह्वै विवस्त्र जलमाहिं करैं क्रीड़ा सब न्हावैं॥
निरखे आवत वृषभ चढ़ि, पशुपति पारवती सहित।
ह्वै लज्जित सरतैं निकसि, पहिनत पट लोचन चकित॥

उलटे पुलटे वायुदेवने पट अरु गहने।
गुरुपुत्रीके वस्त्र भूलि शर्मिष्ठा पहिने॥
शुक्रसुताने कहीं बहुत अनकहनी बानी।
वृषपर्वाकी सुता सुनत मनमाहिं रिसानी॥
अन्धकूप धक्का दयो, गिरी देवयानी तबहिं।
छाँड़ि विवस्त्रा कूपमहँ, आई लै पुरमहँ सबहिं॥

दैवयोगतैं नृप ययाति मृगया हित आये।
नंगी निरखी कूप देवयानी सकुचाये॥
दयो दुपट्टा डारि दयावश तुरत निकासी।
दया उलटिके परी भूपके गरमहँ फाँसी॥
पितु ढिँग आई दुखित ह्वै, द्विजतनया नृप बरि लये।
सुनि घटना तनया सहित, उशना अति दुःखित भये॥

भृगुसुत कीन्हीं शान्त न मानी सुता हठीली।
लाड़प्यारमहँ पली लड़ैती अति गरबीली॥
पुत्री हठकूँ मानि त्यागि वृषपर्वा पुरकूँ।
चले सुता सँग शुक्र त्यागि नृप शिष्य असुरकूँ॥
सुनि सब सुर हरषित भये, असुरनि के छक्के छुटे।
यदि गुरु तजि सुरपुर गये, तो अधबरमहँ हम लुटे॥

पुत्री सँग गुरु जहाँ तहाँ सब दानव धाये।
गुरु चरननिमहँ परे विविध विधि शुक्र मनाये॥
शांत भये गुरु कहें—सुताकूँ नृपति मनाओ।
सुनि नृप पैरनि परे देवि! अब लाज बचाओ॥
दासी शर्मिष्ठा बने, गुरुपुत्री बोली—कहूँ।
सब सेवा सादर करै, सहस सखिनि सँग जहँ रहूँ॥

सुनि वृषपर्वा तुरत बुलाई सुता दुलारी।
बन्धु विपति सुनि असुरकुमारी बात विचारी॥
यदि दासी हौं बनूँ निरापद होवें परिजन।
परस्वारथमहँ लगे वही बड़भागी है तन॥
गुरुपुत्री पद पकरिकैं, बोली—दासी बनुङ्गी।
जहाँ विवाहैं पिता तव, तहाँ संगही चलुङ्गी॥

शर्मिष्ठा नृपसुता देवयानीकी दासी।
बनी असुर भय रहित भये परि चित्त उदासी॥
प्रतिहिंसामहँ पगी देवयानी इतरावै।
शर्मिष्ठातैं सदा चरनसेवा करवावै॥
वाही वनमहँ एक दिन, पुनि ययाति आये नृपति।
गुरुपुत्री प्रस्ताव पुनि, कर्यो देव! अब होहु पति॥

नृप शंका कछु करी देवयानी समुझाये।
नृपकूँ निरभय करन तुरत पितु शुक्र बुलाये॥
अनुमोदन पितु कर्यो साज सखियनिने साजे।
कड़क कड़क धुं लगे ब्याहके बाजन बाजे॥
शर्मिष्ठा सँग सुता दै, बोले पितु—पावैं न दुख।
दोऊ आदर पाइँ परि, शर्मिठा नहिं सेज सुख॥

लै शर्मिष्ठा सङ्ग देवयानीकूँ भूपति।
आये पुरमहँ हरषि मनायौ प्रजा मोद अति॥
शुक्रसुताकूँ सदा शैल सर सरित घुमावें।
सरस हास परिहास करें अति सुख सरसावें॥
पुत्रवती उशना सुता, कछुक कालमहँ ह्वै गई।
शर्मिष्ठा ह्वै ऋतुमती, नृप संगम इच्छुक भई॥

बोली—हे नरदेव! धर्मके तुम मेरे पति।
दासिनिकी सब भाँति बताये स्वामी ही गति॥
बीर्य दान अब देहु पसारूँ पल्लो प्रियतम।
दासीपै मति बनो दयासागर अस निरमम॥
रूपवती अरु ऋतुमती, शर्मिष्ठाकी सुनि विनय।
शुक्र प्रतिज्ञा भंग करि, दयो दान ह्वैकें सदय॥

शर्मिष्ठा सुत जन्यो देवयानी सुनि आई।
भई क्रोधतैं लाल असुरतनया धमकाई॥
इत उत बात बनाय देवयानी टरकाई।
गुरु पुत्रिहिं बहकाइ दैत्यपुत्री हरषाई॥
शरमिष्ठामँह फँस्यो मन, बस्यो दंभ नृपके हिये।
भये कामबश शील तजि, रति सुख हित कारज किये॥

यदु अरु तुर्वसु तनय देवयानीते जाये।
शर्मिष्ठा हू तीनि तनय भूपतितैं पाये॥
द्रुह्यु और अनु पुरू नाम तिनिके अति मनहर।
प्रकट न बाहर होहिं रहैं महलनि के भीतर॥
शरमिष्ठाके रूपमहँ, रँग्यो रँगीलौ नृप हृदय।
देव सरिस सुन्दर भये, वाईसैं तीनिहु तनय॥

एक दिवस नृप संग देवयानी उपवनमहँ।
घूमत घूमत गई परम प्रमुदित है मनमहँ॥
देव कुमार समान निहारे द्वै शिशु सुन्दर।
रूप रंग उनिहार शील नृप सरिस मनोहर॥
पूछे पति तैं प्रेम बश, जीवनधन! ये शिशु सुघर।
ह्वै निर्भय क्रीड़ा करहिं कहहु कौनके हैं कुमर॥

भये भूप भयभीत न बोले कछु घबराये।
करि करको संकेत कुमर द्विजसुता बुलाये॥
पूछे किनके पुत्र शिशुनि सच बात बताई।
शर्मिष्ठा ढिँग कुपति देवयानी सुनि आई॥
बात खरी खोटी कही, शर्मिष्ठा डरपी न जब।
भरी क्रोधमहँ नृपहिं तजि, पितु ढिँग रोवत गई तब॥

लखी भूपने बात देवयानी फुफकारत।
पीछे पीछे चले पुकारत है अति आरत॥
पुनि पुनि पैरनि परें कहैं—मत पितु ढिँग जाओ।
तुम ही देओ दंड न मोकूँ अधिक लजाओ॥
हिये सौतिया डाह अति, शुक्रसुता मानी नहीं।
भूपतिकी करतूत सब, रोइ रोइ पितुतें कहीं॥

वृत्त सुन्यो सब शुक्र शाप भूपतिकूँ दीन्हों ।
करी प्रतिज्ञा भंग अनादर मेरो कीन्हों ।।
तातैं तुरतहिं जरा देह तेरीमहँ आवै ।
भोगि सकै नहि भोग अनृतको अब फल पावै ।।
नृप बोले—तब सुतातैं, ब्रह्मन् ! तृप्ति भई नहीं ।
उभय ओरतैं विषयकी, इच्छा अबहिं गई नहीं ।।

मुनि प्रसन्न पुनि भये भूपतैं बोले बानी ।
नृपवर ! मनकी बात तुम्हारी सब हौं जानी ।।
जाओ अपनी जरा बदलि तनयनितैं लेओ ।
सुतको यौवन पाइ जथा रुचि विषयनि सेओ ।।
राजा बोले—जरा जो, स्वीकारे मेरो तनय ।
पावै सो सम्राट पद, जगमहँ यश कीरति विजय ।।

एवमस्तु मुनि कही बिहँसि नृप पुरमहँ आये ।
पाँचहुँ प्यारे पुत्र प्रेमतैं पास बुलाये ।।
शुक्र शापकी बात बताई यौवन माँग्यो ।
यदु, अनु तुर्वसु, द्रुह्यु सुनत बच सरसम लाग्यो ।।
चारिहुँ ही पितुवचन सुनि, वय दैवेतैं नटि गये ।
छात्रधर्मतैं शाप दै, भ्रष्ट भूपने करि दये ।।

पुत्र पुरूतैं भूप अन्तमहँ माँग्यो यौवन ।
सुनि सुत बोल्यो—पिता तुम्हारोई सब तन मन ।।
यों कहि यौवन दयो जरा भूपतिकी लीन्हीं ।
अति प्रसन्न पितु भये हरषि आशिष बहु दीन्हीं ।।
बोले नृप गम्भीर ह्वै, पुत्र शब्द कीयो सफल ।
बनहु चक्रवर्ती तुमहिं, लहो जगतमहँ यश विपुल ।।

यों सुत यौवन पाइ भोग भोगे संसारी।
तौऊ तृप्ति न भई चित्त अति भयो दुखारी॥
भयो विषय वैराग्य विचारें नहिँ सुख पायो।
बनि विषयनिको दास समय सब व्यर्थ गँवायो॥
तृप्ति करि सकें विषय ये, विषय ग्रस्त नरकूँ नहीं।
शान्त होहि कहु प्रज्वलित, अग्नि बिन्दु घृततें कहीं॥

राग द्वेषतें रहित शान्त नर होवै जबहीं।
समदरसीकूँ होहिँ दशहु दिशि सुखमय तबहीं॥
तृष्णा दुखको मूल सहज गुन सब ही खोवै।
बूढ़ो होहि शरीर न तृष्णा बूढ़ी होवै॥
पावै सत् सुख तबहिं जब, होवै विषयनितें विरत।
जो सुख चाहै जगतमहँ, तृष्णाकूँ त्यागै तुरत॥

ज्येष्ठा श्रेष्ठा होहि पूजनीया हू नारी।
युवती होवै बहिन मातु पुत्री अति प्यारी॥
तबहू है एकान्त न बैठे इनके सँगमहँ।
सावधान नित रहै सटावै अँग नहिँ अँगमहँ॥
प्रबल प्रचण्ड पिशाच सम, यह इन्द्रिय समुदाय अति।
होवै सम्मुख विषय लखि, पंडितहूकी भ्रष्ट मति॥

नृपति ययाति विचार करें—हा! पाप कमायौ।
पायौ दुरलभ देह भजन बिनु व्यरथ गँवायौ॥
सुतको यौवन लयो भोग भोगे निशि बासर।
तोऊ तृप्ति न भई लह्यो नहिं सुखमय अवसर॥
तातें अब सब त्यागिकें, तप हित बनमहँ जाउँगो।
विषयाशा तजि भक्तितें, चित हरिमाहिँ लगाउँगो॥

यों करि पश्चात्ताप पुरू सुत तुरत बुलायो ।
यौवन दैकें लई जरा बहु विधि समुझायो ।।
सबकूँ दीयो राज पुरू सम्राट बनाये ।
राज पाट सब त्यागि गये बन मन हरषाये ।।
करै घोंसला त्याग ज्यों, पच्छी परके जमत ही ।
त्यों विरागमें विरत है, बन गमने नृप तुरत ही ।।

घोर तपस्या करी चित्त भगवतमहँ लाग्यो ।
त्रिभुवन व्यापी कीति अंतमहँ नृप तनु त्याग्यो ।।
गये स्वरग तव अहँकारतैं, गिरि भुवि आये ।
करि सज्जन सत्संग फेरि हू स्वरग सिधाये ।।
सब लोकनिके भोगि सुख, करी नहीं तिनमहँ रती ।
पहुँचे पुनि बैकुण्ठ नृप, पाई भागवती गती ।।

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें ययातिचरित नामक उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ।

अथ चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

[४०]

नृप ययाति लघु पुत्र पुरू को बंश सुनाऊँ।
जन्मेजय तिनि पुत्र भये तिनि कुल यश गाऊँ॥
चौदहपीढ़ी माँहि भये दुष्यन्त भूपवर।
परम यशस्वी वीर शत्रुजित वंश यशस्कर॥
भयो वर्ष जिनि नामतैं, भरत तनय तिनके भये।
देववधूटी मेनका, सुता प्रेममहँ फँसि गये॥

मृगया हित नृप गये सेन सजि निरजन बन महँ।
सिंह व्याघ्र मृग मारि श्रमित ह्वै सोचें मनमहँ॥
ऋषि आश्रम इत होहि मिटाऊँ श्रम तहँ जाई।
कण्वाश्रम तब दिव्य दूरितैं दयो दिखाई॥
राज चिह्न तजि चले नृप, ब्राह्मी श्री लखि ह्वै चकित।
खग मृग सेवित पुष्पफल—युत आश्रम शोभा लखत॥

होहि हवन कहुँ साम बैठि बटु सस्वर गावैं।
नाचैं केकी कहूँ कहूँ मृग पूँछ हिलावैं॥
कोई समिधा कुशा पुष्प फल लैकैं आवैं।
कोई बल्कल वस्त्र उटजपै डारि सुखावैं॥
तरुछायामहँ बैठि मृग, करहिं जुगार खुजाइ तन।
आश्रम शोभा निरखिकैं, भयो भूपको मुदित मन॥

कही भूप—को यहाँ ? सुनत इक युवती आई ।
सहज सुन्दरी निरखि नृपहिं मनमहँ सकुचाई ।।
लज्जातैं सिर नाइ अरघ दै आसन दीन्हों ।
करे भेंट फल फूल यथाविधि स्वागत कीन्हों ।।
करि स्वागत स्वीकार जब, नृप परिचय पूछन लगे ।
कह्यो सुता हौं कण्वकी, पूछें नृप ऋषि पितु सगे ।।

कण्व न कीयो ब्याह भई पुत्री तुम कैसें ।
सखी कहे—नृप कहूँ सुता मुनिकी यह जैसें ।।
विश्वामित्र महर्षि करें तप डरप्यो सुरपति ।
करन तपस्या भंग पठाई सुरललना रति ।।
परमसुन्दरी मेनका, रति सँग भेजी मुनि निकट ।
डरपति पहुँची सुरवधू, करहिं जहाँ मुनि तप विकट ।।

यौवन रूप निहारि भये मोहित मुनि ज्ञानी ।
कीयो भोग विलास दिवस अरु निशा न जानी ।।
भये चेत इक दिवस मेनका भागी डरिकें ।
गई स्वरग एक सुता सुन्दरी बनमहँ जनिकें ।।
कुलपति कन्या वन लखी, घिरी शकुन्तनितें विवश ।
तातैं नाम शकुन्तला, धर्यो करी कन्या सरिस ।।

क्षत्रिय कन्या जानि नृपति मनमाँहि सिहाये ।
भूप कामवश भये नीतिके बचन सुनाये ।।
मैं पौरव तुम कुशिकवंशकी राजकुमारी ।
वरण करहु पति मोहिं प्रीति यदि होहि तुम्हारी ।।
ब्राह्म, दैव, गान्धर्व अरु, राक्षस, आसुर, आर्ष वर ।
प्राजापत्य पिशाच यों, ब्याह अष्ट संतानकर ।।

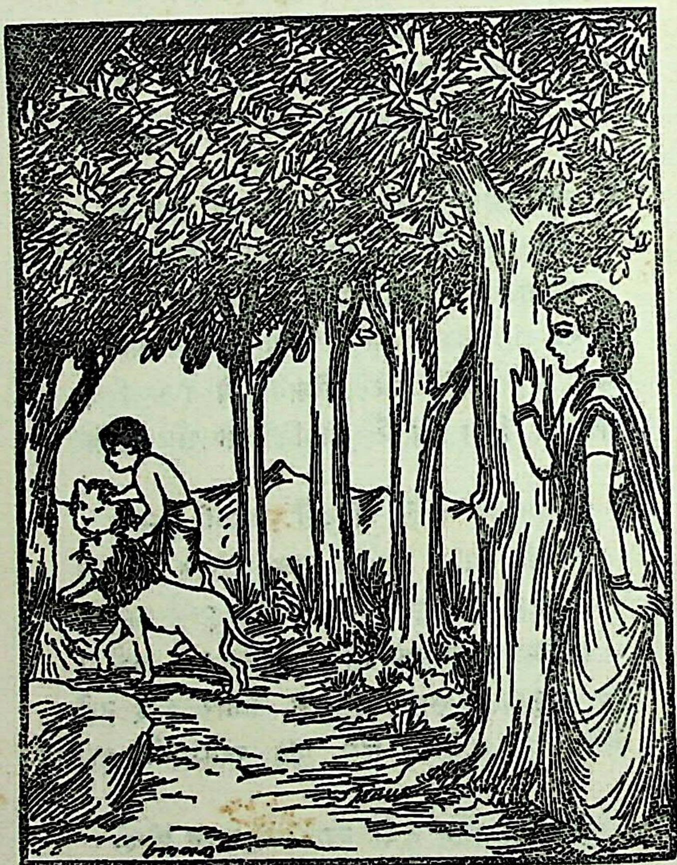
करि गान्धर्व विवाह होहु पत्नी तू मेरी।
सब विधि इच्छा करूँ सकल पूरन हौं तेरी॥
राज पाट धन धाम वस्तु सब मेरी जो है।
देह, प्रान सर्वस्व आजतैं तेरी सो है॥
बोली सोचि शकुन्तला, यदि अधर्म है नहीं नृप।
करूँ बरन यदि ममतनय, होहि सकल भूको अधिप॥

नृप स्वीकर्यो भयो ब्याह गान्धर्व तुरत तहँ।
पति पत्नी बनि गये निरत दोऊ रति सुखमहँ॥
मुनितनया तन अरपि अतिथिकूँ अति सुख दीन्हों।
रज अरु वीर्य अमोघ गरम थापन नृप कीन्हों॥
भयो प्रात अति कष्टतैं, बिलग भये दोऊ विकल।
रति श्रम प्रिया वियोगतैं दोउनिके सब अँग शिथिल॥

कण्वशापतैं डरपि प्रियातैं अनुमति माँगी।
महिषी समुझि वियोग दुःखतैं रोवन लागी॥
दै आश्वासन तुरत निकसि निज पुरकूँ धाये।
इतनेमहँ फल पुष्प लिये कुलपति मुनि आये॥
तब शकुन्तला लाजवश, मुनि समीप आई नहीं।
सोचे—पितु होवें न रिस, पति परमेश्वरपै कहीं॥

मुनि आश्वासन दियो ब्याह अनुमोदन कीन्हों।
पुत्रवती हो पुत्रि! हरषि कुलपति वर दीन्हों॥
समय पाइकें पुत्र जन्यो ऋषि मुनि हरषाये।
जाति करम संस्कार कण्व विधिवत करवाये॥
अति सुन्दर अति स्वस्थ सुत,लखि प्रमुदित सब जन रहैं।
करै दमन सिंहादिको, सर्वदमन सब मुनि कहैं॥

दोहा—नहीं नृपति आये बहुरि, भेज्यो नहिं संदेश।
मुनि सोचें भेजें हमहिं, का पतिघर अंदेश॥



छप्पय—सुत शकुन्तला सहित पठाई पुनि पतिगृह मुनि।
दुखित निहारत चली लता, तरु, खग मृग पुनिपुनि॥
कुलपति करुना करी हृदयतैं सुता लगाई।
पितुगृहतैं ह्वै बिदा, राजमहलनिमहँ आई॥

सभा भवनमहँ आइकें, नृपकूँ निज परिचय दयो।
सुनि अवाक से रहे नृप अति, विस्मय सबकूँ भयो॥

राजा बोले—कौन कहाँकी है तू नारी।
जान नहीं पहिचान बनै तू बहू हमारी॥
है शकुन्तला क्रुद्ध कहे—कायर तुम भूपति।
करिकें छल ब्योहार बनो अब इत भोरे अति॥

करि गान्धर्व विवाह बन, गर्भ कर्‌यो थापन तहाँ।
कण्वाश्रममहँ जन्यो सुत, है समुपस्थित यह यहाँ॥

पुनि शकुन्तला शपथ करी भूपति नहिं मानी।
है निराश जब चली भई तब नभतैं बानी॥
माता धारन करै पिताकी वस्तु कहावै।
पति ही बनिकें पुत्र उदर जायाके आवै॥

यह कुमार तुमरो तनय, भूप भरन जाको करो।
पितर सहित पुं नरकतै, पाइ जाइ सुखतैं तरो॥

स्वीकार्‌यो सुत नृपति प्रजा अनुमोदन कीन्हों।
जानि बूझिकें भूप पुत्र अपनो नहिँ चीन्हों॥
सबकूँ भई प्रतीति निरखि सुत सबहिँ सिहाये।
घर घर मंगल भयो राजमहँ बजत बधाये॥

सर्वदमन युवराज करि, नाम भरत नृपने धर्‌यो।
भरत वंश जिनतैं चलूयो, जग उज्ज्वल यशतैं कर्‌यो॥

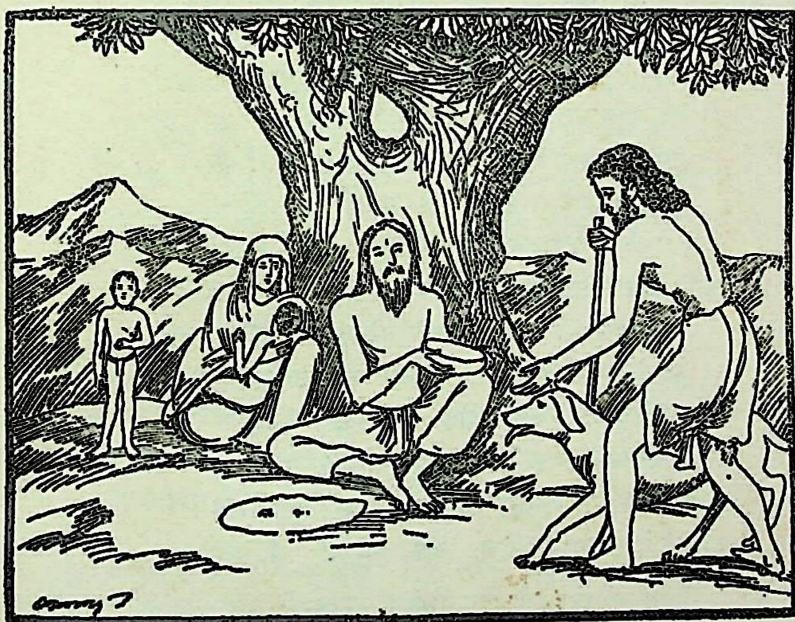
भरत सरिस जग माँहिँ बीर को ज्ञानी दानी।
परम यशस्वी युद्ध क्षेत्रमहँ अति ही मानी॥
अगणित दीये दान अश्व, भू, रथ, गज, गोधन।
कीये रिपु वश वाह्य भीतरी मन इन्द्रिय गन॥
भोगे सब संसार सुख, तोऊ तुष्ट न नृप भये।
भोग सकल मिथ्या समुझि, उपरत तिनतैं ह्वै गये॥

नृप विदर्भकी सुता सुंदरी राजदुलारी।
पत्नी तिनकी तीनि सुशीला अति सुकुमारी॥
तिनतैं जे सुत भये, भरत अनुरूप न माने।
त्यागे पत्नो वंश वितथ लखि नृप खिसिआने॥
भाभी ममता गर्भतैं, पैदा सुरु-गुरु कर्यो सुत।
त्यागि दियो पितु मातुने, मरुत उठायो शिशु तुरत॥

दयो मरुत् गन लाइ भरतने सुत निज जान्यो।
पायो मरुत् प्रसाद वंश निज उज्वल मान्यो॥
वितथ नामतैं ख्यात जगतमहँ भये भरतसुत।
त्यागि राज परिवार गये बन नरपति तप हित॥
बन शकुन्तला संगमहँ, रहैं करैं तप रोकि मन।
मिथ्या समुझि प्रपंच सब, योग मार्गतैं तज्यो तन॥

भये वितथके मन्यु पाँच सुत तिनके सुन्दर।
बृहत्क्षत्र, जय, गर्ग, भये नर महावीर्यवर॥
नर सुत संकृति भयो तासु सुत द्वै जगभूषन।
प्रथम भयो गुरु रन्तिदेव दूसर निष्किञ्चन॥
बिनु पुरुषारथ दैववश, मिलहि अयाचित जो अशन।
दे अभ्यागत अतिथिकूँ, पावैं ह्वै सन्तुष्ट मन॥

रन्तिदेवके सरिस कौन नर जगमहँ दानी ।
अतिथि हेतु निज क्षुधा पिपासा जिन नहिँ जानी ।।
भये दिवस चालीस आठ बिनु पीये खाये ।
उनन्चासवें दिवस स्वादयुत ब्यंजन आये ।।
जेंमन बैठे कुटुम सँग, विप्र वृषल चांडाल बनि ।
याञ्चा हरि हर अज करी, नृपति अन्न जल दयो मुनि ।।



हरषे तीनिहु देव दैंन दुरलभ बर लागे ।
हरिचरननि अनुराग त्यागि जगसुख नहिँ माँगे ।।
माया भई बिलीन प्रेम प्रभु हियमहँ छायो ।
नृप अनुयायी सबनि सहज ही परपद पायो ।।

ज्येष्ठ श्रेष्ठ सुत मन्युके, बृहत्क्षत्र भूपति भये ।
रच्यो हस्तिनापुर जिननि, हस्ति सुघर सुत ह्वै गये ।।

हस्ती सुत अजमीढ़ नील सुत शान्ति भये तिनि ।
उनके पुत्र सुशान्ति पुरुज सुत अर्क लहे जिनि ।।
अर्क पुत्र भरम्याश्व पुत्र मुद्गल द्विज तिनिकी ।
भई अहल्या सुता नारि मुनिवर गौतमकी ।।

शतानंद तिनितैं भये, पुत्र सत्यधृत तासुके ।
शरद्वान सुत धनुर्विद, कृपाचार्य सुत जासुके ।।

लखी उरबशी शरद्वान चित चंचलता अति ।
भई काम बश वृत्ति तुरत सतधृति सुतकी मति ।।
तनु तो रोक्यो किन्तु रुक्यो नहिँ रेत गिर्‌यो जहँ ।
कुशा झाड़के मध्य भये सुत सुता प्रकट तहँ ।।

लाये शन्तनु कृपाबश, दोउनिको पालन कर्‌यो ।
जानि विप्र संतान शुभ, नाम कृपी कृप नृप धर्‌यो ।।

कुरुकुलके कृप भये सुतनिके शिक्षक घरमहँ ।
युवती निरखी कृपी भई चिन्ता नृप उरमहँ ।।
भरद्वाज-सुत आइ ब्याह की इच्छा कीन्हीं ।
ह्वै प्रसन्न नृप कृपी द्रोणकूँ बिधिवत दीन्हीं ।।

द्रोण बीर्यतैं कृपीमहँ, अश्वत्थामा सुत भये ।
जगमहँ द्रोणाचार्य्य द्विज, बीर अग्रणी ह्वै गये ।।

दिवोदास सुत भये भूप मित्रेयु च्यवन तिनि ।
च्यवन कुमार सुदास भये सोमक आदिक उनि ।।
सोमकके शततनय पृषद्सुत छोटे सबतैं ।
पृषद् पुत्र नृप द्रुपद द्रौपदी तनया तिनतैं ।।

धृष्टद्युम्न आदिक तनय, भये द्रुपदके जग बिदित ।
शत्रुसेन घन दूरि करि, रबि सम रनमहँ ह्वै उदित ।।

हस्ती सुत अजमीढ़ नृपतिके ऋत्त अपर सुत।
तासु पुत्र संवरण तेज तप परम कीर्तियुत॥
नृप बड़भागी परम सेन सँग मृगया हित बन।
गये प्रकृतिसौंदर्य निरखि प्रमुदित नृपको मन॥
लख्यो विशाल बराह बन, एकाकी पीछो कियो।
दौरत ठोकर खायकें, गिड़्यो तुरत हय मरि गयो॥

पाँइ पियादे अश्वहीन नृप बनमहँ डोलें।
परम मनोहर प्रान्त मधुर सुर शुक पिक बोलें॥
शीतल मंद सुगंध पवन बहि सुख उपजावें।
हरित दूब दल नीर निरखि नृप नयन जुड़ावें॥
निरखी निभृत निकुञ्जमहँ, नारी नयनानन्दिनी।
करत प्रकाशित प्रान्तकूँ, कनकलता सम कामिनी॥

निरखि भये आसक्त देहकी सुधि बिसराई।
मूर्छित भूपति लखे सुन्दरी नृप ढिँग आई॥
समुझाये बहु भाँति कहें संवरण—भामिनी।
तीनिलोकमहँ लखी नहीं तव सरिस कामिनी॥
मोहि बचाओ कामतैं, मारहि शर घायल करहि।
अपनाओ यदि मोई तुम, तो यह अरि डरिकें भगहि॥

बोली तपती—नृपति! मोइ रवि तनया मानों।
कन्या जनक अधीन होहि तुम सब कछु जानों॥
करो याचना जाइ दान यदि पितु दे देवैं।
तो हम तुम मिलि धर्मयुक्त कामहिं नित सेवैं॥
यों कहि अन्तरहित भई, नृप पुनि मूर्छातैं जगे।
तपती हित उपवास व्रत, दृढ़ जप तप करिबे लगे॥

गुरु बशिष्ठ रवि निकट गये बिनती बहु कीन्हीं।
माँगी तपती हरषि सूर्य नृप हित दै दीन्हीं॥
बिधिवत कर्यो बिबाह भये दोऊ अति प्रमुदित।
प्रिया प्रेममहँ फँस्यो संबरण भूपतिको चित॥
रानी तपती गर्भतैं, भये पुत्र कुरु जग विदित।
कुल कौरवके नामतैं, भयो पुत्र तिनि परीक्षित॥

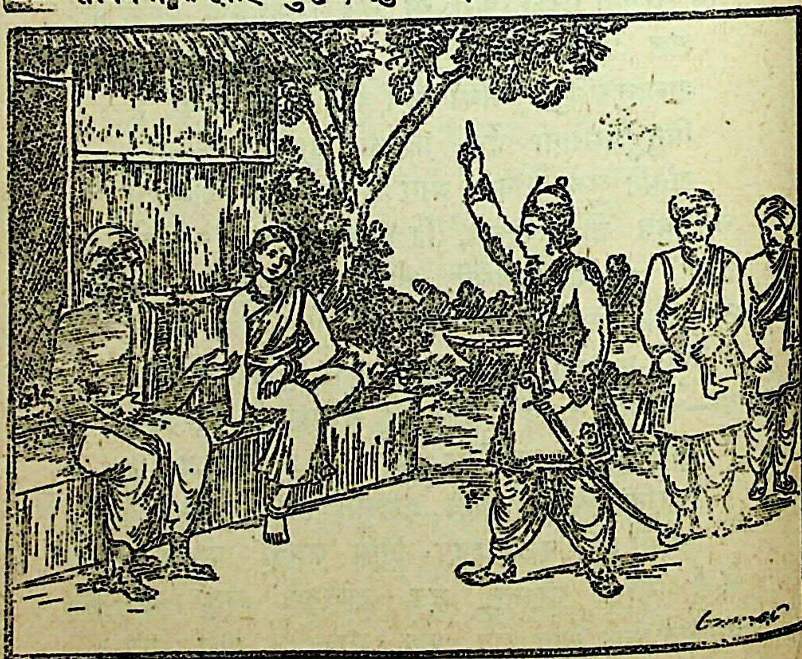
सुधनु जह्नु निषधाश्व तीनि सुत औरहु तिनके।
रहे प्रथम सुतहीन सुहोत्र हु भये सुधनुके॥
च्यवन सुहोत्र कुमार च्यवनके कृतो भये सुत।
कृती पुत्र बसु नृपति उपरिचर अष्ट सिद्धि युत॥
सुरऋषि बाद बिबादमहँ, पक्षपात नृपने कियो।
क्रुद्ध भये ऋषि भूपकूँ, पतन शाप मिलिकें दियो॥

स्वर्गच्युत ह्वै भूमि-बिबरमहँ बसहि उपरिचर।
नारायणको मंत्र जपैं पूजामहँ तत्पर॥
नारायणको नाम निरन्तर नित-नित गावैं।
नारायणको ध्यान करैं तन्मय ह्वै जावैं॥
नारायण आज्ञा दई, गरुड़ शाप मोचन कर्यो।
नारायणने नृपतिको, ताप शाप सबई हर्यो॥

बसुके चेदि नरेश बृहद्रथ तिनि कुशाग्र सुत।
तिनिके सुत नृप ऋषभ ऋषभके पुत्र सत्य हित॥
नृपति बृहद्रथ अपर नारि द्वै भाग देहके।
जने मृतक लखि तुरत फिँकाये निकट गेहके॥
जरा नामकी राक्षसी, भाग उभय जोरे जबहिँ।
जीव-जीव कहिबे लगी, उठि रोयो सो शिशु तबहिँ॥

जरासन्ध अति बली भयो नृप सेवैं पदरज।
जातैं डरि रणछोड़ द्वारका भगे त्यागि ब्रज॥
तासु पुत्र सहदेव भये सोमापि तासु सुत।
श्रुतश्रवा तिनि तनय चेदि कुल भूषण रणजित॥
कुरुसुत तीसर जह्नु के, पौत्र बिदूरथ ह्वै गये।
तिनिकी नौमी पीढ़िमहँ, नृप प्रतीप भूपति भये॥
नृप प्रतीपके तीनि तनय देवापि बड़े सुत।
गये राज तजि नृपति भये शन्तनु शोभायुत॥
परसैं करतैं जाहि शान्ति पावैं सो प्रानी।
जानि अग्रभुक् इन्द्र नहीं बरसायो पानी॥
भेजि सचिव षड्यन्त्र करि, बेद भ्रष्ट अग्रज कर्यो।
तब सुरपति बरषा करी, यों नृप सबको दुख हर्यो॥
शल अरु भूरिश्रवा भूरि बाह्लीक नृपतिसुत।
शन्तनुके सुत भीष्म भये बसु ज्ञानी श्रुयुत॥
पितु प्रसन्नता हेतु प्रतिज्ञा दुष्कर कीन्हीं।
संतति सुख ऐश्वर्य भोग इच्छा तजि दीन्हीं॥
नहीं पुत्र तोऊ सकल, द्विज तरपन नित प्रति करैं।
होहिं जगतमहँ यशस्वी, जो पितु आयसु सिर धरैं॥
सोरठा—क्यों बसु लीयो जन्म, शौनक मुनि शंका करी।
सुनो कथाको मरम, कहें सूत, मुनिवर कहूँ॥
छप्पय—वसुगण इक दिन जात रहे नभमहँ ह्वै प्रमुदित।
मुनि बशिष्ठ मग मिले भूलि नहिँ करी दण्डवत॥
निरखि अवज्ञा क्रोध ब्रह्मसुत तिनिपै कीन्हों।
जनमो भूपै सकल शाप तिनि सबकूँ दीन्हों॥
ते ई गंगा गरभतैं, नृप शन्तनुके सुत भये।
जनमत फेंके सात सुत, एक भीष्म ही बचि गये॥

गंगा जननी कस्यो भीष्मको पालन बनमहँ ।
शन्तनुकूँ पुनि दये पाइ सुत हरषित मनमहँ ॥
लाइ करे युवराज राजमहँ चहुँदिशि मंगल ।
शन्तनु नृप इक दिवस गये मृगया हित जंगल ॥
बहु हिंसक पशु बध करे, पहुँचे नृप यमुना जहाँ ।
लखी पार पथिकनि करत, दाशराज कन्या तहाँ ॥
जिनतैं कीन्हें प्रकट पराशर व्यास महामुनि ।
योजनगंधा तुरत भई कन्या मुनि जनि पुनि ॥
लखि कन्या सौन्दर्य नृपति अतिशय हरषाये ।
कन्या याचन हेतु दाशपतिके ढिँग आये ॥
नृप प्रस्ताव निषाद सुनि, हरषित ह्वै बोल्यो बचन ।
सत्यवती त होहि सुनृप, देहुँ करहिं यदि आप प्रन ॥



शन्तनु भये उदास लौटि निजपुरमहँ आये।
निज पितु इच्छा जानि कुँवर केवटढिँग धाये॥
समुझि दाशपण भीष्म प्रतिज्ञा दारुण कीन्हीं।
त्यागो पद युवराज सीख सब जगकूँ दीन्हीं॥
जीवन भर क्वारे रहे, पितु प्रसन्नताके निमित।
सत्यवतीके गरभतैं, द्वै शन्तनुके भये सुत॥

चित्राङ्गद नृप भये हते गन्धर्वराज रन।
दूसर कुँवर विचित्रवीर्य नृप करे प्रजागन॥
काशिराजकी सुता तीनि हरि लईं दुलारीँ।
शन्तनु लघु सुत संग बिबाहीँ उभय कुमारीँ॥
बोली अम्बा भीष्मतैं, बरे शाल्व मैंने प्रथम।
धर्म जानि पठओ तहाँ, इच्छा पूरन करहु मम॥

अम्बा इच्छा जानि शाल्व ढिँग भीष्म पठाई।
कन्याने निज प्रीति बिबशता नृपहिँ जनाई॥
बल अभिमानी शाल्व कहै—पर बिजित कुमारी।
करूँ ग्रहण तो होहि जगतमहँ हँसी हमारी॥
अति अनुनय अम्बा करी, घुड़कि कहै नृप-च्यौं बकै।
अपर गृहीता नारिका? नृप पटरानी बनि सकै॥

ह्वै निराश बनमाँहिँ लौटि अम्बा तब आई।
बिलखि-बिलखि निज बिपतिकथा सब मुनिनि सुनाई॥
दैवयोगतें परशुराम मुनिवर तहँ आये।
सुनि अम्बा बृत्तान्त राम जल नयननि छाये॥
अम्बाके हित भीष्मतैं, परशुराम लड़िवे चले।
शुभागमन मुनि सुनि तुरत, हरषि भीष्म गुरुतैं मिले॥

करिबे अम्बा ग्रहण भीष्मतैं राम कही परि ।
मानी नहिँ जब बात कही मुनि—आ मोतैं लरि ।।
भयो युद्ध घनघोर देवव्रत परि नहिँ हारे ।
भये राम संतुष्ट सकुचि बनमाँहि सिधारे ।।
अम्बा बनिकैं शिखंडी, भीषमतैं बदलो लयो ।
नृप बिचित्र आसक्त अति निज रानिनिमहँ ह्वै गयो ।।

भयो रोग क्षय पुत्र हीन नृप स्वरग सिधारे ।
माता सुमिरन करे व्यासमुनि तुरत पधारे ।।
कुरुकुलको क्षय जानि व्यासतैं करवाये सुत ।
अंध भये धृतराष्ट्र पांडु अरु बिदुर नीतियुत ।।
पुत्रवती रानी लखीं, भये हृदय सबके हरे ।
शन्तनु सुतने सब तनय, पालि पोसि समरथ करे ।।

अंध न राजा होहि बिदुर दासीके जाये ।
तातैं मझिले पांडु प्रजाने भूप बनाये ।।
अंध-कुमर धृतराष्ट्र संग व्याही गान्धारी ।
जानि अंध पति कबहुँ स्वयं नहिँ बस्तु निहारी ।।
पति समान अन्धी भई, नयननि पट्टी बाँधिकैं ।
बिपुल कीर्ति जगमहँ लही, यों अखंड व्रत साधिकैं ।।

एक सुता शत पुत्र जने गान्धारी रानी ।
दुर्योधन जिनिमाँहिं ज्येष्ठ अतिशय अभिमानी ।।
कौरव सबकूँ पांडुसुत पाँचहु पाण्डव ।
अर्जुन हरिके सखा जरायो जिन बन खाण्डव ।।
भारतमहँ कौरव मरे, पुत्र मित्र बान्धव सहित ।
कुन्ती माद्रीमहँ भये, पाँच पांडु के अमरसुत ।।

भये धरमतैं धरमराज वृकउदर बायुतैं।
पार्थ इन्द्रतैं जने पृथाने परम चावतैं॥
नकुल और सहदेव अश्विनीकुमर भिषक्वर।
माद्रीतैं उत्पन्न करे दोऊ सुत सुन्दर॥
पाँचहुँकी पत्नी भई, द्रुपदसुता अति सुन्दरी।
पूर्व जन्मको वृत्त सुनि, आपति काहू नहिं करी॥
धर्मराज प्रतिबिन्ध्य पुत्र तामें प्रकटायो।
भीम पुत्र श्रुतसेन द्रौपदीदेवी जायो॥
अर्जुनतैं श्रुतिकीर्ति नकुलतैं सतानीक सुत।
श्रुतकर्मा सहदेव तनय अति भये धरमयुत॥
अश्वत्थामा सबनिके, काटे सिर सोवत शिबिर।
अनब्याहे सबही मरे, चल्यो बंश तिनको न फिर॥
धर्मराजकी पत्नि पौरबीतैं सुत देवक।
भीम घटोत्कच कइयो हिडिम्बामहँ सुत सेवक॥
दूसरि कालीमाहिं सर्वगत सुत प्रकटायें।
श्रीसहदेव सुहोत्र कुमर बिजयाने जाये॥
नकुल करेणुमती उदर—तैं कीन्हें नरमित्र सुत।
अर्जुन रानी तीनितैं, भये तीनि सुत बिनययुत॥
दोहा—पुत्र घटोत्कच भीमके, भये हिडिम्बा माहिँ।
कहूँ कथा संक्षेपमहँ, सब प्रसंग मिलि जाहिँ॥
छप्पय— लाक्षागृहतैं भागि गहन बन आये पाण्डव।
लखि हिडंबने बहिन हिडंबा तहँ पठई तब॥
मारन आई स्वयं भीम लखि भई बिमोहित।
जान्यो भाव हिडम्ब भीमतैं भिड़्यो क्रूरचित॥
द्वंदयुद्ध भीषण भयो, भिड़े भीम नहिं भय कइयो।
यातुधानको बल घट्यो, मरि धरनीपै गिरि पइयो॥

करी हिडम्बा बिनय दया कुन्तीकूँ आई।
आयसु दीन्हीं भीम राक्षसी बहू बनाई॥
ताहातैं सुत भयो घटोत्कच अति बलशाली।
इन्द्र-दत्त जो शक्ति कर्णकी कीन्हीं खाली॥
अर्जुन बध हित सुरक्षित, रखी कर्णने यत्न करि।
बीर घटोत्कचकें लगी, लगत भूमिपै पर्यो मरि॥

इरावान सुत जन्यो उलूपातैं अरजुनने।
दई पुत्रिकाधर्म सहित मणिपुरनरेशने॥
सुता ब्याहि प्रण कर्यो पुत्र जो पुत्री जावै।
सो होवै युवराज हमारो पुत्र कहावै॥
तासु गर्भतैं अति बली, पुत्र बभ्रुवाहन भयो।
लखि रण कौशल जासुको, विस्मित अरजुन है गयो॥

अश्वमेधको अश्व बभ्रुवाहनने पकर्यो।
रनको बानो पहिन पितातैं लड़िबे निकर्यो॥
अति ई भीषण युद्ध भयो पितु सुततैं हार्यो।
सुनी मातु जिह बात पुत्रने मम पति मार्यो॥
अति बिलाप परि हित कर्यो, आइ उलूपी समरमहँ।
मणितैं पति जीवित करे, गये पार्थ निज नगरमहँ॥

रचवायो अति स्वाँग सूत्रधर सखा कृष्णने।
हरी सुभद्रा जाय द्वारकामहँ अरजुनने॥
तिनके सुत अभिमन्यु बीरगति भारत पाई।
नारि उत्तरा गर्भवता हरि चरननि आई॥
तातैं जनमे भागवत, देवरात नृप परीक्षित।
सुर-तरु सम पूरन करहिँ, प्रजा मनोरथ धरमवित॥

भूप भागवत भये अंतमहँ भये भक्तियुत।
जनमेजय श्रुतसेन भीम अरु उग्रसेन सुत॥
जनमेजय जो ज्येष्ठ भये सुत शतानीक तिनि।
पच्चिस पीढ़ीमाँहिँ भये क्षेमक भूपतिमनि॥

क्षेमक ही जा वंशके, सबतें अंतिम नृप भये।
कलि प्रभावतैं शुद्ध कुल, छिन्न भिन्न अब ह्वै गये॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें पुरुबंश वर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त।



अथ एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

[४१]

नृप ययातिके भये पुत्र चौथे जो नरपति ।
तिनि अनु को अबबंश सुनहु जो है पावन अति ।।
भये सभानर, चक्षु परोक्षहु अनुसुत रनजय ।
पुत्र सभानर भये कालनर तिनिके सृञ्जय ।।
जनमेजय सृञ्जय तनय, महाशील तिनि पुत्र बर ।
महामना तिनिके तनय, तिनितैं नृपवर उशीनर ।।

बनिकें अग्नि कपोत उशीनर नृप ढिँग आये ।
शक्र श्येन धरि रूप भूपकूँ बचन सुनाये ।।
यह कपोत आहार हमारो जाकूँ त्यागो ।
नृपति कहें—तजि जाहिं, और चाहें जो माँगो ।।
माँग्यो नृपतनमांस जब, हरषि कर्यो तन समरपन ।
कृष्ण धैर्यतें करें बश, लह्यो अन्तमहँ भक्तिधन ।।

तिनिके सुत शिबि भये क्रोधजित धैर्यवान अति ।
माँग्यो द्विज सुत-मांस दयो हरषित ह्वै भूपति ।।
लैन परीक्षा महलमाँहि द्विज आगि लगाई ।
तनिक न बिचलित भये बात द्विज शीश चढ़ाई ।।
आये अज द्विज बेष धरि, लई परीक्षा कठिन अति ।
मृतक पुत्र जीवित भयो, शिबि नरपतिकी बिमल मति ।।

भये चारि शिवितनय पिताके सम तेजस्वी ।
वृषादर्भ कैकेय सुवीरहु मद्र यशस्वी ॥
नृपति तितिक्षु सुशील उशीनर नृप लघुभ्राता ।
पुत्र उशद्रथ भये हेम सुत तिनि सुख दाता ॥
हेमपुत्र सुतपा भये, सुतपा सुत बलि जग विदित ।
राज पाट धन धान्य पशु, सुख सब किन्तु न एक सुत ॥

भूपति बलि सुत बिना रहें मनमहँ अति चिन्तित ।
सूझै नहीं उपाय नृपतिकूँ सुत हितसमुचित ॥
गंगातटपै बैठि बात नृप मनमहँ आई ।
द्विजतैं सुत करवाहुँ नाव इक दई दिखाई ॥
दीर्घतमा तामें बँधे, पड़े तपस्वी अन्ध मुनि ।
नाव पकरि तटपै करी, भये मुदित मुनिनाम सुनि ॥

दीर्घतमातैं भये नृपति सुत क्षेत्रज सुखकर ।
अंग बंग अरु कलिँग सुह्म अरु पुण्ड्र अन्धवर ॥
निज निज नामनि पूर्वदेशमहँ थापित कीन्हें ।
दासीसुत मुनि दीर्घतमा निज सुत करि लीन्हें ॥
अङ्गराज खनपानसुत, दिबिरथसुत तिनके अधिप ।
तिनके सुत नृप धरमरथ, पुत्र चित्ररथ भये नृप ॥

रोमपादहू नाम न तिनके कोई सन्तति ।
शान्ता कन्या दई मित्र लखि दशरथ भूपति ॥
विप्रनिको अपमान कर्यो नहिँ सुरपति बरसें ।
भीषन पर्यो अकाल अन्न बिनु सब जन तरसें ॥
भये चित्ररथ दुखित अति, सम्मति मन्त्रिनितैं करी ।
कौन पापतैं घोर यह, बिपदा हम सबपै परी ॥

बोले द्विज—यदि ऋष्यशृङ्ग मुनिवर पुर आवें।
तो सुरपति अबिलम्ब राजमहँ जल बरसावें॥
मुनि आगमन उपाय बतायो सब मिलि मंत्रिनि।
ऋषि कुमार तप निरत न निरखी नारी नयननि॥
यदि प्रमदाको मुख कमल, निरखैं तो फँसि जायँगे।
रूपाकर्षन डोरिमहँ, बँधे बिबश ह्वै आयँगे॥

मानी सम्मति नृपति वारबनिता बुलवाईं।
मुनि मोहनकी बात सुनी सबई घबराईं॥
बोली वेश्या वृद्ध—प्रभो! यदि आज्ञा पाऊँ।
ता छल बल करि ऋष्यशृङ्ग मुनिवरकूँ लाऊँ॥
सब सामग्री सौंपि नृप, वेश्याकूँ आयसु दई।
ठगिनी तनया दास सँग, चढ़ि नौकापै चलि दई॥

वीर्य बिभाण्डक पान नीर सँग हरिनी कीयो।
जन्यो शृङ्ग सिर पुत्र नाम शृङ्गी धरि दीयो॥
बिषयनितैं अनभिज्ञ बृत्ति तपमाँहिँ लगाई।
नारि न कबहूँ लखी करन छल वेश्या आई॥
परमसुन्दरी षोडषी, लखि समुझे मुनि तपोधन।
आलिङ्गन छलतैं कर्‌यो मोहित मुनिको कर्‌यो मन॥

अति भोरे सब बात कपट बिनु पितुहिँ बताई।
समुझि गये मुनि यहाँ कामिनी कुलटा आई॥
सुत समुझायो वत्स! न मुनि खल तोहिं भुलायो।
अब करियो मत बात असुर माया करि आयो॥
पितु आयुस मानी नहीं, दशा अनोखी सी भई।
घायल करि शर सैनतैं, ठगिनी ठगिकैं लै गई॥

मुनि सुतके छिपि पास बारबनिता पुनि आई।
नौकापै ले गई नाव पुनि तुरत चलाई॥
गावति रसमय गीत नृत्य करि बाद्य बजावति।
अंग देश लै गयी चितमहँ अति हरषावति॥
ऋष्यशृङ्ग पहुँचे जबहिँ, राज्यमाँहिँ बरषा भई।
भये सुखी सब प्रजागन, विपति भूतिनी भगि गई॥

शान्ता कन्या संग ब्याह मुनि सुतको कीन्हों।
सुकुमारी लहि वहू जगत-सुख मुनि अब चीन्हों॥
कोप विभाण्डक कर्‌यो रोषतैं नृप पुर आये।
बहु स्वागत नृप कर्‌यो बहू सुत पैर गिराये॥
पुत्रवधू सँग पुत्रकूँ, लखि मुनिवर लटटू भये।
उड़्यो क्रोध कपूर सम, पुत्र बधूकूँ बर दये॥

ऋष्यशृङ्ग मुनि गृही बने बहु मख करवाये।
दशरथ अरु नृप रोमपाद जिनितैं सुत पाये॥
रोमपादके भये पुत्र चतुरङ्ग अमानी।
दशवीं पीढ़ी भये कर्ण कुन्तीतैं दानी॥
सुन ययाति अनु-बंशमहँ, भये धरमयुत भूप सब।
कह्यो वंश अनु पुरुको, कहूँ द्रुह्युको बंश अब॥

नृपति द्रुह्यु सुतबभ्रु बभ्रु सुत सेतु जिनहिंतैं।
सेतुपुत्र आरब्ध भये गान्धार तिनहुतैं॥
चौथी पीढ़ी माँहिं प्रचेता भये शक्तियुत।
तिनतैं अति बलवान भये तेजस्वी शत सुत॥
उत्तर दिशिके भूप ये, म्लेच्छनिके राजा विदित।
अब तुर्वसको सुनहु कुल, जो ययातिके द्वितिय सुत॥

तुर्बसुके सुत बह्नि बह्निके भर्ग भूमिपति।
भानुमान् तिनि तनय त्रिभानुहु तिनि सुत दृढ़मति ॥
नृप त्रिभानुके तनय करन्धम भूप मनस्वी।
मरुत नृपति तिनि पुत्र यज्ञ करि भये यशस्वी ॥
पुरुबंशी दुष्यन्ताकूँ, गोद लयो परि लोभ वश।
निजकुलमहँ पुनि मिलि गयो, बढ़्यो न पुनि तिनि बंशयश ॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें अनुबंश वर्णन नामक
इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त।

अथ द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

[४२]

यदुनन्दनके पाद पद्ममहँ शीश नवाऊँ।
अब ययातिके ज्येष्ठ पुत्र यदु-बंश सुनाऊँ॥
भये चारि यदुपुत्र सहसजित, क्रोष्ठा, रिपु, नल।
नृप सहस्रजित पुत्र भये शतजितहु अमितबल॥
शतजितके सुत महाहय, हैहय दूसर बेणुहय।
हैहय कुल बलवान अति, करी जिननि दश दिशिबिजय॥

हैहय नृपतैं भये आठवीं पीढ़ी अरजुन।
कार्तवीर्य अति बली, सहसभुज सिद्ध सर्वगुन॥
दत्तकृपातैं सिद्धि सहससुत सब सुख पाये।
परशुरामतैं सुतनि संग मरि स्वरग सिधाये॥
सहसनमहँतैं पाँच सुत, बचे जयध्वज मधु बृषभ।
सूरसेन ऊर्जित नृपति, सुनहु जयध्वज कुल ऋषभ॥

तालजङ्घ तिनि पुत्र भये तिनिये हू शत सुत।
बीतिहोत्र ही बचे शेष लरि मरे शक्तियुत॥
बीतिहोत्रके पुत्र भये मधु बृष्णि भये तिनि।
माधव अरु बार्ष्णेय नामतैं पालहिं देशनि॥
क्रोष्ठा यदुके द्वितिय सुत, बृजिनवान तिनिके तनय।
बृजिनवानके बंशकूँ, सुनहु बिप्रगन है सदय॥

चौथी पीढ़ीमाँहिं भये शशविन्दु योगिवर।
भोग,योग, ऐश्वर्य बसहिं जिनमहँ गुन सुखकर ॥
दश सहस्र तिनि नारि कोटिदश सुत उपजाये।
जिनको वैभव देखि स्वर्गपति इन्द्र लजाये ॥
पृथश्रवा तिनिके तनय, धर्मपुत्र तिनि श्रेष्ठतर।
उशना—उशनाके तनय, रुचक पञ्च तिनि सुत सुघर ॥

पुरुजित, पृथु, रुक्मेष, रुक्म ज्यामघहु रुचकके।
ज्यामघ छोटे नृपति न संतति कोई तिनके ॥
शैव्या नृपकी नारि भूप निजवश करि लीन्हों।
संतति इच्छा रही ब्याह डरि और न कीन्हों ॥
सीमावत्ती भूपकी, कन्या हरि लाये नृपति।
रथासीन युवती लखी, बोली शैव्या कुपति अति ॥

कुहक! कहाँतैं सौति पकरि रथपै बैठाई।
डरिकें बोले भूप—पतोहू रानी! आई ॥
बोली रानी—बन्ध्या हौं क्यौं बात बनाओ।
कैसे मेरी होहि पतोहू मर्म बताओ ॥
बोले नृप—भावी तनय, बने बधू बर सुर दियो।
गर्भवती शैव्या भई, सुत विदर्भ पैदा कियो ॥

कुश, क्रथ, नृपवर रोमपाद तीनिहुँ विदर्भ सुत।
क्रथकी पीढ़ी बीस माँहिं प्रकटे नृप सात्वत ॥
सात्वतके भजमान, दिव्य,भजि.बृष्णि हु अन्धक।
देवावृत्र अरु महाभोज सातहुँ सुत धार्मिक ॥
षष्ठ पुत्र भजमानके, देवावृधके बभ्रु सुत।
पिता पुत्र दोऊ परम, ज्ञानी तारक योगयुत ॥

महाभोजतें भये भोंजवंशी यादवगन।
वृष्णिवंश वार्ष्णेय कहावैं यदुकुलनन्दन ॥
वृष्णि तनय नृप भये युधाजित पौत्र वृष्णि पुनि।
सुत स्वफल्क तिनि पुत्र भये अक्रूर सरिस मुनि ॥
अन्धक दशमी पीढ़िमहँ, उग्रसेन देवक भगत ॥
देवकतनया देवकी, उग्रसेनको कंस सुत ॥
नृप बिदर्भकी सुता बिबाही उग्रसेनकूँ।
सुता प्रेमतैं नृपति पठाये दूत लेनकूँ ॥
मातु पिता घर जाय भई स्वच्छन्द दुलारी ॥
सखियनि सँग सजि फिरै बनमहँ राजकुमारी ॥
मदमाती पद्मावती, बिहरति ह्वै स्वच्छन्द जहँ।
धनद्दास गोभिल असुर, आयो घूमत फिरत तहँ ॥
उग्रसेनको रूप धर्‌यो रानी बहकाई।
कर्‌यो कपट छल असुर कुमरि एकान्त बुलाई ॥
थापन कीयो गर्भ जानि पीछे पछिताई।
आई महलनि तुरत पिता पतिघर पहुँचाई ॥
कालनेमि आयो उदर; होनहार सो ह्वै गयो।
जन्यो पुत्र दश बरष महँ, असुर कंस सोई भयो ॥

दो०—भोज वंशमें कंस खल, भयो दुष्ट अति क्रूर।
वंश विदूरथ को सुनो, भये पुत्र जिनि शूर ॥

छप्पय—पुत्र चित्ररथ भये विदूरथ शूर तनय तिनि।
शूर तनय भजमान भये तिनिके सुत नृप शिनि ॥
शूर मारिषा माँहिं जने दशसुत तेजस्वी।
तिनिमहँ सबतैं बड़े भये बसुदेव यशस्वी ॥
तिनिकी पत्नी त्रयोदश, भाग्यवती अति देवकी।
अजर अमर जगमहँ भई, जननी बनि हरिदेवकी ॥

सुता शूरकी पाँच बहिन बसुदेव भूपकी।
पृथा सबनिमहँ बड़ी खानि जो रही रूपकी ॥
कुन्तिभोजकूँ दई नृपति पुत्री करि लीन्हीं।
दुर्वासाने देव बुलावन विद्या दीन्हीं ॥
आवाहन रबिको कर्यो, मंत्र परीक्षा करन हित।
आये सम्मुख सूर्य जब, भयो कुँवरि चित संकुचित ॥

दो०—हाथ जोरि कुन्ती कहे, छमहु देव मम दोष।
बाले रबि ह्वै के विवश, मनमहँ राग न रोष ॥

छप्पय—व्यर्थ आगमन होहि न मेरो तेरो अनहित।
थापन कीयो गर्भ भई कुन्ती अति लज्जित ॥
करी प्रकट नहिँ बात जन्यो छिपिके सुन्दर सुत।
अति तेजस्वी बीर कवच पहिने कुंडलयुत ॥
कन्या सुत अनुपम निरखि, लोक लाज बश डरि गई।
प्यायो पय मुख चूमिके, पुनि पुनि लखि व्याकुल भई ॥
धरि मन्जूषामाँहि नदीमहँ बत्स बहायो।
चंबल, यमुना, गंग बहत चम्पारन आयो ॥
अधिरथ पकर्यो तुरत मुदित ह्वै पुत्र बनायो।
राधाकूँ दै दयो कर्ण राधेय कहायो ॥
पृथा बिबाही पाण्डुकूँ, पाण्डव जाके भये सुत।
श्रुतदेवातैं भयो खल, दन्तबक्र सुत पापयुत ॥
केकयकूँ श्रुतकीर्ति बिबाही बूआ हरिकी।
चौथी बूआ भई सुरानी अवन्तीशकी ॥
श्रुतश्रवाने चेदिराज शिशुपालहु जायो।
मारि चक्रतैं कृष्णचन्द्र वैकुण्ठ पठायो ॥
नौ चाचा भगवान् के, कछु मौसिनके पति भये।
कछु इत उततैं बहू लै, बेटावारे बनि गये ॥

शूर पुत्र वसुदेव वंशकूँ अबहौं गाऊँ।
तेरह रानी हतीं सबनिके नाम गिनाऊँ॥
सुनहु रोहणी, इला, पौरवी अरु धृतदेवा।
भद्रा, मदिरा, देवरक्षिता अरु सहदेवा॥
शान्तीदेवा सुन्दरी, श्रीदेवा हु नामकी।
उपदेवा इन सबनिमहँ, सबतैं छोटी देवकी॥

आठ सात दश एक सबनिके जनमे सुत बर।
आठ देवकी जने भये अष्टम श्री गिरिधर॥
जब जब होवै धरम नाश बाढ़ें अघ अतिशय।
तब तब लै अवतार करहिँ धरि धरम अभ्युदय॥
कौन कहि सके कौतुकी—के कारण अवतार को।
कौतुकबश क्रीड़ा करत, काज सरत संसारको॥

जापै चितवन मधुर मंद मुसकानमयी है।
नयन पुटनितैं पान करन छबि सुधामयी है॥
कानन कुण्डल सुघर कपोलनि आनन दमके।
चक्षु रश्मिके परत सुदामिनि सम सो चमके॥
इकटक निरखहिँ नारि नर, मन अटकै चित चकित ह्वै।
परें पलक व्यवधान तो, निमिकूँ कोसें दुखित ह्वै॥

जन्म अष्टमी पक्ष कृष्ण भादोंकी रजनी।
विद्युत घनमहँ चमक उठै काँची जनु बजनी॥
पितुकूँ आज्ञा दई गये गोकुल गिरिधारी।
नन्द यशोदा महल मनहुँ खिलि गई उजारी॥
गो गोपी अरु गोप गन, सँग नित हरि क्रीड़ा करहिँ।
असुर देहिँ दुख सबनिकूँ, हनि तिनकूँ जग-भय हरहिँ॥

गोकुलतैं पुनि लौटि सबल मथुरामहँ आये।
डरि हरि रनकूँ छोरि भगे रनछोर कहाये॥
आइ द्वारका ब्याह सहस सोलह करवाये।
पुत्र पौत्र बहु बढ़े निरखि यादव गरबाये॥
करि कुलको संहार हरि, उद्धवकूँ शिक्षा दई।
यों प्रभासमहँ अन्तकी, पूरन भूलीला भई॥

सो०—सब अवतारहि अंश, परिपूरनतम कृष्ण हैं।
कृष्ण चन्दको वंश, सुनि सुख पावें सकलजन॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें यदुवंशवर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त।

(मासिक पारायण अठारहवें दिवसका विश्राम)

इति चतुर्थाह समाप्त।



अथ दशम स्कन्ध।

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नम ॥

अथ पञ्चमाह

अथ प्रथमोऽध्यायः

[१]

जय जय अखिल अनन्त अनामय अज अविनाशी।
जय जय राधारमन गोप गोलोक निवासी॥
जय मथुराधिप वासुदेव जय देवकिनन्दन।
जय नँदनंदन दुष्ट निकंदन जन-मनरञ्जन॥
जय वृन्दावनचन्द्र जय, जय व्रजवनितनि हृदयधन।
जय रसमय गाऊँ चरित, तव चरननिमहँ रमहि मन॥

कहत कहत हरिवंश भर्‌यो शुक मुनिको हिय जब।
सुधि बुधि तनकी भूलि भये अति प्रेम मगन तब॥
अश्रुधार बहि गङ्ग धारकूँ अधिक बढ़ावै।
कण्ठ भयो अवरुद्ध वचन मुखतें नहिँ आवै॥
तनु पुलकित सब अँग शिथिल, रस सरिता में बहि गये।
प्रभुपद मनमें बन्दिकें, ज्योंके त्यों ई रहि गये॥

प्रभुचरननिकूँ बन्दि व्याससुत मौन भये जब।
सुनि संक्षिप्त चरित्र विकल ह्वै बोले नृप तब॥
चन्द्रबंश रबिबंशमाँहिँ बहु भये भूप गन।
सुनि शुभ तिनिके चरित मुदित अति भयो मोर मन॥
अब अति रसमय सारमय, सुखमय अनुपम शक्तिमय।
कृष्णचरित गुरुवर! कहहु, हृदय होहि प्रभु शक्तिमय॥

तनय रोहिणी देव ! प्रथम बलदेव बताये।
मातु देवकी पुत्र आठमहँ फेरि गिनाये ॥
एक देहतैं द्वै उदरनिमहँ जनमें कैसें।
कहें शेषकी कथा, भये संकर्षण जैसें ॥
घर तजि ब्रजमहँ दुबकिकें, बसे अहीरनिवंश च्यौं।
च्यौं भागे रन छोड़िकें, मारे मामा कंस च्यौं ॥

नंद यशोदा त्यागि फेरि च्यौं मथुरा आये ?
च्यौं मथुरातैं बन्धु द्वारका लाइ बसाये ?
च्यौं अति मधुमय चरित गोप गोपिनिहिं दिखाये ?
च्यौं ब्रजमहँ नहिं लौटि यशोदानन्दन आये ?
ब्रज मथुरा अरु द्वारका, महँ जो लीला करी हरि।
पावन परम प्रसङ्ग प्रभु, मोहिँ सुनावहिं कृपा करि ॥

सुनत परीक्षित प्रश्न महामुनि शुक हरषाये।
तनु अति पुलकित भयो अश्रु नयननिमहँ छाये ॥
अति उत्कण्ठित चित्त नृपतिकी करें प्रशंसा।
धन्य धन्य अभिमन्युतनय कुरुकुल अवतंसा ॥
सफल जन्म भूपति भयो, कृष्ण चरनमहँ भई रति।
अन्त समय हरि कथामहँ, उमग्यो अस अनुराग अति ॥

राजन् ! हरि की कथा गङ्ग सम सबकूँ तारै।
जो पूछै जो सुनै प्रेमतें जो उच्चारै ॥
मज्जन, दरशन, परश, बालु, मिट्टी अथवा जल।
नाम श्रवन गुन कथन सबहिँ मेटें मनके मल ॥
अथवा नियमित देशमहँ, ही श्रीगङ्गाजी बहहिं।
किन्तु कथा मन्दाकिनी, नर सबई थल पै लहहिं ॥

अब नृप ! उत्तर देहुँ करे जो प्रश्न जगत हित ।
प्रभु अवतार निमित्त कहहुँ चित करहु समाहित ॥
बाढ़े भूपै असुर वेष भूपतिको धारें ।
करें यथेच्छाचार साधु गो विप्रनि मारें ॥
प्रकटे अगनित असुरगन, अवनि अधिक पीड़ित भई ।
धेनु रूप धरि दुखित ह्वै, अज चतुरानन ढिँग गई ॥

अश्रुबिमोचन करति दुखित मनमहँ पछितावति ।
कमलासनने लखी बिकल भूदेवी आवति ॥
अज प्रनाम करि कहें—मातु ! च्यौं अश्रु बहाओ ।
निज दुख कारन जननि ! मोइ अबिलम्ब बताओ ॥
वसुधा बोली—बत्स ! बहु, बोझ बढ़्यो भारी भई ।
सहनशीलता नृप बने, असुरनि मेरी हरि लई ॥

सुरगन करहु उपाय भार मेरो उतरे सब ।
जाउँ रसातल चली बहनकी शक्ति नहीं अब ॥
सुनिकें भूकी बात सुरनि ब्रह्मा उकसाये ।
सुनि बोले अज—असुर अवनिपै अगनित आये ॥
गंगाधर शिव ढिँग चलहु, वे कछु युक्ति बतायँगे ।
फिर उनकूँ हू संग लै, कमलापति ढिँग जायँगे ॥

ब्रह्मादिक सब देव अवनि सँग शिवढिँग आये ।
पुनि अज, हर, सुर अन्य क्षीर सागरहिं सिधाये ॥
देखि अपार पयोधि बिष्णुकूँ खोजें सब सुर ।
परि दरशन नहिं भये अधिक चिन्ता व्यापी उर ॥
ह्वै अधीर श्रद्धा सहित, लगे करन बिनती सबहिं ।
अज आयसु हरिकी सुनी, बोले देवनितैं तबहिं ॥

होवें यदुकुलमाँहिं शीघ्र अवतरित मुरारी।
हरितें अविदित नहीं बिपतिकी बात तुम्हारी॥
प्रभु प्रकटें बल सहित योगमाया हू आवै।
पूजित जगमहँ होहि असुर संहार करावै॥
यदुकुल गोकुलमाँहिं सब, सुर सुरललना देह धरि।
प्रकटि करहु सुर तनु सफल, ऐसी आयसु दई हरि॥

हरि सन्देश सुनाइ धराकूँ धीर बँधायो।
ब्रह्मलोक अज गये सबनिको मन हरषायो॥
निज ललननिके संग अवनिपै जनमे सुरगन।
जिन सौंप्यो सर्वस्व कृष्णकूँ निज तन मन धन॥
सुनहु कथा पावन परम, श्रीमथुराकी मधुर अब।
शूरतनय वसुदेवजी—के बिबाहको वृत्त सब॥

श्रीवसुदेव बिवाह देवकीके सँग कीन्हों।
देवक अधिक दहेज बिदाबेलामहँ दीन्हों॥
रोवत रोवत चली देवकी पीछे वरके।
अश्रु बिमोचन करत गये रथ तक सब घरके॥
सब परिजन रोवन लगे, नेह कंस हिय हू जग्यो।
कर्यो सारथी दूर रथ, स्वयं हरषि हाँकन लग्यो॥

पथमहँ सहसा सुनी कंसने नभतें बानी।
जाकूँ लैकें जाय प्रेमतें ओ ! अज्ञानी॥
ताको अष्टम पुत्र पकरिकें तोइ पछारै।
भरी सभामहँ खेंचि मञ्चतें निश्चय मारै॥
कंस सुनत अति कुपित ह्वै, चल्यो देवकी वध करन।
लखि उद्यम वसुदेवजी, सहमि सरल बोले बचन॥

शूर कुलीन प्रबीन भोजकुलभूषन सज्जन।
च्यौं कायरता करहु बहिनकूँ मारौ राजन॥
अरे, जीव तो नित्य देह छिनभंगुर नश्वर।
जनम्यो सो ध्रुव मरै, देरमहँ अथवा सत्वर॥
भगिनी भोरी भययुता, अबला दुहिताके सरिस।
थर थर काँपति देहु अब, अभय दान तजि द्वेष रिस॥

कंस कहे—बसुदेव! सुनी नहिं नभ की बानी?
कौन मृत्युकूँ प्यार करै प्रानी अज्ञानी॥
सुनि बोले बसुदेव देवकीतैं नहिं कछु डर।
अष्टम सुततैं मृत्यु कही सोई भयको घर॥
अच्छा हौं यह प्रन करहुँ, अष्टम सुतकी का कथा।
जनमत सुत सौंपों सबहिं, होहि न तुमकूँ अब व्यथा॥

कंस कर्‌यो बिश्वास बहिन निज फिर नहिं मारी।
आये घर बसुदेव देवकी दुखित बिचारी॥
प्रथम पुत्र बसुदेव देवकी जाया जायौ।
भयो न मनमहँ मोद हरष हियमहँ नहिं छायौ॥
अति कोमल अति सरल शिशु, सुन्दर सरसिज सम बदन।
सुनत कंस पन मातुको, अति ई कातर भयो मन॥

बोले श्रीबसुदेव—प्रिये! मत मोह बढ़ाओ।
निज पन पूरन करूँ, कुमरकूँ अब ई लाओ॥
बिलखि हियेतैं लाइ प्याइ पय सुत मुख चूम्यो।
कंपित कर ह्वै गये मातुको माथो घूम्यो॥
बिलखतं जाया छोड़ि सुत, लयो अंक बसुदेव पुनि।
क्रूर कंसके गये ढिँग, बिहस्यो सुतको जनम सुनि॥

जीजाजी ! तुम दृढ़ प्रतिज्ञ समदरसी ज्ञानी ।
शुचिता समता सत्य सरलता तुमरी जानी ॥
शिशुकूँ घर लैजाउ काम का मेरो जाते ।
अष्टम जो हो पुत्र बतायो सुर भय ताते ॥
सुनि लौटे बसुदेवजी, दुष्ट बचन नहिं सत गने ।
समुझि महाखल कंसकूँ, भये पुत्र लखि अनमने ॥

लौटि गये वसुदेव तबहिं नारद मुनि आये ।
कंस कर्यो सत्कार कहें मुनि—सुत च्यौं लाये ॥
कंस कहानी कही बताई नभकी बानी ।
नारद बोले विहँसि—नीति नृप नहिं तुम जानी ॥
नंद और बसुदेवके, वन्धु दार सुत सुहृदगन ।
सुर सुरललना सबहिं ये, चहत भार भूको हरन ॥

नभबानीमहँ छिपी गूढ़ अतिशय चतुराई ।
कमल कुसुममहँ सबहिं आठवें दल तो भाई ॥
यादव तुमरे शत्रु करो इन सबतैं कुट्टी ।
मुनिने खलकूँ तुरत पढ़ाई उलटी पट्टी ॥
नारद आगि लगाइकें, गये कंस चिन्ता भयी ।
आयसु यादवदमनकी, सेनापतिकूँ दै दयी ॥

मँगवाये पुनि तुरत पकरि बसुदेव देवकी ।
जंजीरनितैं जकड़ि हनै सुत कंस पातकी ॥
पितु पग बेड़ी डारि बनाये बन्दी भूपति ।
सिंहासनपै स्वयं विराज्यो पापी खलमति ॥
अनाचार नित प्रति करै, अति दुःखित यादव भये ।
कोशल, कुरु, केकय, निषद, सब देशनिमहँ भगि गये ॥

तृणावर्त चाणूर पूतना और बकासुर।
धेनुक, केशी, द्विविद, प्रलम्बहु असुर अघासुर॥
कंस सचिव सब बने करें उतपात निरन्तर।
कछु यादव बचि गये न पावें परि ते आदर॥
विनय करत सब अति दुखित, होयँ अवतरित हे प्रभो।
करहिं असुर अब अघ अमित, हरहु भार भूको विभो॥

इति श्रीभागवतचरित के पञ्चमाह में वसुदेव विवाह श्रीकृष्ण-जन्मोपक्रम नामक प्रथम अध्याय समाप्त।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

[२]

भर्‌यो पापको घड़ा हिल्‌यो हरिको सिंहासन ।
आयसु नटवर दई योगमायाकूँ ततछिन ।।
रहैं रोहिनी मातु नंद बाबाके घरमहँ ।
तेजोमय मम अंश देवकी बसै उदरमहँ ।।
ताहि रोहिनी गर्भमें, थापित करि प्रकटो तुमहु ।
बासुदेव हम होहिँ तुम, सुता यशोदा की बनहु ।।

हरिकी आयसु पाइ योगमाया तहँ आई ।
मातु देवकी गर्भ खेंचिकें गोकुल लाई ।।
कर्‌यो रोहिनी उदर तेज माता मुख छायौ ।
दशम मासमहँ पुत्र राम संकरषन जायौ ।।
भाद्र शुक्ल छटि तिथि लगन, शुभ मुहूर्तमहँ उदित ह्वै ।
दये दरश ब्रज जन सकल, नाचें उदितइ मुदित ह्वै ।।

इत ब्रजपति नँदराय पुत्र हित मख करवाये ।
बिप्र बेदवित् बहुत मंत्र जप करन बिठाये ।।
उदर यशोदामाँहिँ योगमाया आई जब ।
ब्रजमहँ मङ्गल भये परस्पर कहहिँ गोप सब ।।
लाल होइगो नंदके, हल्ला ब्रजमहँ मचि गयो ।
गऊ गोप गोपीनिको, तप्त हियो शीतल भयो ।।

जाया श्री बसुदेव देवकी जन्यो न लल्ला।
गिर्यो सातमों गर्भ मच्यो मथुरामहँ हल्ला॥
अति ई चिन्तित कंस भयो अब अठमों आवै।
जीवित यदि रहि जाय मोइ यमसदन पठावै॥
इत रच्छा साधन सुदृढ़, करे बिविध मथुरेशने।
उत मनमहँ बसुदेवके, कर्यो प्रवेश परेशने॥

बिश्वम्भरको तेज शूर-सुत धार्यो मनमहँ।
सुखद सौम्य दुर्धर्ष तेज तिनि प्रकट्यो तनमहँ॥
पतितैं सोई तेज देवकी देवी धार्यो।
दिव्य कान्ति लखि कंस सभय हियमाहिं बिचार्यो॥
निश्चय जाके गर्भमहँ, बास शत्रुने करि लयो।
बिनु प्रकाशकी निशामहँ, भवन प्रकाशित ह्वै गयो॥

बालकपनतें लखी देवकी घरके माहीं।
किन्तु कबहुँ अस प्रभा अनोखी देखी नाहीं॥
होहि न जब तक प्रसव तबहि तक जाकूँ मारूँ।
प्रथमहिं दुख जड़ काटि बिपति भावीकूँ टारूँ॥
लैकें कर करवाल खल, पुनि मनमहँ सोचन लग्यो।
ब्याह समय बसुदेवने, छल करिकें मोकूँ ठग्यो॥

अब यदि मारूँ जाहि बात मेरी बिगरेगी।
बध भगिनीको सुनत प्रजा सबरी भड़केगी॥
अबला बंदिनि बहिन गर्भिनी भयकी मारी।
जाके बधतें होहि नाश श्री कीर्ति हमारी॥
तेज देवकीको लख्यो, कुल कलंक कातर भयो।
साँप छछूँदरिके सरिस, असमंजसमहँ परि गयो॥

निश्चय कीयो जिही बहिन बध सबबिधि अनुचित ।
दृढ़प्रतिज्ञ बसुदेव होहिं नहिं तिनतैं अनहित ॥
बधको त्यागि बिचार निरन्तर हरिहिं बिचारै ।
असन बसन अरु शयनमाँहिं जगदीश निहारै ॥
बैरभावतैं विष्णु भजि, तदाकार मन बनि गयो ।
शत्र समुझि सर्वेशकूँ, अति सर्वोत्तम पद लह्यो ॥

समुझि देवकी गर्भमाहिँ हरि हर चतुरानन ।
सब सुर मुनि सँग आइ करें हरिको अभिबादन ॥
प्रभुकी इस्तुति करें मधुर स्वरमहँ मिलि सुरगन ।
जय सर्वेश्वर, सत्य, नित्य शिव, अगजग भावन ॥
विश्ववृक्षके बीज तुम, सब भूपनिके भूप हो ।
सगुण सर्वगत सत्वमय, सुखकर सत्य स्वरूप हो ॥

गर्भस्तुति

हे सत्संकल्पा सत्य स्वरूपा, तीनिकालमहँ सत्या ।
हे ऋत सत्नेता, चितके चेता, नाथ ! निरञ्जन नित्या ॥
जगवृक्ष सनातन, पुरुष पुरातन एकाश्रय बनवारी ।
सुखदुख द्वै फल हैं तीनि मूल हैं, पुरुषारथ रसचारी ॥
पञ्चेन्द्रिय विध हैं, छै स्वभाव हैं, त्वचा सात सब मानें ।
शाखा आठहु हैं, नौ कोटर हैं, पत्र प्रान दश जानें ॥
बैठे द्वै खग हैं ईशजीव हैं, तुमही सबके कारन ।
कल्यान करन जग, यही सत्य मग, करहिं रूप बहु धारन ॥
तब चरन नाव करि भवसागर तरि, स्वयं तरें जग तारें ।
जे अहंकार वश, गाइँ न तव यश, वृथा मनुज तनु धारें ॥
जे तव चरनन रत, भजहिं सतत सत, ते न जगत पुनि आवें ।
जो अलख अगोचर, रहें निरन्तर तिनिकूँ कैसे गावें ॥

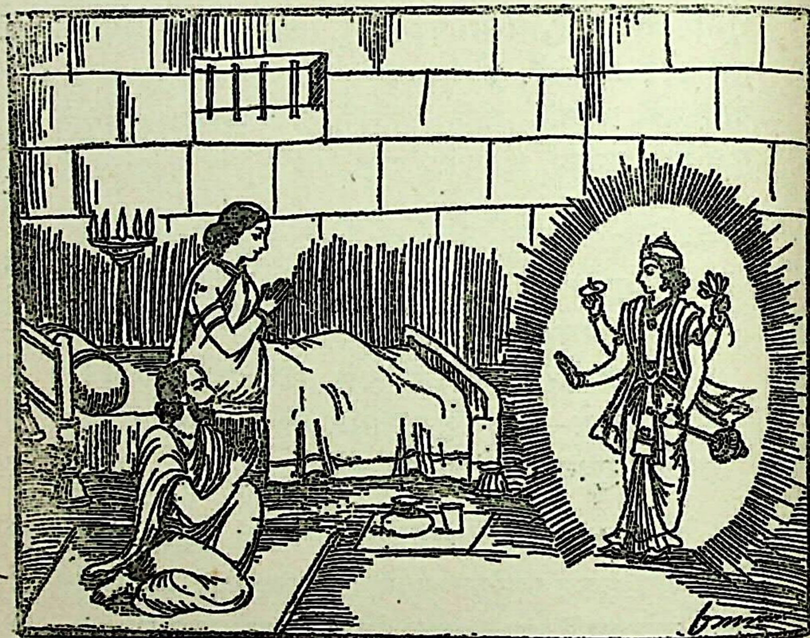
जो चिन्तें चरनन, करहिं कीरतन, नाम रूप नित ध्यावें।
ते घरमें रहिकें, द्वन्दनि सहिकें, अन्त परमपद पावें॥
तव जनम, करम, गुन, साधक, साधन, सब है लीला खेला।
तनु समय समय धरि,खलनि दमन करि, दुख मेंटैं अब बेला॥
भूभार बढ़्यो है, धरम घट्यो है, आइ असुर दलमारें।
हम चरन परत हैं, विनय करत हैं, भूको भार उतारें॥
यों विनती कीन्हीं, जननी चीन्हीं, सब मिलि धीर बँधावें।
मुख मातु मलीना, ह्वै अति दीना, देवनि पद सिर नावें॥

छप्पय—देखि देवकी देव दीन ह्वै बोली बानी।
हे चतुरानन ! शम्भु ! सुरेश्वर ! बीनापानी॥
हौं अबला अति अधम दया दासीपै कीजे।
कंस न मारै सुतहिं कृपा करि जिह बर दीजे॥
सुरगन बोले—मातु ! तुम, जगजननी मत भय करो।
अखिल भुवनपति होहिँ सुत, हनहिँ कंस धीरज धरो॥

आश्वासन दै देव बिनय करि स्वरग सिधारे।
भये सकल अनुकूल लगन, ग्रह नखतहु तारे॥
बृष्टि करहिं सुर सुमन दुन्दुभी मधुर बजावें।
बिद्याधर गन्धर्ब अपसरा नाचें गावें॥
कृष्णा भादौं अष्टमी, नखत रोहिणी शुभ समय।
अर्धरात्रि बेला सुखद, तब प्रभु प्रकटे प्रेममय॥

अप्राकृत शिशु सुघर चतुरभुज कमलनयन बर।
शङ्ख, चक्र, अरु गदा पद्म सुन्दर आयुधधर॥
पीताम्बर बर अङ्ग सजल जलधर शोभा तनु।
कारे कुञ्चित केश रूप साकार भयो जनु॥

सुंदर श्याम शरीरकी, शोभा अति अद्भुत बनी।
शोभित तनुकी कान्तितैं, कंकन कुण्डल करधनी॥



बनि बिस्मित बसुदेव वत्स को बहुरि बिचारें।
नहिं सुत ये सरवेश चतुरभुज शुभ बपु धारें॥
कर्यो मानसिक दान ध्यानतैं चीन्हें श्रीहरि।
परम पुरुष परमेश, जानि बिनवें बन्दन करि॥
आप अखिल जगदीश हैं, पहिचाने प्रभु परावर।
अज, अनादि, विश्वेश, बिभु, व्यापक सुखकर तत्व-पर॥

वसुदेव विनय

(१)

प्रभु ! तुम पुरुष पुरातन ईशा ।
सबके साची शुद्ध सनातन, जगन्नाथ जगदीशा ।
प्रथम करो रचना जा जगकी, पालो बनि अवनीशा ॥१॥ प्रभु तुम०
प्रकृति, महत्, मन अहंकार गुन, देव कोटि जो तीसा ।
करें काज तुमरी अनुमतितें, हो तुम भुवनाधीशा ॥२॥ प्रभु तुम०
जो जा जगकूँ सत्य बतावें, बुद्धि हीन ते कीशा ।
करो कृपा करुनाके सागर, तव पद नाऊँ शीशा ॥३॥ प्रभु तुम०

(२)

विभु तुम अखिलेश्वर दुखहारी ।
निरगुन,निष्क्रिय निरबिकार,नित,उतपति थिति लयकारी ॥१॥ विभु०
तुमरे आश्रित हैं गुन तीनिहु, तुम अज हरि त्रिपुरारी ।
शुक्ल, रक्त अरु श्याम बरन बनि, गुन-लीला विस्तारी ॥२॥विभु०
करी विनय सुरगन सब मिलिकें, बहुबिधि नाथ तुम्हारी ।
शरनागत प्रतिपालक हौ प्रभु, विनती सुर स्वीकारी ॥३॥ विभु०
जगकूँ करन कृतारथ मम घर, प्रकटे श्याम बिहारी ।
कंसत्रासतें दुखी दयानिधि, नासौ विपति हमारी ॥४॥ विभु०

दोहा—नारायन निज सुत निरखि, विनय करति है मातु ।
कंस कुटिलता सुमरिकें, थर थर काँपतु गातु ॥

नाथ ! तुम सदानन्द सुखराशी ।
नेति नेति कहि बेद बखानत, हौ घट घटके बासी ॥१॥ नाथ तुम०
अज, अखिलेश, अनामय, अच्युत, अजर, अमर, अविनाशी ।
अभिमानी तुमकूँ नहिँ पावैं, पावैं नर विश्वासी ॥२॥ नाथ तुम०
रूप चतुरभुज देव छिपाओ, होहि हमारी हाँसी ।
जामें बास करतु जग सबरो,सो मम उदर निवासी ॥३॥ नाथ तुम०
कंस कहावै बन्धु हमारो, परि है सत्यानाशी ।
ग्वातें अभय करौ अखिलेश्वर,हौं तव चरननिदासी ॥४॥ नाथ तुम०

छप्पय—करी देवकी बिनय बिबशता बहुरि बताई ।
बोले श्रीभगवान—मातु तू क्यौं घबराई ॥
पृश्निगर्भ अरु रूप बनायो बामन मैंने ।
तृतिय चतुरभुज रूप निहारयो अबई तैंने ॥
डरहु कंसतैं मोहि तो, गोकुलमहँ पहुँचाइकें ।
छोरी नँदरानी जनी; धरहु यहाँ तिहि लायकें ॥

दोहा—हरि दरशन दम्पति करे, भये प्रसन्न महान ।
गोकुलमहँ बसिबो चहैं, सोचैं अब भगवान ॥

इति श्रीभागवतचरितके पञ्चमाह में चतुर्भुज श्रीकृष्ण जन्मनामक द्वितीय अध्याय समाप्त ।

अथ तृतीयोऽध्यायः

(३)

छप्पय—आयसु हरि सिर धरी करी गोकुल की त्यारी ।
परीं हथकरीं हाथ जाउँ कस बात बिचारी ॥
स्वयं हथकरी गिरीं कटीं पाँइनिकी बेरी ।
धरे सूपमहँ श्याम चले नहिं कीन्हीं देरी ॥



शेष छत्रवत बनि गये, बरषातैं बालक बच्यो ।
इत गोकुलकी गैलमें, यम-भगिनी कौतुक रच्यो ॥

गर्जन तर्जन करति बहुत यमुना मदमाती ।
भावी पतिकूँ निरखि उछरि मनमाँहि सिहाती ॥
लैकें हरिको नाम शूर-सुत जलमहँ प्रबिशे ।
कालिन्दीके कमल नयन निज पति लखि बिकसे ॥
पद परसन हित बढ़ीं जब, समुझि गये बसुदेव सब ।
लै चरनामृत घटि गईं, भये प्रेमतैं पार तब ॥
इत यसुदाके भये गर्भके पूरे दिन जब ।
साजि प्रसवको साज प्रतीक्षा करहिं नारि सब ॥
गोबर,तिल,शिल,सींक,शस्त्र, घट, जल,फल,मिट्टी ।
धूप, तेल, रँग, दुग्ध, दीप, सरसों, पट, घुट्टी ॥
और प्रसवकी वस्तु सब, लै बूढ़ी गोपी जुरीं ।
इत उत बिहरत मुदित मन, खनखनाइँ कंकन चुरीं ॥
पल पलमहँ सब करें प्रतीक्षा नंदलालकी ।
नँदरानीके होहि न पीरा प्रसवकालकी ॥
लीला अपनी तहाँ योगमाया फैलाई ।
सोये सबई योगनींदमहँ लोग लुगाई ॥
परी पलँग पै यशोदा, तनिक आँखि सी झपि गई ।
भयो कछू परि सुधि नहीं, छोरा वा छोरी भई ॥
दोहा—उत आये वसुदेवजी, पहुँचे नँदके द्वार ।
कैसे जसुमतिके निकट, पहुँचूँ करैं विचार ॥
छप्पय—लखि ब्रजमहँ बसुदेव गोप गोपी सब सोवत ।
पुनि पुनि सुत मुख कमल नेहतैं जोहत रोवत ॥
कंपित करतैं कृष्ण यशोदा शयन सुवाये ।
कन्या लई उठाय नीर नयननिमहँ छाये ॥
हौलैं तैं मुख चूमिकैं, कन्या लैकें चलि दये ।
करि कालिन्दी पार पुनि, चुपके घरमहँ घुसि गये ॥

सुत वियोग अरु कंस त्रासतैं माँ घबराई।
पतितैं कन्या लई सेजपै साथ सुवाई॥
पहिनीं श्रीवसुदेव हथकरीं बेरीं फिरतैं।
दम्पति थर थर कँपै कंस पापीके डरतैं॥
रुदन योगमाया कस्यो, द्वारपाल सब जगि गये।
बाल जन्म सुनि कहनकूँ, तुरत कंस ढिँग भगि गये॥

कहें कंसतें—देव ! देवकी बालक जायौ।
उग्रसेन-सुत सुनत जन्म रिपु अति घबरायौ॥
हड़बड़ाइकें उठ्यो मूँड़ चौखटमहँ लाग्यो।
सुधि न मुकुटकी रही केश खोले ही भाग्यो॥
आयो काराबास महँ, सर्राटेतैं घुसि गयो।
कन्या देखी पलँगपै, निरखि तेज बिस्मित भयो॥

कन्या माँगी रोइ देवकी बोली—भैया।
पुत्री सम लघु बहिन तुम्हारी मैं हूँ गैया॥
मारे सब सुत किन्तु कृपा कन्यापै कीजे।
परि पैरनिपै करूँ याचना जाकूँ दीजे॥
अंतिम मेरी धीय है, जिह अनरथ का करेगी।
रँगौ रक्ततैं हाथ च्यौं, देह सदा नहिं रहेगी॥

एक न खलने सुनी सुता पत्थरपै पटकी।
सटकी कर तैं तुरत, बनी देवी नभ चटकी॥
अष्ट भुजी बनि गई दिव्य आयुध धारें कर।
शङ्ख, चक्र, धनु, खड्ग चर्म, तिरशूल, गदा, शर॥
लक्ष्य कंसकूँ करि कहे, मंद मोइ मारे वृथा।
प्रकट्यो तेरो शत्रु तो, मति दै बालनिकूँ व्यथा॥



यों कहि अन्तरधान भई फिरि दीखी नाहीं।
विन्ध्याचलमहँ जाइ भई पूजित जगमाहीं॥
सुनि चिन्तित अति भयो कंस पुनि पुनि पछितावै।
जाइ देवकी निकट दुखित ह्वै कें समुझावै॥
करि बन्धनतैं मुक्त पुनि, करहि प्रदर्शित प्रेम अति।
चिकनी चुपरी बात करि, देहि भुलायो मूढ़ मति॥

बोल्यो—भगिनी ! भाम ! छमहु अपराध हमारे ।
मैंने शठता करी तुम्हारे शिशु सब मारे ॥
सुरनि कर्‌यो छल कपट पाप मोतें करवाये ।
करि नभबानी मृषा बहिनके सुत मरवाये ॥
अस्तु, भई सो भई अब, हौं लज्जित अरु दुखित अति ।
भोगें ह्वै प्रारब्ध वश, सब सुख दुख सम्पति बिपति ॥
सुख दुखकूँ को देहि, भाग्य ही सब करवावै ।
दैवाधीन बियोग दैव ही लाइ मिलावै ॥
अहं बुद्धि अज्ञान जन्म प्रारब्ध बनावे ।
हर्ष, शोक, भय, लोभ, मोह आदिक उपजावे ॥
ऐसें ज्ञान बघारिकें, करि प्रसन्न दोऊ लये ।
कारागृहतैं मुक्त ह्वै, हरि चित धरि निज घर गये ॥
इत ह्वैकें अति दुखित कंस घर अपने आयौ ।
मन्त्री लये बुलाय बृत्त सब सत्य सुनायौ ॥
सुर-द्रोही खल दैत्य कहें—का चिन्ता स्वामी ।
अज हरि हर सुर करें कहा हम स्वेच्छागामी ॥
सुर निरबल परि बिप्रगन, मख करि पोसें रिपुनिकूँ ।
मारें जहँ द्विज मुनि मिलहिँ, आयसु देवें सबनिकूँ ॥
कुटिल कुमन्त्रिनि कही कंस सो सब कुछ मानी ।
गो, द्विज, तप, मख, बेद नाशकी मनमहँ ठानी ॥
काल-पाशमहँ फँस्यो असुर हिंसा हित मानै ।
समुझे संतनि शत्रु द्विजनि निज नाशक जानै ॥
यों मथुरामहँ असुर गन, धेनु द्विजनि दुख देहिं नित ।
मातु यशोदा सुत जन्यो, सुनहु भयो जो बृत्त इत ॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें कंस चिन्ता नामक
तीसरा अध्याय समाप्त ।

(पाक्षिक पारायण नवम दिवस विश्राम)

अथ चतुर्थोऽध्यायः

[४]

धरि हरिकूँ बसुदेव गये तब जगीं लुगाईं।
अति संभ्रमके सहित दौरि सौहरि घर आईं॥
बनि नीलम नवनीत यशोदा ढिँग जनु बिकसित।
नील कमल जनु खिले चंद्र जनु मिलिके अगनित॥
बोलि उठीं सब एक सँग, यशुमतिने लल्ला जन्यो।
छिनभरमहँ श्रीनन्दघर, आनँदको सागर बन्यो॥

जाइ सुनन्दा कह्यो—जन्यौ भाभीने लाला।
छिनमहँ फैली बात सुनत दौरीं ब्रजबाला॥
नंद अकबके भये देहकी दशा भुलानी।
छायो नयननि नीर पुलक तनु गद्गद बानी॥
आवें गावत गीत सब, अति उमङ्गमहँ गोप गन।
पकरि नचावैं नन्दकूँ, डगमग डगमग होहि तन॥

ज्योतिषविद्या-विज्ञ बहुतसे बिप्र बुलाये।
नन्दमहरि सुत जन्यो सुनत सब द्विज उठि धाये॥
सबने आशिष दई ग्रहनिके सुफल बताये।
सबकी सम्मति समुझि नन्द यमुनामहँ न्हाये॥
बूढ़े बाबा पहिन पट, आज अनँगके सम खिले।
बृद्ध गोप अरु द्विजनि सँग, प्रमुदित अन्तःपुर चले॥

गोपिनितैं घर घिर्यो गीत सोहरिके गावैं।
सुधि बुधि भूलैं खड़ीं हटैं नहिं बिप्र-हटावैं॥
ज्यों त्यों भीतर गये द्विजनि सामान मँगाये।
जातकरम अरु देव पितर पूजन करवाये॥
व्रज सुख सागर शान्त सम, उमड़ि हरष प्रकटित करें।
उदित भये व्रजचन्द्र हरि, रत्ननितैं तटकूँ भरें॥

लौकिक बैदिक कर्म करे सुतके मंगल हित।
निरखि निरखि सुत वदन हृदय होवै आनन्दित॥
चितमहँ अति उत्साह बिचारें का दै डारूँ।
ऐसे सुतकूँ पाइ च्यौं न सरबसु हौं वारूँ॥
यौं बिचारि चौपारिमहँ, कोषाध्यक्ष बुलाइकें।
बोले—ताले खोलिकें, धन सब देउ लुटाइकें॥

पुनि बुलवाये गोप कही—खिरकनिकूँ खोलो।
मनमानी द्विज धेनु लेहिं मत तिनतैं बोलो॥
चाँदीके खुर करो सींग सोनेतैं मढ़िकैं।
सुन्दर बस्त्र उढ़ाइ पूँछ मोतिनितैं जड़िकैं॥
माँगैं जितनी जो गऊ, तितनी तिनकूँ दानमहँ।
देहु न होवै नेंकहू, कमी मान सम्मान-महँ॥

सब गोपनि व्रजराज नंद आज्ञा सिर धारी।
कनक रतन लै धेनु दान की कीन्हीं त्यारी॥
हल्ला व्रजमहँ मच्यो सुनत सब द्विजगन आवें।
छाँटि छाँटिकें धेनु लेहिं अतिशय-हरषावें॥
पाँच, सात, दश, बीस, सौ, लेऔ चाहे सहस हू।
आज खिरक सबई खुले, रोक टोक नहिं नेंक हू॥

वीस लक्ष दै धेनु नहीं सन्तुष्ट भयो चित।
तिलके परबत सात रत्न पट दीये हरषित॥
दयो शुद्धि हित दान यही सद्व्यय धनको है।
शुद्ध कालतैं भूमि तोष कारन मनको है॥
मज्जनतैं तनु बस्तुको, शुद्धि शौचतैं कहैं मुनि।
गर्भादिक संस्कारतैं, आशय होवै शुद्ध पुनि॥

तपतैं इन्द्रिय शुद्ध होहिं मखतैं सब द्विज जन।
हरि भक्तनितैं देश दानतैं होहि शुद्ध धन॥
सब बस्तुनिकी शुद्धि बिबिध विधि वेद बताई।
नँदनन्दनके जन्म समय विधिवत करवाई॥
देशकालवित नंदको, दान देत नहिं भरहि मन।
आवैं दशहू दिशनितैं, मागध बन्दी सूतगन॥

सबकी आशा लगी नित्य ही टोह लगावैं।
नँदरानी कब कमलनयन लालाकूँ जावैं॥
धुनि भेरीकी सुनी सुनत सब जन हरषाये।
जामा पगड़ी पहिन दौरि गोकुलमहँ आये॥
दूरिहिं तैं अति मुदित मन, जय जयकार सुनाइकैं।
आशिष सुतकूं देहि शुभ, गीत मनोहर गाइकैं॥

दो०—पीरी पगरी पहिनकें, वृद्ध एक हरषात।
आयो, पूछैं नंदजी—आप कौन हैं तात?
नंदवचन सुनि मुदित मन, करि पुनि पुनि परनाम।
कवितामें बूढ़ो कहे, हरष सहित निज नाम॥
गोपेश्वर व्रजराजजी! मैं तुम्हरो हूँ सूत।
दौर्यो आयो सनत ही, भयो तुम्हारे पूत॥

सवैया

व्रजराज ! कहैं सब सूत हमें, मुनि व्यास कृपा करिकें अपनाये।
सुनिकें सुत जन्म उमंग भरे, हियमहँ हुलसे सरसे इत आये॥
दान निहारि निहाल भये, धन धेनु सुमेरु समान लुटाये।
व्रजमहँ विहरें घुँघची पहिरें, बर देहु जिहीं तनु धूरि लगाये॥

कवित्त

धरती धन धाम धान मानहू न माँगो भूप
मोहनकी मोहनी-सी मूरति निहारौंगो।
पढ़िकें पुरान ज्ञान भयो नाहिं बाढ़्यो मान,
दान पाहि आइ व्रजमाँहि डेरा डारौंगो॥
कुलको तुम्हारो सूत नयो नयो भयो पूत,
धूतताई छाँड़ि अब जीवन सुधारौंगो।
नेहतैं निहारि मुख समुझि श्याम सत्यसुख,
साँवरी-सी सूरतपै सरवसु हौं वारौंगो॥

दो०—नंद सूत सत्कार करि, लख्यो वृद्ध पुनि एक।
पूछें—तुम को ? सो कहै, शीश भूमिमें टेक॥
सढ़्यो झगा सोने तगा; दगा करूँ नहिं नेंक।
हरो पेच तुर्रा पगा, 'जगा' हमारो बेंक॥
पुनि हँसि पूछें नंद जी, को यह तुमरे पास।
कहै जगा व्रजराज यह, आयौ लै बड़ आस।

सवैया

धोती फटी कछु नाक कटी पिचकी चिपटी हमरो जिह भैया।
कंठ सुरीलो रँगीलो बड़ो चटकीलो छबीलो बड़ो ही गवैया॥
भाँग चढ़ाइ नहाइ मलाई उड़ाइ चुराइ सदाहिं रुपैया।
दूबर दूध बिना व्रजराज ! बड़ोहि लबार जि माँगतु गैया॥

दो०—बालक पकरें ऊँट लखि, परिचय पूछें नंद।
जगा कहे मुसकाइके, उर छायौ आनंद॥

सवैया

ऊँट बिठाइ सिहाइ रह्यो करहाइ रह्यो करमहँ बड़ फोरा।
गोरो छिछोरो लुटेरो बड़ो चख'चाहि रह्यो जिह माँगत तोरा॥
मगमहँ बतरावतु आवतु हो शरमावत माँगत पाग पिछौरा।
ब्रजराज ! बतावत लाज लगे जिह छत्तिस छोरिनिमहँ इक छोरा॥

दो०—लखी लुगाई नन्दजी, पूछें—तुमरी कौन।
झाँकि बगल बोल्यो जगा, सुनों भूप यह जौन॥

सवैया

हे ब्रजराज ! करूँ नहिं लाज समाज जुरयो जिह फूहरि नारी।
सोवै सिदौंसि अबेरि उठे नित देइ परोसिनिकूँ गिनि गारी॥
आवत देखि पिछारि परी चटकीलि रँगीलि टरी नहिं टारी।
घरवारि हमारि हिलावति हार चलावति सैन मँगावति सारी॥

दोहा—लदे ऊँट लखि नंदजी, पूछें का इन माहिँ।
ह्वै प्रसन्न बोल्यो जगा, मनमहँ गोप सिहाहिं॥

दोहा—बही पुरानी सबनिमहँ, सब गोपनिके बंश।
आपु सबनिके मुकुटमनि, गोपबंश अवतंश॥
बंश बखानों जगाजी, आयसु दीन्हीं नंद।
खोलि बही बाँचन लग्यो, करि नयननिकूँ बंद॥

छप्पय—प्रथम गोपकुलमुकुट भये नृप चन्द्र सुरभिजी।
भीमक तिनके पुत्र भये तिनि, 'महाबाहु' जी॥
तिनिके सुत गोपेश 'काननेचर' बड़ भागी।
'कञ्जनाभि, तिनि तनय यशस्वी अति अनुरागी॥

कंजनाभिके पुत्र सुठि, 'बीरभानु' आभीरवर ।
'कृती' तनय तिनि गोपपति, 'धर्मधीर सुत धीरधर ॥

धर्मधीर के भद्रश्रवा, तिनि 'देवराज' सुत ।
देवराज के 'नवल, नवलके द्वै सुत श्रीयुत ॥
'काननेन्दु' सुत द्वितिय पुत्र 'जयसेन' भये तिनि ।
देवमीढ़ मथुरेश संग ब्याही कन्या जिनि ॥
ताके सुत परिजन्यजी, नानाकी गोदी गये ।
तिनिके अति सुन्दर सुघर, पुत्र पाँच पैदा भये ॥

दोहा—ते पाँचों ई शूर अति, भये ज्येष्ठ उपनन्द ।
नन्दनअरु सन्नन्दजी, अभिनन्दन श्रीनंद ॥

छप्पय—मातामहकी गोद गये गोकुल महँ गोपति ।
वृद्ध भये परिजन्य गये तपहित हरषित अति ॥
गद्दीको अधिकार पाइ उपनन्द सिहाये ।
सुकृति मूर्ति श्रीनन्द यशस्वी भूप बनाये ॥
इतनो जानूँ बंश मैं, नारायन किरपा करी ।
वृद्धावस्थामहँ बहुरि, गोद यशोदा की भरी ॥

दोहा—दान मान करि जगाको, नन्द निहारैं फेरि ।
करिके जयजयकार तब, बन्दी बोल्यो टेरि ॥

कवित्त—नंदको दुलारो सुत प्यारो ब्रज-बासिनिकों,
कोई कहे कारो परि जगको उजारो है ।
बेद नहिँ पायौ भेद ताहीको नाल छेदि,
आँगनमें गाढ़ि तापै अगिहानो बारो है ॥

भक्तनि को जीवनधन गोपिनिको प्रान मन,
बालनिको बन्धु धेनु धनको रखवारो है।
यशुमतिको लाल व्रज गोपिनिको ग्वाल बाल,
दर्शनतें निहाल होहुँ सरबसु सो हमारो है॥

दो०—रायभाट ज्यों चुप भये, त्योंही गायक आइ।
बाजे सबहिँ मिलायकें, गावै भजन बनाइ॥

पद

नंद घर आजु भयो आनन्द।
मातु यशोदा लाला जायो, ज्यों पूनोंने चंद॥१॥
गोपी गोप गाय गायक-गन, सवहिय सरसिज बन्द।
नंदनँदन रवि उदित भये हिय, विकसे पंकज वृन्द॥२॥
बसुधा मुदित समीर बहत बर, शीतल मंद सुगन्ध।
गरजत मंद मंद घन नभमहँ, प्रगटे आनँद कंद॥३॥
माया-बन्धु सिन्धु सब सुखके, स्वयं सच्चिदानन्द।
प्रभुके प्रभु बिभु विश्वबिदित वर, काटैं यमके फंद॥४॥

पद

यशोदा कैसो लाला जायो।
कोई कहे कुसुम अरसी सम, अंजन अपर बतायो॥१॥
कोई दूर्बा घन सम शोभा, उत्पल द्युति कहि गायो।
कोई कहे जनम नहिं याको, छिपि मधुबनतें आयो॥२॥
कोई कहे ब्रह्मको बाबा, बेदहु भेद न पायो।
कैसो कहें कहत सकुचावत नहिं, हम दरशन पायो॥३॥
गोबिँद गोकुल कुँवर गोपपति, गोपीश्वर कहलायो।
कहा कहूँ कछु कहत न आवै, चरन कमल सिरनायो॥४॥

छप्पय—अति आनंदित नंद सबनिको स्वागत कीन्हों।
जाने जो जो करी याचना सो सब दीन्हों॥
बार बार ह्वै मुदित गीत लालाके गावें।
गोप गान अरु बाद्य सुनत अतिशय हरषावें॥
नंदलालके जनमको, घर घरमें उत्सव भयो।
मानों ब्रजमंडल सकल, उत्सवमय ही बनि गयो॥

सकल राजपथ गली गिरारे घर पिछवारे।
सबनि स्वयं मिलि सींक सोहनी लाइ बुहारे॥
चन्दनको छिरकाव इतर करपूर मिलायौ।
करि केशरिकी कीच सबनि निज घर लिपवायौ॥
टाँगीं बन्दनवार वर, घर घर सुघर बनाइकें।
बिच बिच कलियाँ कुसुमकी, पल्लव ललित लगाइकें॥

लीपे पोते द्वार बार घर अटा अटारी।
आँगन, पौरी, बगर, रसोई और तिवारी।
नीली पीली हरी गुलाबी पचरँग सारीं।
टाँगीं द्वारनि लाइ कबहुँ जो नहीं निकारीं॥
दीप चौमुखा बारिकें, कलशनिके ऊपर धरे।
मंगलदायक द्रव्य सब, घर घर एकत्रित करे॥

गैयाँ सब बगदाइ खिरकमहँ फिरितैं लाईं।
तेल फुलेल लगाइ न्हवाईं फेरि सजाईं॥
मोरपंखके मुकुट लसैं घुघुरू पग जिनिके।
गेरू तेल मिलाइ रँगे तन सींग सबनिके॥
गंडा गरमहँ चमकनों, कनकहार पहिराइकें।
हरषित ह्वै पूजन करें, शाल दुशाल उढ़ाइकें॥

बछरा गोप कुमार सजावें सब हरषावें।
बहुबिधि करें कलोल तुरावें मूँड़ हिलावें॥
अति चंचलता करें फुदुकि इततें उत आवें।
मानों बालगुपाल जनमको हरष मनावें॥
बहु उमंगमहँ उछरिकें, सबई भागें नन्द घर।
मनहु मुनमुने सखाकी, लगी चटपटी दरश डर॥

सजिबजिकें सब गोप ढोल करताल बजावत।
नन्द महलकी ओर जाहिं सब रसिया गावत॥
पहिन अँगरखी पाग दुपट्टा उरमहँ डारें।
लम्बे तिलक लगाइ मूँछ अरु बाल सम्हारें॥
चले विविध विधि भेंट लै, प्रेम रसिकतामहँ पगे।
मनहुँ कमल विकसित सुनत, भ्रमर तुरत उतई भगे।

मिलहिं परस्पर गहकि हृदयतें हृदय सटावैं।
कोई छूवै पैर गहकिकें ताहि उठावैं॥
कोई केशर मलै सुपारी बीरी देवैं।
कोई लैंन न पाहिं झपटि तिनि करतैं लेवैं॥
सिद्धिनि सब सत्कार करि, जनम सुफल अपनो कर्यो।
गोकुल धन, मणि, अन्न अरु, सबई बस्तुनितैं भर्यो॥

इत गोपिनि सम्बाद सुन्यो सुत यशुमति जायो।
रोम रोममहँ हरष सुनत सबईकें छायो॥
नन्दभवनकूँ गमन करनकी करी तयारी।
लँहगा नये निकारि पँचरँगी ओढ़ीं सारी॥
सुमन लगाइ सजाइ कच, बैंणी बाँधी विधि बिहित।
सिर सिंदूर लगाइ पुनि, अधर रँगे शोभा सहित॥

मुखमहँ मिस्सी पान नाक नकवेसरि सोहै।
कुच कुंकुमकी कीच कठिनता रति मनमोहै॥
बैंदी, कुंडल, हार, झूमका, कंठा लटकन।
चम्पकली, जौमाल, बरा, बाजूबँद कंगन॥
मुदरी, छल्ला, आरसी, पगपान हु पायल, कड़े।
पहिने पैरनि साँट अरु, पाइजेब, छमछम, छड़े॥



करि सोलह शृङ्गार बनीं रति सम सब नारीं ।
चाँदीको लै थार चावकी वस्तु सम्हारीं ॥
किसमिस, गोलागिरी, छुआरे और मखाने ।
पिस्ता अरु बादाम, चिरौंजी, एला दाने ॥
हँसली, कठुला, कौंधनी, कुरता, टोपी, खिलौंना ।
न्योछावर, राई, नमक, लयो ललाकूँ झुन्झुना ॥

लीये कर उपहार भावमहँ भरिकैं भामिनि ।
कटि कुचभार सम्हारि नमित-सी ह्वै गजगामिनि ॥
नेह पागमहँ पगीं सरसता-सी सरसावति ।
मुखरित पथकूँ करति चलति रस-सो बरसावति ॥
देह गेह सुधि बुधि न कछु, कृष्ण कृपाकी कामिनी ।
नवजलधरमहँ चमकिबे, चलीं मनहुँ सौदामिनी ॥

काननि कुण्डल कनक समुज्वल मणिमय विलसत ।
चमकैं दमकैं हार मनहुँ नभ उड़गन बिकसित ॥
घूँघटतैं मुख ढक्यो मनहु छिपि घनमहँ निशिपति ।
झरहिँ सिरनितैं सुमन मनहु शर छाँड़ैं रतिपति ॥
हृदय हार अरु कुचनमहँ, होवें संघर्षण प्रबल ।
ज्यों झकझोरें मीन ह्वै, मानसरोवर हृत्कमल ॥

ब्रजरजमहँ पदकमल परहिँ पृथिवी हरषावें ।
जा रजकूँ अज शम्भु चहें परि ते नहिँ पावें ॥
प्रकटे ब्रजमहँ नंदलला हम सबके भरता ।
मिलन चलीं जिमि जाहिँ उदधितैं मिलिबे सरिता ॥
यह अभिसार विचित्र अति, जामें नहिँ ईर्ष्या कपट ।
छाँड़ि सौतिया डाह सब, जाहिं हँसति खेलति प्रकट ॥

यों सब मिलिकैं नन्दमहलमहँ पहुँचीं बाला।
जहँ गुलगुलसे परे झुनझुना यशुमति लाला॥
बाँधे मुट्ठी नयन मूँदि कछु ध्यान लगावत।
चरननि रहे हिलाय मनहुँ जग सार बतावत॥
बोलीं बुढ़ियाँ—वत्स ! तुम, चिरजीवो सुखतैं रहो।
बेगि बढ़ौ बेटा ! बिहँसि, यशुमतितैं मैयो कहो॥

महरानेतैं गोप लालकूँ देखन आये।
भीतर आदर सहित नन्द बाबा जब लाये॥
गोपिनि तुरतहिँ अधिक तैलमें हरदी घोरी।
छिरकें रसमहँ पगी मची भादौंमहँ होरी॥
लै पिचकारी गोपहू, फेंट बाँधि ठाढ़े भये।
रँग रस बरसें संगई, सब रस-रँगमहँ रँगि गये॥

भेरी, तुरही, चङ्ग, मजीरा मधुर मधुर स्वर।
ढोल, खोल, करताल, बजैं बंशी बीनावर॥
कृष्ण जन्मकी मची धूम जड़ चेतन हरषें।
कल्पबृक्षके सुमन गगन फुलझरिया बरषें॥
व्रजमंडलके गोपगन, सब मिलि दधिकाँदौ करें।
दूध, दही, घृत, उलचि घट, खाली करि पुनि पुनि भरें॥

मुखमहँ मक्खन [मारि गोप कोई भगिजावें।
कोई चुपके आइ दही मुखमें लपटावें॥
कोई दूध उड़ेलि हरषमहँ नाचें गावें।
कोई पटकें पकरि पिछौरा पाग भिगावें॥
यों खेलत लोटत हँसत, नाचत गावत गोप सब।
घड़ी कालकी सुधि न कछु, उदित भये रबि अस्त कब॥

प्रेम पुलकि ब्रजराज आजु सर्बस्व लुटावें।
जो माँगै जो बस्तु ताहि सो तुरत दिवावें॥
राय, भाट अरु कथक सूत सब पढ़िवे वारे।
नर्तक, नट अरु भाँड़ बिबिध विधि बाजेवारे॥
देत सिहावत अति मुदित, पुनि पुनि देवें पुनि कहैं।
और लेउ संकोच नहिं, बिनु लीये कोउ न रहैं॥

नन्दराय सब करत धरत बिसरत नहिं श्रीपति।
अद्भुत सुत तनु निरखि भई चितकी चंचल गति॥
दान धरमतें होहि सुखी सुत सोचत मनमहँ।
तनय अभ्युदय सुमिरि रही आसक्ति न धनमहँ॥
याचक याचक रहे नहिं, नंदभवनतैं लेत हैं।
पावें जो गो, रत्न, धन, पुनि बनि दाता देत हैं॥

नंदभवनमहँ रहें रोहिनी पतितैं न्यारी।
मलिन बसन परिधान न बैंणी माँग सम्हारी॥
किंतु कृष्णको जन्म सुनत सजिबजिकें विधिवत।
आज करत सत्कार सबनिको इत उत बिहरत॥
कहें स्वामिनी नारि नर, करि आदर आयसु चहहिँ।
समाधान सबको करहिँ, मधुर बचन सबतैं कहहि॥

उत्सव ब्रजमहँ नये नारि नर नित्य मनावें।
गावत गोपी गीत ग्वाल गोधन सँग आवें॥
दूध दहीकी बहें नदी घृत कोउ न खाईं।
मंदिर मंदिर भरीं मनोहर मनहु मिठाई॥
केसरि कीच भरी सकल, गोकुल गाँव गलीनिमहँ।
मणि मुक्ता बिखरे फिरें, कोउ न पूछे सेंतिमहँ॥

दो०—नन्दोत्सव घर घर भयो, नर नारिनि मन मोद।
आवैं निरखें लालकूँ, लेवैं पुनि पुनि गोद॥
नँद-नन्दन निरखत तुरत, सब उर उमड़त प्यार।
छटवें दिन छट्ठी भई, पूरी और कसार॥

इति श्रीभागवतचरितके पञ्चमाहमें नन्दोत्सव नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त।



अथ पञ्चमोऽध्यायः

[५]

भई लाल की छटी राजकर चिन्ता व्यापी।
सोचैं श्री व्रजराज—कंस नृप अति ई पापी॥
बार्षिक कर नहिँ जाइ करै उत्पात न दुरजन।
छकरनिमहँ भरि दूध दही घृत चले गोपगन॥
गोकुल रचाको सकल, करि प्रबन्ध मथुरा गये।
पुण्य पुरी शोभा लखी, गोप परम हरषित भये॥

दई भेंट कर सहित रतन अगनित घृत पय धन।
पाइ अमोलक बस्तु कंस पूछत प्रसन्न मन॥
व्रजमहँ सबजन कुशल बहुत दिनमहँ कर आयो।
सकुचि कहैं व्रजराज—महरि घर लाला जायो॥
कंस कहे—जुग जुग जिये, पालन सब व्रजको करै।
बिजयी होवे सुत सतत, सब प्रानिनिको दुख हरै॥

नंद दयो कर कंस लौटि डेरा पै आये।
समाचार बसुदेव सुनत तुरतहिँ उठि धाये॥
सजल नयन तनु पुलकि ललकि हिय नंद लगाये।
दोऊ सुधि बुधि भूलि गहकि हिय उभय सटाये॥
दई बधाई नंदकूँ, कुशल प्रश्न पुनि पुनि करें।
सुमिरि सुमिरि बल कृष्ण कूँ, नीर नयन नीरज भरें॥

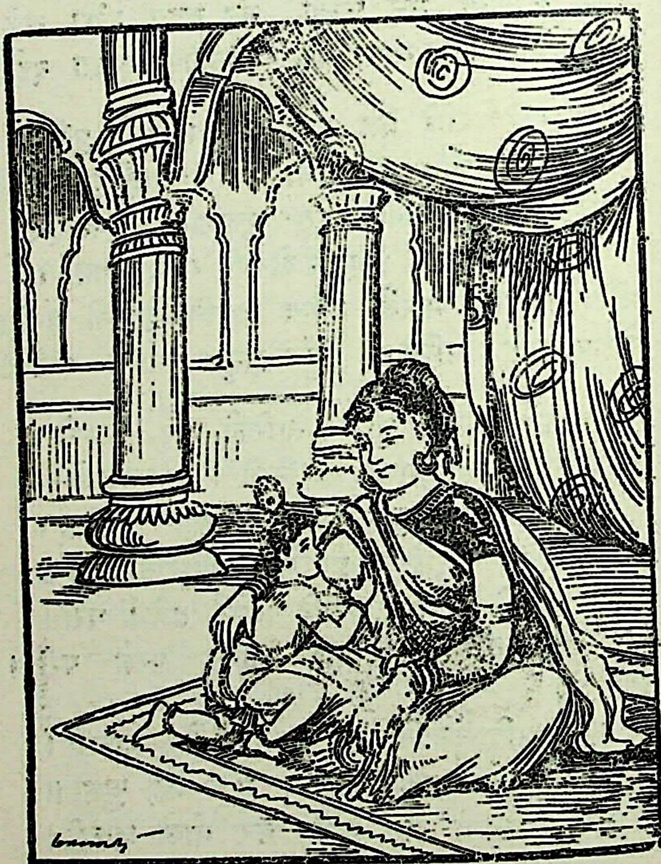
बोले श्री बसुदेव—दयो कर भेंट भई अब।
अधिक रहें नहिं यहाँ काज सम्पन्न भये सब॥
ब्रजमहँ नव उत्पात कौनसे कब का आवें।
तातैं अब अबिलम्ब आपु गोकुलकूँ जावें॥
राम कृष्णमहँ मन फँस्यो, नंद हृदय शंका भई।
तुरतहिँ गोकुल गमन की, गोपनिकूँ आज्ञा दई॥

छकरनि जोरे बैल नंद बसुदेव मिले पुनि।
गोकुलकूँ चलि दये कथा अब एक कहूँ मुनि॥
निज रिपु हनिबे हेतु पूतना कंस पठाई।
सब थल मारत शिशुनि खेचरी गोकुल आई॥
पीन पयोधर भारतैं, नमित चलति छैलिनी बनी।
केशपाशमँह मल्लिका, गुँथी कुसुम माला घनी॥

मायातैं अति सुघर नारिको रूप बनायो।
मधुर मधुर मुसकाइ सबनिको चित्त चुरायो॥
महराने की समुझि रोहिणी बिहँसि बिठाई।
यशुमति समुझी नई बहू मथुरातैं आई॥
गगरी सोनेकी मधुर, भरि विषतै ढकिकें धरी।
त्यों ठगिनी गोरी बनी, कारेके पल्ले परी॥

बनि अति सुन्दरि नारि महलमहँ बैठी लुच्ची।
गरल लपेटी दई लालके मुख महँ चुच्ची॥
हरिकूँ आयो रोष पकरि कर बोबो लीन्हीं।
कचकचाइकें चढ़े चुटुमुनि मुखमहँ दीन्हीं॥
पीवें पय प्रभु प्रान सँग, अति अद्भुतछवि लालकी।
मातु निहारति चकित चित, बनी अकबकी-सी बकी॥

अरे छोड़दै लाल छोड़दै बकी पुकारै।
किन्तु लालकी बानि पकरिकैं अवसि उबारै॥
नहार्थ पाइनि पटकि पटकिकैं हा हा खावै।
दैया बप्पा मरी राँड़ कहि कहि डकरावै॥



चूची में पीड़ा अधिक, माया ताकी खुलि गई।
मुँह फाट्यो निरजीव ह्वै, बाल बखेरे गिरि गई॥

गिरी पूतना तुरत नाश सब व्रजको कीन्हों।
कंस बाग छै कोस ताहि चौपट करि दीन्हों॥
मुख मानो गिरि गुहा दाढ़ खूँटा सम ताकी।
चूची पर्वत शिखर आँखि कूआ सम बाकी॥
सूखे सर सम उदर अति, थूल देह पग सेतु सम।
डरपें गोपी गोप गन, वज्र गिर्‌यो अस भयो भ्रम॥

छातीपै प्रभु परे प्रेमतैं करत किलोलें।
मामा भेज्यो बँध्यो खिलौना मानो खोलें॥
नहिं भय नहिं कछु रोष सरकि इततैं उत आवें।
मैया हाहाकार करै गोपी घबरावें॥
भई रोहिणी बिकल अति, गिरीं लिये बलरामकूँ।
झपटि एक गोपी तुरत, लै आई घनश्यामकूँ॥

धरि धीरज गोपूँछ लाल अँग अंग घुमाई।
द्वादश गोबर तिलक करे गोरज लिपटाई॥
करि कर अंगन्यास नाम पढ़ि मंत्र उचारें।
पद अज रक्षा करें जानु मणिमान सम्हारें॥
यज्ञ पुरुष उरुउभयकी, कटि अच्युत केशव हृदय।
हयग्रीव प्रभु उदरकी, ईश होहिं हियपै सदय॥

सूर्य कण्ठ, भुजबिष्णु, उरुक्रम मुख, सिर ईश्वर।
रक्षें चक्री अग्र, हलायुध बाहर भीतर॥
मधुसूदन अरु अजिन करें रक्षा पार्श्वनिकी।
पृष्ठ गदाधर, परम पुरुष शं सबहिँ दिशनि की॥
कौणनिमहँ उरुगाय प्रभु, हृषीकेश इन्द्रिय सकल।
श्वेतद्वीपपति चित्तकूँ, योगेश्वर मनकूँ प्रबल॥

अहङ्कार भगवान बुद्धिकूँ पृश्निगर्भ प्रभु।
क्रीड़ामहँ गोबिन्द सयन रच्छैं माधव बिभु॥
चलिबेमहँ बैकुण्ठ बैठिबेमहँ शं श्रीपति।
करें यज्ञभुक् अशन माँहि भयतें कमलापति॥
सुनि रच्छा हरि हँसि गये, स्तन पीयो कीयो शयन।
इत गोपनि मगमहँ लख्यो, पड़्यो पूतना भीमतन॥

कृष्ण करनितैं मरी पूतना सद्गति पाई।
काटि कूटि सब अंग गोप मिलि आँच लगाई॥
बिष पिआइबे द्वेषभावबश दुष्टा आई।
दई धाइ गति श्याम बकी निज लोक पठाई॥
बकी परमगतिकी कथा, पढ़ें सुनें जे नेमतैं।
इह सुख भोगें अंतमहँ, पाहिं परमपद प्रेमतैं॥

इति श्रीभागवतचरितके पञ्चमाहमें पूतना मोक्ष नामक

पञ्चम अध्याय समाप्त।

अथ षष्ठोऽध्यायः

[६]

कहें परीक्षित—प्रभो ! अपर हरि-चरित सुनावें ।
भक्तनि सुख हित श्याम अवनिपै तनु धरि आवें ॥
बोले शुक—सुनु भूप ! श्यामने करवट लीन्हों ।
मैया अति मन मुदित बुलायो ब्रजमहँ दीन्हों ॥
आईं गोपी चाव लै, सजी बजी सब आज हैं ।
जन्मोत्सव करवट बदल, एक पंथ द्वै काज हैं ॥

द्विजनि दीन अरु दुखिनि दान दिनभर करवायो ।
बुलवाये बहु विप्र महरि अभिषेक करायो ॥
पीवत पीवत दूध लालकूँ निंदिया आई ।
छकरा नीचे सुघर पलकिया मातु बिछाई ॥
हौलें हौलें जाइकें, मातु सुवाये श्याम तहँ ।
भई लीन सत्कारमहँ, गोपी उत्सव करहिं जहँ ॥

खुली लालकी आँखि मातु तहँ नाहिं निहारी ।
रोये बालक बने साम जनु ऋचा उचारी ॥
हूहल्लामहँ फँसी सुनी नहिं माता बानी ।
धूमधड़ाको करूँ लालने मनमहँ ठानी ॥
नव पल्लव सम सुघर पग, लखि छकरा सूधे करे ।
छुवत भाँड़ रस घट शकट, अड़ड़ धम्म करिकें गिरे ॥

गोपी इत उत भगीं भईं भयतैं ब्याकुल अति।
एक मात्र घनश्याम नंदरानीकी गति मति॥
दौरी छकरा ओर अबहिं जहँ श्याम सुवाये।
उलट्यो देख्यो शकट झपटिकें लाल उठाये॥
प्यायो पय द्विज आइ तब, शांति पाठ सबने कर्यो।
अति बिस्मित सबई भये, गोपनि छकरा पुनि धर्यो॥

कागासुर इक दिवस काक बनि हरिढिँग आयो।
पकरि टेंटुआ तुरत कंसके पास पठायो॥
पुनि द्विज श्रीधर असुर कंस को बनिकें सेवक।
आयो हरिकूँ हनन परे जहँ जगके रक्षक॥
श्रीहरि-लीलाशक्तितैं, दंत भंजि मुख खीर भरि।
ब्रजतैं बाहर कर्यो नँद, अद्भुत कीयो कृत्य हरि॥

पलनामहँ पौढ़ाइ लालकूँ मातु झुलावैं।
थपथपाइ कछु कहैं हलावैं अति सुख पावैं॥
लीन्हीं करवट श्याम लगे रोवन जगबन्दन।
दीयो आँचल मातु पियो पय पुनि नँदनन्दन॥
पय पिआइ मुख चूमिकें, गोदीमहँ बैठाइकें।
मातु खिलावति मगनमन, इत उत बस्तु दिखाइकें॥

तृणावर्त हरि लख्यो देखिकें मन मुसकाये।
अति भारे बनि गये मातुके अङ्क पिराये॥
भूमि बिठाये श्याम मातु मनमहँ घबरावै।
च्यौं सुत भारी भयो भेद माता नहिँ पावै॥
लगी मातु गृह काजमहँ, असुर बवन्डरबनि गयो।
लै हरिकूँ नभमहँ उड़्यो, अन्धकार ब्रजमहँ भयो॥

सैर सपट्टो करत असुर सँग नभमहँ डोलत ।
इत गोपी अरु गोप बिरह महँ सब मिलि रोवत ।।
हरि सब देखे दुखी असुरको गरो दबायो ।।
पटियापै लै गिरे ताहि परलोक पठायो ।।
निरखि लालकूँ कुशल सब, मुदित मातु गोदी धरे ।
बालकृष्ण अद्भुत चरित, यों ब्रजमहँ बहुतक करे ।।

एक दिवस लै अङ्क लालकूँ मातु खिलावैं ।
मातृनेहमहँ झरत मधुर पय मुदित पिआवैं ।।
निरखि मंदमुसकान मातु मनमाँहि सिहाई ।
जमुहाई हरि लई मातु तब चुटकि बजाई ।।
मुखमहँ माताने लखे, रवि, शशि, सागर, द्वीप, बन ।
अनिल, अनल, जल, नभ, अवनि, सरिता, पर्वत, जीवगन ।।

सहसा सुत मुख माँहि निरखि सब सहमी जननी ।
थर थर काँपहिं मनहुँ जाल लखि डरपति हरिनी ।।
जिहि हित तरसत बिज्ञ मातु सो बिपदा चीन्हीं ।
निश्छल निरख्यो नेह संबरन लीला कीन्हीं ।।
सूत कहें—बल श्याम की, नाम करन लीला कहूँ ।
भूल्यो हौं आवेशमहँ, कृष्ण भाव भावित रहूँ ।।

इति श्रीभागवतचरितके पञ्चमाहमें शकटासुर काकासुर तृणावर्त मोक्ष तथा विश्वरूप दर्शन नामक छठवाँ अध्याय समाप्त ।

अथ सप्तमोऽध्यायः

[७]

एक दिवस वसुदेव पुरोहित गर्ग बुलाये।
करि पूजा सत्कार विनययुत वचन सुनाये॥
बोले—गुरुवर! आज आप गोकुलकूँ जावें।
तहँ द्वै बालक बसहिं नाम तिनके धरि आवें॥
शौरि वचन सुनि गर्गमुनि, अति ही आनन्दित भये।
पोथी पत्रा बाँधिके, तुरत नंद ब्रजमहँ गये॥

नन्द निहारे गर्ग विष्णु सम पूजा कीन्हीं।
करि पूजा स्वीकार हरषि मुनि आशिष दीन्हीं॥
नामकरन संस्कार सुतनिको कीजे मुनिवर।
मुनि समुझाये नंद न मेरो करिबो हितकर॥
बोले ब्रजपति—जाति कुल, के जन नहीं बुलाउँगो।
गुप्त भावतैं गोष्ठमहँ, नामकरन करवाउँगो॥

सोरठा—नन्द विनय स्वोकारि, नामकरन अनुमति दई।
सबई सांज सम्हारि, आई मैया गोष्ठमें॥

छप्पय—श्याम रोहिणी लिये रामकूँ मैया यशुमति।
बोले मुनिवर गर्ग—रोहिणी सुत जिह ब्रजपति॥
संकर्षण, वल, राम नामतैं बोले जावैं।
जे यशुमति-सुत बासुदेव हरि कृष्ण कहावैं॥
नारायण सम तनय तव, ब्रजकी रक्षा करिंगे।
हरि-सुर-द्रोही असुर दलि, भूमि भार भय हरिंगे॥

सोरठा—चुपकें धरिकें नाम, गर्ग मधुपुरीकूँ गये।
लैकें बल अरु श्याम, गईं मातु पुनि महलमहँ ॥
छप्पय—मैया पूछें—धर्यो नाम का मुनि छोरनिको।
जशुमति बोलीं—नाम कृष्ण बलराम ललनिको ॥
भारी हैं कछु नाम कहें हम कनुआ बलुआ।
उत्सव भयो न कछू पठाओ घर घर हलुआ ॥
हरि कनुआ बलुआ बने, गोकुलमहँ बढ़िबे लगे।
कछुक दिवसमहँ रेंगिकें, घुटुअन बल चलिबे लगे ॥
बन्दर बालक सरिस हाथ पाँइनि बल किढ़िरें।
इत उत भोरे बने नन्द आँगनमहँ बिहरें ॥
घिसिरि घिसिरिकें कबहुँ गोष्ठमें घुटुअनि जावें।
गोशालाकी कीच चलत निज तन लपटावें ॥
पग नूपुर कटि करधनी, चलिबे महँ रुनु झुनु बजहिं।
शब्द सुनत इत उत लखत, हिय हुलसत किलकत भजहिं ॥
समुझि नन्द लखि बृद्ध संग ताके लगि जावें।
जब मुरि देखें पुरुष मातुके ढिँग भगि आवें ॥
अम्मा बब्बा मधुर तोतली बोली बोलें।
गोबर अरु गोमूत्र पंकमहँ बिहरत डोलें ॥
जब देखो तब गोष्ठमहँ, चंचलता अद्भुत करें।
गैयनिके पैरनि परें, मैया अति मनमहँ डरें ॥
करि उबटन अन्हवाइ मातु भँगुरी पहिरावें।
गोरोचनको तिलक डिठौना भाल लगावें ॥
इत उत दीठि बचाइ गोष्ठमहँ लाला जावें।
बछरा, गोबर-घास कीचतैं दुँद मचावें ॥
मातु उठावत डरि तुरत, पुनि पुनि चूमति मधुर मुख।
छातीतैं चिपटाइकें, हियमहँ पावैं परम सुख ॥

चंचलताकूँ निरखि मातु खीजें हरषावें।
कच्छ मच्छ बाराह कबहुँ बटु बिप्र बतावें॥
पाँ पाँ पैयाँ चलें खाइँ अब माखन रोटी।
करें मातुतें रारि रोषमहँ पकरें चोटी॥
मधुर मधुर बतिआँ करें, व्रजबासिनिके मन हरें।
रसिया गावें नाचिकें, नित नूतन लीला करें॥

बछरनिकी गहि पूँछ लटकिकें इत उत जावें।
गैया मैया भैंसि चमरिया कहि कहि गावें॥
पकरैं गैयनि सींग कुदकि ऊपर चढ़ि जावें।
ताता थैया करें लुगाइनि नाच दिखावें॥
कण्ठ मधुर स्वर मनहरन, बाल सुलभ कूजत कलित।
होहि मुदित मन मातु अरु, गोपी लखि लीला ललित॥

कबहुँ साँड़के सींग पकरिकें तिनितैं खेलें।
कबहूँ पकरैं श्वान सर्प तिनि मुख कर मेलें॥
कबहूँ ताता करें आगिकूँ पकरन जावें।
कबहूँ बन्दर मोर खगनिकूँ पकरि नचावें॥
कबहूँ शस्त्रागारमहँ, असिपै हाथ फिराइकें।
किलकैं होवैं मगन अति, वस्तु अनोखी पाइकें॥

कबहूँ खेलन चन्द्र मातुतैं पुनि पुनि माँगें।
कबहूँ पीकें दूध गोदतैं झटपट भागें॥
कबहूँ जलमहँ घुसें भिगोवें तन पट सगरे।
कबहूँ पच्छिनि पकरि करें गोपिनितैं झगरे॥
कबहूँ द्विजकूँ देखिकें, करि प्रनाम भगि जात हैं।
कबहूँ परसी खीरिकूँ, चाटि चाटिकें खात हैं॥

कबहूँ घरकी वस्तु लाइकें बाहर खोवें।
कबहूँ टूटे दाँत दिखावें पुनि पुनि रोवें॥
कबहुँ कंटकाकीए गैलमहँ बरवश जावें।
माता लावें पकरि नहीं आवें चिल्लावें॥
बहु बिधि लीला लालजी, ललित ललित नित प्रति करहिं।
ब्रजमहँ वसि बलदेव सँग, ब्रजवासिनिके मन हरहिं॥
एक दिवस बल श्याम गोप बालनि सङ्ग खेलें।
यमुना तटपै जाइ दंड सब मिलिकें पेलें॥
पेलि पालिकें दंड कदम तर गये कन्हाई।
मीठी माटी निरखि दुबकि थोरी-सी खाई॥
लखि बोले बलदेवजी, कनुआ ! माटी खातु है।
मैयातैं अबही कहूँ, अब तू बिगड़्यो जातु है॥
यों कहि पकरे श्याम राम माता ढिँग लाये।
डरे मातुकूँ देखि कमल नैननि जल छाये॥
पूछें माता—कहो श्याम ! च्यौं माटी खाई।
बोले नटवर—तनिक न खाई माटी माई॥
नहिं पतिआवे देखि मुख, दै दिखाइ, फाड़्यो वदन।
सुत-मुखमहँ माता लखे, तीन लोक चौदह भुवन॥
लखि मुखमहँ ब्रह्माण्ड गोप गोपीपति ब्रजकूँ।
निरखत पकरें श्याम अकबकी ठाढ़ी निजकूँ॥
जगदीश्वर की शरन गई तारी सी लागी।
ब्रह्मज्ञानकी बात करै ममता सब भागी॥
सुत सनेहमय तुरतई, माया फेरी श्याम जब।
फिरि कनुआ कहिबे लगी, भूली मुखकी बात सब॥

इति श्रीकृष्ण चरित के प्रथम विश्राम में नामकरण बाललीला तथा मृद्भक्षण नामक सप्तम अध्याय समाप्त।

अथ अष्टमोऽध्यायः

[८]

वय जब कछु कछु बढ़ी नन्दलालाकी थोरी ।
सीखी विद्या प्रथम दही माखनकी चोरी ॥
संग सखा सब लिये खेलिबे घर घर जावें ।
कहँ माखन दधि धर्यो सैनतें ताड़ लगावें ॥
भाभी कहि आपैं भवन, कहैं नई पहिनी चुरी ।
बतियाँ बोलें मधुर अति, मुख मिश्री हियमहँ छुरी ॥

चोरीके सब साज सजे संगी शिशु कीन्हे ।
भेद लगावें कछू कछू इत उत करि दीन्हे ॥
कछू बहानों करें सरलता मुँहपै लावें ।
इत उत बात बनाइ श्याम घरमाहिँ घुसावैं ॥
चोर कलामहँ निपुण अति, नंदनँदन घनश्याम हैं ।
चोरें मन, माखन मदन-मोहन शोभाधाम हैं ॥

भोरो बदन बनाइ बिहँसि घरमहँ घुसि जावें ।
चाची भाभी कहें प्यारतैं गहकि बुलावें ॥
यदि देखें नहिं डौल लौटिकें पुनि पुनि आवें ।
जब घर सूनों लखें चोरि दधि माखन खावें ॥
गोपी अति उत्सुक रहहिँ, कथा कृष्णकी ही कहहिँ ।
माँगहिँ बिधितैं सतत बर, कब हरिकी साँसति सहहिँ ॥

व्रजवनिता श्रीकृष्ण ललित लीलनिपै रीझीं।
जब लाला अति लगे करन तब कछु कछु खीझीं॥
मनमहँ तो अति मोद क्रोधयुत बदन बनायो।
यशुमति ढिँग चलि कहहिँ सवनि मिलि मतो कमायो॥
सजि बजिके सब मिलि मुदित, उपालम्भ दैवे चलीं।
गोकुलकी सब गलिनिमहँ, खिलीं मनहुँ पंकज कलीं॥

लखि गोपिनिकूँ मातु कुशल पूछी बैठाईं।
करि पालागन सबनि कृष्णकी बात चलाईं॥
नहिँ हम व्रजमहँ रहैं कान्ह अब बहुत सतावै।
घर घर चोरी करे नित्य तकरार मचावै॥
दूध, दही, नवनीत, घृत, चोरि सखनि सँग खातु है।
कहनी अनकहनी कहे, ढीठ भयो सतरातु है॥

चुपके घरमहँ घुसे धर्‌यो दधि माखन पावै।
संगी साथी मोर बानरनि तुरत खवावै॥
यदि न मिलहि नवनीत कुपित ह्वै मटुकी फोरै।
पटकि पुरातन पात्र लाइ आँगनमहँ तोरै॥
पकरैं गोपी तुरत तो, छोरनिके सँग भगतु है।
घरमहँ आगि लगाइके, मारि ठठाको हँसतु है॥

जिह छोटो है नहीं छोकरा खोटो भारी।
मुँहफट अति ई भयो देइ छूटत ई गारी॥
छींकेपै चढ़ि जाय जानि दधि माखन जावै।
चोरी बिद्या निपुण विविध बिधि युक्ति चलावै॥
कबहूँ बाबाजी बनै, छोरी हू बनि जातु है।
मूसे बिल्लीकी तरह, घुसि घरमहँ दधि खातु है॥

कबहूँ फिरकै आइ हमें ही चोर बतावै।
रानी तेरो पूत भूत बनि कबहुँ डरावै॥
बन्दर लावे पकरि कहें—जे तोकूँ काटैं।
खिलखिलाइ हँसि जाइ जबहिं हम जाकूँ डाँटैं॥
चितवनमहँ टोना भर्‌यो, बानी मिसरी सम मधुर।
करै काज अन्यायके, तोऊ लागै अति सुघर॥

मैया! कहँ लगि कहैं बात कछु कहत न आवै।
निशिदिन चोरी युक्ति सोचि उत्पात मचावै॥
मुखतैं सीटी मारि बाल गोपाल समेटै।
देखै आँगन लिप्यो वहीं टट्टीकूँ बैठै॥
खाइ, बिगारै, डलीचै, बर्तन फोरै हँसि परै।
त्यागि देहि मल मूत्र हू, घर आँगन मैलो करै॥

नँदरानी सुनि हँसी कहें—मदमाती तुम सब।
कनुआ ममढिँग रहै करै घर घर चोरी कब॥
ऊपरतैं करि रोष कहें गोपी—तुम रानी।
पच्छ करोगी पुत्र प्रथम ही हमने जानी॥
जो जिह बाहर करतु है, सो घरमहँ हू करैगो।
चोरी पकरो दंड फिरि, दैवो तुमकूँ परैगो॥

सोचें मनमहँ मातु—बने जिह कैसें छोरी।
कैसें घर घर जाइ करे माखनकी चोरी॥
करि करि क्रीड़ा सरस श्याम सुख सबकूँ दीन्हों।
मातु मनोरथ सिद्ध करहुँ हरि निश्चय कीन्हों॥
भोर भये जननी उठी, दधि परौंदि मथिबे लगी।
घमर घमरको मधुर रव, सुनि हरिकी निदिया भगी॥

मातु मथहिँ दधिहिलहिँ कान कुंडल बोत्रो कर।
स्वेदबिन्दुयुत वदन कमलपै जनु हिम-कन बर॥
राजमालती सुमन झरहिँ सिरतैं अति सुन्दर।
मनहुँ कुसुम बरसाइ करहिँ सुर मान निरन्तर॥



श्याम त्यागि शैया तुरत, मातु मथानी पकरिकैं।
अम्मा बोबो प्याइ दै, पुनि पुनि बोलें अकरिकैं॥

सम्मुख सुतकूँ निरखि नेहतें मातु उठायौ ।
अङ्क लाइ मुख चन्द्र चूमि पय पान करायौ ॥
इत जननी हिय हरषि कृष्णकूँ दूध पिआवै ।
धर्‌यो बरोसी दूध उफनि उत आगि बुझावै ॥
दूध पूत इक संगई, उफने माता सुतहिँ तजि ।
दूध उतारन आगितैं, लैंयाँ पैयाँ गई भजि ॥

नहीं अघाये श्याम रोष मैयापै आयौ ।
लोढ़ा ढिँगई धर्‌यो क्रोध करि ताहि उठायौ ॥
मार्‌यो तकिके भाण्ड दहीको फूट्यो फटई ।
फुटत मथानी भगे श्याम माखन लै झट ई ॥
आइ यशोदा दृश्य लखि, हँसी पुत्र पकरन चली ।
सोचें मनमें श्याम की, चोरी की कलई खुली ॥

माता चुपके चली चोरकी चोरी पकरन ।
निरखत इत उत सभय चपल दृग जनमनरञ्जन ॥
जननी आवत लखी ओखरी तजि हरि भागे ।
पीछें दौरी मातु कृष्ण डरि काँपन लागे ॥
करमहँ छोटी सी छड़ी, भार नितम्बनतैं नमित ।
खुले केश सिरतैं सुमन, गिरहिँ भगहिँ तन अति श्रमित ॥

जिनकूँ जप, तप, ध्यान योगत पकरि न पावें ।
तिनकूँ जननी छरी लिये डर सहित भगावें ॥
देह थूल सुकुमार श्रमति जब जानी माता ।
स्वयं पकड़महँ आइ गये तब भवभयत्राता ॥
निजकरतैं हरि कर पकरि, बोली—च्यौं चोरी करी !
रोये आँखिनि मीड़ि प्रभु, तब जननी फेंकी छरी ॥

कसिकें पकरे श्याम दई मीठी-सी गारी।
हरिकूँ बाँधन हेतु कचनितैं डोरि निकारी॥
दयो लपेटा एक कमरमहँ बाँधन लागी।
द्वै अंगुल कम रही जेबरी दूसरि माँगी॥
पुनि द्वै अंगुर कम परी, पुनि बाँधी पुनि कम भई।
घरकी सब रस्सी चुकीं, हँसी मातु बिस्मित भई॥

चकित चकित ह्वै मातु लालको उदर निहारें।
पुनि पुनि पकरें पेट भयो का सभय विचारें॥
भयो स्वेद सब अङ्ग थके खुलि बाल गये सब॥
माला खिसकीं गिरे फूल हरि रीझि गये तब।
कृष्ण कृपा जिनपै भई, तिनिके कारज सँध गये।
श्याम नेह बश आपु ही, प्रेमपाशमहँ बँध गये॥

गोपी कीन्ही बिदा करै गृह कारज मैया।
ग्वाल बाल मिलि कहें—खेल कछु होवै भैया॥
दाम उदरमहँ कसी उलूखलमहँ सो बाँधी।
उलट्यो गाड़ी बनी बैल बनि प्रभु ने साधी॥
ग्वालबाल तिकि तिकि करें, हाँकें हरि खींचन लगे।
सम्मुख यमलार्जुन लखे, धनदपुत्र धनमद ठगे॥

बड़ो अटपटो पन्थ प्रेमको नहिं सब जानें।
जिनकूँ योगी यती जगन्मय जगपति मानें॥
तिनकूँ मैया पकरि बाँह मारै धमकावै।
पिटि पिटाइकें श्याम गोद वाहीकी आवै॥
जिनकी लीला ललित सुनि, सब जग आनँदमहँ भर्यो।
जगदीश्वर जिनि सुत बने, कौन सुकृति यशुमति कर्यो॥

दोहा—सूतकहें—ऋषिगन सुनहु, नंद यशोदा वृत्त।
पूर्वजन्ममें जो कर्‌यो, हरिहित चारु चरित्र ॥

छप्पय—नंद द्रोण द्विज हते धरा पत्नी सँग बनमहँ।
भिक्षापै निर्बाह करहिं धरि श्रीहरि मनमहँ ॥
करन परीक्षा विष्णु अतिथि द्विज बनि बन आये।
धरा कर्‌यो सत्कार मातु पितु विप्र बिठाये ॥
करी याचना अन्नकी, धरा अधिक चिंतित भई।
पति अभावमहँ अन्नहित, स्वयं बनिक्के घर गई ॥
बनिक अन्न घृत दयो रूपने जादू डारो।
लखि कुच करि संकेत मूल्य माँगत मतवारो ॥
सता प्रतिज्ञा करी काटि कुच दोऊ दीन्हें।
लै सामग्री आइ अतिथि पद बन्दन कीन्हें ॥
अतिथि बिष्णु बनि बर दयो, ममहित कुच काटे जननि।
पुत्र बनूँ तव स्तन पिऊँ, तू प्रकटै मम मातु बनि ॥
बसु बनि पुनि द्विज द्रोण भये व्रज नन्द गोपपति।
धरा यशोदा भई बने सुत कृष्ण जगतपति ॥
बाँधि उलूखल दये कृष्ण खींचें गाड़ी सम।
बाल बृषभ सम चलें श्याम शोभा अति अनुपम ॥
यमलार्जुनके मध्य हरि, गये उलूखल फँसि गयो।
खींच्यो बलतैं बाल प्रभु, गिर्‌यो बृक्ष अति रव भयो ॥
टूटत तरु अति सुघर देव-सुत प्रकट भये तहँ।
करत प्रकाशित दिशनि नम्र ह्वै आये हरि जहँ ॥
नलकूबर मणिग्रीव धनद-सुत बुद्धि गँवाई।
पायो नारद शाप भये तरु दोऊ भाई ॥
कृष्ण दरशतैं दुख कटे, विषय बासना हू जरी।
तनु पुलकित गद्‌गद गिरा, दामोदर बिनती करी ॥

यमलार्जुन–विनय

कृष्ण ! करुणामय कहलाओ, पार परमेश्वर पहुँचाओ ।
सबके तुम तनु प्रान हो, मन इन्द्रियके ईश ।
काल कालके सत्य तुम, जगनायक जगदीश ॥
सृष्टि लीलातें रचवाओ, पुण्यपथ प्रभुवर दरशाओ ॥१॥ पार परमे०

कैसे इन्द्रिय करि सकें, ग्रहन तुमहिं हे नाथ ।
पकरें कैसे असत् ये, भौतिक तनके हाथ ॥
बुद्धि,मन,अहं सबहिं हारे, हमें यदुनंदन अपनाओ ॥२॥ पार परमे०

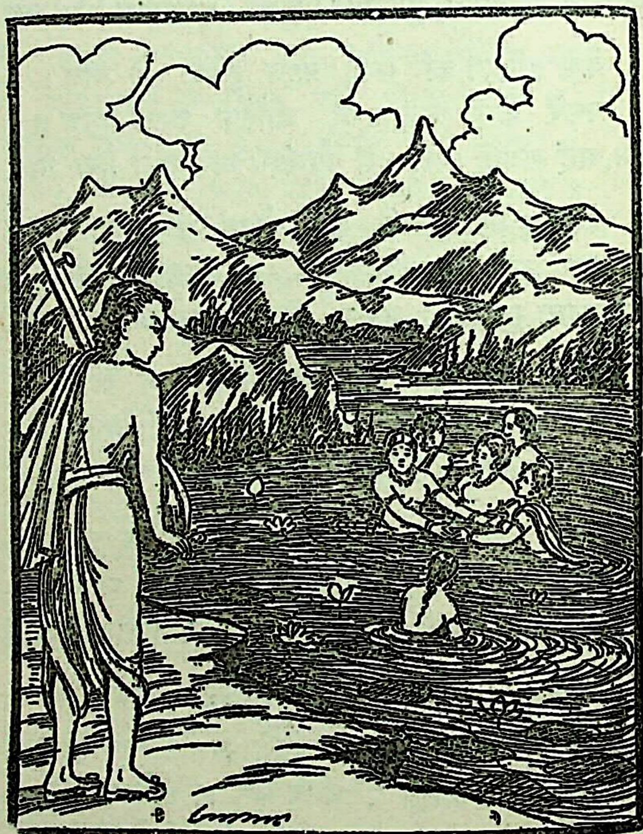
को तव महिमा कहि सके, वेदहु गये भुलाइ ।
स्वयं भये अवतीर्ण अब, व्रजमण्डलमें आइ ॥
परम मङ्गलमय सुखकारी, मातुकूँ लीला दिखलाओ ॥३॥ पार परमे०

नारदजीके शाप वश, भये वृत्त हम आइ ।
करे कृतारथ रूप यह, दामोदर दिखलाइ ॥
विनय हमरी है अघहारी ! मोह हियको हरि हटवाओ ॥४॥ पार परमे०

बानी गावै गुन सदा, कथा सुनें नित कान ।
कर परिचरियामें रहें, चित्त चरनके ध्यान ॥
नव सिरजगनिवास तुमकूँ ,संत दरशन नित करवाओ ॥५॥ पार परमे०

छप्पय—प्रभु प्रसन्न ह्वै परम प्रेम दुरलभ बर दीन्हों ।
आयसु हरिकी पाइ गमन निज पुर तिनि कीन्हों ॥
पूछें—शौनक सूत ! धनद सुत का अघ कीयो ।
क्यौं मुनि नारद शाप वृत्त बनिबेको दीयो ॥
हँसिकें बोले—सूतजी, भगवन् ! धनमद अति बिकट ।
तिहि मदमहँ मदमत्त बनि, बिहरहिं दोऊ सर निकट ॥

सङ्ग अपसरा वस्त्रहीन नंगे ह्वै न्हावें।
हरि गुन गावत परम रसिक नारद मुनि आवें॥
लखि मुनि युवती निकरि पहिन पट ऋषि सन्माने।
किंतु धनद-सुत मत्त नग्न ठाढ़े भौं ताने॥



शाप दयो मुनि तरु बनों, यमलार्जुन ते ह्वै गये।
पुनि द्वापरके अन्तमहँ, परसि प्रभुहिं पावन भये॥

दोहा—यह प्रसंगवश धनसुत-कथा कही अभिराम ।
प्रकृत कथा मुनिवर सुनो, चरित कर्यो जो श्याम ।।

छप्पय—वृक्ष पतन रव सुनत नन्द गोपादिक धाये ।
बँधे उलूखल कृष्ण करत क्रीड़ा तहँ पाये ।।
कहें परस्पर—गिरे वृक्ष नहिं आँधी पानी ।
बालनि सच सब कही बात काहू नहिं मानी ।।
गिरे दूधके दाँत नहिं, जिह छोटो सो छोकरा ।
तरु उखारि कैसे सके, कहें युवक अरु डोकरा ।।

बँधे विलोके श्याम नन्दबाबा ढिंग आये ।
दाम खोलि मुख चूमि प्रेमतैं हृदय लगाये ।।
बाबा बोले—वत्स ! गोद मैयाकी जा अब ।
मैया मारे मोइ न जाऊँ, बोले हरि तब ।।
यशुमति मन संताप अति, तब मम मति मारी गई ।
नहिं सुत आयो अब तलक, सुमिरि मातु व्याकुल भई ।।

साँझ भई पुनि श्याम मातुके हिय लपटाये ।
उमग्यो पुत्र सनेह नयनके नीर न्हवाये ।।
यों व्रजमहँ हरि नित्य नई ई धूम मचावें ।
साधारन शिशु सरिस हरिहिं युवती फुसलावें ।।
बेद बिदित बंदित जगत, भोरे शिशु सम बनि गये ।
जाके बशमहँ सब जगत, ते व्रजबासिनि बस भये ।।

कबहूँ नाचें नाच गीत कबहूँ वर गावें ।
मागें माखन कबहुँ कबहुँ हठि रार मचावें ।।
कबहूँ माँगें भीख भिखारी बेश बनाई ।
कबहूँ घर घर जाइ दिखावें स्वाँग कन्हाई ।।

कबहूँ आँगन लीपिकें, चौक पूरि ज्योनार करि ।
ब्याह करें दुलहा बनें, मोरपंख शिरमौर धरि ॥

काम बतावें मातु पिता ततछिन करि लावें ।
माँगें माता बस्तु दौरिकें ताहि उठावें ॥
बाट तराजू लाइ धरें आगे मैयाके ।
कपड़ा लावैं दौरि बड़े हलधर भैयाके ॥
धोवें पग नँदराय जब, लाइ खड़ाऊँ प्रभु धरें ।
भक्तबश्य श्रीजगतपति, सेवक सम कारज करें ॥

जगमहँ भटकै जीव प्रेम बिनु शान्ति न आवै ।
छिन भंगुर जग भोग भोगिके सुख नहिं पावै ॥
प्रेम धाम हैं श्याम हियेमहँ यदि बसि जावें ।
होवै जीव कृतार्थ दुःख संताप नसावें ॥
प्रेमपन्थ अति अटपटो, बिनु बोले दिन दिन बढ़ै ।
चाहै वह यह फेरि मुख, जाय रङ्ग गहरो चढ़ै ॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाह में माखनचोरी तथा दामोदर लीला नामक प्रथम अध्याय समाप्त ।

अथ नवमोऽध्यायः

(९)

व्रजमहँ काछिनि हती एक सुखिया हरिप्यारी ।
कृष्ण प्रेममहँ रहति सतत पगली मतवारी ॥
हरि हियकी सब जानि उपेक्षा भाव दिखावें ।
यों उत्कण्ठा तासु दिनिहिं दिन अधिक बढ़ावें ॥
जब अति उत्कण्ठा बढ़ी, सदय साँवरो ह्वै गयो ।
अभिलाषा पूरन करी, सुखियाकूँ अति सुख दयो ॥

नंदभवनके निकट 'लेउफल' सुखिया बोली ।
जानी अनुगत कृष्ण कृपाकी गठरी खोली ॥
पस भरि लाये अन्न दयो कर आगे कीये ।
सुखिया सब फल तुरत करनिमें हरिके दीये ॥
कृष्ण हाथ फलतैं भरे, हरि रतननि डलिया भरी ।
यों सुखिया सब श्यामकूँ, फल दैकें जगतैं तरी ॥

अति क्रीड़ा प्रिय कृष्ण ग्वाल बालनि सँग जावें ।
होहिं खेलमें मगन बुलावें मातु न आवें ॥
कहें मातु प्रिय बचन प्यार करिकें फुसलावें ॥
आवें भरि तनु धूरि लाइ पुनि मातु न्हवावें ॥
मैया परसै प्रेमतैं, बाबा सँग भोजन करें ।
कबहूँ लिपटैं प्रेमतैं, कबहूँ मातातैं लरें ॥

अति चंचल अति चपल गोदतैं उठि उठि भागैं।
निरखैं मैया भगत खड़ी ह्वै जामें आगैं॥
जननी दृष्टि बचाइ कृष्ण हौलेंतें सटकें।
ऊधम नव नित करैं जाइ पेड़नितें लटकें॥
बनमहँ बिहरत मुदितमन, नील पीत पट तन लसहिं।
ब्रजबासिनि सुख देहिं नित, श्याम राम गोकुल बसहिं॥

यमलार्जुनको पतन अशुभ अति गोपनि मान्यो।
नहीं निरापद ठौर शिशुनि हितकर नहिं जान्यो॥
पंचायत सब करहिं होहिँ उत्पात यहाँ अति।
नाना रूप बनाइ असुर इत आवें नित प्रति॥
तातें तजि गोकुल तुरत, श्रीवृन्दाबन चलहु सब।
भूमि सरस जल थल बिमल, बोले श्री उपनन्द तब॥

साधु साधु सब कहें कह्यो अनुमोदन सबनें।
बोले बूढ़े गोप—लख्यो बृन्दाबन हमनें॥
सबई तहाँ सुपास दूब, द्रुम, जल, बन, गिरिबर।
श्री यमुनाके निकट परम सुन्दर अति सुखकर॥
चलो आजई चलिङ्गे, निश्चय सब मिलिकें कह्यो।
सुनत बँधे बिस्तर तुरत, छकरनिमहँ सब धन भर्यो॥

तुरही बाजन लगी जोरि छकरा सब दीन्हें।
धनुष बान लै हाथ गोप कछु आगे कीन्हें॥
तिनके पीछे धेनु साँड़ बछरा सब जावें।
छकरनि गोपी चढ़ीं गीत गोबिँदके गावें॥
माता यशुमति रोहिनी, राम श्याम सँग रथ चढ़ीं।
ज्यों मन सँग इन्द्रिय चलहिं, त्यों हरि सँग गैया बढ़ीं॥

सुतनि गोदमहँ लिये मातु जावैं वृन्दाबन ।
मगमहँ निरखत श्याम वृक्ष, खग, मृग, बन, पशुगन ॥
कौतूहलके सहित मातुतैं पूछैं नटवर ।
मैया ! जे को रहैं कहाँ कित है इनको घर ॥
मैया प्यार दुलारतैं, इत उतकी बतियाँ कहैं ।
कहैं अटपटी बात जब, हँसि मुख फेरें चुप रहैं ॥

बृन्दाबनमहँ पहुँचि सबनिने डेरा डारो ।
कृष्णचन्द्र ह्वै उदित कर्‌यो नभ बन उजियारो ॥
वन, गिरि, तटकी छटा निरखिहरि अति सुख पायौ ।
वत्सपाल बनि मातु पिता मन मोद बढ़ायौ ॥
गोपवत्स गोवत्स,सँग, लिये बिविध कौतुक करें ।
मुरली मधुर बजाइकें, गावैं नाचें स्वर भरें ॥

पाई अपनी वेनु बिहँसि कर कमलनि धारी ।
बिना बताये लगे बजावन श्रीबनवारी ॥
मुरलीकी धुनि सुनी भये जड़ चेतन प्रमुदित ।
मनहुँ प्रिया रव सुनत प्रेष्ठ हिय पंकज बिकसित ॥
अधरामृत नितप्याइकें, पालि पोसि मोटी करी ।
बैरिनि बंशी बनि गई, व्रजबासिनिकी मति हरी ॥

बछरनि लावैं घेरि लकुट लै मुरलीधारी ।
नित प्रति बनमहँ जाइँ बजावैं बेनु बिहारी ॥
गोफिनमहँ धरि ढेल घुमावें तकिकें मारें ।
जावै मेरो दूरि मुदित सब ग्वाल पुकारें ॥
चरननि नूपुर बाँधिकें, नाचैं सैंन चलाइकें ।
चाईं माईं करि फिरैं, गिरैं रेतपै जाइकें ॥

ग्वालनि गाय बनाय साँड़ सम स्वयं रम्हामें।
बने वाल कछु ग्वाल साँड़ ढिँग गाइनि लामें॥
कबहूँ द्वै बनि साँड़ परस्पर टक्कर मारें।
कबहूँ जीतें श्याम कबहुँ बलदाऊ हारें॥
सारस मोर चकोर सम, बोली बोलें हँसि परें।
यों प्राकृत शिशु सरिस हरि, बाल सुलभ क्रीड़ा करें॥

बनमहँ बालनि सहित करें हरि हलधर खेला।
आयो तबई दुष्ट तहाँ इक दैत्य जरैला॥
बनिकें बछरा जाइ मिल्यो हरिके बछरनिमहँ।
समुझि गये हरि बलहिँ बतायो खल सैंननिमहँ॥
मति कछु जानत नाहिं जे, ऐसे भोरे बनि गये।
चितवत इत उत बालवत, चुपके खलतें सटि गये॥

पकरि पूँछ अरु पाँइँ कुहकुआ सरिस घुमायौ।
बछराको तजि रूप असुर तनु खल प्रकटायौ॥
कैथनि माड्यो दैत्य वृक्ष फल टूटि गिरे तब।
निरखि दैत्यकूँ ग्वाल बाल बोले हँसिकें सब॥
माड्यो सारो दुष्ट जिह, भलो कड्यो दुख हटि गयो।
बत्सासुर उद्धार लखि, देवनि अति विस्मय भयो॥

यों बनि बछरापाल लाल डोलें बन बनमहँ।
इक दिन ग्वालनि लख्यो बड़ो बक सोचें मनमहँ॥
है यह निश्चय असुर खड़ो मुख ऊपर कीये।
जब तक सोचें ग्वाल लीलि ग्वाने हरि लीये॥
गये कृष्ण बक बदनमहँ, निरखि ग्वाल व्याकुल भये।
तुरत दुष्टके कंठमहँ, पावक सम हरि ह्वै गये॥

सहन करि सक्यो नहीं उगल दीये खलने हरि।
मारन दौड्यो दुष्ट चोंचतैं तुरत कोप करि॥
हरि हँसि पकरी चोंच ग्वाल लखि अति हरषाये।
दयो बीचतैं फारि सुमन देवनि बरसाये॥
अति बिस्मित बालक भये, आलिङ्गन हरिको करें।
पत्र, पुष्प, फल, लाइकें, हरष सहित सम्मुख धरें॥

असुर मृतक हरि कुशल निरखि बालक हरषावें।
मनहुँ मृतक तनु प्रान आइ इन्द्रिय सुख पावें॥
लै बछरनिकूँ ग्वाल बाल वृन्दावन आये।
अति उत्सुक ह्वै वृत्त सबनि यशुमतिहिं सुनाये॥
बगुलासुरकी बात सुनि, सबकूँ अति बिस्मय भयो।
कहें गोप—मुनि गर्गने, सब भविष्य पहिलिहिं कह्यो॥

यह दुष्टनिकूँ मारि सबनिकूँ सुख अति देगो।
करै अलौकिक कर्म सुयश जिह जगमहँ लेगो॥
मारि न कोई सकै जिही असुरनिकूँ मारै।
जीतै सबकूँ सदा नहीं बैरिनितैं हारै॥
यों नित हरि बलरामकी, कहें सुने सोचें कथा।
रम्यो रहे मन उनहिँ महँ, होहि न सांसारिक व्यथा॥

खेलें बनमहँ चोर एक बालकहि बनावें।
अपर बाल सब भागि जाहि इत उत छिपि जावें॥
खोलै तब वह आँखि जाइ खोजै बालनिकूँ।
बनि जावें ते चोर खोजि छूवै वह जिनिकूँ॥
आँखमिचौनी खेल पुनि, खेलें पुल बन्धन करें।
कसि कछनी बैठक करें, ताल ठोकि कबहूँ लरें॥

कबहूँ सेन सजाइ बिजय करि गाड़ैं झन्डा ।
कबहूँ खेलें खेल भट्टू गुल्लीडंडा ॥
अन्धाथापी और मलूकाघोड़ा खनखन ।
कैकैडंडा चीलझपट्टा अटकनबटकन ॥
जा छप्पनके पेड़पै, कैइ कैइ दूनी कैइ ।
खेलें हरि सब मिलि कहें, श्रीकृष्णचन्द्रकी जैइ ॥

सोरठा—बनबिहँगनि सँग श्याम, बिहरें बन-बन बाल बनि ।
संग सखा बलराम, करहिँ चरित अनुपम रुचिर ॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें वृन्दावन आगमन वत्सा-
सुर बकासुर उद्धार नामक नवम अध्याय समाप्त ।
(मासिक पारायण उन्नीसवें दिन का विश्राम)



अथ दशमोऽध्यायः

[१०]

एक दिवसकी बात सुनहु हरि निश्चय कीन्हों।
काल्हि कलेऊ करें बनहिँ जिह आयसु दीन्हों॥
लड्डू, पूआ, खीरि, जलेबी, पेड़ा, पपड़ी।
हलुआ, मोहनथार, समौसे, फेंनी, रबड़ी॥
सब सामग्री साजिकें, श्याम सखनि सँग चलि दये
ग्वाल बाल सबई सजे, बन शोभा निरखत भये॥

मुख करि हरिकी ओर प्रेमतें बैठे आगे।
अब सब सुखतें बैठि हँसी कछु करिबे लागे॥
कोई बालक वस्त्र बस्रतें बाँधे चुपकें।
काहूकी लै छाक सखा कछु पेड़नि दुबकें॥
छींको लैं चम्पत करें, और औरकूँ देहिँ जब।
खिसिआवे रोवे सखा, खिलखिलाइ हँसि जाइँ तब॥

जो कनुआकूँ छुए बीर ताहीकूँ जानें।
पहिले जो छू लेइ बिजय ग्वाईकी मानें॥
करहिं अनुकरन भ्रमर सरिस स्वर गुन-गुन गावें।
नाचें खेलें हँसे बाँसुरी मधुर बजावें॥
नभमहँ कछू दिखाइकें, जिहका जिहका कहि बकें।
बोलें—छम्मक परि गई, कान भाद्रपदमह पकें॥

नरसिंहाको शब्द करें श्वाननि सँग भूकें।
सुनि कोकिलकी कूक ताहि सँग कोई कूकें॥
कोई बनिकें व्यास कथा बेदनिकी बाँचें।
कोई पट फैलाइ बिहँसि मोरनि सँग नाचें॥
कोई खग-छाया लखें, सँग सँग दौरें दूर तक।
हंसचाल अनुकरन करि, कोई पहुँचे प्रभु तलक॥

कोई बगुला बनें ध्यानको ढोंग बनावें।
कहि कहि बगुला भगत अन्य गोपाल चिढ़ावें॥
कोई बन्दर बनें चढ़ें तरु ताहि हिलावें।
कोई खों खों करें कपिनि लखि मुँह मटकावें॥
बकरी बकरा भेड़ बनि, चेंमें चेंमें कछु करें।
करि धुनि प्रतिधुनि सुनि शपैं, कोई ऊँचेतें गिरें॥

कोई मेढ़क बनें मलिन जलमहँ घुसि जावें।
कुदकि कुदकिकें चलें टर्र करि शब्द सुनावें॥
जलमहँ लखि प्रतिबिम्ब, हँसें इत उत भगि जावें।
लखि लखि लीला ललित लाल अति हिय हरषावें॥
भक्तनिके भगवान जो, ज्ञानिनिके जो ब्रह्म हरि।
कहें अज्ञ शिशु आज ते, ब्रज बिहरें नरबेष धरि॥

जिनकूँ ग्वाल गँवार खेल में खेलि हरावें।
तिनि ग्वालनिके भाग्य इन्द्र बिधि शम्भु सरावें॥
यों करि क्रीड़ा कृष्ण सबनिको चित्त चुरायो।
तबई तहँ अघ असुर बकी बक भाई आयो॥
बहिन बन्धु मेरे हने, सोचै खल जा श्यामने।
मारूँ गोपनिके सहित, अब अरि आयो सामने॥

यों करि निश्चय बन्यो असुर अजगर अतिभारी ।
मुख गिरि गुहा समान सड़क सम जीभ निकारी ॥
अधर धरापै धर्यो ओठ घन नभमहँ लाग्यो ।
बालनिके उर दृश्य निरखि कौतूहल जाग्यो ॥
उपमा अजगरतें करें, गिरिकी गुहा बताइकें ।
कोई कछु कहि कहि हँसैं, तुलना करें सिहाइकें ॥

बाल सुलभ चांचल्य कहें—जामैं घुसि जावें ।
होहि असुर बक सरिस मरै लखि सब सुख पावें ॥
यों कहि अहिमुख घुसे बजावत बालक तारी ।
पुनि बछरा घुसि गये भये चिन्तित बनवारी ॥
अन्तरयामी असुरकौ, जानि सकल छल बल गये ।
बालक बछरा बचें कस, मरै असुर सोचत भये ॥

नन्दनँदन सरबज्ञ सबनिके घटकी जानें ।
असुर अघासुर तिन्हें बन्धु- घाती रिपु मानें ॥
अघ मुख प्रविशे तुरत दयासागर बनवारी ।
सब सुर हाहाकार करें असुरनि सुख भारी ॥
अनुगत दासनिके निमित, सब कारज नटवर करहिँ ।
भक्त-चरन रज लोभतैं, नित पीछे पीछे फिरहिँ ॥

मुखमहँ हरिकूँ निरखि अघासुर अति हरषायौ ।
सुर मुनि चिन्तित लखे श्याम तनु तुरत बढ़ायौ ॥
स्वाँस रुकी स्वर रुद्ध नेत्र निकसे फाट्यो सिर ।
बछरा बाल जिवाइ करे अघ मुखतैं बाहर ॥
असुर बदनतैं ज्योति इक, दिब्य निकसि ठाढ़ी भई ।
मुखतैं हरि निकसे तबहिं, श्याम अंगमहँ मिलि गई ॥

अघ उद्धारैं निहारि अप्सरा सुर मुनि आये ।
नृत्य बाद्य संगीत श्यामकूँ मधुर सुनाये ॥
बेदपाठ द्विज करें देव जय शब्द उचारें ।
ब्रह्मलोक बिधि बैठि बाद्यकी बात विचारें ॥
होहि कहाँ चलिकें लखें, आनन्दोत्सव अवनिमहँ ।
तुरत हंस चढ़ि चलि दये, आये ब्रजमहँ कृष्ण जहँ ॥

यह कुमार बय चरित शिशुनि पौगण्ड- बयसमहँ ।
कह्यौ आइ ब्रज श्याम आजु अहि माड्यो बनमहँ ॥
शुकतें बोले भूप परीक्षित—प्रभु ! रुकि जाओ ।
गयो कहाँ इक बरस कृपा करि भेद बताओ ॥
कर्म दूसरे छिन कर्यो, ग्वाई छिन कहि सकहिं नहिं ।
कौतूहल मम हृदयमें, समाधान गुरुवर ! करहिं ॥

सुनि भूपति को प्रश्न हृदय शुकको भरि आयो ।
गद्गद बानी भई नीर नयननिमहँ छायो ।
कुपित सेहके सरिस पुलकि तनु श्वेद युक्त जब ।
भयो प्रेममहँ मगन इन्द्रियाँ शिथिल भईं सब ॥
उतरे लीला लोकतैं, कृष्ण कथा संकल्प करि ।
बाह्य दृष्टि जब कछु भई, बोले प्रभु छवि हृदय धरि ॥

इति श्रीभागवतचरितके पञ्चमाह में अघासुर उद्धार नामक दशम अध्याय समाप्त ।

एकादशोऽध्यायः

[११]

राजन् ! करि करि प्रश्न कथाकूँ नयी बनाओ ।
सुनहु सतत हरिचरित तबहुँ नहिँ नृपति अघाओ ॥
मन मनमोहनमाँहिँ लग्यो बानी गुन गावै ।
श्रवन कथा रस मत्त तिनहिँ कछु नाहिं सुहावै ॥
जार पुरुष ज्यों कामिनी, कथा सुनहिँ हिय बढ़त रस ।
बार बार सुनि तृप्त नहिँ, होवैं तुम हू रसिक अस ॥

राजन् ! अब हम गुह्य चरित अति ताहि सुनावें ।
भक्त शिष्य गुरु पाइ रहसहू नाहिं छिपावें ॥
करि अघको उद्धार तुरत हरि बाहर आये ।
बिस्मित गोपनि निरखि बिहँसि प्रभु बचन सुनाये ॥
यह अजगर अघ असुर है, समुझि घुसे गिरि गुहा तुम ।
चलो भयो सो भयो अब,बन भोजन मिलि करहिँ हम ॥

यह यमुनाको पुलिन बालुका कोमल कैसी ।
जैसी सुन्दर घास छटा हू अनुपम तैसी ॥
खिले सरनिमहँ कमल तरुनिपै पत्ती फुदकें ।
लागी भैया भूख उदरमहँ मूसे कुदकें ॥
हम सब पावें छाककूँ, पी पानी बछरा चरें ।
बैठो गोलाकार सब, प्रीति-भोज बनमहँ करें ॥

सुनि नटवरके बचन बाल बैठे सुनियमतैं।
छोटे छोटे प्रथम बड़े पुनि बैठे क्रमतैं॥
कमलकर्णिका आस पास फैले मानों दल।
सबने पत्तलि करीं पत्र बल्कल कोमल फल॥
पत्तलि परसी प्रेमतैं, प्रिय पदार्थ पावन लगे।
हँसत हँसावत ग्वाल सब, प्रेम सरसतामहँ पगे॥

नटवर गोपनि सहित करत भोजन बर बनमहँ।
मुरली पटमहँ कसी बेंत अरु सींग बगलमहँ॥
माखन दधि मधु भात हाथमहँ ग्रास सलोनों।
हँसत हँसतावत सतत सखनिकूँ सुख अति दीनों॥
विधि बिधानतैं मखनिमहँ, भाग गहहिँ जे नेमतैं।
ते ग्वालनि सँग बैठिकें, जूठो खावें प्रेमतैं॥

बिधिने लीला लखी मोह अति मनमहँ छायौ।
करूँ परीक्षा भाव चित्त चतुरानन आयौ॥
बछरा लये चुराइ छिपाये निज पुर जाकें।
पुनि बालनि लै गये भोजके थलपै आकें॥
सोचें—अब का करतु है, जिह यशुमति को छोहरा।
बछरनिकूँ ढूँढ़त फिरें, इत हरि गिरि गुह कंदरा॥

पुनि नहिँ निरखे बाल लाल बिधिकृत सब जान्यो।
कृष्ण कुपित नहिँ भये मोह मायाको मान्यो॥
होवै नहिँ विधि ग्वाल बाल बछरनि जननिनि दुख।
बालक बछरा बने बिष्णु सबकूँ देवैं सुख॥
शोभा, शील, स्वभाव, स्वर, नाम, रूप, बय, बेष; सब।
जैसे जितने जब हते, तितने तस हरि बने तब॥

बनिकें पालक ग्वाल पाल्य बछरा हरि बनिकें।
वृन्दाबनकी ओर चले प्रभु बनतैं चरिकें ॥
बछरा बालक मातु उठीं हियतें चिपटावें।
चूमें चाटें बदन प्यारतैं अंक बिठावें ॥
अशन, वसन, उबटन, शयन, करवावें सुत समुझिकें।
बाल बने बन जाहिं हरि, बछरनि लावें घेरिकें ॥

जैसी पहिले प्रीति कृष्णपै माँ यशुमतिकी।
तैसी ब्रजमहँ भई सुतनिपै सब गोपिनिकी ॥
बाढ़ै छिन छिन प्रेम बेलि सब मरम न जानें।
उमड़ै अति अनुराग ब्रह्मकूँ सब सुत मानें ॥
बरष माँहिं कछु दिन बचे, समुझे श्रीबलराम तब।
कृष्ण कहा माया रची, श्याम बतायो वृत्त सब ॥

भैया ! चढ़ि अज हन्स चारि मुखबारो आयो।
देख्यो मेरो खेलमाल सारो घबरायो ॥
लैकें बछरा ग्वाल बाल चोरीतैं भाग्यो।
जानि ताहि कंगाल न मैं फिरि पीछैं लाग्यो ॥
मैं बछरा बालक बन्यो, मेरो प्रेम स्वरूप है।
करैं प्रेम मोतैं सकल, भव तो अंधो कूप है ॥

समुझि रहस बल कृष्ण चरणमहँ प्रीति दृढ़ाई।
इत अज आये लौटि बुद्धि तिनकी चकराई ॥
ज्यों के त्यों सब लखे ग्वाल बछरा घबराये।
दौरि, गये तहँ लखे लौटि पुनि बनमहँ आये ॥
बछरा, बालक, बाँसुरी, बेत्र, निरखि सब रूप हरि।
निरखें इत उत बिकल बनि, तुरत हंसतैं अज उतरि ॥

सबई निरखे श्याम चतुर्भुज शोभासागर।
शंख, चक्र अरु गदा, पद्म धारें नटनागर॥
सबके सिरपै मुकुट कंठमहँ माला सोहैं।
विचरहिं अगनित कृष्ण भुवन-मोहन मन मोहैं॥
जीव चराचर मधुर स्वर, करहिं प्रार्थना वेष धरि।
सेवें काल स्वभाव गुण, पूजा अर्चा सविधि करि॥

अगनित निरखे कृष्ण पितामह मुनि-मन-रंजन।
सबई सत्य स्वरूप ज्ञानमय नित्य निरञ्जन॥
नित्यानन्द सरूप अगोचर अलख एकरस।
भासै जिनमें बिश्व चराचर अग जग सरबस॥
शङ्कर विष्णु असंख्य अज, लखि अज मन अति होत सुख।
निरखे ब्रह्मा विविध बिधि, दशमुख शतमुख सहसमुख॥

अहि शैयापै विष्णु निरन्तर सुखतें सोवें।
कमला पैर पलोटि प्रेमतैं श्रीमुख जोवें॥
निकसें बहु ब्रह्माण्ड श्वास प्रश्वासमाँहिँ नित।
जानें कितने लीन होहिं नित प्रबिसें अगनित॥
परमैश्वर्य निहारि अज, हक्के बक्के-से भये।
लाये बछरा वाल सब, नन्दनँदन पग परि गये॥

लकुट सरिस अज गिरे नयनतैं नीर बहावैं।
पुनि पुनि करें प्रनाम उठें पुनि पुनि परि जावें॥
रोमाञ्चित तनु भयो श्याम छबि सभय निहारें।
गद्‌गद बानी भई कष्टतैं बचन उचारें॥
कछु आवेग घट्यो जबहिं, मानो सोवततैं जगे।
करि नत मस्तक जोरि कर, बहुरि विनय करिबे लगे॥



ब्रह्मस्तुति

हे सजल मेघ सम हरि नटवर गिरिधारी।
घनश्याम ! करो अब अविनय क्षमा हमारी ॥
काननिमें कुंडल कनक मकर सम भ्राजें ।
लखि मुखकी शोभा कोटि सूर्य शशि लाजें ॥
शिर मोर मुकुटमहँ मिले कुटिल कच राजें ।
आनन सर सरसिज नयन मधुप मनु भ्राजें ॥
गरगुंजमाल बन बनमाल पँचरँगी प्यारी ॥१॥ घनश्याम०

सुकुमार पदनितें कठिन भूमिपै बिचरें ।
कर कौर शृङ्ग बंशी लकुटी लै बिहरें ॥
ब्रजकी रज अरु तृन धन्य गहकि पग पकरें ।
बरसावें नभतें सुमन नाथ जित निकरें
हौं करूँ विनय गिरिवर पीताम्बरधारी ॥२॥ घनश्याम०

जे भक्ति छोड़ि दुरबोध बोध हित धावैं ।
वे नहीं परमपद प्रभुजी कबहूँ पावैं ॥
जे नाम निरन्तर नित प्रति तुमरो गावैं ।
वे फेरि नहीं जग अन्धकूपमें आवैं ॥
अगनित पतितनिकी तुमने नाव उबारी ॥३॥ घनश्याम०

करि सकै गुननिकी गिनती को जग माहीं ।
शिव शेष शारदा वेद थके परि पार न पाहीं ॥
जे कृपा प्रतीच्छा करे पुरुष तरि जाहीं ।
तब कृपा छोड़ि दूसर उपाय जग नाहीं ॥
मायाने मोह्यो मोइ मदनमदहारी ॥ ४ ॥ घनश्याम०

कहँ हौं मायाको चेरो परिमित प्रानी ।
कहँ तुम अचिन्त्य अखिलेश वेद जिनि बानी ॥
हौं निजकूं कर्ता कहूँ परम अभिमानी ।
प्रति पल अगनित ब्रह्माण्ड रचौ अब जानी ॥
अपराध करै शिशु, छिमा करै महतारी ॥ ५ ॥ घनश्याम०

हौं पुत्र पिता तुम मेरे नाथ ! कहाओ ।
हौं डूबूं भवजलमाँहि कृपालु बचाओ ॥
भव ग्राह ग्रस्यो लै चक्रसुदरशन आओ ।
करिकें सेवक स्वीकार चरन लिपटाओ ॥
ब्रजमें बसि जाऊं बनि पशु, तरु, तृन, झारी ॥६॥०घनश्याम

ये धन्य धेनु व्रजवासी सब नर नारी।
कालिन्दी कोकिल कमल कुञ्ज बन क्यारी॥
पी दूध गरल सँग बकी पापिनी तारी।
पावैं फिरि गति का धेनु सकल महतारी॥
का दैकैं होवें उरिन दयालु विचारी॥ ७॥ घनश्याम०

ये राग रोष हैं चोर तबहिँ तक स्वामी।
जब तक न भक्त बनि भजै तुम्हें यह कामी॥
अवतार लेहिँ भक्तनि हित अन्तरयामी।
ते तरें भक्ति मारगके जे अनुगामी॥
तव बार बार पद बन्दौं हे बनवारी॥ ८॥ घनश्याम०

छप्पय—बहु विधि बिनती करी ब्रह्म निज लोक सिधाये।
तव बछरनिकूँ घेरि श्याम भोजन थल आये॥
मायावश सब भूलि कालकी जानी नहिँ गति।
निरखि कृष्णकूँ भये ग्वाल सबई प्रमुदित अति॥

बोले—कनुआ! च्यौं करी, देर कहाँ तक तू गयो?
तेरी सूँ हमने नहीं, एक कौर मुँहमें दयो॥

हरि हँसि भोजन कर्यो सबनि सँग लै व्रज आये।
समुझि आजके खेल सखनि व्रजमाँहिँ बताये॥
हरि माया वश जीव भूलि सब सुधि बुधि जावै।
जातैं होवे बन्ध ताहि हँसि हिये लगावै॥

एक कृष्ण पुनि बनि गये, ग्वाल बाल बछरा भये।
प्रेम पूर्बवत पुनि भयो; बिसरि भाव पहिले गये॥

देह आतमा समुझि जीव जगमाहीं भटक्यो।
मैं मेरीमहँ फँस्यो मोह घाटीमहँ अटक्यो॥
कृष्ण कृपा जब करें घड़ा माया को फूटै।
पावै प्रभुको प्रेम जाल जगको तब छूटै॥
कही अघासुर की कथा, मोह नाश अजकी सुखद।
पढ़ें सुनें जे प्रेमतें, कटे सकल तिनकी बिपद॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें ब्रह्म-मोहनाश नामक
ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।



अथ द्वादशोऽध्यायः

[१२]

अब जब कछु हरि बढ़े सखनि सँग गोपालन हित ।
गैयनि लै बन जाहिँ कह्यो बलदेव सहित चित ॥
कातिक शुकला बहुल अष्टमी जबई आई ।
लै गैयनि हरि चले सखा सँगमहँ बलभाई ॥
कुसुमित कानन अति सुखद, प्रविशि करहिँ क्रीड़ा तहाँ ।
खग मृग बिहरहिँ सुख सहित,अलि कमलनि गूँजें जहाँ ॥

कोमल किसलय अरुन बरन शाखातैं झुकिके ।
कृष्ण और बल-चरन छुएँ जनु वृक्ष सकुचिके ॥
भैया देखो करें सफल जीवन ये पादप ।
बोले बलतैं श्याम—कह्यो का इनने जप तप ॥
तुमहिँ अतिथि अनुपम समुझि, झुकि झुकि के स्वागत करहिँ ।
पत्र, पुष्प, फल, नम्र ह्वै, सब तव पद-तलमहँ धरहिँ ॥

अलिगन गुन गुन करें सुयश तुमरो जनु गावें ।
मुनि जन बेष छिपाइ भ्रमर बनि चरननि आवें ॥
अतिथि अलौकिक जानि प्रेमतें केकी नाचें ।
चकित चकित करि दृष्टि प्रणयरस हरिनी याचें ॥
कल कण्ठनितैं कोकिला, कूजि कूजि कौतुक करहिँ ।
रूप माधुरी तव सुखद, जीव नेत्र रंध्रनि भरहिँ ॥

धन्य धन्य तृन गुल्म लता पादप ये बनके।
पावें कर पद परस सफल जीवन ही इनके॥
विचरत निरखत तुमहिं धन्य ये खग, मृग अलिगन।
सरिता, पर्वत, पुलिन धन्य पावन वृन्दावन॥
लालायित नित श्री रहहिं, तव आलिंगन अति सरस।
ब्रज-बनिता बड़भागिनी, पावें तव हिय हिय परस॥

यों करि बलकी बिनय बननि बिहरें बनवारी।
शिशु सम क्रीड़ा करहिं सरस सुन्दर शुभ प्यारी॥
हंसनिकी चलि चालि कूजिकें हँसे हँसावें।
मोरनिके सँग नाचि सखनिकूँ श्याम रिझावें॥
धौरी धूमरि धूसरी, धेनुनिके लै नाम हरि।
टेरि बुलावें दूरितैं, छुएँ खुजावें प्यार करि॥

कबहूँ बलके करें पाद संवाहन स्वामी।
कबहूँ डरिकें भगें ग्वाल सँग अन्तरयामी॥
मल्लयुद्ध करि कबहुँ सखनिकूँ पकरि पछारें।
कबहूँ जावें जीति कबहुँ गोपनितें हारें।
ब्रज ऐश्वर्य भुलाइकें, त्रिभुवनपति हरि रमापति।
बाल सुलभ क्रीड़ा करहिं, सुख ब्रज-जीवनि देहिं अति॥

एक दिवस बन गये गोप बोले—सुनि कनुआँ।
बलुआ भैया सुनों आज मचल्यौ अति मनुआँ॥
पके तालकी गंध सबनिको चित्त चुरावै।
मनमहँ उठै उचंग जीभ पानी भरि लावै॥
पके पके फल परे परि, रहे धेनुकासुर तहाँ।
मारें पिछले पगनि खर, जो जावै प्रानो वहाँ॥

हरिहँसि बोले—चलो ताल फल सब मिलि खावें।
जो कछु बोले असुर मारिकें ताहि गिरावें॥
यों कहि बल अरु श्याम ताल बनमाँहिँ सिधाये।
पादप पकरि हिलाय तालफल बहुत गिराये॥
सुनत शब्द धेनुक असुर, आइ दुलत्ती झारिकें।
भग्यो फिर्‌यो बल पकरिकें, वृत्तनि फेंक्यो मारिकें॥

दोहा—शौनक मुनि पूछ्यो तबहिं, खर धेनुक को वृत्त।
कहन लगे तब सूतजी, ताको पूर्व चरित्र॥

छप्पय—असुर साहसिक बली युवक बलिसुत अति सुन्दर।
गयो एक दिन दैत्य गन्धमादन गिरि ऊपर॥
लखि तिलोत्तमा तहाँ कामसर आहत कीन्हों।
सोऊ व्याकुल भई साहसिक संगम दीन्हों॥
उभय गये गिरि गुहामें, करें काम—क्रीड़ा तहाँ।
दुर्वासा मुनि प्रथम ही, ध्यान मग्न बैठे जहाँ॥

उभय भये कामान्ध अत्रिसुत नहीं निहारे।
समुझि तिन्हें निर्लज्ज होहु खर बचन उचारे॥
सुरवनिता बनि बानसुता ऊषा धरनीपै।
सुनत शाप मुनि पैर परे बिलखैं करनीपै॥
पुनि मुनिवर ने वर दयो, कृष्ण कृपा सद्‌गति लही।
भये मुक्त हरि संगतैं, धन्य कथा धेनुक कही॥

इत धेनुक बध सुनत कुपित खर दौरे आये।
बन्धु विघाती राम श्यामपै बहुत रिस्याये॥
पकरें दोऊ टाँग खरनिकूँ मारि गिरावें।
मारि मारिकें फेंकि ताल तरुवरनि हिलावें॥

सकल कर्यो बन खर रहित, बृन्दावन हरि चलि दये।
आवत मुरलीधर सुने, नर नारी हरषित भये॥
साँझ समय श्री श्याम सखनि सँग सुखतैं आवत।
मन्द मन्द मुसकात मधुर स्वर बेनु बजावत॥
अलकनि पलकनि और कपोलनिकी झलकनिपै।
गोरज छाई मुकुट, पीतपट, लकुट, लटनिपै॥
करि प्रवेश ब्रजमहँ सकल, विरह ताप सबको हर्यो।
भोजन करि दाऊ सहित, श्याम शयन शय्या कर्यो॥

लिये ग्वाल अरु गाय गये यमुना तट ब्रजपति।
आज न सँग बलराम ग्रीष्म ऋतु घाम विकट अति॥
कालियह्रदके निकट प्यासतैं सब घबराये।
करि विषयुत जलपान ग्वाल गौ प्रान गँवाये॥
अमृतमयी लखि दृष्टितैं, जीवित प्रभुने सब करे।
करी कृपा करुनायतन, दुःख आश्रितनिके हरे॥

रमनक नामक द्वीप नाग सब वास करहिं जहँ।
बिष बलतैं उनमत्त नाग कालियहु रहै तहँ॥
गरुड़ आइ कछु खाइँ कछुनिकूँ मारि गिरावैं।
बिनतासुतको कृत्य निरखि अहि अति भय पावें॥
सब नागनि सम्मति करी, सन्धि गरुड़जीतैं करो।
रोकि जाति बिध्वंसकूँ, सब सर्पनिको भय हरो॥

अरुणानुज के निकट सर्प सब मिलिकें आये।
प्रति मावस बलि देहिं सबनि मृदु बचन सुनाये॥
हरिवाहनने बात अहिनिकी सब स्वीकारी।
पर्व पाइकें सर्प आइँ सब बारी बारी॥

कालिय अति बल वीर्य मद, युक्त भयो नहिँ देइ बलि ।
स्वयं गरुड़ बलि खाइकें, पहिले ही खल जाहिँ चलि ॥
गरुड़ कुपित अति भयो दुष्टकूँ दौरि दबायो ।
कालिय हू भिड़ि गयो बहुत विष वीर्य चलायो ॥
जब नहिं लाग्यो दाव भागि कालीदह आयो ।
सौभरि मुनिके शाप कवचतैं प्रान बचायो ।
रहै तहाँ विष बमन करि, जल अपेय सब करि दयो ।
मरहिँ अचर चर जीव सब, हरि कौतुक अद्भुत कियो ॥

चढ़े कदँमपै कृष्ण कूदि कालीदह माहीं ।
उठि उत्ताल तरंग उछलि जल तटनि डुबाहीं ॥
सागरमहँ जनु तरी करें डगमग त्यों नटवर ।
नीचे ऊपर उछरि करें क्रीड़ा विश्वम्भर ॥
निकरि भवनतैं अहि लख्यो, शिशु सुकुमार सुहावनो ।
कर, पद, सब अँग अति मृदुल, मुख प्यारो मनभावनो ॥

दहमहँ क्रीड़ा करै न कछु भय मनमहँ मानें ।
मेरो विष अति उग्र अज्ञ बालक नहिं जानें ॥
ऐसो मनमहँ सोचि क्रोध करि कालिय आयो ।
डसै दुष्ट करि कोप कृष्ण तनु अँग लपटायो ॥
अहि बन्धनमहँ श्यामकूँ, निरखि बाल व्याकुल भये ।
गौ बछरा अरु ग्वाल तहँ, मूर्छित सबरे ह्वै गये ॥

इत ब्रजमहँ उत्पात होहिं अति उग्र भयङ्कर ।
तन, मन, भू, आकाश सबनिमहँ उठे बवंडर ॥
आज बिना बल गयो श्याम बन गाय चरावन ।
नर नारी अति दुखित लगे सब बन बन खोजन ॥

ध्वज अकुश बज्रादितैं, चिन्हित पद पहिचानिकें।
पहुँचे कालियदह निकट, डरे मृतक सब जानिकें॥

लखि अहि अंगनि बँधे श्याम गोपिनि दुख दूनों।
भयो निरखि अति करुन दृश्य सबरो जग सूनों॥
करि करि हरिकी यादि दुखित होवें डकरावें।
दौरि दौरिकें मातु डूबिबे जलमहँ जावें॥
ह्वै मूर्छित सब गोप गन, गिरें परें दहमहँ धँसे।
बार बार बल बरजिकें, हरि लीला लखिकें हँसे॥

समुझे हरि सब दुखी सुनी बलदाऊ वानी।
कालियफनपै नृत्य करन नटवर मन ठानी॥
समुझि श्याम संकेत सुमन सुरगन बरसावें।
बीणा पणव बजाइ तालमहँ ताल मिलावें॥
मधुर मधुर बीणा बजहिं, नाचें नटवर फननिपैं।
जो न नवें रौंदें तिनहिं, चरन चलावें सबनिपै॥

बहत मुखनितैं रक्त भयो कालिय मूर्छित तब।
छिन्न भिन्न ह्वै गये नागफण छत्ररूप सब॥
अनत शरन नहिं निरखि शरन हरिकी अहि आयो।
अखिल भुवनपति पाद पदुममहँ चित्त लगायो॥
पत्नी सब ही नागकीं, आईं पतिकूँ बिकल लखि।
शिशु सम्मुख करि नयन भरि, श्रीहरितैं बोली बिलखि॥

दोहा—दमन दुष्ट अवतार तव, शत्रु पुत्र सम दृष्टि।
प्रायश्चित हित दंड दैं, है सब तुमरी सृष्टि॥

नागपत्नी–स्तुति

नाथ ! तव दण्ड ज्ञानको हेतु, देवको कोप परम वरदान ।
नित्य अहि उगिलत विष करि क्रोध, मर्दि फन मेंट्यो मोहन मान ॥
कह्यो जाने का जपतप योग, रीझि दीये घर दरशन आइ ।
चरन दरशन दुरलभ जगमाँहिँ, धरे सिर सो हरि आपु रिस्याइ ॥

चरनरज इच्छुक तुमरे भक्त, स्वरग अपवरग देहिँ ठुकराइ ।
रह्यो अब कौन कृत्य अवशेष, धूरि पग धरी शीश अकुलाइ ॥
करें हम चरननिमाँहिँ प्रनाम, बने गोपाल आइ ब्रजमाँहिँ ।
आपु हैं साक्षी सत चित रूप, नित्य अज बेद भेद नहिँ पाहिँ ॥

अस्ति अरु नास्ति आपु ही थूल, सूक्ष्म सरवज्ञ प्रेमके धाम ।
प्रकृतितें परे परावर श्याम, करें पुनि पुनि पद पदुम प्रनाम ॥
आपु ही संकरषन प्रद्युम्न, आपु ही वासुदेव अनिरुद्ध ।
आपु ही यदुपति जगपति ईश, आपु ही नित्य शुद्ध अवरुद्ध ॥

आपु निष्क्रिय प्रपञ्चतें परे, तऊ जग रचें कालके काल ।
दये दरशन धरि मनहर वेष, बने ब्रज ग्वाल बाल नँदलाल ॥
प्रजा जो करै प्रथम अपराध, छिमा कर देवें प्रभु भूपाल ।
प्रानको देवें दान दयालु, शरन आईं हम लैकें बाल ॥

दयाकी अधिक पात्रहैं नारि, दीन अति अबला हम सुकुमारि ।
जानि सेवक अपनावें नाथ, सकल अविनय अपराध बिसारि ॥
देर नहिं कीजे राधारमन, शरनमें राखें अशरनशरन ।
निहारें नेह सहित गिरिधरन, गहे दुखहरन सुखद तव चरन ॥

छप्पय—हम सबके पति प्राण प्राणपति भिक्षा दीजें।
हैं अबला भयभीत अभय अखिलेश्वर कीजे॥
नाग बहुनिकी विनय करुन स्वर मुरलीधर सुनि।
कर्यो न पादप्रहार फननिपै नटनागर पुनि॥
नाग तज्यो तब सो कहे, नाथ ! तुमहिं सब कछु करो।
तुमहीं डारो जगतमहँ, जीव विपति तुमहीं हरो॥

सुनि बोले घनश्याम—यहाँतैं अहि तुम जाओ।
अब स्वदेशमहँ रहो सदा मेरे गुन गाओ॥
मम पद-अङ्कित शीश गरुड़ लखि ढिँग नहिं आवै।
कालियदहमहँ न्हाय सुकृत करि नर सुख पावै॥
कालिय दह अरु कृष्णको, अति पावन सुखकर चरित।
रहहिँ अभय ते अहिनितैं, पढ़हिँ सुनहिँ श्रद्धा सहित॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें धेनुकमोक्ष तथा
कालियदमन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

[१३]

दिव्य बस्त्र, मणि, माल पहिरि हरि दहतें निकसे।
मनहुँ उदधिमहँ नील सरोरुह मणियुत बिकसे॥
मृतक देह जनु प्राण लौटिकें फिरतें आये।
त्यों उठि सबने प्रेम सहित हरि हृदय लगाये॥
आलिङ्गन पुनि पुनि करें, दये दान प्रमुदित भये।
भूखे प्यासे ग्वाल गौ, ग्वा दिन तटपै बसि गये॥

शीतल मंद सुगन्ध पवन बालू अति कोमल।
सोये आधी राति उठी बनमहँ दावानल॥
देखि अगिनिकी लपट गोप सबरे घबराये।
दीन दुखी अति भये शरन श्रीहरिकी आये॥
ब्रजबासिनिकूँ सभय लखि, हँसि मोहन ठाढ़े भये।
नयन मुँदाये सबनिपै, तुरत अगिनि सब पी गये॥

करि कालियं उद्धार प्रात आये वृन्दाबन।
नित नित जावें श्याम सबल बन धेनु चरावन॥
मोर मुकुट सिर धारि गले बैजन्ती माला।
बनि ठनि बनकूँ जाहिं करें क्रीड़ा नँदलाला॥
दादुर, केकी, हंस, अहि, चाल चलें चंचल चपल।
समर करहिं नृप बनि कबहुँ, करहिं खेल नित नव नवल॥

घुड़चढ्ढीको खेल होहि बालक बोलें सब।
दलपति बनि बल श्याम उभय दल बँटे ग्वाल तब ॥
शुभ अवसर लखि असुर गोप बनिकें तहँ आयौ।
प्रभु प्रलम्ब पहिचान पत्त निज माँहिँ मिलायौ ॥
हारे हरि निज दल सहित, जीते बल आगे बढ़े।
श्रीदामा हरिपै चढ़्यो, बल प्रलम्ब ऊपर चढ़े ॥

श्रीदामाकूँ लिये श्याम निरखें मुरि मुरिकें।
बलकूँ लीये असुर बेगतैं चले उछरिके ॥
हँसि श्रीदामा कहै—हमारो घोड़ा अड़ियल।
बलदाऊको भगे देखिबे महँ जो सड़ियल ॥
संकर्षनकूँ लै असुर, दाईतैं आगे बढ़्यो।
गोप रूप तजि रूप निज, धारन करि नभमहँ उड़्यो ॥

अंजन परबत सरिस उड़त नभमहँ जनु सितघन।
प्रथम डरे बलदेव फेरि सम्हरे संकरषन ॥
मस्तक मुक्का मारि असुरके सिरकूँ फाड़्यो ॥
यों प्रलम्बकूँ तुरत रोहनीनन्दन मार्‌यो ॥
ग्वालबाल सब आइकें, साधुबाद बलकूँ दयो।
लखि बल द्वारा असुर बध, अति विस्मय सबकूँ भयो ॥

पुनि भाण्डीरक निकट आइ खेलें सब बालक।
गैयाँ निकसी दूरि खेलमहँ तन्मय पालक ॥
आई पुनि जब यादि ढूढ़िबे गैयनि भागे।
दावानलकूँ देखि ग्वाल सब रोमन लागे ॥
विपद सघन बन मूँजके, दावानलतैं सब जरे।
डकरावें फँसि धेनु तहँ, ग्वाल लपट लखि अति डरे ॥

रक्षा अनत न समुझि शरन माधवकी आये।
सभय शब्द सुनि श्याम अभय बर वचन सुनाये॥
मींचो तुम सब आँखि सुनत मीचीं सब गोपनि।
दावानल करि पान कहें हरि—निरखो गैयनि॥
भाण्डीरक नीचे निरखि, सकुशल गैयनिके सहित।
भये सुखी पुनि चलि दये, लै गैयनि व्रजकूँ तुरत॥
निरखे आवत श्याम हृदय गोपिनिके हरषे।
गीले भये कपोल श्याम-घन रस जनु बरसे॥
पल छिन जिन बिनु समय कोटि बरसनि सम बीत्यो।
श्याम दीठितैं दीठि मिली सब जग जनु जीत्यो॥
मुरलीको रव श्रवन सुनि, कुंचित कच पट पीत बर।
अँग-अँग लखि पुलकित भये, नटवरकी छबि अति सुघर॥
दोहा—वेनुगीतकी शुभ कथा, मेंटै सब संताप।
मुनिवर सुखमय सरस अति, सुनहिं हुलसि हिय आप॥
छप्पय—सुखद शरदको समय सरित सर स्वच्छ भये सब।
गो गोपाल समेत श्याम प्रबिशे बनमहँ तब॥
सघन सुभग द्रुम सुमन सहित कोमल पल्लवयुत।
शुक पिक केका आदि उड़ैं खग जिनपै इत उत॥
शारदीय बिकसे कमल, प्रकृति बधू सब बिधि सजी।
हिय मनसिजकूँ उदय करि, तब मोहन मुरली बजी॥
श्रवन शबद सुनि रहीं ठगी-सी सब व्रजनारी।
कछु गुन बरनन करें बधुनि मन बात बिचारी॥
कर्यो कछुक आरम्भ यादि मोहनकी आई।
तब चित चंचल भयो देहकी सुरति भुलाई॥
अपर सम्हरि बोली—अली, मुरली अधरामृत भरहिं।
पुनि झुकि फँकें नँदनँदन, छिद्रनितैं बितरित करहिं॥

अपर कहे—जगमाँहिं सफल जीवन ही उनके।
कृष्ण मुखामृत पान करें नित लोचन जिनके॥
आवत धेनु चराइ सखनि सँग बेनु बजावत।
सुषमा श्याम सिहाइ लुटावत सुख सरसावत॥
मुरली अधरनिपै धरें, इत उत निरखत दृग चपल।
चोट करत कछु गाइकें, बेनु माधुरी अति प्रबल॥

एक कहे—बलराम श्याम दोऊ ही नटवर।
रंग भूमि अति सुघर सरस बृन्दाबन सुखकर॥
नित नव अभिनय करें ग्वाल बालनि सँग आवें।
किसलय नूतन सुमन धातुतैं बेष बनावें॥
स्वर सब मुरलीमहँ भरहिं, नाचें गावें हँसि परें।
नील पीत पट धारिकें, धेनुनि लै कौतुक करें॥

बेनु रेनु अति धन्य श्याम अँगमहँ जो चिपटैं।
बेनु अधरपै रहै रेनु सब अंगनि लिपटैं॥
वेनु बाँसकी सुता रेनु धरनीकी दुहिता।
पुत्रिनि भागि सराहि, मातु दोउनिकी मुदिता॥
यद्यपि ब्रज-रजके निमित, लालायित सुरगन रहहिँ।
तदपि बेनुकूँ ही परम, भाग्यवती हम सब कहहिँ॥

जा मुरलीने कर्यो कौन तप श्याम रिझाये।
मुरलीधर जिहि हेतु जगत घनश्याम कहाये॥
अधरनि शय्यामाँहिँ बेनुकूँ बिहँसि सुआवें।
हौलें हौलें कमल करनितैं चरन दबावें॥
करें बायु मुखकमलतैं, एक पैर ठाढ़े रहें।
प्राननि प्यारी मुरलिका, मैयातैं नित हरि कहें॥

लखि बंशी सौभाग्य बंशकुल अति सुख पावैं।
सरिता धाई सरिस रोम जनु कमल खिलावैं॥
पादप प्रमुदित होहिँ फूलि जावें बन उपबन।
निज दुहिताके करें गान गुन गरजि गरजि घन॥
मदधारा तरु बाँसके, आनन्दाश्रु बहाहिँ जनु।
बृद्धनि कुलमहँ भक्त लखि, बहे नयन जल पुलकि तनु॥

यह बृन्दावन धन्य धराको धन जनु अनुपम।
चरननि नूपुर धारि चलें हरि जापै छमछम॥
बेनु बजावत श्याम मोर समुझें जनु घनरव।
गरजि रहे हिय जानि मत्त ह्वै नृत्य करें सब॥
मोहन मुरली मधुर सुनि, नाचें केकी तालमहँ।
हम सब विलपति दिवस निशि, फँसी निठुरके जालमहँ॥

ह्वै त्रिभङ्ग दै फूँक बजावें बेनु बिहारी।
बंशी बंसी बनी फँसाईं सब व्रजनारी॥
मृगी पतिनि सँग सुनत तुरत जड़वत बनि जावें।
प्रनय कटाक्ष चलाय श्याम प्रति भक्ति दिखावैं॥
चढ़ि बिमान सुनि बेनु धुनि, सुरनि सहित सुर सुन्दरीं।
भईं बिबश नीवीखिसीं, शिथिल केश माला गिरीं॥

चरत चरत तृन धेनु सुनीं मादक मुरली धुनि।
श्रवनपुटनितैं पान करैं हरषित ह्वै पुनि पुनि॥
नयननि नीर बहाइ हृदयमहँ छबि ले जावैं।
आलिङ्गन करि होहिँ सुखी सुधि तन बिसरावैं॥
बछरा मुखमहँ कौर धरि, ज्योंके त्यों ठाढ़े रहें।
झाग गिरें मोती सरिस, धुनि प्रवाहमहँ सब बहें॥

सखि ! इन बिहँगनि लखो बने मौनी बाबा सनु ।
अपलक निरखत रहत करत साधक त्राटक जनु ॥
बैठि तरुनिकी डार सुनें बंशी धुनि नित प्रति ।
हम लालायित रहें रूप रसकी प्यासी अति ॥
बड़भागी सरिता सकल, भुज तरङ्गतें सुमन धरि ।
आलिङ्गन हियमें करहिँ, रूप माधुरी नयन भरि ॥

घोर घाममहँ श्याम निरखि उमड़ें घुमड़ें घन ।
फुलझरियाँ बरसाइ करें छतरी छाया तन ॥
कुच कुंकुमकी कीच सने पग बन बिहरें हरि ।
दूबनिपै लगि जाइँ बनचरिनि हृदय जाय भरि ॥
हिय, मुख, कुच कुंकुम मलें, प्रेम व्यथा मेटें अलीं ।
स्वर्ग सराहें सुरवधू, हमतें तो भीलिनि भलीं ॥

गिरि गोवरधन धन्य श्रेष्ठ सब हरि भगतनितैं ।
जापै श्रीहरि फिरैं नित्य नंगे चरननितैं ॥
हरषें हियमहँ निरखि ग्वाल गैयनि सँग नटवर ।
दै तृन, जल, फल, मूल करै सत्कार निरन्तर ॥
हरि मुरलीकी तान सुनि, होहिँ अचर चर चर अचर ।
पान करहिँ बेसुधि बनहिँ बेनुमाधुरी परसपर ॥

दोहा—प्रिय मुरलीकी माधुरी, ब्रजवनिता करि पान ।
मदमाती बनि बकहिं नित, करहिँ न कुलकी कान ॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें दावानल पान, प्रलम्बासुर मोक्ष तथा वेणुगीत नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।

[मासिक पारायण बीसवें दिन का बिश्राम]

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

[१४]

कहें सूत—मुनि! सुनहु कुमारिनिकी लीला अब।
कृष्ण प्रेममहँ पगीं करें मिलि व्रत जप तप सब॥
व्रत कातिकको करहिँ नियमतैं जमुना न्हावें।
न्हाय बालुकामयी भगवती मूर्ति बनावें॥
माला चंदन धूप बर, अक्षत दल ताम्बूल फल।
पूजा सब बिधिवत करहिँ, अरपि अन्न सुस्वादु जल॥

करि पूजा सब बिनय करें दुर्गे! जगदम्बे।
नँदनंदन पति होहिँ देहु बर बरदे! अम्बे॥
यों हबिष्य करि असन नियम व्रतके सब साधें।
श्रद्धा भक्ति समेत भगवतीकूँ आराधें॥
सुखद सरस लीला करी, प्रेम निरखि निष्कपट हरि।
अपनाईं चिरसंगिनी, सब दोषनिकूँ दूरि करि॥

पट यमुनातट धरें न्हाय नित नंगी जलमहँ।
करन कृतारथ कृष्ण गये छलतैं तिहि थलमहँ॥
जल बिहार मिलि करें उलीचें सलिल परस्पर।
लै सबके पट चढ़े कदँबपै नागर नटवर॥
संग सखनिके हँसत हरि, धरि अधरनिपै बाँसुरी।
डरति लजति थर थर कँपति, सब सुकुमारी सुन्दरी॥

सब बोलीं ब्रजबाल—लाल मति पाप कमाओ।
हैं हम नंगी नारि न ऐसी हँसी उड़ाओ॥
कँपति नीरमहँ खड़ीं दया हम सबपै कीजे।
उतरि कदँवते कुँवर बसन हम सबके दीजे॥
कहें कृष्ण—जलतैं निकरि, अपने अपने लेउ पट।
सुमुखि! सुनहु साखी सखा, करहुँ कबहुँ नहि छलकपट॥

सुनी श्यामकी सरस रहसमय अनुपम बानी।
एक एककी ओर निरखि मनमहँ मुसकानी॥
पुनि बोलीं—घनश्याम! निपट हम दासी तुमरी।
अरपन सरबसु करें लाज लेओ मत हमरी॥
कहहिं श्याम—सुन्दरि! सुनहु, यदि दासी तो क्यौं डरो।
जैसो जो कुछ कहहुँ हौं, तुम तैसो निर्भय करो॥

जानि विवशता निकरि बारितैं बाला आईं।
गुह्य अंग कर ढाँकि सहमि सबरीं सकुचाईं॥
हरि बोले—अपराध बरुनको कीयो तुम सब।
न्हाईं नंगी करहु विनय करपुट सिर धरि अब॥
निजव्रतकूँ खंडित समुझि, धम भीरु सब डरि गईं।
पाप प्रनाशक प्रभुचरन, कमल माँहिं प्रनमत भईं॥

प्रभु प्रसन्न ह्वै गये तुरत पट सबके दीये।
पाइ बसन प्रिय परस पहिन निज निज तिनि लीये॥
प्रेम विबश बनि गईं सकुचिकें श्याम निहारें।
पूजन चाहें चरन न मुखतैं बचन उचारें॥
जानि मनोगत भाव हरि, बोले—बाला डरहु मति।
शरद निशिनिमहँ रमन मम, संग करोगी सुखद अति॥

सुनत श्याम बर बचन भयो सुखदुख सँग मनमहँ ।
हरि आयसु सिरधारि चलीं सब हठवश ब्रजमहँ ॥
आइ नियम व्रत भूलि प्रतीक्षा करहिं सदाहीं ।
कब मनमोहन मोद भरें सबकें मनमाहीं ॥
इत ब्रजबाला ब्रज गईं, श्याम सखनि सँग बन गये ।
निरखि सफल पुष्पित द्रुमनि, तिनहिं संत समुभ्रत भये ॥

कहें सखनितैं श्याम—बृक्ष ये अति उपकारी ।
घाम, वायु, जल सहहिं करहिं परहित नित भारी ॥
सबई इनकी वस्तु काम सबके ही आवें ।
इन ढिंग अरथी आइँ बिमुख कबहूँ नहिं जावें ॥
छाया ईंधन कोयला, पत्र, पुष्प, फल फूल दल ।
साधत सबके काज नित, जीवन इनको ई सफल ॥

गोप कहें सब—कल्पवृक्ष सम तू उपकारी ।
भैया ! जैसे बने मेंटि तू विपति हमारी ॥
आज लगी अति भूख छाक अब तक नहिं आई ।
सुनि बालनिके बचन बिहँसि बोले बलभाई ॥
सत्र आङ्गिरस करहिं द्विज, जाओ मखशाला तुरत ॥
करो याचना अन्नकी, सब बिनम्र ह्वैके प्रनत ॥

हरि आयुस सब पाइ गये बिप्रनि ढिंग बालक ।
कहें—सुनहु द्विज ! निकट कृष्ण आये पशुपालक ॥
होहि अन्न कछु देहु खाइँ ते भूख बुझावें ।
यज्ञ शेष चरु पाइ ग्वाल सब तुमहिं सरावें ॥
करी न नाहीं नहिं दयो, मौनी सब द्विज बनि गये ।
लौटि सखनि हरितैं कही, नहिं निराश नटवर भये ॥

बोले—अबके जाउ विप्रपत्निनिके ढिँग तुम।
अन्न देहिं ते अवसि स्वादतैं खावैं सब हम॥
सुनि बोले गोपाल—यार! च्यौं हँसी करावै।
च्यौं उन कृपननि नारि निकट अब हमें पठावै॥
नँदनन्दन हँसिके कहें, दूध बैल देवै नहीं।
लात दुधारहु गायकी, खाइ मनुज लेवे नहीं॥

चले फेरि सब ग्वाल गये द्विजपत्निनिपाहीं।
हरिकी सबई बात बिनयतैं तिनिहिं सुनाई॥
अति प्रसन्न सुनि भई धन्य निज जीवन जान्यो।
आज होहिँ हरि दरश सुदिन सबने अति मान्यो॥
मीठे, खट्टे, नमकयुत, कटुक, कसैले, चरपरे।
अति उज्वल बर थाल सब, षडरस व्यञ्जनतैं भरे॥

लै व्यञ्जन चलि दई निहारे आगे नटवर।
छैल चिकनिया बने सजे शोभित अति सुखकर॥
द्विजपत्निनि लखि हँसे कहें हे—भामिनि! आओ।
आई दरशन हेतु करे दरशन अब जाओ॥
सुनि अप्रिय अच्युत बचन, बोलीं-तुम प्रिय शिरोमनि।
प्रथम बुलावत खींचिके, दुतकारो पुनि कठिन बनि॥

पुनि बोले घनश्याम-सुमुखि! मखशाला जाओ।
यज्ञ-काज करि सतत चित्त मम चरन लगाओ॥
हृदय हृदयतैं मिले एकता मनके माँहीं।
अङ्गसङ्ग अनुराग प्रीतिको कारन नाहीं॥
हरि आयसु सुनि मन तहाँ, धरि तनतैं मखमहँ गई।
दरश श्यामके पाइके, धन्य बिप्रपत्नी भई॥

एक जाइ नहिं सकी रोकि निज पतिने लीन्हीं।
करी तयारी चली बाँधि रस्सीतैं दीन्हीं॥
दरशनमहँ व्यवधान पर्‌यो अतिशय घबराई।
श्याम-रूप हिय धारि त्यागि तनु स्वर्ग सिधाई॥
मन मनमोहनके निकट, तन मखशालामहँ पर्‌यो।
प्रेम प्रबलताने यहाँ, अति अद्‌भुत कौतुक कर्‌यो॥

इत सब आईं लौटि द्विजनि अति प्रेम दिखायो।
यज्ञ-काज लै संग पूर्ण विधि सहित करायो॥
विप्रनि कोहू हृदय शुद्ध हरिने करि दीन्हों।
सबने पश्चात्ताप कृत्य अपनेपै कीन्हों॥
ये अबलाई धन्य हैं, हाय! अभागे हम रहे।
आये प्रभु पूजे नहीं, कठिन बचन उलटे कहे॥

करुनासागर कृष्ण कबहुँ तो कृपा करिङ्गे।
मलिन बासना दुःख शोक आसक्ति हरिङ्गे॥
माया मोहित जीव करम मारगमहँ भटकैं।
छुद्र स्वर्ग सुख हेतु अनलमहँ सिर नित पटकैं॥
नंदनँदन! हम अधम अति, अधम उधारन! नाथ तुम।
करहु छिमा अपराध प्रभु! तब चरननिकी शरन हम॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाह में वस्त्रापहरण तथा विप्रपत्नी प्रसाद नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

[१५]

दै द्विजपत्निनि दरश दयानिधि ब्रज पुनि आये।
बसि बृन्दाबन नंदनँदन बहु चरित दिखाये॥
एक दिवस हरि लखे गोप इततें उत जावैं।
जौ, तिल, चाँवर, घीउ सबहिं घर-घरतैं लावैं॥
बाबा ! का उत्सव करो, प्रभु पूछें ब्रजराजतैं।
घूमधाम अति मचि रही, होवेगो का आजतैं॥

तब बोले ब्रजराज—इन्द्रकी पूजा भैया।
जो बरसावैं नीर होहिं तृन खावैं गैया॥
जल ही जीवन कह्यो इन्द्र हैं जीवनदाता।
त्रिभुवनपति सर्वेश स्वर्गपति विष्णु विधाता॥
नंद वचन सुठि सरल सुनि, हँसि बोले ब्रजचन्द तब।
जड़ चेतन चर अचर जग, पिता ! कर्मबश भ्रमहिं सब॥

जीव कर्मबश होहि कर्मबश ही मर जावै।
करे शुभाशुभ कर्म दुःख सुख तैसो पावै॥
बँधे कर्ममहँ जीव इन्द्र का करै बिचारो।
तैसो तब तनु मिले कर्म जस होहि हमारो॥
कोउ न सुख दुख दै सके, सबतैं कर्म बिशिष्ठ है।
जाकी जातैं जीविका, चले तासु सो इष्ट है॥

बिप्र बेदतें करें जीविका छत्रिय महितें।
बैश्य बनिज कृषि धेनु ब्याजके मिले धनहितें॥
करिकें सेवा शूद्र द्विजनिकी बृत्ति चलावें।
जो स्वधर्ममहँ रहें अन्तमहँ सद्गति पावें॥
देहिं घास, जल, मूल, फल, गोप इष्ट गिरिराज हैं।
पूजो गिरिवर धेनु द्विज, पूरन सब ही काज हैं॥

पूरी छुन छुन छनें कचौरी खस्ता सुन्दर।
रबड़ी लच्छेदार खीर केसरिया सुखकर॥
हलुआ मोहनथार जलेबी पेरा मठरी।
टिकिया पूआ बड़े सोंठ पापर अरु पपरी॥
व्यंजन सब सुन्दर बनें, दाल, भात, रोटी, कढ़ी।
साग रायते बिबिध बिधि, उड़द मूँग आलू बड़ी॥

व्यंजन सरस बनाइ शैलकूँ भोग लगाओ।
भोजन द्विजनि कराइ प्रेमतें माल उड़ाओ॥
पावें सब परसाद महोत्सव मधुर मनावें।
गिरि परिकम्मा करें गीत गोपी मिलि गावें॥
मेरी तो सम्मति जिही, जिह मख मम मतिमहँ खरो।
सुनि सब बोले गोप तब, कृष्ण कहे सोई करो॥

त्यागि इन्द्र मख गोप करें पूजा गिरिवर की।
भई बिप्र, गिरि, धेनु यज्ञमहँ सम्मति सबकी॥
लागे छप्पन भोग श्याम गोबरधन बनिकें।
करि करि लम्बे हाथ उड़ाये व्यञ्जन तनिकें॥
खिचरी, पूरी, मिठाई, सटकें सट सट साग सब।
देखि देव प्रत्यक्ष गिरि, भयो सबनि बिश्वास अब॥

पूजा के ई समय मानसी प्रकटी गंगा।
सुन्दर निर्मल नीर निकट गिरि तरल तरङ्गा॥
गोबरधनकूँ पूजि द्विजनि परसाद पवायो।
परिकम्मा पुनि करी हर्ष हियमहँ अति छायो॥
पायो प्रेम प्रसाद पुनि, पय पी सब व्रजमहँ गये।
गिरिवर पूजातैं सकल, प्रमुदित पुरवासी भये॥

इत सुरपति जब सुनी नंद मम भाग न दीयो।
समुझ्यो निज अपमान कोप गोपनिपै कीयो॥
सोचे सुरपति—कृष्ण काल्हिको छोरा छोटो।
मानि गोप तिहि बात काज कीयो अति खोटो॥
अच्छा इनके गर्बकूँ, अबई खर्ब कराउँगो।
बर्षा बिकट कराइकें; व्रजकूँ आज डुबाउँगो॥

कर्यो इन्द्र अति कोप भयङ्कर मेघ बुलाये।
करिबेवारे प्रलय मेघ साँबर्तक आये॥
बोले तिनतैं शक्र—शीघ्र तुम व्रजमहँ जाओ।
गोपनिको धन धान धेनु सर्बस्व डुबाओ॥
गर्जत तर्जत घन चले, प्रलय सरिस बरषा करें।
प्रेरित पवन प्रचन्ड हिम, नर, पशु, पच्छिनिपै परें॥

थर थर काँपैं गाय हाय सब लोग पुकारें।
ठिठुरत इत उत फिरत कहत हरि हमें उबारें॥
अनत शरन नहिँ लखी शरन सब हरिकी आये।
शरनागत के निकट दीन ह्वै बचन सुनाये॥
भक्तबछल भगवान हे, हरि हम सबके दुख हरो।
कुपित इन्द्रके कोपतैं; प्रनतपाल रच्छा करो॥

सुरपतिकी करतूत समुझि हरि मन मुसुकाये।
कछु चिन्ता मति करो सबनिकूँ बचन सुनाये॥
करपै गिरिवर धर्‌यो फूल सम ताहि उठायो।
चक्रसुदर्शन सोखन हित जल शैल बिठायो॥
मैया कर माखन मलै, लकुट लगावैं गोप-गन॥
सात दिवस गिरि कर धर्‌यो, भयो न नेंकहु मलिन मन॥

प्रलयकालके मेघ शक्तिभर पूरे बरसे।
नीचे गिरिके गोप गाय सब सुखतें निवसे॥
जलतैं खाली भये गये सुरपतिके पाहीं।
बोले बरषा करी नन्द-ब्रज डूबत नाहीं॥
मद सब उतर्‌यो इन्द्रको, सुनत चकित सो रहि गयो।
रोके घन सब ब्रज चलो, गिरिधर गोपनितैं कह्यो॥

कुशल सबनि लखि गोप अधिक हियमहँ हरषावें।
हरि आलिङ्गन करें प्रेमतैं उर चिपटावें॥
पूजन गोपी करें कृष्णकी कुशल मनावें।
सुर-गन सादर सुमन गगनतैं मिलि बरषावें॥
आनँद त्रिभुवनमहँ भयो, सुखी सकल सुर नर भये।
चढ़ि छकरनिपै गोप सब, वृन्दावनकूँ चलि दये॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें गोबर्धनधारण-लीला
नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।

[पाक्षिक पारायण, दशम दिवस विश्राम]

अथ षोडशोऽध्यायः

[१६]

प्रभु प्रभावतैं परम प्रभावित भये गोप अब।
नंदतनय नहिँ श्याम करें शंका मिलि जुलि सब॥
कैसे जाने सात दिवस गोबर्धन धार्‌यो।
कैसे कालिय क्रूर कुण्डतें मारि निकार्‌यो॥
जाके सबई काज अति, अद्‌भुत परम विचित्र हैं।
करै अलौकिक काज नित, मधुमय दिव्य चरित्र हैं॥

दश दिनको नहिं भयो पूतना मारि पछारी।
तृणाबर्त अरु शकट काक बक हने मुरारी॥
खल अघ, धेनुक, बत्स त्रिविध बेषनितैं आये।
आइ असुरता करी श्याम यम-सदन पठाये॥
दामोदर बनि यमज तरु, खेंचि गिराये बालने।
सात दिवस अब खेलमहँ, धर्‌यो शैल कर लालने॥

पूछें मिलि सब गोप नन्दतैं—को ये गिरिधर।
कहो सत्य ब्रजराज! कौनके सुत ये नटवर?
सुनि बोले ब्रजराज—सत्य मैं बात बताऊँ।
मेरो ई सुत कृष्ण रहस परि तुम्हें सुनाऊँ॥
गर्ग प्रथम मोतैं कही, अवतारी तेरो तनय।
गुन सब नारायन सरिस, ह्री, श्री, बल, तप, नय, विनय॥

करि मोकूँ आदेश गये घर गर्ग महामुनि।
हौं अति विस्मित भयो पुत्रके ग्रह फल शुभ सुनि॥
तबतैं जो जिह करै मोइ होवै नहिं विस्मय।
नारायन सुत समुझि सतत विहरौं हौं निर्भय॥
समाधान सबको भयो, करें प्रशंसा नंदकी।
जय बोले मिलिकें सकल, नंदनँदन ब्रजचन्द्रकी॥

ब्रजकी रच्छा करी कृष्णने यश जग छायो।
लज्जित ह्वैकें इन्द्र स्वर्गतैं प्रभु ढिँग आयो॥
कामधेनु गोलोक त्यागि सेवा महँ आई।
आय शक्र अति सकुचि मधुर स्वर विनय सुनाई॥
कर जोरें शतक्रतु कहे, शुद्ध सत्वमय नाथ! तुम।
प्रभो! छिमहु अपराध अब, माया मोहित जीव हम॥

जनक अंकमहँ करहिँ तनय नित अगनित अबिनय।
पितु ताड़न हू करहिँ तदपि हिय रहहिँ प्रेममय॥
मेरे गुरु पितु मातु वन्धु तुम सब कछु स्वामी।
समुझि शक्र मद रहित कहें हरि अन्तरयामी॥
इन्द्र! जाहु निज लोककूँ, मम आयसु पालन करो।
कबहुँ न करियो गर्व अब, मम सिख यह हियमहँ धरो॥

तब पुनि बोली सुरभि—श्याम तुम लीलाधारी।
मम संततिकी बिपति धारि गिरि हरि तुम टारी॥
अज अनुमतितैं आज आपु अभिषेक करावें।
शक्र सुरनिके इन्द्र आप गोविन्द कहावें॥
निज पयतैं प्रभुरुख निरखि, कइयो धेनु अभिषेक पुनि।
हरषे हरि अभिषेक लखि, इन्द्र सहित सुर सिद्ध मुनि॥

यों गिरिवर हरि धारि इन्द्र मख भङ्ग करायो ।
करि मद मर्दन फेरि क्षमा करि मान बढ़ायो ।।
हरि आयसु लै इन्द्र सुरभि निज लोक सिधाये ।
कुञ्जबिहारी करत केलि वृन्दावन आये ।।
जे श्रद्धातैं सुनहिँ नर, जा चरित्र कूँ नेमतैं ।
काम क्रोध नसि जाइँ रिपु, प्रभुपद पावैं प्रेमतैं ।।

हरिबासर व्रत करें सबहिँ व्रजमहँ नर नारी ।
निर्जल कछु फल खाइ रहें कछु दूधाधारी ।।
एकादशी पुनीत सुदी कातिककी आई ।
निराहार व्रजराज रहे दिन दयो बिताई ।।
जानि प्रात उठि चलि दये, स्नान करन यमुना निकट ।
धरि पट जलमहँ घुसि गये, जानी नहिँ बेला बिकट ।।

दूत पकरि लै गये तुरत जलपतिके पाहीं ।
इत व्रजमहँ नँदराय लौटिकें आये नाहीं ।।
समाचार सुनि दुखद बरुनके पास गये हरि ।
सौंपे श्रीव्रजराज बरुनने बहु पूजा करि ।।
पिता संग घनश्याम लै, आये व्रजमहँ सुखसदन ।
सुनि अति बैभव कृष्णको, भयो सबनिको मन मगन ।।

गोप विचारें श्याम हमें बैकुन्ठ दिखावें ।
गोता हमहूँ बैठि ब्रह्मसरमाहिँ लगावें ।
सबकी इच्छा जानि बिष्णु निज लोक दिखायो ।
सुखमहँ सबई मग्न भये सब जगत भुलायो ।।
ब्रह्मानन्द चखाइ हरि, पुनि बैकुन्ठ दिखाइकें ।
भये चकित सब गोपगन, हरिपुर दरशन पाइकें ।।

द्विभुज कृष्ण नहिँ देखिं भई तिनकी विभ्रम मति ।
लख्यो चतुर्भुज रूप भयो सबकूँ बिस्मय अति ॥
ब्रह्मानन्द निमग्न गोप पुनि श्याम निकारे ।
नटवर यमुना निकट निरखि सब भये सुखारे ॥
यौं बैकुण्ठ दिखाइकें, बिस्मय कीयो दूरि हरि ।
नित नूतन अभिनय करें, छद्म ललित अति वेष धरि ॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाह में इन्द्रसुरभिवरुण-विनय नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।



अथ सप्तदशोऽध्यायः

[१७]

ब्रजबनितनि अनुराग नवलमहँ नित नव विकसत ।
गिरिधर नटवर नाम सुनत अतिशय हिय हुलसत ॥
प्रथम श्रवन फँसि गये नयन पुनि भये पराये ।
मन अटक्यो लखि रूप जगतके काज भुलाये ॥
नाम श्रवन पुनि दरश करि, चित्त परस हित अड़ि गयो ।
परस पाइ पुनि केलि हित, सुरति भाव जाग्रत भयो ॥

इत गोपिनिको चित्त कृष्णके रूप लुभायो ।
करिबे रास विलास श्याम उत मन ललचायो ॥
अति सुखदायिनि शरद पूर्णिमाकी निशि आई ।
सुषमा अति रमनीक दशहुँ दिशिमाहिं सुहाई ॥
मनमोहनने मोहिनी, मायाको आश्रय लयो ।
आप्तकाम परिपूर्ण को, मन क्रीड़ाके हित भयो ॥

अति निर्मल नभ भयो नीलिमा गहरी छाई ।
शारदीय शशि बिहँसि चन्द्रिका शुभ छिटकाई ॥
प्राची दिशिकी ललित लालिमा लागे ऐसे ।
पति विदेशतैं आइ रँग्यो प्यारी मुख जैसे ॥
प्रियारक्त पटतैं निकसि, पूर्णचन्द्र विकसित भये ।
सूर्यताप संताप दुख, निरखत शशि सब भगि गये ॥

नभकूँ झारि बुहारि रंग्यो नीलमतैं मानों।
मोती दये बिखेर खिले तारागन जानों॥
श्रीमुख मंडल सरिस सुखद शोभायुत निशिपति।
रक्ताञ्चलतैं निकसि करत जगकूँ प्रमुदित अति॥
प्राची दिशि कुंकुम रँगी, बर उडुगनपति शुभ्र अति।
मनहुँ प्रिया परिधान मुख, झाँपि हँसत प्रिय प्रानपति॥

हृदय भरित अनुराग चलत शशि सबकूँ हेरत।
मनहुँ किरन कर कमल राग चहुँ ओर बिखेरत॥
फेंकी कोमल किरन भयो बृन्दाबन रञ्जित।
जपा कुसुमकूँ पाइ फटिक मनि जनु अति हरषित॥
बृन्दाबन अति मनहरन, आये गोपीजनरमन।
नटनागर सजि बजि तुरत, रास करन यमुना पुलिन॥

ह्वै त्रिभङ्ग मनहरन फैंटतैं बेनु निकारी।
कर कमलनितैं परसि प्रेमतैं पौंछि सम्हारी॥
पुनि अधरनिपै धरी करी कछु तिरछी प्यारी।
दाबे उंगलिनि छिद्र फूँक पुनि मुखमहँ मारी॥
स्वर लहरी प्रकटित भई, बिश्व निखिल रव भरि गयो।
मधुर गान काननि पर्‌यो, युवतिनि चित चञ्चल भयो॥

मनमोहनमहँ प्रथम चित्त आसक्त सबनिको।
करत प्रतीक्षा पर्‌यो श्रवन रव बंशी धुनिको॥
ज्यों जलनिधितैं मिलन जाहिँ द्रुतगतितैं सरिता।
अकबकाइ सब चलीं श्याम ढिँग त्यों ब्रजबनिता॥
काम काज बिसरे सकल, मंत्र मुग्ध-सी बनि गईं।
तन मन घर परिवारकी, सुरति त्यागि सब चलि दईं॥

दूध दुह्योको दुह्यो गायके नीचे पटक्यो।
रही पालनो खोलि तज्यो ज्योंको त्यों लटक्यो॥
दही मथत ही छाड़ि चली माखन न निकाइयो।
छोड़ि चूल्हिपै दूध चलीं नीचे न उताइयो॥
पति भोजन तजि चली इक, प्रेम चटपटी हिय लगी।
हलुआ घोटति रही इक, छोड़ि कढ़ाईमहँ भगी॥

कछुक अङ्क बैठाइ पूतकूँ दूध पिआवें।
कछुक प्रानपति हेतु फूलकी सेज बिछावें॥
कछु भोजन करवाइ सबनिके बासन माजें।
कछु उबटन करि न्हाइ नेत्रमहँ अंजन आजें॥
कछु कुंकुम चंदन घिसति, कछु तनमाँहिँ लगावतीं।
कछुक केश काढ़ति रहीं, कछु बेंदी चिपकावतीं॥

कछु पट पहिनति रहीं कछुक आभूषन धारति।
कछु दर्पनमहँ देखि मांग सिंदूर सम्हारति॥
जो जो कारज करतिं रहीं त्यागो सो तिनने।
चली बेनु सुनि काज अधूरे छोड़े उनने॥
बरजीं पति पितु बन्धुने, रोकीं बहु परि नहिं रुकीं।
कही बहुत परि ते नहीं, लोक लाज सम्मुख झुकीं॥

कछुक रहीं घरमाँहिँ गमनकी करीं तयारीं।
किन्तु चलि नहिँ सकीं पिता पति बन्धु निवारीं॥
करिबे हठ जब लगीं दयो बाहरतैं तारो।
भीतर सोचें विवस नाथ ! बश नाहिँ हमारो॥
कृष्ण भावनामहँ सकल, तब तन्मय ते ह्वै गईं।
नयन मूँदि मनहरनके, मगन ध्यानमहँ सब भईं॥

कृष्ण-विरह अति दुसह बेदना भई तीव्र जब।
सकल अशुभ मिटि गये भावमहँ मगन भई सब॥
भावालिंगन करत मिटे शुभ बन्धन टूटे।
त्रिगुन देह तजि दई जगतके बन्धन खूटे॥
दिव्य देहतैं तुरत ई, कृष्णसंग संगम कर्यो।
भयहारी भगवान्ने, भवबन्धन तिनिको हर्यो॥

कहें परीक्षित्—प्रभो! कान्तते मानति हरिकूँ।
ब्रह्म-भाव नहिँ भयो मिली च्यौं शुभगति तिनिकूँ॥
डपटि कहें शुक—भूप! भूलि का बात गये तुम।
भई मुक्ति शिशुपाल बताई बात प्रथम हम॥
वैर भाव करि तरि गयो, कर्यो कृष्ण महँ प्रेम नहिँ।
सदा बसत हिय श्यामघन, ते गोपी च्यौं नहिं तरहिँ॥

काम क्रोध भय लोभ नेह सौहार्द भावतैं।
कैसे हू हरि भजो शुद्ध वा असद् भावतैं॥
जे तन्मय ह्वै जायँ तरहिँ भवसागर तें नर।
जो चाहे सो करहिँ सिद्ध दाता वे नटवर॥
राजन्! हरिकी दयातैं, संशय सब मिटि जाइगी।
ककरी चाकूपै गिरे, ककरी ई कटि जाइगी॥

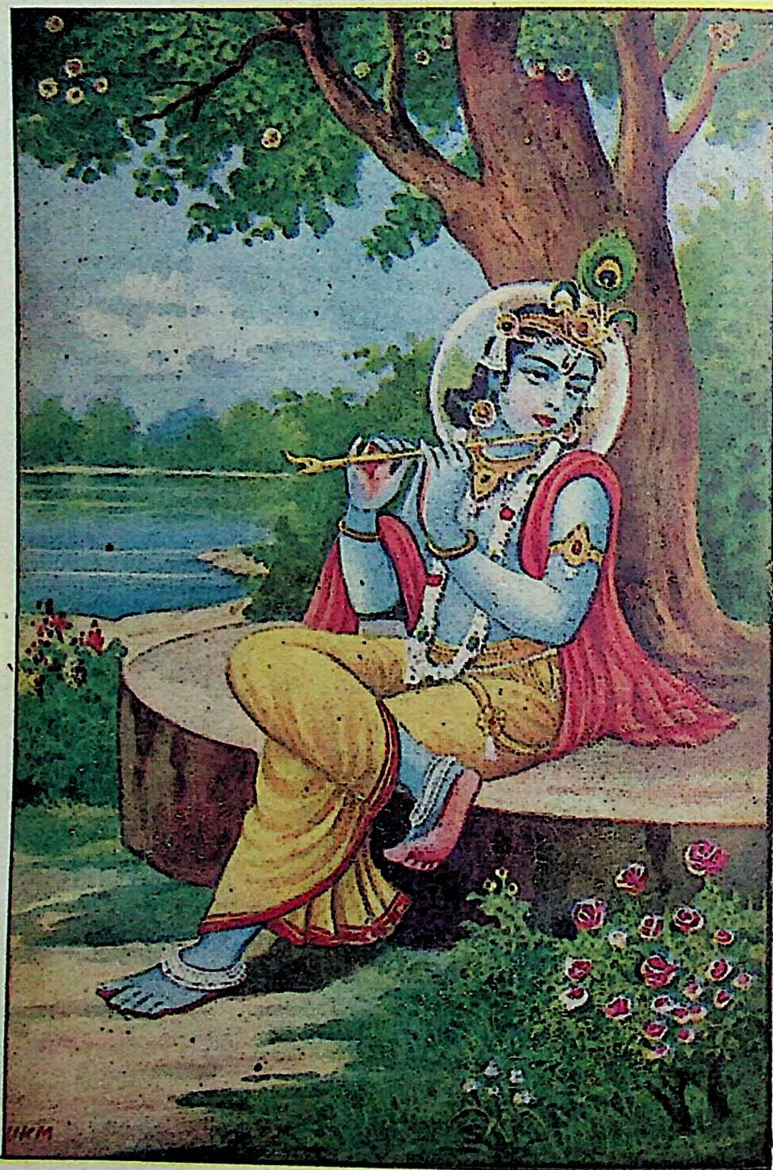
नृप बोले—गुरुदेव! रही अब शंका नाहीं।
हरि चरित्र सो कहें गईं गोपी प्रभु पाहीं॥
शुक बोले—ब्रजबाल गईं ब्रजबल्लभढिँग जब।
ह्वै ऊपरतैं निठुर कपटतैं बोले हरि तब॥
आओ, बैठो, कुशल सब, कर्यो कष्ट किहि कामतैं।
राति अँधेरी बन बिकट, च्यौं आईं निज धामतैं॥

अनल अनिल जल जनित कष्ट कछु बनमहँ आयो ?
क्यों निशि बेला सरित पुलिनमहँ चित्त चलायो ?
शीतल मंद सुगंध पवन पल्लव बन बिकसित।
अथवा सुषमा शारदीय अवलोकनके हित॥
आईं अथवा नेहवश, प्रेम करहिं मोमें सबहिँ।
पातिव्रत पालन करहु, जाओ निज निज घर अबहिँ॥

सुनत श्यामके कठिन बचन व्रजबनिता रोईं।
भयो हृदय दुख दुसह सबनि तन मन बुधि खोईं॥
नयननि निकसत नीर कालिमा काजरकी सँग।
ढरकि हृदयपर गिरत मिलत कुच कुंकुम के रँग॥
गंगा यमुनाके सरिस, उमड़त हिय मुख मलिन अति।
बने भलें ही कठिन हरि, हमरी तो वे एक गति॥

पुनि कछु धीरज धारि पोंछि आँसू बोलीं सब।
प्रेमपाशमहँ फाँसि निठुर अति कहहु बचन अब॥
जाओ जाओ बार बार जिह बात कही है।
जाइँ कहाँ सब त्यागि शरन तव चरन गही है॥
शरनागतको त्यागिबो, दुसह पाप वेदनि कह्यो।
तव चरननिमहँ आइ हम, धरम करम सब कछु लह्यो॥

सुत पति सेवा करन दयो उपदेश हमें तुम।
परि समुझें सर्वस्व प्रानपति तुमकूँ सब हम॥
प्रियता जगमहँ होहि सबनिमहँ तुमरे कारन।
कैसे हम करि सकें आपुकी शिक्षा धारन॥
कुशल शास्त्रविद् सकल जन, करहिँ प्रेम तुम प्रेष्ठमहँ।
का पति सुत जग प्रेमतैं, होवै यदि रति श्रेष्ठमहँ॥



श्री रासविहारी जी

कमलनयन ! अब कठिन हृदय बनि मत ठुकराओ ।
फूली आशा लता ताहि नहिं नाथ ! जराओ ॥
जाहिं कहाँ का करें चित्त नहिं बशमहँ प्यारे ।
कर, पद अब गतिहीन अङ्ग सब भये हमारे ॥
अरे निर्दयी ! प्रथम तो, जाल प्रेमको डारिकें ।
अब फँसाइ व्याकुल करत, क्यौं नहिं डारै मारिकें ॥

मंद मंद मुसकाय हृदयमहँ बान चुभोयो ।
करी प्रज्वलित आगि कामकी सरबसु खोयो ॥
प्यासी बनमहँ फिरहिं दया हिरदेमहँ लाओ ।
अधरामृत अति सुखद रमन ! भरिपेट पिआओ ॥
बधिक ! बिरह बिष बानतैं, नहिं हम सब मरि जाइँगीं ।
दिव्य देहतैं ध्यान धरि, चरन शरन तब पाइँगीं ॥

जा दिनतैं अति मृदुल पदुमपद हमने परसे ।
ता दिनतैं अनुराग हृदय सर सरसिज सरसे ॥
चरनकमल रज चहहिं किंकरी करि अपनाओ ।
दीनबन्धु दुख दलन दया करि हृदय लगाओ ॥
बाहुकंठको हार करि, कर सरोज सिरपै धरो ।
वक्षःस्थल पद कमल धरि, हृदय ताप गिरिधर हरो ॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाह में रासोपक्रम नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।

अथ अष्टादशोऽध्यायः

[१८]

व्रजबनितनिकी बिनय बिहारी सुनि हरषाये ।
प्रेम अलौकिक जानि नयन हरिके भरि आये ॥
योगेश्वर मुसकाय कह्यो-हौं रमण करुङ्गों ।
चिर दिनको संताप सबनिको आज हरुङ्गों ॥
यों कहि गोपिनि मध्यमहँ, उड़गन सम शोभित भये ।
श्याम परसतैं सबनिके, चन्द्रबदन बिकसित भये ॥

वाहु पाशमहँ जकरि फिरैं बन रतिपति सम हरि ।
ज्यों हरिनिनि सँग हरिन करिनि सँग मदमातो करि ॥
कृष्ण कीरतन करति कंठ कल सब मिलि गावैं ।
नटवर बेनु बजाय तालमहँ ताल मिलावैं ॥
वन बन बिचरत सखिनि सँग, आये गिरिधर पुलिनमहँ ।
यमुना तट शीतल सुखद, सरस बालुका रम्य जहँ ॥

चंचल तरल तरङ्ग संग शीतल मलयानिल ।
कुसुम कुमुदिनी गंध पवन सँग खेलै हिलमिल ॥
तहँ रासेश्वर आइ रमण रमणिनि सँग कीन्हों ।
काम कलातैं सबनि अलौकिक सुख अति दीन्हों ॥
तनु पुलकित हुलसित हृदय, हँसहिँ हाथ फैलाइकें ।
मिलहिं परस्पर प्रेमतैं, भरमामें चौंकाइकें ॥

कबहूँ बिनवैं दीन होहिं पुनि कबहूँ अकरें ।
हिय मुख कर कटि केश करनितैं पुनि पुनि पकरें ॥
करि करि क्रीड़ा कलित प्रेम रसमाँहिँ भिगोईं ।
कुसुम कली सम सकल सरसतामाँहिं डुबोईं ॥
जगपति परवश-से भये, करीं तृप्त अति सुख दयो ।
पाइ मान अति श्यामतैं, मान सबनि हियमहँ भयो ॥

जिहि हियमहँ मनहरन मान तहँ रिपु घुसि आयो ।
समुझि गये घनश्याम दृश्य अति दुखद दिखायो ॥
करन कृपा मदहरन रमनतैं बिरत भये तब ।
अन्तर्धान सुजान भये बिलखैं गोपी सब ॥
पति बिनु नारी विकल ज्यौं, हथिनी ज्यौं बिनु यूथपति ।
त्यौं व्याकुल गोपी भईं, निरखि निकुञ्ज न प्रानपति ॥

ह्वै चिन्तातुर करहिँ यादि हरिके कामनिकी ।
मधुर मधुर मुसकान चलन चितवन सुहँसनिकी ॥
लीला मधुर बिलास यादि करि करिकैं रोवैं ।
ह्वै तन्मय उन्मत्त सरिस तन सुधि बुधि खोवैं ॥
उच्चः स्वरतैं हरि गुननि, गावैं रोवैं सिर धुनैं ।
खग मृग गिरि तरु लतनितैं, पूछैं हरि कोउ न सुनैं ॥

वृक्षनिके लै नाम कहें—हे पीपर ! पाकर ।
हे कदम्ब ! हे बकुल ! नीम, बट, चंपक, गूलर ॥
हे रसाल ! रसराज श्याम इत तो नहिँ आये ।
चितवन जाल बिछाय हमारे चित्त चुराये ॥
समुझि स्वारथी नरनिकूँ, सब मिलि तुलसी ढिँग गईं ।
करि अतिशय अनुनय विनय, प्रेष्ठ पतो पूछति भईं ॥

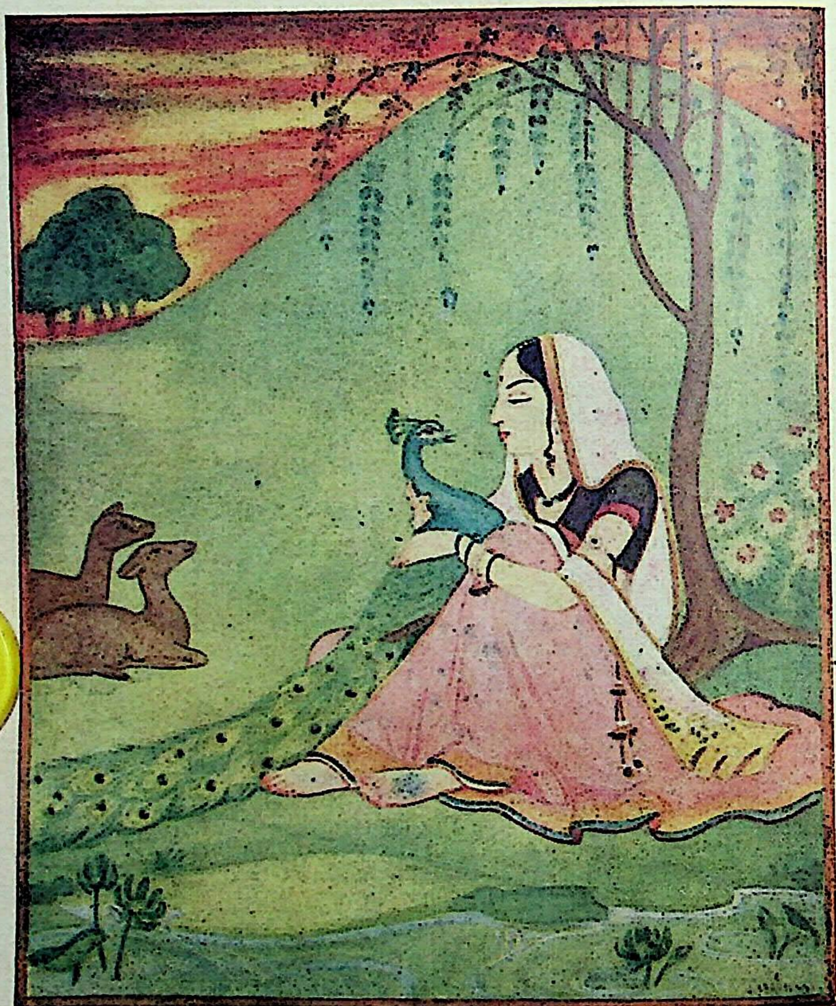
हे वृन्दे ! हे तुलसि ! श्यामको पतो बताओ ।
कहाँ छिपाये श्याम बहिन टुक तनिक दिखाओ ।।
हतभागिनि हम भईं त्यागि हम हरिने दीन्हीं ।
रमन सँग श्रीप्रिया गईं तुमने का चीन्हीं ।।
सौति समुझि आगे बढ़ीं, पतो सबनि पूछन लगीं ।
ललित लता पुष्पित लखीं, समुझीं सब सजनी सगीं ।।

हे मालति ! तुम सदा बसो श्रीजी केशनिमहँ ।
स्वर्णमल्लिका रङ्ग बसै प्यारी अंगनिमहँ ।।
माधव लये छिपाय माधवी ! कहाँ बताओ ।
अरी, मल्लिके ! जाति ! यूथिके ! श्याम दिखाओ ।।
प्रेम परस बिनु होहिँ नहिँ, मन प्रमोद अरु पुलक अँग ।
श्याम अवसि करतैं परसि, निकसे इततैं प्रिया सँग ।।

हे धरनी ! तू धन्य पाद प्रभुके धारति नित ।
लिये लाड़िली संग लाल गिरिधर निरखे इत ।।
हे मृगबंधु ! वर नयन नेहमहँ भीजे तुमरे ।
बहिना ! देउ बताइ गये इत प्रियतम हमरे ।।
राधा-कन्धा कर धरे, क्रीड़ा कमल घुमावते ।
निरखे नँदनन्दन नयन, खग मृग कुल सरसावते ।।

शौनक पूछें—सूत ! कौन राधा ये प्यारी ।
सूत कहें—मुनि ! शक्ति-स्रोत-सुख भरिबेवारी ।।
श्रीवृषभानु कुमारि कीर्ति पुत्री सुकुमारी ।
बरसानेकी लली किशोरी भोरी भारी ।।
गोपी कान्ता राधिका, प्रिया, प्रेयसी, कामिनी ।
नित्यकिशोरी लाड़िली, मनमोहनि मनभावनी ।।





श्री राधा जी

दिव्य देह धरि धरनि धामपै राधा आई।
निज परिकर पुर लाइ अवनिकूँ दई बड़ाई॥
धनि धनि श्रीवृषभानु कीर्ति जननी हू धनि धनि।
जिनकी दुहिता बनी राधिका बिहरैं भवननि॥
यह अवनी पावन बनी, राधा पदरज परसिकें।
जिह रज सुरगन इन्द्र अज, शिव सिर धारें हरषिकें॥

राधा रसकी खानि सरसता सुख की बेली।
नंदनँदन मुख चन्द्र चकोरी नित्य नवेली॥
नित नव नव रचि रास रसिक हिय रस बरसावै।
केलिकलामहँ कुशल अलौकिक सुख सरसावै॥
गोरी भोरी सुन्दरी, रामा सुषमा श्यामकी।
सती शिरोमनि स्वामिनी, श्रीवृन्दावन धामकी॥

प्यारी प्रभुकी परम स्वामिनी सुखकी सरिता।
श्याम सिन्धु प्रति बहति भाव भावित रसभरिता॥
लै तिनिकूँ हरि छिपे लतनितैं पूछति नारी।
निरखे इत कहुँ कृष्ण कन्हैया कुञ्जविहारी॥
नारी तुमहू नारि हम, निष्ठुर नरने ठगि लईं।
चोर चोरिके चित चल्यो, गयो बिना चितके भईं॥

अरी, बेलि सुख केलि करत निरखे इत गिरिधर।
मंद मंद मुसकात मदनमोहन मद मनहर॥
अवसि तुमहिं पद परसि प्रियासँग इतहिँ सिधाये।
तोरे तुमतैं सुमन कामिनी केश सजाये॥
नख क्षततैं अनुराग अति, उमड़ि रह्यो तुम अँगनितैं।
पायो आलिङ्गन अवसि, तुम सबने प्रिय भुजनितैं॥

ऐसे कहि कहि बैंन नैनतैं नीर बहावें।
कबहूँ करैं प्रलाप कबहुँ रोवें पछतावें॥
करैं कृष्णको ध्यान पुकारें नाम निरन्तर।
नाम ध्यानतैं भईं गोपिका तन्मय सत्वर॥
कृष्ण सरिस क्रीड़ा करें, बनी पूतना अपर हरि।
ज्योंको त्यों अभिनय करें, नयन मूँदि पयपान करि॥

एक बनि गई शकट कृष्ण बनि अपर गिरावै।
तृणावर्त बनि हरहि अपर हरि बन हरि जावै॥
बनि बत्सासुर एक कृष्ण बछरनि बिढुकावै।
कृष्ण बनी तिहि मारि परमपद ताहि पठावै॥
बनि बनधारी व्रजबधू, बेनु बजावें बननिमहँ।
कछुक गोप गैयाँ बनीं, सुनि धुनि आवें रमन जहँ॥

बनि कालिय फुफकार एक गोपी जब मारै।
बनि नँदनन्दन अपर नाथिकें ताहिं निकारै॥
एक कृष्ण बनि गोवर्धनकूँ धारै बलतैं।
बनि यशुमति हरि बनी ताहि बाँधे ऊखलतैं॥
देह-गेहकी सुधि न कछु, भ्रमति प्रेमरसमहँ पगीं।
तन्मय ह्वैकें अनुकरन, नटवरको करिबे लगीं॥

निरखे प्रभुके चरन-चिन्ह अवनीपै उभरित।
वज्रांकुश, ध्वज, कमल जवादिक चिह्ननि चिह्नित॥
बिच बिच प्यारी चरन निरखि अतिशय अकुलावतिं।
करें सौतिया डाह प्रियाको भाग्य सराहतिं॥
है अनुपम अनुराग अति, राधाको ही कान्तमहँ।
करहिं भ्रमर सम पान हरि, अधरामृत एकान्तमहँ॥

करत त्रिविध अनुमान बढ़ीं कछु आगे बाला।
एकाकी पद-चिह्न निरखि बोलीं इहँ लाला॥
अवसि यान वे बने राधिका कन्ध चढ़ाई।
यहाँ तोरिकें फूल श्यामने प्रिया सजाई॥
फूली फूली लतनितैं, उचकि सुमन तोरे अवसि।
एड़ी बिनु पंजे बने, पुनि इततैं आये निकसि॥

अरी, निहारो अली! बनी बैठक दोउनिकी।
प्रिया अंकमें धारि गुंथी है बैनी तिनिकी॥
मोती सुमन पुरोइ प्रियाकी माँग सँवारी।
अवसि यहाँ तिहि संग करी हैं क्रीड़ा प्यारी॥
अवसि यहाँ हरि बश भये, अवसि व्यथा दोउनि बढ़ी।
श्याम दिखाई दीनता, अवसि सखी सिरपै चढ़ी॥

अरी, रमनने रमन कर्‌यो रमनी सँग तरुतर।
अत्तो पत्तो मिल्यो श्याम श्यामाको गुरुतर॥
धन्य लाड़िली भाग करे बशमहँ बनवारी।
मनोकामना पूर्ण भई नहिं बीर हमारी॥
कृष्णान्वेषणकातरा, इत रमनी बन बन फिरहिं।
उत प्रियतम सँग राधिका, कामकेलि कौतुक करहिं॥

उनके हू मन मान बढ़्यो सोचें हौं सरबस।
अखिल भुवनपति श्याम करे अब मैंने निजबस॥
जहाँ मान तहँ बास करें कैसे गिरधारी।
परवश तब घनश्याम लखे तब बोली प्यारी॥
पैदर अब नहिँ चल सकौं. कितव कहाँ लै जात हैं?
पग चाँपौ घोड़ा बनो, प्यारे! पाँइ पिरात हैं॥

तब हँसि बोले श्याम—चढ़ौ कन्धापै प्यारी।
सुनि अति हरषित भईं चढ़नकी करी तयारी॥
त्यों ही अन्तर्धान भये हरि वे पछितावें।
इत उत खोजहिं फिरहिं डरहिं रोवहिं बिललावें॥
नाथ! रमन! प्रियतम परम! जीवन धन! अशरनशरन!
देहु दरश अब दुखहरन, विश्वभरन! भवभयहरन!!

हाय! कहाँ तजि गये रमन! मुख कमल दिखाओ।
भयो दर्प मम दलन दयानिधि आओ आओ॥
भ्रमरी भूखी फिरहि कमल! मधु अधर पिआओ।
मरत चातकी प्यास श्यामघन रस बरसाओ॥
यों प्यारी प्रिय बिरहमहँ, कुररी सम रोवति फिरति।
सम्मुख निरखति चर अचर, पूछति पति बिलखति गिरति॥

करि करि सुमिरन संग श्यामको रोवति राधा।
बन बन बिहरत बिकल बिरहकी बाढ़ी ब्याधा॥
दीखति दशमी दशा दुखी दरसन बिनु प्यारी।
ब्याकुल बिलखति बिरहमाँहिं तनु दशा बिसारी॥
इत प्यारी मूर्छित परीं, उत आईं ढूँढ़त सखीं।
अति अचेत आकुल अधिक, राधाजी सबने लखीं॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाह में श्रीकृष्ण अन्तर्धान नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त।

अथ एकोनविंशतितमोऽध्यायः

(१९)

दोहा—देखि दशा कीरति सुता—की सबई पछिताइँ।
निज दुखबिसर्‌यो सकल मिलि, बहुबिधिधीर बधाइँ ॥

छप्पय—गोपी बैठीं घेरि प्रियाकूँ सब समुझावें।
गोदीमाँहिँ लिटाइ कमल दल व्यजन डुलावें ॥
कछुक चेतना भई रसिककी बात चलाई।
अपुबीती सब बात दुखित ह्वै प्रिया बताई ॥
एक प्रान मन मिलि सकल, मान रहित अति दीन सब।
गावत गुन गोबिंदके, भईं ध्यानमहँ लीन सब ॥

सुधि बुधि तजि घर द्वार बारकी कृष्ण पुकारें।
उत्कंठित अति भईं करुन स्वर नाम उचारें ॥
रूप सुमिरि घनश्याम हृदय पिघिले भरि आवै।
देह कँपकँपी उठे चित्त चंचल ह्वै जावै ॥
करत प्रतीक्षा पुलिनमहँ, मिलि जुलि गावैं गीतिकूँ।
साधनसिद्धा सखी सब, प्रकट करें रस रीतिकूँ ॥

गावें गोपी गीत जयति जय ब्रजबनचंदन।
ब्रजजीवन सरबस्व सुखद नटवर नँदनन्दन ॥
कमल बदन हम जोहि मधुकरी जीवन धारें।
तिनहिं अदरशन वायु बिना बल्लभ च्यौं मारें ॥
प्राणेश्वर ! तव दरश बिनु, प्रानहीन हम भईं सब।
खोजि थकीं दश दिशि दयित, देहु दयानिधि दरश अब ॥

हमरे तन, मन, प्रान, कर्म सब तुम हित प्रियतम ।
तव प्रसन्नता हेतु करहिं जीवन धारन हम ॥
जिन नयननि तव रूप लख्यो पुनि और न भावैं ।
सुने श्रवन तव बचन अन्य पटतर नहिं आवैं ॥
नस्यो प्रियतमा प्रेयसी, को मद अब दासी भईं ।
आओ दरशन देउ अब, बन बन ढूंढ़त थकि गईं ॥

बनितनि बन्धन करन बधिकको वेष बनायो ।
सुन्दर कोमल मृदुल रूपको जाल बिछायो ॥
मोहकता कण फेंकि मधुर स्वर बेनु बजावैं ।
गाइ सुखद संगीत मृगिनि सम नारि फँसावैं ॥
भ्रुकुटि धनुष विष बुझे सर, सैंन नैंन सरसाइकें ।
तकि मारें, घायल करें, निरखें सतत सिहाइकें ॥

कायर कपटी कुटिल कामिनीघातक कारे ।
तीखे बान कटाक्ष ताकि अबलनिमहँ मारे ॥
घायल सिसकति फिरहिं बान तनतैं न निकारें ।
छलिया छिपिकें हँसत न आओ सतत पुकारें ॥
दरश सुधा हित दयित हम, दुःख दुसह दारुन सहैं ।
बिना मोलकी किंकरी, कृष्ण कृष्ण कबतैं कहैं ॥

बध करनो ही हतो हमें च्यौं प्रथम बचायो ।
च्यौं असुरनिकूँ मारि सबनिकौ दुःख छुड़ायो ॥
कुपित इन्द्रने उपल प्रलयके घन बरसाये ।
च्यौं गोवर्धन धारि नाथ ! हम सकल बचाये ॥
च्यौं दावानल पान करि, कालियदहपै दुख हर्यो ।
च्यौं अजगरके मुख घुसे, च्यौं बत्सासुर बध कर्यो ॥

वार बार च्यौं बिपति उदधितैं नाथ बचाई ।
च्यौं नटवर कर पकरि रासमहँ बिहँसि नचाईं ॥
च्यौं कुंकुम मुख मल्यो प्रेमको खेला खेल्यो ।
च्यौं गोदी सिर धारि अमृत मुखमाँहिं उड़ेल्यो ॥
च्यौं सरसायो नेह अति, ढीठ बनाई च्यौं हमें ।
अब दरशन बिनु देहु दुख, लाज न लागत च्यौं तुमें ॥

नहिं नभमहँ हम कहें सुनो तुम सब कुछ स्वामी ।
यशुमतिसुत ही नहीं आपु तो अन्तरयामी ॥
अबला हम अति दुखित आपु चाहें मत मानो ।
अधिक कहा हम कहें आपु घटघटकी जानो ॥
जानि हमारो हृदय दुख, दै दरशन जग यश लहो ।
जड़ चेतन जग जीव जे, तुम सबके हियमहँ रहो ॥

कृष्ण ! कृतारथ करहु कृपा कीजे कछु हमपै ।
धरहु दया करि कान्त ! कामपूरक कर सिरपै ॥
है हमरो हिय कठिन काम कंटकहू जामें ।
तव अति कोमल चरन कठिनकूँ मृदुल बनामें ॥
धरहु चरन हियपै हुलसि, हरहु काम पीड़ा सकल ।
सुने बचन जबतैं सरस, मधुर भईं तबतैं बिकल ॥

प्रिया पिपासित फिरहिं मधुर कछु पेय पियाओ ।
अधरामृत मुख भरो निठुर कछु पुण्य कमाओ ॥
प्याओ प्यारे परम स्वादयुत मीठो मीठो ।
दुखहर अतिशय सुखद सौति बंशीको जूठो ॥
कान कान्हकी कथा सुनि, होहिँ कृतारथ रस लहहिँ ।
बड़भागी ते जगत नर, कथा तुमारी जे कहहिँ ॥

धूरि धूसरित नील कुटिल कच कारे कारे।
मुखपै बिथुरे मधुर लगें मनकूँ अति प्यारे॥
झोटा खात बुलाक मोरको मुकुट मनोहर।
ऐसो बेष बनाइ जाउ जब बन तुम गिरिधर॥
तब पल पल युग युग सरिस, बीतत बिनु देखे तुम्हें।
अब निशिमहँ बन छाँड़ि तुम, छिपे छबीले छलि हमें॥

आओ आओ श्याम हृदयकी तपन बुझाओ।
चरन कमल हिय धरो शोक संताप नसाओ॥
यों कहि रोईं फूटि फूटिकें गोपीं सस्वर।
रहि न सके तब श्याम भये प्रकटित तहँ सत्वर॥
मथन मनोहर वेषतैं, मनमथके मनकूँ करत।
प्रकटे प्रभु तिनि मध्यमहँ; शोक मोह हियको हरत॥

मोर मुकुट सिर धारि गरे बैजन्ती माला।
लखे शरद ब्रजचन्द्र भईं प्रमुदित ब्रजबाला॥
करें निछावर प्रान सिहावें सब तृन तोरें।
प्रेम न अंग समाय उठें हियमाँहिँ हिलोरें॥
खावें पीवें युगल कर, रूपासव नयननि भरत।
भूखी प्यासी प्रेमकी, आलिंगन चुम्बन करत॥

कोई हरि कर धारि कपोलनि परम सिहावें।
कोई पुनि पुनि पकरि प्रेमतैं हिये लगावें॥
कोई चर्वित पान कान्हको लेहिं चबावें।
कोई हरिपद हृदय धारि संताप मिटावें॥
भ्रुकुटि कमान कटाक्ष सर, मारें काटें द्विज अधर।
बीधें बधिकिनिके सरिस, बाँधत करतैं पकरि कर॥

कोई हरि मुख कमल माधुरी नयननि भरि भरि।
होहिँ तृप्त नहिँ पान प्रेमतैं पुनि पुनि करि करि॥
नयन रन्ध्रतैं मधुर मूर्ति कोई हिय लावें।
करें मानसिक परस परम सुख मनतैं पावें॥

साधक सद्गुरु पाइकें, आनन्दित अति होत ज्यों।
दरशन करि घनश्यामके, गोपी प्रमुदित भईं त्यों॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें रासेश्वर पुनर्दर्शन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।

अथ विंशतितमोऽध्यायः

(२०)

लै सब सखियनि संग श्याम सरिता तट आये ।
कुसुम कुन्द मन्दार कुमुदिनी लखि हरषाये ।।
कालिन्दी निज करनि बिछाई बालु सुकोमल ।
आसन हित पट प्रिया अंगको डार्‌यो तिहि थल ।।
तहँ बैठे राधारमन, व्रजबनितनिके बीचमहँ ।
सने पदुम पद सखिनिकी, कुच कुंकुमकी कीचमहँ ।।

पूछें करिकें व्यंग श्याम ! इक बात बताओ ।
तीनि भाँतिके पुरुष साधुको शोक मिटाओ ।।
एक प्रेम लखि करहिं प्रेम दूसर बिनु प्रेमहु ।
करें तीसरे नहीं उभय पच्छनि तिनि नेमहु ।।
इनमें कौन निकृष्ट हैं, को मध्यम को श्रेष्ठतम ।
नीति निपुण तुम धरमवित, तातें पूछें तुमहिँ हम ।।

बोले सुनिकें श्याम—सुनहु सखि ! सत्य बताऊँ ।
नीति धरमको मरम यथावत तुमहिँ सुनाऊँ ।।
करें स्वार्थ हिय धारि प्रेम ते नर व्यापारी ।
नहीं तहाँ सौहार्द प्रेम है वह व्यवहारी ।।
करें प्रेम निरपेच्छ जे, ते कृपालु पितु मातु हैं ।
तहां धरम कैतव रहित, बन्धु सुहृद ते तात हैं ।।

प्रेमहीन नर चारि श्रेष्ठ कछु अपर शतघ्नी।
आत्मराम अरु पूर्णकाम गुरुशत्रु कृतघ्नी॥
हौं इन सबतैं पृथक प्रेष्ठ पति सुहृद कारुनिक।
प्रेम बृद्धिके हेतु कर्‌यो मैंने सब नाटक॥
अति दुस्तर गृह शृंखला, कूँ आई तुम तोरिकें।
मम हित पति, सुत, गृह, कुटुम, तैं आईं मुंह मोरिकें॥

जन्म जन्म हौं रहौं सुन्दरी ऋनी तिहारो।
क्रीतदास बनि गयो प्रेमतैं मोकूँ तारो॥
करि अर्पन सर्बस्व मोहि सुख अतिशय दीयो।
तजिकें सब सुख सगे संग तुम मेरो कीयो॥
बचन श्यामके सरस सुनि, दुःख शोक सबके भगे।
निज करतैं शृँगार हरि, श्रीजीको करिबे लगे॥

परसि परस्पर प्रेम पुलक अँग अंगनि होवें।
लखि प्यारी हरि रूप देहकी सुधि बुधि खोवें॥
निज कर केश सम्हारि प्रियाकी बाँधी बैंनी।
भाल तिलक तिल चुबक अधर रँग रँगी सुनैंनी॥
अंजन नयननिमहँ दयो, फूलनिके गजरा नये।
पहिराये उर कटि करनि, बीरा श्रीमुखमहँ दये॥

कर पद नख रँग रँगे महावर चरन सजाये।
महँदी दिब्य लगाइ अरुन पद अरुन बनाये॥
भूषन बसन सम्हारि इतर अँग अङ्ग लगायो।
मलि हिय केशर कीच बिहँसि आदर्श दिखायो॥
नव तरङ्ग छिन छिन उठें, मन दोउनिके नहिँ भरें।
रूपासवको पान मिलि, दरपनमहँ दोऊ करें॥

दोऊ रसमहँ पगे प्रेमकी बँधे डोरतैं।
करें हियेमहँ ध्यान निहारें नैंन कोरतैं॥
झुकि झुकि चूमत बदन बिरह संताप मिटावैं।
ऊपर गिरि गिरि परत परसिकें प्रेम बढ़ावैं॥
अरसत परसत परस्पर, बहत तरङ्गनिमहँ उभय।
पीवत ज्यों ज्यों नेह रस, त्यों त्यों छूटत सकुच भय॥

श्यामा श्याम सजाइ रास मंडलमहँ लाये।
जै निरखीं तहँ नारि श्याम तै रूप बनाये॥
द्वै गोपिनिके बीच बीच हरि सोहत कैसे।
स्वर्ण मणिनिके मध्य नीलमणि दमकत जैसे॥
गलबैयाँ डारें चपल, नटवर बेष बनाइकें।
ताता थेई कहि हँसत, नाचत ताल मिलाइकें॥

ताता थेई करें फिरें हियमहँ हरषावें।
होहि परस्पर परस फुरहरी पुनि पुनि आवें॥
उरझि हारमहँ हार सरसता अधिक बढ़ावें।
मिले चन्द्रिका मोरमुकुटमहँ लट सटि जावें॥
चमकति चपला सम सखी, अगनित घन सम श्याम छबि।
अनुपम रास बिलासकी, उपमा को करि सके कवि॥

ब्रज-युवतिनिके कंठ डारि कर नृत्यत नटवर।
रुनझुन नूपुर बजत झनक चुरियनिकी मनहर॥
हिलत छीन कटि केश लोल लोचन अति चंचल।
पीताम्बर सँग मिलत हिलत युवतिनिके अंचल॥
पग पटकत कुण्डल हिलत, मुख मटकत लचकत कमर।
हिलत हार मुख मुख मिलत, करत गान इत उत भ्रमर॥

क्रीड़ा कमलाकान्त करें कल बेनु बजावें।
रमनिनि राधारमन रमन करि रहसि रिझावें॥
पाइ बिहारी अंग संग बिहरें ब्रजबाला।
अस्त व्यस्त पट केश भये खिसकीं गलमाला॥
पाइ प्रेम प्रियको परम, अति प्रमुदित प्रमदा भईं।
आलिङ्गनतैं शिथिल अँग, मदमाती-सी बनि गईं॥

पुनि पुनि परसत अधर चुवावत रस बरसावत।
सहसा चुटकी भरत करत सी-सी हरषावत॥
दंतक्षत करि हँसत हियेपै नखक्षत करिकें।
पान प्रसादी देहिँ मुखनिमहँ रति रस भरिकें॥
करें कामिनिनिपै कृपा, स्वेद-बिन्दु पौंछें करनि।
सुधा मधुर मुसकानतैं, लखि मेंटत जियकी जरनि॥

ह्वैकें गोपी थकित श्यामके अंक बिराजें।
ललना ललित दुकूल पीत पट मिलि अति भ्राजें॥
सुहरावें तिनि अंग पौंछिँ मुख पुनि पुनि जोहैं।
निरखि चकोरिनि चन्द्र द्रवें त्यों नटवर सोहैं॥
भरत न चित चितचोरको, चितवत अपलक अलीगन।
गोपी मुख पंकज निरखि, भयो श्याम अलि मत्त मन॥

चले श्याम जल केलि करन बनि गायक मधुकर।
करत गान सँग चलत कँपकँपी उठति सखिनि उर॥
बायु डुलावत व्यजन सुशीतल मंद सुगंधित।
कृष्ण कँठमहँ डारि भुजा प्रमदा अति प्रमुदित॥
करनिनि सँग जल केलि ज्यों, करै करी अति हिय हरषि।
त्यों सखियनि सँग स्याम पुनि, करें खेल जलमहँ प्रविशि॥

बिविध भाँति जलकेलि करी हरि बाहर आये।
पुनि पट पहिरे प्रियनि संग बन उपबन धाये॥
भद्र, लोह, श्री, ताल, बकुल, भाण्डीर, महाबन।
खदिर, कुमुद मधु काम्य बारहों श्रीवृन्दाबन॥
बारह बन उपबन बहुत, केलि, केतकी, रास थल।
शेषशायि बन कैमद्रुम, सुललित, उत्सुक बन बिमल॥

इति श्रीभागवतचरितके पञ्चमाह में महारासलीला नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त।



अथ एकविंशतितमोऽध्यायः

[२१]

धन्य धन्य ब्रजधाम जहाँ पावन बन उपबन।
बृन्दाबन अति धन्य धन्य सब सखा सखी-गन॥
नंद यशोदा धन्य धन्य हैं वे ब्रजबासी।
जिन सँग हरि नित करें शयन बन भोजन हाँसी॥
वृन्दावन ब्रजधाम नित, ब्रजलीला परिहास नित।
गो गोपी गोलोक नित, परिकर रास बिलास नित॥

होवै गोपीभाव रासके दरसन पावें।
अभिमानी नर नारि नहीं तहँ फटकन पावें॥
नारद गोपी बने बने गोपी त्रिपुरारी।
अरजुन नर तहँ बने अर्जुनी गोपी प्यारी॥
रास रहस घनश्यामतें, अरजुनने पूछ्यो जबहिँ।
रस सरमहँ मज्जन कर्‌यो, पुरुषवेष बदल्यो तबहिँ॥

सरतैं निकसें अंगअंग महँ यौवन छायो।
तनुको सुन्दर बर्ण भयो मनु कनक तपायो॥
बिछुआ नूपुर पैर चुरी कर झनझन बाजें।
बनी रँगीली सखी कोटि रति द्युति लखि लाजें॥
त्रिपुरसुन्दरीने कृपा, करी कामिनी तनु भयो।
जातें श्रीरासेश्वरी, राधाजी दरशन दयो॥

हरि सँग रास बिलास कर्यो पुनि रससर न्हाये।
तुरत अर्जुनी रूप तज्यो प्रभु ढिँग पुनि आये॥
यों हरि कीन्हीं कृपा पार्थकूँ रास दिखायो।
नारद हू बनि सखी मनोबांछित फल पायो॥
समुझि सकैं नहिँ नीच नर, रास रहस अति गूढ़ हैं।
हरिलीला प्राकृत कहत, ते नर पापी मूढ़ हैं॥

सुनी रासकी कथा परीक्षित शंका कीन्हीं।
गुरुवर! हरि करि रास नरनि का शिक्षा दीन्हीं॥
परनारी संस्पर्श पाप सब शास्त्र बतावें।
थापन करिबे धर्म अवनि पै अच्युत आवें॥
च्यौं अधर्म कारज कर्यो, रक्षक ह्वैकें धर्मके।
परनारिनितैं रति करी, साक्षी ह्वैकें कर्मके॥

हँसि बोले शुकदेव—कृष्णकूँ पाप न परसे।
रबि रस सबतैं लेहि शुद्ध करि सब थल बरसे॥
नालो गंगा मिलत नाम गुन अपनो खोवै।
चाहें जो कछु परे अग्निमहँ स्वाहा होवै॥
सब कछु समरथ करि सकें, विधि निषेध तिनिकूँ नहीं।
अनिल अशुचि नित प्रति भखत, खाय मलिन होवै कहीं॥

समरथको प्रतिकूल आचरन करिहैं प्रानी।
पावैं दुख इहलोक होहि परलोकहु हानी॥
कियो शम्भु बिषपान हलाहल हमहूँ करिहैं।
सोचि करें अनुकरन मौतिके बिनु ते मरिहैं॥
बेद शास्त्र गुरु वाक्यकूँ, धर्म समुझिकें जे करहिँ।
सुखी होहिं बिपरीत करि, दुख पावैं नरकनि परहिँ॥

है सब दुखको मूल अहंता ममता जगमहँ।
मैं मेरीमहँ फँस्यो जीव भटकै भव-मगमहँ॥
बुद्धि न होवै लिप्त अहंता जाकूँ नाहीं।
चाहें सो वह करै बँधे नहिँ बन्धन माहीं॥
अर्थ अनर्थ न विज्ञकूँ, करै अशुभ वा शुभ करम।
अहंकारतैं होत है, यह अधर्म यह है धरम॥

करिकें शुभ अरु अशुभ कर्म फल भोगहिँ मानी।
अनिल गंग रवि सरिस रहै निरमल नित ज्ञानी॥
ज्ञानी हू जग रहै कमल-दल जलमहँ जैसे।
तब हरि सर्व-समर्थ बँधे बन्धनमहँ कैसे॥
सबके साक्षी सर्वगत, अखिल जगपति अज अमल।
तिनकूँ पर अरु अपर का, घटघट बासी विभु विमल॥

जग है दुख की खानि दुखी सब जगके प्रानी।
पावें दुख अरु मृत्यु जरा ज्ञानी अज्ञानी॥
अज्ञानी जग सत्य समुझि बन्धन बँधि जावें।
ज्ञानी समुझें सत्य कृष्णलीला-सुख पावें॥
अज अच्युत हू अवनिपै, मानुष तनुतैं अवतरें।
करन अनुग्रह सबनिपै, श्याम सरस लीला करें॥

जीव जगत अरु ब्रह्म बात कछु लगति अलौंनी।
तातें क्रीड़ा करहिं कृष्ण अति सरस सलौंनी॥
गोपी अरु श्रीकृष्ण मिलन सुनि हिय सरसावै।
सुनिकें प्रेम प्रसंग देह पुलकित ह्वै जावै॥
जो सांभरकी झीलमें, कैसे हू परि जाइगो।
तो फिर अपनो रूप तजि, तुरत नौंन बनि जाइगो॥

चिदानन्द घनश्याम देह प्राकृत नहिं तिनकी।
गोपी शक्ति अनंत दिव्य चिन्मय हैं उनकी॥
शक्तिमानतैं शक्ति विलग होवै नहिं ऐसे।
ज्यौं श्रीशिवतैं शिवा बिष्णुतैं कमला जैसे॥
अपनेतैं अपनो मिलै, कितनो सरस प्रसंग है।
मनमोहनतैं मन मिल्यो, पुनि नहिँ दूसर अंग है॥

ऊंच नीच निज अङ्ग हाथ सबहीकूँ परसै।
पावै प्रियको परस हृदय तन मन अति सरसै॥
विषयनिमहँ फँसि जीव दुखी तिनितैं ह्वै जावैं।
दिव्य देहतैं होहि दिव्य सुख सब नहिं पावैं॥
जब तक प्राकृत भावना, तब तक होवै रास नहिं।
दिव्य देह होवै जबहिं, गोपी बनि नाचै तबहिं॥

दिव्य देहतैं रास रच्यो गोपी प्रभुके सँग।
पति शैयापै परे रहे प्राकृत तिनके अँग॥
तातैं निंदा नहीं करी काहूने उनकी।
समुझि सके को दिव्य रहसमय लीला तिनकी॥
हरिके रास बिलास महँ, दोषारोपन जे करैं।
कहैं जाहि व्यभिचार जे, ते पापी नरकनि परैं॥

यों वृन्दाबनमाँहिँ रास अति रसमय कीयों।
धरि नर बपु अति सुघर परस सुख गोपिनि दीयो॥
रसकी सरिता सुखद श्यामने सतत बहाई।
लीला जो गोलोक होहि सो अवनि दिखाई॥
करि करि क्रीड़ा कामकी, करीं कृतारथ कामिनीं।
होहिं सुमिरि सब सुखी नर, लीला अति मनभाविनीं॥

निज निज घर पुनि प्रात होत आईं ब्रज-नारीं।
यों नित क्रीड़ा करें कृष्ण प्यारी सुखकारीं॥
जो नर श्रद्धा सहित रास लीलाकूँ गावें।
पढ़ें सुनें सुख लहें अन्तमहँ प्रभुपद पावें॥
बार बार जे प्रेमतैं, गद्य पद्य महँ गायँगे।
तिनके हियके रोग सब, काम क्रोध नसि जायँगे॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाह में रासपंचाध्यायी नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त।

[मासिक पारायण इक्कीसवें दिन का विश्राम]



अथ द्वाविंशतितमोऽध्यायः

[२२]

अब आगेकी कथा अम्बिकाबनकी मुनिवर।
सुनो कर्‌यो जो खेल तहाँ नँदनन्दन नटवर॥
एक समयकी बात अम्बिका शिव पूजन हित।
गये गोप लै सकट करी पूजा तहँ विधिवत॥
तट सरस्वतीके बसें, करि केवल जलपान सब।
आयो अजगर दैवबश, सोये सुखतैं नन्द जब॥

अहि पग पकर्‌यो नंद उठे चिल्लाये—आओ।
शरणागत प्रतिपाल कृष्ण मम बिपति मिटाओ॥
सुनि सब आये गोप सर्पकूँ बहु बिधि मारें।
परि नहिं छोड़े पैर कृष्णकूँ नन्द पुकारें॥
नँदनन्दन आये तुरत, अहि सिरपै पग धरि दयो।
पाइ परस पग सर्प तनु, तजि बिद्याधर ह्वै गयो॥

प्रभु पूछें—तुम कौन योनि च्यों अजगर पाई।
सुनि बोल्यो अहि—कहूँ कथा निज सुनहु कन्हाई॥
हौं बिद्याधर प्रथम सुदर्शन सुन्दर सबतैं।
सुन्दरता विख्यात भई मद बाढ़्यो तबतैं॥
लखि कुरूप मुनि हँसि पर्‌यो, मदबश भूल्यो धर्मकूँ।
सुख दुख दूसर देहिँ नहिँ, सब भोगें कृत कर्मकूँ॥

लखि अशिष्टता मुनिनि शाप दीयो होओ अहि ।
सुनत भयो मद चूर ऋषिनिके पर्‌यो चरन गहि ॥
ह्वै प्रसन्न मुनि कही—नन्दनन्दन उद्धारें ।
अब कृतार्थ हौं भयो नेहतैं नाथ निहारें ॥
करि बिनती आयसु लई, गयो सुदर्शन लोक निज ।
ब्रजमहँ आये गोप सब, कथा अन्य अब सुनहु द्विज ॥

एक दिवस बल सहित श्याम सखियनि सँग बनमहँ ।
बिहरत इत उत नेह नीर उमड़त अति मनमहँ ॥
मधुर राग स्वर ताल ललित लययुत हरि गावें ।
बिश्व बिमोहन गान गाइ गोपिनि हरषावें ॥
मन्त्र मुग्ध सम सब सखीं, भईं न सुधि तन पट कहाँ ।
तबई अनुचर धनदको, शङ्खचूड़ आयौ तहाँ ।

कामीं हियमहँ काम बान नारिनि लखि लाग्यो ।
लई सुन्दरी पकरि दुष्ट उत्तर दिशि भाग्यो ॥
गोपी करति बिलाप भगे बल हरि पीछे जब ।
छोड़ि भग्यो हरि कर्‌यो शीश धड़तैं न्यारो तब ॥
सिरचूड़ामणि लाइकें, बलदाऊकूँ दै दई ।
शंखचूड़ उद्धारकी, कथा समापत ह्वै गई ॥

शौनक पूछें—सूत ! कहो कैसें गोपी-गन ।
बिनु हरि दरशन रहें जाइँ जब गोचारन बन ॥
सूत कहें—लै धेनु बेनुधर बन जब जावें ।
तब सब गोपी गीत कृष्णके हिलि मिलि गावें ॥
युगल गीत गावें सुनें, हरि लीला चिन्तन करें ।
तनु पुलकित मन मोदयुत, नेह नीर नयननि भरें ॥

प्रथम गीत

गिरधर मुरली मधुर बजावैं।
कर कपोल धरि राग अलापत, बाँकी भ्रकुटि नचावैं ॥१॥
मुख फूँकत मुरली को पुनि पुनि, छेदनि अँगुरि फिरावैं।
सुनत मधुर स्वर सुर ललनागन, सुमन सरनि विधि जावैं ॥२॥
खिसकति नीवी सुमन झरत कच, खुलि इत उत फहरावैं।
लज्जा बश बिसमित-सी ह्वैकें, तनु सुधि बुधि बिसरावैं ॥३॥
कोकिलकंठी सुमिरि सुमिरि हरि, नयननि नीर बहावैं।
धन्य धन्य व्रजकी वे बनिता, नित गोविँद गुन गावैं ॥४॥

द्वितीय गीत

मोहन मुरली मधु बरसावति।
मत्त करति महिलनिके मनकूँ, कुलकी कानि नसावति ॥१॥
अचर सचर अरु सचर अचर करि, विधिकी रेख मिटावति।
सुनि व्रजबनिता यमुना सरिता, गति मति सब बिसरावति ॥२॥
दशन दाबि तृन हरिन बधूटी, सुनि धुनि दौरी आवति।
धेनु छोरि तृन बेनु श्रवन करि, श्रवननि शंकि उठावति ॥३॥
चित्र लिखित सब इकटक ठाढ़ीं, पलकनि नाहिं हिलावति।
लाज काज घरके छुड़वावति, हठि बन बेंनु बुलावति ॥४॥

तृतीय गीत

आली हम अबला हतभागिनि।
बोलि न सकैं श्यामतैं मुँहभरि, करि न सकैं पालागनि ॥१॥
जब हरिरूप निहारति इकटक, अँखियाँ जल भरि बैरिनि।
बिघन करत निरखन नहिं देवैं, झाँपैं आँसू नैंननि ॥२॥

इत उत निरखि परसि पग डरपैं, सासु जिठानी ननदनि।
दीखें बूढ़े, बड़े, दूरितैं, हठि हम ढाँकें बदननि ॥३॥
हम समान यमुना हू अबला, चूमन चाहे चरननि।
किन्तु न चूमि सके बनि निश्चल, रोकति तुरत तरङ्गनि ॥४॥

चतुर्थ गीत

जो हम ब्रजकी रज बनि जातीं।
तो निशंक ह्वै आली हरिके अंगनिमहँ लिपटातीं ॥१॥
प्रिय पद परसि पुलकि सँग धावति, तनिक न लोक लजातीं।
अलक पलक अरु झलक कपोलनि की द्यु ति अधिक बढ़ातीं ॥२॥
जो घन बरसत पंक होहि, पग प्यारे के सटि जातीं।
लोक बेद कुल-कानि न मानति, द्वारेपै जमि जातीं ॥३॥
देखत देखत सबके निर्भय, श्याम परस सुख पातीं।
घूँघट पटकी ओट न निरखति, नैंननमें भरि जातीं ॥४॥

पंचम गीत

यशुमति ! मुरली हरि कहँ पाई।
कौनें कान छेदिकें जाकूँ. नककनछिदी बनाई ॥१॥
कौनें मलि मलि चिकनी कीन्हीं, कौनें सौति पढ़ाई।
कौनें दई श्यामके करमहँ, मोहनकूँ च्यौं भाई ॥२॥
जादू टोना जिह कहँ सीखी, कौनें कला सिखाई।
जाके मुखपै मुखकूँ धरिकें, गावत गीत कन्हाई ॥३॥
बाजे तजे मुरुज बीणा बर, लकरी च्यौं अपनाई।
मैया ! तेरे सुतकी मुरली, ब्रज-बनितनि दुखदाई ॥४॥

षष्ठम गीत

बनतैं आवत श्रीगिरधारी।
सबहिं श्रवन दै सुनहु सहेली, बजी बाँसुरी प्यारी ॥१॥
धेनु खुरनिकी धूरि उड़ति नभ, कोलाहल अति भारी।
गावत गीत ग्वाल सब मिलिकैं, नाचत बीच बिहारी ॥२॥
मलिनमुखी हम निशि सम नारी, बिनु हरि सदा दुखारी।
कृष्णचन्द्र ब्रज-चन्द्र खिलैं नभ, तब हम चन्द्र उजारी ॥३॥
मिटै ताप संताप तबहिँ जब, दृष्टि परैं बनवारी।
चलो चलैं चित चोर बिलोकैं, ठाढ़े कृष्ण मुरारी ॥४॥

सप्तम गीत

अब तो सखि संताप बिसारो।
मंद मंद मुस्कात मदन सम, सम्मुख श्याम निहारो ॥१॥
अरुन नयन मदमाते मनहर, मोर मुकुट सिर प्यारो।
कोमल लोल कपोलनि ऊपर, कुंडल करत उजारो ॥२॥
शशि सम शीतल सुखद श्याम मुख जीवन प्रान हमारो।
रस बरसावत सैंन चलावत गावत नंददुलारो ॥३॥
खोजो नयन विकलता त्यागो, मनमहँ धीरज धारो।
आइ गये बनतैं अब तो हरि, तन मन तिनिपै वारो ॥४॥

उल्लाला—ब्रज बनिता बिरहिनि बनी, मन मनमोहन महँ फँस्यो।
सब मिलि हरि सुमिरन करति, नेह बान हियमहँ धस्यो ॥

सोरठा—निशि दिन लीला गान, यह अहार तिनिको सतत।
करें रूप रस पान, हरि चिन्तन महँ नित निरत ॥

हरिलीला आहार पान करि काल बितावें।
सब कछु कारज करें किन्तु नहिँ कृष्ण भुलावें ॥
पालें यम अरु नियम बैठि आसन सब साधें।
करिके प्राणायाम धारणा धरि आराधें ॥
करि प्रभु प्रत्याहार पुनि, ध्यान समाधि लगाइकें।
सदुपयोग पल पल करहिँ, हरिलीला नित गाइकें ॥

एक दिवसकी बात अरिष्टासुर ब्रज आयौ।
रूप छिपायौ दैत्य बैलको बेष बनायौ।
खुरतैं खोदत मही रम्हावै सींग चलावै।
बार-बार मल-मूत्र करै खल खेल दिखावै ॥
गिरत गर्भ गैयानिके, बृषभ शब्द भीषन करत।
सकल गोप गोपी डरत, खल हरिकूँ खोजत फिरत।

आवत लख्यो अरिष्ट दुष्ट श्रीहरि ललकार्‌यो।
भयो कुपित अति असुर श्यामने थप्पड़ मार्‌यो ॥
सींग उखारे पकरि भयो निरबल डकरायौ।
मुखतैं उगिलै रक्त बृषभ प्रभु मारि गिरायौ ॥
असुर मारि ब्रजमहँ गये, साधु साधु सबई कहें।
कृष्ण बाहु पालित सकल, ब्रजबासी निर्भय रहें ॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें अजगर शंखचूड़ अरिष्टोद्धार नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त।

अथ त्रयोविंशतितमोऽध्यायः

[२३]

अब मथुराकी बात कंसकी सुनहु महामुनि।
भोजराज अति दुखित भयो बृषभासुर बध सुनि ॥
मंत्र हेतु सब सचिव सभामें कंस बुलाये।
तबई कीर्तन करत देवऋषि नारद आये।
नारदजीने पोल सव, दई खोलि बसुदेवकी।
रोहिनि सुत बलदेव हैं, जने कृष्ण सुत देवकी ॥

सुनि अति कोप्यो कंस तीक्ष्ण करवाल निकारी।
काढ़ूँ सिर बसुदेव छलीको बात बिचारी ॥
नारद रोक्यो तऊ कैदि पतिनी सँग कीये।
शल, तोशल, चाणूर टेरि सब मंत्री लीये ॥
कहै कंस—सब सभासद, सुनहु आज नारद कहत।
मम रिपु बृन्दाबन बसत, राम कृष्ण बसुदेव-सुत ॥

धनुरयाग इक करौ भूतपतिकूँ आराधौ।
जैसे मम रिपु मरे काज मिलि जुलि सब साधौ ॥
द्वन्द युद्ध नर करहिं बिकट दंगल करवाऔ।
करौ निमंत्रित सबनि राम अरु श्याम बुलाऔ ॥
दोऊ भैया अति बली, बल तिनिके तनमहँ अमित।
गाय चरावें पय पियें, माखन मिश्री खायँ नित ॥

दंगल सुनिकें रामकृष्ण गोपनि सँग आवें।
तिनि जे मारें मल्ल पारितोषिक ते पावें॥
पुनि हस्तिपतैं कहै—पुरानो तू मम साथी।
मत्त कुवलयापीड़ द्वारपै रखियो हाथी॥
आवें दोऊ बन्धु जब, तब हाथी दौड़ाइकें।
दीजो दोउनिकूँ कुचिल, अंकुश मारि रिस्याइकें॥

यों सबकूँ समुझाइ कंस अक्रूर बुलाये।
करिकें बहु सम्मान प्रेमतें पास बिठाये॥
कहै—मित्र! तुम सदा रहे हमरे हितकारी।
अति हो सज्जन नहीं प्रशंसा करूँ तुम्हारी॥
आज काज गुरुतर परम, वृन्दावनमहँ जाइकें।
राम कृष्ण बसुदेव-सुत, लावो तिनहिँ लिवाइकें॥

भयो देवकी व्याह भई तब नभतैं बानी।
जाको अष्टम पुत्र हनें तोकूँ अज्ञानी॥
निरखि देवकी बध करिबे उद्यत मोकूँ जब।
हाथ पकरिकें रोकि कही बसुदेव बात तब॥
सौंपि देहुँ बध मत करो, तनय देवकीके सबहिं।
किन्तु सात दै छल कर्‌यो, कहि नारद गमने अबहिं॥

राम कृष्ण मरवाइ फेरि बसुदेवहिं मारूँ।
उग्रसैनकूँ मारि राज्यतें अरिनि निकारूँ॥
सुनि बोले अक्रूर—नृपति! खाओ मत तुम भय।
होनी ह्वैके रहै यही वेदनिको निश्चय॥
पुरुषारथ कर्तव्य है, फल प्रारब्ध अधीन हैं।
सिद्धि असिद्धि समान जे, लखें नहीं ते दीन हैं॥

झिड़कि कहे पुनि कंस—मोहि उपदेश न दीजे।
कहूँ करन जो काज ताहि सत्वर अब कीजे॥
सुनि बोले अक्रूर—धर्मकी बात बताई।
होनी अति बलवान आपुके मन नहिँ भाई॥
आयसु सिर धरि भूपवर, काल्हि नंद-ब्रज जाउँगो।
रथ चढ़ाइ गोपनि सहित, रामकृष्णकूँ लाउँगो॥

सुनि प्रसन्न ह्वै कंस गयो भीतर महलनिके।
इत केशी बनि अश्व गयो ढिँग ब्रजबासिनिके॥
असुर समुझि सब लोग डरें भागें इत उतकूँ।
हिनहिनात खल फिरत निहारत नंदनँदनकूँ॥
दुष्टदलन लखि दैत्यकूँ, सिंहनाद भीषन करयो।
सम्मुख खल मुख फारिकें, झपट्यो नहिं मनमहँ डरयो॥

पिछले पकरे पैर दैत्यकूँ श्याम घुमायौ।
सौ धनु फेंक्यों दूरि गिरयो सुररिपु घबरायौ॥
पुनि उठि काटन हेतु फारि मुख हरि ढिँग आयौ।
मुँहमहँ डारयो हाथ दैत्य हय मारि गिरायौ॥
ब्रजबासी प्रमुदित भये, बरसावें सुरगन सुमन।
बृन्दावनमहँ देवऋषि, पहुँचे गावत कृष्ण गुन॥

करि इस्तुति बहु भाँति कहें—प्रभु! नरबपु धारयो।
सुररिपु मारे अमित अबहिं खल केशी मारयो॥
परसों मथुरा जाइ केश गहि कंस पछारें।
नरकासुर, मुर, पवन, शङ्ख असुरनि पुनि मारें॥
ब्याह करें सोलहसहस, सुखमय लीला करिङ्गे।
कल्पवृच्छकूँ स्वर्गतैं, प्रिया हेतु हरि हरिङ्गे॥

धर्मराजके राजसूयकूँ पूर्ण करावें।
बूआसुत शिशुपाल दुष्टकूँ मारि गिरावें॥
पार्थ सारथी बनें अस्त्र लैंगे नहिं करमहँ।
काल रूपतैं करैं प्रलय कुरुक्षेत्र समरमहँ॥
सर्वेश्वर सबके सुहृद, परमानंद स्वरूप प्रभु।
यदुकुल-भूषन भुवनपति, बिश्वम्भर बिश्वेश बिभु॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाह में कंसचिंता केशीउद्धार नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त।



अथ चतुर्विंशतितमोऽध्यायः

[२४]

करिकैं नारद बिनय बिहँसि बैकुण्ठ सिधाये।
इत गैयनि लै ग्वाल संग बन गिरिधर आये॥
भेड़-चोरको खेल भयो ब्योमासुर आयो।
ग्वाल बालको बेष असुरने सुघर बनायो॥
कछु भेड़ बालक बने, चले ग्वाल कछु चोर बनि।
चोरनिमहँ मिलि ब्योमहू, गुहा छिपावै खल सबनि॥

ढापि गुहा मुख देहि शिलातैं सुर संतापी।
भक्तबछल भगवान् जानि सब पकर्यो पापी॥
बृक सम दयो दबोचि सिंह सम गर्जन कीन्हीं।
वलिके पशु-सम मारि मुक्ति सुररिपुकूँ दीन्हीं॥
ग्वाल निकारे गुहातें, ब्योमासुरकूँ मारिकैं।
आये व्रज मिलि सखनि सँग, बनतैं गाय चराइकैं॥

इत यादव अक्रूर कंस आयसु सिर धरिकैं।
अपर दिवस व्रज चले हरषि हरि सुमिरन करिकैं॥
मगमहँ सोचत जात आज हौं हरि ढिँग जाऊँ।
करि हरि-दर्शन मनुज देहको शुभ फल पाऊँ॥
परूँ पगनिमहँ प्रभु झपटि, मोकूँ हिये लगाइँगे।
जनम-जनमके सकल अघ, श्याम परसि कटि जाइँगे॥

जिन चरननिकूँ सतत योगिजन हियमहँ ध्यावैं।
जिनकूँ कमला सदा हियेतैं हरषि लगावैं॥
कमल सरिस जे चरन अजादिक द्वारा बन्दित।
जाके आश्रय पाइ होहिं प्रानी अति प्रमुदित॥
तिनि चरननिमहँ जाइकें, दण्ड सरिस हौं परुङ्गो।
यों जगजीवन सफल अब, नंदगाँवमहँ करुङ्गो॥

सहसा रथतैं उतरि अश्रुजल पाद्य चढ़ाऊँ।
हिय लगाइ हरि लेहिं लिपटि चरननिमहँ जाऊँ॥
जानि शत्रु को दूत अनादर करहिं न गिरिधर।
जानत सबके भाव सर्वगत हरि विश्वम्भर॥
मधुर मधुर मुसकाय मम, रामकृष्ण कर गहिङ्गे।
कोकिल कूजित कंठतैं, काका काका कहिङ्गे॥

हरि हित सरबसु तजहिं भक्तबर तेई त्यागी।
अपनावें अखिलेश जाइ सो जग बड़भागी॥
घरके भीतर पकरि तात कहि हरि लै जावें।
करि सब बिधि सत्कार प्रेमतैं पास बिठावें॥
जाति कुशल पूछहिं जबहिं, तब कछु नाहिं छिपाउँगो।
दुष्ट कंस व्यवहार सब, सर्वेश्वरहिँ बताउँगो॥

यों बहुबिधि अक्रूर मनोरथ करत जात मग।
निरखे उभरे अवनि माँहिं श्रीनँदनन्दन पग॥
वज्र, कमल, यव आदि दिव्य चिह्ननितें चिह्नित।
समुझी जीवनमूरि भये अतिशय आनन्दित॥
निरखत प्रभु पदरज मुदित, तुरत कूदि रथतैं परे।
तनु पुलकित गद्गद हृदय, नयन नेह जलतैं भरे॥

पायो श्रीअक्रूर जगतमहँ नरजीवन फल।
करि करि हरिकी यादि नेहमहँ अतिशय विह्वल ॥
पल-पल छिन-छिन समय सुमिरि श्रीश्याम बितायो।
जग जीवनको लाभ संतजन जिही बतायो ॥
चरन-चिह्न प्रभुके परसि, मदमातेसे ह्वै गये।
कछु सचेत ह्वै हाँकि रथ, नन्दगाँवकूँ चलि दये ॥

गोशालामहँ पहुँचि राम अरु श्याम निहारे।
नील पीत पट पहिन खड़े गोरे अरु कारे ॥
काननि कुंडल कलित ललित बनमाला मनहर।
दोऊ अतिई सुघर सुखद शोभित अति सुन्दर ॥
गाय दुहावन हित खरे, जनु सिँगार द्वै तनु धरे।
करि दर्शन अक्रूरजी, दंड सरिस महिपै परे ॥

माधव माधव लखे दौरि सत्वर ढिँग आये।
हरि बलपूर्वक पकरि प्रेमतैं हिये लगाये ॥
पुनि भेंटे बलराम काम तजि घरपै लाये।
करि बिधिवत् सत्कार स्वादु भोजन करवाये ॥
नन्दराय भेंटे ललकि, पुनि पूछी सबकी कुशल।
गये नन्द ब्यालू करन, बात करें घनश्याम बल ॥

श्रीहरि पूछें—तात, कहो ब्रज कैसे आये।
समाचार अक्रूर आदितैं सबहिं सुनाये ॥
कृष्णचन्द्र मम काल दुष्ट यह सब कछु जानें।
कंस क्रूरता करै यादवनि बैरी मानें ॥
नारदतैं तव जन्मकी, सुनत क्रोधमहँ भरि गयो।
भैया भाभीकी तबहिं; हत्या हित उद्यत भयो ॥

नारद रोक्यो युक्ति यज्ञकी ताहि बताई।
भेज्यो लैवे मोइ दुष्टकी मति बौराई॥
कपट-यज्ञ करि चहे मारिबो तुमकूँ स्वामी।
बोले हरि—अब मरे ममा रोवें सब मामी॥
पुनि बोले नँदरायतैं, बाबा! मथुरा जायँगे।
चरख चढ़ें दङ्गल लखें, गुलगप्पा हू खायँगे॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें व्योमोद्धार अक्रूरागमन नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त।

अथ पञ्चविंशतितमोऽध्यायः

[२५]

सुनि गोपनि सँग नन्द गमन की करत तयारी ।
इत रासेश्वर गये कुंज जहँ राधा प्यारी ।।
कीयो बहु बिधि प्यार हरष राधा नहिँ मनमहँ ।
सुमिरि सुमिरि प्रिय बिरह दाह होवै सब तनमहँ ।।
समुझावें बहु विधि सदय, ह्वै हरि हृदय लगाइकें ।
अश्रु पौंछि निज करनितैं, पुनि पुनि धीर बँधाइकें ।

बिलखति राधा कहति—प्रानपति ! यदि तुमजाओ ।
तो नहिं जीवत मोइ फेरि बरसाने पाओ ।।
निशा चन्द्र बिनु नदी नीर बिनु सोह न जैसे ।
देह प्रान बिनु मृतक बनै तुम बिनु हौं तैसे ।।
मछली जल बिनु नहिं जिये, पिये चातकी स्वाति जल ।
त्यों तुमरे बिनु प्रानपति, होहिं हृदय अतिई बिकल ।।

हरि समुझाई प्रिया कुञ्जतैं आये घरमहँ ।
जावें मथुरा श्याम बात फैली सब व्रजमहँ ।।
गोपी सुनि सब दुखित भईं हिय अति अकुलायो ।
करि करि हरिकी यादि सबनिको मुख मुरझायो ।।
बिधिकूँ कोसें कुपित ह्वै, नन्दभवन ढिँग आइकें ।
मिलि बिलाप सबई करें, नयननि नीर बहाइकें ।।

कहें—विधाता परम अज्ञ तू बालक सम है।
सुन्दर श्याम सरूप दिखायो हमें प्रथम है॥
भई तृप्ति नहिं तऊ छीनिवे अब तू आयौ।
काम क्रूर अति करै नाम अक्रूर धरायौ॥
भये गोप बैरी सकल, जावें हम किहिके निकट।
परम क्रूर अक्रूर है, नन्दनँदन निर्दय निपट॥

रथपै बैठत श्याम निरखि हमकूँ मुख मोरें।
लावें छकरा गोप बैल तिनिमें ते जोरें॥
जाहिं कहाँ का करें निवारैं हरिकूँ कैसें।
करें लाज तजि वही रहें माधव व्रज जैसें।
रथ-पथमहँ लोटो सकल, सत्याग्रह सब मिलि करौ।
जान न पावें नँदनँदन, लोक लाज चूल्हे परौ॥

कैसें अबला नारि निवारैं हरिकूँ बलतैं।
नहिं दीखेंगे श्याम हाय! अब व्रजमहँ कलतैं॥
अब न मंद मुसकानयुक्त मुख मनमोहनको।
दीखैगो नहिं मिटै ताप संतापित तनको॥
निशा बिताईं श्याम सँग, निभृत निकुञ्जनिमहँ सरस।
मिलैं न रास बिलासमहँ, अब आलिङ्गन हरि दरश॥

उड़गन तेज मलीन निरखि पुनि भये उदित रबि।
व्रज बनितनिको बिरह दुसह अति बरनें को कबि॥
राम श्याम रथ चढ़े यशोदा रोवति आई।
रथके चारिहुँ ओर फिरै शिशु बिनु जिमि गाई॥
कुररी सम रोवति सकल, राम! श्याम! सब मिलि कहति।
डकरावति हा-हा करति, अश्रुधार सबके बहति॥

इत नन्दादिक गोप सकल मिलि द्वारें आये।
पाग दुपट्टा पहिन स्वयं सजि बैल सजाये॥
हाँक्यो रथ अक्रूर घंटिका चहुँदिशि बाजैं।
रथ के पीछे दुखित गोपिका रोवति भाजैं॥
मूर्छित ह्वै गोपीं गिरीं, रथ अति आगे बढ़ि गयो।
दीखी ध्वज रज फेरि सब, आँखिनितैं ओझल भयो॥

भई निराशा लौटि सखी निज निज घर आईं।
इत रथ आगे बढ़्यो दई रविसुता दिखाईं॥
रबि सिर ऊपर निरखि न्हाइबे रथ ठहरायो।
राम श्याम पय पान कर्‌यो अक्रूर जतायो॥
बैठो रथपै आइ तुम, न्हाइ करूँ सन्ध्या अबहिं।
यों कहि जल बुड़की दई, लख्यो दृश्य जलमहँ तबहिं॥

श्रीअनन्त फण सहस मुकुट मणिमय सिर सोहें।
गोदीमहँ घनश्याम बिराजें जन मन मोहें॥
कर,कपोल,कटि,कुटिल केश सब अँग अति मनहर।
कंकण, कुंडल कलित करधनीं आभूषणधर॥
लखि अद्भुत इस्तुति करी, दरशनतैं प्रमुदित परम।
बोले—हरि ! अपवर्गपति, काम अर्थ तुमहीं धरम॥

अक्रूर-स्तुति

जय राम हरे जय कृष्ण हरे। तुमने ही जड़ चैतन्य करे॥
माया तुमरी है अति अपार, पावैं कैसे ये जीव पार।
हैं नित्य निरञ्जन निराधार, तब युगल चरनमहँ नमस्कार॥
अघ नाम जपततैं सकल जरे॥१॥ जय राम हरे०

सब रूपनितैं तुमकूँ ध्यावैं, सब नामनितैं तुमकूँ गावैं।
सबके चरननिमें सिर नावें, ते अवसि धाम तुमरो पावैं॥
अगनित पामर खल जीव तरे॥२॥ जय राम हरे०

हैं शक्ति शाक्त भक्तनिके हित, वैष्णव ध्यावें श्रीविष्णु अमित।
गनपति रवि शिव हैं आपुअजित, सिरतव चरननिमें नाथ नमित॥
अवतार जगतहित अमित धरे॥३॥ जय राम हरे०

जड़ जीव भ्रमें तममें फँसिके, बन्धन स्वीकारें हँसि हँसिके।
पकड़्यो हौं मायाने कसिकें, बिगड़्यो विषयनिके बिच बसिकें॥
दै दरशन सब अघ देव हरे॥४॥ जय राम हरे०

जय जय यदुनन्दन हृषीकेश, जय जय करुनानिधि प्रभु व्रजेश।
जय जय गोपीश्वर राधिकेश, जय वासुदेव प्रद्युम्न शेष॥
हम सेवक प्रभुके पगनि परे॥५॥ जय राम हरे०

छप्पय—यों जमुनाजल माँहिँ करी अक्रूर विनय हरि।
प्रभु अन्तरहित भये छिपै नट ज्यौं अभिनय करि॥
जब नहिं निरखे श्याम उछरि जल ऊपर आये।
चहुँदिशि ह्वैकें चकित लखें कित कृष्ण बिलाये॥
शेष करम करि पट बदलि, यमुनातट ठाढ़े भये।
पट निचोरि जलपात्र भरि, सूधे रथपै चलि दये॥

दरशनतैं अति चकित तुरत रथके ढिँग आये।
पुनि मथुराकी ओर बैठि रथ अश्व चलाये॥
पहिलेतैं ही गोप बागमहँ डेरा डारे।
करत प्रतीक्षा राम श्याम लखि भये सुखारे॥
हरि हँसि बोले—चचाजी! रथलै मथुरा जाउ तुम।
कबहूँ चाची हाथके, माल उड़ावें आइ हम॥

समुझि गये अक्रूर श्याम अबहीं नहिं जावें।
मारि कंसकूँ बन्धु सहित मेरे घर आवें॥
रथलै पहुँचे कंस निकट सब वृत्त सुनायो।
राम श्याम आगमन सुनत खल अति हरषायो॥
घर पहुँचे अक्रूर इत, उत हरि अति उत्सुक भये।
ग्वाल बाल बल सहित लै, मथुरा निरखन चलि दये॥

देखी मथुरापुरी सजी नव बधू सरिस अति।
घर घर बन्दनवार पताका ध्वज शुभ सोहति॥
परम रम्य उद्यान मनोहर घर पथ मन्दिर।
परिखा चहुँदिशि खुदी सुघर गोपुर अति सुन्दर॥
विद्रुम, मोती, नील, मणि, बेदिनिमहँ जगमग करत।
शुक पिक पारावत मधुर, करि कलरव इत उत फिरत॥

शुभागमन वसुदेव सुतनिको सुनि सब नारीं।
तनकी सुधि बुधि भूलि चलीं जनु चन्द्र उजारीं॥
असन बसन परिधान न्हान अंजन तजि भागीं।
चितवति लीला सहित श्याम शोभा अनुरागीं॥
अटा अटारिनिपै चढ़ीं, रूपसुधा नयननि भरहिं।
मूँदि नयन हियभावतैं, पुनि पुनि आलिङ्गन करहिं॥

इति श्रीभागवतचरितके पञ्चमाहमें मथुरागमन नामक
पचीसवाँ अध्याय समाप्त।

अथ षड्‌विंशतितमोऽध्यायः

[२६]

मथुरामहँ हरि रूप सुधाको स्रोत बहायो।
तबई लैकें धुवे बसन धोबी तहँ आयो॥
रँगे रँगाये धुवे सुघर पट लखि बोले हरि।
देहु चौधरी नील पीतपट हमहिं कृपाकरि॥
रङ्गकार उद्धत रजक, बोल्यो आँखिनि लाल करि।
च्यौं छोरा बौरे भये, अबहिं लेइगें चर पकरि॥

बनचारी तुम ग्वाल कबहुँ देखे अस अम्बर।
जाउ चराओ गाय लपेटो कारो कम्बर॥
सुनि धोबीकी बात श्याम तकि मुक्का मार्‌यो।
धड़तैं सिर करि पृथक बीच चौराहे डार्‌यो॥
भगदड़ धोबिनिमहँ मची, डारि वस्त्र सबई भगे।
रामश्याम गोपनि सहित, चुनि चुनि पट पहिनन लगे॥

ढीले ढाले पहिन वस्त्र हरि आगे आये।
बायक निरखे श्याम आइ मृदु बचन सुनाये॥
काटि छाँटिकें प्रभो! बेष हौं सुघर बनाऊँ।
करिकें कछु कैंकर्य मनुज जीवन फल पाऊँ॥
मानी यदुवरने विनय, बायक पट अनुपम किये।
सजे सजाये करिकलभ, सम हरि बल शोभित भये॥

अति प्रसन्न हरि भये कृपा बायकपै कीन्हीं।
लक्ष्मी, बल, ऐश्वर्य, भक्ति अनपायिनि दीन्हीं॥
लौकिक सुख परलोक मोक्ष फल दोऊ पाये।
बायक भयो कृतार्थ लौटि प्रभु पुनि पथ आये॥
ग्वाल बाल बलदेव सँग, हँसत जात मोहनमदन।
आगे माला हार युत, निरख्यो मालीको सदन॥



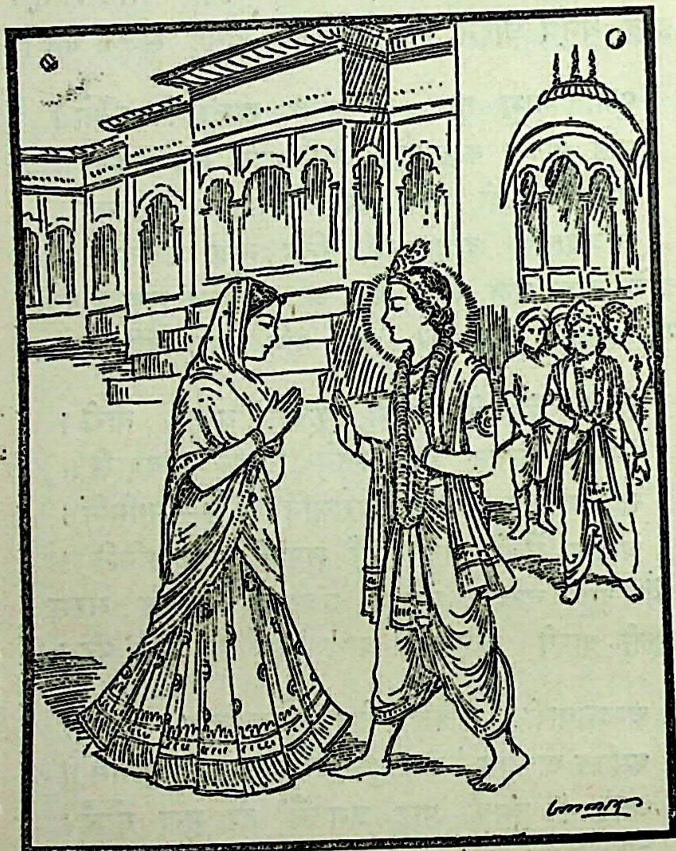
करन कृतारथ चले सुदामा माली घर हरि।
हड़बड़ाइ सो उठ्यो दंडवत करी भूमि परि॥
बिधिवत पूजाकरी त्रिबिध बिधि बिनती कीन्हीं।
सबकूँ चन्दन, फूल, पान अरु माला दीन्हीं॥
मालीकी माला गरे, धारें यों राधारमन।
इन्द्र धनुष धारन किये, शोभित मानहुँ सजल घन॥

पूजातें प्रभु तुष्ट कहें—बर माली! माँगो।
नहिं अदेय कछु मोइ व्यर्थ लज्जा भय त्यागो॥
माँगी माली भक्ति भक्त भगवन्त चरनमहँ।
जीवमात्रपै दया रहूँ नित नाथ शरनमहँ॥
इच्छितवर, बल, आयु, यश, श्री, लौकिक सुख हू दये।
यौं मालीपै कृपा करि, पुनि हरि आगे बढ़ि गये॥

आगे निरखी श्याम कूबरी युवती नारी।
करमहँ चन्दन पात्र लिये मनहर मुखवारी॥
रङ्ग रङ्गीले रसिक शिरोमनि बोले—भामिनि।
चन्दन लैकें जाहु कहाँ सुमुखी गजगामिनि॥
हमें देहु चन्दन सुखद, गंधयुक्त शीतल सरस।
बोली दासी कंसकी, धन्य पाउँ हौं प्रभु परस॥

चन्दनवारी सहित लेउ यदुनन्दन चंदन।
अर्पित अच्युत! करूँ तुम्हें सरबस तन मन धन॥
प्यारे! तुंमकूँ पाइ जगततें हौं मुख मोरूँ।
लोक-लाज कुल-लाज जगतके बन्धन तोरूँ॥
सैरन्ध्री चन्दन दयो, अति आनन्दित ह्वै गई।
पगपै पग धरि चुबुक धरि, झटकी अति सीधी भई॥

टेढ़ी सीधी भई सुन्दरी अति सुकुमारी।
मधुर मधुर मुसकात निहारे रासबिहारी॥
पल्लो पकड़्यो कहे—नाथ ! मेरे घर आओ।
मदन तापतें तपित रमन तन ताप मिटाओ॥



तासु विनय बल ग्वाल सुनि, हँसे श्यामहू हँसि गये।
हौं आऊँगो फिरि अवसि, यों कहि आगे चलि दये॥

प्रिय वियोगतैं दुखित भई कुब्जा अति मनमहँ ।
भयो काम-ज्वर व्याप्त होहि पीड़ा सब तनमहँ ॥
मूर्छित ह्वैकें परी पलँगपै करवट बदलति ।
करि करि हरिकी यादि आह भरि भरिकें सिसकति॥
इत नर नारिनिके नयन, सफल करत प्रभु पथ चलत ।
बनिज सुमन चंदन इतर, तैं हरिको स्वागत करत ॥

पुरबासिनितैं पूछि यज्ञशाला हरि आये ।
देख्यो बलके सहित धनुष प्रभु परम सिहाये ॥
रक्षक रोकत रहे श्यामने धनुष उठायौ ।
करि ज्यों तोरैं ऊख तोरि त्यों तुरत गिरायौ ॥
धनुष भङ्गको घोर रव, दशहुँ दिशनिमहँ भरि गयो ।
अन्तःपुरमहँ कंस सुनि, रिपु भयतैं व्याकुल भयो ॥

आये सैनिक भृत्य श्याम बलरामहिँ पकरन ।
मारो काटो पकरि लेहु चिल्लावें खल गन ॥
राम श्यामने लखे शस्त्र लै सैनिक आवत ।
दोऊ भाई धनुष खंड लै चले भगावत ॥
सबकूँ मारि भगाइकें, निज डेरापै आइकें ।
सोये सुखतैं सखनि सँग, खीर सुहारी खाइकें ।

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाह में रजकोद्धार कुब्जानुग्रह नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।

अथ सप्तविंशतितमोऽध्यायः

[२७]

कंस धनुषको भंग पराजय सेनाकी सुनि ।
भयो दुखित दुःस्वप्न निहारै डरपै पुनि पुनि ॥
जागत देखै बृच्छ सुनहरे निज सिर धड़ बिनु ।
निशिमहँ निरखै स्वप्न दिगम्बर तैल मले तनु ॥
केश, कपास; कुलाल, कुश, काक कंक, कपि, कृष्ण-पट ।
नकटी, बिधवा, मृतक नर, रुण्डमाल, यमभट, बिकट ॥

सुनत कंस धनुभंग निशा निद्रा नहिं आयी ।
प्रातकाल उठि रंगभूमि खलने सजवायी ॥
गाजे बाजे सहित मल्लशालामहँ आयौ ।
गोपनिकूँ पुनि भेंट सहित सम्मुख बुलवायौ ॥
कहै नंदतैं—सुत कहाँ, राम श्याम जो सुदृढ़ अँग ।
नंदराय बोले—प्रभो ! आवत होंगे सखनि सँग ॥

राम श्याम बध हेतु प्रथम अम्बष्ठ सिखायौ ।
रंगभूमिके द्वार कुबलयापीड़ पठायौ ॥
इत सजि बजि बल श्याम द्वारपै गज ढिँग आये ।
हाथी तुरत हटाउ बचन हस्तिपहिँ सुनाये ॥
सुनत कुपित हस्तिप भयो, रौंदूयौ करि हरिपै तुरत ।
गज प्रहार पुनि पुनि करत, हँसत श्याम इत उत फिरत ॥

दामोदरने दुष्ट देखिकें दाव दबोच्यो।
किचकिचाय सिर चढ़े शस्त्र हित मनमहँ सोच्यो॥
लीये दाँत उखारि दयो इक बल इक धाड़्यो।
हस्तिप हाथी सहित दाँततैं ही हरि माड़्यो॥



छोड़ि मृतक गज सभामहँ, प्रबिशे नहिँ देरी करी।
रही भावना जासु जस, तस ताकूँ दीखे हरी॥

मल्लनि निरखे बज्र कामिनी काम बिचारें।
नर निरखें नररत्न गोप निज स्वजन निहारें॥
शासक खलनृप लखें जनक जननी निजशिशु सम।
जनसाधारन लखें भयंकर कंस मनहुँ यम॥
इष्टदेव यादव मनहिं, परमतत्व योगी लखहिं।
वस्तु एक परि भावतैं, भली बुरी प्रानी कहहिं॥

उत्सवमहँ हरि फिरत माधुरी सुधा पिआवत।
इतउत चितवत चलत चोर जनु चित्त चुरावत॥
कहैं परस्पर नारि—कुमर ये अति बलशाली।
कृष्ण देवकी-तनय रोहिनी-सुत बल आली॥
मारे इनि अगनित असुर, तेज ओज सह बल निलय।
रक्षित यदुकुल होहि अब, पावै यश गौरव विजय॥

राम श्यामकूँ निरखि नारि नर भये सुखारे।
कंस मल्ल चाणूर गरबतैं बचन उचारे॥
मल्ल युद्धमहँ निपुण सुने तुम दोऊ भैया।
ग्वालबालसँग लड़त चरावत बन बन गैया॥
करे चकित नरनारि सब, रंगभूमिमहँ आइकें।
आओ नृपको प्रिय करें, द्वै द्वै हाथ दिखाइकें॥

सुनि बोले बल अनुज—बाल हम तुम बलसागर।
मल्लयुद्ध तब होहि जोड़ जब होहि बराबर॥
कहै बिहँसि चाणूर—बली तो बलतैं होवें।
जो न होहि बलवान बड़प्पन अपनो खोवें॥
नहिं शिशु तुममें बल अमित, आओ हम तुमतैं भिड़ैं।
हमरो तुमरो जोड़ है, मुष्टिक हलधरतैं लड़ैं॥

हँसि बोले भगवान—नहीं मानो तो आओ।
तुम अति नामी मल्ल मल्लपन आजु दिखाओ।
यों कहि कछनी काछि अखाड़ेमहँ आये हरि।
शोभित बल सँग मनहुँ बीररस द्वै द्वै तनु धरि॥
ताल ठोंकि दोऊ बली, लड़िबेकूँ उद्यत भये।
कृष्ण लड़ैं चाणूरतैं, बल मुष्टिकतैं भिड़ि गये॥

चटचट होवै शब्द उठावैं पकरि घुमावैं।
सटकैं इतउत झपटि लपटिकैं पटकि गिरावैं॥
मारैं उरमहँ चोट ढकेलैं पुनि पुनि पकरैं।
चित्तपट्ट ह्वै जायँ तुरत इततैं उत निकरैं॥
कहँ मुष्टिक चाणूर खल, कहँ हलधर हरि अमित बल।
करहिं लोकवत काज सब, थापैं जगमहँ यश बिमल॥

एक एककूँ पकरि पटकिकें पेच चलावैं।
कोई मुक्का मारि पकरिकें टाँग गिरावैं॥
पाँइनि अंटाडारि करनितैं कंधनि कसिकें।
पुनि पुनि ठोकें ताल निहारैं दोऊ हँसिकें॥
होहिं चटाचट पटापट, चित्त पट्ट ह्वैकें गिरैं।
कबहूँ निकसैं दावतैं, पुनि दोऊ पकरें लरें॥

मुष्टिक अरु चाणूर बज्रसम कठिन भयंकर।
अति सुन्दर सुकुमार सरस सुखकर बल नटवर॥
स्वेदयुक्त मुख निरखि नारिमहँ घबरावें।
बहुबिधि करें बिलाप कंसकूँ कुटिल बतावें॥
बाँकी झाँकी श्याम बल, की करिकें होवें मगन।
ब्रजबनितनिके भागकूँ, सब सराहिं बोलें बचन॥

वृन्दावनकी धन्य भूमि जहँ बिहरें ब्रजपति ।
ब्रजबनिता अति धन्य धन्य उनकी रति मति गति ॥
असन वसन गृहकाज करति जे नहिं बिसरहिं हरि ।
सदा रिझावें ब्रजबल्लभकूँ प्रिय कारज करि ॥
बड़भागिनि ये गूजरी, जिनको प्रभुमहँ फँस्यो चित ।
मधुर मधुर मुसकानमय, मुख माधवको लखहिं नित ॥

हाय ! क्रूर चाणूर न कछु अनरथ करि डारै ।
दुष्ट न कहूँ कुठौर चोट माधवकें मारै ॥
बनितनिकूँ लखि बिकल शत्रु वध निश्चय कीयो ॥
तबई रिपुने उछरि श्याम-हिय मुक्का दीयो ॥
हँसि हरिने पकरीं भुजा, गोफिनि सम चक्कर दये ।
प्राणहीन ह्वैकें गिर्‌यो, नर नारी हर्षित भये ॥

बल मुष्टिककूँ मारि अखाड़ेमें ठाढ़े जब ।
करिकें अतिई कोप कूट लड़िबे आयो तब ॥
इत शल तोशल लड़न श्यामके सम्मुख आये ।
तीनिहुँ ही मरि गये परमपद सबने पाये ॥
मुष्टिक अरु चाणूर शल, तोशल कूट मरे जबहिं ।
लै लै अपने प्राण सब, शेष मल्ल भागे तबहिं ॥

ग्वाल बाल लै संग श्याम बल नाचत डोलें ।
एक कंसकूँ छोड़ि शेष सब जय जय बोलें ॥
कुपित कंस ह्वै गयो, कहै—इन गोपनि मारौ ।
राम कृष्णकूँ पकरि नगरतैं तुरत निकारौ ॥
समुझि गयो ये परस्पर, मिले जुले सब लोग हैं ।
नंद गोप बसुदेव अरु, उग्रसेन बध योग हैं ॥

बक बक मामा करत तुरत हरि उछरे ऊपर।
लीन्हीं चोटी पकरि धम्मतैं कूदे नटवर॥
मामा नीचे गिर्यो भानजो ऊपर आयौ।
प्रभु तनु परसत तुरत परमपद मामा पायौ॥



खान पान नित यानमहँ, चलत फिरत सुमिरत हरिहिँ।
सुमिरन सतत प्रभावतैं, मिल्यो त्यागि तनु सो बिभुहिँ॥
इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाह में कुवल मल्ल कंसोद्धार
नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त।

अथ अष्टाविंशतितमोऽध्यायः

[२८]

कंस अनुज पुनि आठ लड़े बल मारि गिराये।
मामी रोवत लखीं बचन हरि मधुर सुनाये ॥
पुनि पितु माता निकट आइकें काटे बंन्धन।
शिशु सम गोदी बैठि करे करुणामय क्रन्दन।
कहें—अभागे हम रहे, निरख्यो नहिँ पितु मातु सुख।
हमरे पीछे दिवश निशि, सहे आपुने दुसह दुख ॥

गर्भ प्रसवमहँ सहति मातु दुख नित पालनमहँ।
कौन उरिन ह्वै सकै मातु पितुतैं सुत जगमहँ ॥
बालक बिहरति फिरहिँ किलकिकैं हिय सरसावें।
क्रीड़ा जननी जनक लखें अतिशय सुख पावें ॥
क्रूर कंसकी कुटिलता-बस हम तुम दुख सब सहे।
नहीं दयो सुख नहिं लह्यो, भयवश छिपि बन बन रहे ॥

मायापतिकी सुनी मधुर ममतामय बानी।
भूलि गयो सब ग्यान मोह ममता लपटानी ॥
बार बार हिय लाइ करें अनुभव अति सुत सुख।
गोदीमहँ बैठाय श्याम बलको चूमें मुख ॥
मातु पिता परितोष करि, उग्रसेनके ढिँग गये।
सिंहासन आसीन करि, पुनि सबके नृप करि दये ॥

कंसादिकके मृतक करम बिधिवत करवाये।
पुनि परदेशनि गये बन्धु बान्धव बुलवाये॥
असन, बसन, धन, रतन, भवन सबहींकूँ दीन्हें।
करि सब बिधि सत्कार तुष्ट यादव सब कीन्हें॥
राम श्यामको सदय मुख, लखि सब आनन्दित भये।
पीकें प्रभु मुखमाधुरी, बृद्ध युवक सम बनि गये॥

आये दोऊ बन्धु नन्द ढिँग अति सकुचावत।
बोले गद्गद गिरा नयनतैं नीर बहावत॥
मातु यशोदा सहित करी अति ममता तुमने।
उरिन ह्वै सकें नहीं प्रेम पायो जो हमने॥
मैया रोवति होइगी, गैया जैसे बत्स बिनु।
बास मधुपुरीमहँ करें, आयसु दैं तो कछुक दिन॥

अकबकाइकें नंद कहें—का कहत कन्हाई।
तू न जाय तो मरै बिरहमहँ तेरी माई॥
अरे, निठुर मत बनें लाल तोकूँ समुझाऊँ।
एक कहै या लाख तोइ तजि नहिं घर जाऊँ॥
कपटी मथुरामहँ भयो, मुख मीठो हियमहँ छुरी।
अरे, सोचि तेरे बिना, होहि दशा ब्रजकी बुरी॥

मुदित होहिं बसुदेव प्रेमकी सीमा जानी।
रुदन करत घनश्याम नंदकी सुनि सुनि बानी॥
नंद कह्यो हठ बहुत श्यामने एक न मानी।
गोप सहित अति दुखित गमनकी मनमहँ ठानी॥
गोपिनकूँ सम्मानयुत, पट आभूषन बहु दये।
प्रेमाकुल दोऊ भये, दोऊ हियतैं सटि गये॥

रोवत रोवत चले नन्द गोकुलमहँ आये।
रामश्याम नहिं लखे गोप गोपी घबराये॥
यशुमति सुनि सब बात बहुत रोई बिललाई।
हाय! कहाँ रहि गये कुँवर बलराम कन्हाई॥
नन्दगाँव के नारि नर, व्याकुल ह्वै रोवत फिरें।
डकरावें हा हा करें, मूर्छित ह्वै ह्वैकें गिरें॥

इत बियोगतैं दुखित श्याम बल महलनि आये।
ह्वै प्रसन्न बसुदेव बिबिध मंगल करवाये॥
कनक, धेनु, धन, रत्न, दान भूदेवनि दीन्हें।
द्विजनि उचित उपनयन गर्ग आदिक मुनि कीन्हें॥
ब्रह्मचर्य व्रत धारिकें, गायत्री दीक्षा लई।
करन बास गुरुकुल चले, अनुमति सबई ने दई॥

मुनि सान्दीपनि सौम्य सरल सुठि काशी बासी।
रहें अवन्तीपुरी तपस्वी बिषय उदासी॥
तिनि ढिँग पढ़िवे गये कौन समुझै हरिकी गति।
सब विद्यनिके धाम श्याम बलराम जगत्पति॥
भई सिद्ध विद्या सकल, भाग्य आज मुनिके जगे।
जगदीश्वर हू शिष्य बनि, जिनके घर रहिवे लगे॥

गुरुसेवा आदर्श दिखावें करिकें करनी।
सुश्रूषा नित करें त्यागि भगवत्ता अपनी॥
समिधा, कुश, फल, फूल, मूल, घट जलको लावें।
अति लघु सेवा करें, अधिक हिय माँहिं सिहावें॥
जाहिं सुदामा संगमहँ, ईंधन लावें तोरिकें।
ब्रह्मचर्यव्रततैं रहैं, विषयनितैं मुख मोरिकें॥

गुरुप्रसादतैं वेदशास्त्र सुनतहिं जाने प्रभु।
चौंसठ कला प्रबीन भये चौंसठ दिनमहँ बिभु॥
गीत[1],बाद्य[2] अरुनृत्य[3] नाट्य[4] चित्रनिकोलिखिबो[5]।
पत्रावलि सिर तिलक[6] धान कुसुमनि[7] को रचिबो॥
फूल सेज[8] पट दशन[9] रँग, मणिमय मही[10] बनामनों।
शयन[11]रचन अरु जल[12]तरँग, चित्रविचित्र[13]दिखामनों॥

हार[14] केश[15] नैपथ्य[16] कर्ण पत्रादिक[17] रचिबो।
गन्धयुक्त[18] आभूषन[19] सबकूँ विस्मित[20] करिबो॥
धारेरूप[21] अनेक हस्त लाघव[22] वर भोजन[23]।
आसबादि[24] निर्मान सीमनो[25] डोरा खेलन[26]॥
बीणाडमरू[27] बजावन, ज्ञानपहेली[28] प्रतिकृती[29]।
अत्तोपत्तो[30] वाँचिवो[31] नाटकादिमहँ[32]—वर गती॥

काव्य[33] समस्यापूर्ति पट्टिका वेत्र[34] सुदीक्षा॥
तर्ककर्म[35] तक्षणहु[36] ज्ञानगृह[37] रत्नपरीक्षा[38]॥
धातुरसायन[39] ज्ञान रंगमणि[40] खानिज्ञानवर[41]।
तरुविद्या[42] खगयुद्ध[43] जानिवो शुक पिककोस्वर[44]॥
उत्सादन[45] कचमारजन[46] मूँठी वस्तु[47] बतावनो।
भाषा[48] देशी बिदेशी[49] ज्ञान विमान[50] बनावनो॥

प्रतिमा[51] लोचनमणिभेदन[52] परचित्त-बतावन[53]।
परमन कविता[54] ज्ञान छन्द[55] नारीमन[56] जानन॥
छलितयोग[57] पटगोपन[58] जूआ[59] क्रीड़ाकर्षन[60]।
बालक[61] क्रीड़ा ज्ञान शेष त्रय विद्या दर्शन॥
वैजयिकी[62] वैनायकी[63] बैतालिकी[64] प्रसिद्धि हैं।
चौंसठ हू ये सब कला, स्वयं श्यामक सिद्धि हैं॥

करि गुरुकुलमहँ वास पढ़ी बिधिवत विद्या सब।
दोऊ गुरुतैं कहैं—दक्षिणा देहिँ कहा अब॥
अद्भुत महिमा निरखि बिचारें मनमहँ गुरुवर।
मागूँ इनतैं कहा करन सम्मति आये घर॥
गुरु पत्नी बोली—बिभो! मेरी यह इच्छा प्रबल।
लावें सुतहिं समुद्रतैं, डूब्यो प्रथम प्रभास थल॥
दोऊ रथ चढ़ि चले नीरनिधिके ढिँग आये।
गुरु-सुत देहु समुद्र रोषतैं बचन सुनाये।
दीयो असुर बताइ पञ्चजन सो हरि मार्‌यो।
गुरु-सुत तहँ नहिँ मिल्यो पञ्चजन शङ्ख निकार्‌यो॥
संयमनी यमकी पुरी, महँ दोऊ भाई गये।
रामकृष्णकूँ निरखि यम, अति ही आनन्दित भये॥
करि पूजा यम कहें—नाथ! तुम अन्तरयामी।
कीयो दास कृतार्थ करें कछु आयसु स्वामी॥
हरि बोले—गुरु-तनय यहाँ आयौ तिहि लाओ।
है बिशेष यह नियम नहीं अब देर लगाओ॥
यमने दीयो तुरत शिशु, राम श्याम गुरुकूँ दयौ।
पाइ मृतक सुत सुख अधिक, गुरु गुरुआनीकूँ भयौ।
आये मथुरा पुरी सुनत सबई उठि धाये।
राम श्यामके दरश पाइ सब अति हरषाये॥
द्वै पूरन शशि सरिस सबनिकूँ सुख सरसावैं।
मथुरामहँ नित बसैं, प्रेमको स्रोत बहावैं॥
यहाँ छोड़ि कछु कालकूँ, श्रीमथुराजी की कथा।
हृदय थामि सोचो तनिक, विरहमाँहिँ व्रजकी व्यथा॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें व्रजराजविदा गुरुकुलवास मृत गुरुपुत्रानयन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त

(मासिक पारायण—बाईसवें दिन का विश्राम)

अथ एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः

[२९]

हलधर गिरिधर बिना लगै ब्रज सूनो सूनों।
लखि मैयाकी व्यथा बढ़ै सबको दुख दूनों॥
खोई खोई रहै यशोदा कछु नहिँ सूझै।
देखे आवत पथिक बात बत्सनिकी बूझै॥
बार बार मैया कहे, बुढ़िया पै किरपा करो।
अरे दिखाओ सुतनि मुख, होवै मेरो हिय हरो॥

कोई करुना करो मोइ मथुरा पहुँचाओ।
कौन गली महँ बसत श्याम बल पतो बताओ॥
नित माखन दै आउँ चूमिके मुख फिरि आऊँ।
इनकी मैया लगूँ भूलिकें नाहिँ बताऊँ॥
लुकि छिपिकें कबहूँ मिलूँ, नैंन न नीर बहाउँगी।
कनुआ बलुआ हाय सुत, कहिकें नहिँ डकराउँगी॥

यौं पगली-सी फिरै मातु ब्रजमहँ इततें उत।
ग्वालबाल अति दुखित जाइँ बनकूँ रोवत नित॥
जहँ जहँ क्रीड़ा करीं कृष्णने अति सुखकारी।
करि करि तिनकी यादि करें मनमहँ दुख भारी॥
अब कब निरखें श्याम मुख, बिलपि बिलपि पुनि पुनि कहें।
हरि सँग हँसिबो खेलिबो, सुमिरि सुमिरि रोवत रहें॥

बन, उपबन, द्रुम, सुमन, सरित, सरवर लखि रोवें।
लीलनिकी करि सुरति देहकी सुधि बुधि खोवें॥
गाँव गाँव थल कुंड लखें लीला सुधि आवें।
कृष्ण कृष्ण कहि गिरें दुःखको पार न पावें॥
जब गोपनिकी जिह दशा, तो गोपिनिकी का कहें।
जे प्रियतमके प्रेममहँ, निशि बासर डूबी रहें॥

निशि निशि गोपी फिरति गये कहँ कृष्ण कन्हाई।
तिनिकूँ तजिकें नींद कृष्णके संग सिधाई॥
बिरह रोग अति दुसह सबनिके हियमहँ लाग्यो।
रोवत ही नित रहें शयन भोजन जल त्याग्यो॥
पछितावें सुमिरन करें, रास बिलास मनाइबो।
दान, मान, होरी, हँसी, संग नाचिबो गाइबो॥

वे ही शरद, बसंत, शिशिर, पावस, ग्रीषम दिन।
वे ही भू, जल, अनिल, अनल, नभ, ग्रह, तारागन॥
किन्तु कृष्ण बिनु लगें दुखद नीरस सूने अति।
ब्रजबनिता निशिदिवस बितावति हरिकूँ सोचति॥
सावन झूला झूलिबो, फागुन होरी रँग भरीं।
रोवति लीला सुमिरि नित, शरद निशिनिमहँ जो करीं॥

इत ब्रज-बनिता विरह-वारिमहँ डूबति उतरति।
उत यदुपति करि याद सखिनिकी होत दुखित अति॥
परम सुहृद निज सखा सचिव उद्धव ढिँग आये।
निरखि परम एकान्त रहसमय बचन सुनाये॥
सखे! करो इक काज तुम, वृन्दाबनमहँ जाइकें।
करो सुखी सब सखिनिकूँ, शुभ सन्देश सुनाइकें॥

स्वामीको सन्देश सुन्यो सिर उद्धव धार्‌यो।
नंदगाँवकूँ जाउँ सोचि रथ सुघर निकार्‌यो॥
पाग दुपट्टा पहिन चले रथ चढ़ि व्रज ऊधो।
वृक्ष लतनितैं घिर्‌यो निहार्‌यो दगरो सूधो॥
सरस भूमि व्रजरज मृदुल, सघन कुंज बन बिटप बर।
बरसावत द्रुम सुमन शुभ, गुंजत बर मधुकर निकर॥

धेनु खुरनिकी धूरि उड़ति रस-सो बरसावति।
ढाँकति रथकूँ मनहुँ श्याम अनुराग दिखावति॥
ऐंन भारतैं नमित धेनु इततें उत जावैं।
गैयनिके हित साँड़ लड़ैं पुनि पुनि डकरावैं॥
ग्वालबाल बछरा लिये, बाँधत गोपी दुहति पय।
कृष्ण बिरहमहँ व्यथित सब, दीखत व्रज अति दुःखमय॥

गोपी बैठीं लखीं नयनतें नीर बहावति।
राम श्यामके चारु चरित तन्मय ह्वै गावति॥
अतिथि, अग्नि, रबि, धेनु, बिप्र, सुर पितरनि पूजत।
को आवै को जाइ भावमहँ तिनहिं न सूझत॥
उद्धव निरखत जात सब, अति प्रभाव तिनिपै पर्‌यो।
नन्द पौरि ढिँग आइकें, हौलें रथ ठाढ़ो कर्‌यो॥

रथको सुनिकें शब्द नन्द ह्वैकें आनन्दित।
आइ गये बलश्याम बढ़े आगे मन सोचत॥
उद्धवजी जब लखे प्रेमतैं हिये लगाये।
पुनि पुनि सिरकूँ सूँघि बिकल ह्वै अश्रु बहाये॥
मानों आयो श्यामही, सुत समान आदर कर्‌यो।
पाद्य अरघ मधुपरक दै, दिव्य अन्न आगे धर्‌यो॥

बर भोजन करवाइ बिछाई सुन्दर शैया।
दोऊ बैठे पास नंद अरु जशुमति मैया॥
कुशल प्रश्न करि कहें—कृष्ण ब्रज क्यौं नहिं आयो।
परदेशी बनि गयो स्वजन घरबार भुलायो॥
लीलनिकी सबई सुरति, ब्रजरज कन कन महँ निहित।
निरखत नित प्रति ही रहत, मथुरा-पथ ह्वैकें चकित॥

निरखें जा जा ठौर यादि लीला है आवति।
चित्त कृष्णमय होहि आँखि नित नीर बहावति॥
बोले उद्धव—धन्य धन्य दम्पति बड़भागी।
कृष्ण प्रेममहँ छके रहो अतिशय अनुरागी॥
घट घट व्यापी भुवनपति, देवें दर्शन आइ हरि।
बासुदेव ब्रजचन्द्र प्रभु, प्रकटे नटवर रूप धरि॥

बाबा! धारौ धीर बेगि सुधि यदुपति लैंगे।
करें प्रतिज्ञा सत्य दयानिधि दर्शन दैंगे॥
को तिनके हैं पिता सुहृद सुत माता भ्राता।
अखिल विश्वके बीज बिनोदी सब जगत्राता॥
सुख साधुनिकूँ दैन हित, सरस सुखद क्रीड़ा करें।
देव, मनुज, पशु, पच्छि, अज, बिबिध रूप नटवर धरें॥

करत करत यों बात रात बीती सब जागत।
अरुनोदय ह्वै गयो गोपिका दीप जरावत।
मथिवे लागीं दही वलय कंकन धुनि करहीं।
कुंकुम मंडित गंडचन्द्र बिद्युत द्युति हरहीं॥
चारु चरित चित चोरको, कल कंठनितैं गाइकें।
दशहुँ दिशनिकूँ भरति मनु, अनुपम भाव जनाइकें॥

दिनकर निजकर किरन प्रसारत उदित भये जब।
नन्दपौरिपै लख्यो कनकमय गोपिनि रथ तब॥
ह्वैकें बिस्मित कहें परस्पर—को रथ लायौ।
का श्वफल्क-सुत फेरि मधुपुरीतैं ब्रज आयौ॥
करति तरकना परस्पर, उपमा दै दैकें सबहिं।
नित्य कर्मतैं निबटिकें, आये उद्धवजी तबहिं॥

निरखे उद्धव कमलनयन पीताम्बर धारी।
कमल कुसुम बनमाल अलक बर चितवन प्यारी॥
समुझीं कछु संदेस श्यामको लैकें आयौ।
मातु पिता संतोष हेतु घनश्याम पठायौ॥
करि आदर एकान्तमहँ, उत्कंठित ह्वै लै गईं।
समाचार सब श्यामके, सहमि सकुचि पूछति भईं॥

प्यारेको सन्देश कहन ब्रज आपु पधारे।
हो कारेके सखा रंगके तुमहू कारे॥
समुझति हीं हम सदा प्रेम घनश्याम करिङ्गे।
छाया तन मन प्रान सरिस नित संग रहिङ्गे॥
फल हित खग, मधु हित भ्रमर, बिटप सुमन सँग प्यारहै।
निकसे कपटी कुटिल हरि, स्वारथको संसार है॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाह में उद्धव ब्रज गमन नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त।

अथ त्रिंशत्तमोऽध्यायः

[३०]

उद्धव बैठे चुप्प व्यंग सुनि हिय भरि आयौ।
मधु लोलुप इक भ्रमर सहजही तहँ उड़ि आयौ॥
करि उद्धवकूँ लक्ष्य प्रेमको पाठ पढ़ायौ।
ताहि मानि हरिदूत कोप अरु मान दिखायौ॥
गुन गुन करि आयो भ्रमर, कहति कुपित पद पकर मत।
तू मधुकर माधव सरिस, मधु-लोलुप स्वारथ-निरत॥

जिनि कुंजनि सुख दयो न ते अब तनिक सुहातीं।
अधरामृतकूँ प्याइ बनाईं हम मदमातीं॥
गये त्यागि मधुपुरी न अब ब्रजबास सुहावै।
तू हू करि मधुपान, त्यागि सुमननिकूँ जावै॥
स्वामी सेवक एक से, चोर चोर भाई सगे।
निज घरजा,हम अति व्यथित,हरि कटाक्ष सर हिय लगे॥

धरि चरननिपै शीश बिनय अति भ्रमर दिखावै।
बार बार हरि चरित मधुर अति गाइ सुनावै॥
क्रूर कृष्णकी कथा कामिनी नाहिं सुनैंगीं।
नकटी को तिहि बधिक निकट हरि जाइ बनैंगीं॥
खाइ छेद पत्तल करै, बामन बनि बलि नृप ठग्यो।
करें कहा परवश भईं, कठिन कुटिलमहँ मन लग्यो॥

चाहें भूल्यो तऊ यादि आवें श्रीहरि नित।
करै नित्य मन मत्त मनन माधवकी मूरत॥
सोचें अवगुन सतत किन्तु चित तिनि गुन जानें।
कान्ह कथा नहिँ सुने कान परि सीख न मानें॥
फँसी बधिकके जालमहँ, घरकी रहीं न घाटकी।
परि न दुबारा चढ़ि सकै, चूल्हे हंडी काठकी॥

अच्छा, मधुकर! फेरि पठायो प्रियतम तुमकूँ।
प्यारेको संदेश सुनाओ अब तुम हमकूँ॥
कैसे हरितैं मिलैं भ्रमर बर युक्ति बताओ।
उन उर पद्मा बसति सौतितैं पिंड छुड़ाओ॥
कुशल कहो कंसारिकी, करत कबहुँ व्रजकी सुरति।
कब दासिनिपै दया करि, दरशन दैंगे प्रनतपति॥

भूलि गये घनश्याम हमें प्यारे बनवारी।
करत हमारी यादि कबहुँ का कुंजबिहारी॥
उद्धव लखि अस नेह कहैं—तुम अति बड़भागी।
श्याम चरनमहँ सुरति सबनिकी निशिदिन लागी॥
जप, तप, मख, व्रत, धर्मको, यह ही अंतिम फल कह्यो।
सार भक्ति भगवन्तकी, सो फल तुम सहजहिँ लह्यो॥

कर्यो कठिनतम काज त्यागि सब हरि अपनाये।
कृष्ण प्रेम हित देव द्रव्य पति स्वजन भुलाये॥
संसारी सुख तजे प्रीति प्रभुचरन लगायो।
प्रीति रीति करि प्रकट दीनपै दया दिखायी॥
बिनय करहुँ कर जोरिकें, हौं प्रभु-पद अनुरक्त हूँ।
अनुचर सेवक सचिव प्रिय, किंकर अति लघु भक्त हूँ॥

जा अयोग्यके हाथ श्याम सन्देश पठायौ।
ज्ञानमानमहँ भर्यो दौरिकें हौं व्रज आयौ॥
कृष्ण भक्ति ही सार दशा तुमरीतैं जानी।
निरखि अलौकिक भक्ति भयो मेरो हिय पानी॥
पढ़ौ प्रेम पाती स्वयं, पठयो जो सन्देश हरि।
गोपी बोलीं—आपुही, हमहिं सुनावें कृपा करि॥

करिकें शिष्टाचार सखिनिके आये आगे।
प्यारेको सन्देश पढ़न पुनि उद्धव लागे॥
हौं सर्वात्मा रहौं सकल प्रानिनिके घटमहँ।
सब वस्तुनिमहँ भूत सूत ज्यौं व्याप्यो पटमहँ॥
स्वप्न सरिस जगके बिषय, मिटै मोह भ्रम ज्ञानतैं।
रजत सीप अहि रज्जुमहँ, दीखे तम अज्ञानतैं॥

सब साधनको श्रेष्ठ साध्य हौं ही जा जगमहँ।
मैं अरु तुम सब एक भेद नहिँ तुममें हममहँ॥
प्रेम वृद्धिके हेतु भयो हौं तुमतें न्यारो।
ज्यों परोक्षमहँ प्रेष्ठ लगे प्राननितैं प्यारो॥
जितनो पाइ बियोगकूँ, सतत चित्त प्रियमहँ रहै।
उतनो नहिँ संयोग सुख, महँ मन तन्मयता लहै॥

प्रियको सुनि सन्देश भईं सब हरषित नारी।
प्रेम प्रकट अति करैं श्याम सुधि लई हमारी॥
पूछति पुनि पुनि कुशल—कहो उद्धव! हरि सुखतैं।
उन बिनु व्रजमहँ कटत हमारे दिन सब दुखतैं॥
बृन्दाबनमहँ शरदकी, निशा बिताईं रासमहँ।
यादि करत हरि प्रियनि सँग, कबहुँ हास परिहासमहँ॥

कहो कबहुँ घनश्याम आइ ब्रजपै बरसैंगे।
नेह नीरतैं कबहुँ हमारे हिय सरसैंगे॥
कब कोमल अति मृदुल कमल करतें परसैंगे।
आये ब्रज ब्रजनाथ सुनत कब सब हरसैंगे॥
नन्दनँदन अतिशय कठिन, निर्मोही निष्ठुर निपट।
किन्तु करें का फँस्यो मन, प्रेम फंद अति ही बिकट॥

आशामहँ अति दुःख निराशा सुखकी जननी।
जानि बूझिकें बिगरि गई भोरी मति अपनी॥
जिन प्रभु पायो परस सरस कैसे नहिँ भजिहैं।
कृष्ण कथा जिन श्रवन सुनी ते कैसे तजिहैं॥
कमला अति ही चंचला, किन्तु परम प्रिय पाइकें।
होहि न पल भरकूँ पृथक, श्याम सिन्धुमहँ आइकें॥

कालिन्दीको सलिल श्याम सुधि सतत दिवावै।
गिरि गोवर्धन लखत हियो हमरो भरि आवै॥
श्याम ललित गति हँसी सुखद लीला शुभ चितवन।
यादि दिवावैं धेनु, बेनु-रव, गिरि, बन, उपबन॥
करि करि सुमिरन श्यामको, करन लगीं गोपी रुदन।
हाय! नाथ, अशरन-शरन, हा! दुख-भंजन नँदनँदन॥

उमड़्यो सागर बिरह बह्यो ब्रज सबरो जावै।
तुम बिन राधारमन! कौन अब आइ बचावै॥
हे मनमोहन! रमन! बेनु पुनि मधुर बजाओ।
अधरामृत भरि पेट आइ घनश्याम! पिआओ।
ब्रजबनितनिके बिरहकूँ, लखि ऊधो ब्याकुल भये।
कृष्णकथाके लालची, कछु दिन ब्रजमहँ बसि गये॥

नित कालिन्दी कूल कदमकी छाँह सिधारें।
हरि-लीला थल कुञ्ज, कन्दरा, नदी, निहारें॥
लखि गोपिनिकी दशा कहैं ऊधौ ह्वै प्रमुदित।
अहो! धन्य ब्रज-बधू इन्द्र अज हर पद वन्दित॥
इनहीं को जीवन सफल, डूबे हम अभिमानमहँ।
बीतत इनको सब समय, हरि सुमिरन गुन गानमहँ॥

कहाँ अलख अखिलेश कहाँ ये ब्रजकी नारीं।
करि हरि पद अनुराग भई सब जगतैं न्यारीं॥
जुग जुग जोगी करें जोग नहिं हरि पद पावें।
तिनहिँ गँवारिनि गोप बधू नित हिय चिपटावें॥
जो प्रसाद पायो नहीं कमला, अज, सुर-सुन्दरीं।
ताकूँ नित सेवति रहति, ब्रजकी भोरी नागरीं॥

मोइ मिलै ब्रजवास बनूँ चाहे तृन पाथर।
ब्रज-बनितनि पद धूरि परै उड़ि उड़ि मम ऊपर॥
जिनि चरननि अज शंभु योगिजन नित प्रति ध्यावें।
तिनकूँ ये हिय धारि नारि तनु ताप मिटावें॥
जिनको जगमहँ भर्यो यश, तिनका का इस्तुति करूं।
केवल उनकी चरन रज, महँ पुनि पुनि निज सिर धरूँ॥

यों उद्धव कछु दिवस रहे ब्रज अति सुख पायौ।
कहूँ सँदेशो जाइ श्यामतैं सबनि सुनायौ॥
सुनि उद्धवको गमन नयन सबके भरि आये।
ऊधो हू चलि दये लौटि वे ई दिन आये।
कहि न सकें कछु मलिन मुख, फटत हियो हाहा करहिँ।
सिर धुनि धुनि रोवत फिरहिं, भेंट लाइ रथमहँ धरहिँ॥

राम श्यामकूँ सबनि सँदेशो निज निज दीन्हों।
ऊधो रथपै चढ़े सबनिको आदर कीन्हों॥
ब्रजबासी मिलि कहें—हमें अब जिह ही भावै।
कृष्ण चरण मन रमे नाम रसना नित गावै॥
तन हरि सेवामहँ निरत, सतसंगतिमहँ होइ मति।
जहँ जहँ जनमें करम वश, होहिं तहाँ हरिचरन रति॥

सबको सुनि संदेश चलायो उद्धव रथ तब।
व्याकुल ह्वैकें गिरे नारि नर भये विकल सब॥
उद्धव रथकूँ लिये फेरि मथुरामहँ आये।
ब्रजबासिनिके वृत्त श्यामकूँ सकल सुनाये॥
कुंकुम कज्जलतैं सनी, प्यारीकी चूनरि दई।
लखि रोये राधारमन, हिय लगाइ सिर धरि लई॥

बिलखि कहें–यदुनाथ न ऊधो! ब्रज बिसरतु है।
गैयाँ गोपी ग्वाल यादि करि हिय दहलतु है॥
कहँ वे कुञ्जकुटीर कहाँ ये पाथरके घर।
कहँ क्रीड़ा कमनीय कहाँ ये चिन्ता दुस्तर॥
कहाँ रास-रस अति सुखद, माखन मिसिरी खाइबो।
कहाँ चरावन धेनु बन, ग्वाल बाल सँग जाइबो॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें भ्रमरगीत नामक

तीसवाँ अध्याय समाप्त।

अथ एकत्रिंशमोऽध्यायः

[३१]

करि करि ब्रजकी यादि श्यामने दुख अति पायो ।
उद्धवने बहु भाँति युक्ति करि धीर बँधायो ।।
कुब्जाकूँ जो दयो प्रथम बर सो सुधि आई ।
ताकूँ पूरन करन गये तिहिँ भवन कन्हाई ।।
दासीके घर जगतपति, गये प्रकट प्रन निज कर्‌यो ।
जोहति छिन छिन बाट जो, हृदय ताप ताको हर्‌यो ।।

निरखि प्रानप्रिय भवन तुरत दासी उठि धाई ।
कङ्कनयुत कर कमल पकरि हरि निकट बिठाई ।।
पाइ मृदुल प्रभु चरन कमल मन माँहिँ सिहाई ।
सूँघि हिये बिच धारि नारि तन तपन बुझाई ।।
हाय ! पाइ प्रभु बिषय सुख, माँग्यो दासी तुच्छ अति ।
करि कृतार्थ उद्धव सहित, आये घर पुनि जगतपति ।।

इक दिन प्रभु अक्रूर भवन बल सहित पधारे ।
श्वफलक-सुत अति मुदित नयनजल चरन पखारे ।।
चरनोदक सिर धारि करी पूजा सुख पायौ
अंक धारि पद कमल पुलक तनु भाग सराह्यौ ।।
सिर नवाय अति बिनययुत, बार बार इस्तुति करी ।
करुणाकर कीन्हीं कृपा, यदुकुलकी बिपदा हरी ।।

बिनय बचन सुनि श्याम कहें—चाचा ! तुम गुरुवर ।
कुन्ती बूआ दुखी तुरत जावें हथिनापुर ॥
नेत्रहीन धृतराष्ट्र खलनि मिलि बशमहँ कीन्हें ।
पितृहीन असहाय पाण्डु पुत्रनि दुख दीन्हें ॥
कछु दिन बसि सब मरम लै, आवैं तब कछु करिङ्गे ।
समुझि बलाबल बुआको, सुतनि सहित दुख हरिङ्गे ॥

हथिनापुर अक्रूर चले हरि आयसु सिर धरि ।
पहुँचत कुन्ती मिली गहकि नयननिमहँ जल भरि ॥
करि बिपतनिकी यादि बन्धु ढिँग भई दुखारी ।
पुनि पुनि पूछति तात श्याम सुधि लई हमारी ॥
हे यदुनन्दन अखिलपति, शरणागतबत्सल बिभो ।
सहति सुतनि सँग दुख दुसह, आइ उबारो हे प्रभो ॥

बिदुर सहित अक्रूर पृथाकूँ धीर बँधायौ ।
सुतनि प्रभाव सुनाइ समयको फेर बतायौ ॥
यों बहु बिधि समुझाइ चले मथुरा सुफलक-सुत ।
अंध अम्बिका तनय निकट पहुँचे सनेहयुत ॥
जाइ धरमयुत बचन बर, सब सचिवनि सम्मुख कहे ।
कठिन बचन हितकर समुझि, अन्धराजने सब सहे ॥

निरभय ह्वै अक्रूर अन्धकूँ डाँट बताई ।
पाण्डु भूमिपति रहे तुम्हारे छोटे भाई ॥
तिनिके पुत्रनि सङ्ग करैं तव तनय लड़ाई ।
कौरव पाण्डव द्वेष बढ़ै नहिँ होहि भलाई ॥
परपीड़ा दै पापको, आप घड़ा नित नित भरो ।
तुमहु मोहवश सुतनिको, देहु साथ अधरम करो ॥

भये दुखित धृतराष्ट्र कहें—हे दानपते ! सुनि ।
करता कारन काल कृष्णकूँ कहें सकल मुनि ।।
नाचूँ ह्वैकें अबश नाच जो श्याम नचावें ।
अधरम अथवा धरम करूँ सब वे करवावें ।।
अन्ध-ज्ञान अक्रूर सुनि, मथुरा लौटे सब कही ।
हरन भार भू हरि गदा, असुर बिनासिनि कर गही ।।

इति श्रीभागवतचरितके पञ्चमाहमें कुब्जाप्रसाद कुन्तीसान्त्वन
नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ।

[पाक्षिक पारायण ग्यारहवें दिन का विश्राम]

(इति पञ्चमाह)



अथ षष्ठाह

अथ प्रथमोऽध्यायः

(१)

हे यदुकुलके तिलक शूर-सुत-तनय मुरारी।
हे मधुभोजदशार्ह शूरकुलके हितकारी॥
हे हरि लोकातीत भगोड़े यवन सँहारी।
हे माधव रणछोर असुर-नाशक कंसारी॥
कहीं करीं लीला ललित, कछु व्रज मथुरामें यथा।
अब तत्र चरननि बन्दिकें, कहूँ द्वारकाकी कथा॥

निज चरननितैं करे कृतारथ व्रजके सब थल।
मथुराकूँ चलि दये सङ्ग लै संकरषन बल॥
करन द्वारका धन्य बिचारें अन्तरयामी।
मामाकूँ दै मुक्ति करीं विधवा सब मामी॥
ज्यों निमित्त मामीं करीं, जरासन्ध आयौ यथा।
ज्यों भागे रन छोड़िकें, सुनहु छठे दिनकी कथा॥

जरासन्धकी सुता अस्ति अरु प्राप्ति सयानी।
परम सुंदरी सुघर कंसकी दोऊ रानी॥
कंस मरत ससुराल त्यागि पितु घर अपनायौ।
जरासन्धतैं सकल कंसको बृत्त बतायौ॥
सुनत कुपित अति खल भयो; भारी सेन सजाइकें।
आयो यदुकुल नाशहित, अति बलबश गरबाइकें॥

घेरी मथुरापुरी सकल यादव घबराये।
राम श्यामके दिव्य अस्त्र रथ सुमिरत आये॥
चले साजि रन साज समरकूँ दोऊ भाई।
जरासन्ध बल लड़े भयंकर भई लड़ाई॥
इत हरि अतिशय छल कर्यो, रिपु सेनामहँ आइकें।
मागध बल आधो कर्यो, डिम्भक हंस मराइकें॥

मनुजचरित हरि करत लड़त बल बिपुल दिखावत।
सिंह पकरि जिमि हरिन छोड़ि पुनि खेल खिलावत॥
चतुरङ्गिनि रिपु सैन्य मारि यम सदन पठाई।
कर्यो शत्रु संहार रक्तकी नदी बहाई॥
भयो पराजित मगधपति, रथ टूट्यो सेना मरी।
लगे शत्रु बध बल करन, तब तिनितैं बोले हरी॥

छोड़ो भैया ! जाइ घेरि लावै असुरनिकूँ।
बिनु प्रयास परलोक पठावें सब पापिनिकूँ॥
सुनि बल छोड़्यो चल्यो करन तप नृपति निवार्यो।
आयो सत्रह बार सेन सजि पुनि पुनि हार्यो॥
पुनि तप करि हर बर लह्यो, द्विजनि बिजय आशिष दई।
कालयवन मथुरा तबहिँ, घेरी हरि चिन्ता भई॥

सोचें माया मनुज—यवन जीत्यो नहिँ जावै।
जरासन्ध हू आज कालिमें पुनि चढ़ि आवै॥
हर बरतैं खल बढ़्यो घेरि सब बन्धुनि मारै।
कालयवन सुत गर्ग यादवनितैं नहिँ हारै॥
तातैं तजि पुर द्वारका, महँ दृढ़ दुर्ग बनाइँगे।
भागि चलें रन छोड़िकें, तो रनछोड़ कहाइँगे॥

बलदाऊतैं पूछि उदधिमहँ पुरी बनाई।
द्वादश योजन दुर्ग नीरनिधि ताकी खाई॥
दई सुधर्मा सभा इन्द्रने अति सुखदाई।
करी समर्पित सिद्धि सुरनि जो हरितैं पाई॥
सुरशिल्पी नगरी रची, शोभा मूर्तिमती जहाँ।
पहुँचाये हरि योग बल, तैं यादव सबई तहाँ॥

सबनि द्वारका भेजि भगे भगवान भगोड़े।
मथुराके घर द्वार सभा सरवर सब छोड़े॥
कमल कुसुम गलमाल निरायुध भागे नटवर।
कालयवन पहिचानि भग्यो पीछे बिनु धनुसर॥
कहै—अरे यादव अधम, कायर सम भागै कहाँ।
चलि पीछो तेरो करूँ, भगिकें तू जावै जहाँ॥

करत अनसुनी श्याम भगत मुरि पीछे निरखत।
पग पगपै जनु गहे यवन छिन छिनमहँ समुभत॥
घुसे गुफामहँ श्याम निहारयो तहँ नर सोवत।
निज पट ताहि उढ़ाइ दुबकि रिपुको पथ जोहत॥
कालयवन रिसमहँ भरयो, पदप्रहार तिहिपै करयो।
तिहि उठि निरख्यो यवन जब, दृष्टिपरत ही सो मरयो॥

वे नरवर मुचुकुन्द धेनु द्विज सुर हितकारी।
असुरनि सतयुग प्रथम माँहि सुर सेन सँहारी॥
गये लड़न भूपाल गये जब देव शरनमहँ।
मारि भगाये असुर भये बिजयी सुर रनमहँ॥
देवनि बर माँगन कह्यो, माँगी निद्रा भूप बर।
करै बिघन मम नींदमहँ, सो ततछिन मरि जाय नर॥

एवमस्तु कहि सुरनि समरथन नृपको कीन्हों।
श्रमित भूपकूँ गाढ़ नींदको मिलि बर दीन्हों॥
सोये तबतैं गुफामाँहिं बहु बरष बिताये।
कालयवनको अन्त करावन हरि तहँ आये॥
भस्म यवन जब ह्वै गयो, तब दरशन नटवर दयो।
लखि अति सुंदर सुघर नर, भूपति अति बिस्मित भयो॥

पूछत बिनयावनत नृपति डरपत अति बोलत।
प्रभु! अति कोमल चरन कठिन महिपै च्यौं डोलत॥
हो त्रिदेवमहँ एक असुर सुर अथवा स्वामी।
अथवा अज अखिलेश अमरपति अन्तरयामी॥
हौं मान्धाता नृपतनय, मोइ कहें मुचुकुन्द सब।
सुर बर लहि सोवत रह्यो, देवैं परिचय आपु अब॥

कहें बिहँसि बल-बन्धु—नाम निज कहा बताऊँ।
जनम करम गुन अखिल कहाँ तक तुम्हें गिनाऊँ॥
सुरनि विनय जब करी जनम महिपै तब लीयो।
कंसादिक जे असुर नाश तिनि सबको कीयो॥
बासुदेव मोकूँ कहें, कृपा करन आयो यहाँ।
जहाँ रहैं मम भक्तगन, दौरि तुरत पहुँचूँ तहाँ॥

सुमिरि गरगके बचन यादि मुचुकुन्दहिं आई।
लिपटे चरननि दौरि बिनय धरि धीर सुनाई॥
हे मायापति! ईश! मोह बश तुमहिं न जानें।
भरि मदमहँ अखिलेश नृपति अपनेकूँ मानें॥
का इनकूँ माँगूँ प्रभो! छिन भंगुर ये बिषय सुख।
तव चरननिमहँ होहि मति, है यह जगमहँ परम सुख॥

मुचुकुन्द-स्तुति

हे ईश ! तुम्हारी मायामें, मैं मोहित ह्वैकें भटक रह्यो।
सुखकी आशातैं या जगमें, स्वामिन् ! मैंने अति दुःख सह्यो ॥

पायो नर तनहू अति दुरलभ, पर विषय-भोगमें नष्ट करयो।
नहिँ नाम जप्यो तव कथा सुनी;नहिँ नटवर! तुमरो ध्यान धरयो॥

मैं मानी हूँ सम्मानी हूँ, हूँ धनी यशस्वी गुनखानी।
योगी साधक हूँ तेजस्वी, हूँ वड़भागी ज्ञानी ध्यानी ॥

अभिमान बढ़्यो विश्वास घट्यो,विकराल काल सम्मुख आयौ।
संकल्प सकल मनके मनमें, अहि मूषकवत् तानें खायौ ॥

सत्संग मिलै सब मान मिटै, तव चरननिमें चित लगि जावै।
मिट जाय मरन अरु जनम चक्र, भवबन्धनको भय भगि जावै ॥

पीड़ित हूँ अति ही दुःखित हूँ, है चिन्ता इन छै शत्रुनिकी।
धन वैभवकी वांछा न प्रभो ! चाहूँ सेवा पदपदुमनिकी ॥

सब छोड़ि छाड़ि जगकी आशा, आयो आश्रय अच्युत दीजै।
भय शोक मृत्युतें रहित चरन, तव गही शरन रच्छा कीजै ॥

सोरठा—सुनि इस्तुति घनश्याम, सदय भूपपै ह्वै गये।
प्रभुजी पूरन काम, दई भक्ति मुचुकुन्दकूँ ॥

छप्पय—दयो भक्ति बरदान गुहातैं निकसे यदुवर।
देखे नृप मुचुकुन्द कलियुगी लघु पशु, तरु, नर ॥
बदरीबन तप करन गये तहँ मुनि व्रत साधें।
संयम श्रद्धा सहित श्यामकूँ नित आराधें ॥
इत मथुरा आये मदन—मोहन सेना यवनकी।
लूटि पाटि बाँधीं तुरत, पुटरीं सब धन रतनकी ॥

खच्चर बैलनि लादि द्वारका धन पहुँचावत।
तब ई निरख्यो जरासन्ध सेना सँग आवत॥
राम श्याम लखि सेन बाँधिके मुट्ठी भागे।
जरासन्धके सकल बीरवर पीछे लागे॥
भगत भगत दोऊ थके, चढ़े प्रबर्षणपै उछरि।
घेर्‌यो गिरि चहुँ ओरतैं, जावें नहिं अब ये उतरि॥

पर्वत लीयो घेरि आगि चहुँ ओर लगाई।
जरि जावें मम शत्रु जरासँध मनहिँ सिहाई॥
कूदे दोऊ बन्धु न भय कछु मनमहँ मान्यो।
कब गिरितैं गिरि गये न काहूने कछु जान्यो॥
जरासन्ध निजपुर गयो, शत्रु मरे हिय मानिकें।
इत सुखतैं यदुवर रहें, पुरी द्वारका आनिकें॥

इति भागवत चरितके षष्ठाह में जरासन्धाक्रमण कालयवनोद्धार द्वारावती निर्माण नामक प्रथम अध्याय समाप्त।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

[२]

पूछें शौनक—सूत ! द्वारका वृत्त बताओ।
कै हरि किये विवाह भये कै पुत्र सुनाओ॥
हँसिके बोले सूत—कहाँ तक ब्याह गिनाऊँ।
मुख्य भये जो आठ प्रथमकूँ प्रथम सुनाऊँ॥
नृप बिदर्भपति भीष्मके, पाँच पुत्र रुक्मी बड़ो।
बहिन रुक्मिनी अंश श्री, जाके हित हरितैं लड़्यो॥

नारदादि मुनि आइ कृष्णकी करी बड़ाई।
सुनत रुक्मिनी हृदयमाँहिँ हरि-मूर्ति समाई॥
इत हरि निश्चय कर्‌यो रुक्मिनीकूँ अपनाऊँ।
करिकें बिबिध उपाय प्रियाकूँ घर लै आऊँ॥
मातु पिता सहमत सबहिं, हरि बरतैं जग होहि यश।
रुक्मीने शिशुपाल सँग, करी सगाई द्वेष बश॥

सुनत रुक्मिनी भई दुखित अतिशय घबराई।
बुलवाये बर बिप्र बृद्ध निज बिपति सुनाई॥
प्रेम पत्रिका लिखी बिप्रके करमहँ दीन्हीं।
परि चरननिमें बिनय बिप्रतैं बहु बिधि कीन्हीं॥
चले द्वारका द्विज तुरत, प्रभु पथको सब श्रम हर्‌यो।
निरखि विप्रकूँ मुदित मन, है हरिने स्वागत कर्‌यो॥

करि पूजा पकवान प्रेमतैं बिविध खवाये।
पुनि शैया अति सुखद बिछाई बिप्र सुवाये॥
लगे पलोटन चरन कुशल पूछत प्रभु पुनि पुनि।
वैदर्भीकी कथा भये प्रमुदित यदुवर सुनि॥
पीरी पाती निरखिकें, अति प्रसन्न मनमहँ भये।
बृद्ध बिप्र बाँचन लगे, प्रेम मगन हरि ह्वै गये॥

लिखै रुक्मिनी—दयित! भयो मम मन मतवारो।
सुनि गुन अनुपम रूप लिख्यो हिय चित्र तिहारो॥
हे हरि! अशरन शरन आइ दासी अपनाओ।
खल शृगाल शिशुपाल हरे नरसिंह छुड़ाओ॥
यदि आवें नहिं आपु तो, बिष खाऊँ मरि जाउँगो।
तुम बिनु चाहें मदन हू, आवे नहिँ अपनाउँगी॥

कमलनयन! सजि सेन तुरत कुंडिनपुर आओ।
रिपुसिरपै धरि चरन मोहिँ माधव! ले जाओ॥
जाउँ ब्याहके प्रथम दिवस देवी पूजन हित।
लैकें भागें मोहि नहीं क्षत्रियकूँ अनुचित॥
दीनबन्धु दुखहरन यदि, दया न दासीपै करहिं।
तो तब तक जनमूँ मरूँ, जब तक नहिँ यदुवर बरहिं॥

सुन्यो प्रियाको पत्र नयन हरिके भरि आये।
प्रेम बिवश ह्वै गये बिप्रकूँ वचन सुनाये॥
द्विजबर! मोकूँ प्रिया रुक्मिनी अतिशय भावै।
करि करि वाकी यादि रैंनिमहँ नींद न आवै॥
चलो, चलैं कुंडिनपुरी, अब द्वै दिन ही रहि गये।
सजि रथ द्विजकूँ संगलै, बहू हरन हरि चलि दये॥

हरि कुंडिनपुर पहुँचि रहे पुरकी अमराई।
इत अति विशद बरात चेदि राजाकी आई॥
जनमासो नृप दयो बराती अति हरषाये।
उत बल सुनि हरि गमनसेन सजि तिनि ढिँग आये॥
सकुचाये हरि बल हँसे, कछु मीठी चुटकी लई।
कहन वृत्त निज बिप्रकूँ, हरि चुपके आयसु दई॥

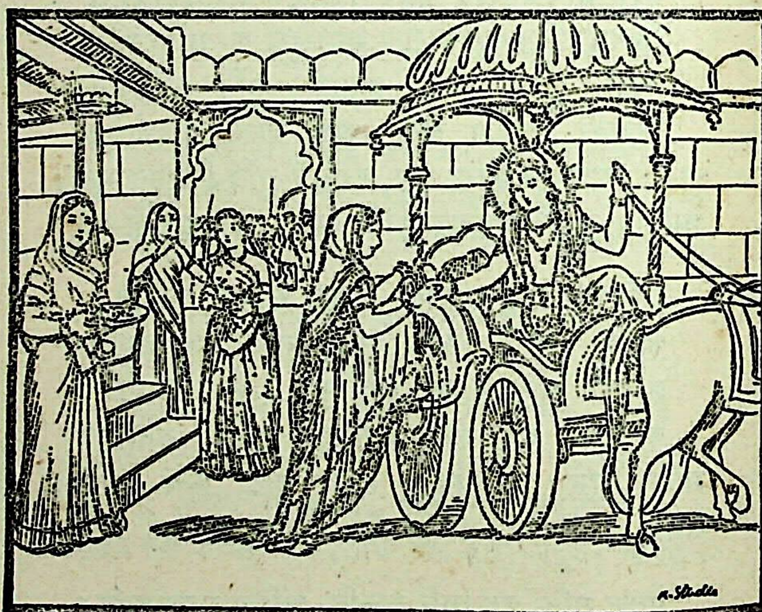
हरि आयसु सिर धारि गये द्विज अन्तःपुरमहँ।
द्विजमुखविकसतिनिरखि भयोसुख कन्या उरमहँ॥
कह्यो सकल संवाद कुमारी सुनि हरषाई।
द्विजकी रिनिया बनी अश्रु माला पहिनाई॥
सुन्यो आगमन कृष्ण बल, को नृप सुनि बिस्मित भये।
अतिथि समुझि भीष्मक नृपति, सादर निज गृह लै गये॥

करि हरि बल आतिथ्य सकल सैनिक ठहराये।
आये पुर यदुचन्द सुनत नारी नर धाये॥
हरिको अनुपम रूप लखें पुनि पुनि न अघावें।
कन्याके बर योग्य श्यामकूँ सबहिँ बतावें॥
मची धूम हरिरूपकी, हाट बाट कूचे गली।
तबहिँ रुक्मिनी सखिनि सँग, गौरी पूजन हित चली॥

पैदल मुनि व्रत धारि चलति शंकित सकुचावति।
नूपुर कंकन कड़े छड़े चूड़ी झनकावति॥
घरतैं मन्दिर तलक बाढ़ सम सैनिक लागे।
शूरबीर लै शस्त्र चलें कछु पीछे आगे॥
गौरी मन्दिर पहुँचिकें, प्रेम सहित पूजन कर्यो।
धूप दीप उपहार सब, देबी के सम्मुख धर्यो॥

करि पूजा परसाद धारि सिर बिनती कीन्हीं।
होवें पति मम कृष्ण सुआशिष देवी दीन्हीं॥
गौरी गृहतैं निकसि निहारें हरिकूँ इत उत।
शोभा बरनि न जाय मनहुँ सुन्दरता बिहरत॥

रूप, शील, वय, बिनय लखि, सचर अचर सम सब भये।
कामी नृप बाहन चढ़े, सुन्दरता लखि गिरि गये।



गरुड़ध्वज रथ निरखि बढ़ी उतहीकूँ बाला।
आवत देखी कुँवरि हाँकि रथ लाये लाला॥
कीयो ऊँचो हाथ पकरिकें रथ बैठाई।
पायो पति को परस फुरुहुरी अँग अँग आई॥

आवै निर्भय भाग लै, सिंह सृगालनि मध्य ज्यों।
देखत देखत नृपनिके, भगे भाग लै श्याम त्यों॥

तब अति हल्ला मच्यो नृपति सब लड़िबे आये।
यादव बीरनि सबहिं भूप खल मारि भगाये॥
जनमासेमहँ आइ सबनि शिशुपाल मनायो।
करि कारो मुख भागि रैनिमहँ निज घर आयो॥
इत रुक्मी ह्वै क्रुद्ध अति, करी प्रतिज्ञा हौं लरूँ।
हरि बध करि बिनु बहिन लै, नगरीमहँ नहिं पग धरूँ॥

व्यर्थ प्रतिज्ञा करी चल्यो सेना सजि मानी।
ललकारे घनश्याम बीरता बड़ी बखानी॥
भये खड़े भगवान् बान तकि तकिकें मारे।
कुंडिनपुरके बीर भगे बोले—हम हारे॥
रुक्मी ह्वैकें बिरथ लै, कर करवाल चल्यो लड़न।
तबहीं रथतैं उतरि हरि, लगे खड़्ग लै बध करन॥

निरखि बन्धु बध परीं रुक्मिनी हरिचरननिमें।
डरपि कहें मम बन्धु बधें नहिं नाथ! शरनमें॥
मानि प्रियाकें बचन न रुक्मी फिरि हरि माऱ्यो।
करि कुरूप कच कतरि बाँधि रथ पीछें डाऱ्यो॥
आइ छुड़ायो रामने, डाँटे हरि अनुचित कह्यो।
गयो न पुर पुनि भोजकट, पुर बसाइ रुक्मी रह्यो॥

भीष्मक दुहिता जीति द्वारकामहँ हरि आये।
बहू आगमन सुनत नगरमहँ बजत बधाये॥
लोग लुगाइनि पुरी और नवबधू सजाई।
कीयो बिधिवत् ब्याह रुक्मिनी सँग यदुराई॥

पाग दुपट्टा सिरोपा, पहिन पहिन यादव सजें।
नारी गावें गीत मिलि, मधुर मधुर बाजे बजें॥

सुन्दर मंडप सज्यो वधू अरु बर बैठाये।
गणपति ग्रह अरु मातृकादि पूजन करवाये॥
भाँमर फिरि कर कह्यो खीलको हवन करायों।
नेग जोंग सब करे माँग सिन्दूर भरायो॥
करिकें पलँगाचार पुनि, कर्म चतुर्थी हू कियो।
यों श्रीरुक्मिनि संगमहँ, ब्याह श्यामको है गयो॥

इति श्रीभागवत चरितके षष्ठाह में रुक्मिणी विवाह नामक द्वितीय अध्याय समाप्त।

अथ तृतीयोऽध्यायः

[३]

सुखी भये सब स्वजन निरखिअति अनुपम जोरी ।
मातु मनावें होहिं कृष्णके छोरा छोरी ॥
जनें पुत्र नित बिप्र कहें सुनि सकुचे बाला ।
कृपा कपर्दी करी जन्यो बैदर्भी लाला ॥
कामदेव जो प्रथम ही, शंभुकोपतें जरि गयो ।
सोई बनि प्रद्युम्न पुनि, प्रथम पुत्र हरिको भयो ॥

शम्बर तिहि रिपु समुझि सूतिकाघरमहँ आयो ।
शिशुकूँ करिकें कपट धाइ बनि घरतें लायो ॥
फेंक्यो सागर बत्स मत्स्यने निगल्यो जीवित ।
मछुआ ताहि फँसाइ लै गये शंबरके हित ॥
निवसति रति शम्बर महल, मत्स्य उदरमहँ मिल्यो पति ।
नारद मुनि परिचय दयो, पालति पति ह्वै मुदित अति ॥

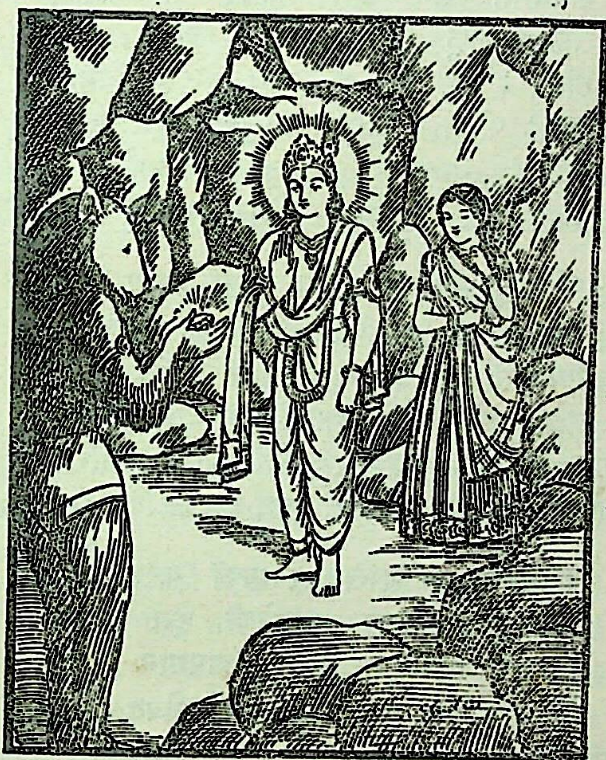
प्रथम कृष्णको ब्याह पुत्र उतपत्ति सुनाई ।
मणि स्यमन्तकी कथा सुनो अब अति सुखदाई ॥
सतभामा अरु जाम्बवती जिह कारन पाई ।
हरिने लीला लोभ मोहकी दुखद दिखाई ॥
सत्राजित यादव परम, सूर्यभक्त लोभी सरल ।
ह्वै प्रसन्न ताकूँ दई, सूर्य स्यमंतक मणि अमल ॥

सत्राजित मणि पहिन द्वारकामहँ जब आयौ।
समुझि सूर्य्य नर भगे कृष्ण सब भेद बतायौ॥
आठ भार नित कनक देहि दुख शोक नसावै।
हरि सोचें मणि दिव्य राज-महलनिमें आवै॥
माँगी हरि परिं नहिं दई, सत्राजित लोभी परम।
लोभ मोहमहँ फँसि पुरुष, खोवै सब गुण निज धरम॥

सत्राजित लघु बन्धु प्रान सम प्रिय प्रसेन बर।
धारि कंठ मणि चल्यो करन मृगया लै धनु सर॥
बनमहँ पहुँच्यो आइ सिंहने हय सँग मार्‌यो।
लै मणि भाग्यो सिंह रीछने ताहि पछार्‌यो॥
जाम्बवान मणि ग्रहण करि, घुस्यो गुफामहँ मुदित मन।
जब प्रसेन आयो नहीं, सत्राजित लाग्यो कहन॥

हरि माँगी मणि नहीं दई भाई मम मार्‌यो।
घर घर फैली बात श्याम मनमाँहिँ बिचार्‌यो॥
मिथ्या लग्यो कलङ्क करूँ हौं मार्जन अबहीं।
संग लिये बहु लोग चले मणि खोजन तबहीं॥
हय प्रसेन निरख्यो मृतक, पुनि खोजत आगे गये।
मर्‌यो सिंह लखि पुनि गुहा, देखि रीछकी घुसि गये॥

अट्ठाइस दिन लड़्यो रीछ परि हरि नहिँ हारे।
निज स्वामी रघुनाथ समुझि पुनि पैर पखारे॥
कन्या दई बिवाहि जाम्बवति लै हरि निकसे।
बारह दिन लखि बाट श्यामके साथी खिसके॥
दुखित द्वारकामहँ सकल, मिलि दुर्गा पूजन करहिँ।
जोहत प्रभुकी बाट नित, सत्राजितकूँ सब शपहिँ॥



जाम्बवती सँग श्याम निरखि सब लोग सिहाये।
पुरवासी यों मुदित मृतक ज्यों घर फिरि आये॥
मणिको सुनि सब वृत्त भयो दुःखित सत्राजित।
हरि मणि सादर दई लई ताने ह्वै लज्जित॥

सोचत सत्राजित सतत, यह अपयश कैसे सहूँ।
होहि तोष यदि मणि सहित, सतभामा हरिकूँ दऊँ॥

शतधन्वा सँग करी सगाई सतभामाकी ।
तऊ कृष्णकूँ दई न चिन्ता कीन्हीं ताकी ।।
तीन ब्याह करि गये बन्धु देखन हथिनापुर ।
कुन्ती पांडव जरे सुनत पहुँचे तहँ सत्वर ।।
जानत सब घनश्याम पर, लोक दिखावो करत हैं ।
नरक्रीड़ा करि सबनिके, चंचल चितकूँ हरत हैं ।।

हथिनापुर बल संग पहुँचि दुख बहुत मनायौ ।
भीष्म, द्रोण, कृप, बिदुर सबनि प्रति नेह जनायौ ।।
गान्धारी धृतराष्ट्र नयनतैं नीर बहावैं ।
बासुदेव ढिँग बैठि तिनहिँ प्रिय कहि समुझावैं ।।
पूछत सबतैं अज्ञवत्, कैसे पांडव जरि गये ।
लोकोचित व्यवहार हित, वहाँ कछुक दिन रहि गये ।।

शतधन्वा इन दुखित श्यामकी करत बुराई ।
कृष्ण बड़े उद्दण्ड सबनिकी हरत लुगाई ।।
कृतबर्मा अक्रूर कहें 'अपमान हमारो ।
है सत्राजित दुष्ट अधमकूँ सोवत मारो ।।
सुनि शतधन्वा चलि दयो, ह्वैकें दोउनितैं बिदा ।
बजें पराई फूँकतैं, शंख और मूरख सदा ।।

नहीं द्वारका श्याम सोचि खल घरमहँ आयौ ।
सत्राजित सुख सहित सदनमहँ सोवत पायौ ।।
सिर धड़तैं करि पृथक भग्यो मणि लैकें पापी ।
सतभामा अति दुखित चित्त चिन्ता बहु ब्यापी ।
मृतक देह धरि तैलमहँ, रथ चढ़ि हथिनापुर गई ।
सकल बात अति दुखित ह्वै, रोइ रोइ हरितैं कही ।।

ऊपरतैं करि शोक द्वारका यदुवर आये।
शतधन्वा अति डर्‌यो तुरत अक्रूर बुलाये॥
हरितैं रत्ता करो दीन ह्वै बोल्यो उनतैं।
सुनि बोले अक्रूर—बैर को साधै तिनतैं॥
खल बोल्यो घबराइकें, अच्छा, मणिकूँ तो धरो।
हौं भागूँ पुर छोड़ि तुम, सुखतैं मंत्रीपन करो॥

यों कहि चुपके भग्यो बधिक लोभी खल कामी।
हय ताको अति बेगवान् शतयोजनगामी॥
हरि बल सँग रथ चढ़े दुष्टको पीछो कीन्हों।
भगि मिथिला तक गयो चक्रतैं बध करि दीन्हों॥
मिली न मणि बल ढिँग गये,कपट समुझि बल रिस भये।
जाइ बसे मिथिलापुरी, श्याम द्वारकाकूँ गये॥

आइ ससुरको श्राद्ध कर्‌यो बहु विप्र जिमाये।
मणि खल कहँ धरि गयो कछुक हरिघर खुजवाये॥
कृतबर्मा अक्रूर द्वारकातैं सुनि भागे।
काशीमहँ अक्रूर नित्य मख करिबे लागे॥
देहिं कनकको दान बहु, कहें दानपति सकल मुनि।
बुलवाये घनश्याम जब, गये द्वारका तुरत पुनि॥

हरि कीयो सत्कार प्रेमतैं पास बिठाये।
कुशल प्रश्न करि सकल द्वारका वृत्त बताये॥
मन्द मन्द मुसकाय पकरि कर करतैं लीन्हों।
अति ही नेह जताय अपनपो प्रकटित कीन्हों॥
बोले—चाचाजी ! बड़े, बैभवशाली मख करें।
तुमही पै मणि स्यमंतक, आपसमहँ हम सब लरें॥

बन्धु करें सन्देह लड़ें सब रानी घरमहँ।
तुम मणि देहु दिखाय रहे तुमरे ही करमहँ ॥
हरि आयसु अक्रूर मानि मणि सबहिं दिखाई।
सबकी शंका मिटी शान्त सब भई लड़ाई ॥
मणि दीन्हीं अक्रूरकूँ, सोनों सब घर घर बटत।
सुखतैं सब यादव रहत, कृष्ण कृष्ण सबई रटत ॥

देख्यो चन्दा चौथ भाद्रपदको श्रीयदुबर।
तातैं लग्यो कलङ्क सह्यो सब अपयश श्रीधर ॥
जो स्यमन्त आख्यान प्रेमतैं सुनें सुनावें।
चौथचन्द्रको दोष मिटै सब शोक नसावें ॥
अपयश अपकीरति बड़ी, दुखदायी अति कष्टप्रद।
मिलै शान्ति जा कथातैं, अन्त पाहिँ नर परमपद ॥

इति श्रीभागवत चरितके षष्ठाहमें प्रद्युम्नजन्म स्यमन्तकोपाख्यान नामक तीसरा अध्याय समाप्त।

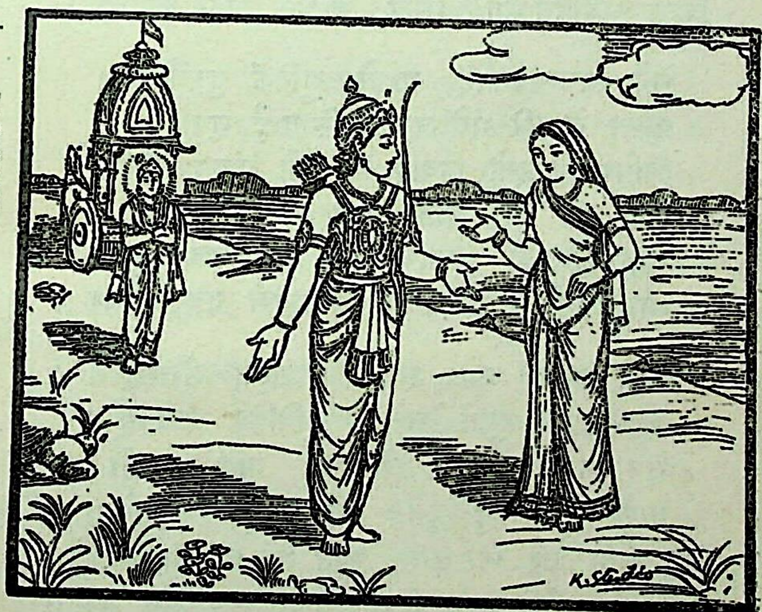
[मासिक परायण--तेईसवें दिनका विश्राम]



अथ चतुर्थोऽध्यायः

[४]

कालिन्दी सँग व्याह करयो जैसे श्रीनटवर।
सुनो, ताहि अब कहूँ व्याह चौथो अति सुखकर ॥
इन्द्रप्रस्थ हरि गये भये सब पाँडव राजा।
यदुनन्दनकूँ निरखि भयो सब सुखी समाजा।
एक दिन यमुना तट गये, मृगया हित कन्या जहाँ।
रबितनया हरि बरन हित, करति घोर अति तप तहाँ ॥



कृष्णचन्द्र सर्वज्ञ जानि ताकी अभिलाषा।
अर्जुनतैं बुलवाय पूर्ण कीन्हीं तिहि आशा॥
रथमहँ संग बिठाय युधिष्ठिरके ढिंग आये।
कालिन्दी रविसुता निरखि सब जन हरषाये॥
आइ द्वारकामहँ वरी, भये ब्याह यों चार अब।
छठे पाँचवें ब्याहको, मुनि वरणौं बृत्तान्त सब॥

देश अवन्ति प्रसिद्ध भूप जयसेन वहाँके।
परम रम्य बन, नगर, शैल, सर, दुर्ग तहाँके॥
हरि फूआको ब्याह भयो जयसेन नृपतितैं।
बिन्द और अनुबिन्द भये द्वै खल सुत तिनतैं॥
सुता मित्रबिन्दा हती, सो हरि मनपै चढ़ि गई।
किन्तु सुयोधन मानि सिख, भाइनि नाहीं करि दई।

गये स्वयम्बरमाँहिं डर्‌यो सुनिकें दुरजोधन।
कन्या लै हरि भगे लखें बिस्मित ह्वै नृप जन॥
बिधिवत् कर्‌यो बिवाह भई वो पंचम रानी।
ज्यों भद्रा सँग ब्याह भयो सो कहूँ कहानी॥
भद्रा फूआकी सुता, केकय नृप तनया सुघर।
भाइनि दीन्हीं मुदित मन, स्वीकारी तब गदाधर॥

भयो सातवों ब्याह श्याम को सत्या सँगमहँ॥
कोशलेशकी सुता सुन्दरी सुविदित जगमहँ॥
नृप प्रन कीयो सात बैल जो नाथे भूपति।
ताकूँ कन्या देहुँ सुनत तहँ पहुँचे श्रीपति॥
प्रन सुनि उतरे फेंट कसि, सात रूप हरि धरि लये।
हँसत हँसत नाथे बृषभ, निरखि मुदित सब जन भये॥

ह्वै प्रसन्न नृप कर्‌यो ब्याह सत्याको हरिसँग।
पति परमेश्वर पाइ समाई नहिँ फूली अँग॥
दीयो बहुत दहेज द्वारका चले भुवनपति।
पथमहँ नृप बहु मिले करी जिन वृषभनि दुरगति॥
भेड़निकूँ ज्यों भेड़िया, छिनमहँ देइ भगाइकें।
नृपति भगाये पार्थ त्यों, दिव्य बान बरसाइकें॥

आये सत्या संग द्वारका यदुनन्दन पुनि।
मद्र देशमहँ गये लक्ष्मणा नृप कन्या सुनि॥
भयो स्वयम्बर भूप देश देशनिके आये।
अनुपम कन्या निरखि नृपतिगन सब ललचाये॥
रङ्गभूमि आई लली, जयमाला कर धारि जब।
रथमहँ पकरि बिठाइ हरि, भगे निहारें भूप सब॥

मद्राधिप नृप बृहत्सेन पुनि धन लै धाये।
कर्‌यो लक्ष्मणा ब्याह श्याम सँग मन हरषाये।
यों पटरानी आठ ब्याहको वृत्त कह्यो सब।
जैसे सोलह सहस बरीं सो कथा कहूँ अब॥
भौमासुर नृप अति प्रबल, डरपे सुर नर दैत्य सब।
स्वर्ग, भूमि, पातालमहँ, करत फिरत उत्पात नब॥

बरुनदेवकूँ जीति छत्र अरु चँवर उड़ाये।
स्वर्गलोकमहँ गयो अदिति कुंडल अपनाये॥
मेरुशिखरतैं मणिपर्बत अपने घर लायौ।
जहँ जहँ निरखे रत्न छीनिकें खल लै आयौ॥
सुर सुरपति अति ह्वै दुखित, द्वार दयानिधिके गये।
कहे सकल खलके चरित, सुनत श्याम सकुचित भये॥

बोले सब सुनि श्याम—बात सुरपति सब जानी।
भौमासुर ह्वै गयो दुष्ट अतिशय अभिमानी॥
अदिति मातुढिँग जाइ सुखद सन्देश सुनावें।
लैकें कुंडल शीघ्र स्वर्गमहँ हमहूँ आवें॥
पाइ बचन घनश्यामतैं, सुरपति निजपुर चलि दये।
सतभामा सँग गरुड़ चढ़ि, नरकासुर-पुर हरि गये॥

गिरि,शर,जल, अरु अनिल, अनल परकोटापुर के।
दश सहस्र अति घोर पाश घेरें फिरि मुरके॥
श्याम गदा, शर, चक्र सुदर्शनतैं काटे सब।
पुरपालक मुर असुर देखि लड़िबे आयो तब॥
भये मुरारी मारि मुर, हरि सिर काटैं चक्रतैं।
शोभित धड़ पर्वत सरिस, कटे शिखर जनु शक्रतैं॥

सुनिकें मुरको मरन असुरगन अति घबड़ाये।
ताम्र आदि सुत सात पीठ सँग नरक पठाये॥
ते जब सब मरि गये स्वयं भौमासुर आयो।
लड़्यो प्रानपन सहित श्याम बल पार न पायो।
चक्र सुदर्शनतैं नरक—को सिर काट्यो श्रीहरी।
सुनत मरन सुत आइ भू, भेंट लाइ इस्तुति करी।

भू-विनय

पद

अखिलपति ! अबला अति अकुलावै।
शंखचक्रधारी बनमाली, चरन कमल सिर नावै॥१॥ अखिलपति०
कमलनयंन कमलानन कारक, नाभि कमल उपजावै।
कमलमालपद कमलसरिस प्रभु,वेद विदित गुन गावै॥२॥ अखिल०

त्रिगुन त्रिवेद त्रिदेव त्रिलोकी त्रिभुवन सृष्टि रचावै।
सबतैं अलग व्याप्त सबहीमें, पार न कोई पावै ॥३॥ अखिल०
पुरुष प्रधान, काल, मन, इन्द्रिय, तुम बिनु कछु न लखावै।
जगत चराचर भ्रमवश तुममें, दीखै नहीं नसावै ॥४॥ अखिल०
शरणागतके सब भ्रम भागें, माया नहिं भरमावै।
यह भगदत्त शरण तुमरीमें, परि पग बिनय सुनावै ॥५॥ अखिल०
दोहा—सुनि विनती यदुवर तबहिं, धरनीकूँ दै धीर।
कृपा करी भगदत्तपै, बोले गिरा गँभीर।



सोरठा—अवनि ! त्यागि भय, शोक, होहि पौत्र तव भूपवर ।
नरक जाय सुरलोक, होहि अभय भगदत्त अब ॥
छप्पय—अभय दान हरि दयो नरक सुत नृपति बनायो ।
अवनि पुत्र भगदत्त प्रभुहिं निज पुर लै आयो ॥
निरखीं सोरह सहस बन्दिनी कन्या पुरमहँ ।
होवैं पति घनश्याम भई इच्छा तिनि उरमहँ ॥
जानि सत्य संकल्प हरि, पठइ द्वारका सब दईं ।
मनबांछित ते पाइ बर, अधिक मुदित मनमहँ भईं ॥
दैवे कुंडल अदिति स्वर्गमहँ गये मुरारी ।
पाइ श्यामको दरश मातु मन भई सुखारी ॥
सतभामाकूँ पूजि शचीने आदर कीन्हों ।
किन्तु मानवी मानि देवद्रुम-सुमन न दीन्हों ॥
समुझि घोर अपमान निज, लै हरि सँग उपबन गईं ।
कल्पवृक्ष लखि लैंन हित, प्रेम सहित तहँ अड़ि गईं ॥
वृक्ष उखार्‌यो श्याम गरुड़की पीठि धर्‌यो जब ।
रक्षक रोवत गये इन्द्रतैं वृत्त कह्यो सब ॥
शची उभारे इन्द्र सेन सजि लड़िबे आये ।
रवि, शशि, यम, अरु, बरुण, देव हरि सकल हराये ॥
अस्त्र-हीन सुरपति भये, भगे भूमि रन छोरिकें ।
सतभामा कटु बचन बहु, कहे हँसी मुँह मोरिकें ॥
अब सब समुझे शक्र सकुच तजि बोले बानी ।
हैं अच्युत अखिलेश आपु हौं अति अभिमानी ॥
माया तुमरी प्रबल भूलिकें उरझ्यो स्वामी ।
क्षमा करें अपराध अखिलपति अन्तरयामी ॥
सुनत इन्द्रके बचन मृदु, भये सदय करुणायतन ।
पुर आयं सुरद्रुम लियं, थाप्यो सतभामा सदन ॥

पुनि जो सोलह सहस एक सत कन्या आईं।
बनवाये बहु भवन सकल सुखतैं ठहराईं॥
विधिवत् कर्यो विवाह रूप उतने धरि लीन्हें।
सबकूँ भूषन बसन दास दासी बहु दीन्हें॥
भवन भवनमहँ भुवनपति, पृथक पृथक निज तनु धरें।
सुखद सरस सुन्दर सतत, क्रीड़ा सबके सँग करें॥

पूछें शौनक—सूत! ब्याह हरि बहुत बताये।
किन्तु पुत्र कै भये आपुने नाहिं गिनाये॥
हँसिकें बोले सूत—कहाँ तक पूत गिनाऊँ।
मुख्य मुख्य जे भये तिनहिँके नाम बताऊँ॥
शौनक बोले—प्रथम तुम, श्रीप्रद्युम्न कहो कथा।
शम्बरपुर मायावती, रतिने पाले वे यथा॥

इति श्रीभागवत चरितके षष्ठाह में श्रीकृष्ण अन्य विवाह नामक चौथा अध्याय समाप्त।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

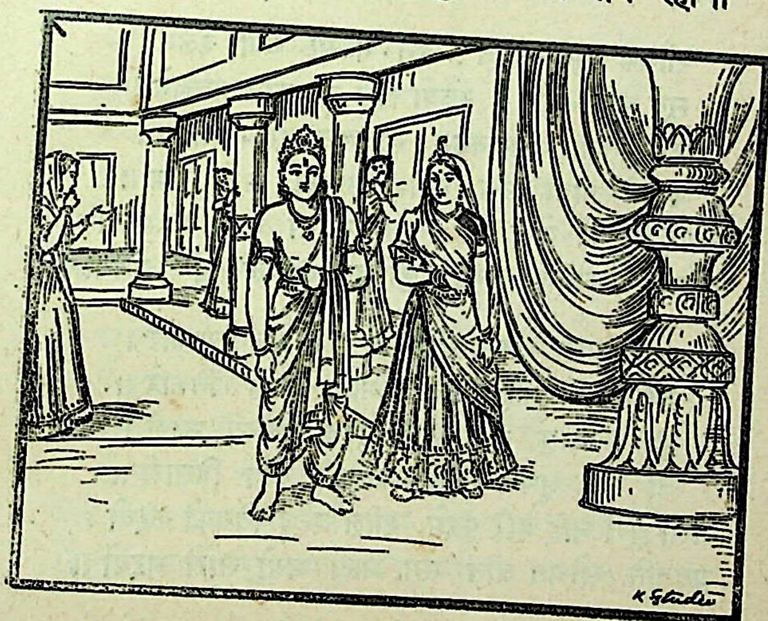
(५)

कहें सूत—सब सूद दयो शिशु रतिकूँ मनहर ।
निज पतिकूँ पहिचान करे पालन छिपि भीतर ॥
भये युवक पति सरिस भाव लखि वे घबराये ।
रतिने तब सब पूर्वजन्मके बृत्त बताये ॥
रति माया प्रद्युम्नकूँ, दीन्हीं वे निर्भय भये ।
इक दिन शम्बरतैं स्वयं, बिना बात ही भिड़ि गये ॥

कहा सुनी कछु भई युद्धकी नौबत आयी ।
ह्वैकें दोऊ कुपित परस्पर गदा चलायी ॥
पुनि मायातैं लड़े असुर नभ गयो उड़ाई ।
माया कीन्हीं बहुत श्याम सुतकूँ सुधि आई ।
सत्वमयी माया महा, छोड़ी शम्बर मरि गयो ।
असुर सकल दुःखित भये, सुरगन हिय अति सुख भयो ॥

मायावति लै संग चले प्रद्युम्न मुदित मन ।
शोभित नभमहँ मनहुँ दामिनी दमकति सहघन ॥
पहुँचि द्वारका गये भवन रानी सकुचायीं ।
कृष्ण सरिस नर निरखि कामवश भईं लजायीं ॥
तब आये घनश्याम तहँ, नारदतैं सब जानिकें ।
भईं सुखी अति रुक्मिनी, निज सुतकूँ पहिचानिकें ॥

पहिचाने वसुदेव देवकी बल हरि सबने।
वन्दन सबको कर्‌यो बधू सँग हरिनन्दनने॥
छातीतैं चिपटाइ नेह सबने दरसायो।
मृतक सरिस सुत पाइ हियो सबको हुलसायो॥
बैदर्भीके प्रथम सुत, श्रीप्रद्युम्न कथा कही।
अब आठनिके सुतनिकी, सुनहु कथा जो बचि रही॥



बैदर्भीके पुत्र भये प्रद्युम्न आदि दश।
सतभामाने भानु आदि जनि पायो जग यश॥
जाम्बवतीने शाम्ब सुमित्रादिक सुत जाये।
नाग्नजितीके वीर चन्द बसु आदि सुहाये॥
श्रीकालिन्दीके भये, श्रुत कवि आदिक तनय दश।
जनि प्रघोष आदिक तनय, लह्यो लक्ष्मणाने सुयश॥

बृक, हर्षादिक लाल मित्रबिन्दाने पाये।
भद्राने संग्रामजीत दश बेटा जाये॥
कहूँ कहाँ तक नाम सबनि सुत दश दश मानो।
एक लाख इकसठ हजार अस्सी सुत जानो॥
भये पुत्र प्रद्युम्नके, श्रीअनिरुद्ध महारथी।
रुक्मी जिनके ब्याहमहँ, मरे द्यूतके स्वारथी॥

शौनक पूछें—सूत! हने रुक्मी क्यौं बलने।
सूत कहें—मुनि! रच्यो खेल यह काल प्रबलने॥
करन ब्याह अनिरुद्ध भोजकट आये यादव।
रुक्मी पौत्री संग ब्याह सम्पन्न भयो जब॥
भयो द्यूतको खेल तहँ, बल रुक्मी दलपति भये।
रूँगट रुक्मीने करी, कुपित देवबल ह्वै गये॥

लाल लाल करि आँखि सर्प सम बल फुफकारे।
रुक्मी सिरमहँ परिघ जमायो प्राण निकारे॥
पुनि कलिङ्ग नृप पकरि तुरत बत्तीसी झारी।
जो खल भूपतिं हँसे सबनिकी दशा बिगारी॥
भलो बुरो नहिं हरि कह्यो, शील बन्धु तियको कर्यो।
यदुपति सोचत जात मग, भलो भयो सारो मर्यो॥

यों अनिरुद्ध बिबाह भयो आये निजपुर सब।
हरि बिनोद ज्यों कर्यो रुक्मिनी संग कहूँ अब॥
इक दिन निरखी प्रिया हँसति हरिने ढिँग आवति।
पग पगपै जनु सुखद मधुर रस-सो बरसावति॥
अलक, पलक, मुख, नासिका, कंठ, जघन, कटिबर, हृदय।
चुवत सबनितैं मधुर रस, मुख मनहर मुसकानमय॥

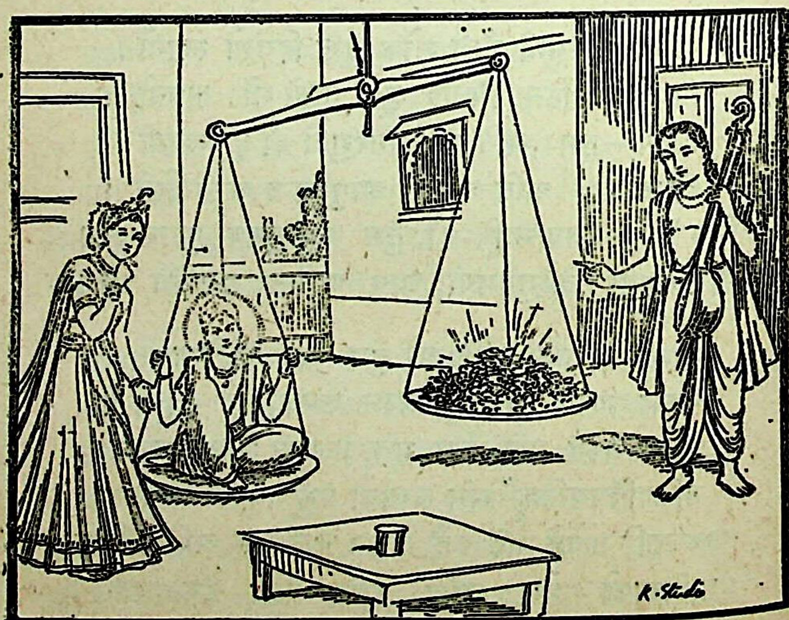
देख प्रियाको रूप हँसीकी हरिकूँ सूझी ।
मंद मंद मुसकाय पहेली पिछली बूझी ॥
कहो प्रिये ! च्यौं छाँड़ि नृपतिगण मम सँग आई ।
शूरवीर शिशुपाल संग तव भई सगाई ॥
हम निर्गुण निष्पृह परम, निष्किञ्चन निर्धन निपट ।
तातैं तजि हमकूँ अवहुँ, जाउ अपर नृपके निकट ॥

सुनि पति-बचन कठोर रुक्मिनी अति घबरायीं ।
मूर्छित ह्वै महि गिरी तुरत उठि श्याम उठायीं ॥
प्रेमालिङ्गन कर्‌यो पौंछि मुख केश सम्हारे ।
पलँग पास बैठाइ मधुर स्वर बचन उचारे ॥
अरे, प्रिये ! रूठी वृथा' हँसी हँसीमें हौं कही ।
नरक रूप घरमहँ सरस, है प्रसङ्ग सुखकर जिही ॥

सुनत रुक्मिनी हँसी शोक दुख हियको त्यागो ।
प्रियको कठिन बिनोद दूध तातो-सो लाग्यो ॥
बोलीं—तुम अति गुनी निरगुनी हौं हूँ स्वामी ।
हौं अबला अति अधम आपु अज अन्तर्यामी ॥
नित नित नूतन नारि हौं, तुम प्रभु पुरुष पुरान हो ।
हौं तिरिया तिरगुनमयी, आपु अजित भगवान हो ॥

नाशवान नर छाँड़ि बरे तुम अज अबिनाशी ।
जन्म जन्म हौं रहूँ चरन कमलनिकी दासी ॥
त्वचा, रोम, नख, केश, मूत्र, मलयुत निन्दत तन ।
तजि विषयनिकूँ संग लगायो प्रभु चरननि मन ॥
अब फिरि कबहूँ नहिं कहै, बचन बज्र सम अति कठिन ।
प्रानप्रियाको प्रेम लखि, हँसि बोले करुनायतन ॥

मानिनि लीयो मोल प्रेम सेवा करि मोकूँ।
नहीं दै सकूँ कछू प्रिये! बदलेमें तोकूँ॥
पौत्र और निज व्याह समय जो धीरज धार्यो।
तातें हौं बनि गयो भामिनी ऋनी तिहारो॥
पति पत्नीमहँ प्रेमकी, बात भयी दोऊ मिले।
पाइ परसपर परस तनु, उभय हृदय सरसिज खिले॥
ऐसे ही इक दिवस सत्यभामा सँग नटवर।
खेल खेलमहँ कह्यो पुण्य कातिक हरिबासर॥
नारदकूँ दै तुलादान सतभामा आई।
पूछें निज सौभाग्य भये कस श्याम गुसाई॥
बोले हरि—कातिक सदा, अरु व्रत हरिबासर कर्यो।
तातैं मम अर्धाङ्गिनी, प्रिया बनी मम मन हर्यो॥



प्राकृत पुरुष समान सबनिकूँ हरि सम्मानें।
तिनकूँ राजकुमारि स्ववश पति नर सम जानें॥
औरनिकी का कहें शम्भु ही लड़िवे आये।
बाणासुरको पक्ष लयो पीछे पछिताये॥

शौनक पूछें—सूतजी! क्यौं हर श्रीहरितैं लड़े।
सूत कहें—मुनि! भक्त हित, वृषभध्वज प्रभुतैं भिड़े॥

इति श्रीभागवत चरितके षष्ठाहमें प्रद्युम्नचरित रुक्मिणी-परिहास नामक पञ्चम विश्राम समाप्त।

अथ षष्ठोऽध्याय

[६]

बैरोचनि शत पुत्र बड़े सबमें बाणासुर।
शूरबीर रणधीर दये तिनि हर इच्छित बर॥
शोणितपुरमहँ बसैं करैं हर पुररखवारी।
कन्या ताकी परम सुन्दरी ऊषा प्यारी॥
तानैं इक दिन स्वप्नमहँ, लखे बीर अनिरुद्ध बर।
पति समान क्रीड़ा करत, बेधत हियमहँ काम-शर॥

ऊषा बोली—बहिन! स्वप्नमहँ नर इक आयो।
मन मेरो लै गयो तनिक अधरामृत प्यायो॥
जो न मिलै वह बीर धीर हियमहँ नहिं धारूँ।
तजूँ प्रान विष खाइ अगिनिमहँ तनकूँ जारूँ॥
चित्र चित्रलेखा लिखे, नर किन्नर, सुर, असुर बर।
लखि यदुवर अनिरुद्धकूँ, बोली—जिह मम चित्तहर॥

समुझि कृष्णको पौत्र चित्रलेखा घबराई।
योग शक्तितैं उड़ी द्वारका छिनमहँ आई॥
देखे श्रीअनिरुद्ध सुखद शैया पर सोवत।
शशि सम करत प्रकाश कामिनिनिके मन मोहत॥
बिकल प्रियाके प्रेममहँ, लखि बाला बिस्मित भई।
शैया सहित उठाइकें, शोणितपुरमहँ लै गई॥

शोणितपुरमहँ आइ सखीकूँ कुमर दिखायो।
कुमरि मुदित अति भई सुघर बर प्रियतम पायो॥
खान, पान, स्रक्, धूप, दीपतैं पति सन्माने।
ऊषा सँग अनिरुद्ध नहीं दिन बीतत जाने॥
गर्भवती ऊषा भई, द्वारपाल सब जानिकें।
बाणासुरतैं कह्यो जब, चल्यो असुर सर तानिकें॥

आइ असुरने लख्यो कुँवरि ढिँग नर इक कारो।
अति सुन्दर मनहरन सुघर बर अतिशय प्यारो॥
कछुक कहे कटु बचन न यदुबर सुनि घबराये।
तबई सैनिक समर साज सजि लड़िबे आये॥
लौह परिघ अनिरुद्ध लै, लड़न लगे सैनिक डरे।
प्रबल प्रहार न सहि सके, कछु भागे कछु गिरि मरे॥

महाबली तब बाण कोप करि आयो रनमहँ।
करे युद्ध अनिरुद्ध न शंका कीन्हीं मनमहँ॥
सहसबाहुने नागपाशमहँ बाँधे लाला।
पतिको बन्धन निरखि भई अति बिह्वल बाला॥
इति नारद द्वारावती, आइ कह्यो वृत्तान्त जब।
सुनत कुपित यादव भये, चले सेन सजि तुरत सब॥

राम, कृष्ण, प्रद्युम्न, साम्ब आदिक सब आये।
शोणितपुरकूँ घेरि शंख अरु पणव बजाये॥
सुनि पुर-रक्षक शम्भु षडानन सब गन गनपति।
करत युद्ध मिलि चले भिड़े रन भयो बिकट अति॥
कार्तिकेय प्रद्युम्नतैं, सात्यकि बाणासुर लड़त।
भिड़े शम्भु श्रीकृष्णतैं, अद्भुत नरलीला करत॥

ब्रह्म बायु अरु अनल अस्त्र त्रिपुरारी छोड़े।
जोड़ तोड़के छोड़ि श्यामने सबही तोड़े॥
जृम्भणास्त्र हरि छोड़ि लिबाई जमुहाई पुनि।
आयौ तबई बाण भगत अपनी सेना सुनि॥

आइ कृष्णतैं भिड़ि गयो, हरि हय सारथि मारिकें।
कर्‌यो बिरथ तब मातु लखि, खड़ी नग्न ह्वै आइकें॥

नग्न नारिकूँ निरखि नयन हरि पीछे फेरे।
बाण गये पुरमाँहिँ शम्भु सम्मुख हरि हेरे॥
छोड़्यो शिव ज्वर उष्ण शीत ज्वर आइ दबायो।
करी कृष्णकी विनय उष्णज्वर पिंड छुड़ायो॥

बाण आइ हरि सँग लड़्यो, हार्‌यो सब सेना मरी।
कर काटन लागे हरी, आइ शम्भु इस्तुति करी॥

शिव–स्तुति

पारब्रह्म जगदीस जगत्पति जगनिवास प्रभु।
व्यापक नित्य निरीह निरामय निराकार विभु॥
नाभि कही आकाश अग्नि मुख बीरज जल है।
श्रवण दिशा सिर स्वर्ग पदुम पद ही सब थल है॥
सूर्य नेत्र मन चन्द्र अहं शिव जलधि उदर है।
औषधि ही सब रोम इन्द्र भुज केशहु घन है॥
धर्म हृदय अज बुद्धि उपस्थहु कहे प्रजापति।
करन जगत उपकार होहिँ अवतरित रमापति॥
आदिपुरुष सरवेश सकल घटके बासी।
जग प्रपंचतें रहित सर्वगत अज अविनासी॥

जो पाई नरदेह करे तुमरो नहिँ सुमिरन।
मायाने वह ठग्यो लगावै नहिँ तव पद मन॥
हौं अज सुर-गन इन्द्र सबनिकें तुम हो स्वामी।
हो सबके पितु मातु सुहृद सत अन्तरयामी॥
बाणासुर मम भक्त अभय अब जाकूँ दीजै।
जानि दासको पौत्र कृपा करुणानिधि कीजै॥

छप्पय—इस्तुति सुनि हरि हँसे बाणपै दया दिखाई।
अजर अमर करि दयो प्रतिज्ञा प्रथम निभाई॥
भयो बाणकूँ ज्ञान लाइ वर-बधू दिखाये।
पाइ दान सम्मान सकल यादव हरषाये॥
हरि हरतैं अनुमति लई, पुरी द्वारका चलि दये।
बधू सहित अनिरुद्ध लखि, अति प्रसन्न सब जन भये॥

स्वयं सूत पुनि कहें—चरित नृग नृपति सुनाऊँ।
कैसे हरि उद्धार कर्‌यो सो बृत्त बताऊँ॥
यदुकुलके कछु कुमर गये खेलन बनमाँहीं।
लगी प्यास इक लख्यो कूप जल तामें नाहीं॥
परबत सम गिरगिट पर्‌यो, ताहि निकारत दयाबश।
नहिँ निकस्यो तब आइ तहँ, कर्‌यो प्रकट प्रभु तासु यश॥

करत कृष्ण कर-परस तुरत सुर तनु सो धार्‌यो।
पूछ्‌यो परिचय श्याम—कहे हौं दास तिहारो॥
नृप इक्ष्वाकु कुमार नाम नृग मेरो स्वामी।
करूँ धेनु नित दान आपु तो अन्तर्यामी॥
द्विज गैया इक भूलतैं, दूसर द्विजकूँ हौं दई।
दोऊ द्विज ममढिँग लड़े, तातैं मम दुर्गति भई॥



मर्यो तुरत यमसदन गयो यम पूछ्यो हँसि तब।
पाप पुण्यमहँ प्रथम आपु भोगिहौ का अब॥
प्रथम पाप हौं कह्यो मिल्यो गिरगिट तनु तबई।
प्रभुपद परसत नस्यो पाप जग-बन्धन अबई॥

यों कहि हरि अनुमति लई, दिव्य लोककूँ नृग गये।
तब हरिने यदुबरनिकूँ, सदुपदेश सुखकर दये॥

यादव ! कबहूँ भूलि बिप्रको धन मत खाओ ।
जो नहिँ मानो सीख अवसि नरकनिमहँ जाओ ॥
अहिफन, पारो भखि हलाहल बिषहु पचावें ।
किन्तु न द्विजधन पचै खाय दुख अधिक उठावें ॥

यों सबकूँ उपदेश करि, गये सबनिसँग श्याम पुर ।
इत इच्छा ब्रज-गमनकी, उपजी श्रीबलदेव उर ॥

इति श्रीभागवत चरितके षष्ठाह में हारहर समर नृगोद्धार
नामक छठवाँ अध्याय समाप्त ।

अथ सप्तमोऽध्यायः

(७)

रथ चढ़ि व्रजमहँ गये सुनत व्रजबासी धाये ।
मिले ललकि जनु प्रान मृतक तनमहँ पुनि आये ॥
सिर सूँघत पितु मातु और सब हिये लगावें ।
करि करि पिछली याद नयनतैं नीर बहावें ॥
प्रणय कोपयुत सब सखी, ब्यंग बचन पुनि पुनि कहें ।
कहो निगोड़े श्याम अब, रानिनि सँग सुखतैं रहें ॥

जिन हित हम पितु,मातु,स्वजन,परिजन सब त्यागे ।
तृन समान ते तोरि नेह हमकूँ तजि भागे ॥
कपट प्रेमको जाल रच्यो हम मृगीं फँसाईं ।
कैसे तिनिको तहाँ करति बिश्वास लुगाईं ॥
प्रेम कोपमहँ भरि कहति, सबहिं श्याम रँगमहँ रँगीं ।
हरि चितवनि बोलनि चलनि,सुमिरि सुमिरि रोवन लगीं ॥

समुझाईं बलदेव करीं क्रीड़ा तिनि सँगमहँ ।
मधु माधव द्वै मास सबनि लै बिहरहिं बनमहँ ॥
कालिन्दी इक दिवस करन जलकेलि बुलाईं ।
किन्तु समुझि उन्मत्त न तिनके ढिँग सो आईं ॥
संकर्षन अति कोप करि, हलतैं खैंचीं तानिकें ।
डरीं तुरत चरननि परीं, आईं लोहो मानिकें ॥

छमा करीं पुनि सखिनि सहित सुखतैं बल न्हाये।
उलचि उलचि जल प्रचुर परस्पर अङ्ग भिगाये॥
व्रज वनितनिको मान करें सुख सबकूँ देवें।
पलक नयन कर देह सरिस ते तिनकूँ सेवें॥
नंदगाँव बल निवसि इत, करत सतत क्रीड़ा मधुर।
उत द्वारावति कृष्ण ढिंग, पौंड्रक पठयो दूत बर॥

दूत कहे—कारूष नृपति सन्देश पठायो।
बासुदेव हौं एक भार भू हरिबे आयो॥
बासुदेव तू बनै चिह्न सब धारे मेरे।
तजे नाम नहिँ करूँ दाँत खट्टे हौं तेरे॥
पौण्ड्रकको सन्देश सुनि, श्याम हँसे सब हँसि गये।
रथ चढ़ि लड़िबे ढीठतैं, पुर कुरूषकूँ चलि दये॥

रन हित हरि नृप लखे सेन सजि सम्मुख आयो।
धारि शङ्ख चक्रादि बिष्णु सम रूप बनायो॥
लखिके भाँड़ समान हँसे हरि खल ललकार्‌यो।
कीन्हों कछु दिन युद्ध अन्तमहँ ताकूँ मार्‌यो॥
काशिराज आयो लड़न, तासु काटि सिर श्यामघन।
फेंक्यो सो काशी पर्‌यो, लखि रोवत सुत प्रजाजन॥

यों दोउनकी करी मुक्ति हरि आये निज पुर।
इत पितु-बधतैं दुखी काशि नृप-सुत सोचत उर॥
पितु-बध बदलौ लेउँ कृष्ण पुरसहित जराऊँ।
शिव आराधन करूँ मनोबांछित फल पाऊँ॥
करत सुदच्छिण शैव मख, प्रकटित कृत्यानल भई।
करन भस्म हरि द्वारका, कूँ कृत्या गर्जत गई॥

कृत्याकूँ लखि डरे द्वारकाबासी सब जन।
छोड़ि चक्र हरि दाह करायो नगर सुदर्शन॥
पुर,द्विज,कृत्या,नृपति दग्ध करि सबनि अस्त्र हरि।
आयो द्वारावती निमिषमहँ सब कारज करि॥
काशिराजके दाहकी, कही कथा शुकदेवने।
सुनो द्विविद बानर चरित, ज्यों मार्‌यो बलदेवने॥

त्रेतायुगको द्विविद बली बानर चंचल अति।
नरकासुरको मित्र संगतैं भई दुष्ट मति॥
कृष्णमित्रध्रुक् मानि लैंन बदलो खल आयो।
जारे घर, पुर, गाँव दुष्ट अति दुंद मचायो॥
इक दिन गिरि रैवतकपै, बलदाऊ मदपान करि।
हँसत हँसावत प्रेमतैं, बिहरत बनितनिकूँ पकरि॥

तहाँ द्विविदने आइ करी अविनय घट फोर्‌यो।
हल मूसल बल लयो मारि बानर सिर तोर्‌यो॥
कपि तरु फेंकत काटि देहिँ बल खल घबरायो।
द्वन्द युद्ध पुनि कर्‌यो पकरि बल गरो दबायो॥
हुच्च हुच्च करिबे लग्यो, मरि धड़ाम धरनी गिर्‌यो।
साधु साधु सुर मुनि कहत, सबने बल आदर कर्‌यो॥

अपर चरित बल सुनो कर्‌यो हथिनापुर जाई।
जाम्बवती-सुत शाम्ब सुयोधन सुता उड़ाई॥
गही स्वयम्बरमाँहिँ चल्यो घेर्‌यो कौरव पुनि।
पकरि बन्द करि दयो भये क्रोधित यादव सुनि॥
करिबे बीच बचाव बल, हथिनापुरकूँ चलि दये।
संकर्षन सन्देह सुनि, कौरव अति क्रोधित भये॥

बल बोले—सब सुनो, शान्तिके हित हौं आयो।
उग्रसेन भूपाल—अधिपने मोइ पठायो॥
आज्ञा तुमकूँ दई शाम्बकूँ छोड़ो अब तुम।
कौरव यादव एक रहें चाहत यह सब हम॥
भूल समुझि माँगो क्षमा, बिगरी फिरि बनि जायगी।
तुरत पठावो बर बधू, नहीं बात बढ़ि जायगी॥
सुनिकें कौरव कुपित भये बोले यादव सब।
भूपति बनिकें पतित देहिं हमकूँ आयसु अब॥
नीच भगोड़े फिरें नेक नहिँ इनकूँ लाजा।
मारे मारे फिरत भये अब माठू राजा॥
हमने ही ऊँचे करे, संग बिठाइ खवाइकें।
सत्य कहत मुनि विष बढ़त, पय पन्नगनि पिआइकें॥
यौं कौरव कटु बचन कहत निज नगर सिधारे।
हल मूसल ह्वै कुपित तुरत बलदेव निकारे॥
मारी हलकी फार उभार्‌यो सब हथिनापुर।
तरनी सम डगमगे नगर भय ब्याप्यो सब उर॥
कौरव कुल, धन, कुटुम्बको, सब मद तजि सूधे भये।
तुरत साम्ब अरु बधू लै, बलदाऊके ढिँग गये॥
हाथ जोरिकें कहें—प्रभो! हम अति अभिमानी।
आपु अनादि अनंत शेष समुझें मुनि ज्ञानी॥
भूल चूककूँ भूलि करें अब अभय अखिलपति।
साम्ब बधूसँग खड़े देहिँ हरषित आशिष अति॥
बिनय सुनत कौरव अभय, करे मुदित पुनि पुर गये।
संकर्षनकी बिजय सुनि, यादव आनन्दित भये॥

इति श्रीभागवत चरितके षष्ठाहमें बलदेवचरित नामक सप्तम अध्याय समाप्त।

अथ अष्टमोऽध्यायः

(८)

बसहिँ द्वारका श्याम सबहिँ रानिनि संतोषें।
सबके पुत्रनि प्रेम सहित नित पालें पोषें॥
नारद मन संदेह भयो हरि अति अलबेले।
रानी सोलह सहस किन्तु हैं आपु अकेले॥
एक नारि मैंने बरी, भयो कछुक दिनमहँ बिरत।
इतनिनिकूँ सन्तुष्ट, करि, कैसे यदुनन्दन रमत॥

इच्छा मनमहँ भई लखूँ गृहचरिया हरिकी।
देखें चलिकें हृदय भावना सब नारिनिकी॥
सोचि द्वारका चले घुसे पहिले इक घरमहँ।
प्रियासंग हरि हँसत लसत बनमाला उरमहँ॥
नारद लखि ठाढ़े भये, बैठाये सतकार करि।
करि इत उत दूसर महल, गये तहाँ हू लखे हरि॥

तहँ देखे घनश्याम प्रियासँग चौसर खेलत।
देखि दाव निज हँसत प्रियाकूँ करते ठेलत॥
नारद निरखे अतिथि कहें अनजान सरिस हरि।
करे कृतारथ देव ! दये शुभ दरश दया करि॥
करि पूजा मिष्ठान्न अति, अधिक खवायो पेट भरि।
तुरत तहाँतैं चलि दये, नारद दंड प्रनाम करि॥

अपर भवन ऋषि गये तहाँ शिशु श्याम खिलावत ।
कानाबाती कुरु करें हँसि तिन्हें हँसावत ॥
आटे बाटे खेल गुलगुली चपत लगावें ।
गोदीमें बैठाइ चूमि मुख हिय चिपटावें ॥
द्विज लखि शिशु दुलहिनि दये, बैठाये पग धोइकें ।
रसगुल्ला आगे धरे, हँसे विप्र मुख जोइकें ॥
खाइ भगे ऋषि तुरत न अब फिरि सम्मुख आवें ।
लखि चुपके हरि कृत्य अपर घरमहँ भगि जावें ॥
कहूँ निहारें न्हात खात कहुँ हवन करत हैं ।
कहूँ प्रियनि सँग हँसें कहूँ द्विज चरन परत हैं ॥
कहूँ करहिँ सन्ध्या हवन, कहूँ दान व्रत हवन जप ।
कहूँ श्राद्ध तर्पन क्रिया, कहूँ बेद बिधि यज्ञ तप ॥
हरि कहुँ गर्भाधान आदि संस्कार करावें ।
जात कर्म पुंसवन कहूँ शिशु नाम धरावें ॥
कहुँ मुण्डन उपनयन कहूँपै ब्याह रचावें ।
कहुँ पुत्रिनि करि ब्याह पतिव्रत पाठ पढ़ावें ॥
घर घरमहँ नटवर लखे, नरलीला बिधिवत् करत ।
नारद अति बिस्मय सहित, इततें उत छिपि छिपि फिरत ॥
इतनेमहँ इक नारि लखी अतिशय सुकुमारी ।
रुनुझुनु रुनुझुनु करत फिरत ऋषि दौरि निहारी ॥
कहैं पैर परि—प्रभो ! नारि च्यौं रूप बनायो ।
हरि हँसि बोले—पुत्र तोइ निज खेल दिखायो ॥
बेटा ! रक्षा धर्मकी, सहित योगमाया करूँ ।
निज दासनिको शोक भय, भ्रम माया सबई हरूँ ॥

इति श्रीभागवतचरितके षष्ठाहमें हरिगार्हस्थदर्शन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ।

 (मासिक पारायण—चौबीसवें दिवसका बिश्राम)

अथ नवमोऽध्यायः

[६]

यों नारद हरि चरित निरखि है मुदित गये पुनि ।
अब दिनचर्या कृष्णचन्द्रकी शौनक मुनि सुनि ॥
हरि अति तरकें उठें धोइ मुख ध्यान लगावें ।
न्हावें सन्ध्या हवन करें पुनि धेनु मँगावें ॥
पितर देव पुनि पूजिकें, करें दान बहु धेनु नित ।
जाइँ सुधरमा सभामहँ, रथ चढ़ि उद्धवके सहित ॥

सिंहासन अति सुखद नृपतिके निकट बिराजें ।
जनु यादव नत्तत्र मध्य शशि सम हरि भ्राजें ॥
इक दिन बैठे सभामाँहि तहँ नर इक आयो ।
जरासन्धतैं दुखित नृपति सन्देश सुनायो ॥
शरनागत रत्तक बिभो, बन्दी हम खलने करे ।
प्रभु अनाथके नाथ हैं, कारागृहमहँ हम परे ॥

भक्तबछल भगवान सबनिकी बिपदा टारो ।
फँसे फंदमहँ प्रभो ! कृपा करि हमें उबारो ॥
भयो दूत कहि मौन तबहिं नारद मुनि आये ।
करि स्वागत सत्कार श्याम मुनि निकट बिठाये ॥
बोले—मुनि करुनायतन ! धर्मराज दरशन चहत ।
राजसूय मख करन हित, लग्यो चित्त तिनको सतत ॥

इत शरणागत काज सुहृद मख इच्छा जानी।
बोले श्रीघनश्याम मधुर मायायुत बानी॥
दुविधामहँ परि गये प्रथम हम कितकूँ जावें।
यादव रनकूँ कहें मुख्य मुनि मखहिँ बतावें॥
उद्धवजी अब पञ्च हैं, ये ही दुबिधा हरिङ्गे।
ये निर्णय जैसे करें, तैसो ही हम करिङ्गे॥

उद्धव सुनि हरि बचन सकुचिकें बोले बानी।
हैं स्वामी सरबज्ञ कहूँ का हौं अज्ञानी॥
परि आयसु सिर धारि कहूँ मुनि बचन निभाओ।
इन्द्रप्रस्थमहँ प्रथम युधिष्ठिर मख हित जाओ॥
शरणागत रक्षा परम, धर्म कह्यो मख मुख्य अति।
तहाँ काज दोऊ बनें, कहूँ सुनो हे जगत्पति॥

जरासन्ध अति बली ताहि को रनमहँ मारे।
बिना दिग्विजय राजसूय व्रतकूँ को धारे॥
प्रथम पहुँचि मखमाँहिँ भीम अरजुन सँग लावें।
विप्र बेष धरि द्वन्द युद्धकी भीख मँगावें॥
यह खल छल हीतैं मरै, प्रभुने तो बहु छल करे।
उद्धव सम्मति सुनि सकल, साधु साधु कहि हँसि परे॥

इन्द्रप्रस्थकूँ चले प्रथम निश्चय करि हरि तब।
आयसु सबकूँ दई चले हरषित ह्वैकें सब॥
रानी सोलह सहस पाइ पति अनुमति आईं।
सजि बजि शिविकनि चढ़ीं अधिक मनमाँहिँ सिहाईं॥
चले सङ्ग नट नर्तकी, पथमहँ नित नाटक करत।
सेवक सैनिक अश्व गज, रथ चढ़ि कछु पैदल चलत॥

करे पार आनर्त, मत्स्य, मरु देश सुघर वर ॥
लाँघि नदी, नद नगर-निकट पहुँचे पाँडवपुर ॥
सुन्यो श्याम आगमन पाण्डु-सुत अति हरषाये ।
करिबे स्वागत सकल नगरतैं बाहर आये ॥
धरमराज पग परनहित, इत हरि दौरे ललकिकैं ।
हिय चिपटाये युधिष्ठिर, बाहु पाशमहँ जकरिकैं ॥

नयननि नीर बहाइ न्हवाये बस्त्र भिगोये ।
तनु पुलकित चित मुदित भइयोहिय पुनिपुनि रोये ।
पुनि प्रभु सबतैं मिले प्रेम अतिशय प्रकटायो ।
अति विह्वल सब भये मनुज तनुको फल पायो ॥
करि स्वागत सम्मान अति, चली सवारी श्यामकी ।
चढ़ि छज्जनि नारी लखैं, शोभा शोभाधामकी ॥

महलनि पहुँचे श्याम पैर कुन्तीके पकरत ।
लीये हिये लगाय सुभद्रा कृष्णा रोवत ॥
सबकी पूछी कुशल शिशुनिकूँ आशिष दीन्हीं ।
प्रभु पत्निनि गृह लाइ द्रौपदी पूजा कीन्हीं ॥
यों अति ई सम्मानयुत, इन्द्रप्रस्थमहँ प्रभु रहत ।
अरजुनके सँग सरस शुभ, सुखप्रद नित क्रीड़ा करत ॥

धरमराज इक दिवस सभामहँ बैठे सब सँग ।
शोभा लखि घनश्याम होहिं पुलकित सब अँग अँग ॥
बोले—हम हरि ! राजसूय मख करिकैं तुमकूँ ।
पूज्यो चाहें बिश्वनाथ ! अपनावें हमकूँ ॥
अति प्रसन्न सुनि हरि भये, बोले—यह सङ्कल्प बर ।
राजसूयमें तृप्त सब, होहिँ बिप्र, सुर, पितर, नर ॥

अच्युत अनुमति पाइ बन्धु दिग्विजय करन हित।
पठयं चारिहु दिशनि गये सेना सँग उत इत॥
सब नृप जीते किन्तु न जीत्यो जरासन्ध जब।
उद्धवजीकी युक्ति बताई बासुदेव तब॥
हरि बहुविधि समुझाइकें, धरमराज सहमत किये।
संग भीम अरजुन लिये, गिरिव्रजकूँ सब चलि दिये॥

माला चन्दन धारि कपट द्विज वेष बनायो।
मगध देशमहँ पहुँचि अलख नृप द्वार जगायो॥
जरासन्ध अति विप्र-भक्त सेवक अतिथिनिको।
अतिथि योग्य अति समुझि कियो बहु आदर इनिको॥
छलिया कपटी कृष्णने, मगधेश्वरकूँ ठगि लयो।
द्वन्दयुद्धको बर लह्यो, तब अपनो परिचय दयो॥

बोले श्री भगवान—भीम नृप! इनकूँ जानों।
दूसर इनके बन्धु बीर अरजुन लघु मानों॥
हे मामाके ससुर! औरका बात बताऊँ।
मैं तुमरो हूँ शत्रु कृष्ण कंसारि कहाऊँ॥
नृप हँसि बोल्यो—भगोड़े! द्वन्द युद्ध का करेगो।
इन निरबल छोरनि सहित, बिना मौति तू मरेगो॥

है तू तो अति भीरु हीनबल अरजुन छोटो।
भीम संग लड़ि लेउँ तुल्य बल मम सम मोटो॥
हरि बोले—अब भूप! होहि रन देर न लाओ।
सम्बन्धिनि ढिँग जाय भेंट अन्तिम करि आओ॥
जरासन्ध सुनि मुदित मन, गदा युद्ध हित कर लई।
पुर बाहर रन थल बन्यो, एक भीमहू कूँ दई॥

भिड़ैं मेषतैं मेष साँड़तैं साँड़ लड़ैं ज्यों।
द्वै द्विप ह्वै मदमत्त लड़ैं वर वीर उभय त्यों॥
दाव पेच करि उभय प्रकरषन अरु अनुकरषन।
आकरषन करि लड़ैं करें पुनि प्रबल विकरषन॥
यों सत्ताइस दिन लड़े, कहे भीम—हे कृपानिधि।
हौं हताश यह रिपु प्रबल, जीत्यो जावै कौन बिधि॥

कहैं कृष्ण—यह जुर्‌यो मध्यतैं जाकूँ फारौ।
पैर पकरिकें चीरि बीचतैं रिपुकूँ डारौ॥
गये लड़न पुनि भीम कृष्णकी बात भुलाई।
छलियाने तृन फारि भीमकूँ सुरति कराई॥
तुरत भीम बलभीमने, पकरि शत्रुको पग लयो।
एक दबायो पग पकरि, एक करनितैं कसि गह्यो॥

दयो बीचतैं फारि फर्र टुकड़ा द्वै कीये।
तुरत दौरिकें श्याम पकरि कुन्तीसुत लीये॥
लीये हिये लगाइ बधाई भाई दीन्हीं।
कहैं—कृतारथ कोखि मातु कुन्तीकी कीन्हीं॥
जरासन्ध-सुत आइकें, प्रभु पैरनिमहँ परि गयो।
कर्‌यो प्यार सन्तोष दै, राजतिलक ताकौ कियो॥

मगधेश्वर सहदेव कर्‌यो पितु काज कराये।
चढ़ि रथ कारावासमाँहिँ बन्दिनि ढिँग आये॥
बन्दी भूपति दुखित सतत प्रभु पन्थ निहारें।
कब भयभञ्जन श्याम आइकें हमहिँ उबारें॥
तबहीं निरखे भयहरन, कमलनयन प्रभु मन हरत।
कमल सरिस पग, कर, बदन, शीश मुकुट झिलमिल करत॥

निरखे नयनानंद निरामय नटवर नरपति।
भगी विपति भय भग्यो भये आनंदित सब अति॥
पुनि पुनि दरशन करें होहि संतोष न मनमहँ।
बहें निरन्तर नयन पुलक होवै सब तनमहँ॥
दंड सरिस परि भूमिपै, पुनि पुनि प्रभु पैरनि परें।
अञ्जलि बाँधें विनय युत, गद्गद स्वर इस्तुति करें॥

राजाओंकी स्तुति

देव देवेश्वर शोभाधाम। करें रक्षा नटवर घनश्याम।
यह संसार अपार अति, करें कृपानिधि पार।
तजि जगके नाते सकल, आये तुमरे द्वार॥
विपति भयभंजन तुमरो नाम॥१॥ करें रक्षा०
धन जन बल सरबसु समुझि, भजहिं तुमहिं सुख रूप।
धनमदमें मदमत्त हैं, कहें अकरि हम भूप॥
भयो मद चूर श्याम अभिराम॥२॥ करें रक्षा०
वासुदेव हरि कृष्ण विभु, प्रणतपाल जगदीश।
कृपा कृपामय करें अब, हे गोविँद गोपीश॥
परमप्रिय पदुमनि माँहि प्रनाम॥३॥ करें रक्षा०
समुझि तुमहिँ सरबस्व सत, करें नाम नित गान।
बली धनी गुनवान हम, अब न होहि अभिमान॥
करें सब तुमरे ही हित काम॥४॥ करे रक्षा०
छप्पय—हरि दरशनतैं मोद भयो मन प्रमुदित अतिशय।
करि इस्तुति बहु भाँति करें सब मिलिकें जय जय॥
शरनागत प्रतिपाल कृपा भूपनिपै कीन्हीं।
करि सबको सम्मान सुखद शिक्षा शुभ दीन्हीं॥
जाओ निज निज नगरकू, रटन नामकी नित करो।
त्यागि मान, मद, मोह नित, भजहु मोहि तो भव तरो॥

अब तुम सुखतैं सकल जाउ अपने अपने पुर।
धारो श्रद्धा सहित मूर्ति मेरी अपने उर॥
धर्मराज मख करहिँ आइ तुम सेवा करिकें।
द्रव्य सफल निज करहु भेंट बहु आगे धरिकें॥
तब सबकूँ सहदेवने, असन बसन बाहन दये।
प्रभु आयसु स्वीकार करि, सब निज निज नगरनि गये॥

यों रिपुकूँ मरबाइ भूप बन्दी छुड़वाये।
ह्वै सम्मानित श्याम भीम जय सँग पुर आये॥
इन्द्रप्रस्थ ढिँग आइ सबनि निज शंख बजाये।
लोग सुनत शुभ शङ्ख बिजय समुझी हरषाये॥
धरमराज धुनि सुनि मुदित, भये लखे जय भीम हरि।
अरघ अश्रु दै दौरिकें, मिले श्यामतैं अंक भरि॥

इति श्रीभागवत चरितके षष्ठाहमें जरासन्धवध
नामक नवम अध्याय समाप्त।

[पाक्षिक पारायण—द्वादश दिवस विश्राम]

अथ दशमोऽध्यायः

[१०]

जरासन्ध-बध बृत्त सुनत नयननि जल छाये ।
नृपति भये अति दीन बिनययुत बचन सुनाये ॥
प्रभो ! आपु ई राजसूयकी दीक्षा लेवें ।
अथवा सेवक समुझि दासकूँ आयसु देवें ॥
बोले हरि—कुरुकुलतिलक ! राजसूय मख करहु तुम ।
भरे कोष जीते नृपति, सम्मुख सेवक सकल हम ॥

हरि आयसु सिर धारि यज्ञके ठाठ रचाये ।
करमकांडमहँ कुशल बेदबिद बिप्र बुलाये ॥
सुनत, कण्व, त्रित, कवस, असित, क्रतु, पैल, पराशर ।
गौतम, अत्रि, बसिष्ठ, राम आदिक सब मुनिवर ॥
आये मखमहँ मुदित मन, अति स्वागत सबको कर्यो ।
चरन पखारत प्रभुहिँ लखि, नयन नीर सबके भर्यो ॥

धूम धाम अति मची—लेहु धन भोजन पाओ ।
मनमाने धन रतन बाँधिके घर लै जाओ ॥
कहें नारि नर—यज्ञ न ऐसो देख्यो कबहूँ ।
जल सम बरसत कनक चुकत नहिँ तनिकहु तबहूँ ॥
परब सोमरस-पान दिन, करि याजक पूजन नृपति ।
प्रथम सभासद पूज्यको, जामें मच्यो विवाद अति ॥

बोले उठि सहदेव—सभामहँ स्याम बिराजैं।
नभमहँ उडुगन मध्य शरद शशि सम हरि भ्राजैं॥
ये ही जगके पूज्य प्रथम पूजा अधिकारी।
अखिल भुवनपति सकल चराचरके दुखहारी॥
कर्यो समरथन पितामह, साधु साधु सब ई कहत।
धरमराजके प्रेमबस, नेह नीर नयननि भरत॥

पांडव कृष्णा सहित सुनत अति भये सुखारे।
पूजन प्रभुको कर्यो प्रेमतैं पाद पखारे॥
पूजाबिधि सब भूलि करैं कछु कछू बतावैं।
कहि न सकें कछु बात कँपैं कर हिय हुलसावैं॥
प्रभुपूजा शिशुपाल लखि, बोल्यो—कृष्ण अयोग्य अति।
जाति बरन कुलतैं रहित, कपटी कायर मंदमति॥

जनमभूमि तजि भग्यो ठग्यो मगधेश्वर छलतैं।
कोई जात्यो नहीं भूमिपति जाने बलतैं॥
क्षत्रिय कुलतैं हीन दीन अति जाकूँ प्यारे।
धनी न मानी जाहि, निहारैं वैभव वारे॥
अंडबंड बहु काल तक, बकत रह्यो शिशुपाल जब।
दौरे पांडव हनन हित, रोकि कहैं घनश्याम तब॥

बूआ मेरी श्रुतश्रवाको सुत यह पापी।
तीन नयन भुज चारि सहित जनम्यो संतापी॥
तब नभवानी भई गोद जाकीमहँ जावै।
गिरैं नयन कर वही जाहि परलोक पठावै॥
मेरी गोदीमहँ गिरे, करी बिनय बूआ बहुत।
दयो ताहि बर दयाबश, क्षमा करहुँ अपराध शत॥

तबतैं हौं गिनि रह्यो भये अपराध अधिक शत।
अब हौं मारूँ जाइ होहि जामें सबको हित॥
यों कहिकें घनश्याम सुदरशन चक्र चलायौ।
करि धड़तैं सिर पृथक सभामहँ काटि गिरायौ॥
तेज निकसि शिशुपाल तन, तैं हरि तनमहँ मिलि गयौ।
तीन जनममहँ द्वेषतैं, भजि पुनि प्रभु पार्षद भयौ॥

चेदिराज वलि चढ़ी भयो मख पूरो तबहीं।
पाइ मान सन्तुष्ट भये आगत नृप सबहीं॥
दई दच्छिना बिपुल कनक धन रतन लुटाये।
सब सुर नर गन्धर्व निरखि मख परम सिहाये॥
पूरन मख करि हरि सहित, धरमराज अति मुदित मन।
संग लिए नर नारि सब, चले न्हान अवभृत करन॥

गंगाजीपै जाय न्हान की धूम मचाई।
घेरे रानिनि श्याम उलचि जल देह भिगाई॥
पिचकारी प्रभु मारि करें व्याकुल नारिनिकूँ।
हँसें हँसावें पकरि डुबावें सब साथिनिकूँ॥
रानिनि सँग होरी करत, मलत मुखनि केशरि ललित।
सुमन गिरत शिर कच खुलत, कृष्ण कलित क्रीड़ा करत॥

करि अवभृत इस्नान नृपति निज निज पुर गमने।
सुहृद बिछोहो निरखि धरमसुत भये अनमने॥
रहे प्रेमबश श्याम सुयोधन ठहर्यौ कछु दिन।
लखि पांडव धन बिभव तासु हिय जरत छिनहिँ छिन॥
एक दिवस मयसभामहँ, जल थल भ्रम ताकूँ भयौ।
थलकूँ जल लखि मोह बश, पग रपट्यो पुनि गिरि गयौ॥

लखि पांडव नृप हँसे धरमसुत बहुत निवारे।
किन्तु कौतुकी कृष्ण सेंनमहँ सबहिँ उभारे॥
दुरजोधन अति दुखी भयो खीज्यो खिसयायो।
सबहिँ व्यंगतैं कहें—अंधने अंधो जायो॥
भर्यो क्रोध में चलि दयो, हथिनापुरमहँ आइकें।
छलें पांडवनि द्यूतमहँ, सोचै गुट्ट बनाइकें॥

इति श्रीभागवत चरितके षष्ठाहमें धर्मराज राजसूययज्ञ नामक
दशम अध्याय समाप्त



अथ एकादशोऽध्यायः

[११]

इत यदुबरतैं रहित द्वारका शाल्व निहारी।
चढ़िकैं सौभ बिमान लड़ाई कीन्हीं भारी॥
करत नगर बिध्वंस लड़ै नहिं हारत अघमति।
यादव बंश बिनाश हेतु तप कीन्हों खल अति॥
औघरदानी शम्भुने, इच्छित फल ताकूँ दयो।
बायुयान बर मय-रचित, पाइ मत्त दुरमति भयो॥

इन्द्रप्रस्थ प्रभु गये द्वारकापै चढ़ि आयौ।
लैकें सौभ बिमान नगरमहँ दुन्द मचायौ॥
अस्त्र शस्त्र बरसाइ तुरत नभमहँ छिपि जावै।
जलमहँ उतरै फेरि सतत गोला बरसावै॥
हरिनन्दन प्रद्युम्न तब, सजि सेना रिपु दलनहित।
चले संग यादव सुभट, भये सौभ लखि चकित चित॥

डरे नहीं प्रद्युम्न प्रथम रिपु मायानाशी।
छोड़े अगनित बान कृष्णनन्दन सुखराशी॥
कीयो मूर्छित शाल्व सचिव ताको पुनि आयो।
देख्यो आवत शत्रु तबहिं रथ तुरत घुमायो॥
सहसा श्रीप्रद्युम्न हिय, गदा मारि गरज्यो सचिव।
बज्र सरिस हियमहँ लगी, दुखी सारथी भयो तब॥

लै रथ रनतैं भग्यो चेत हरि-सुतकूँ आयौ।
युद्ध पलायन निरखि सारथी अति धमकायौ॥
करिकैं पुनि पय-पान कवच बदल्यो रन आये।
गरजन भीषन करी शत्रु सैनिक घबराये॥
मंत्री शाल्व द्युमान बध, कर्‌यो फेरि आगे बढ़े।
करहिं बान बरसा असुर, बायुयानपै सब चढ़े॥

सत्ताइस दिन भयो युद्ध नहिं यादव हारे।
हय, गज, पैदल, रथी सौभपतिके बहु मारे॥
भगै न खल छल करै शस्त्र नभतैं बरसावै।
बन, उपवन, आराम, सभा घर तोरि गिरावै॥
पुरी सकल ऊजर करी, पुरबासिनि अति दुख दयो।
इन्द्रप्रस्थतैं आइ इत, श्याम परम विस्मय कियो॥

क्षत बिक्षत निज पुरी निहारी कहें मुरारी।
आइ सौभपति अधम द्वारका सकल उजारी॥
बल पुर-रक्षा हेतु भेजि रिपु सम्मुख आये।
उभय परस्पर भिड़े क्रोधयुत बचन सुनाये॥
बाननिकी बरसा करी, शत्रु मान-मर्दन कर्‌यो।
रिपु मारे शर श्यामकर, सारँग धनु करतैं गिर्‌यो॥

सुर मुनि हाहाकार करें रिपु भये सुखारे।
शाल्य बढ़्यो अभिमान गरबयुत बचन उचारे॥
कृष्ण मारिकैं तोइ मित्र-ऋण आजु चुकाऊँ।
हँसि बोले भगवान–तोइ यमसदन पठाऊँ॥
मायापतिसँग सौभपति, बिबिध भाँति माया करत।
माथातैं बसुदेव रचि, काट्यो तिनको सिर तुरत॥

नरलीला कछु करी फेरि माया सब जानी।
सौभ करन विध्वंस गदा श्रीहरिने तानी॥
भारी, गिर्‌यो बिमान टूटिकें चूर भयो सब।
लखि हरि सम्मुख शाल्व चक्रतैं सिर काट्यो जब॥
हाय हाय अरिदल मची, भये मुदित यादव अमर।
जय जय सुर नर मुनि कहहिं, सुघर श्याम जीत्यो समर॥

शाल्व और शिशुपाल मरन सब जगमहँ छायौ।
वदलौ लैवे दन्तबक्र द्वारावति आयौ॥
रनके बाजे बजे उभयदल चले हरषि पुनि।
मामा फूफी बन्धु लड़ैं लखि बिहँसत ऋषि मुनि॥
गदा श्याम सिर मारि खल, हँस्यो न हरि बिचलित भये।
तानि गदा कौमोदकी, कृष्ण असुरके ढिँग गये॥

मारी हियमहँ गदा गिर्‌यो मरि अति अभिमानी।
तनुतैं निकसी ज्योति श्यामतनुमाँहिँ समानी॥
तीन जन्म जय बिजय भये खल हरिने मारे।
शाप मुक्त अब भये तुरत बैकुन्ठ सिधारे॥
दन्तबक्रको बन्धु लघु, आइ बिदूरथ रन कर्‌यो।
सोऊ हरिके हाथतैं, समरमाँहिँ सम्मुख मर्‌यो॥

बिजयी बनि घनश्याम पुरी अपनीमहँ आये।
सुन्यो द्यूतमहँ धरमराज कौरवनि हराये॥
राज पाट सब हारि बने पांडव बनबासी।
पहुँचे बनमहँ तुरत सुनत अच्युत अबिनासी॥
दई सान्त्वना सबनिकूँ, बनको प्रन पूरन भयो।
दुरयोधनने तऊ नहिं, राज पांडवनि फिरि दयो॥

भयो युद्ध उद्योग पक्ष पांडव प्रभु लीयो।
उदासीन बनि रहौं यही बल निश्चय कीयो॥
तीरथ व्रतके ब्याज द्वारकातैं चलि दीये।
पहुँचे क्षेत्र प्रभास तृप्त सुर, नर, ऋषि कीये॥
करत पुण्य तीरथ सकल, नैमिषार आये मुदित।
स्वागत हित ऋषि आपु सब, उठे अरघ दीयो उचित॥

पिता न मेरे उठे रहे बैठे उच्चासन।
बल सोचें—यह धृष्ट करूँ हौं जाको शासन॥
ब्रह्म अस्त्रतैं तुरत पिताके काट्यो सिरकूँ।
ऋषि बोले—हम दियो ब्रह्म आसन बर इनकूँ॥
बल बोले—यह अघ भयो, भावी अति बलवान है।
उग्रश्रवा वक्ता बनैं, आत्मा पुत्र समान है॥

और कहें सो करूँ बतावें अपर प्राइचित।
ऋषि बोले—नित बिघन करे बल्वल पापी इत॥
ताकूँ मारें अबहिँ वरष भरि पुनि तीरथ करि।
यद्यपि आपु बिशुद्ध शुद्ध होवें द्विज दुख हरि॥
बल बोले—हे बिप्रगन! बल्वलको बध करुङ्गो।
द्विजद्रोहीकूँ नष्ट करि, सब सङ्कट दुख हरुङ्गो॥

बक्ता मोकूँ कर्‌यो रहे कछु दिन यदुनन्दन।
कर्‌यो उपद्रव आइ परबपै बल्वल भीषन॥
हलतैं खैंच्यो असुर ताँनि मूसर सिर मार्‌यो।
करत भयङ्कर शब्द गिर्‌यो परलोक सिधार्‌यो॥
यों बल्वलकूँ मारिकें, तीरथ हित बल चलि दये।
तब तक कौरव खल-नृपति, भारत रनमहँ मरि गये॥

भीम सुयोधन लड़ैं न बल बल बहुत लगायो।
किन्तु उभय हठ करी सुयोधन स्वर्ग सिधायो॥
नैमिसार पुनि आइ यज्ञ बलदाऊ कीन्हों।
यज्ञ दक्षिणा रूप ज्ञान तुम सबकूँ दीन्हों॥
यों बध वल्वलको कर्यो, संकरषन अवतार बल।
सुनहु सुदामा चरित अब, परम सुखद अतिशय बिमल॥

इति श्रीभागवत चरिके षष्ठाह में शाल्वोद्धार बल्देव तीर्थ यात्रा नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।
(मासिक पारायणपचीसवें दिवसका विश्राम)



अथ द्वादशोऽध्यायः

[१२]

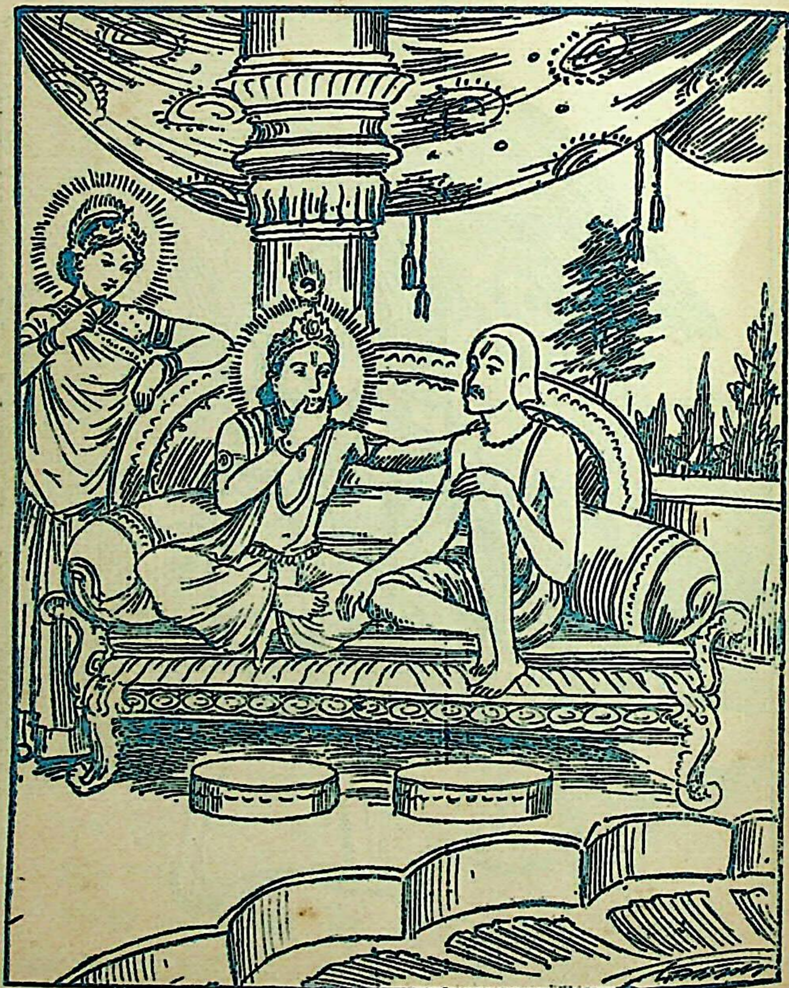
हरि सहपाठी सखा सुदामा रहे विप्रवर।
मलिन बसन तन छीन दीन भिच्छुक फूल्यो घर ॥
पतिनी तिनकी लटी दूबरी करुनामूरति ।
हरि-साली घर हिली करी तिनकी अति दुरगति ॥
भिच्छामें जो कछु मिलै, तातैं करि निरबाह नित ।
हरि सुमिरन दोऊ करत, नहिं अधर्ममहँ देहिं चित ॥

दारिद दुख अति दुसह भयो तब सती सुझायो ।
हैं यदुनन्दन सखा देव ! बहु बार बतायो ॥
क्यों न द्वारकानाथ निकट हे प्रियतम ! जावें ।
दीनबन्धु ढिँग जाइ दुसह दुख क्यों न सुनावें ॥
द्विज बोले—धन हेतु हरि, ढिँग कबहूँ नहिं जाउँगो ।
बिना अन्न मरि जाउँगो, तऊ न उदर दिखाउँगो ॥

बिबिध भाँति समुझाइ द्वारका भेजे द्विजवर ।
चूरा मुट्ठी चार माँगि दीये अति सत्वर ॥
दाबि बगलमहँ भेंट चले द्विज लठिया टेकत ।
डगमग डगमग परैं पैर हाँपत मग देखत ॥
तरु तर सोये श्रान्त ह्वै, तनु जरजर मग अति बिकट ।
लाइ सुवाये शक्ति हरि, पुरी द्वारकाके निकट ॥



सुदामा और उनकी पत्नी पृ० ७७०



सुदामा जी के चावल और श्रीकृष्ण जी पृ० ७७२

जागे, पूछें—कहाँ द्वारका कृष्ण रहें कित।
भौंचक्के से लखें परम बिस्मित ह्वै उत इत॥
लोगनि दयो बताइ रुक्मिनी महलनि आये।
द्विजनि सहित ह्वै द्वार लाँघि हिय अति हरषाये॥
मित्र मिलनकी चटपटी, लगी सबनितैं द्विज कहत।
कृष्ण हमारे सखा हैं, हम उनितैं मिलिबो चहत॥

सब सेवक सुनि हँसहिँ ब्यंग करि करि बतरावें।
भोरे भारे विप्र सरल चित बात बतावें॥
प्रिया सहित प्रभु पलँग पधारे दीठि परी जब।
दौरे ह्वैकें बिकल बिसारी तनु सुधि बुधि सब॥
दोऊ भुजा पसारिकें, चिपटाये हियतैं तुरत।
मित्र मित्र पुनि पुनि कहत, नेह नीर नयननि बहत॥

स्वयं पकरि यदुनाथ पलँगपै बिप्र बिठाये।
पूजाको संभार स्वयं करकमलनि लाये॥
करि पूजन सम्मान स्वादु भोजन करवाये।
करें प्रेम अति अधिक सुदामा बहु सकुचाये॥
नेह सहित बैठाइ ढिँग, पुनि पुनि पूछत कुशल हरि।
कहो लौटि गुरुसदनतैं, गृही बने नहिं ब्याह करि॥

भाभी कैसी मिली मिलै मन तुमरो वाते।
लड़ति भिड़ति तो नाहिं कान तो करे न ताते॥
कितने बालक भये सबनिके नाम बताओ।
सब घरको बृत्तान्त सुनाओ मति सकुचाओ॥
गुरुकुलके सुखमय दिवस, हाय! स्वप्न सम अब भये।
वा दिनकी कछु यादि है, ईंधन लैवै बन गये॥

घरमहँ इँधन नाहिँ कह्यो गुरुआनी जाओ।
बेटा! बनमहँ जाइ तुरत इँधन लै आओ॥
हम तुम दोऊ चले प्रबल बन आँधी आई।
बरषा भीषन भई नहीं मग परै दिखाई॥
राति बिताई वृक्ष तर, भोर भयो गुरु आइकें।
कर्यो प्यार आशिष दई, हिय लीये चिपटाइकें॥

जो गुरु दैके ज्ञान मोक्षको मार्ग बतावें।
ते हरि हर अज रूप सच्चिदानन्द कहावें॥
अच्छा, भाभी कहा हमारे लीये दीयो।
अबही नहिं तुम दयो बिलम काहेकूँ कीयो॥
कछु न कहें द्विज लाजबश, श्रीहरि वैभवतैं चकित।
बार बार यदुवर कहें, देहु उपायन प्रिय तुरत॥

दये रुक्मिनी कछुक प्रेममय हरिकूँ ताने।
तिनकूँ सुनिकें बिप्र और सहमे सकुचाने॥
इत उत चित्त बँटाइ बगलतैं चिउरा खींजे।
खाये मुट्ठी तुरत कहें—ये अम्मृत सींचे॥
लगे चबावन दूसरी, लयो रुक्मिनी पकरि कर।
कहें—करो का कृपानिधि, मोऊकूँ कछु देउ बर॥

चिउरा मुट्ठी एक खाय सब सम्पति दीन्हीं।
मोकूँ हू अब दैन आपुने इच्छा कीन्हीं॥
यों हरि सब कछु दयो न द्विजकूँ प्रकट दिखायो।
होत प्रात ही बिप्र पूछि निज नगर सिधायो॥
कछुक दूरि पहुँचाइबे, आये हरि हिय लायकें।
बिदा करे अति बिनयतैं, अति ही नेह जनायकें॥

मगमहँ सोचत जात श्याम आदर अति कीयो।
किन्तु न एक छदाम ब्राह्मनीकूँ धन दीयो॥
नहीं दियो भल कियो अरथतैं अनरथ होवै।
द्रव्य पाइकें पुरुष सनुजता ऋजुता खोवै॥
सोचत सोचत नगर ढिँग, पहुँचि लगे विस्मय करन।
निरखि अस्सन,पट,गज,तुरँग,बहु सम्पति मणिमय भवन॥

दिव्य अपसरा बनी बस्त्र भूषनतैं सज्जित।
बहु दासिनितैं घिरी निहारी नारी हरषित॥
स्वरग सरिस सम्पत्ति सकल श्रीहरिकी जानी।
समुझि गये सब रहस कृपा यदुबरकी मानी॥
सुमिरन करि करि कृपाको, पुलकित तनु बिनती करें।
जनम जनम हरि सखा बनि, ऐसे ही मम दुख हरें॥

प्रभु प्रसाद सब समुझि करें बिषयनिको सेवन।
मनमहँ धारे कृष्ण करें तिनि नित प्रति चिन्तन॥
जगमहँ सब सुख भोगि अंत हरि लोक पधारे।
भये सुदामा सखा श्यामके अतिशय प्यारे॥
सुनें सुदामा चरित जे, ते न परै भवकूप पुनि।
गोपिनि सँग हरि मिलन ज्यों, भयो कहूँ अब सुनहु मुनि॥

इति श्रीभागवत चरितके षष्ठाह में सुदामाचरित नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

[१३]

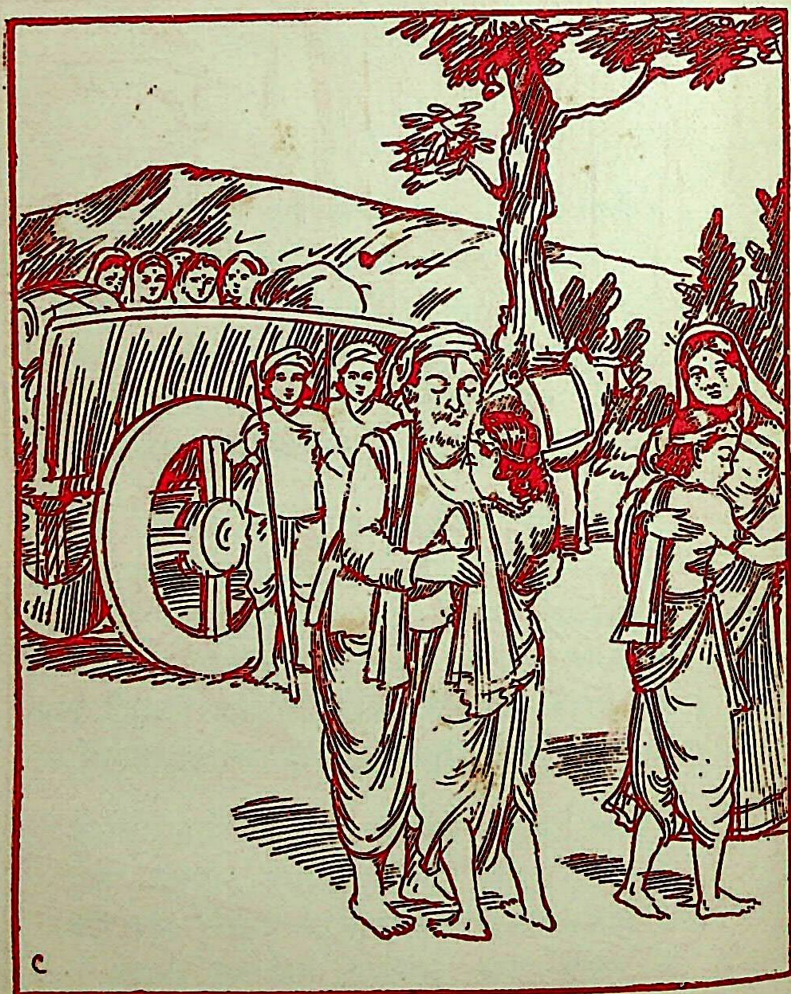
सूर्य्य-ग्रहन इक बार पर्‌यो सुनि सब नर नारी।
गये न्हांन कुरुक्षेत्र सकल यादव बनवारी॥
इततैं गोपी गोप परबपै मिलि तहँ आये।
भेंट परस्पर भई सकल मिलि परम सिहाये॥
उभय ओर आनन्द अति, प्रमुदित यादव गोप-गन।
खिल्‌यो कमलमुख नयन जल, पुलकित तनु गद्‌गद बचन॥

राम कृष्णने दौरि नंद यशुमति पग पकरे।
शिशुसम गोद बिठाइ पुत्र कसिकें हिय जकरे॥
उभय नयन जलधार बहै करुना घबरानी।
भये कंठ अवरुद्ध न निकसै मुखतैं बानी॥
मातु पिताकी गोदमहँ, रोवत शिशुसम श्याम बल।
पट भिगवत सिसकत लिपटि, पुनि पुनि पौंछत नयन जल॥

शान्त भयो आवेग यशोदा भीतर आईं।
दौरि देवकी और रोहिनी हिये लगाईं॥
करि करि पिछली यादि अधिक आभार जतावें।
ये तुमरी सुत-बधू सबनिके नाम बतावें॥
राम श्यामकी वहुनिकूँ, लखि यशुमति प्रमुदित भईं।
नाती बेटा होहिं बहु, मातु सबनि आशिष दईं॥



कुरुक्षेत्र में यशोदा जी तथा राम कृष्ण की भेंट पृ० ७७४



गोपी श्रौर गोपों की कुरुक्षेत्र से विदाई पृ० ७७८

लखि बैभव ब्रज-बाल बहुत मनमहँ सकुचावैं।
सोचें-कब एकान्त ठाँवमहँ हरिकूँ पावैं॥
अति रहस्यमय बात होहिँ नहिँ सबके सम्मुख।
निभृत निकुञ्जनिमाँहिँ मिलहिँ प्रिय तब होवै सुख॥
समुझि भाव भगवान पुनि, सबतैं निर्जन थल मिले।
गाढ़ालिङ्गन कर्‌यो हरि, चन्द्रानन सबके खिले॥

सकुची सहमी सखी श्याम संकोच छुड़ायो।
मधुर मधुर मुसकाइ करनि मुख अधर उठायो॥
पूछें—का रिस भई न हौं फिरि ब्रजमहँ आयो।
जो नहिं चाहौं करन भाग्यने सो करवायो॥
है प्रारब्ध अधीन सब, सुख दुख अरु बिछुरन मिलन।
सार यही संसारमहँ, मोमें थिर है जाइ मन॥

भरि नयननि जल कहें गोपिका—हरि! तुम ज्ञानी।
का समुझें हम योग ज्ञानयुत तुमरी बानी॥
कीयो जो उपदेश साँच हम ताकूँ मानें।
किन्तु न यशुमति-तनय छाँड़ि हम जग कछु जानें॥
बरदाता! बर देहु जिह, जाइ न हमरी अनत मति।
तब मूरति हियमहँ बसै, चरन कमलमहँ होहि रति॥

करी कृपा करुनेश सबनिकूँ धीर बँधायो।
धरमराजने दरश हेतु सन्देश पठायो॥
गोपिनिकूँ करि बिदा द्वारपै यदुबर आये।
करि स्वागत सत्कार नृपति पांडव बैठाये॥
कुशल क्षेम पूछी तबहिं, कहहिं धरम-सुत नयन भरि।
भई कुशल अब दयामय, तब चरननिके दरश करि॥

इत यदुनन्दन पांडुसुतनि सँग प्रेम दिखावें।
उत पांचाली प्रभु-पत्निनि सँग मिलि बतरावें॥
निज बिबाहकी बात चलाई सब उकसाईं।
पूछें सबतैं—कहो कृष्ण तुम कस अपनाईं॥
रुक्मिनि! सत्ये! लक्ष्मणे! हे भद्रे! हे जाम्बवति।
सतभामे! रोहिनि! कहो, अपनाईं ज्यों जगत्पति॥

कृष्णातैं सब कहें ब्याहकी बिहँसि कहानी।
सत अरु सोलह सहस आठ श्रीहरिकी रानी॥
रुक्मिनिने निज हरन सत्यभामा मनि चोरी।
जाम्बवतीने कही मिली हरितैं ज्यौं जोरी॥
कालिन्दी तपकी कथा, सत्याने बृष नाथिबो।
कह्यो मित्रबिन्दा स्वयं, बल-पूर्वक हथियायबो॥

भद्राने संक्षेपमाँहिं सब बात बताई।
परम सरसतायुक्त लक्ष्मणा कथा सुनाई॥
पुनि जो सोलह सहस अधिक शत प्रभुकी पतिनी।
कही सबनि इक संग कथा करुनामय अपनी॥
हरि-पत्निनि अनुराग लखि, सब अति आनन्दित भईं।
भाग्य सराहत सबनिके, सब निज निज डेरनि गईं॥

इत बाहर हरि दरश हेतु मुनिवर बहु आये।
करि स्वागत सत्कार कनक आसननि बिठाये॥
पुनि पुनि करी प्रनाम जोरि कर बोले श्रीहरि।
आज धन्य हम भये दये शुभ दरश दया करि॥
जप, तप, तीरथ, व्रत, सतत, सेवनतैं पावन करें।
किन्तु संत दरशननि ही, तैं सब दुख दारिद टरें॥

सुनी श्यामकी विनय भये विस्मित सब ऋषि-गन।
समुझि लोक व्यवहार कर्यो पुनि सबने थिर मन॥
कहें—देव! करि दरश दुरित दुख टरे हमारे।
प्रभु तुम अशरन शरन चरन लखि भये सुखारे॥
हृदयकमलमहँ योगि जन, करहिँ ध्यान जिनको सतत।
तिन पदपदुमनि ध्यानमहँ, रहहिं सदा हम सब निरत॥

यों करि बहुबिधि विनय चलनलागे ऋषि मुनि जब।
तुरत जाइ वसुदेव चरन सिर धरि बोले तब॥
करम धरमके हेतु करम विनु नहीं नसावें।
कौन करम करि होहिँ मुक्ति सो युक्ति बतावें॥
सुनि हँसि बोले—कृष्ण पितु, है के हू शंका करें।
बसहिँ गङ्गके निकट नर, पय न पियें प्यासे मरें॥

नारद बोले—मुनिगन! जामें अचरज नाहीं।
रहे संग तित होहि न श्रद्धा ताके माहीं॥
सुनि मुनि बोले—प्रभु प्रसाद हित कर्म करें जे।
होहि न तिनकूँ दोष बन्ध जग नहीं परें ते॥
सुररिन, ऋषिरिन, पितृरिन, रहे सबनिपै 'तीन रिन।
यज्ञ और अध्ययन सुत, करि होवें सब द्विज उरिन॥

सुत सर्वेश्वर करे कर्यो अध्येन जथामति।
कर्यो न मख अब करो शूर सुत सुनि हरषे अति॥
मख करवावो मोहि मुनिनितैं बिनती कीन्हीं।
सब ऋषि ऋत्विज करे यज्ञकी दीक्षा लीन्हीं॥
सजि बजि नर नारी फिरहिँ, मख हित लावहिँ फूल फल।
हरि दरशन के लोभबश, रहे तहाँ ऋषि मुनि सकल॥

अनुपम उत्सव भयो सबनिको स्वागत कीन्हों।
बहुत धेनु धन धान दान विप्रनिकूँ दीन्हों॥
मखमहँ सुर ऋषि पूजि शूर-सुत अति हरषाये।
पाइ मान सुर बिप्र सकल निज धाम सिधाये॥
पूजित ह्वैकें नंदजी, सब ई गोपी गोप-गन।
रहे कछुक दिन संग तहँ, पुनि कीयो व्रजकूँ गमन॥

नित प्रति छकरा जोरि चलहिं जब गोप नयन भरि।
आजु नहीं अब काल्हि जाइयों कहि रोकें हरि॥
तीन मास यों रहे निकट जब बरषा आई।
भये बिबश बल श्याम कष्टतैं करी बिदाई॥
नंद यशोदा सुतनिकूँ, पुनि पुनि हिये लगाइकें।
कच भिगवत चूमत बदन, नयननि नीर बहाइकें॥

गोपी गोपनि हृदय प्रेमतैं अति भरि आये।
मन हरि चरननि छोरि मधुपुरी तनतैं धाये॥
इत यादव सजि सेन द्वारकामहँ आये जब।
कही कथा जो भई मिले ज्यों व्रजबासी सब॥
मिले रहत बल्लभ सदा, गोपिनि हियमहँ बसहिँ नित।
मिलन भयो कुरुक्षेत्रमहँ, भयो न व्रज सम मन मुदित॥

इति श्रीभाग चरितके षष्ठाह में कुरुक्षेत्रमें कृष्ण व्रजबासी संगम नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त।

अथ चतुर्दशोऽध्याय

[१४]

एक दिवस बल श्याम गये निज पितुके पाहीं ।
निरखि ज्ञान जिह भयो पुत्र मेरे ये नाहीं ॥
ऋषि मुनि भीषम व्यास इन्हें सर्वेश बतावें ।
मानि मोइ निज जनक आइ पद शीश नवावें ॥
बोले—तुम दोऊ सकल, या जगके आधार हो ।
अज, अच्युत, अक्षर, अजिर, अखिलेश्वर अवतार हो ॥

बसुदेव—स्तुति

जय कृष्ण कृपालो ! भयत्राता ।
जय संकरषन सब सुखदाता ॥
दोऊ जा जगके रक्षक हो, निर्माता हो पुनि भक्षक हो ।
तुम सकल ज्ञानके शिक्षक हो, नहिँ तुमरो जगतें कछु नाता॥१॥जय०
चाहें जब जैसे बनि जावें, धरि रूप बिबिध जगमें आवें ।
नहिँ पार निगम आगम पावैं, तान्यो जगमायाको छाता॥२॥जय०
हैं जगमें जितने शक्तिमान, अधिपति स्वामी अरु तेजवान ।
भगवान ज्ञान अरु बुद्धिमान, तुमही सबके हो गुनदाता॥३॥जय०
हैं पुरुष पुरातन आपु उभय, रबि, शशि, तारा ग्रह, सदा सभय ।
नित करें सरग, थिति आपुप्रलय, सबजगके तुमही पितु माता॥४॥जय०

छ०—मोपै क्रिपा करो शरन तुमरी हौं आयौ।
इन्द्रिय बिषयनि फँस्यो समय सब व्यर्थ गँवायौ॥
सुनिकैं पितुके बचन श्यामसुन्दर सकुचाये।
आत्मज्ञान युत मधुर बिहँसि बर बचन सुनाये॥
सब भगवतके रूप हैं, मैं तुम बल ये चराचर।
आत्मा अद्वय एकरस, नित्य निरंजन परावर॥

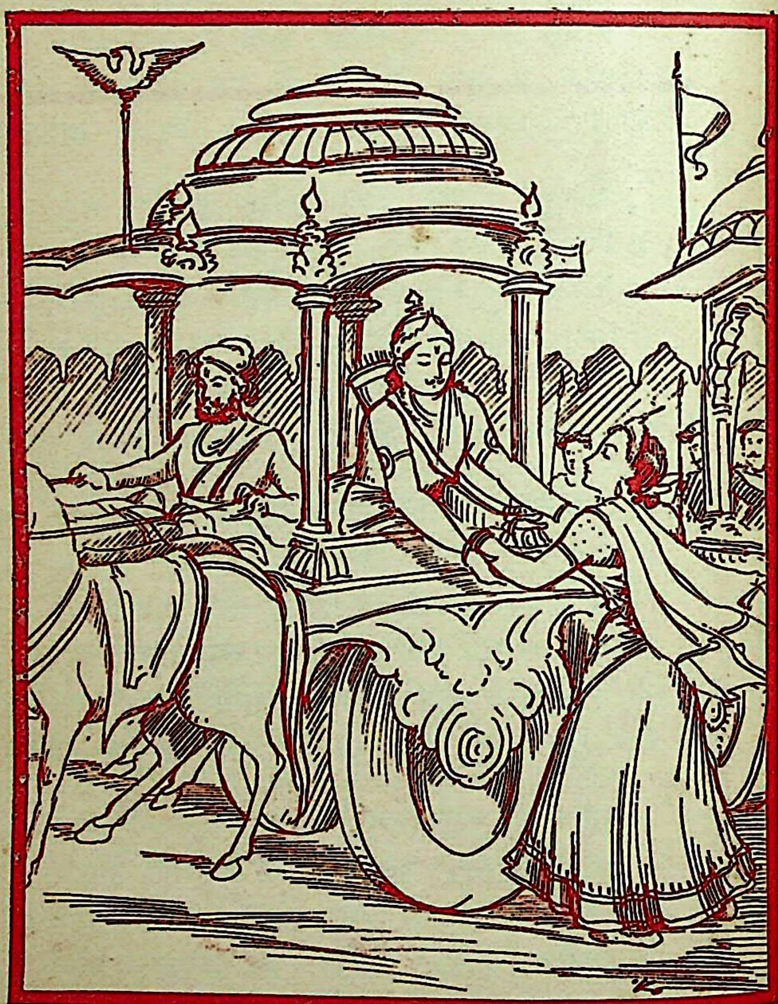
सुनि हरिको उपदेश भये बसुदेव सुखारे।
तब ई आई मातु मुदित बल श्याम निहारे॥
बोलीं माता—प्रथम मृतक गुरु-सुत तुम आन्यो।
योगेश्वर तुम उभय मुनिनितैं मखमहँ जान्यो॥
मेरे छै सुत कंसने, जनमत मारे सुघर सब।
तुम समर्थ सर्वज्ञ हो, तिनहिँ दिखाओ लाइ अब॥

माता इच्छा समुझि सुतल बल हरि उठि धाये।
बलितैं पूजित भये कुमर माया तैं लाये॥
सुतनि पाइ अति मुदित भई जननी सुख पायो।
पय पिआइ मुख चूमि सूँघि सिर हिय सरसायो॥
छै मरीचि सुत बिधिहिँ जब, कामातुर लखि हँसि गये।
असुर भये ते शाप बश, प्रभु प्रसाद पुनि सुर भये॥

सूत कहें—अब हरन सुभद्रा सुनहु मुनीश्वर।
करहिँ भक्त अभिलाष सकल पूरन परमेश्वर॥
बन प्रसङ्गमहँ पार्थ सुभद्रा इच्छा लखि उर।
बनि बाबाजी रहें छद्मतैं छिपिकें हरिपुर॥
बल छलकूँ समुझे नहीं, करे निमंत्रित कपट मुनि।
करति सुभद्रा पूर्व ही, प्रेम पार्थको सुयश सुनि॥



श्रीविष्णु जी पर भृगु मुनि का पदप्रहार पृष्ठ ७८८



सुभद्रा हरण पृ० ७८१

सौनी बाबा बने सुयश पुरमाहीं छायो।
बल बुलाइ घर प्रेम सहित भोजन करवायो॥
कुमरि सुभद्रा बार बार व्यंजन बहु परसे।
अति सुन्दर मनहरन रूप लखि पुनि पुनि हरषे॥
द्वै द्वै मिलिकैं चार जब, भईं आँखि दोऊ ठगे।
कपटी मुनि मोहित भये, प्रणय सहित देखन लगे॥

वेष बदलिकें चार मास अरजुन तहँ निवसे।
करत प्रफुल्लित सबनि शारदी शशि सम बिकसे॥
कुमरि हरन हरि संग योजना बैठि बनाई।
रथ चढ़ि उत्सव माँहिँ सुभद्रा बाहर आई॥
बासुदेव निज रथ दयो, छद्म बेष तजि पांडुसुत।
गये सुभद्राके निकट, पकरि बिठाई रथ मुदित॥

सुनि बल यादव कुपित चले लड़िबे अरजुनतैं।
ह्वैकें हरि गम्भीर प्रेमयुत बोले तिनतैं॥
है अजेय जग पार्थ बात मत व्यर्थ बढ़ाओ।
करो सुभद्रा ब्याह नेहतैं नगर बुलाओ॥
हरिकी सम्मति समुझि बल, जय बुलाय कन्या दई।
पाइ परस्पर बर बधू, अति प्रसन्नता मन भई॥

अब इक मुनिवर कहूँ कृपायुत कलित कहानी।
मिथिलापुरमहँ बसहिँ बिप्र श्रुतदेव अमानी॥
भूपति तहँ बहुलाश्व भक्तवर हरिके प्यारे॥
दोउनि करन कृतार्थ कृष्ण पुरमाँहिँ पधारे॥
पहुँचे मिथिला नगरमहँ, बहु ऋषि मुनि हरि संगमह।
सुनत बिप्र नृप हरषतैं, नहीं समाये अंगमहँ॥

दोउनिने इक संग निमंत्रित श्रीहरि कीन्हें।
दोउनि करन कृतार्थ रूप द्वै हरि धरि लीन्हें॥
एक रूपतैं गये ऋषनि सँग नृप महलनिमहँ।
अपर रूप धरि गये द्विजनि लै विप्र भवनमहँ॥
भूपति हरि-पद गोद धरि, सुहरावें पुनि पुनि कहें।
करें कृपा करुणेश कछु, काल जनकपुरमहँ रहें॥

इत द्विज देखे देव दीनके द्वारे आये।
चरण कमल सिर नाइ बिनययुत बचन सुनाये॥
नित्य निरञ्जन नाथ निरन्तर निकट हमारे।
अति अनुकम्पा करी अज्ञ अनुचर उद्धारे॥
करें कहा करुणायतन! विधिवत बात बताइ दें।
होहिं द्रवित जाते तुरत, साधन सुखद सिखाइ दें॥

हँसि हरि बोले—बिप्र बेद जगमाँहिँ प्रचारें।
शम, दम, संयम, नियम साधि तिनिकूँ ते धारें॥
मेरे हू ते पूज्य करें जो अर्चन तिनिको।
समदर्शी है जाय भक्त होवे जो उनिको॥
यों सिख दीन्हीं द्विज नृपहिँ, कछु दिन रहि पुनि पुर गये।
सुनो कथा, अब शम्भुकी, बिकल असुर बर दै भये॥

इति श्रीभागवतचरितके षष्ठाह में मातृपितृमैथिलानुग्रह
नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

[१५]

पूछें शुकतें भूप—प्रभो ! हर मरघटबासी।
चिता भस्म तन मलैं दिगम्बर बिषय उदासी॥
तिनिके सबई भक्त धनी मानी भोगी अति।
बने ठने हरि रहें सुघर सुन्दर कमलापति॥
लक्ष्मीपति-प्रिय धन रहित, शैव धनी बनि जात हैं।
बैष्णव बनि माँगत फिरहिँ, ये का उलटी बात हैं॥

बोले शुक—सुनु नृपति शम्भु अज औघर दानी।
होहिँ शीघ्र सन्तुष्ट लहहिँ बर खल अभिमानी॥
पाइ अमित ऐश्वर्य करें अपमान सबनिको।
प्रकृति परे प्रभु बिष्णु टिकै नहिँ चित्त खलनिको॥
करैं बिष्णु जापै कृपा, निष्किञ्चन ताकूँ करें।
सबकी आशा छोड़ि जब, आवे तब सब दुख हरें॥

सुनो एक इतिहास परे हर संकट दै बर।
आशुतोष शिव समुझि करै तप उग्र बृकासुर॥
तनुको काटै मांस अग्निमें होमें ताकूँ।
बसै तीर्थ केदार भये छै दिन यों वाकूँ॥
शिव दरशन जब नहिँ दये, सतवें दिन गहि खडग खल।
सिर काटन लाग्यो जबहिँ, प्रकटे शंकर शिव बिमल॥

कहें—अरे, च्यौं मरै माँगु बर मत घबरावै ।
माँग्यो बर—कर धरूँ जासु सिर सो मरि जावै ॥
आशुतोष ह्वै बिमन दयो बर खल सुख पायो ।
भयो बिमोहित शिवा रूप लखि चित्त चलायो ॥
करूँ परीक्षा शम्भु सिर, कर धरि यदि मर जायँगे ।
मिलै सुन्दरी शिवा अरु, सबरे सुर डर जायँगे ॥
धरन शम्भुपै हाथ बढ़्यो हर अति घबराये ।
भागे मुट्ठी बाँधि लोकपालनि पुर आये ॥
बृक हू बरतैं बढ़्यो भगै सँग शिवके मगमहँ ।
कौन अन्यथा करै शम्भुके बरकूँ जगमहँ ॥
और उपाय न देखि हर, भागि चले बैकुण्ठपुर ।
रमारमन जहँ रमा सँग, करहिँ कलित क्रीड़ा सुघर ॥
हरि सब समुझि रहस्य रूप बटु धरि मग आये ।
बृकतैं बोले—बीर ! फिरौ च्यौं तुम घबराये ॥
कह्यो असुर सब बृत्त बताई अपनी इच्छा ।
बोले हरि—निज शीश हाथ धरि करहु परीक्षा ॥
सुनिखल निजसिर कर धर्‌यो,भयो भस्म शिव बचि गये ।
ऐसो बर फिरि देहिं नहिं, हरि हरतैं कहि हँसि गये ॥
सोरठा—सूत कहें मुनिराज, वेदस्तुति बरनन करूँ ।
वे ही कारन काज, ज्ञान रूप हरि एकरस ॥
छप्पय—हरि सब जगके ईश सृष्टि सब जिही बनावें ।
जे ही रक्षा करें प्रलयमें लेट लगावें ॥
बन्दी बनिकें वेद विनययुत बोलें बानी ।
बानी श्रुति कहलाइँ भेद समुझैं मुनि ज्ञानी ॥
प्रलय अन्तमें श्रुति सकल, करहिं विनय ह्वैकें मगन ।
इस्तुति नृपकी करहिँ ज्यों, बन्दी मागध सूत-गन ॥

शौनक बोले—सूत ! वेद इस्तुति कछु भाखें ॥
भेदभाव निज भक्त समुझि मनमहँ नहिं राखें ॥
कहैं सूत—मुनि ! विषय गूढ़ कैसे हौं भाखूँ ।
आपु सकल सर्वज्ञ भेद तनिकहु नहिं राखूँ ॥
ब्रह्मसत्र जनलोकमें, भयो कुमारनिको प्रथम ।
नारदतैं हरिने कह्यो, कहूँ ताहि अब सुनहु तुम ॥
बने सनन्दन व्यास भये श्रोता सब भाई ।
प्रकट्यो ब्रह्म विचार ज्ञानकी नदी बहाई ॥
कहें सनन्दन—प्रलयकाल अवसान समुझि सब ।
श्रुति इस्तुति मिलि करें कहूँ ताहीकूँ हौं अब ॥
सोवें सुखतें प्रलय-पय, में परमेश्वर श्रुति जगीं ।
हाथ जोरि सर्वेशकी, यों इस्तुति करिबे लगीं ॥

वेद-स्तुति

चौपाई

जाते जनमें जे सच भूता, सब जग जाको प्यारो पूता ।
जानें पूरब अज उपजाये, जानें चारिहु वेद बताये ॥
बुद्धि प्रकाशक देव अनन्ता, शरण गहूँ जो आत्मनि सन्ता ।
ब्रह्म सत्य अरु ज्ञान अनन्ता, जो सरबज्ञ सर्वविद् सन्ता ॥
कथन मात्र हैं सकल विकारा,ज्यों घटमें मिट्टी ही सारा ।
ब्रह्मरूप है सब जग भाई मिथ्या नाना जो दिखलाई ॥
कमलपत्र जल नहिं ठहरावै,त्यों ज्ञानी अघ नहिँ लिपटावै ।
द्वैत न जाके मनमहँ आवै, पाप पुन्यतैं सो बिलगावै ॥
नाम असुर्या लोक अनन्ता,तमतें घिरे नहीं जिनि अन्ता ।
आत्माघाती जे नर अहहीं, मरिकें तिनि लोकनिमें रहहीं॥

आत्मज्ञान जानें नहिं कीयो, तानें मनि तजि लोहो लीयो।
ब्रह्म अमृतकूँ जो नर पीवें, मरे न कबहूँ ते नित जीवें॥
जो विषयनिमहँ नर फँसि जावें, भ्रमें जगतमहँ दुख बहु पावें।
अन्न प्रानमय वही ब्रह्म है, वही बुद्धि मन परब्रह्म है॥
कोई उदर ब्रह्म करि मानें, कोई हृदय ब्रह्म ही जानें।
कोई दहर उपासन करहीँ, दहर अन्त आकाशहिँ भरहीँ॥
एक देव सब भूतनिमाहीँ, छिप्यो गूढ़ है दीखत नाहीँ।
साक्षी सबके हृदय बिराजै, केवल निर्गुन ह्वैकें राजै॥
सबरे जगकूँ वही बनावें, रचि पचि पुनि तामें घुसि जावें।
जो पुतरिनिमहँ पुरुष दिखावै, सोई सूरजमाहिँ लखावै॥
एक अनेक प्रकार लखाई, अन्य नहीं सो तू ही भाई।
नमें जाहि सब देव पितरगन, ज्ञानी औंर मुमुक्षू हरिजन॥
सब प्रतिबिम्ब देखि हरषावें, पतो बिम्बको नहीं लगावें।
घड़ा देखि विस्मय सब मानें, कुम्भकारकूँ नहिँ पहिचानें॥
देखो सुनो मनन करि ध्याओ, आत्मा में ही चित्त लगाओ।
मन बानी जहँतैं फिरि आवें, ब्रह्म ताहि सब बेद बतावें॥
जाको सब ई जगत् पसारो, जातें नहीं जगत् कछु न्यारो।
पहिले सत ही सत जगमाहीँ, कहो असत कछु हानी नाहीं॥
ब्रह्म ब्रह्म ही ब्रह्म लखावै, ब्रह्म बिना कछु दृष्टि न आवै।
मूरख फँसे अविद्या भीतर, समुझि विज्ञ दैं मन्त्र निरन्तर॥
अन्धे अन्धनि गैल दिखावें, दोऊ गिरि कूआ में जावें।
अद्वय एक ब्रह्म सत चित है, भूत भूतमें वह व्यवथित है॥
एक अनेक वही कहलावै, जैसे जलमें चन्द्र लखावै।
आत्माको ही सकल पसारो, आत्मातें कोई नहिँ न्यारो॥
ब्रह्म सत्य अरु ज्ञान अनन्ता, नाना नहीं एक ही पन्था।
जो नानापन जगमें देखै, मृत्यु द्वार मरिकें वह पेखै॥

ता बिनु वस्तु बहुत नहिँ थोरी, बँधे नाम दामहुकी डोरी।
हाथ पैर नहिँ इन्द्रिय मन हैं, चलें फिरें सब करें करम हैं॥
जाके डरतें भूत, चन्द्र, रवि, करें करम सो सरवेश्वर कवि।
अग्नि पतङ्गा ज्यों उपजावै, त्यों आत्मा जग अखिल बनावै॥
मैं सब जानूँ जो यह मानै, सो मानों किञ्चित नहिँ जानै।
जल बुद्बुद्वत जनम मरन है, वही करम अरु वही करन है॥
सुमन भिन्न सब रस मिलि जावै, सब मिलि जुलि सो मधु कहलावै।
ज्यों सरिता सागर मिलि जावैं, नाम रूप तजि सकल बिलावैं॥
त्यों विद्वान असत्य भुलावै. पुरुष पुरातनमहँ मिलि जावै।
माया में फँसि जीव भुलावै, पुनि पुनि जनमै पुनि मरि जावै॥
जनम मरन भक्तनिकूँ नाहीं, परैं न ते माया माहीं।
चित चंचल हयके सम अहहीं, होहि समाहित गुरुपद गहहीं॥
जे गुरु बिनु भव तरिबौ चाहीं, ते बिनु कवट उदधि तराहीं।
जे रति सुखकूँ बड़ सुख मानें, ते नहिं आत्मतत्व पहिचानें॥
सत्संगति जिनकूँ मिलि जावै, तिनिकूँ रति-सुख घर नहिं भावै।
स्वरग नरक दोऊ दुखकारन, आत्मज्ञान ही है सुख भाजन॥
जो गृह तजि पुनि रति सुख चाहें, ते पुनि पुनि नरकनिमें जावें।
हरि ही हैं या जगमें सारा, हरि ही का यह सकल पसारा॥
हरि ही जग जगही सब हरि है, हरि हरि कहि नर जगतें तरि है।
हरि ही नारी हरि ही नर है, हरि ही भीतर हरि बाहर है॥
हरि भजु सब तजि हरि गुन गाओ. हरि हीमें नित चित्त लगाओ।
ऊपर हरि हैं नीचे हरि हैं, और कछू नहिँ हरि ही हरि हैं॥
उठें नाथ सब जगहिँ उठावें. अपना गुन कीर्तन करवावें।
जो तुमरो नितप्रति गुन गावें, ते तुमर ही पदकूँ पावें॥
दोहा—वेद स्तुति सनकादि सुनि, भये प्रसन्न महान।
सम्माने श्रीसनन्दन, पुनि कीयो प्रस्थान॥

गूढ़ ज्ञान मुनिवर परम, धारें हियमें आप ।
श्रवन मनन निदिध्यासतें, मिटैं जगत संताप ॥
छप्पय—और सुनो इक चरित चली चरचा मुनिमाहीं ।
करहिं यज्ञ ऋषि विशद सरस्वति तटके पाहीं ॥
हरि, हर, अजके बीच कौन सुर श्रेष्ठ कहावें ।
भृगु मुनि करे नियुक्त परीक्षा लैबे जावें ॥
प्रथम गये ते अज निकट, करी न दंड प्रणाम मुनि ।
सुत अबिनय लखि अति कुपति भये न बोले ब्रह्म पुनि ॥
भृगु शिवसन पुनि गये शम्भु दौरे मिलिबे हित ।
कह्यो अघोरी आपु न भेंटूँ है यह अनुचित ॥
मारन दौरे रुद्र सती पग परि लौटाये ।
क्रोधी शिवकूँ समुझि फेरि मुनि हरिपुर आये ॥
सिर धरि लक्ष्मी अंकमहँ, सोवत हरि मुनि जायकें ।
उरमहँ मारी लात कसि, उठे बिष्णु घबरायकें ॥
लात लगत ही उठे चरन मुनिके सुहलावें ।
पुनि पुनि करें प्रणाम दीन है बचन सुनावें ॥
द्विजवर ! मोतैं भूल भई स्वागत नहिं कीन्हों ।
सेवा कछु नहिं बनी कष्ट ऊपरतैं दीन्हों ॥
तव पद हैं अतिशय मृदुल, हिय कठोर मम बज्र सम ।
पहुँची पग पीड़ा प्रभो ! भये दूरि मम दुरित भ्रम ॥
हरिकी सुनिकें बिनय भये भृगु अतिशय लज्जित ।
प्रेम न हिये समात कण्ठ गद्गद अति विस्मित ॥
आइ सत्रमहँ सकल वृत्त बिप्रनि सन भाख्यो ।
विष्णु सबनितैं बड़े सबनि यह निश्चय राख्यो ॥
हरिलीला संवरणको, भास होहि जामें यथा ।
कहूँ बिप्र अरु पार्थकी, अति अद्भुत अत्र सो कथा ॥

रहें द्वारका पार्थ कृष्ण इक चरित दिखायौ।
मृतक पुत्र लै विप्र द्वार राजाके आयौ॥
सबै यादवनि कहैं—मरें क्यौं मेरे बालक।
हैं सब यादव पतित अधरमी कुलके घालक॥
एक एक करि नौ मरे, पुनि पुनि रोवत आइकें।
अन्तिम द्विज सुत मृतक लखि, अरजुन कहें रिस्याइकें॥

कहो विप्र! का यहाँ न कोई क्षत्रिय निवसै।
बिलपै ऐसे बिप्र न कोई घरतें निकसै॥
तब सुत रक्षा करूँ देव! अब नहिं घबरावें।
होहिँ प्रसवको समय आई पुनि मोइ बतावें॥
सुत रक्षा यदि नहिं करूँ, जरूँ अगिनिमहँ हँस्यो द्विज।
प्रसव काल आयौ जबहिं, गये पार्थ लै धनुष निज॥

छोड़ि शरनि घर घेरि बनायो पिँजरा सम तिन।
जनम्यो शिशु करि रुदन भयो अन्तरहित तत्छिन॥
अरजुन लज्जित भये बिप्र कटु बचन सुनाये।
द्विजसुत ढूँढन हेतु लोकपालनि पुर धाये॥
कहूँ मिल्यो बालक नहीं, लागे अरजुन तब जरन।
तोइ दिखाउँ द्विज तनयं, चल बोले अशरनशरन॥

दै अरजुनकूँ धीर ताहि रथमहँ बैठार्‌यो।
पच्छिम दिशि करि लक्ष्य दिव्य रथतुरत सिधार्‌यो॥
पर्बत, द्वीप, समुद्र सात सब लंघन करिकें।
कर्‌यो घोरतम नाश सुदर्शन आगे बढ़िकें॥
देख्यो तमके पार अति, दिव्य तेजमय लोक तहँ।
परे सहस फन अहि प्रबल, दिव्य उदधिके भवनमहँ॥

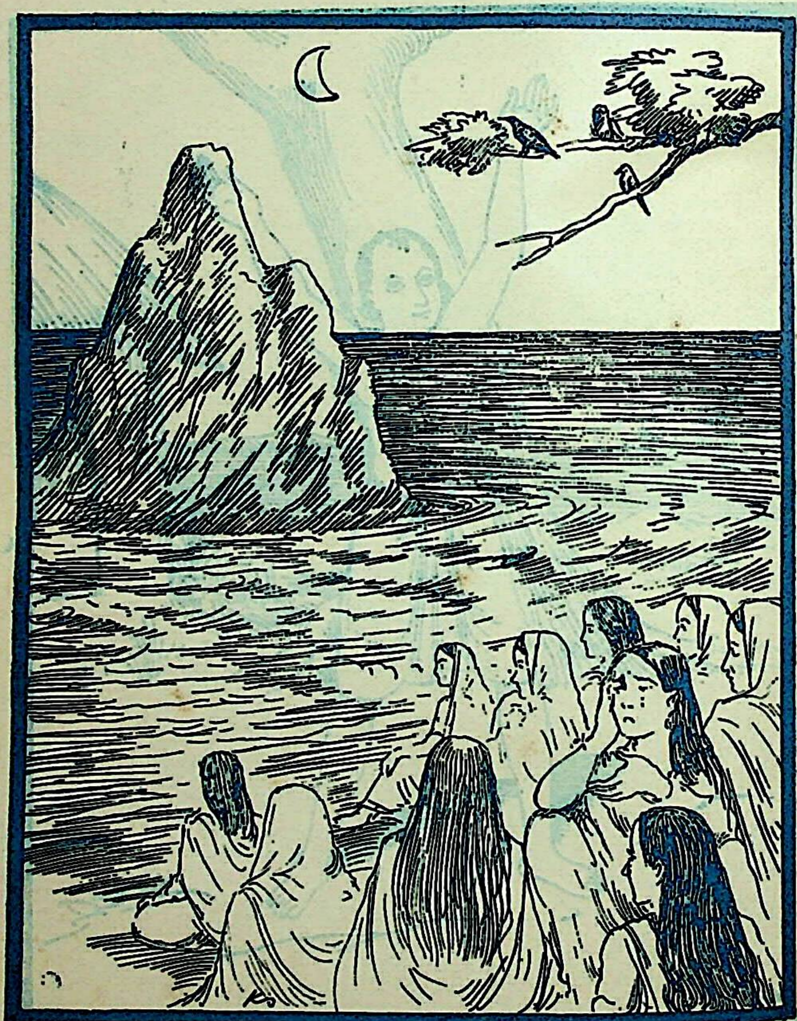
तिनकी शैया सुखद ताहिपर श्याम बिराजैं।
भूमा, अज, अखिलेश अस्त्र आयुध सह भ्राजैं॥
पार्थ कृष्णने जाइ चरन बन्दन तिनि कीन्हें।
भूमा पुरुष निहारि तनय दश द्विजके दीन्हें॥
बोले भूमा पुरुष पुनि, नर नारायण उभय तुम।
आओ भूको भार हरि, तुरतहिं आयसु देहिं हम॥

करिकें दंड प्रनाम द्वारका दोऊ आये।
द्विजके दशहू तनय दये दोऊ हरषाये॥
समुझे अरजुन भेद करन हारे सब हरि हैं।
कोई करि नहिं सकैं कछू कारे सब करिहैं॥
यों लीला संवरणको, यदुनन्दन निश्चय करयो।
भावमयी हरि भामिनिनि, को आपुहि हीयो भरयो॥

इति श्रीभागवत चरितके षष्ठाह हर भृगु अर्जनानुग्रह नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।



भक्त की दशा पृ० ८०३



श्रीकृष्ण पत्नियों का लीला विहार और प्रलाप पृ० ७६१

अथ षोडशोऽध्यायः

[१६]

भाग्यवती हरि प्रिया रिझावैं हरिकूँ नित प्रति ।
रहें सुखी सब सदा सुमिरि श्रीहरि चितवन गति ।।
कमलनयन सुख दयो सरसतामहँ सब पागीं ।
अब सबकूँ अति बिरहमयी लीला ते लागीं ।।
कुररी, चकवी, नीरनिधि, चन्द्र, मलय मारुत, सरित ।
कोकिल, भूधर, सजल घन, कहहिँ सबनि लखि कछु दुखित ।।

प्रथम गीत

कुररी च्यौं रोवति सुनिशा में ।
सोवत श्याम सुखद शय्या पै, बिघन करति तू तामें ।।१।।
बात बताइ वीर ! बिपदाकी, डूबी बिरह बिथामें ।
ये सुखदैंनि रैंनि प्रिय सँगमहँ, हँसि हँसि बहिन ! बितामें ।।२।।
नींद नहीं आवति है तोकूँ, यादि प्रान प्रिय आमें ।
कुटिल कटाक्ष कमल दल लोचन, सर हियमहँ धँसि जामें ।।३।।
तो फिर भूख नींद सुख सजनी, निशि बासर न सुहामें ।
हमहूँ व्यथित दुखित निशि रोवति, तोकूँ का समुझामें ।।४।।

द्वितीय गीत

चकवी ! किन मूरति तू ध्यावै ।
पति बियोगतैं ब्याकुल बनिकें, बार बार बिललावै ॥१॥
निशि नहिँ नींद नीर भोजन तजि, नयननि नीर बहावै ।
समुझि श्याम दासी तू हमकूँ, मत सौभाग्य सरावै ॥२॥
दासभावमहँ दुख पग पगपै, बनि पाछैं पछितावै ।
हरि चरननिपै अरपित माला, जो तू शीश चढ़ावै ॥३॥
तो सजनी ! सब ई फिर जीवन, यौं ही बिलपत जावै ।
निपट निठुर नर कपटी सब ई, मत तू नेह बढ़ावै ॥४॥

तृतीय गीत

सागर ! क्यौं गरजत निशिबासर ।
नींदलोपको रोग भयो का, जागत रहत निरन्तर ॥१॥
का चितचोर चुराई तुमरी, कौस्तुभमणि अति सुन्दर ।
अथवा शंख हरनके कारन, कोसत हो नित नटवर ॥२॥
अथवा प्रिया बियोग जनित दुख, उमड़ि घुमड़ि उर अन्तर ।
प्रलपत रहत प्रेमके कारन, है अति प्रेम भयंकर ॥३॥
हमरो चित्त चुरायो हरिने, हम तुम एक बराबर ।
प्रभुकी करनी प्रभु ही जानें प्रेम गली अति सांकर ॥४॥

चतुर्थ गीत

शशि ! क्यौं सुन्दर बदन मलीन ।
तम तव रिपु तव निकट बिराजत, करत न ताकूँ छीन ॥१॥
राजरोग त्तय दुख अति दारुन, तातैं तुम हो दीन ।
अथवा तुमहू ठगे श्यामने, जो सब कला प्रबीन ॥२॥

सुनि सुनि सरस श्यामकी बतियाँ, छतियाँ छेद नबीन।
बिँधिके भयो हियो छननी सम, कान्ति भई सब छीन ॥३॥
तुम सम हमहूँ परम दुखित शशि ! भईं निठुर आधीन।
प्रभु बिनु जग सूनो सब दीखत, कृष्ण पच्छ अति हीन ॥४॥

पंचम गीत

मलयानिल ! क्यौं दुखी बनाओ।
हम अबला जगमहँ अति निरबल, क्यौं हिय चोट चलाओ ॥१॥
आपुहिँ दुखी श्याम दुख दीनो, नमक कटे बुरकाओ।
हरि कटाच्छ सर कसकत उरमहँ, तुम ताकूँ करकाओ ॥२॥
मदन दहत हियकूँ परि तुम नहिँ, सखा समुझि समुझाओ।
बहि बहि मंद सुगन्धित शीतल, रतिपतिकूँ उकसाओ ॥३॥

षष्ठम गीत

घन ! तुम यदुनन्दन के प्यारे।
नेह रोग तुमहूकूँ लाग्यो, चित्त चढ़ि गये कारे ॥१॥
करिकें प्रेम कौन सुख पायौ, सब ई भये दुखारे।
छिन छिन पल पल रोवत बीतत, नयननि बहत पनारे ॥२॥
हमने फँसि जो जो दुख पाये, सो तुम नाहिँ बिचारे।
अब झर झर आँसू बरसावत, कपटी कृष्ण हमारे ॥३॥

सप्तमगीत

कोकिल ! कुहू कुहू का बोलति।
रसमें सनी सुधा सम बानी, बोलति तरुपै डोलति ॥१॥
ऐसे ही ये श्याम निगोड़े, प्रेम पिटारो खोलत।
नेह तुलामहँ हियकूँ धरि के, राग बाटतैं तोलत ॥२॥

कूजति तू कलकंठ कोकिले ! प्रियकी सुरति दिवावति ।
का प्रिय करें बहिन ! तेरो हम, तव चरननि सिर नावति ॥३॥
गोविँदके गुन खग गन गावत, उड़ि उड़ि इत ई रोवत ।
तू तो प्रभुके प्रेम छीरमहँ, मधुरव मिसिरी घोरति ॥४॥

अष्टमगीत

भूधर ! प्रेम समाधि लगाओ !
नहिँ डोलत नहिँ बोलत बाबा, आसन अचल जमाओ ॥ १॥
का सोचत का चाहत तप करि, अपनी साध बताओ ।
अतिशय मृदुल चरन यदुबरतैं, शिखरनि परसन चाओ ॥२॥
परसि प्यास नहिँ बुझै बावरे ! मत तिनकूँ ललचाओ ।
प्रथम होहि सुख अतिशय अनुपम, परि पीछे पछिताओ ॥३॥
हम बिललावति रोवत डोलति, हरितैं हमें मिलाओ ।
बज्र समान कठिन हिय हमरे, प्रभु पदतैं पिघलाओ ॥४॥

नवम गीत

सरिता ! क्यौं सूखत तव गात !
नहिँ पय भ्रमर हिलोर तरँगहु, तट मर्याद दिखात ॥१॥
देखी प्रथम फली फूली तू, सजि बजि पिय ढिँग जात ।
अब न पदुम श्री मीन पीन पय, चन्द्र बदन कुम्हिलात ॥२॥
हमहूँ दुखित प्रणय सर हरि हिय, घुसि पीड़ा पहुँचात ।
बनि दुरबल भटकति इत उत निशि, दिवस कछू न सुहात ॥३॥
क्यों तुम पति-पय तैं अब वंचित, त्यौं हमहू घबरात ।
प्रभु मुखकमल सुरति करि रोवति, जग सब सून दिखात ॥४॥

दशम गीत

हंसा ! हरिके दूत जनाओ।
लैकें सरस सँदेश श्याम को, हमरे ढिँग मत आओ ॥१॥

होहि न तोष सँदेशनितें प्रिय, यदुवर हमहिँ मिलाओ।
देखो परि न जलमुही कमला, सौति संग मत लाओ ॥२॥

लिपटी रहत श्याम अँगमहँ नित, ताको मुँह न दिखाओ।
हम सबहू कछु लगें तिहारी, एक बार फिरि आओ ॥३॥

जाओ जाओ यदुनन्दनढिँग, प्रिय संदेश सुनाओ।
करवाओ प्रभु परस प्रेमतें तनकी तपन बुझाओ ॥४॥

छप्पय—गावें महिषी गीत कबहुँ नहिँ श्याम भुलावें।
तिनिके भागनि इन्द्र, शम्भु, अज सकल सरावें॥
जगपतिकूँ पति पाइ भये तिनिके सुत दश दश।
सबमें श्रीप्रद्युम्न ज्येष्ठ जिनिको व्यापो यश॥

तिनिके श्रीअनिरुद्धजी, शूरवीर वर सुत भये।
वज्र भये तिनिके तनय, यदुकुलक्षयतें बचि गये॥

वज्र तनय प्रतिबाहु, सुबाहू सुतहू तिनिके।
शान्तसेन तिनि पुत्र भये शतसेनहु उनिके॥
यादव कोटि असंख्य सबनिकी संख्या नाहीं।
यों यदुकुल पुनि बढ़्यो छीन कलियुगके माहीं॥

जब सब सुरगन, धेनु, द्विज, अधरम तै ह्वैकें दुखित।
हरिढिँग जामें दीन ह्वै, होहिं अवतरित तब अजित॥

सब सारनि को सार श्याम गुन सुनें सुनावें।
ह्वैके तन्मय संतत नाम हरि चरितनि गावें॥
सुखद सरस शुभ चरित जगत दुख दूर भगावें।
सुनत सुनत हरि कथा कृष्ण हियमाहिँ समावें॥
पावन परम चरित्र जे, नेम प्रेमतें गायँगे।
ते पहुँचहिँ प्रभु पदनिमहँ, पुण्य परमपद पायँगे॥

इति श्रीभागवतचरित के षष्ठाह में महिषीगीत नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त।

(मासिक पारायण—छब्बीसवें दिनका विश्राम)

इति षष्ठाह



अथ सप्ताह

प्रथमोऽध्यायः

[१]

छप्पय—हे यदुनंदन कृष्णचन्द्र सब जगके शासक।
वासुदेव भगवान भक्त वत्सल भयनाशक॥
हे हरि ज्ञान स्वरूप मोहनाशक दुखभंजन।
हे शोभाके धाम भुवनपति देवकिनंदन॥
हे उद्धव मैत्रेय अरु, विदुर ज्ञानदाता प्रभो।
हम अज्ञानिनिपै कृपा, दृष्टि वृष्टि होवै विभो॥

भटकि रहे भवमाँहिँ पन्थ दीखै नहिं सूधो।
हमहूँ कूँ मिलि जायँ विदुर सम ब्रजमें ऊधो॥
लेहिं मधुर तव नाम सरस कछु कथा सुनावें।
कैसे पावें तुम्हें सरल-सी गैल बतावें।
संतनिके ढिँग बैठिकें, कथा कीरतन करहिं नित।
अरचन बन्दन देहतें, तव चरननिमें रमहि चित॥

दोहा—सूत कहें शौनक मुनिहिं, हरि गुन चरित अपार।
कछु रसमय लीला कही सुनो ज्ञानको सार॥
ललित ललित लीला करीं, प्रभु लैकें अवतार।
जो गावें ध्यावें सुनें, ते पावें भवपार॥

यों लैकें अवतार श्याम बल असुर सँहारे।
भारभूत भूपाल महाभारतमहँ मारे॥
भूको भार उतारि जानि निज कुलकूँ दरपित।
ताहूको संहार करन हरि सोचत हरषित॥
बिप्रनि कुपित कराइकें, यदुकुल शाप दिवाइकें।
गमने प्रभु निज धामकूँ, लीला ललित दिखाइकें॥

शौनक पूछें—सूत! शाप बिप्रनि च्यौं दीन्हों।
च्यौं हरिने संहार स्वयं निज कुलको कीन्हों॥
सूत कहें—ब्रत चतुर मास हित आये ऋषि मुनि।
पिंडारकमहँ रहे गये यादवकुमार सुनि॥
नारि बेष करि शाम्बको, पूछत—प्रसव करै कहा।
कहें क्रोध करि मुनि—जनै, कुलनाशक मूसल महा॥

द्विजनि शाप सुनि कुमर भये अति दुखित डराये।
साम्ब उदरतैं मुसल भयो लखि सब घबराये॥
थर थर काँपत आइ नृपहिं सब वृत्त बतायो।
उग्रसेन सुनि सकल मुसल तुरतहिं रितवायो॥
चूरौ अरु लोहो बच्यो, फैंक्यो सागरमहँ जबहिँ।
चूरो बहि तटपै लग्यो, भये एरका तृन तबहिँ॥

जो लोहेकी कील बची सो सफरी खाई।
उदर फारि सो जरा ब्याध सर नोंक लगाई॥
यदुकुलको संहार साज सबरो ई साज्यो।
महाकालको कठिन क्रूर अब घंटा बाज्यो॥
सखा और निज जनककूँ, तत्व ज्ञान अन्तिम दयो।
नारद मुनि बसुदेवतैं, उद्धवतैं आपुहिं कह्यो॥

अब नारद बसुदेव सुनहु सम्बाद प्रथम मुनि।
भजै मोह भ्रम सकल सरल उपदेश सुखद सुनि॥
एक दिवस बसुदेव भवन नारद मुनि आये।
सब बिधि करि सत्कार मृदुल आसन बैठाये॥
बोले श्रीबसुदेव जी—मुनिवर ! अब हम का करें।
देहु सुगम उपदेश बर, अनायास जगतैं तरें॥

माया मोहित भयो कर्यो मैंने तप सुत हित।
अब समुझयो यह रहस लगायो प्रभुचरननि चित॥
बोले नारद— नृपति ! प्रश्न अति सुन्दर कीयो।
कृष्णपिता ह्वै सोइ प्रश्न करि आदर दीयो॥
नव योगेश्वर जनकको, भयो सुखद सम्बाद बर।
जो सब देशनि सब समय, है सबकूँ कल्याणकर॥

ऋषभतनय शत भये, इक्यासी बिप्र कहाये।
नव द्वीपनि नव नृपति भूप बड़ भरत बनाये॥
कबि, हरि, आबिर्होत्र, पिप्पलायन, करभाजन।
अन्तरिक्ष अरु चमस,द्रुमिल अरु प्रबुध योगिगन॥
नव योगेश्वर बिदित जग, जनक सभामहँ सब गये।
मैथिल मन अति मुदित ह्वै, परमारथ पूछत भये॥

बोले बिज्ञ बिदेह—बिप्रगन ! बात बतावें।
जा जगमहँ का सार भागवत धर्म सुनावें॥
जिनि धरमनिकूँ पालि जगत्के बन्धन टूटें।
लोक और परलोक जीवके भय सब छूटें॥
जनक प्रश्न सुनि मुनिनिमें, तैं जो कबि मुनि ज्येष्ठ हैं।
भूपतितैं कहिबे लगे, जो सबई बिधि श्रेष्ठ हैं॥

कबि बोले-नृप! अजित चरन चिन्तन ही भयहर ।
सुगम भागवत धरम राजपथ सुन्दर सुखकर ॥
तन, मंन, बानी, बुद्धि आदितैं करै करम जो ।
कृष्णार्पण करि देइ न फिरि बन्धन कारक सो ॥
प्रभु लीला नितनित सुनै, नाम गान निरभय करै ।
नाचै गावै नेह भरि, हँसि रोवै गिरि गिरि परै ॥

लोक लाजकूँ त्यागि पुकारै प्रभु अब आओ ।
हरि ! नारायण ! कृष्ण ! कृपालो दरश दिखायो ॥
ह्वैकें सदा असंग त्यागि संकोच सबनिको ।
करै मधुर स्वर सतत कीरतन हरि नामनिको ॥
करत करत कीर्तन कलित, होहि प्रेम प्रभु पदनिमहँ ।
तब निरखै निज इष्टकूँ, जीव चराचर सबनिमहँ ॥

बृत्त. नीरनिधि, नदी, सरोवर, पुर, बन, भूधर ।
पृथिवी,जल,अरु अनिल,अनल,नभ,नखत,चराचर ॥
सबकूँ प्रभुको रूप समुझि निज शीश नवावै ।
आदर सबको करै भेद मनमहँ नहिँ लावै ॥
भगै भूख भोजन करत, तुष्टि पुष्टि हू होहि ज्यों ।
भजन करत प्रभु प्रेम अरु, होहि ज्ञान बैराग्य त्यों ॥

पुनि नृप कहें बिदेह—भागवत कैसे जानें ।
हैं ये भगवद्भक्त कौन बिधितैं पहिचानें ॥
सबई देहिँ बताइ भागवत लच्छन भगवन ।
भक्त आचरन, चलन,मिलन, बोलनअरु चितवन ॥
सुनि कबि भूपति प्रश्न सुनि,निरखे मुनिवर हरि जबहिँ ।
समुझि बन्धु संकेत हरि, लगे दैन उत्तर तबहिँ ॥

हरि बोले—नृप ! श्रेष्ठ भक्त हरि सवहिँ निहारें ।
अपनेमहँ लखि सबनि न कबहूँ असत् उचारें ॥
ये जो उत्तम भक्त मध्य कछु भेद जनावैं ॥
खलनि उपेक्षा, नेह भक्त, हरि प्रेम दृढ़ावैं ॥
अधम न पूजहिँ भक्तकूँ, प्रभुहिँ न निरखें सबनिमहँ ।
प्रतिमा पूजन करहिँ नित, लहैं सिद्धि कछु दिननिमहँ ॥

करैं सकल व्यवहार होहि आसक्त न तबहूँ ।
समुझैं माया सबहिँ करै नहि सुख दुख कबहूँ ॥
जो सांसारिक धर्म न मोहित तिनिमहँ होवै ।
हँसै न लखि अनुकूल निरखि प्रतिकूल न रोवै ॥
जनम, करम, आश्रम, बरन, जाति भेद मनतैं तजैं ॥
ते ई भगवत् भक्त बर, प्रेम सहित प्रभुकूँ भजैं ॥

परम भागवत मैं मेरीमहँ नाहिं भुलावैं ।
हरि सुमिरनके हेतु राज बैभव ठुकरावैं ॥
सुमिरन निशि दिन करें नहीं प्रभु-पद बिसरावैं ।
समदरसी बनि जायँ परमपद तबई पावैं ॥
पल पल सेवहिँ हरि चरन, शरन गहैं सब कछु सहैं ।
तिनकूँ ऋषि मुनि वेदवित, भक्त-मुकुटमणि बर कहैं ॥

इति श्रीभागवत चरितके सप्ताहमें यदुकुल शाप, नारद-बसुदेव सम्बाद नामक प्रथम अध्याय समाप्त ।

(पाक्षिक पारायण—तेरहवें दिवसका का विश्राम)

अथ द्वितीयोऽध्यायः

(२)

बोले मैथिल भूप—नाथ ! मम रोग मिटाओ ।
कृष्ण कथामृत मधुर सरस कछु अधिक पिआओ ॥
होहि न मेरी तृप्ति चारु प्रभु चरित सुनावें ।
माया अति बलवती बताई तिहि समुझावें ॥
अन्तरिक्ष बोले तबहिँ, त्रिगुनमयी माया प्रबल ।
सर्ग स्थिति लयकारिनी, सृजत बायु, भू, जल, अनल ॥

हरि स्वरूप निज जीव भोग अरु मोक्ष करनकूँ ॥
पंचभूततैं रचे दीर्घ अरु लघु प्रानिनकूँ ॥
तिनि सबमहँ प्रभू प्रबिशि करनमन बनि भोगनिकूँ ।
भोगैं है आसक्त आतमा मानै इनिकूँ ॥
करम बासना युक्त ह्वै, कें भटकै संसारमहँ ।
पुनि पुनि जनमै पुनि मरै, पर्‌यो प्रवाह असारमहँ ॥

प्रकृति और महतत्व, अहं तैजस रज तममय ।
तामसतैं सब भूत करन राजसतैं निश्चय ॥
करननिके सब देव और मन तैजस संभव ।
ह्वैकें सब उत्पन्न रहें फिरि प्रलय होहि जब ॥
तब ये सब प्रतिलोमतैं, मिलैं जाय अव्यक्तमहँ ।
यह माया भगवानकी, रहै सदा परतत्वमहँ ॥

कैसे माया तरें, नृपतिने पूछ्यो जब ई।
सुनि मुनिप्रवर प्रबुद्ध भूपतैं बोले तब ई॥
समुझै घर, धन,करम,नाशयुत गुरु चरननि ढिँग।
जावै सीखै धरम भागवत भक्तनिके सँग॥
सतसंगति, मैत्री, दया, बिनय शौच तप तितिच्छा।
विनय बड़नि प्रति नेह सम,दीननिके प्रति सदिच्छा॥

रहै मौन स्वाध्याय सरलता चितमहँ धारै।
ब्रह्मचर्यब्रत धारि न काहू जीवहिँ मारै॥
सुख दुखमहँ सम रहै निहारे सब थल हरिकूँ।
रहै सदा एकान्त न समुझै अपनो घरकूँ॥
पट पवित्र पहिनै परम, यथालाभ संतोष नित।
सतत भागवत धर्मके, ग्रन्थनिमें ही देहि चित॥

करै न निन्दा भूलि अन्य शास्त्रनिकी कबहूँ।
चाहैं सरबसु मिलै अनृत बोलै नहिँ तबहूँ॥
संयम मन अरु बचन करमतैं नित ई राखै।
शम दमको आचरन करै हरि चरितनि भाखै॥
जनम करम गुन गन श्रवन, श्रीहरिके नित नित करै।
कथा कीरतन ध्यानमहँ; रहै मगन माया तरै॥

यज्ञ करै मख, दान, मंत्रजप,तप सब नियमित।
सुत, दारा, गृह, प्रान करै सब हरिकूँ अरपित॥
हरि भक्तनि सरबस्व समुझि सेवै सुख पावै।
हरि चरचाकूँ त्यागि अनत नहिँ चित्त चलावै॥
इन धरमनि आचरनतैं, प्रेम भाव होवै उदित।
भक्ति भाव भावित भगत, नित नाचत रोवत हँसत॥

नारायन हरि कौन, नृपति ने प्रश्न करयो जब ।
सुनिके बोले बिहँसि पिप्पलायन मुनिवर तब ॥
जगकी उतपति प्रलय अकारन ह्वैकें कारन ।
बाहर भीतर रहैं सबनिमहँ. हरिनारायन ॥
स्वयं प्रकाशित परावर, नेति निगम आगम कहैं ।
प्रान, करन, अन्तःकरन नित, जिनतैं जीवन लहैं ॥

त्रिवृत् और महतत्व सूत्र, हंकार, सकल सुर ।
करत, अरथ, सत,असत ब्रह्म ही सब थल अक्षर ॥
साक्षी चेतन शुद्ध नित्य कूटस्थ कहावै ।
जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति सबनिको दृश्य दिखावै ॥
इच्छा जब उत्कट बढ़ै, कब पाऊँ प्रभु पद कमल ।
करमयोगतैं होहि मन, शुद्ध ब्रह्म दीखै अमल ॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताहमें नवयोगेश्वरोपदेश नामक द्वितीय अध्याय समाप्त ।

अथ तृतीयोऽध्यायः

(३)

करमयोग अब कहैं, जनक जब बोले मुनितैं।
मुनिवर आविर्होत्र बिहँसिके बोले तिनितैं॥
करमयोग अति कठिन होहिँ मोहित हू ज्ञानी।
करमफंदमें फँसे न समुझैं नर अज्ञानी॥
करम करै निष्काम नित, बेद बिहित प्रभु प्रीति हित।
प्रतिमापूजन प्रेमतैं, करै होहि तब शुद्ध चित॥

भीतर बाहर करन शुद्ध करि प्रतिमा सम्मुख।
बैठे प्राणायाम करै तजि जगके सुख दुख॥
पूजाकी सब बस्तु जथाक्रम सब ई धरिकैं।
स्वयं अङ्ग करन्यास करै प्रतिमामहँ करिकैं॥
मूलमंत्र पढ़िके करै, प्रतिमा पूजन प्रेमतैं।
अङ्ग उपाङ्ग सपार्षदहिँ, पूजै नित प्रति नैमतैं॥

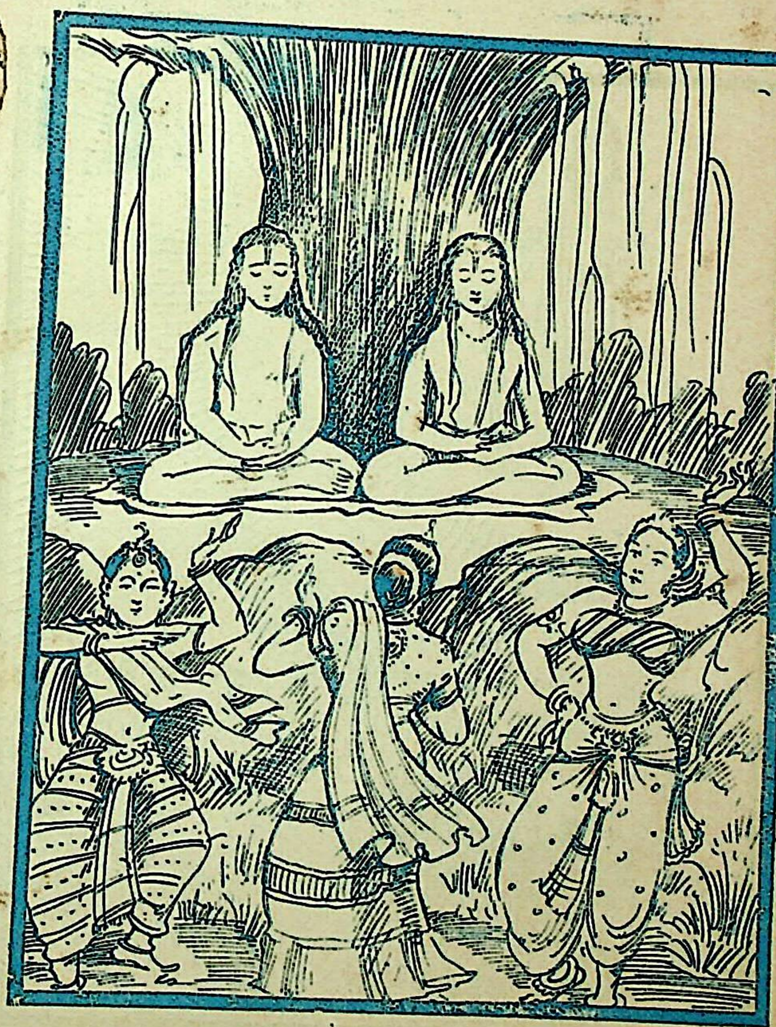
पाद्य, अरघ, आचमन, स्नान, नाना पट, भूषन।
गन्ध, पुष्प, तिल, हार, धूप, दीपक, बर ब्यंजन॥
पुङ्गीफल, तांबूल, दक्षिणा, नीराजन, करि।
क्षमा प्रार्थना स्तोत्र दंडवत पृथिवीपै परि॥
यों तन्मय ह्वैकें करै, पूजन प्रभु परमेशको।
होवै तबहीं नाश सब, जगके दुख भय क्लेशको॥

श्रीहरिको निरमाल्य गन्ध माला सिर धारै।
पूजित बिग्रह यथाथान धरि नाम उचारै॥
यों जल,थल,रबि,अनल,अतिथि, प्रतिमाके माहीं।
यजन कृष्णको करै मुक्ति पद दुरलभ नाहीं॥
अरचन, पूजन, कीरतन, अवतारनिको नित करै।
त्रिभुवनकूँ तारै स्वयं, इक्किस पीढ़िनि सँग तरै॥

भूप कहें—अवतारचरित सब देव! सुनाओ।
द्रुमिल कहें-अब चित्त नृपति मम ओर लगाओ॥
हैं अवतार अनन्त अन्त बेदहु नहिँ पावें।
तोऊ कछु कछु गुननि सहित हरि चरित सुनावें॥
प्रथम पुरुष वे ई भये, अज, हरि, हर नर नरायन।
बदरीबनमहँ तप करत, काम क्रोधतैं बिगत मन॥

हंस और सनकादि ऋषभ हय ग्रीव मत्स्य हरि।
कियो अवनि उद्धार बेद बाराह रूप धरि॥
पुनि प्रभु कछुआ बने पीठ मंदर गिरि धार्यो।
बनि हरि गजकूँ ग्राह बक्त्रतैं खैंचि उबार्यो॥
बालखिल्य उद्धार करि, इन्द्र शाप रक्षा करी।
असुर बन्दिनी बनी बहु, सुर-ललननि विपदा हरी॥

कलप कलप मनु भये लयो अवतार सबनिमहँ।
लयो सुरनिको पक्ष सुरासुर सबहिं रननिमहँ॥
लै बामन अवतार छले बलि त्रिभुवन पाल्यो।
परशुराम बनि गये क्षत्रकुल पापी मार्यो॥
रामरूपतैं उदधिपै, कर्यो सेतु रावन हन्यो।
जग-उद्धारक मुक्तिप्रद, चरित-सेतु तातैं बन्यो॥



नर नारायण के तप में अप्सराओं का विघ्न पृ० ८०६



कलिकाल में भगवन्नाम-कीर्तन पृ० ८०८

कृष्ण रूप धरि करें कलित क्रीड़ा कंसारी।
बुद्ध रूपतैं निरदय हिंसा नाथ निवारी॥
कल्कि लेहि अवतार अंत करि कलिको केशव।
सतयुगको आरम्भ करें करि क्रूरनि निज बश॥
अवतारनिकी कछु कथा, कही अधिक संक्षेपमहँ।
हरि फिरि कें ये ही चरित, सब पुरान अरु वेदमहँ॥

निमि पूछें—प्रभु! भक्तिहीन गति कैसें पावें।
कहें चमसमुनि—नृपति! प्रश्नको मरम बतावें॥
वर्णाश्रम उत्पन्न करें हरिजनक कहावें।
आदर तिनि नहिँ करें भजैं नहिँ तिनि गिरि जावें॥
जो भोरे अनपढ़ बिबस, भक्त तिनहिँ अपनाइकें।
कथा कीरतन सुलभ करि, तारें नाम सुनाइकें

कछु पाखंडी अज्ञ अंट की संट सुनावें।
फलश्रुति बाणी मधुर कहें बहु बात बनावें॥
कामी, क्रोधी, क्रूर, काम्य कछु करम करावें।
भक्ति, भक्त, भगवान सबनिकूँ ढोग बतावें॥
धन, बैभव, कुल, रूप, बल, बिद्याके अभिमानमें।
भरे रहैं मन देहिँ नहिँ, भक्त-बछल भगवानमें॥

मैथुन मदिरा मांस बेदबिधि मूर्ख बतावें।
बेद निबृति हित कहें ताहि बिधि कहि समुझावें।
इच्छा नियमित करन ब्याह मख बिबिध बताये।
सुत हित कह्यो बिबाह यज्ञ आलभन जताये॥
सौत्रामणि मखमहँ सुरा, सूँघि नियम पूरो करै।
जो बिधान इनकूँ कहै, सो नर नरकनिमहँ परै॥

धरम अरथ अरु काम नरक, भू, नाक घुमावैं।
पाये बिनु पद परम शान्ति नर कबहुँ न पावैं॥
नित प्रति नव नव सुघर मनोरथ महल बनावैं॥
तजि घर, सुत, धन, सुहृद् मृत्युके मुखमहँ जावें।
हौवै दुरगति भक्ति बिनु, उभय लोकमहँ नरनिकी॥
भक्ति भवनमहँ प्रबिसिकें, होइ सुगति इन सबनिकी।

निमि पूछें—युगधर्म सबिधि मुनिवर समुझावें।
युग युगमहँ हरि रूप, नाम अरु बरन 'बतावें'॥
करभाजन मुनि कहें—चारि युग चारि रूप धरि।
सतयुगमहँ बटु बनें चतुरभुज शुक्ल बरन हरि॥
तपतैं तब तिनिकूँ भजें, प्रेम करें तपधाम तैं।
करें कीरतन हंस, मनु, ईश्वर आदिक नाम तैं॥

त्रेतामहँ मख रूप त्रयीमय स्रुक स्रुव धारी।
रक्त बरन भुज चारि रूप धरि रहें मुरारी॥
पृश्निगर्भ, उरुगाय, बृषाकपि, बिष्णु उरुक्रम।
यज्ञ आदि लै नाम करें कीर्तन नर अनुपम॥
द्वापरमह कारे बने, पीताम्बर आयुध सहित।
तन्त्र बेद बिधितैं तिनहिं, पूजैं नर चित-समाहित॥

नर नारायन बासुदेव संकर्षन आदिक।
नाम कीरतन करै पूजि प्रभु श्रेष्ठ उपासक॥
कृष्ण कान्तिमय कृष्ण बरन कलि काल सपार्षद।
करिकें कीर्तन यज्ञ सहजमहँ पाहिँ परमपद॥
राम कृष्ण अवतार गुन, नामनिको कीर्तन करैं।
केवल कीर्तन ही करत, नर भवसागरतैं तरैं॥

या कलि-गुनतैं रीझि जनम कलिमहँ चाहें सुर।
होवें कलिमहँ भक्त करें कीर्तन धरि हरि उर॥
तजि सब बिषय बिलास शरन हरिकी जे जावैं।
सब रिनतैं ह्वै उरिन श्यामके धाम सिधावैं॥
अशुभ करम यदि भूलतैं, कबहुँ भक्ततैं बनि परैं।
तिनकूँ शरनागत बछल, अघहारी श्रीहरि हरैं॥

नव योगेश्वर दयो ज्ञान निमिकूँ ह्वै प्रमुदित।
अति प्रसन्न नृप भये गये ह्वैकें मुनि पूजित॥
नारद मुनि बसुदेव प्रश्नको उत्तर दीन्हों।
शूर-तनयने ब्रह्म-तनयको आदर कीन्हों॥
मुनि बोले—बसुदेवजी! तुम सहपत्नी धन्य अति।
जगमहँ जिनके सुत भये बासुदेव श्रीजगतपति॥

यों दैकें उपदेश गये नारदमुनि इत उत॥
मोह छोड़ि बसुदेव देवकी दयो कृष्ण चित॥
सूत कहें—यह सुखद चरित निरमल अति पावन।
मोह बिनाशक मुक्तिकरन जग दुःख बिनाशन॥
यों नारद बसुदेवको, प्रश्नोत्तर मुनिवर भयो।
कहूँ ज्ञान अब अति बिषद, जो प्रभु उद्धवतैं कह्यो॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताहमें नारद-बसुदेव सम्बाद समाप्ति नामक तृतीय अध्याय समाप्त।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

[४]

एक दिवस बसु,रुद्र,पितर,ऋषि,मुनि,शिव,सुरगन ।
सब मिलि प्रभुढिँग गये द्वारका सँग चतुरानन ॥
नन्दन बनके सुमन बिपुल प्रभुपै बरसाये ।
नव जलधर सम छटा निरखि सब अति हरषाये ॥
करि दरशन घनश्यामके, दुःख शोक सबके भगे ।
सुललित पद अति मधुर स्वर, तैं इस्तुति करिबे लगे ॥

करि बिनती अज कहैं—नाथ ! भूभार उतार्यो ।
पापी असुरनि मारि देव द्विज दुःख निवार्यो ॥
हम सब प्रभुवर ! खड़े कृपा करि हमें निहारें ।
अब न रह्यो कछु काम धाम घनश्याम पधारें ॥
हँसि बोले रुकिमनि-रमन, शेष अबहिं कछु काम अज ।
यदुकुलको संहार करि, तब आऊँ पुनि धाम निज ॥

हरि आयसु सिर धारि देव निज धाम सिधारे ।
पुरी द्वारकामाँहिं सबनि उत्पात निहारे ॥
बोले सबतैं श्याम—नित्य अपशकुन दिखावें ।
सब मिलि चलो प्रभास पितर सुर पूजि नहावें ॥
करिबे शान्ति अनिष्टकी, सब चलिबे उद्यत भये ।
हरि-हियकी सब समुझिकें, उद्धवजी प्रभु ढिँग गये ॥

बोले—हे बिश्वेश ! आपुकी इच्छा जानी ।
तजि पृथिवी निजलोक गमनकी मनमहँ ठानी ॥
रहूँ तुम्हारे बिना नाथ ! नहिं जगके पाहीं ।
तजैं न मोकूँ देव ! संग लै चलैं गुसाईं ॥
प्रभु ! प्रसाद, पट, गंध, स्रक् , सिर धरि कीर्तन करिङ्गे ।
तव चरितनि चिन्तन करत, दुस्तर माया तरिङ्गे ॥

उद्धवकी सुनि बिनय बिहँसि बोले बनवारी ।
हाँ, मैंने निजलोक गमनकी करी तयारी ॥
यदुकुल होवै नाश धरम अब होहिँ तिरोहित ।
तुम तजिके सब मोह जाउ वदरीबन तप हित ॥
जो मन-इन्द्रिय बिषय हैं, मायामय सब मानिकें ।
त्यागो गुन अरु दोष भ्रम, आत्मरूप जग जानिकें ॥

आत्मा अद्वय अजर अमर व्यापक सब थलमें ।
जगमहँ एक समान रहें रबि शशि नभ जलमें ॥
जाकूँ ऐसो ज्ञान न सो जगमहँ दुख पावै ।
दृश्य चराचरमाँहिँ सबनिमहँ ब्रह्म लखावै ॥
ज्ञानी बालकके सरिस, भेद भावतें रहित है ।
नहिं सोचे वह स्वपनमें, यह अबिहित यह बिहित है ॥

कर्म त्याग संन्यास धरम सुनि बोले उद्धव ।
बिषय गहन हौं अज्ञ सरलतातैं कहु केशव ॥
काकी जाऊँ शरन आपु सम और न पाऊँ ।
आयो तुमरी शरन चरनमहँ शीश नवाऊँ ॥
उद्धवकी सुनिकें बिनय, बोले प्रभु परमातमा ।
उपदेशक, गुरु, सुहृद, रिपु, है अपनी ही आतमा ॥

नाना योनि बनाइ सबनिमहँ निवसूँ भाई।
किन्तु मोइ नरयोनि सबनितैं अति सुखदाई॥
करिकें मनुज बिचार भेद मेरो सब जानें।
इन्द्रिय मन धी परैं मोइ साधक पहिचानें॥
नृप यदु अरु अवधूतको, भयो सुखद संवाद जो।
अति पावन अति ज्ञानमय, कहूँ प्रेमतैं सुनहु सो॥

एक दिवस यदु गये निहारे बनमहँ ज्ञानी।
थूल, नगन, निरभीक, युवक कबि सरल अमानी॥
नित्य मगन अवधूत देखि नृप पूछहिं मुनिवर।
बिचरो बालक सरिस बुद्धि कहँ पाई सुखकर॥
दक्ष मधुर भाषी सुघर, तोऊ जड़ उनमत्त सम।
निरधन ह्वै बिचरो सुखी, काम अगिनिमहँ तपहिँ हम॥

हँसिबोलेअवधूत—भूमि,नभ,अनिल,अनल,जल।
रबि,शशि,अजगर,जलधि,कबूतर,हरिन,रुदनबल॥
मधुमक्खी, करि, मीन, पिंगला बेश्या, कुररी।
शरकृत, भृंगी, सरप, कुमारी कन्या, मकरी॥
मधुहारी अरु पतङ्ग, गुरु चौबीस बनाइकें।
सबईतैं शिक्षा लई, इन सबके ढिँग आइकें॥

होवें नित उत्पात अवनिपै सब ई खोदें।
कहँ चाँदी कहँ कनक खोदिकें नर नित सोदें॥
तऊ न होवै कुपित धीरता मनमहँ धारै।
ज्ञानीको सत्कार करे चाहें तो मारै॥
माला मेली कण्ठमें, काहूने गारी दई।
रहै सदा ई एक रस, यह शिक्षा भूतैं लई॥

परकारजमहँ निरत रहैं सब अँगतें नग गिरि।
पत्र, पुष्प, फल, मूल, काष्ठ,बलकल,छाया करि ॥
देहिँ सबनि विश्राम करें निज जीवन अरपित।
आश्रय, जल, आहार दान करि होवें प्रमुदित ॥
नित प्रति पर उपकारकी, शिक्षा गिरि वृक्षनि दई।
कहूँ ताहि जो बायुकूँ, गुरु बनाइ शिक्षा लई ॥

केवल करि आहार प्रान सन्तुष्ट रहें नित।
है सुन्दर रसयुक्त पदारथ नहिँ देवै चित ॥
प्रान बायुतैं लीनी मैंने संयम शिक्षा।
मिलै भाग्यवश रूखी सूखी जैसी भिक्षा ॥
ताकूँ पावै प्रेमतैं, प्रान मात्र धारन करै।
कबहुँ न रसना स्वादके, चक्करमहँ योगी परै ॥

गन्ध बहन नित करै रहै निरलेप अनिलहू ॥
परस न ताकूँ करै गन्ध दुरगन्ध तनिकहू ॥
यों ही योगी रहै बिरत बिषयनितैं नित नित।
तनके आश्रय रहै देहि नहिँ तिनके गुन चित ॥
होहि गन्धमहँ लिप्त नहिँ, अनल सर्वगामी सतत।
शिक्षा लई असंगकी, विज्ञ बायुवत नित बिरत ॥

करिकें गुरु आकाश लई जो शिक्षा भूपति।
कहूँ ताहि अब सुनहु आतमा है असङ्ग अति ॥
व्याप्त चराचरमाँहि सर्वगत अनुगत सबके।
सूत्र व्याप्त स्त्रकमाँहिँ रहें मनिका बश तिनके ॥
सीखी अपरिछिन्नता, आत्मा देह असङ्गता।
इन भूतनितें आतमा, की होवै नहिँ एकता ॥

तेज किरन आकाशमाँहिँ चहु दिशितैं आजैं।
जल सीकर नित व्याप्त बायु सरवत्र बिराजैं॥
पृथिवी जनित पदार्थ रहें सब ताके माहीँ।
भरे रहें नित मेघ लिप्त तिनमहँ नभ नाहीँ॥
ह्वैकें मुनि नित समाहित, करै भावना गगनमहँ।
आत्मा शुद्ध अनादि अज, फँसै न तीनिहु गुननिमहँ॥

जल गुरुतैं गुन चार भूप सीखे अति सुन्दर।
नित स्वभावतैं शुद्ध रहै मुनि बाहर भीतर॥
स्नेहयुक्त बनि सबनि प्रेममहँ नित्य न्हवावै।
कहिकें कड़वे बचन चित्त नहिं कबहुँ दुखावै॥
तीर्थ रूप सबकूँ बनै, सदा तृप्त सबकूँ करै।
हँसै हँसावै सरल चित, दुखियनिके दुखकूँ हरै॥

दरशन दैकें करै सबनिकूँ शुद्ध सरल चित।
परस प्रेमतैं करै करै नित सब प्रानिनि हित॥
कृष्ण कीरतन करै कथा हरि सुनै सुनावै।
परस्वारथमहँ निरत सबनिकूँ धीर बँधावै॥
जीवन ही जलकूँ कह्यो,सृष्टि प्रथम जलतैं भई।
उत्तम शिक्षा नीर गुरु, तैं राजन् ! मैंने लई॥

तेजस्वी मुनि रहै अग्निके सरिस निरन्तर।
तपतैं ह्वै देदीप्य प्रकाशित भीतर बाहर॥
क्षुभित होहि नहिँ कबहुँ पेट ही पात्र बनावै।
भिक्षामें जो मिलै ताहि ताही छिन खावै॥
रहै सर्वभक्षी तऊ, कबहुँ न मल धारन करै।
कहूँ गुप्त कहुँ प्रकट ह्वै, भिक्षादातनि अघ हरै॥

भेद भाव नहिँ करै अन्न सबईको खावै।
जामें प्रबिसै अनल रूप ताके ह्वै जावै॥
लेवैं शिक्षा यही आत्मा सबके माहीं।
प्रबिसै ह्वै तद्रूप लिप्त तिनिमहँ सो नाहीं॥
अ लये आठ गुन अग्निनितैं, तातैं ते मम गुरु भये।
कहूँ तिनिहिँ अब चन्द्र गुरु, करि तिनतैं जो गुन लये॥

चन्द्र एकरस रहै स्वयं निजलोक प्रकाशित।
कृष्णपक्षमहँ घटै शुक्लमहँ बढ़ै कला नित॥
सोचै योगी जिही आतमा अजर अमर अज।
गरभ, जनम अरु जरा मृत्यु तनके सब कारज॥
छिन छिन पल पल जगत्महँ, परिवर्तन होवै सतत।
चलत रहत तातें कहत, जाकूँ सब मुनिजन जगत॥

अग्नि शिखा छिनमाँहिँ प्रकट ह्वैके छिपि जावै।
एक नष्ट ह्वै जाय दूसरी तत्छिन आवै॥
जल उद्गमतें निकसि बहै फिरि नूतन पुनि पुनि।
बहै ग्रहन तब करै थान पुनि बीते बिन्दुनि॥
जग परिवर्तनशील है, असत् अभद्र अनित्य है।
परिवर्तन तनमहँ सकल, आत्म चेतन नित्य है॥

अब जो शिक्षा लई सूर्य्यतें ताहि सुनाऊँ।
गुरु सूरज च्यौं कर्यो हेतु ताकौ समुझाऊँ॥
निज किरननितैं खींचि सलिल ग्रीषममहँ लेवै।
बरषामहँ बरसाइ फेरि प्रानिनिकूँ देवै॥
इन्द्रिननितैं स्वीकारिकें, त्यों ही त्रिगुन पदार्थ सब।
समय पाइ त्यागत तुरत, होहि न हर्ष बिषाद तव॥

जलपात्रनिमहँ पृथक सूर्य बहु रूप लखावै।
टेढ़े मेढ़े गोल पात्र अनुरूप दिखावै॥
प्रतिबिम्बित लखि अज्ञ पात्रमहँ रविहिँ जनावैं।
कहें अज्ञ परिछिन्न बहुत कहि ताहि बतावैं॥
सूर्यबिम्ब सम मुनि कहैं, आत्मा अद्वय सर्वगत।
अब कपोततैं लयो गुन, कहूँ ताहि नृप देउ चित॥

काऊ बनके सघन वृक्षपै रहै कबूतर।
पत्नी ताकी रूपवती गुण तामें सुन्दर॥
करैं परसपर प्रेम राग नव नित्य बढ़ावैं।
मिलि जुलि सँग फिरैं संगमें सोवैं खावैं॥
कछुक कालमें चार सुत, जने नेह दम्पति करैं।
शिशु कलरव कोमल परस, तैं दोउनिके हिय भरैं॥

दोऊ इक दिन गये चुगन खगघाती आयौ।
सुन्दर शावक निरखि डारि कण जाल बिछायौ॥
बालक कणके लोभ जालमहँ फँसि घबराये।
तब ई लैके चुगो तुरत दोऊ तहँ आये॥
लखि कबूतरी बन्ध-शिशु, स्वयं फँसी पति फँसि मर्यो।
करै मोह मुनि कबहुँ नहिं, दिव्य ज्ञान हियमहँ धर्यो॥

अजगर गुरु करि लई सीख माँगन नहिं जावै।
रूखी सूखी अधिक न्यून पावै सो खावै॥
यदि भोजन नहिं मिलै याचना करै न कबहूँ।
होहिं चाहिं उपवास करै चिन्ता नहिं तबहूँ॥
चिन्तातैं कारज न कछु, कबहुँ बनै चितमहँ धरै।
रच्यो उदर सो भरैगो, मूरख च्यौं चिन्ता करै॥

भाग्यमाँहिँ जो होहिं देह सुख दुःख प्रबलहू।
इन्द्रिय, मन, बलयुक्त होहि शारीरिक बलहू॥
तबहुँ न चिन्ता करै तानिकें सोवे चादर।
यह शुभ यह है अशुभ कर्मको करै न आदर॥
काहूतैं कड़वो बचन, हित अनहित कबहुँ न कहै।
अजगर सम निद्रित सतत, निर्व्यापार बन्यो रहै॥

जलनिधि कीन्हीं कृपा दया करि दीक्षा दीन्हीं।
निस्तरंग जलराशि निरखि शुभ शिक्षा लीन्हीं॥
शान्त और गम्भीर रहै सागर सम ज्ञानी।
थाह न समुझै मनुज पार नहिं पावहिं प्रानी॥
चाहैं बहु पूजा करहिं, अथवा ताड़न करहिँ जन।
घटना कैसीहू घटै, कबहुँ न होवै क्षुभित मन॥

ज्यों अगनित जलराशि सहित सरिता सागरमहँ।
जावैं तऊ न बृद्धि होहि पयनिधिके पयमहँ॥
ग्रीषममहँ सुखि जायँ घटै नहिँ तबहूँ पानी।
त्यों प्रिय पाइ पदार्थ होहि हर्षित नहिँ ज्ञानी॥
सुख दुखमहँ सम भावकी, शिक्षा सागरतैं लई।
लखि समता गम्भीरता, ममता मेरी नसि गई॥

अब पतङ्ग गुरु करयो कहूँ कारन सो भूपति।
देखि दीपकी लोय फँसै तामें खल दुरमति॥
त्यों ही कुण्डल कनक कामिनी पद अति सुन्दर।
भोग बुद्धि करि फँसै दैवकी माया दुस्तर॥
रूप अगिनिमहँ भसम तनु, करे होहि आसक्त अति।
सुन्दरतामहँ सुख समुझि, जगमहँ होवै नहिं सुगति॥

तातैं सुन्दर नारि निरखि नहिँ चित चलावै।
नर सुबेष लखिनारि कबहुँ मन नाहिं डिगावै॥
जो धारै नहिं सीख व्यर्थ नर देह गँवावै।
ह्वै पतङ्ग सम पतित मृत्युके मुखमहँ जावै।
यह सुन्दर शिक्षा सुखद, लई पतँग गुरु स्वयं करि।
मधुमक्खी ज्यों गुरु करी, सुनहु ताहि अब धीर धरि॥

पुष्पनितैं मधु लेइ न तिनिको रूप बिगारै।
त्यौं ही मुनि मधुकरी-वृत्ति भिक्षाहित धारै॥
सुमननितैं गहि सार स्वार्थ नित अपनो साधै।
त्यौं शास्त्रनिको सार समुझि हरिकूँ आराधै॥
इत उततें अति यत्न करि, मक्खी मधु छत्ता धरै।
त्यों यति कबहूँ भूलतैं, संचय नहिं कबहूँ करै॥

करपै भिक्षा लेइ उदरमें जितौ समावै।
जलके तटपै जाइ प्रेमतैं ताकूँ पावै॥
बचै अन्न कछु शेष अन्य प्रानिनिकूँ देवै।
कल या सायंकाल हेतु नहिँ यति धरि लेवै॥
त्यागी बनि संचय करै, सो पीछे पछिताइगो।
मधुमक्खी मधुहित मरै, त्यों यति हू गिरी जाइगो॥

इक दिन घूमत फिरत गयो नृपवर हौं बनमें।
सोचूँ लखिके बनी काठकी हथिनी मनमें॥
कौने यह धरि दई खिलौना बड़ो बनायो।
इतनेमें मदमत्त युवक इक हाथी आयो॥
प्रबल कामके बेगतैं, अन्धो ह्वै आगे बढ़्यो।
फँस्यो मैर हथिनी सहित, अन्धे कूआमें गिर्यो॥

जब कछु आगे बढ़्यो यूथ हाथिनिको आयौ।
पर हथिनी सँग निरखि युवक गज मारि गिरायौ॥
गुरु गज करिकें लई सीख अतिई उपयोगी।
बनी काठकी नारि पैरतैं छुये न योगी॥
परनारी है अगिनि सम, काम नेहतैं नित जरै।
जो पकरै सो मृत्युको, आलिङ्गन करि वत करै॥

जोरि जोरिकें धरै लोभबश लोभी धनकूँ।
स्वयं खाइ नहिँ देहि अतिथि गुरु बन्धु स्वजनकूँ॥
भेद भेदिया लेइ एक दिन चुपके आवै।
मधुहारी सम आइ निकारै मधु सब खावै॥
रचि पचिकें संग्रह करैं, ते देखत रहि जात हैं।
राम भरोसे जे रहैं, मेवा मिश्री खात हैं॥

मैं मेरी करि पहिन लेइ बेड़ी नर पगमहँ।
धन काहूको भयो न होगो है नहिँ जगमहँ॥
मधुमक्खी करि कष्ट राति दिन शहद जुटावै।
भोग करि सकै नहीं काम औरनिके आवै॥
मधुहारी गुरु करि सदा, भिक्षा माँगन जात हूँ।
गृही संगृहीतैं प्रथम, बाबा बनिकें खात हूँ॥

बीहड़ बनमें व्याध बिलोक्यो बीन बजावत।
ढिँगमहँ जाल बिछाय मधुर स्वर राग अलापत॥
सुनि बीनाकी तान राग-प्रिय मृग तहँ आयो।
ग्राम-गीत सुनि फँस्यो अज्ञ निज प्रान गँमायो॥
श्रवणेन्द्रिय आधीन है, पछितावै अरु सिर धुनै।
बनबासी यति भूलकें, विषय गीत कबहुँ न सुनै॥

कोकिलकंठी नारि गाइकें चित्त लुभावै ।
बिषय प्रशंसा करै स्वार्थतैं तुरत गिरावै ॥
ब्याधिनि जाल बिछाय मनुजमृग तुरत फँसावै ।
ऋष्यशृङ्ग दृष्टान्त शास्त्र प्रत्यक्ष बतावै ॥
मृग गुरु करि शिक्षा लई, करै राग ब्रजचन्दमहँ ।
बिषयराग सुनि मृग सरिस, फँसै न जगके फन्दमहँ ॥

मत्स्य कर्यो गुरु लई सीख रसना बश राखै ।
लोलुपता बश कबहुँ न अनुचित रसकूँ चाखै ॥
माँस लोभतैं मत्स्य निगलि काँटेकूँ जावै ।
फेरि उगलि नहिं सकै लोभमहँ प्रान गमावै ॥
होवैं बिषय निबृत्ति जब, शिथिल होहिं इन्द्रिय सकल ।
केवल रसना छाड़िकें, यह इन्द्रिय अतिशय प्रबल ॥

ह्वै इन्द्रिय आधीन समय सब योंहीं बीते ।
इन्द्रियजित नहिं होहि न जब तक रसना जीतै ॥
रसना संयम सीख लई सफरीतैं राजन् ।
बेश्या गुरु च्यौं करी कहूँ ताको अब कारन ॥
मिथिलापुरमहँ पिंगला, बेश्या अति सुन्दर रहति ।
आवै कोई नर धनी, बैठी नित आशा करति ॥

इक दिन बैठी रही न कोई कामी आयो ।
ह्वै निराश बैराग्य भयो मन अति पछितायो ॥
सोचति–हौं अति पतित मनुज तन व्यर्थ गमायो ।
नित्य कमाऊँ पाप न हरिमहँ चित्त लगायो ॥
करैं कामना पूर्ण का, ये कामी अति क्षुद्र नर ।
च्यौं न भजूँ प्रभुकूँ सतत, जो बिश्वम्भर गुणाकर ॥

करि करि पश्चाताप पिंगला अतिशय रोयी।
आशा छूटी सुखी भई अति सुखतैं सोयी॥
आशामें ही दुःख निराशा सुखकी जननी।
पावै फल नर अवशि होहि जाकी जस करनी॥
अशुभ शिक्षा निरपेक्षता, की वेश्या गुरुतैं लई।
कहूँ कुरर पक्षी कथा, जो मेरे सम्मुख भई॥

मांसखंड लै कुरर बेगतैं नभमहँ जावै।
मेरो है जिह मांस सोचि अति हिये सिहावै॥
इतनेमें कछु बली बिहँग उड़िकें इत आये।
निरखि मांस हिय लोभ बढ़यो छीनन सब धाये॥
मार परै तोउ न तजै, क्षत बिक्षत तनु ह्वै गयो।
कइयो त्याग जब बिवश ह्वै, तब अति आनन्दित भयो॥

शिक्षा मैंने लई करै नहिँ यति संचय धन।
जो जो संचय करै रहै ताहीमहँ निज मन॥
चिन्ता शंका लोभ होहि भय धनतैं नित नित।
धनलोभी बहु रहैं धनीके पीछे उत इत॥
कुरर सरिस संग्रह करै, मार खाइगो सो अवसि।
निष्किञ्चन अति सुख लहै, ब्रह्मामृत सागर प्रविसि॥

बालककूँ अपमान मानको भान न होवै।
सोवै लागे नींद भूख लगिबेपै रोवै॥
घर फूटै या गिरै रहै धन चाहैं जावै।
जो मुखमहँ धरि देउ ताहि भावै तो खावै॥
भेद भाव चिन्ता नहीं, रहै करत क्रीड़ा सतत।
यों ज्ञानी यति हू रहै, आत्मभावमहँ नित निरत॥

द्वै ई जगमहँ सुखी और सब दुखी भूमिपति।
एकगुननितैं पार ज्ञान बिज्ञान निपुण यति॥
दूसर छलतैं रहित सरल शिशु भारो भारो।
अधकचरे नित रहैं दुखी चिन्तित हिय धारो॥
बालक गुरु करि जगतमहँ, बिचरूँ ह्वै निःशङ्क नित।
निज पर भेद भुलाइकें, समझूँ सबकूँ आत्मवत॥

निरखी कन्या एक अकेली बैठी आँगन।
खोजन माता पिता गये बर पहुँचे पाहुन॥
चावल घर नहिँ रहे धान वह लागीं कूटन।
पहिनें करमहँ चुरी शङ्खकी लागीं बाजन॥
पृथक् करीं करतैं कछू, रहीं वजी द्वै शेष जो।
एक उतारी नहिँ बजी, हौं गुरु कीन्हीं तुरत सो॥

शिक्षा ग्वातैं लई—कलह होवै बहुतनिमहँ।
यदि सँग द्वैऊ रहैं समय बीतै बातनिमहँ॥
भीड़ भाड़में भिक्षु भूलिकें कबहुँ न आवै।
रखै न दूजौ संग अकेलो समय बितावै॥
एकाकी चिन्तन करै, खटपटतैं नित ही बचै।
नर नारिनिकी संगता, जनम मरन पुनि पुनि रचै॥

गुरु कीयो इषुकार बान पथमाँहिँ बनावै।
ह्वैकें तन्मय चित्तबृत्ति सरमाँहिँ लगावै॥
राजा सेना सहित गयो चित नाहिँ चलायौ।
इततैं भूपति गयो कह्यो कछु नहिँ सकुचायौ॥
बिषयनितैं बैराग्य करि, नित नितके अभ्यासतैं।
चित्त मिलावै लक्ष्यतैं, आसन प्राणायामतैं॥

रज तम रूपी मैल त्यागि जग बन्धन तोड़ै।
प्रविशि परम पद चित्त धूलि करमनिकी छोड़ै ॥
आत्मामहँ चितरोध होहि हियमहँ सुख पावै।
भीतर बाहर फेरि न कछु जग बस्तु दिखावै ॥
बाणकारके सरिस नित, करे चित्त एकाग्र यति।
देहि ध्यान नहि जगतमहँ, तब पावै त्यागी सुगति ॥

अहि सम बिचरै भिक्षु अकेलो सबतैं छिपिकैं।
एक थान नहिं रहै गुहामें सोवै लुकिकैं ॥
कबहुँ न करै प्रमाद समयकूँ व्यर्थ न खोवै।
जन संग्रह नहिँ करै अल्पभाषी नित होवै ॥
परै न मठके फेरमें, कंकर पत्थर जोरिकैं।
पर्यो रहै एकान्तमें, सबतैं नातो तोरिकैं ॥

आम-घड़ा सम देह पलकमहँ फटतैं फूटै।
कच्चे काँच समान आँच लागत ही टूटै ॥
जा अनित्य तनु हेतु भवन अति बिषद बनावै।
हरि सुमिरन नहिं करै व्यर्थमहँ पाप कमावै ॥
पावै सूनो भवन जहँ, अहि सम रैनि बिताइकें।
चलै फेरि शिक्षा लई, अहि गुरुदेव बनाइकें ॥

मकड़ीतैं शुभ सीख महेश्वर-लीला लीन्हीं।
नित्य सृजन थिति प्रलय करे गुरु तातैं कीन्हीं ॥
हियतैं मुखके द्वार जाल बिस्तृत फैलावै।
तामें करै बिहार लीलि पीछेतैं जावै ॥
कल्प आदिमहँ जगतकूँ, रचैं मध्य क्रीड़ा करैं।
कल्प अन्तमहँ निज रचित, सबकूँ हर बनि संहरैं ॥

ईश्वर आत्माधार अकेले पुनि रह जावैं।
मायाकूँ करि छुब्ध सूत्रकूँ फेरि बनावैं॥
जामें ओत प्रोत जगत्के जीव चराचर।
प्रकृति पुरुषके ईश करें नित खेल परावर॥
रचै हरै रत्ता करै, हरि समान क्रीड़ा करति।
जगबन्धनमें नहिं परै, समुझि खिलारी खेल अति॥

रचि घर भृङ्गी कीट पकरि क्रीड़ाकूँ लावै।
करिकें घरमें बन्द निरन्तर शब्द सुनावै॥
ताकौ सुनि सुनि शब्द ध्यान भृङ्गीको करिकें।
भृङ्गी ही बनि जाय एक ही तनतैं डरिकें॥
ध्यान धरत तद्रूपता, होवै निश्चय यह भई।
गुरु करि भृङ्गीकूँ तुरत, उपयोगी शित्ता लई॥

काहूमें भय द्वेष नेह वश चित लगि जावै।
भृङ्गी क्रीड़ा सरिस तुरत तन्मय बनि जावै॥
तन गुरु कह्यो बिवेक होहि बैराग्य भूपवर।
उपपति और बिनाश होय दुख सहै निरन्तर॥
यद्यपि जातैं तत्वको चिन्तन हौं नितप्रति करूँ।
जानि परायो मोह तजि, हौं असङ्ग निर्भय फिरूँ॥

दारा, सुत, धन, भृत्य, कुटुम घर सञ्चय करिकें।
परहित श्रम नित करै बृत्त सम दुख बहु सहिकें॥
अपनी अपनी ओर खेंचि इन्द्रिय लै जावैं।
जैसे पतिकूँ सौति पकरिकें बहुत नचावैं॥
परमारथ जातैं सधै, वर नर तनकूँ पाइकें।
मोत्त हेतु श्रम नहिं करै, सरबसु जाइ गमाइकें॥

हरिने नाना योनि रचीं परि तोष न पायो।
सुखी भये लखि मनुज मोक्षको द्वार बतायो॥
पाइ मनुजको जनम जनम को अंत न कीयो।
विषयनि फँसि मरि गयो अमृत तजिकें बिष पीयो॥
सब योनिनिमहँ बिषय सुख, मिलै करै च्यौं श्रम अरे।
छनिक दुखद सुख तजि सरस, नित्य सुखहिं भजि बावरे॥

नहिँ सीमित मम ज्ञान लैहुँ जो होहि सबनिपै।
सबतैं लै उपदेश फिरूँ निःसंग अवनिपै॥
ब्रह्म एक ही मुनिनि निरूपन बहु विधि कीयो।
जातैं जो मिलि गयो ज्ञान ग्वाईतैं लीयो॥
कहें कृष्ण— उद्धव! सुनो, यों कहिके अवधूत मुनि।
पूजित है नृपतैं गये, भये मुदित यदु ज्ञान सुनि॥

इति श्रीभागवत चरितके सप्ताह में उद्धवगीतान्तर्गत अवधूतगीता
नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

[५]

उद्धव ! निज निज धरम पालि पावैं सुख प्रानी ।
आश्रम कुल अरु बरन धरमकूँ त्यागहिँ ज्ञानी ॥
भक्त शौच संतोष आदि नियमनिकूँ पालहिँ ।
गुरुकूँ पूजहिँ सदा साधना सत सब साधहिँ ॥
यह मिथ्या संसार सब, सत्य समुझि नर दुख सहैं ।
मोकूँ काल स्वाभाव सब, बेद जीव धरमहु कहैं ॥

उद्धव बोले—बद्ध मुक्त अरु भक्तनि लच्छन ।
कहैं प्रभो ! सरबेश सुनत हरि बोले तत्छिन ॥
गुनतें ही है बद्ध मोच्छ माया मूलक गुन ।
बिद्यातैं है मोच्छ अबिद्यातैं जगबन्धन ॥
जीव ईश पच्छी सखा, तनु तरुपै बैठे उभय ।
फल खावै सो भय लहै, निराहार नित ही अभय ॥

कर्त्तापनतैं बँधै अकर्त्ता बँधै न कबहूँ ।
ज्ञानीकूँ दुख देउ बिकृत होवै नहिँ तबहूँ ॥
ब्रह्मभावमहँ लीन परम अमृत नित चाखै ।
इस्तुति निन्दा रहित बुरौ अरु भलौ नभाखै ॥
कीर्तन नामनिको करै, भाखै मेरे गुन करम ।
भक्ति करै मोमें सतत, पाइ उपासक पद परम ॥

पावन मेरी कथा सुनै गावै ध्यावै नित।
लीला अभिनय करै लगावै मम चरननि चित ॥
धरम अरथ अरु काम करै ह्वै मेरे आश्रित।
पावै निश्चल भक्ति कटै जगकी यह संसृत ॥
साधुनिके सतसंगतैं, भक्ति मुक्ति पावै सबहिँ।
पुण्य पुरातन उदय जब, होवैं साधु मिलैं तबहिँ ॥

होवैं साधु कृपालु तितिच्छू द्रोहरहित नित।
सत्यशील समभाव हितैषी मृदुल शुद्ध चित ॥
कामरहित संयमी सदाचारी निष्किञ्चन।
निस्पृह युक्ताहार शांतचित शरणागत जन ॥
धीर गँभीर प्रमाद बिनु, षड रिपुजित थिरधी मुनी।
मानरहित मानद सबहिं, मिलनसार समरथ गुनी ॥

करुनामय कवि होहिँ साधु हरि भक्त दृढ़ावैं।
जो शुभ साधन करैं भक्ति ते प्रभुकी पावैं ॥
प्रभु-प्रतिमा अरु साधु दरस पूजन पद परसन।
सेवा इस्तुति विनय सहित गुन नामनि कीर्तन ॥
ध्यान दास्य मम पर्व तिथि, उत्सव गायन नित्य नित।
कथा श्रवन अरपन सकल, मेरे हित सब करहिं व्रत ॥

मम हित यात्रा करै देवमन्दिर बनवावै।
स्वयं शक्ति नहिं होहि यत्न करिकैं करवावै ॥
उपबन अरु उद्यान सभाथल शाला सुन्दर।
ह्वैकैं निश्छल नित्य करै लेपन मम मन्दिर ॥
करी निवेदित वस्तु जो, लेइ न अपने काममहँ।
करै समर्पित बस्तु प्रिय, होहि प्रेम मम नाममहँ ॥

बिप्र, धेनु, रवि, अनिल, अनल, भू बैष्णव पानी ।
आत्मा अरु आकाश चराचर जगके प्रानी ॥
ये सब आश्रय कहे देव पूजाके प्यारे ।
उपस्थानतैं सूर्य्य अग्नि घृत आहुति डारे ॥
पूजै द्विज आतिथ्य करि, धेनु घास तृन डारिकें ।
बैष्णवकूँ सत्कार करि, पूजे अंत प्रिय मानिकें ॥

मुख्य प्राणतैं बायु हृदय आकास ध्यान धरि ।
पुष्पादिकतैं नीर भूमि बेदी थापन करि ॥
अन्तरातमा करै तुष्ट भोगनितैं नियमित ।
पूजै करि समदृष्टि सकल प्रानिनिमहँ नित नित ॥
शान्त चतुरभुज रूपको, करै ध्यान है समाहित ॥
करै करम मेरे निमित, मोमैं राखै नित्य चित ॥

भक्तियोग सत्संग बिना सुख नहिँ नर पावैं ।
चाहें जप तप करें योग करि ध्यान लगावैं ॥
सत्संगतितैं तरे दैत्य अन्त्यज अघकारी ।
असुर, गीध, गज, गाय, गोपिगन, कुब्जा नारी ॥
नहीं करी सेवा महत, बेद पढ़े नहिं ब्रत करे ।
करि सत्संगति जगत्महँ, जीव चराचर बहु तरे ॥

योग,दान,व्रत, सांख्य, यज्ञ, जप, तप सब साधन ।
श्रवन, मनन, संन्यास आदितैं होवै बश मन ॥
किन्तु न ये सब सरस सरल हियकूँ नहिं पकरैं ।
साधन च्युत यदि भये फेरि जगबन्धन जकरैं ॥
भक्तिभाव सत्संगतें, होहि सरस तन्मय हियो ।
ब्रजबनितनि मोमें मधुर, प्रेमभाव अनुपम कियो ॥

रूपसुधामहँ छकीं निरंतर मोकूँ ध्यावैं।
प्रेमडोरिमहँ बँधी सुनत बंशी धुनि आवैं॥
तजि बृन्दावन गयो मधुपुरी वे घबरायीं।
मन मोईमहँ फँस्यो सकल सुधि बुधि बिसरायीं॥
मेरे सँगमहँ छिन सरिस, निशा बितायीं जो सुखद।
भईं कलप सम मो बिना, मम बियोगमहँ अति दुखद॥

ज्यों समाधिमहँ सिद्ध मिलैं सागरमहँ सरिता।
त्यों ह्वैकें आसक्त मिलीं मोमें ब्रजबनिता॥
मोमें मन फँसि गयो सकल तन सुधि बुधि भूलीं।
नहिं समुझीं सरबेश रमन सुन्दर लखि फूलीं॥
परम धन्य जगमहँ भईं, मोमें करि आसक्ति अति।
तुम हू उद्धव ! त्यागि सब, भजो मोइ पावो सुगति॥

हौं ही जग बनि गयो बीज ज्यों तरु बनि जावैं
वृक्ष कर्म मय मोक्ष भोग फलफूल कहावैं॥
पाप पुण्य द्वै बीज बासना जड़ गुन तन हैं।
इन्द्रिय शाखा ईश जीव द्वै बैठे खग हैं॥
सुख दुख ही द्वै फल लगे, खावै दुख भोगी सतत।
योगी सुख चाखत रहत, ब्रह्मभावमहँ नित निरत॥

गुन ही बन्धन हेतु प्रथम रज तमकूँ त्यागै।
सत्व वृद्धितैं भक्ति होहि श्रद्धा हिय जागै॥
आगम, जल अरु कुटुम-देश,संस्कार करम पुनि।
काल, जनम अरु ध्यान मंत्र ये कारन दश सुनि॥
सत्वज्ञान होवै नहीं, सेवै तब तक सत्यकूँ।
ज्ञान अगिनि अज्ञान भखि, प्राप्त करै एकत्वकूँ।

उद्धव बोले—प्रभो ! सबहिँ मानें बिषयनि दुख ।
फिरि च्यौं तिनकूँ भजैं करैं तिनमें अनुभव सुख ॥
हँसि बोले भगवान्—अहंतातैं मूरख जन ।
फँसैं रजोगुणमाँहि कामना बश होवै मन ॥
कबहुँ बिवेकी हू फँसैं, किन्तु होहिँ आसक्त नहिँ ।
चित्त समाहित करन हित, करै प्रान संयम नितहिँ ॥

सब विषयनितैं खैंचि चित्त मम चरननि लावै ।
करै योग अभ्यास निरन्तर ध्यान लगावै ॥
सनकादिककूँ हंस रूपतैं शिक्षा दीन्हीं ।
वे मेरे प्रिय शिष्य योगमहँ निष्ठा कीन्हीं ॥
उद्धव पूछें—जगतगुरु ! हंस रूप कैसे धर्यो ।
सनकादिककूँ योगमय, ज्ञान दान शुभ कब कर्यो ॥

प्रभु बोले—इक बार कुमर सुत अज ढिँग आये ।
जिज्ञासा तिनि करी बन्दि पद बचन सुनाये ॥
बिषयनिमहँ चित जाइ बिषयचितमहँ घुसि जावैं ।
कैसें करि तिनि पृथक मुक्ति पद प्रानी पावैं ॥
निरनय नहिँ कछु करि सकी, कर्ममयी अज बुद्धि जब ।
प्रश्न पयोनिधि पार हित, कर्यो ध्यान मम चरन तब ॥

तबई मैं बनि हंस कुमारनिके ढिँग आयो ।
करि आगे अज सबनि चरन मेरे सिर नायो ॥
पूछैं—को हैं आप ? कही हँसिकें हौं बानी ।
काकूँ करि उद्देश प्रश्न कीन्हों मुनि ज्ञानी ॥
आत्मा अद्वय एक है, बनहिं न तामें प्रश्न यह ।
पञ्चभूतके देह सब, प्रश्न न जामें उठहि जिह ॥

जो सोचो जो लखो सुनो सो मैं ही सब हूँ।
प्रथमहु मैं ही रह्यो रहौंगो मैं ही अबहूँ॥
विषयनि चित अनुसरे विषय हू प्रविशैं तामें।
जीव उपाधी उभय नहीं ते रूप कहावें॥
सेवै विषयनिकूँ सतत, चित्त होहि आविष्ट तहँ।
बनै बासना चित्तकी, जीव ब्रह्म द्वै पृथक् कहँ॥

दोऊ जीव उपाधि शुद्ध निज रूप निहारौ।
बुद्धि अवस्था तीनि आतमा इनतैं न्यारौ॥
भो तुरीयमहँ पहुँचि जगत् बन्धन नहिं लागै।
चित्त विषय नसि जायँ अहंता अपनी त्यागै॥
भेद बुद्धि जब तक नहीं, नसै न तब तक बुद्ध है।
जग-प्रपञ्च मिथ्या असत्, ब्रह्म सत्य शिव शुद्ध है॥

सर्व नियामक नित्य निरञ्जन आत्मा सत्‌चित।
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति सबहिँ मायामहँ कल्पित॥
ज्ञान खड्गकूँ धारि तीक्ष्ण युक्तिनितें करि करि।
अहंकारकूँ काटि मोइ भजि जगकूँ परिहरि॥
नश्वर दृश्य प्रपञ्च जिह, भासै नाना रूपमहँ।
दीखै मायामय त्रिबिधि, मिथ्या स्वप्न स्वरूपमहँ॥

निजानन्दमहँ पूर्ण मौन गहि तृष्णा त्यागौ।
स्वप्न जगत्‌महँ फँसे मोह निद्रातैं जागौ॥
स्वप्न-पदारथ याद होहिं जागतमहँ जबई।
करैं न कछु अनर्थ बिज्ञ समुझै त्यों सबई॥
मदिरातैं उनमत्त नर, मोरीमहँ गिर जातु है।
नंगो ह्वैकें हँसि परै, सुधि बुधि सकल भुलातु है॥

यौंही ज्ञानी करै कर्म पीवै अम्मृत रस।
तनमहँ नहिं आसक्त होहि तन काज दैव बश ॥
द्विजगन ! मोकूँ परम पुरुष परमेश्वर मानौ।
सांख्य सत्य श्री कीर्ति परम गति सबकी जानौ ॥
सब मुनि मिलि पूजा करी, हंस तहाँतैं उड़ि गये।
सुन्यो हंसगीता बिमल, अज मुनि गन प्रमुदित भये ॥

इति श्रीभागवत चरितके सप्ताह में उद्धवगीता हंसावतार कथा नामक पञ्चम अध्याय समाप्त।

[मासिक पारायण—सत्ताईसवें दिनका विश्राम]

अथ षष्ठोऽध्यायः

[६]

कहें कृष्ण—यह हंस ज्ञानमय गीता उद्धव।
सखा समुझिकें कह्यो कहूँ का कथा अपर अब॥
उद्धव पूछें—प्रभो ! तुम्हें बुध बहुत बतावें।
श्रेय सिद्धिके भिन्न मार्ग ऋषि मुनि बहु गावें॥
कही ज्ञानगाथा बिमल, तृप्ति न मेरी भई हरि।
कहें भक्ति महिमा सुखद, सरस मधुर प्रभु कृपा करि॥

तब बोले भगवान्—बेद ही मेरी बानी।
मुख्य भागवत धर्म जाहि धारैं बिज्ञानी॥
आदि सर्गमहँ कह्यो ब्रह्मतैं मनुढिँग तिननें।
तिनि सप्तर्षिनि दयो कह्यो फिर सबतैं उनने॥
ग्रहन कर्‌यो निज मत सरिस, सबके भिन्न स्वाभाव हैं।
प्रकृति भेदतैं भिन्न पथ, भिन्न क्रिया अरु भाव हैं॥

धर्म एक परमार्थ बतावें यशकूँ दूसर।
अपर कामकूँ कहें सत्यमहँ कोई तत्पर॥
शम दम कोई कहें अपर ऐश्वर्य बतावैं।
दान भोग ही स्वार्थ अपर तप मख मन लावैं॥
कहें दान व्रत यम नियम, भिन्न भिन्न पुरुषार्थ हैं।
किन्तु न शाश्वत नित्य ये, छुद्र कर्ममय स्वार्थ हैं॥

शुभ कर्मनितैं लोक मिलैं जाओ सुख पाओ।
पुण्य छीन ह्वै जायँ गिरौं उलटे जग आओ॥
मोहजनक दुख हेतु तुच्छ सुख दैवेवारे।
दुख परिनामी लगैं तनिक इन्द्रिनिकूँ प्यारे॥
जो सुख मेरी भक्तिमहँ वह सुख विषयनिमहँ नहीं।
मिश्रीमहँ जो सुख मिलै, लौटामहँ पावैं कहीं॥

निष्किञ्चन समबुद्धि शान्त सन्तोषी त्यागी।
निस्पृह निर्मम नित्य तुष्ट मम पद अनुरागी॥
निरखें सबमहँ मोइ द्वैत दीखे नहिं जिनिकूँ।
दुखको नहि लवलेश दिशा सुखमय सब तिनिकूँ॥
तन, मन, धन मम पदनिमहँ, सौंपि न चाहैं इन्द्रपद।
राज्य पाट ऐश्वर्य सुख, लेवैं नहिं ते ब्रह्मपद॥

उद्धव जैसे मोइ भक्त निष्किञ्चन प्यारे।
तैसे प्रिय नहिं राम रमा अज डमरूवारे॥
निरबैरी निरपेक्ष भक्तके पीछे घूमूँ।
पदरजतैं कृतकृत्य बनूँ चरननिकूँ चूमूँ॥
बिषयवासना कामसुख, की इच्छा मनमहँ नहीं।
उनि भक्तनि आनन्दकूँ, बिषयी का पावैं कहीं॥

भूलै मेरो भक्त विषयभोगनि फँसि जावै।
मम पद तजिकें नारि बदनमहँ चित्त लगावै॥
कछु दिन होवै पतित यादि सुमिरन सुख आवै।
भूलि भटकि पछिताइ मोइ फिरतैं अपनावै॥
बढ़ी अग्निमहँ नीर हू, भस्म होहि जरि जाइ पुनि।
भक्ति होहिं फिरतैं सजग, मधुमय मेरी कथा सुनि॥

पाप पहाड़नि भक्ति जरावै उद्धव मेरी।
तू चिन्ता मति करै परम निर्मल मति तेरी॥
योग, सांख्य, जप, दान, धर्मतैं ही रीझूँ नहिं।
भक्ति मार्ग ही श्रेष्ठ जाहि कामी नहिं समुझहिं॥
धर्म सत्य अरु दयायुत, तप शावित विद्या बिमल।
पूर्ण पवित्र न करि सकें, भक्तिहीन नरकूँ सकल॥

उद्धव! सोचो प्रेम अश्रु बिनु गद्गद बानी।
बिनु तनु पुलकित भये मोइ पावैं क्यौं प्रानी।
ह्वैकें भक्त बिभोर प्रेममें नाचें गावैं।
करि करि प्रेम प्रलाप हँसे रोवैं गिरि जावैं॥
भक्तियोग साधन सरल, सुलभ शुद्ध अञ्जन सरिस।
कथा कीरतनतैं नसै, हियमहँ संचित बिषय बिष॥

जो सोचो सो बनो होहि जैसो जाको सँग।
श्वेत वस्त्र सम चित्त रँगो जैसो होवै रँग॥
बिषयनि चिन्ता करै बिषयमय मन बनि जावै।
मेरी चिन्ता करै भक्त मेरो पद पावै॥
साधन सबरे असत हैं स्वप्न मनोरथ सम सकल।
तातैं सब तजि मोइ भज, मम चिन्तन साधन सफल॥

तिरियनिको तजि नेह संग बिषयी पुरुषनिको।
धीर बीर गम्भीर बनैं प्रिय सब जीवनिको॥
भजन हेतु घर तजै समय नहिं व्यर्थ बितावै।
निरखि शान्त एकान्त पुण्य थल ध्यान लगावै॥
करै न आलस भजनमहँ, कथा कीरतनमहँ निरत।
अथवा प्राणायाम करि, करै ध्यान मेरो सतत॥

उद्धव बाँधौ गाँठ मोक्ष मारग अति दुस्तर।
पग पगपै अति क्लेश देहिं ये विषय निरन्तर॥
जैसो होवै क्लेश कामिनी अरु कामिनितैं।
तैसो होवै नहीं लोभ मोहादि रिपुनितैं॥
संसृतिको ही हेतु है, कामधुराको संग नित।
तातैं तजि अविलम्ब नर, मम चरननिमहँ देहि चित॥

बोले उद्धव—नाथ! ध्यान विधि सोइ बतावैं।
कौन भाव किहि भाँति रूप तव कैसे ध्यावैं॥
हरि बोले—सुनु सुहृद! प्रथम शुभ आसन बाँधै।
पुनि पुनि प्राणायाम करे प्राणनिकूँ साधै॥
कमलनाल सम प्रणव ध्वनि, घंटा नाद समान स्वर।
तीन काल दश बेर करि, होहि सहजमहँ चित्त थिर॥

हृदय कमल दल अष्ट प्रफुल्लित साधक ध्यावै।
सूर्य्य चन्द्र अरु अग्नि कर्णिकामाहिँ बिछावै॥
चिन्तै मम मुख मधुर बाहु बर चार विशाला।
शंख चक्र अरु गदा पदुम पहिने बनमाला॥
मकराकृत कुण्डल कलित, श्रीनिवास पतपीतम्बर।
भुज अंगद कटि करधनी, नूपुरयुत पद अति सुघर॥

भाल, नयन मुख हृदय, नाभि, कटि, ऊरु, चरनतल।
सुघर मनोहर निरखि करै थिर मनकूँ शुभ थल॥
केवल मुखकूँ ध्याइ अन्तमहँ ताकूँ त्यागै।
निराकार निरबीज चित्त आत्मामहँ लागै॥
समुझै आत्मा सर्बगत, सबकूँ मोमें मोइ सब।
ज्ञान कर्म अरु द्रव्य भ्रम, योगीको नसि जाय तब॥

योगी ध्यावै मोइ सिद्धि सब तिहि ढिँग आवैं।
उद्धव बोले—नाथ ! सिद्धिके भेद बतावैं ॥
हरि बोले—सब सिद्धि अठारह मुनिनि गिनाई।
तिनिमहँ दश हैं गौण आठ ही मुख्य बताई ॥
अणिमा महिमा अरु लघिम, आश्रय इनको देह है।
प्राप्ति सिद्धि उत्तम कहो, इन्द्रिय जाको गेह है॥

सिद्धि कही प्राकाश्य ईशिता बशिता उद्धव।
दूरश्रवन परकाय प्रविसि तनु सुघर मनोजव ॥
गति आज्ञा अनिवार देवक्रीड़ा अनुदरशन।
अग्नि सूर्य्य जल गरल आदि बस्तुनि को स्तंभन ॥
करै धारना जाहिमें, होहि सिद्धि तैसी तहाँ।
भक्तियोग बिनु सिद्धि सब, पावैं कामी नर कहाँ॥

जितनी होवें सिद्धि जन्म औषधि अरु तपतैं।
ते सब पावें भक्त नाम मेरेके जपतैं॥
सब सिद्धिनिको ईश बेदबिद मोहि बतावैं।
तातैं सब तजि चित्त भक्त मम चरन लगावैं॥
हौं ही सबमहँ रमि रह्यो, देहुँ सिद्धि सबकूँ सकल।
मम तजि सिद्धिनिमहँ फँसैं, मेरी माया अति प्रबल॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताहमें उद्धवगीतान्तर्गत भक्तियोग ध्यान तथा सिद्धि वर्णन नामक छठवाँ अध्याय समाप्त।

अथ सप्तमोऽध्यायः

(७)

बोले उद्धव—सुनीं सिद्धि सब नाथ बखानी।
अब बिभूति निज कहैं मोइ निज सेवक जानीं॥
सुनि बोले बिश्वेश—पार्थतैं मैंने रनमहँ।
कछु बिभूति निज कहीं कहूँ तिनि धारौं मनमहँ॥
जीव काल गति गुन, प्रनव, गायत्री, सुरपति, अनल।
बिष्णु नीललोहित, भृगू, मनु, नारद, कपिला कपिल॥

प्रजापतिनिमहँ दक्ष अर्यमा हौं पितरनिमहँ।
दैत्यनिमहँ प्रहलाद बरुन हौं जलबासिनिमहँ॥
ऐरावत, रबि नृपति, अहिप, यम, कनक, अश्वबर।
शेष, सिंह, संन्यास, गंग, जलनिधि, धनु, शङ्कर॥
गिरिप मेरु, अश्वस्त, यव, कार्तिकेय, अज, बृहस्पति।
मुनि बसिष्ठ,जल,अनल,रबि,मनु, शतरूपा बिष्णु यति॥

हौं ही सनतकुमार त्याग अरु मौन प्रजापति।
संबतसर सुबसन्त,मास अगहन अरु अभिजिति॥
सत् युग, देवल असित, ब्यास द्वैपायन, भार्गव।
बासुदेव, हनुमान, सुदर्शन, गोघृत उद्धव॥
कमलकोश, कुश, पद्ममणि, गुण सत्त्वादिक, तेज रस।
पूर्वचित्ति बिश्वाबसू हौं ही सबमहँ कीर्ति यश॥

हौं ही ईश्वर, जीव, सत्व, रज और तमोगुन।
प्रकृति, पुरुष, गति,काल,भूमि,जल,नभ,रवित्रिभुवन ॥
कहूँ कहाँ तक तेज, कीर्ति, श्री जहँ जहँ जानों।
पुरुषारथ, बल, कान्ति अंश सब मेरे मानों ॥
अपनी कहीं बिभूति कछु, सब ये मनोविकार हैं।
परमारथ ये ही नहीं, जगके सब व्योहार हैं ॥

उद्धव बोले—मोइ बतावहिँ बर्णाश्रम हरि।
करि जिनको आचरन जाहि जगतैं मानव तरि ॥
हौ प्रभु सर्व समर्थ बेद सब तुमरी बानी।
मूर्तिमान हौ धरम कहैं मुनि पंडित ज्ञानी ॥
बर्णाश्रमको प्रश्न सुनि, हरि बोले—उद्धव कहूँ।
हौं ही चारिहु युगनिमहँ, धरम रूपतैं नित रहूँ ॥

आदि कल्पमहँ भयो प्रथम सतयुग हौं जामें।
हंसरूपतैं रहौं ध्यानतैं पूजैं तामें ॥
मखतैं त्रेतामाँहिं करैं पूजा द्वापरमहँ।
नाम कीरतन कराहिं पाहिं प्रानी कलियुगमहँ ॥
मुखतैं द्विज, भुज क्षत्र उरु, वैश्य शूद्र मम चरनतैं।
चारि बरन प्रकटित भये, जानहिं निज निज करमतैं ॥

बरन सरिस ही चार भये आश्रम बिराटतैं।
मस्तकतैं संन्यास धर्म प्रकटित स्वराटतैं ॥
गृह आश्रम वटु धर्म जघन अरु हियतैं जानों।
बक्षस्थलतैं बानप्रस्थ उतपति तुम मानों ॥
चार चार आश्रम बरन, सबके पृथक स्वभाव हैं।
पावैं फल सब कर्म करि, जिनिके जैसे भाव हैं ॥

पहिले सुनो स्वभाव बिप्रको उद्धव ! उत्तम।
शम दममहँ नित निरत रहै ध्यावै चरननि मम ॥
तत्परताके सहित शौचके पालै नियमनि।
यथालाभ संतोष करै नहिं संग्रह बस्तुनि ॥
अपकारीके दोषकूँ, शक्तिवान ह्वैकें सतत।
क्षमा करै निष्कपट ह्वै, परकारजमहँ नित निरत ॥

होवैं मृदुल स्वभाव भक्ति मेरी हिय धारैं।
सब जीवनि पै दया करैं नहिं जीवनि मारैं ॥
सदा सत्य ब्यवहार बिप्रके ये ही सब गुन।
इन गुनतैं ही करैं जगतकूँ बशमहँ द्विजगन ॥
द्विजस्वभाव मैंने कहे, ब्राह्मण तनमहँ रहहिं सब।
करै बृत्ति कैसी रहै, सुनो बिप्रको धर्म अब ॥

ब्राह्मण क्षत्रिय बैश्य वर्ण द्विज तीनि कहावैं।
यज्ञ दान अध्ययन तीनिको धर्म बतावैं ॥
पढ़ैं बिप्र सब बेद द्विजनिकूँ फेरि पढ़ावैं।
स्वयं यज्ञ नित करैं द्विजनिकूँ यज्ञ करावैं ॥
देहिं दान श्रद्धा सहित, लेहिं बिबश ह्वै बृत्ति हित।
रहें तपस्यामहँ निरत, परमारथमहँ रखहिं चित ॥

बिप्र बृत्ति तजि नहीं नीच कारज अपनावै।
गौ कृषि अरु ब्यापार बृत्तितैं काज चलावै ॥
अथवा लैकें शस्त्र युद्धमहँ लड़िबे जावै।
धर्मयुद्धतैं कबहुँ पैर पीछे न हटावै ॥
आपद धर्म अनेक हैं, सदाचार कबहुँ न तजै।
कर्म बचन मनतैं सदा, अघहारी हरिकूँ भजै ॥

क्षत्रिय वर्ण स्वभाव सुनौ उद्धव मोतें अब।
तेजस्वी, बलवान, धीर अति सहै दुःख सब॥
शूरवीर रणधीर दानमहँ रुचि नित राखै।
होवै परम उदार दीन बाणी नहिं भाखै॥
करत रहै उद्योग नित, थिरता रखि कारज करै।
दीन दुखिनिके दुःखकूँ, स्वयं दुःख सहिकें हरै॥

यदि होवै सामर्थ्य बिप्रकूँ सुख पहुँचावै।
जो माँगे सो देहि नहीं घरतें लौटावै॥
दै बिप्रनिकूँ दान अपर बहु भये नृपति गन।
बहुतनि दीयो बिप्र बचनतैं सरबसु तन धन॥
क्षत्रिनिको ऐश्वर्य नित, रहै सत्य अरु धरमतैं।
बढ़ैं पुण्य यश जगतमहँ, शास्त्र बिहित शुभ करमतैं॥

सुतवत पालै प्रजा दूर भय करै सबनिको।
छठवों लेवै अंश हरै दुख नरनारिनिको॥
दण्डशुल्क कर क्षात्र बृत्ति ऋषि बेद बतावैं।
दस्युनि देहिं भगाइ नृपति अति पुण्य कमावैं॥
बैश्य बृत्तिहु बिपतिमहँ, धारि करै निर्बाह नृप।
अथवा बिचरै बिप्र बनि, नहिं त्यागै तप नियम जप॥

क्षत्रिय धर्म प्रधान प्रजापालन रणथिरता।
दुष्टनिको संहार करै रिपुतैं नहिं मृदुता॥
भाईहू रिपु होहि समरमहँ ताहि पछारै॥
जगको होवै अहित ताहि बिनु सोचे मारै॥
क्षत्रिय बृत्ति स्वभाव कछु, उद्धव यह तुमतैं कह्यो।
बैश्यबृत्ति बरणन करूँ, जो स्वभाव इतने लह्यो॥

बैश्य कहावैं श्रेष्ठ सरल होवैं आस्तिक अति।
यथाशक्ति नित दान पुण्यमहँ स्वाभाविक मति॥
बिप्रनि सेवा करैं पर्बपै न्योति जिमावैं।
करैं बिप्र जो क्रोध ताहि चितमहँ नहिं लावैं॥
शत, सहस्र, दश लक्ष वा, अरब खरब हू होहि धन।
चाहें जितनो नित मिलै, तबहु न होवै तुष्ट मन॥

खेतीतैं निर्बाह करै गौपालन नित प्रति।
बस्तुनिको ब्यौहार करै जोरै धन सम्पति॥
शूद्र बृत्ति हू वैश्य बिपतिमहँ परि अपनावै।
किन्तु न ताकूँ धर्म समुझि नित काज चलावै॥
पालै अपने धर्मकूँ, नृप द्विज देवनितैं डरै।
पूजै द्विज, गौ, अतिथि, सुर, सन्ध्या बन्दन नित करै॥

स्वाभाविक रुचि रहै शूद्रकी सेवा माहीं।
कहैं करन द्विज काज करै नहिं कबहूँ नाहीं॥
बिप्र, धेनु, सुर पूजि नित्य कर्तव्य निभावै।
सेवातैं जो मिलै ताहितैं काम चलावै॥
गुरुकुलबास न शौच तप, सेवा तिनिको कर्म है।
सेवा ही तप दान ब्रत, शूद्रनिको यह धर्म है॥

शूद्र बिपतिके समय करै गोपालन खेती।
अथवा धारै बृत्ति कारु पुरुषनिकी जेती॥
चर्म, चटाई, सूप, ऊनकी, बस्तु बनावै।
बनतैं लावै बस्तु बेचिकैं काम चलावै॥
आपद ही में सब करै, पुनि आपद मिटि जाय जब।
नीच बृत्तिकूँ त्यागि कैं, अपनावै निज धर्म तब॥६

नारिहरन करि उच्च बर्णकी जे लै जावैं।
दस्यु म्लेच्छ ते अधम नीच चांडाल कहावैं॥
रहैं सदा अपवित्र करैं खल मिथ्या भाषन।
दैं चोरीमहँ चित्त न मानहिं देव पितर गन॥
शिखा सूत्र बिश्वास नहिं, व्यर्थ कलह सबतें करैं।
कामी, क्रोधी, लालची, ते मरि नरकनिकहँ परैं॥

म्लेच्छ दस्यु हू धर्म पालिकें सद्गति पावें।
अधम बृत्तिकूँ त्यागि करें शुभ शुचि है जावें॥
उद्धव ! मैंने बर्ण धर्म सब तोइ सुनाये।
जे पुरान, इतिहास, बेद, शास्त्रनिने गाये॥
यह बिशेष सब बर्णके, धर्म कहे मैंने सकल।
कहूँ धर्म सामान्य अब, जो सब बर्णनिकूँ बिमल॥

सत्य, अहिंसा शुद्ध चित्ततैं मनमहँ धारैं।
कबहुँ न चोरी करैं, काम बड़ रिपुकूँ मारैं॥
क्रोध लोभतैं रहित होहिं प्रिय करहिं सबनिको।
प्राणिमात्रतैं प्रेम करें, हित सब जीवनि को॥
सुखी होहिं पर सुख निरखि, पर संपति लखि नहिं जरैं।
स्वयं न प्रिय व्यवहार जो, तिहि औरनि सँग नहिं करैं॥

द्विज शूद्रनि अरु सर्व बर्णको धर्म बतायौ।
सबकी बृत्तिनि सहित तोइ संक्षिप्त सुनायौ॥
अब जो इच्छा होहि कहूँ जो पूछौ उद्धव।
बोले उद्धव—कहो धर्म आश्रमको केशव॥
हरि बोले—आश्रमनिमहँ, ब्रह्मचर्य आश्रम प्रथम।
द्विज बालक उपनयनयुत, बसै तहाँ पालै नियम॥

गुरुकुलमहँ नित बास करै भिक्षा करि लावै।
गुरु सम्मुख धरि देहि देहिं जो सोई खावै॥
धारै नित उपबीत मेखला अरु मृगछाला।
दण्ड, कमण्डलु, जटा अक्षकी उरमहँ माला॥
अलंकार हित दंत पट, रँगे न उज्वल करै अति।
भोजन मज्जन, होम, जप, महँ नहिँ बोले धीरमति॥

पंचकेशकूँ रखै शिखा ही अथवा धारै।
जग विषयनितैं बिरत रहै नित मनकूँ मारै॥
गो गुरु,द्विज रवि,अग्नि,अतिथिकूँ पूजै नित प्रति।
समुझै गुरु ममरूप करै सेवा निश्चल मति॥
तजै अष्ट मैथुन सदा, भिक्षापै निरबाह करि।
पढ़ि गुरुकूँ दै दक्षिणा, बनै गृहस्थी ब्याह करि॥

कन्या सुघर सवर्ण सुशीला सद्गुन बारी।
ताके सँग करि ब्याह बृत्ति धारै हितकारी॥
घरमहँ अतिथि समान बसै रागादिक त्यागै।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, तृष्णातैं भागै॥
सबकूँ स्वप्न समान लखि, सुत, दारा, धन बन्धु जन।
ऊपरतैं कारज करै, राखै मो में सदा मन॥

देव, पितर अरु अतिथि करै सेवा प्रानिनिकी।
देवै सबको भाग जीविका जैसी जिनिकी॥
जो कछु कारज करै भाव मोईमहँ राखै।
जीवनि दुख नहिं देहि अनृत बानी नहिँ भाखै॥
सब भूतनिमहँ मोइ लखि, निरभिमान घरमहँ बसै।
घर त्यागै अथवा चतुर बानप्रस्थ बनि तनु कसै॥

कन्द मूल फल खाइ मूँछ, नख जटा बढ़ावै।
बनमहँ जो मिलि जाइ ताहितैं काम चलावै॥
पञ्च अग्नि तप करै कुटीमहँ सोवै नाहीं।
सिरपै बरषा सहै, शरदमहँ जलके माहीं॥
करै अग्नि सेवा सतत, स्वयं दास बनिकें रहै।
बरषा गरमी ठंडकूँ, जथाशक्ति नित नित सहै॥

करै दर्श अरु पौर्णमास मख मोकूँ उर धरि।
वन्य कन्द फल मूल आदि चरु पुरोडास करि॥
तुच्छ स्वर्गके हेतु व्यर्थं नहि देह तपावै।
रुग्ण वृद्ध असमर्थ होहि तनु अनल जरावै॥
यदि होवै वैराग्य तो, अग्नि लीन करि प्रानमहँ।
संन्यासी बनि सम रहै, सदा मान अपमानमहँ॥

संन्यासी तजि अग्नि काम्य कर्मनिकूँ छोरै।
सबकी तजि आसक्ति जगत्तैं मुखकूँ मोरै॥
दण्ड कमण्डलु रखै बस्त्र कौपीन लगावै।
दृष्टिपूत पग धरै माँगिकें भिक्षा खावै॥
षडवर्गनिकूँ जीतिकें, राखै मोमें सतत चित।
अनुभव परमानन्द करि, बिचरै ह्वै स्वछन्द नित॥

समुझै नहिँ सत् कबहुँ दृश्यकूँ यति वैरागी।
अनासक्त नित रहै काम्य कर्मनितैं त्यागी॥
मन बानी संघात रूप जग माया मानै।
नित परिवर्तनशील असत् नश्वर सब जानै॥
नेति नेतितैं बाध करि, नहिँ माया चक्कर परै।
थिर ह्वै नित्य स्वरूपमहँ, ब्रह्म एक निश्चय करै॥

जगतैं होहि बिरक्त ज्ञानमहँ अथवा थिरमति।
चाहैं होवै भक्त कृष्ण चरननिमहँ दृढ़रति॥
तजि बरणाश्रम चिन्ह मिलै भिक्षा जहँ खावै।
विधि निषेधतैं रहित मुक्त बन्धन ह्वै जावै॥
बालकवत क्रीड़ा करै, जड़वत् अरु उनमत्तवत।
पशुवत हू चर्या करै, रहै न जग कारज निरत॥

यदि होवै जिज्ञासु सिद्ध गुरुके ढिँग जावै।
मन इद्रिनिकूँ रोकि हृदयकूँ शुद्ध बनावै॥
शान्ति अहिन्सा ज्ञान धारि बैराग्य जगततैं।
मोमें राखै चित्त, मोरिकैं मुखकूँ इततैं॥
वर्णाश्रमके धर्म सब, पालै मम सेवा करै।
काहू आश्रममहँ रहै, अनायास जगतैं तरै॥

परमहंस सब त्यागि कर्ममय बेदबाद रति।
रहै धीर गम्भीर अमानी सहनशील यति॥
सुखदुखमहँ सम रहै रहूँ जैसे हौं माधव।
लीला सम सब करै दैव आधीन समुझि सब॥
भिक्षाकूँ औषधि समुझि, खाइ उदर केवल भरै।
फट्यो पुरानो जो मिले, पट ताकूँ धारन करै॥

शौच आचमन नियम करै नहिं बिधिमहँ बँधिकें।
केवल लीला समुझि करै सब नियमनि तजिकें॥
ज्ञानकूँ संसार स्वप्नवत् असत लखावै।
होहि प्रतीती कबहुँ समुझि मिथ्या हँसि जावै॥
जब तक तनु तब तक कबहुँ, यदि भासै जग नहिं हिलै।
होहि पतन जब देहको, होहि एक मोमें मिलै॥

ज्ञानी तो सर्वस्व एक मोईकूँ मानै।
सो प्रभुतैं अतिरिक्त स्वर्ग अपवर्ग न जानै॥
ज्ञानी अति प्रिय सोइ निरन्तर मोकूँ ध्यावै।
तत्व ज्ञान बिनु सिद्धि कबहुँ साधक नहिं पावै॥
बोले उद्धव—जगत्पति ! होहि ज्ञान कैसे बिमल।
भक्तियोग बरनन करैं, सुनिबेकी इच्छा प्रबल॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताहमें उद्धवगीतान्तर्गत विभूतियोग तथा वर्णाश्रमधर्म नामक सप्तम अध्याय समाप्त।

अथ अष्टमोऽध्यायः

[८]

हरि बोले—जो ज्ञान भीष्म पांडवकूँ दीयो।
ताहीकूँ हूँ कहूँ प्रश्न तुमने जो कीयो॥
नौ ग्याह अरु पाँच तीन अट्ठाइस ये सब।
कहे तत्व इनमाँहिँ एक अनुगत हौं उद्धव॥
ज्ञान कह्यो अपरोक्ष है, दृढ़तर सो बिज्ञान है।
नेति नेतितैं जो बचै, वही ब्रह्म भगवान है॥

परिणामी सब कर्म लोक परलोक अशाश्वत।
जानि असत् सब तजै जगतकूँ ज्ञानी बिषवत॥
भक्तियोग अब कहूँ समुझिकें तुमरी रुचि अति।
कथा सुनै अरु करै नाम कीर्तन मम नित प्रति॥
मेरी पूजामहँ सतत, रहै भक्त संलग्न नित।
त्यागि जगत व्यौहार सब समुझै सेवामाँहिँ हित॥

ह्वैकें अति ई आर्त करै स्तव मेरो सादर।
परम दीनता प्रकट करै मेरे प्रति आदर॥
करुनामय इस्तोत्र कंठ गद्गद ह्वै गावै।
मम मन्दिरमहँ भक्तिभावतैं जाइ सुनावै॥
मेरी सेवामहँ सदा, प्रेम रखै सेवा करै।
मेरे सम्मुख दण्डवत्, प्रेम सहित भूपै परै॥

सब अङ्गनितैं करै बन्दना मम भक्तनिकी।
पूजा मोतैं अधिक करै श्रद्धातैं उनिकी॥
निज पूजाकूँ निरखि होहुँ नहिं उतनों हरषित।
जितनो पूजित भक्त निरखि होवै अँग पुलकित॥
थावर जंगम जीव सब, अचर सचर चैतन्य जड़।
निरखै मोकूँ सबनिमहँ, जगमहँ सोई भक्त बड़॥

चेष्टा मेरे हेतु करै अङ्गनिकी सब ई।
करै गान गुन सतत उचारै बानी जब ई॥
जो कछु कारज करै मोइमहँ चित्त लगावै।
मनसा बाचा कर्म सदा मोईकूँ ध्यावै॥
जगकी जितनी कामना, तिनि सबकूँ मनतैं तजै।
जगके नाते तोरि सब, केवल मोईकूँ भजै॥

मम हित धन अरु भोग तजै सुख सबरे मनतैं।
करै यज्ञ व्रत दान हवन जप तप जो तनतैं॥
मम अरपन करि देइ न अपनेमहँ कछु राखै।
मैंने यह शुभ कर्यो न कबहूँ मुखतैं भाखै॥
जो इन धरमनिको करैं, पालन श्रद्धा सहित सुनि।
होवै प्रकटित भक्ति मम, का तिनिकूँ अवशेष पुनि॥

बढ़ै सत्व चित शान्त होहि आत्मामहँ जावै।
धर्म ज्ञान बैराग्य और ऐश्वर्यहिं लावै॥
यदि चित जगमहँ लगै बिषय भोगनिमहँ भटकै।
जनम मरन अरु रोग शोक दुःखनिमहँ पटकै॥
भक्ति बढ़ै सो धर्म है, सबमहँ आत्मा ज्ञान है।
अणिमादिक ऐश्वर्य है, बिषय बिरत बैराग्य है॥

उद्धव बोले—प्रभो ! प्रश्न कछु पूछूँ पावन ।
'पूछो' बोले कृष्ण—देहुँ उत्तर मन भावन ॥
यम कितने हैं नाथ ! कहे उद्धव ! बारह सुनि ।
सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य अस्तेय, अभय पुनि ॥
आस्तिकता, ह्री, मौन अरु, क्षमा असङ्गय दश भये ।
थिरता, विषय-असंगता, यों सब बारह ह्वै गये ॥

'नियम बताओ नाथ !' कहें बारह ते सज्जन ।
भीतर बाहर शौच, होम, जप तप मम पूजन ॥
श्रद्धा, अरु संतोष, तीर्थ, गुरु-सेवा उद्धव ।
परकारज आतिथ्य, भये बारह पूछौ अब ॥
'शम, दम, धीरज तितिक्षा, अर्थ बतावें रिपुदमन ।
शम-मम धी गो-दमन दम, कहें तितिक्षा दुख सहन ॥

जिह्वा और उपस्थ बिजय धृति बेद बतावें ।
उद्धव बोले—दान बीरता, तप समुझावें ॥
सत्य और ऋत, त्याग, इष्ट धन यज्ञ अर्थ बिभु ।
नरबल, भग, बड़ लाभ, दक्षिणा, बिद्या ह्री प्रभु ॥
हरि बोले—है दान बड़, भूतद्रोह तजिबो सतत ।
मन बश करिबो शूरता, सत प्रिय बानी कहहिँ ऋत ॥

सम दरशन ही सत्य शौच कर्मनि आसक्ति न ।
करम त्याग संन्यास धरम ही कह्यो इष्ट धन ॥
हौं ही उत्तम यज्ञ ज्ञान उपदेश दच्छिना ।
बल बड़ प्राणायाम लाभअति भक्तिभावना ॥
आत्मा अरु परमातमा, महँ अभेद विद्या कही ।
भगही मम ऐश्वर्य है, दुष्करमनिको त्याग ही ॥

उद्धव बोले—कहैं आपु 'श्री' काकूँ स्वामी !
सुख दुख, पंडित, मूर्ख अर्थ का अन्तरयामी !!
कौन कुपथ, का सुपथ, स्वरग अरु नरक बताओ ।
बन्धु कौन, घर कहा, कौन निरधन समुझाओ ॥
को ईश्वर; विपरीत को, धनी कौन, को कृपन हैं ।
मेटैं मेरे मोहकूँ, प्रभु तो अशरन-शरन हैं ॥

सम सुख-दुख सुख कह्यो; कही श्री सद्‌गुण संचय ।
बिषय अपेक्षा दुःख, काम ही रिपु अति दुर्जन ॥
बन्ध मोक्षतैं विज्ञ होहि सो पंडित ज्ञानी ।
मैं मेरीमहँ फँस्यो कह्यो मूरख अज्ञानी ॥
बढ़ै सत्व गुन स्वर्ग सो, ममढिँग लावै सो सुपथ ।
बढ़ै तमोगुण सो नरक, चित चञ्चलकर सो कुपथ ॥

हौं ही गुरुवर बन्धु मनुज तनु घर अति मनहर ।
गुणी धनी ही सत्य, विषय निरलिप्तहि ईश्वर ॥
बिषयी ईश्वर नहीं तासु चित नहीं समाहित ।
निरधन जो नहि तुष्ट कृपन जो नहिं इन्द्रियजित ॥
सब प्रश्ननि उत्तर दयो, उद्धव ! अब अति सार सुन ।
गुन दोषनिको देखिबो, दोष न देखन उभय गुन ॥

सुनिकें प्रभुके बचन प्रश्न कीयो उद्धव पुनि ।
भगवन् ! मन-भ्रम भयो बात गुन दोषनिकी सुनि ॥
यह गुन है यह दोष सतत श्रुति बचन बतावें ।
बिधि निषेधके हेतु कर्म गुण दोष दिखावें ॥
द्रब्य, देश, बय, काल अरु, स्वरग नरक उत्तम अधम ।
बेद भेद प्रतिपद कहैं, कैसें फिरि तजि देहिँ हम ॥

पुनि पुनि ही यों कहै—दोष गुन नहीं निहारौं।
त्यागि दोष गुन भक्ति करौं या ब्रह्म बिचारौं॥
लखि बिरोध भ्रम भयो बुद्धि मेरी चकराई।
मम भ्रम मेंटौ नाथ भक्तवत्सल यदुराई॥
तब बोले भगवान—सुनु, उद्धव ! तू अति तत्वबित।
तीन योग मैंने कहे, पुरुषनिके कल्यान हित॥

ज्ञान कर्म अरु भक्तियोग ये तीनि पुरातन।
जो बिरक्त निष्काम ज्ञान तिनि हेतु सनातन॥
अधिकारी ते कर्मयोगके जो सकाम जन।
नहिँ बिरक्त अति रक्त नतिनिकोभक्ति परम धन॥
जबतकबिषयबिराग नहिँ, मम गुनकरमनि श्रवन रुचि।
तब तक तजि फल कर्म करि, होवै अन्तःकरन शुचि॥

भक्ति ज्ञानकी प्राप्ति मनुज तनुतै ही होवै।
पाइ मनुज तनु बिषय भोगमहँ ताकूँ खोवै॥
सो अति मूरख अधम अमृत तजि बिषकूँ पीवै।
मृतक सरिस सो अज्ञ देखिबेको ही जीवै॥
नौका नरतनु अति सुदृढ़, करनधार गुरुके चरन।
होहिँ अज्ञ भवपार नहिँ, मम प्रेरित पावन पवन॥

होवै बिषय बिराग तबहिँ इन्द्रिय संयम करि।
चितकूँ करि थिर चञ्चलता सब मनकी परिहरि॥
चञ्चल हयके सरिस चित्तकूँ सीख सिखावै।
हौलें करि अनुरोध योगमहँ नित्य लगावै॥
सांख्ययोगतैं उदय लय, कौ मनतैं चिन्तन करै।
यों अनात्ममहँ आत्मधी, की जड़ताकूँ परिहरै॥

मेरी पूजा करै कथा सुनि मम गुन गावै।
होहि कर्म आसक्ति ताहि नित निन्द्य बतावै॥
भजन भावकूँ नित्य बढ़ावै कर्मनि त्यागै।
करत करत अभ्यास बासना हियकी भागै॥
भक्ति मार्ग अति सुगम सुठि, है निरपेक्ष निकाम नित।
त्यागि स्वर्ग अपवर्ग सुख, मोमें राखै भक्त चित॥

ज्ञान करम अरु भक्ति कहे साधन परमारथ।
जे तजि इनकूँ क्षुद्र विषय सुख साधैं स्वारथ॥
पुनि पुनि जनमें मरें घोर ते नरकनि जावैं।
पाइ मनुज तनु बिषय निरत ते पुनि पछितावैं॥
चौरासीके चक्रमहँ, घूमि पाहिँ पुनि मनुज तन।
तब छूटैं संसारतैं, यदि साधनमहँ देहिँ मन॥

जो जाको अधिकार सुदृढ़ता तामें गुन है।
अनधिकार बिपरीत कर्म सो ई अवगुन है॥
परिभाषा गुन दोष बिवेचन जिही बताई।
बस्तु सकल सम किन्तु भिन्नता बेद जताई॥
शुद्धि अशुद्धि बिचार है, धर्म हेतु पुनि दोष गुन।
कहे सकल व्यवहार हित, यात्रा हित शुभ अशुभ दिन॥

पञ्चभूतमय देह कहे अजतैं नग द्रुम तक।
भिन्न भिन्न हैं नाम रूप तनके सब साधक॥
करमनि नियमित करन देश-कालादि बखाने।
शुद्ध देश कछु कहे कछुक अति शुद्ध न माने॥
द्रव्य सँयोग स्वभावतैं, होहि कर्म जिह कालमहँ।
वही शुद्ध नहिँ कर्म जब, होहि अशुद्ध बिकालमहँ॥

कहे हेतु कछु शुद्धि अशुद्धि पदार्थनि मधिमहँ ।
द्रव्य, बचन, संस्कार, काल, बहु स्वल्प सबनिमहँ ॥
शक्ति बुद्धि अरु बित्त विभव कारन कछु भाखे ।
होहिं दोष गुन, देश काल अनुसारहिं राखे ॥
स्नान, दान, तप, अवस्था, शक्ति, कर्म, संस्कारतैं ।
चित्त शुद्ध होवै अवसि, सुमिरन मम पद प्यारतैं ॥

परिज्ञानतैं मन्त्र शुद्धि कर्महु अरपनतैं ।
देश, काल अरु बस्तु, कर्म कर्त्ता, मनु इनतैं ॥
धर्म शुद्धिमहँ हेतु कहे छै ये सब उद्धव ।
शुचितैं होवै धर्म अशुचितैं अधरम यादव ॥
कबहुँ दोष गुनके सरिस, गुन होवैं कछु दोष सम ।
कह्यो बली सामान्यतैं, अधिक विशेष निगम नियम ॥

जो जाको कुल धरम दोष नहिं ताकूँ तामें ।
चाहे होइ सदोष पतिततें नहिं हों ग्वामें ॥
होइ प्रवृतितैं दुःख निवृतितैं सुख निरभयता ।
विषयनि सुखप्रद लखै होइ तब तिनिमहँ ममता ॥
होहि कामना कलह पुनि, क्रोध मोह अज्ञान हू ।
सिमृतिनाश मृतवत् बनै, नसै ज्ञान बिज्ञान हू ॥

करम बन्धके हेतु सकामनि हित बेदनि महँ ।
कहे प्रशंसापरक बचन नर फँसिहैं तिनिमहँ ॥
दै मीठेको लोभ शिशुनि कटु औषधि प्यावैं ।
त्यौं श्रुति कहि श्रुतमधुर बचन मखमाँहिं लगावैं ॥
अज्ञ न समुझैं रहसकूँ, सब कछु समुझैं करमकूँ ।
हिंसामहँ नित निरत है, तजैं मोच्छ सुख धरमकूँ ॥

स्वप्न समान अमान मधुर श्रुत स्वरग आदि सुख।
तिनिहित हिंसा करै अन्तमहँ पावै बहु दुख॥
गुनमय देवनि भजैं गुननिमहँ ही फँसि जावैं।
ते निरगुन परमात्म-तत्व मोकूँ नहिं पावैं॥
सुनि करमनिको प्रशंसा, गूढ़ रहस नहिं धरहिं हिय।
ऋषि परोक्ष बरनन करैं, है परोक्ष अति मोइ प्रिय॥

शब्द-ब्रह्म दुरबोध पार सब ताहि न पावैं।
पश्यन्ती अरु परा मध्यमा त्रिबिधि बतावैं॥
नाद रूपतैं प्रथम फेरि बनि बरन सुहाये।
बरन छन्द बनि गये भेद बहु मुनिनि बताये॥
गायत्री उष्णिक् बृहति, जगती त्रिष्टुप पंक्ति सब।
अतिच्छंद अत्यष्टि ये, अति जगती बीराट तब॥

छन्दनिमें ही भये व्यक्त सब भाव जगतके।
कर्म उपासन ज्ञानकांड प्रकटित इत उतके॥
आदि मध्य अरु अन्त कह्यो हौं ही बेदनिमहँ।
हैं सब मायामात्र पदारथ सत् हौं इनिमहँ॥
तत्वनिको निश्चयकरौ, परमतत्वकूँ पुनि लहौ।
उद्धव बोले—तत्व कै, यदुनन्दन! मोतैं कहौ॥

अट्ठाइस प्रभु! कहे तत्व कछु चार बतावैं।
कछु नौ, छै, छब्बीस, सात, पच्चीस गिनावैं॥
च्यौं इतनो मतभेद रहस का जाके भीतर।
उद्धव शङ्का सुनी बिहँसिके बोले यदुबर॥
बिज्ञ बिप्र जो कछु कहें, युक्तियुक्त सब तात! है।
मेरी मायामहँ कहो, कौन असंभव बात है॥

तत्व परसपर मिलेजुले कछु पृथक बतावैं।
कछु एकहिमहँ कहें कछू द्वै चार मिलावैं॥
प्रकृति, पुरुष, महत्व, अहं, मन, मात्रा इन्द्रिय।
पञ्चभूत पच्चीस भये अठ्ठाइस गुन त्रय॥
छब्बिस ईश्वर सहित हैं, कहूँ भूत इन्द्रिय अलग।
कहुँ आत्मा, परमात्मा, एक कह्यो कहुँ सो बिलग॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताहमें उद्धवगीतान्तर्गत विविध प्रश्नोत्तर नामक आठवाँ अध्याय समाप्त।

अथ नवमोऽध्यायः

[९]

बोले उद्धव—तत्व ज्ञान तो सुन्यो मुरारी।
प्रकृति पुरुषको भेद बतावें भवभयहारी ॥
हरि बोले—है प्रकृति पुरुषमहँ भेद परमप्रिय।
मायातैं जग होहि पुरुष सत चैतन निष्क्रिय ॥
भेद त्रिबिध गुन तीन हैं, सब प्रपञ्च इनितैं भयो।
आत्मा ज्ञान स्वरूप नित, अविकारी बेदनि कह्यो ॥

उद्धव पूछें—प्रभो! बिमुख जे तुमतैं प्रानी।
का तिनकी गति होहि कर्मके जे अभिमानी ॥
आत्मज्ञानतैं रहित पुरुष यह भेद न जानें।
जग प्रपञ्चमहँ फँसे देहकूँ सब कछु मानें ॥
फँस्यो मोहमहँ दयानिधि! गहे कृपामय तव चरन।
उद्धवकी सुनिकें बिनय, बनवारी बोले बचन ॥

प्रियवर! मन है करमयुक्त इन्द्रियतैं संयुत।
जीव संग लै फिरै लोक लोकनिमहँ इत उत ॥
मनने जो कछु सुन्यो कर्यो तिहि नित्य बिचारै।
जाइ जहाँ तहँ रमै पूर्व निज रूप बिसारै ॥
अहंभाव स्वीकार ही, यही जीवको जनम है।
नहीं जीव जनमै मरै, यही यथारथ मरम है ॥

करै स्वप्नमहँ भेद भाव ज्यों बहु विधि प्रानी।
त्यों आश्रय करि करण बनै आत्मा अज्ञानी॥
प्रति पल होवै जनम मरन मूरख नहिं जानैं।
परिवर्तित तनु होहि अबुध नित नहिं पहिचानैं॥
गरभ, बृद्धि, उत्पत्ति शिशु, कुमर,युवक पुनि, प्रौढ़ बय।
जरा, मरन नव अवस्था, तनुकी जीव सदा अभय॥

बोयो पौधा भयो काटिकें बीज निकारौ।
द्रष्टा इनतैं पृथक जीव त्यौं तनुतैं न्यारौ॥
प्रकृति पुरुषको भेद समुझि जे नहीं विचारैं।
भटकैं योनिनिमाँहिँ मरैं पुनि पुनि तनु धारैं॥
चाईं माईं शिशु करैं, कहैं—भूमि घूमै फिरै।
त्यौं कर्त्ता नहिँ जीव है, भ्रम बश चक्करमहँ परै॥

होहि अर्थ नहिँ तऊ जगत चिन्तन है अनरथ।
स्वप्नमाँहिँ जो लखै तिनहिं सत् समुझे स्वारथ॥
भ्रमवश भासित होहि सत्य जगकूँ मत जानों।
खल जो कछु कटु कहैं बुरो ताको मत मानों॥
उद्धव बोले—प्रभु! नहीं, सह्यो जात अपमान है।
कैसे समदर्शी बनैं, हियमहँ बड़ अज्ञान है॥

हरिहँसिबोले—सखे! सहनअपमान कठिनअति।
वाक्य- बानतैं बिंधे व्यक्तिकी बिगरै गति मति॥
सुनौ एक दृष्टान्त अवन्ती नगरी नामी।
तामें द्विज एक बसै कृपन अति क्रोधी कामी॥
भयो नाश धन कृपनको, दान भोग नहिँ कछु कर्‌यो।
हर्‌यो चोर,नृप,स्वजन,खल,जोरि जोरि जो धन धर्‌यो॥

भयो कृपन धन रहित बात अब कोइ न बूझै।
मार्यो मार्यो फिरै न मारग सुखकर सूझै॥
आशा करिकैं जाइ जहाँ तहँ धक्का पावै।
ह्वै चिन्तामहँ ग्रस्त नयनतैं नीर बहावै॥
अब पछितावत कृपन अति, लई भक्त-चरननि शरन।
गहि पद गद्गद कंठतैं, विकल बिलख बोल्यो बचन॥

मैं नहिँ कीयो धरम करम कछु द्रव्य कमायो।
सोऊ सब नसि गयो काम मेरे नहिँ आयो॥
कृपननिको धन धरम भोगमहँ काम न आवै।
दुखको कारन बनै लोक परलोक नसावै॥
धनअर्जन,व्यय, नाशमहँ,श्रम, भ्रम,भय, मद होहिदुख।
चित चिन्तित सब जन कुढ़ैं, कहो द्रव्यमहँ कौन सुख॥

चोरी, जारी, काम, क्रोध, मिथ्या भाषन अति।
इस्मय, मद, पाखण्ड बैर अरु भेद व्यसन मति॥
इस्पर्धा, बिश्वासहीनता, हिंसा, अनरथ।
होहिँ अर्थतैं सकल सधै का धनतें स्वारथ॥
सब व्यसननिको जनक धन, तृष्ना अब नहिं करुङ्गो।
करें कृपा करुनायतन, तो सब तजि हरि भजुङ्गो॥

यों निश्चय करि बिप्र भयो दन्डी सन्यासी।
प्रान, करन, मन साधि बन्यो भगवत विश्वासी॥
भिक्षाकूँ जब जाइ करैं अपमान असज्जन।
छीनैं कन्या, दन्ड, कमन्डलु, माला, आसन॥
करन लगै भिक्षा जबहिँ, त्यागि देहिं मल-मूत्र खल।
देहिँ बिबिध बिधि यातना, तऊ न होवे द्विज बिकल॥

डाटैं डपटैं दुष्ट बाँधि कपि सरिस नचावैं।
नित कटु कहै कुवाक्य धूर्त, खल, चोर बतावैं॥
कहैं—द्रव्य हित कृपन फिरै नित बेष बनाये।
तजै मौन खल करैं यतन नहिं डिगै डिगाये॥
दैविक दैहिक परहिँ दुख, भाग्य समुझि सबकूँ सहै।
गीत गाइ समुझाइकें, बार बार मनतै कहै॥

देवै दुख सुख कौन दैव गतितैं सब होवै।
अमुक देहि दुख समुझि अज्ञ पछितावै रोवै॥
स्वजन, देवगन, काल, करम कारन सब नाहीं।
मनही सुख दुख रचै घुमावै जगके माहीं॥
गुन वृत्तिनि उपजाइ मन, त्रिबिध करम करवाइकें।
आत्मा नित्य निरीह परि, बधै गुननि मन पाइकें॥

दान, धरम, यम, नियम, बेद पढ़िबो, व्रत धारन।
बरनाश्रम शुभकरन सकल मन बशके कारन॥
यदि मन बशमहँ भयो न फिरि आवश्यक साधन।
हैं साधन सब व्यर्थ होहि नहिँ बश जिनितैं मन॥
यह मन अति बलवान रिपु, सकल करन प्रेरक प्रबल।
जाके बशमहँ सब रहैं, करहिं जाहि बश नर बिरल॥

अज्ञ न जीतैं जाहि बिजय हित इत उत अटकैं।
बिनु मन जीते पुरुष बिबिध योनिनिमहँ भटकैं॥
यदि सुख दुखको हेतु मनुजकूँ ही तुम मानों।
देह परस्पर लड़ैं आत्मा निष्क्रिय जानों॥
सोचो यदि निज दाँततैं, कटै जीभ भोजन समय।
करौ क्रोध फिरि कौनपै, कौन करै अनुनय बिनय॥

देहिं देवता दुःख लड़ैं यदि स्वयं परस्पर।
आत्माकी का हानि गिरै जल जलके ऊपर॥
सुख दुखतें है परे आतमा का दुख देवै।
निजानन्दमहँ तुष्ट नहीं बिषयनिकूँ सेवै॥
यदि ग्रहगन ही देहिँ दुख, सहै देह आत्मा नहीं।
स्वप्न कालको अहि कहो, काटे जाग्रतमहँ कहीं ?

नहीं करम सुख दुःख देहिँ आत्मा है न्यारो।
जड़ चेतन हैं भिन्न नहीं दुख देहि, बिचारो॥
काल कहा दुख देहि अंश आत्माको जानों।
आत्मा अज, निर्द्वंद्व प्रकृतितैं पर पहिचानों॥
अहंकार संसृति जनक, भ्रम-बश होहि प्रतीत दुख।
समुझे जो जा ज्ञानकूँ, होवै ताकूँ नित्य सुख॥

नहीं दुःख सुख देहि कबहुँ काहूकूँ कोई।
दुखको कारन अन्य बतावें तिनि मति खोई॥
मारें बाँधें चाहिँ देहिँ दुख मोकूँ सब जन।
समुझि दैव गति कबहुँ होहुँ नहिँ दुखित मलिन मन॥
कहैं कृष्ण—उद्धव ! सुनो, भिक्षु कृतारथ ह्वै गयो।
सहीं यातना खलनिकी, गाय, गीत प्रमुदित भयो॥

उद्धव बोले—प्रभो ! सांख्य अब मोइ सुनावें।
कितने हैं सब तत्व ? भये कैसें ? समुझावें॥
हरि बोले—हौं प्रथम एक ही अद्वय सतचित।
दृष्टा दृश्य स्वरूप प्रकृति अरु पुरुष भये इत॥
प्रकृति पुरुष संयोगतैं, क्षोभ भयो जब गुननिमें।
एकादश अरु देव मिलि, भयो अण्ड इनि सबनिमें।

सलिलमाँहिँ सो रह्यो बिराज्यो तामें हौं जब।
भयो नाभितैं कमल प्रकट अज भयो स्वयं तब ॥
तप करि त्रिभुवन रचे चतुरदश लोक बनाये।
मनुज, भूत, सुर, असुर लोक सबमाँहिँ बसाये ॥
प्रकृति पुरुषतैं होहि जग, काल पाइ होवै सकल।
रहूँ ब्रह्म हौं ही सदा, मोतैं नहिँ कोई प्रबल ॥

प्रलयकाल जब होहि कार्य कारन मिलि जावै।
देह अन्नमहँ मिलै बीजमहँ अन्न समावै ॥
बीज भूमिमहँ भूमि गंध सो जल जल रसमहँ।
यों क्रमतैं सब भूत लीन ह्वै जावें नभमहँ ॥
इन्द्रिय मात्रा भूत गन, अहंकारमहँ होहिँ लय।
अहंकार महतत्वमहँ, प्रकृतिमाँहिँ सोऊ बिलय ॥

प्रकृति कालमहँ बिलय जीवमहँ काल समावै।
हौं अव्यक्त अनादि जीव मोमें मिलि जावै ॥
नहिं काहूमें मिलूँ अवधि सबकी हौं उद्धव।
अति समासतैं कही सृष्टि लय कहूँ कहा अब ॥
बोले उद्धव—नाथ ! अब, गुन बृत्तिनि बरनन करें।
क्यौं प्रानिनिमहँ बिषमता, नटनागर संशय हरें ॥

सुनि हरि बोले—भेद होहि गुनकी बृत्तिनिमहँ।
शम, दम, दया, बिबेक, नहीं इच्छा बिषयनिमहँ ॥
त्याग तितिछा, दान, सत्य, श्रद्धा अरु इस्मृति।
मन प्रसाद अरु मौन सत्य गुनमाँहिँ आत्म रति ॥
इच्छा, तृष्णा, बिषय सुख, भेद-बुद्धि, अभिमान, मद।
आत्मप्रशंसा, हास्यबल, बृत्ति रजोगुनकी दुखद ॥

क्रोध, लोभ, पाखंड, कलह, श्रम, शोक, मोह भय।
मिथ्याभाषन, नींद, याचना, हिंसा अपचय॥
पीड़ा और बिषाद, व्यर्थ आशा निज तनमहँ।
अनुद्योग ह्वै रहै अधिक ममता निज तनमहँ॥
बढ़ै तमोगुन देहमहँ, होवें ये सब बृत्ति तब।
पृथक् कहीं गुन बृत्ति सब, सन्निपात गुन सुनहु अब॥

अहंकार सुन उद्धव! होवै तीनिहु गुनमहँ।
इन्द्रिय, मन अरु विषय प्रान तीनिहुगुन इनमहँ॥
धरम, अरथ अरु काम होइ इच्छा जब मनमहँ।
सन्निपात गुन होहिं चित्त श्रद्धा, रति धनमहँ॥
गृह रति रुचि कर्तव्यमहँ, करम कामनाके सहित।
समुझहु खिचरी गुननिकी, सुनु स्वभाव गुन लाइ चित॥

बढ़ै सत्व शम आदि बढ़ैं गुन चित प्रसन्न अति।
ज्ञानादिक सम्पन्न होहिं सुख धरममाँहिं मति॥
जब रज अति बढ़ि जाय काम सुखई प्रिय लागै।
चित चंचल मति भ्रमित द्रव्य यश इच्छा जागै॥
तमकी होवै प्रबलता, हिंसा निद्रा शोक भय।
बढ़ै ग्लानि मन शून्यवत, खिन्न चित्त अज्ञानमय॥

देव असुर अरु यातुधान बल बाढै क्रमतैं।
सत्व रजोगुन और ज्ञाननाशक गुनतमतैं॥
स्वरग भूमि अरु नरक देवत्रय तीन अवस्था।
बात, पित्त, कफ सबनि माँहिँ गुन तीन व्यवस्था॥
भोग, धरम, व्रत, नियम, फल, काल, करम, करता, करन।
द्रव्य, देश, निष्ठा, क्रिया, ज्ञान, अवस्था अरु असन॥

सबई हैं त्रिगुनात्म प्रकृति अरु पुरुष अधिष्ठित।
देखे समुझे सुने बुद्धि द्वारा जो निश्चित॥
होहिँ करम बश बन्ध भक्तितैं गुन भगि जावैं।
मोमें राखें भाव भक्त ते मोकूँ पावैं॥
रज, तमकू जय सत्वतैं, करै सत्व मम भजनतैं।
हौवै त्रिगुनातीत तब, लिपटै सो मम चरनतैं॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताहमें भिक्षु गीत सांख्ययोग नामक नवाँ अध्याय समाप्त।

(पाक्षिक पारायण—चौदहवें दिनका विश्राम)

अथ दशमोऽध्यायः

[१०]

मानव तनु लहि रहै चरन मेरे लिपटानों।
नर जीवन फल लह्यो यथारथ तानें जानों॥
होवै जब ई ज्ञान जगत माया नसि जावै।
अज्ञानिनिको संग करै बिषयनि फँसि जावै॥
फँसे उरवशी मोहमहँ, ऐल नृपति सम्राट जब।
भयो ज्ञान पछिताइ पुनि, सुखकर गाये गीत तब॥

ऐल-गीत

प्रथम गीत

हाय! यह जीवन बृथा गँवायौ।
मोहमयी मदिरा पी-पीकें, कामिनि हाथ बिकायौ ॥१॥ हाय०
मृगनयनी बधिकिनि बनि सम्मुख,मोहक जाल बिछायौ।
डारि रूपको चुगो चहूँ दिशि, चंचल चित्तफँसायौ ॥२॥ हाय०
हौं नरपति भूपति-पद बन्दित,खग मृग सरिस नचायौ।
त्यागि मोइ ठगिनी चली दीनी, नेंक न नेह निभायौ ॥३॥ हाय०
ह्वैकें बिकल त्यागि पट भूषण, पीछे नंगो धायौ।
तेज, ओज,बल,पौरुष त्यागो, हौं नहिं नीच लजायौ ॥४॥ हाय०
भयो दुखी कातर अति बिह्वल, अतिशय नेह जतायौ।
गदही मारत जात दुलत्ती, खर वत पीछे धायौ ॥५॥ हाय०

द्वितीय गीत

वृथा ताको जप तप अरु दान ।
जाके हियमहँ धँसीं नारिकी, मंद मृदुल मुसकान ॥१॥ वृथा०
पढ़ै शास्त्र, फल फूल खाय व्रत, करयो बेद को गान ।
व्यरथ सकल साधन यदि चाहै, मन अधरामृत पान ॥२॥ वृथा०
तब तक शील,सँकोंच,सरलता,जाति, बरन कुल कान ।
जब तक हियमहँ चुभे न चोखे, नारि नयन बर बान ॥३॥ वृथा०
बार वार धिक्कार जारकूँ, कुलटा रूप लुभान ।
मानत सुख जा हाड़चाममहँ, नहिं सुमिरत भगवान ॥४॥ वृथा०

तृतीय गीत

हाय ! मन मूढ़ न मेरो मान्यो ।
जो अति अशुचि मूत्रमल आलय,ताकूँ सुखकर जान्यो ॥१॥हाय०
खग,मृग सरिस समुझि मोइ बधिकिनि,निंज कटाच्छ सर तान्यो ।
अपने आप फँस्यो फंदामें, भयो न दुखी रिस्यान्यो ॥२॥ हाय०
सुधा समुझि बिष बेलि अधम पशु,पाइ ताहि हरषान्यो ।
अति उनमत्त भयो मद पीकें, नहिं पहिले पहिचान्यो ॥३॥ हाय०
चन्द्रबदन कजरारे नयना, अँग अँग निरखि लुभान्यो ।
देखि रूप भरमायौ कामी, बिष अमिरितमहँ सान्यो ॥४॥ हाय०

चतुर्थ गीत

त्रियाकी देह परम प्रिय जानी ।
जो मल मूत्र रुधिर मज्जा अरु,कफ खकारकी खानी ॥१॥ त्रिया०

रुधिर राधि मल कफके कीरा, सुधा सरिस इन जानी।
कुलबुलात हरषात इनहिंमहँ, हौं तैसो ही प्रानी ॥२॥ त्रिया०

जोहत रहत नयन मुख पल-पल, समुझि आपनी रानी।
तृन सम तोरि नेहकी डोरी, छिनमहँ भई बिरानी ॥३॥ त्रिया०

भ्रमबश सरपिनि गर लपटानी, मनहर माला मानी।
कब आई कब गई सयानी, अब रहि गई कहानी ॥४॥ त्रिया०

माया नाना नाच नचावै, ठगिनी परम पुरानी।
हे मायेश बचाओ गिरिधर, यदुबर सारँगपानी ॥५॥ त्रिया०

पंचम गीत

जगतके विषय बड़े बलवान।
इनतें रहो सचेत सदाई, जो चाहो कल्यान ॥१॥ जगत०

बिषयी बिषय बात बतरावहिँ, करत बिषय गुनगान।
तातैं तजो संग विषयिनिको, बिघन रूप इनि जान ॥२॥ जगत०

मन अरु करमनि मति पतिआवो, ये रिपुअति बलवान।
गहो चरन प्रभु भली करिंगे, दीनबन्धु भगवान ॥३॥ जगत०

छप्पय—यों बहु बिधि पछिताइ उरबशी पुर तजि आये।
मनमहँ मोकूँ धारि शान्त ह्वै अति हरषाये॥
भयो यथारथ ज्ञान मोहको नातो तोड़्यो।
सब जगतैं मुख मोरि प्रेम मोई तें जोड़्यो॥
जो चाहै कल्यान निज, जाइ न कबहुँ कुसँङ्गमहँ।
कामा कामिनि सङ्ग तजि, रहे सदा सत्संगमहँ॥

समदरशी शुचि संत सरलचित शान्त अमानी।
भोरे ममताशून्य अकिंचन निरमम ज्ञानी॥
होवै तिनिके यहाँ कथा नित हरिकी मनहर।
सुनत होत अघ नाश होहि हिय निरमल सुखकर॥
संतनिके ढिँग बैठिकें, सुनें कथा जे चावतैं।
ते पावें ध्रुव परमपद, करै कीरतन भावतैं॥

शरन हुताशन लेत शीत, तम, भय भगि जावें।
त्यों संतनि सँग पाप ताप तम सब नसि जावें॥
सत संगति फल समुझि ऐल नृप सुखी भयो अति।
करि उद्धव ! सत्संग लगाओ मम चरननि मति॥
उद्धव बोले—दयानिधि, क्रियायोग मोतें कहें।
कैसे तुमकूँ पूजि हम, नित पदपद्मनिमहँ रहें॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताहमें ऐलगीत नामक दशम अध्याय समाप्त।

[मासिक पारायण अट्ठाईसवें दिनका विश्राम]

अथ एकादशोऽध्याय:

[११]

हरि बोले—यह क्रियायोग है बिस्तृत भारी।
अति समासतें कहूँ सबनिको जो हितकारी॥
बैदिक,तान्त्रिक,उभय तीनि बिधि पूजा मम प्रिय।
पंचभूत,द्विज, अतिथि, मूर्तिमहँ अथवा निजहिय॥
करे नित्यकरमनि निबटि, प्रतिमा सुघर बनाइकें।
पत्र, पुष्प, फल, नीरतें; मोमें चित्त लगाकें॥

जो मिलि जावै बस्तु अल्प वा बहु पूजनकी।
साङ्ग सहित परिवार करै पूजाइनि सबकी॥
पाद्य अरघ इस्नान धूप दीपादिक दैकें।
नाना बिधि नैवेद्य धरै अति हरषित ह्वैकें॥
दै मुखशुद्धी प्रदच्छिन, छमायाचना बहु करै।
भोग लेहि, निज शीशपै, चंदन चरनामृत धरै॥

बेदी सुघर बनाइ अगिनिमहँ पूजै बिधिवत।
करि पुनि मेरो ध्यान समिध आहुति दे घृतयुत॥
आज्यभाग आघार देहि शाकल्य आज्यमय।
मूलमन्त्र पढ़ि देहि स्विष्टकृत करै सदाशय॥
रबि उपासना अरघ दै, जलमहँ जल तरपन करै।
अतिथि बिप्र नैबेद्यतैं, पूजैं यों करमनि करै॥

धनको सत-उपयोग जिहीं मम पूजा होवै।
धरमहीन धन जोरि ब्यरथ नर आयुष खोवै।।
मन्दिर सुघर बनाइ भोग नित नव लगवावै।
बाँटै प्रभु परसाद स्वयं बन्धुनि सँग पावै।।
खेत, नगर, आजीविका, पूजा हित अरपन करै।
करि धन ब्यय सेवा निमित, भवसार नर ध्रुव तरै।।

उद्धव बोले—प्रभो ! करें परमार्थ निरूपन।
हरि बोले—नहिँ लखै कबहुँ परगुन अरु दूषन।।
निन्दा इस्तुति करैं जीबकी जो जड़ प्रानी।
परमारथतैं गिरैं द्वैत करिकें अज्ञानी।।
का जगमें शुभ अशुभ है, ये सब गुनके खेल हैं।
जगत पदारथ असतहैं, बिकृत गुननिके मेल हैं।।

हरि ही सब बनि गये करन अरु कारन कर्ता।
वे ही पालक पाल्य बने संहृत संहर्ता।।
होवै त्रिबिध प्रतीत गुनमयी माया मानों।
निज अनुभव प्रत्यक्ष बेदतें जाकूँ जानों।।
उद्धव पूछें—देह जड़, आत्मा स्वयं प्रकाश है।
होइ प्रतीती कौनकूँ, कामें भ्रमको बास है।।

हँसि बोले भगवान—"असत जग आत्मा है सत।
देह, करन, मन, प्रान रहें जब तक सम्बन्धित।।
तब तक यह अज्ञान रहै नहिं छूटै बन्धन।
ज्यों नहिं छूटै स्वप्न होहि अनरथ नहिं छिन्दन।।
देह, करन, मन प्रानको, अभिमानी ही जीव है।
अहं अविद्यातें रहित, स्वयं प्रकाशित शीव है।।

एकतत्व नित नयो बिबिध रूपनिमहँ भासै।
वही प्रकास प्रकाश्य दृश्यकूँ नित्य प्रकासै॥
आदि अन्त जग नाहिं मध्यमें हू न रहेगो।
च्यौं ज्ञानी फिरि सोच करै च्यौं दुःख सहेगो॥
अन्वय अरु व्यतिरेकतें, आत्मतत्व निश्चय करै।
जब तक दृढ़ता होहि नहिं, तबतक शुभ साधन करै॥

रोग उपेत्ता करो उभरि वह पुनि पुनि आवै।
त्यों विषयनि आसक्त चित्त साधकहिं डुबावै॥
काम करम बश होहि स्वयं कर्ता बनि जावै।
जो कर्ता बनि जाय अन्तमहँ सो फँसि जावै॥
रहै कमल जलमें यथा, त्यौं ज्ञानी जगमहँ रहै।
करै प्रकृति बश काज सब, किन्तु न बन्धन दुख सहै॥

है बिकल्पतें रहित आतमा चित्त मोह बश।
करै द्वैतको भान भेद करि राजस तामस॥
अर्थबाद जो कहें अज्ञ ते पंडित मानी।
भोगनिमहँ सुख लहैं असत् कर्मनि अभिमानी॥
करै साधना योगकी, बिघ्न डिगावै आइकें।
तौ विघ्ननिकूँ नाश करि, बढ़ैं फेरि हरषाइकें॥

होइ शीत संताप सूर्य शशि करै धारना।
बात आदि बढ़ि जाइँ करै आसननि कल्पना॥
होहि भाग्य बश पाप तिनिहिँ तप करिकें जारै।
बात, पित्त, कफ बढ़ैं औषधिनितें संहारै॥
कोप क्रूर ग्रह करहिं यदि, तौ मन्त्रनिको जप करै।
कामबासना यदि उठे, ध्यान सतत मेरो धरै॥

है बिघननिके नाश हेतु प्रभु नाम कीरतन।
काम क्रोध नसि जायँ करै जो मेरो सुमिरन॥
नश्वर समुझै देह न जामें मोह लगावै।
यदि ह्वै जावै सुदृढ़ तऊ नहिं लखि इतरावै॥
सिद्धि पाइकें योगकी, मन न फँसै जगमहँ कहीं।
जे आश्रम मेरो गहैं, होहिं विघ्न तिनिकूँ नहीं॥

उद्धव बोले— बिभो! योग अति दुष्कर मानूँ।
मैं तो लीला, धाम, नाम अरु रूपहिँ जानूँ॥
कोई सुगम उपाय कृपा करि और बतावें।
अनायास सब सिद्धि सरलतातैं मिलि जावें॥
कमल सरिस कोमल सुखद, परम मृदुल अति अरुन बर।
गही शरन तव चरनकी, जो कमला-संतापहर॥

सुनिकें उद्धव बिनय बिहँसि बोले बनवारी।
है अति पावन परम विमल मति तात तुम्हारी॥
बिषय बासना फँस्यौ ब्यरथ बय प्रानी खोवै।
मम धरमनि अनुराग भाग्य ही तें प्रिय! होवै॥
अब फिरितें अपने धरम, कहूँ सुमङ्गल शान्तिमय।
करि जिनको आचरन शुभ, करै मृत्युपै नर बिजय॥

मोमें मन चित लाइ करै सुमिरन मेरो नित।
असन बसन जो करम तिनिकूँ मेरे हित॥
रहैं भागवत जहाँ तहाँ ही समय बितावै।
भक्तनिको नित करै आचरन तिनि गुन गावै॥
मेरे पर्वनिपै करै, महा महोत्सव प्रेमतें।
धूम धाम अरु ठाठतें, करै काज सब नेमतें॥

आत्मा गगन समान समुझि नित नेह बढ़ावै।
करि सबको सत्कार द्वैत मनमाँहि न लावै॥
बिप्र, श्वपच, खर, धेनु करै डंडौत सबनिकूँ।
मेरे अरपन करै सकल तन मन करमनिकूँ॥
अपनो कछु समुझै नहीं, तन, मन, जन, गृह, बित्तकूँ।
या अनित्य तनतें चतुर, पावै मो अज नित्यकूँ॥

ज्ञान सारको सार कह्यो उद्धव ! यह तातें।
शङ्का यदि कछु रही पूछि ग्याकूँ तू मोतें॥
जे श्रद्धायुत सुनहिँ हियेमें जाकूँ लावैं।
ते पावैं मम भक्ति अन्त मम धामहिँ आवैं॥
अब उद्धव तुमरो कहो, शोक मोह का नसि गयो ?
मेरो मायातें रहित, रुप हिये में बसि गयो ?

उद्धव सुनि प्रभु प्रश्न चरन कमलनि लिपटाये।
कंठ भयो अवरुद्ध नयन जलतें भरि आये॥
पुनि कछु धरिकेंधीर कहें—प्रभु ! सब कछु जानों।
भयो यथारथ ज्ञान मोह मद मान नहानों॥
भयो नाथ ! जीवन सफल, पुनि पुनि पदपद्मनि परूँ।
कृष्ण ! कृपा करिकें कहें, है कृतार्थ अब का करूँ॥

सुनि बोले यदुनाथ— बत्स ! बदरीबन जाओ।
कन्द, मूल, फल खाइ अलकनन्दामें न्हाओ॥
शीत उष्णको सहन करो नित ध्यान लगाओ।
तो तुम तजि भवबन्ध अन्तमहँ मोकूँ पाओ॥
श्याम सीख सुखमय सुनी, पुनि पदपद्मनि परि गये।
प्रभु चरननि बिछुरन सुमिरि, उद्धव अति बिह्वल भये॥

चरनपादुका लईं धरीं सिर प्रभुपद सुमिरत ।
पुनि पुनि करत प्रनाम चले बदरीबन बिलखत ॥
हरि निज सेवक सखा समुझि सब सीख सिखाई ।
शुभ शिक्षा हिय धारि परमगति उद्धव पाई ॥

पूछैं शौनक—सूतजी, पुनि यदुनन्दन का कर्यो ।
कैसें कुल संहार करि, शेष भार भूको हर्यो ॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताह में उद्धवगीता उपसंहार नामक
ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।



अथ द्वादशोऽध्यायः

[१२]

कहें सूत—अपशकुन पुरीमहँ नित नित होवें।
करि करि करकस शब्द सियारिनि दिनमहँ रोवें॥
काक, कंक अरु गीध अशुभ खग इत उत डोलें।
उल्लू, श्वान कपोत भयंकर बोली बोलें॥
हरि बोले—यादव सुनहु, इनउत्पातनि शमन हित।
सब प्रभास मिलिकें चलो, दान धरममहँ देहु चित॥

साधु साधु कहि सबनि हरषि अनुमोदन कीन्हों।
सब प्रभास चलि दयेपुण्य हित धन बहु लीन्हों॥
अस्त्र शस्त्र लै संग चले, सब तुरँग भगावत।
पहुँचे पुण्य प्रभास उदधि लखि सब हरषावत॥
बिधिवत करि उपबास पुनि, पूजि प्रेमतें सुरनिकूँ।
धेनु, धान, धन, गज, तुरँग, दई बस्तु सब द्विजनिकूँ॥

तीरथको करि कृत्य यथारुचि भोजन कीयो।
भावी बश फिरि सबनि द्रव्य मादक बहु पीयो॥
करन लगे सब कलह परस्पर देवें गारी॥
सकल भये मदमत्त भाग्यने बुद्धि बिगारी।
धनुष, बान, तोमर, खडग, लै लै सब लरिवे लगे।
हरि-माया मोहित भये, नहिँ कोई रनतें भगे॥

धनुष गये सब टूटि बाण तूनीर रहे नहिँ।
तटपै सम्मुख मुसल चूर्णके सरपत निरखहिँ॥
तिनिकूँ तुरत उखारि परस्पर सबई मारें।
बज्र सरिस बनि जायँ सकल यादवनि सँहारें॥
राम श्याम बरजन लगे, इनकूँ हू मारन लगे।
ये हू सरपत लै भिड़े, गिने न सम्बन्धी सगे॥

सब कटि कटि गिरि गये बच्यो नहिं कोई यादव।
लखि निज बंश बिनाश भये प्रमुदित अति माधव॥
बल अन्तरहित भये, भये अहि तजि मानुष तन।
उदधि तीर अश्वत्थ तहाँ पहुँचे यदुनन्दन॥
रूप चतुर्भज दिव्य अति, दिशनि करत आलोकमय।
श्याम-बरन श्रीवत्सयुत, धारें कुंडल बर बलय॥

बाम चरनकूँ धरें दाहिनी जंघापै हरि।
पीपल पींठि सटाइ बिराजे बंश नाश करि॥
शंख चक्र अरु गदा पद्म सशरीर बिराजें।
कुंडल कंकन मुकुट करधनी अंगनि भ्राजें॥
जरा ब्याध बनमें छिप्यो, मुसल कीलको बान करि।
सुखासीन मृगके सरिस, परे दूरितें दृष्टि हरि॥

हरिन समुझि तकि बान चरनमहँ ब्याधा मार्‌यो।
दौड़्यौ पकरन तुरत निरखि हनि ज्ञान बिसार्‌यो॥
पद पदुमनिमहँ पर्‌यो कहै—नहिं नाथ रिस्यावें।
मार्‌यो उनि पद बान जिनहिं मुनि योगी ध्यावें॥
माधव! मोकूँ मारिकें, देहिँ दंड दानव-दलन।
पुनि न करूँ अपराध अस, शिक्षा पावें अपर जन॥

यदुनन्दन हँसि कहें—जरा भय मत कछु खाओ।
मम इच्छातैं उठो भयो सुरलोकनि जाओ॥
विनती बहु विधि करी दिव्य तनु व्याधा धार्‌यो।
चढ़िकें दिव्य बिमान बन्दि पद स्वरग सिधार्‌यो॥
इत दारुक नहिं लखे प्रभु, खोजत खोजत चलि दयो।
चरन-चिन्ह पहिचानिकें, कछु कछु आशान्वित भयो॥

चरन सहारे आइ लखे पीपर तर यदुबर।
रथतें उतर्‌यो तुरत पर्‌यो चरननिमें आतुर॥
रोय रोय यों कहैं—नाथ! सूनो तुम बिनु जग।
भई नष्ट मम दृष्टि घिर्‌यो तम नहिं सूझत मग॥
इत रोवत सारथि सतत, उत गरुड़ध्वज रथ तुरत।
उड़्यो गगन घोड़नि लिये, लीन भयो आयुध सहित॥

रथ आयुध जब गये कहें तब हरि दारुकतें।
सूत! द्वारका जाउ बृत यह कहो सबनितें॥
मेरी त्यागी पुरी डुबोवै जलनिधि अबई।
इन्द्रप्रस्थकूँ जाउ संग अरजुनके सबई॥
सदा भागवत धर्म तुम, करि पालन निपेरच्छ बनि।
जग प्रपञ्च माया रचित, समुझि असत मानों सबनि॥

हरि आयसु सिर धारि चल्यो द्वारावति दारुक।
इत, अज शिव,सुर,शक्र श्यामढिँग आये उत्सुक॥
परमधाम प्रभु गमन निहारन इच्छा मनमहँ।
नयन कमल हरि मूँद बिराजे सुख आसनमहँ॥
अंतरहित निज तनु कर्‌यो, गमने श्याम स्वधाम जब।
धर्म, धैर्य, धी कीर्ति, श्री, सत्य आदि सँग गये सब॥

अज हू गति नहिं लखी भये कब हरि अन्तरहित ।
ज्यों घनतें घनमाँहिँ न बिद्युत दीखत प्रबिशत ॥
सब सुर निज निज लोक गये प्रभुके गुन गावत ।
यों करि क्रीड़ा कृष्ण करुन अति दृश्य दिखावत ॥
द्विजसुत, गुरुसुत, मातुसुत, मृतक जिवाये परीक्षित ।
नहीं प्रकट चिर तनु रख्यो, योगिनिके उपदेश हित ॥

प्रभुलीला संबरन करी दारुक इत आयौ ।
पहुँचि द्वारका सकल यथावत वृत्त सुनायो ॥
सुनि प्रभास सब लोग बिकल ह्वै दौरे आये ।
रोहित अरु बसुदेव देवकी प्राण गँवाये ॥
हरि, बल अरु बसुदेव सब, यदुबंशिनिकी कुलवती ।
निज निज पति हिय लाइकें, भईं नारि सबई सती ॥

सती भईं सब नारि निरखि अरजुन अति रोये ।
सम्बन्धी प्रिय सुहृद सखा सरबसु हरि खोये ॥
करिकें सबके श्राद्ध नारि बालक सँग लीये ।
इन्द्रप्रस्थ मग चले पराजित चोरनि कीये ॥
धरमराज प्रभु-गमन सुनि, नृपति बज्र ब्रजमें करे ।
हथिनापुर नृप परीक्षित, करे हिमालय में गरे ॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताहमें यदुबंश विनाश भगवत्स्वधाम गमन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त



अथ त्रयोदशोऽध्यायः

[१३]

शौनक पूछें—सूत ! भये को कलिमें भूपति ।
सूत कहें—मुनिराज ! न कलिमें कोई नरपति ॥
सहस पाँच या सात और राजा कछु क्रमतें ।
फिरि कुलीन नहिँ भूप रहें सब आवृत तमतें ॥
जरासन्धके बंशमें, शत्रुञ्जय राजा भयो ।
जाहि पुरञ्जय हू कहें, शुनक सचिव ताको कह्यो ॥

शुनक स्वामि निज मारि कर्‍यो प्रद्योत पुत्र नृप ।
ताको पालक पुत्र भयो पुनि सो मगधाधिप ॥
तासु बिशाखायूप पुत्र राजक पुनि नरपति ।
राजकके बिख्यात नन्दिबर्धन सुत भूपति ॥
पाँच भये प्रद्योतके, बंशज नृप अवन्तीश ये ।
भये नृपति गए सब बरस, एक शतक अड़तीस ये ॥

तदनन्तर शिशुनाग भये नृप काकवर्ण सुत ।
क्षेमधर्म सुत तासु तासु क्षेत्रज्ञ प्रभायुत ॥
ताके सुत बिधिसार बिम्बसारहु कहलावें ।
ताके पुत्र अजात-शत्रु पितु तक भय खावें ॥
जिनिने कौशल नृपतितें, समर राजहित अति कर्‍यो ।
भयो ब्याह कौशल सुता,—तैं वातैं दर्भक भयो ॥

दर्भकके सुत अजय नन्दिवर्धन सुत ताके।
महानन्दि तिनि भयो शुद्ध नहिं सुत पुनि ग्वाके ॥
है अन्तिम शिशुनाग-बंशको महानन्दि नृप।
वरष तीन सौ साठ राज्य कीयो इनि सब नृप ॥
शूद्रातैं उतपन्न इक, महानन्दिको सुत बली।
महापद्म धनको अधिप, नन्द परम भूपति छली ॥

महापद्म नृप नंद क्षत्र कुलको संहारक।
शूरबीर अति बली सकल पृथिवीको पालक ॥
भये तासु सुत आठ कहाये नवनंदहु सब।
अति ब्यभिचारी वृषल, बिप्र प्रकट्यो क्रोधी तब ॥
परम कुटिल कौटिल्य मुनि-को आदर तिनि नहिँ कियो।
युक्ति सहित तिनि नंदको, नाश राज्य कुल करि दियो ॥

शकटारक निज नंद सचिव बन्दी करि राख्यो।
कर्‌यो मुक्त सुनि उक्ति हास्य कारन जब भाख्यो ॥
सचिव बैर मन राखि बिप्र चाणक्य बुलायौ।
युक्ति सहित अपमान नंदतैं कुपति करायौ ॥
चन्द्रगुप्त निज पक्षमें, करि भीषन षडयन्त्र द्विज।
मरवाये नवनंद हू, करी प्रतिज्ञा पूर्ण निज ॥

कूटनीति निज करी यवन राजा बुलवाये।
युक्ति सहित मरवाइ हराये कछुक भगाये ॥
कुटिल बिप्र-चाणक्य जथारथ नृप अधिनायक।
चन्द्रगुप्त नृप प्रथम मौर्य-कुलके संस्थापक ॥
चन्द्रगुप्त द्विज कृपातैं, विश्व विदित नृप ह्वै गये।
द्वितिय मौर्य सम्राट नृप, वारिसार तिनि सुत भये ॥

चारिसार या बिन्दुसार नृप भद्रसार वर।
चन्द्रगुप्त-सुत इनि नामनितैं भयो उजागर॥
शत्रुसँहाती विदित पितासम देश विदेशनि।
रहें विदेशी दूत सभामें भूप असंख्यनि॥
तिनिके पुत्र अशोक नृप, भये यशस्वी जग विदित।
मानें नृप आज्ञा सकल, नित्य अहिंसामें निरत॥

शिलालेख खुदवाइ जीव हिंसा हटवाई।
भिक्षु धर्म स्वीकारि दया सबपै दरसाई॥
विप्र, भिक्षु सम्मान दान सबकूँ ही देवें।
सदाचार सम्पन्न भिक्षु ज्ञानिनिकूँ सेवें॥
तिनिको सुत सुयशा भयो, सुयशा सुत संगत अजय।
शालिसूक संगत तनय, तासु सोमशर्मा तनय॥

शतधन्वा सुत भयो सोमशर्माको नामी।
भये बृहद्रथ तासु तनय अति सरल अकामी॥
अंतिम राजा भये मौर्यकुलके ये नरपति।
सेनापति छल कर्‌यो भूपकी कीन्हीं दुरगति॥
पुष्यमित्र सेना अधिप, राज्य लालची अति भयो।
करिकें बध भूपालको, स्वयं भूप खल बनि गयो॥

अग्निमित्र सुत तासु सुजेष्ठ हु ताको सुत नृप।
भये फेरि बसुमित्र भद्रकहु पुनि पुलिंद नृप॥
सुत पुलिंदके घोष घोषके बज्रमित्र सुत।
भये भागवत तासु देवभूती तिनि श्रीयुत॥
देवभूतिकूँ मारिकें, वासुदेव भूपति भयो।
तासु पुत्र भूमित्र तिनि, नारायण नृप ह्वै गयो॥

पुत्र सुशर्मा तासु चार ये कण्व बंश नृप।
फेरि अन्ध बलि बन्यो सुशर्मा मारि महीधिप॥
भ्राता बलिको कृष्ण भयो नृप अतिशय बलयुत।
तासु पुत्र श्रीशान्तकर्ण तिनि पौर्णमास सुत॥
उन्निस भूपनि अन्तमें, भयो गोमती पुत्र नृप।
भयो सलोमधि नवम पुनि, तीस अन्ध्रबंशी अधिप॥

भये सात आभीर कुशन बंशी कहलाये।
करत दिग्बिजय यहाँ देश देशनिकूँ आये॥
इनमें नृप वाभेष्क कनिष्कहु भयो बीर बर।
नृप बासिष्क हुबिष्क बासुदेवहु सुयशस्कर॥
फेरि भये नृप गर्दभी, गुप्तबंशके नामतें।
अति प्रसिद्ध भूपति भये, प्रजा हितैषी कामतें॥

गुप्त घटोत्कच चन्द्रगुप्त ये भूपति अनुपम।
नृप समुद्र पुनि चन्द्रगुप्त दूसर ये पंचम॥
गुप्त कुमार नृपाल भये इस्कंद सातवें।
पुनि कुमार बुध भानु आठवें नमवें दशवें॥
फेरि गर्दभी वंश नहिँ, रह्यो कंक भूपति भये।
राजवंशके पुत्रमिलि, सब एकत्रित ह्वै गये॥

कंकं करिकैं कुमर राज सब भये भूमिपति।
ये सब सोलह बंश भये राजा शुभ मति अति॥
राजपूत सब सूर्यचन्द्रबंशी मिलि आये।
देशबिदेशी भेदभाव तजि छात्र कहाये॥
कंक्व कुमरने एक करि, यवननितें रच्छा करी।
यों बर्णाश्रम धर्मकी, कछु भावी बिपदा हरी॥

यवननि कर्‌यो प्रवेश नष्ट मठ मन्दिर कीये।
लूट्यो अगनित द्रव्य बिधरमी कछु करि लीये॥
तुरक गुलामनि सौंपि गयो अपनी रजधानी।
मर्‌यो जाय-फिरि बने गुलामहु भूपति मानी॥
यवननिके कछु बंश पुनि, बने आततायी नृपति।
अति ई निरदय दस्यु सम, अन्यायी अति क्रूर मति॥

होंनी ह्वैकें रही यवन भारत चढ़ि आये।
देवालय करि नष्ट लूट धन देश सिधाये॥
पुनि यवननि अधिकार कर्‌यो कुल आठ भये नृप।
फिरि क्रमतें बछु तुरक भये जब छीन भयो तप॥
फेरि फिरंगी नृप भये, पश्चिम दिशितें आइकें।
बनियाँते राजा भये, यवननि आर्य लड़ाइकें॥

ये दश भये गुरुण्ड फिरंगी नृप ब्योपारी।
छल करि कीयो राज सबनिकी बुद्धि बिगारी॥
होवें ग्यारह मौन चार किलकिलके नृप पुनि।
तेरह बाह्लिक होहिँ छात्र द्वै आन्ध्र सात पुनि॥
मगध पुरञ्जय क्रूर नृप, यदु पुलिन्द अरु मद्रमें।
क्षत्रिय, द्विज अरु वैश्यकूँ, सबनि मिलावै शूद्रमें॥

फिरि सुराष्ट्र, आभीर शूर, अर्बुदके द्विजगन।
म्लेच्छ सरिस बनि जायँ ब्रात्य ह्वै जावें सब जन॥
म्लेच्छ ब्रात्य अरु शूद्र सिन्धु कश्मीर पंचनद।
इनि देशनि बनि नृपति देहिँ म्लेच्छनिकूँ सब पद॥
खण्ड खण्ड बनि देशके, पृथक नृपति बनि जायँगे।
द्विजद्रोही, लोभी परम, प्रजनि क्लेश पहुँचायँगे॥

नाममात्रके नृपति द्रव्य हित सबकूँ मारें।
पर-धन दारा हरें धेनु द्विज शिशुनि सँहारें॥
क्रियारहित अल्पायु हीनवल बिषयी कामी।
हेंहैं कलियुगी भूप प्रपञ्ची परतियगामी॥
कलि प्रभाव बढ़ि जायगो, सद्गुन सबहिँ बिलायँगे।
धर्म, शौच, बल, आयु, सत—रहित पुरुष बनि जायँगे॥

कलिमें धन ई मुख्य धनी ही पंडित-मानी।
बली करै सो न्याय शूर-रति सो ई ज्ञानी॥
बेष शेष रहि जाय छली सब आश्रम धारी।
जातें मन मिलि जाइ वही नारी अति प्यारी॥
पंडित जे बकबक करें, रँगे बस्त्र स्वामी बनें।
संसकारतें रहित नर, निरदय जीवनिकूँ हनें॥

जो भरि लेवैं पेट कुशल समरथ कहलावें।
धरम करें यश हेतु विज्ञ जे बात बनावैं॥
वर्णाश्रम कछु रहै न मानै सकल समाजा।
जो होवै अति बली वही बनि जावै राजा॥
लोभी लम्पट क्रूरमति, धन दारा सब हरिङ्गे।
सबहिँ दुखित ह्वै भागिकें, बास बननिमहँ करिङ्गे॥

कन्द, मूल, मधु, मांस खाइ निरबाह करिङ्गे।
अनावृष्टि दुष्काल आदितैं बहुत मरिङ्गे॥
आधिव्याधि बहु होहिं चलै अति करकश वायू।
बरष बीस या तीस होहि कलिमें परमायू॥
धरम बरन आश्रम मिटैं, दुरगुन अति बढ़ि जायँगे।
सबहिँ गुननितें रहित नर, पशुवत समय बितायँगे॥

अति अधर्म जब बढ़ै कल्कि प्रकटें संभलमहँ।
विष्णुयशा द्विज गेह सिद्धि अणिमादिक सँगमहँ॥
लीयें कर करवाल अश्व चढ़ि दुष्टनि मारैं।
सब पापिनिकूँ हनैं सकल शत्रुनि संहारैं॥
दिव्य गन्ध हरि देहकी—तैं सबकी हो विमल मति।
बढ़ै धरम अरधम घटै, सतयुग पुनि शुचि होइ अति॥

सूर्य चन्दके भये होहिँ, हैं भूप बताये।
तब ई तैं कलि लग्यो श्याम जब धाम सिधाये॥
ऐसे ही सब वंश होहिँ युग युग में मुनिवर।
समय पाइकें नसैं कालकी क्रीड़ा कटुतर॥
मैं मेरी कहि नृप गये, नहिँ वसुधा तिनिकी भई।
मिल्यो धूरिमें सब विभव, कथा शेष ई रहि गई॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताहमें कलियुगी नृपतिगण वर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

[१४]

नृपनि विजयकूँ ब्यग्र निरखि वसुधा हँसि जावै ।
करि करि उनपै ब्यंग मरमयुत वचन सुनावै ॥
नृपति खिलौना-काल मोइ का ये जीतिङ्गे ।
बीते अगनित नृपति कालि येहू बीतिङ्गे ॥
कहो, कहा तिनिने लह्यो, कीयो जिनिने मोइ वश ।
जाने कहँ मरि ते गये, हौं तब जैसी अबहुँ तस ॥

बसुधा–गीत

बसुधा भूपनिकूँ समुझावै ।
अरे, ब्यरथ च्यौं कटत मरत हो, हाथ कछू नहिं आवै ॥१॥ वसुधा०
कितने भये होहिँगे अब हैं, मोइ कौन लै जावै ।
विजय करत रथ हय गज लैकें, को विजयी कहलावै ॥२॥ बसुधा०
चार दिवस अभिमान बढ़ायौ काल बली पुनि आवै ।
मैं ज्यों की त्यों ई रहि जाऊँ, नृप निज तनु तजि जावै ॥३॥ वसुधा०
पृथु, पुरूरबा, गाधि, नहुष नृप, को इनिको पद पावै ।
सगर, राम, गय, नल, ययाति, रघु, केवल अब सुधि आवै ॥४॥ वसुधा०
जब इन सबकी नहीं भई हौं, तो तू च्यौं ललचावै ।
मूरख मोमें ममता तजिकें च्यौं हरिपद नहिँ ध्यावै ॥५॥ वसुधा०

छप्पय—ऐसे भूपति भये नई जे सृष्टि बनावें।
सूरजपथकूँ रोकि रैनिके तमहिँ भगावें॥
रथतैं करैं समुद्र भूमिपै बान चलावें।
सप्तद्वीप नवखंड विजय करि भूप कहावें॥
किन्तु कालके गालमें, तेऊ घुसिकें नसि गये।
करि जगतैं वैराग्य हरि—शरन गये ते तरि गये॥

पूछैं शौनक—सूत! युक्ति अब सरल बतावैं।
जातैं कलिके दोष दूरि सबरे ह्वै जावैं॥
सूत कहें—युग चारि धरम पद चारि बताये।
सत्य, दया, तप, दान, प्रथम युग सकल सुहाये।
घटत घटत घटि जाय गुन, कलिमें होवै कलह नित।
काम, क्रोध, मद, लोभमहँ, सब प्राननिको फँसै चित॥

जहँ देखो तहँ ढोंग विषयमें रत सब प्रानी।
राजा क्रोधी, क्रूर कुटिल, कामी, अज्ञानी॥
सती न होवैं नारि कामिनी कुटला घर घर।
काम बासना हेतु करैं साहस अति दुष्कर॥
पुरुष काम-लोलुप अधिक, कुलटनिकी सेवा करें।
यहाँ दुखी नित शोकतें, पुनि मरि नरकनिमें परें॥

कलियुगमें पाखण्ड पुजैं पथ पुण्य न सूझै।
हाय! अभागी पुरुष प्रेमतैं प्रभुहिँ न पूजैं॥
जिनके अघहर नाम नासि सब दोषनि देवैं।
कलियुगके अति अधम पुरुष तिनिकूँ नहिँ लेवैं॥
मरन समय ह्वैकें विवश, राम, कृष्ण, गोविँद कहैं।
तो फिरि पाप पहाड़ हू, नाम लेत छिनमें ढहैं॥

नामी नाम प्रभाव हियेमें ततछिन आवैं।
सकल पाप सन्ताप श्यामके नाम नसावैं ॥
भूपतितैं गुरुदेव कहें—नृप! मत घबराओ।
मरन समय हरि नाम लेउ निश्चय तरि जाओ ॥
अवगुन ही अवगुन भरे, परि जा कलिमें एक गुन।
ध्यान, यज्ञ, पूजानिके, मिलें सकल फल नाम सुन ॥

शौनक पूछें—सूत! प्रलयको मरम बताओ।
प्रलयनिके कै भेद सरलतातैं समुझाओ ॥
कहें सूत—मुनि! प्रलय चारि विधि वेद बतावैं।
नैमित्तिक अज दिवस निशामहँ सो-सो जावैं ॥
पूर्ण होहि अज आयु जब, होहि लीन प्रकृती सबहिँ।
भुवन चतुरदश प्रकृतिमें, मिलैं प्रलय प्राकृत तबहिँ ॥

आत्यंतिक इक प्रलय मोक्षहू जाकूँ भाखैं।
ज्ञानी निज पर भेद आतमामें नहिं राखैं ॥
होहि ज्ञान परिपूर्ण द्वैत सबरो नशि जावै।
जगको पुनि अस्तित्व रहै नहिं ब्रह्म लखावै ॥
छिन छिन पल पलमें सकल, जग पदार्थ बदलत रहत।
जल प्रवाह लौ दीपसम, नित्य प्रलय ताकूँ कहत ॥

इतनी कथा सुनाइ कहें शुक नृपतैं मुनिवर।
कह्यो भागवत धर्म, मोक्षप्रद नृपवर! सुखकर ॥
'अहि काटै मरि जाउँ' भूप! जा भयकूँ त्यागौ।
मोहनींदकूँ त्यागि ज्ञान बेलामें जागौ ॥
अमर अजनमा आतमा, अजर एकरस नित रहत।
देह देहतें प्रकट ह्वै, मरत जियत जन्मत रहत ॥

माया मन रचि देह, करम, गुन मनहि बनावै।
मायारूप उपाधि जीव जगमाँहिँ भ्रमावै॥
तैल, पात्र अरु वर्ति अग्नि मिलि दीप कहावै।
इनितैं ह्वैकें भिन्न सर्वगत पुनि कहलावै॥
उतपति थिति अरु प्रलय सब, तीनि गुननिको काज है।
रहै देह तब तक जगत, मोह नसें नसि जात है॥

ज्यों दीपक नसि जाइ तेजको नाश न होवै।
त्यों सब जग नसि जाइ आत्मा सुखतैं सोवै॥
नहीं व्यक्त अव्यक्त सकल आधार निरन्तर।
आत्मा अखिल अनन्त अनामय अच्युत निर्जर॥
अन्वय अरु व्यतिरेकतैं, द्दष्टा द्दश्य विचारतैं।
वासुदेव चिन्तन करो, हटो जगत् व्यवहार तैं॥

आत्मचिन्तना करो अहं सतचित कहलाऊँ।
परमधाम हौं ब्रह्म परमपद ब्रह्म कहाऊँ॥
परमात्मामें जबहिं आतमाकूँ तुम देखो।
फिरि तक्षक, जग, देह सकल आत्मामें पेखो॥
सात दिवसमें यथामति, भव भयहर सुखकर सुकर।
कही विष्णुगाथा कछुक, कहूँ कहा अब भूपवर॥

इति श्री भागवत चरितके सप्ताहमें वसुधागीत ब्रह्मोपदेश नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त।

(मासिक पारायण—उन्तीसवें दिनका विश्राम)

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

(१५)

श्रीशुकको सुनि प्रश्न नयन नृपके भरि आये ।
ह्वैके अति ई दीन चरन-कमलनि लिपटाये ॥
पुनि पुनि करैं प्रनाम न निकसै मुखतैं बानी ।
पुनि कछु धरिकें धीर कहें नृप सरल अमानी ॥
प्रभो ! कृतारथ हौं भयो, सुनिकें श्याम चरित्रकूँ ।
जनम मरनको भय भग्यो, थापूँ हरिमें चित्तकूँ ॥

तव मुख निस्सृत श्यामचरित अति मधुमय लाग्यो ।
श्रवन पुटनि करि पान शोक अरु भय मम भाग्यो ॥
पाइ ब्रह्म निरबान भयो हौं देव ! कृतारथ ।
भयो दूर अज्ञान लह्यो अब ज्ञान यथारथ ॥
आयसु देवैं दयानिधि, करूँ मौन धारन अबहिं ।
सुनि शुक अति हरषित भये, गिरे सुमन नभतैं तबहिं ॥

शुककी पूजा करी सविधि नृप विह्वल ह्वैकें ।
मुनिनि संग शुक गये नृपतिकूँ आशिष दैकें ॥
बैठे कुशा बिछाय विचारें तच्छक आवै ।
आत्मा तो है नित्य देहकूँ कोई खावै ॥
इत शृङ्गी ऋषि शापतें, सप नृपहिं डसिबे चल्यो ।
विषहारी कश्यप गुनी, तच्छककूँ मगमें मिल्यो ॥

तत्तक पूछे—आपु पधारे द्विजवर! कितकूँ।
तत्तक नृपकूँ डसै उतारें ताके विषकूँ॥
बोल्यो तत्तक—आपु मंत्रबल मोइ दिखावैं।
काटि भस्म वट करूँ मंत्रतैं आपु जिवावैं॥
स्वीकार्‌यो जब बिप्रने, भस्म गरलतें बट कर्‌यो।
कर्‌यो बिप्रने मंत्रतें, फिरि ज्यों को त्यों तरु हर्‌यो॥

निरख्यो मंत्र प्रभाव अधिक आदर अहिं कीन्हों।
विविध भाँति समुझाइ बहुत धन द्विजकूँ दीन्हों॥
धन लै द्विज फिरि गयो नृपतिढिँग तत्तक आयौ।
तज्यो यथारथ रूप विप्रको वेष बनायौ॥
फलमें कीड़ा बनि घुस्यो, डस्यो भूपकूँ भूलमें।
भयो भस्म तनु भूपको, मिली धूरि पुनि धूरिमें॥

जगमें हाहाकार मच्यो सब अश्रु बहावैं।
भये चकित सुरवृंद सुमन नभतैं बरसावैं॥
साधु साधु सब कहें धन्य कुरुकुलके भूषन।
भये मुक्त सुनि कथा मिट्यो द्विजकृत-अघदूषन॥
जनमेजय नृपके तनय, कुपित नाग कुलपै भये।
सर्पसत्र करिबे लगे, नष्ट नाग बहु करि दये॥

बिप्र मंत्र जब पढ़ें सर्प चहुँदिशितैं आवैं।
होहिं विवश अति बली कुंडमें गिरि मरि जावैं॥
तत्तक ह्वै भयभीत शरन सुरपतिकी लीन्हीं।
च्यौं नहिँ तत्तक मरै नृपति जिज्ञासा कीन्हीं॥
रत्ता सुरपति करतु है, जब बिप्रनि उत्तर दियो।
इन्द्र सहित स्वाहा करो, सुनत स्रुवा द्विज कर लियो॥

लागे पढ़िबे मंत्र इन्द्र सिंहासन हाल्यो।
सुरगुरु मखमहँ आइ नृपहिँ समुझाइ निबाइयो॥
मानी मुनिकी सीख सर्पमख नृपने त्याग्यौ।
दियो द्विजनि उपदेश हिये भूपति के लाग्यौ॥
हरिमाया अतिशय प्रबल, पावैं पार अनन्य हैं।
वैरभाव तजि हरिभजहिँ, ते नर जगमें धन्य हैं॥

इति श्रीभागवत चरित के सप्ताहमें परीक्षित् निर्वाण नामक
पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।

अथ षोडशोऽध्यायः

[१६]

शौनक पूछें—सूत ! वेदके कै आचारज।
कैसे करयो विभाग पैल आदिक मुनि आरज ॥
सूत कहें—अवतार व्यास धरि भूपै आये।
एक वेदके चारि करे मुनि चारि बुलाये ॥
दयौ वेद ऋक पैलकूँ, वैशम्पायन यजु दयौ।
जैमिनि मुनिकूँ सामश्रुति, मुनि सुमन्तु चौथो लह्यौ ॥

पाइ संहिता सकल मुनिनिं पुनि शिष्य बनाये।
करि करि शाखा पृथक् सबनिकूँ मन्त्र पढ़ाये ॥
शिष्यनिके हू शिष्य भये विस्तार भयो अति।
शाखा सबकी पृथक् भईं तिनकी तिनिमें रति ॥
वैशम्पायन शिष्य इक, याज्ञवल्क्य अति तेजयुत।
यजुरवेदमहँ अति निपुण, देवरातको सौम्यसुत ॥

अपर शिष्य इक दिवस करै व्रत गुरुहित दुष्कर।
याज्ञवल्क्यने कह्यो—करै का यह व्रत गुरुवर ॥
हौं तवहित व्रत करूँ अल्प वीरज यह बालक।
भये कुपित गुरुदेव, कहें—तू द्विजकुलघालक ॥
मेरी विद्या त्यागि दै, तू अब मेरौ शिष्य नहि।
उगलि दई विद्या सकल, कठिन बचन नहिं गये सहि ॥

उगले सगरे मन्त्र दिव्य दीमक बनि जीये।
तित्तिर बटु बनि गये लोभबश सब चुगि लीये॥
तैत्तिरीय सो भई वेदकी शाखा सुन्दर।
याज्ञवल्क्य ने करे तुष्ट तप करिकैं दिनकर॥
अश्वरूप धरि सूर्यने, शिक्षा द्विजबरकूँ दई।
वाजसनेयी पृथक् यह, यजुरवेद शाखा भई॥

ऐसे ही पुनि सामवेदकी शाखा अगनित।
बहु अथर्वके भये महामुनि चित्त-समाहित॥
पुनि दश आठ पुरान बनाये अतिही सुखकर।
दश लक्षणतैं युक्त जगत-हितकारक मुनिवर॥
ब्राह्म, पाद्म, बैष्णव महा, शैव भागवत नारदी।
मार्कण्डेय पुरान पुनि, अग्नि भविष्य सुशारदी॥

ब्रह्मविवर्त पुरान लैङ्ग वाराह पुरातन।
पुनि इस्कंध पुरान हु बामन कूर्म सनातन॥
मत्स्य, गरुड़, ब्रह्माण्ड अठारह सब मिलि होवैं।
पढ़ैं सुनैं नर नारि सहस जनमनि अघ धोवैं॥
वेद पुराननि भेदकूँ, नाम मात्र हू जे रटैं।
पढ़ैं प्रेमतैं नियमयुत, तिनिके सब पातक कटैं॥

शौनक बोले—सूत ! होहु चिरजीवी भाई।
भटकि रहे जगमाँहिँ गैल अति सरल दिखाई॥
मार्कण्डेय चिरायु तात ! कैसें कहलावें।
कल्प प्रलय नहिँ भई प्रलय जल कस तैरावें॥
सूत कहें—शौनक ! सुनहु, मायामें संभव सकल।
मायाकी ही प्रलयमें, भये महामुनि अति विकल॥

मुनि मृकण्डुके तनय पुष्पभद्रा तट तपहित।
रहैं करैं व्रत सदा लगावैं हरिचरननि चित॥
छै मन्वन्तर करी तपस्या मन न डिगायौ।
देखि घोर तप इन्द्र हृदयमें भय अति छायौ॥
मलयानिल अरु अपसरा, काम, लोभ, मद, मुनि, निकट।
भेजे मुनि आश्रम जहाँ, करहिँ महामुनि तप विकट॥

सब मिलि कीयो यत्न मोह मुनि मन नहिं आयौ।
काम सेन सँग लौटि इन्द्रकूँ वृत्त सुनायौ॥
भयौ इन्द्र निस्तेज मनहिं मन मुनिहिँ सरावै।
ब्रह्म तेजतैं डरै निकट मुनिके नहिँ आवै।
मुनि तपतैं सन्तुष्ट ह्वै, नर नारायन आइकें।
दयो दरश जब स्वयं-मुनि, विनय करें सिर नाइकें॥

मार्कण्डेय-स्तुति

जगके प्रभु! तुम एक सहारे।
माता पिता सगे सम्बन्धी, लगें न तुम बिनु प्यारे॥१॥ जगके०
जगहित नरनारायन बनिकें, कठिन नियम व्रत धारे।
अज, सुर, नर, हर थर थर काँपैं, भ्रुकुटि विलास तिहारे॥२॥ जगके०
गुनकेजनक, सर्वगत, सब थल, विविध रूप तुम धारे।
सत्वमूर्ति हे सुखमय स्वामिन, पकरे चरन तुम्हारे॥३॥ जगके०
माया मोहित जीव न जानें, जानें श्रद्धावारे।
बेद भेद तुमरौ नहिँ पावै, नेति नेति कहि हारे॥४॥ जगके०
जानि अकिञ्चन दरशन दीयो, सब अघ कटे हमारे।
चरन कमल प्रभु पुनि पुनि बन्दत, दीन दरशतें तारे॥५॥ जगके०

मुनिकी इस्तुति सुनी कहन नारायन लागे ।
सिद्ध भये मुनिराज तिहारे सब भय भागे ॥
माँगो जो बरदान देहिँ हम जो तुम चाओ ।
हमकूँ कछु न अदेय न मनमें मुनि सकुचाओ ॥
भये दरश सब वर मिले, परसे पद पुनि का कहूँ ।
तुमरी माया मोहनी, कमलनयन ! देखन चहूँ ॥

एवमस्तु कहि भये तिरोहित नर नारायन ।
मुनि प्रसन्न अति भये कर्यो व्रतको पारायन ॥
अति उत्कंठित भये निहारूँ माया अब ई ।
बरषा भई प्रचण्ड चराचर डूबे सब ई ॥
सुत मृकण्डुके ही बचे, बहत प्रलय जलमें सतत ।
सगरो जग जलयय भयो, भूख प्यासतैं मुनि दुखित ॥

निरख्यो तब बट बृच्छ फिरत जब इत उत भटकत ॥
मरकत मनिके सरिस सुघर शिशु तापै विहरत ॥
परे पत्रपुट श्याम चरनकूँ मुखतैं चूसत ।
चितवत ह्वै अति चकित प्रभातैं सब अँग विकसत ॥
करि दरसन संताप श्रम, शोक मोह सब नसि गये ।
श्याम सलौने सुघर शिशु, मुनिके मनमें बसि गये ॥

ज्यों ही सम्मुख गये श्वाँस तब शिशुने लीन्हीं ।
घुसे नासिका द्वार सृष्टि भीतर सब चीन्हीं ॥
भू, नभ, ग्रह, गिरि, द्वीप, असुर-सुर सबहिं निहारे
मुनि अति विस्मित भये श्वाँस तजि फेरि निकारे ॥
देख्यो पुनि वट प्रलय जल, शिशु मनहर क्रीड़ा करत ।
दौरे आलिंगन निमित, लीन भयो बट शिशु तुरत ॥

प्रलय-सलिल नहिं रह्यो पूर्ववत जगत लखायौ।
माया दरशन समुझि श्याम चरननि सिर नायौ॥
अक्षयवट पुट पत्र करें क्रीड़ा शिशुके सम।
उदरमाँहिं सब दृश्य होहि मायातैं जग भ्रम॥
माया लखी महेशकी, भये फेरि मुनि भ्रम रहित।
तब वृष चढ़ि शङ्कर तहाँ, आये पारवती सहित॥

शिवा कहें—"सरबेश! भक्त मुनिकूँ वर देवैं।
शिव बोले—"ये भक्त मोक्ष तककूँ नहिं लेवैं॥
हरि हिय धारे इननि फेरि का इनिकूँ दुज्ञो।
साधु समागम लोभ बात कछु सुखद करुज्ञो॥
मुनि ध्यावैं सरबेशकूँ, इष्ट नहीं जब हिय लखे।
खोलि नयन सम्मुख तबहिं, शिवा सहित शङ्कर दिखे॥

सोरठा—सहसा लखे महेश, भौंचक्के-से मुनि भये।
सानुकूल सरबेश, निरखि लगे इस्तुति करन॥

शिवस्तुति

करें हर! कैसे विनय तिहारी।
सुख स्वरूप सर्वज्ञ सर्वगत, सब जगके संहारी॥१॥ करें०
ज्ञान रूप तुम घट घट बासी, सीमित बुद्धि हमारी।
दया दृष्टितें हरो अविद्या, हे शङ्कर त्रिपुरारी॥२॥ करें०
निरगुन शान्त त्रिगुनमय स्वामी, हो तुम लीलाधारी।
पालो रचो फेरि संहारो बनि अज, रुद्र, मुरारी॥३॥ करें०
पुनि पुनि चरन सरोरुह बन्दौं माँ गिरिराजकुमारी।
जननी जनक स्वयं शिशु सम्मुख, आये जग सुखकारी॥४॥ करें०

छप्पय—हर प्रसन्न अति भये भक्ति वर मुनिकूँ दीयौ ।
बाढ़्यो मुनि मन मोद यथोचित पूजन कीयौ ॥
महिमा शिवने अधिक भक्त संतनिकी गाई ।
शिव मुखतैं सुनि विनय लाज मुनिकूँ अति आई ॥
पूजित ह्वैकें शिवा सँग, पुनि शिव अन्तरहित भये ।
बिना प्रलय ही ध्यानमें, मुनि माया दरशन किये ॥

शौनक पूछैं—सूत ! पाञ्चरात्रादि बन्दना ।
अङ्ग उपाङ्गनि सहित करें कस कृष्ण अर्चना ॥
क्रियायोगको फेरि हमें विस्तार बतावें ।
सूत कहैं—मुनि कर्मकाण्डको पार न पावें ॥
हरिमय जगकूँ जानिकें, करैं कल्पना अङ्गमें ।
तत्तत भावनिके सहित, पूजै सबकूँ सङ्गमें ॥

अण्डमाँहिँ जो रहैं वही ब्रह्माण्ड बनावैं ।
रचि पचि जगकूँ फेरि स्वयं तामें घुसि जावैं ॥
द्वापर युगमें क्रियायोग बहु विधितैं गायौ ।
केवल कलिमें कृष्णनाम अति सुगम बतायौ ॥
करें ध्यान भगवान्को, जे नामनिकूँ गायँगे ।
ते मख, पूजा पाठको, सबहिं सहज फल पायँगे ॥

शौनक पूछैं—सूत ! कहे द्वादश रवि तुमने ।
सबके सप्तक कहो सुने पहिले हू हमने ॥
कहैं सूत—प्रतिमास रहें रवि सात सहायक ।
नाग, अप्सरा, यत्त, रात्तस, ऋषि, सुर, गायक ॥
चैत्र मास धाता रहें, माधवमें रवि अर्यमा ।
ज्येष्ठ मित्र नामक तपें, वरुन तपें आषाढ़मा ॥

श्रावनमें रवि इन्द्र भाद्रमें विवश्वान् रवि।
त्वष्टा आश्विन रहें विष्णुकी कातिकमें छवि॥
मार्गशीर्षमें अंशु पौषक भग हैं नामी।
फागुनके परिजन्य माघके पूषा स्वामी॥
सब मासनिके पृथक रवि, पृथक पृथक गन सबनिके।
स्वयं सच्चिदानंद हरि, स्वामी सबई गुणनिके॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताहमें वेद पुराण शाखा मार्कंडेय चरित पूजा रवि-सप्तक नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

[१७]

निज मतिके अनुसार कथा मुनिवर शुभ भाखी।
अन्तरयामी श्याम सकल जीवनिके साखी॥
भई कथा तो पूर्ण विषय-सूची अब भाखूँ।
सब मिलि देहिँ अशीष सदा हियमें हरि राखूँ॥
धर्म, कृष्ण अरु व्यास शुक, सबके पुनि पुनि पग परूँ।
पुण्य भागवत-चरितकी, अनुक्रमिका वरनन करूँ॥

मेरो तुमरो मिलन व्यास नारद सम्बादा।
फेरि भीष्मकी कही कथा जो सबके दादा॥
तिनि परलोक प्रयान द्वारका पुनि प्रभु आये।
भयो परीक्षित जनम राजमें बजे बधाये॥
विदुर और धृतराष्ट्रको, गृह तजि पुनि हरिपुर गमन।
कह्यो कृष्ण निरयान पुनि, पाण्डुसुतनिको हिम निधन॥

विजय परीक्षित् फेरि कर्‌यो कलि जैसे वशमें।
दीयो द्विजने शाप गये नृप गंगा तटमें॥
श्रीशुक भूपति मिलन कर्‌यो ज्यों नृप अभिनन्दन।
पूजा विधिवत करी लगायौ माथे चन्दन॥
अवतारनिके चरित शुभ, सृष्टि कथा संक्षेपमें।
विदुर और ऊद्धव मिलन, कही सृष्टि पुनि शेषमें॥

कश्यप दिति सम्बाद गर्भ ज्यों दितिने धार्यो।
भये असुर जय विजय कुमारनिकूँ ज्यों ताड़्यो॥
हिरनकशिपु हिरनाक्ष जन्म तिनि विजय करी ज्यों।
धरिकें सूकर रूप सुरनि हरि विपति हरी ज्यों॥
हिरन्याक्षकूँ मारिकें, अभय करे सुर मुनि यथा।
यहाँ तलक पूरन भई, प्रथमआहकी शुभ कथा॥

द्वितियआहमें देवहूति करदम सँग ब्याही।
प्रकटे हरि बनि कपिल मातुकूँ सीख सिखाई॥
मनु पुत्रिनिको वंश दक्ष शिव शापा शापी।
सती देहको त्याग दक्ष मार्यो सन्तापी॥
भई पूर्ति ज्यों यज्ञकी, वंश अधर्म बताइकें।
कह्यो चरित ध्रुव विष्णु ज्यों, दरशन दीये आइकें॥

ध्रुव चरित्र करि पूर्ण बेनको चरित बखान्यों।
पुनि पृथुराज चरित्र प्रचेतनि मुनि सम्मान्यों॥
कही पुरञ्जन कथा भूपकूँ शिक्षा दीन्हीं।
पुनि प्रियव्रतको चरित ऋषभ ज्यों लीला कीन्हीं॥
ऋषभ चरित अति ही सुखद, मुनि समास ही तें कह्यो।
यहाँ तलक सप्ताहमें, द्वितीय आह पूरन भयो॥

तृतियआहमें प्रथम भरत जड़ चरित बखान्यो।
कह्यो फेरि भूगोल ध्यानतें मुनिवर जान्यो॥
नरकनिको कछु वृत्त अजामिल चरित बतायौ।
नाम महातम कह्यो विविध विधितें समुझायौ॥
नारदजीकूँ दक्षने, दयो शाप पुनि सो कथा।
विश्वरूप सुर पुरोहित, सुरपति काट्यो सिर यथा॥

पूर्व वृत्रको चरित चरित मरुतनिको भाख्यौ ।
पुनि प्रह्लादचरित्र पिता ज्यों गुरुगृह राख्यौ ॥
दीये ज्यों बहु कष्ट कर्‌यो कीर्तन ज्यों हरिको ।
प्रकटे श्रीनरसिंह उदर फार्‌यो ज्यों अरिको ॥
नारद मुनिनें धर्मसुत, तैं जैसे यह सब कह्यौ ।
धरमराज सम्बाद तक, तृतियअाह पूरन भयौ ॥

अब चतुर्थ में प्रथम ग्राहगज चरित मनोहर ।
सुर विनती पुनि मथन पयोनिधि पान गरल हर ॥
धन्वन्तरि अवतार मोहिनी चरित रँगीलौ ।
देवासुर संग्राम भयो दैत्यनि बल ढीलौ ॥
मिलन मोहिनी शम्भुको, करी विजय बलिने यथा ।
यों बलि छलिवेकी कही, छलिया वटु वामन कथा ॥

कह्यो चरित सुद्युम्न पुत्र मनु चरित कहे तब ।
च्यवन सुकन्या ब्याह नभग नाभाग चरित सब ॥
पुनि इक्ष्वाकु चरित्र सौभरी चरित मनोहर ।
भये त्रिशंकू पुत्र नृपति हरिचंद धरमधर ॥
भये भस्म सुत सगरके, श्रीगङ्गाजी आगमन ।
रघुवंशी भूपनि कथा, ज्यों दशरथ नृप गुरु-शरन ॥

राघवेन्दुकी कथा प्रथम ही बाल-चरित है ।
ब्याह-चरित है द्वितिय तृतिय बनवास-चरित है ॥
सीताहरन चतुर्थ कह्यो संयोग पाँचमों ।
राज तिलक है छटो, कह्यो सिय-त्याग सातमों ॥
अष्टम है उत्तरचरित, नवमेमें महिमा रही ।
यों इनि नौ अध्यायमें, राघवेन्दु लीला कही ॥

निमिको कहिकें वंश कथा दण्डककी भाखी।
चन्द्रवंश पुनि कह्यो उरबशी इल-सुत राखी॥
परशुराम अवतार ऐलको वंश सुनायौ।
नृप ययातिको चरित पुराननिमें जो गायौ॥
पुरु अनु आदि ययाति सुत, वंश कह्यो यदुवंश पुनि।
चतुर्थाह पूरन भयो, पञ्चमाह अब सुनहु मुनि॥

पञ्चमाहमें प्रथम ब्याह वसुदेव बखान्यों।
नभवानीतें कंस देवकी-सुत रिपु जान्यों॥
चिन्ता व्यापी कंस कृष्ण अवतार कह्यो है।
गोकुलमें प्रभु गये तहाँ आनन्द भयो है॥
आइ पूतना विष दयौ, मरी बकीकूँ गति दई।
कही कथा शकटादि तृन, मुक्ति खलनिकी ज्यों भई॥

बिश्वरूप माँ दरश बाललीला मृद्भक्षन।
माखन चोरी ललित बँधे ज्यो नटखट मोहन॥
गोकुल गोपनि सङ्ग त्यागि वृन्दावन आये।
करे खेल बक, वत्स, असुर अघ मारि गिराये॥
ब्रह्माजी मोहित भये, धेनुक कालियकी कथा।
नाग निकाड्यो नाथिकें, दावानल पीयो यथा॥

पुनि प्रलम्बकी मोक्ष वेनुको गीत मनोहर।
वस्त्र चुराये दये कुमारिनिकूँ वर सुखकर॥
द्विज पतिनिनिपै कृपा श्याम गोवरधन धार्यौ।
इन्द्र, सुरभि अरु वरुन सबनि दरशनतें तार्यौ॥
फेरि रास इच्छा भई, बेनु बजाई रसभरी।
ब्रजबनिता धुनि सुनि चलीं, कछु न कानि कुलकी करी॥

कीयो रास विलास भये अन्तरहित गिरिधर।
बिलपीं बनिता बहुत भये पुनि परगट नटवर॥
महारास पुनि भयो सरसता अँग अँग छायी।
यों पुनि पूरन भई रासकी पञ्चाध्यायी॥
शङ्खचूड़ अजगर असुर, केशी व्योमासुर मरन।
फेरि कह्यो अति भावमय, श्वफलक-सुत व्रज आगमन॥

व्रज तजि पुनि बल सङ्ग श्याम मथुराकूँ धाये।
गोपी व्याकुल भयीं अश्रु अति सबनि बहाये॥
श्वफलकसुतपै करी कृपा मरि रजक तर्‌यो है।
कुब्जाकूँ करि सुघर धनुषको भङ्ग कर्‌यो है॥
आये गज अरु मल्ल जे, मरे कंस मामा मर्‌यौ।
नन्द गये व्रजकूँ बिलखि, जननि जनकको दुख हर्‌यौ॥

फिरि गुरुकुलको बास मृतक गुरु-सुत ज्यों लाये।
व्रज उद्धवके हाथ आइ सन्देश पठाये॥
उद्धव देखे दुखी गोप गोपी गौ बछरा।
अस्त व्यस्त सब बस्तु परे टूटे घर छकरा॥
भ्रमरगीत, कुब्जाकृपा, कुन्तीढिँग श्वफलकतनय।
पञ्चमाह पूरन भयो, अब षष्ठाह सुनहु सदय॥

जरासन्ध आक्रमण सेन लै मथुरा घेरी।
पुर तजि भगि रनछोर यवन करवाई ढेरी।
रुक्मिनि सङ्ग विवाह पुत्र प्रद्युम्न भये हैं।
पुनि स्यमन्त आख्यान व्याह हरि सहस किये हैं॥
ज्यों अनिरुद्ध विवाहमें, बल रुक्मीको बध कियो।
फिरि विवाह अनिरुद्धको, बाण-सुताके सँग भयो॥

कृष्ण-बाण संग्राम शम्भु-हरि सङ्ग लड़ाई।
राजा नृगकी कथा कही अति परम सुहाई॥
बलदाऊ ब्रज-गमन पौण्ड्र-बध साम्ब-सगाई।
गृहचर्या अति दिव्य श्याम नारदहिँ दिखाई॥
जरासन्ध बध भीमतें, राजसूयको वृत्त सब।
शाल्व और शिशुपाल बध, कह्यो सुदामा चरित तब॥

कुरुक्षेत्रमें भयो मिलन ब्रजवासिनितें ज्यों।
ललकि मिले घनश्याम पिता माता बल सँग त्यों॥
कृष्णा महिषी बात सरसता छाई सबपै।
जनक, जननि, द्विज तथा कृपा मैथिल भूपतिपै॥
हर, भृगु, अरजुनपै कृपा, करी सबनिको दुख हर्यौ।
गायौ महिषीगीत पुनि, षष्ठआह पूरन कर्यौ॥

सप्तमाहमें शाप दिवायो निज कुल गर्वित।
नारद अरु वसुदेव कह्यो संवाद सुशोभित॥
नवयोगेश्वर ज्ञान कह्यो अवधूत सु-गीता।
उद्धवगीता कह्यो सुनत छूटै भव-भीता॥
हंस-ज्ञान पुनि भक्ति अरु, ध्यान, सिद्धि सबई कहीं।
पुनि हरि कछु बरनन करीं, जो विभूति उनिकी रहीं॥

वर्णाश्रमको धरम विविध प्रश्ननिको उत्तर।
भिक्षुगीत कहि कही सांख्यकी महिमा सुखकर॥
नृपति ऐलको गीत उद्धवहिं शिक्षा दीन्हीं।
पुनि यदुवंश विनाश संवरन लीला कीन्हीं॥
कहि कलियुगके नृपनिकूँ, भूमिगीत हू पुनि कह्यौ।
फेरि ब्रह्म उपदेश शुक—ने नरपतिकूँ ज्यों दयौ॥

त्यागि परीक्षित् देह परमपद पायौ जैसें।
शाखा वेदनि कही पढ़ीं बिप्रनिने कैसें॥
मार्कण्डेय चरित्र कही पूजाविधि उत्तम।
कहि रवि-सप्तक कही विषय-सूची मुनिसत्तम॥
फेरि भागवत सार सब, कह्यो महातम नाम पुनि।
पुण्य भागवत चरितको, पूर्ण भयो सप्ताह मुनि॥

जो न भागवतचरित पूर्ण पढ़िवेको अवसर।
विषय अनुक्रम पढ़ै एक अध्याय पुण्यकर॥
अति समास सप्ताह निकाइयौ सार सार सब।
करैं कण्ठको हार होहिँ नहिँ तिनि बन्धन-भव॥
जो अध्याय विशेषकूँ, सुनहिँ पढ़हिँ गावैं रटैं।
होहिं मनोरथ सकल सब, तिनिके भवबन्धन कटैं॥

इति श्रीभागवत चरितके सप्ताहमें सप्ताह-अनुक्रमणिका नामक
सत्रहवाँ अध्याय समाप्त।

अथ अष्टादशोऽध्यायः

[१८]

जो जो कीये प्रश्न यथामति सकल बखाने ।
सब चरितनिमें सार श्याम शुभ नामहिँ जाने ॥
रपटत ठोकर खात गिरत छींकत जमुहावत ।
'हरये नम' ये शब्द पाप पर्वतनि ढहावत ॥
ज्यों रवि तमकूँ पवन ज्यों, छिन्न भिन्न मेघनि करै ।
त्यों कीर्तन हरि नामको, हियके सब कल्मष हरै ॥

सो बानी है व्यर्थ नाम हरिके नहिँ गावै ।
है वह कथा कलङ्क कृष्ण चरितनि न सुनावै ॥
हैं अति पावन बचन सुयश हरि हीके बोलें ।
ते पद पावन परम पुण्यतीर्थनिमें डोलें ॥
कथा कीर्तन कृष्णको, तुलसी हरिसेवा जहाँ ।
हंस भक्त निरमल परम, नियम सहित निवसहिँ तहाँ ॥

जामें नहिँ हरि नाम भागवत चरित न जामें ।
काक तीर्थ सो निन्द्य न्हायँ कौआ बक तामें ॥
होवै कविता सुघर रसीली गुन प्रसादयुत ।
कृष्णकथातें रहित घृणित नीरस अति निन्दित ॥
नित नव नव नटवर चरित,सुखद सरस अतिशय विमल ।
कहत पढ़त गावत सुनत, होवै विकसित हृद्कमल ॥

मिलै न छंद प्रबन्ध न उपमा अनुप्रास गुन ।
यमक न मात्रा शब्द मिलै नहिँ तुक सब अवगुन ॥
रहैं श्यामके नाम सुयशयुत यदि मनभावन ।
तो वह अघहर छंद गाइ होवै जगपावन ॥
भगवद्भक्ति विहीन यदि, होहि ज्ञान करमनि रहित ।
नहिँ फल हरि अरपित किये,उत्तम नहिँ सो दुख सहित ॥

तप बरनाश्रम धरम-आचरन श्री यश देवैं ।
प्रभु-पद सुमिरन सतत होहि तिनि जे हरि सेवैं ॥
हरिलीला गुन श्रवन नित्य हरि भक्ति बढ़ावैं ।
इस्मृति हरिपद रहै अमङ्गल सकल नसावैं ॥
करै शान्त विस्तार नित, चित्त शुद्धि होवै अवसि ।
भक्ति, ज्ञान, वैराग्य सब, मिलैं होहिँ हिय प्रभु प्रविसि ॥

बड़भागी सब आपु कहाँ तक करूँ बड़ाई ।
तजि सब जगत प्रपञ्च कृष्ण-पद भक्ति दृढ़ाई ॥
निन्दा इस्तुति त्यागि भजनमें चित्त लगायौ ।
तुमने ही मुनिवृन्द मनुज जीवन फल पायौ ॥
मैं हू अतिशय धन्य हूँ, तुमरी सङ्गति पाइकें ।
कर्यो कृतारथ कुमतिहू, हरि-यश यादि दिवाइकें ॥

नृपति परीक्षित् त्यागि राज गंगा तट धाये ।
भावी अति ही प्रबल तहाँ मम गुरु शुक आये ॥
हौं हूँ पहुँच्यो तहाँ कथा गुरुदेव सुनाई ।
सकल मुनिनि नृप सङ्ग सुनी मैंने सुखदाई ॥
श्रीगुरुमुखतें जो सुनी, कही यथामति सो सकल ।
कलि कल्मष नाशन निमित,अनल सरिस यह अति विमल ॥

प्रतिदिन समय निकारि भागवतचरित सुनिंगे।
सुनिकें सब नरनारि अवसि चित विमल करिंगे ॥
हरिवासर व्रत करै प्रेमतें सब पढ़ि जावै।
आयु बढ़ै अघ घटै अन्तमें प्रभु-पद पावै ॥
पुष्कर, मथुरा, द्वारका, काशी, पुन्य प्रयाग थल।
पाठ करेंतें भय छुटें, होहि बुद्धि अतिशय विमल ॥

शुद्ध चित्ततें मनुज गाइकें जाइ सुनावें।
तिनिके अति अनुकूल पितर, ऋषि सुर ह्वै जावें ॥
सिद्ध, पितर, सुर, भक्त देहिं इच्छित फल ताकूँ।
भक्ति, मुक्ति, सब सिद्धि सहजमें मिलिहैं ग्वाकूँ ॥
पढ़ैं भागवतचरितकूँ, ते सब ई फल पाइँगे।
द्विज धी,नृप भू, वैश्य धन, शूद्र शुद्ध ह्वै जाइँगे ॥

सब ग्रन्थनितें श्रेष्ठ भागवतचरित मनोहर।
भक्त भागवत वृत्त कहे पद पदपै सुंदर ॥
अवतारनिकी कथा चरित भक्तनिको अघहर।
भगवन्नाम महात्म्य छोड़ि जामें नहिं दूसर ॥
जो अच्युत अखिलेश हैं, जिनिके अगनित नाम हैं।
तिनिके पद पाथोजमें, पुनि पुनि पुन्य प्रनाम हैं ॥

जीव चराचर रचैं प्रकृति अरु विकृति बनावैं।
आचारज बनि स्वयं साधना सीख सिखावैं ॥
सत्य सनातन धाम भुवनपति अज विश्वम्भर।
जिनिकी सत्ता बिना रहैं नहिं जंगम थावर ॥
रचना पालन नासिवौ, जिनिको नित नित काम है।
तिनिके पावन पदनिमें, पुनि पुनि पुन्य प्रनाम है ॥

आत्माराम, निरीह निरामय मुनि मम गुरुवर।
भेद भावतें रहित ज्ञान निष्ठा जिनि दृढ़तर॥
हरि गुन सुनिकैं बँधे भागवत चरित सुहाये।
निमित परीक्षित करे, जगत हित हरि प्रकटाये॥
परमहंस अवतंस मुनि, श्रीशुक जिनिको नाम है।
तिनिके पावन पदनिमें, पुनि पुनि पुन्य प्रनाम है।

जिनिकी इस्तुति-करें वरुन, अज, इन्द्र, मरुद्गन।
सस्वर गावें जिनहिं वेदविद मुनि योगीजन॥
पाइँ न जिनिको अन्त शारदा, अज, चतुरानन।
शेष, सुरेश, महेश, दिनेशहु, देव, असुर गन॥
जिनिके अगनित नाम हैं, रूप अनूपम श्याम हैं।
तिनिके पदपाथोजमें, पुनि पुनि पुन्य प्रनाम हैं॥

जब कच्छप बपु धर्‌यो पीठ धार्‌यो प्रभु मन्दर।
अगनित योजन कूट फिरै ऊपरतें घरघर॥
तिनि ऐसो सुख होइ नारि जनु पद सुहरावै।
मन्दर ज्यों ज्यों फिरै नाथकूँ निँदिया आवै॥
जिनिके श्वास प्रश्वासतैं,अब तक उदधि अशान्त अति।
तिनि पद जे बन्दन करैं, तिनिकी होवै शुद्ध मति॥

दश अरु आठ पुरान सार सब-शास्त्रनि लीये।
कहे भागवत चरित भक्तिके सम्पुट दीये॥
शौनक पूछें—सूत! पुराननि संख्या कितनी।
सबकी संख्या कहो, छन्द संख्या है जितनी॥
सूत कहें—सब अठारह, सुनीं पिता अरु मुनिनितें।
चार लाख हैं छन्द सब, श्रेष्ठ भागवत सबनितें॥

कथा भागवत लगै भाग्यशालिनिकूँ प्यारी।
यह पुरान सिर तिलक जगत जीवनि हितकारी॥
प्रथम कह्यो श्रीविष्णु ब्रह्मतें करुना करिकें।
पूरन ज्ञान विराग भक्तिकूँ प्रतिपद भरिकें॥
परब्रह्म जाकौ विषय, कह्यो प्रयोजन पावनों।
अतिही अनुपम ग्रन्थ है, विषय परम मनभावनों॥

ब्रह्मसूत्रको अर्थ सार देवनिको अनुपम।
दुह्यो उपनिषद् दूध शर्करा तामें शम दम॥
एक बार जिनि पियो शास्त्र सब फीके लागें।
छोड़ि अमृत नर मधुर व्यरथ विष पीवे भागें॥
ज्यों सरितनिमें गङ्ग हैं, शिव उत्तम वैष्णवनिमें।
क्षेत्रनिमें वाराणसी, श्रेष्ठ भागवत सबनिमें॥

अति ही निरमल चरित भागवत भक्तनिको धन।
जामें ज्ञान विशुद्ध भक्ति भगवतको वरनन॥
करम, त्याग, वैराग्य यथाथल सबई भाखे।
अति समास सब कहे शेष कोई नहिँ राखे॥
श्रवन मनन अरु पाठ नित, करैं प्रेमतें नारि नर।
देहिँ भक्ति अरु मुक्ति तिनि, प्रभु परमेश्वर परावर॥

हरिने अजतें कह्यो प्रथम अज नारद पाहीं।
नारदतें मुनि व्यास व्यास शुक दियो पढ़ाहीं॥
नृपति परीक्षित् निकट कह्यो शुक हौं सुनि लीयौ।
जैसो कछु बनि पर्‌यो ताहि तुम सबकूँ दीयौ॥
जिनितें निकस्यो चरित यह, सो हरि सुखके धाम हैं।
मोइ दयो गुरुदेवनें, उभय पदनि परनाम हैं॥

हे देवेश्वर ! दयित ! दयानिधि ! दाता ! दानी ।
है सेवक प्रभु-दत्त अल्पमति अवगुनखानी ॥
धन, जन, वैभव, राज विषय सुख नाथ न चाहूँ ।
पदपदुमनिकी भक्ति जनम जनमनिमें पाऊँ ॥
का कहिकें विनती करूँ, अज्ञ अकिञ्चन दीन हूँ ।
कृपा प्रतीक्षा करि रह्यो, सब विधि साधन हीन हूँ ॥

संकीर्तन जिनि नाम पापके पुञ्ज जरावै ।
जिनिकूँ कर्‌यो प्रनाम सकल अघशोक नसावै ॥
जिनिके मधुमय चरित सुधा श्रवननिमें घोरें ।
हरे मुरारे नाथ नाम अघ कूटनि तोरें ॥
कलिमें कीर्तनतैं मिलैं, सुनि कीर्तन राम जात हैं ।
चरन शरन तिनिकी गहौ, जो प्रभुके पितु मात हैं ॥

दोहा—मात्रा अक्षर हीन पद, यदि अशुद्धहू कोउ ।
करें क्षमा राधारमन, प्रभु प्रसन्न अब होउ ॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताहमें सारातिसार सिद्धान्त भगवन्नाम माहात्म्य नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।

इति सप्ताह

[पाक्षिक पारायण—पन्द्रहवें दिन का विश्राम]

[मासिक पारायण—तीसवें दिनका विश्राम]

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

॥ श्रीहरिः ॥

श्री भागवत चरित

(सप्ताह)

माहात्म्य

छप्पय—सब जगके जो बीज विश्वद्रुम जिननि बनायौ।
जिननि मोहको जाल सकल भुवननि फैलायौ ॥
ब्रह्मा, बिष्णु, महेश बनें करि पालें नासें।
त्रिविधि ताप संताप सबनिके सपदि बिनासें ॥
सत चित आनँद रूप जे, कृष्णचन्द्र जिनि नाम है।
सर्व प्रथम मम इष्ट जे, तिनि पदपद्म प्रनाम है ॥

लौकिक वैदिक करम त्यागि जन्मत बन भागे।
जिनिकूँ नहिं धन, धरम, काम कछु अच्छे लागे ॥
सुत सुत कहि पितु भगे द्रुमनिमें सुत दरसायौ।
पितु पितु सब तरु कहें ब्यासको मोह नसायौ ॥
तरुन अरुन वर नयन तनु, सुन्दर सुगठित श्याम है।
गुरुवर श्री अवधूत मुनि, शुक-पदपद्म प्रनाम है ॥

शौनक बोले—सूत ! भागवत चरित सुनायौ ।
किन्तु न कह्यो महात्म्य चित्त ता हित ललचायौ ॥
जिओ बहुत दिन सूत ! महातम हमें सुनावें ।
वस्तु महातम सुनत भक्ति श्रद्धा हिय आवें ॥
सूत कहें कहँ तक कहूँ, मुनि महात्म्य अति अकथ है ।
जलनिधि अगम अथाह जिह, तामें तैरत थकत है ॥

प्रभु-प्रसाद यह चरित सन्त भक्तनिकूँ भावै ।
कलि कराल विष-व्याल भागवत सुनि नसि जावै ॥
सुधा अमृत रस सकल सरिस जाके कछु नाहीं ।
जनम करम जगबन्ध सपदि सुनिकें कटि जाहीं ॥
देवनि शुककूँ सुधा घट, दै बदले चाह्यो चरित ।
सुरनि अनधिकारी समुझि, दयो न है यह जग विदित ॥

जगमें सबई सुलभ खलनिकूँ धन मिलि जावै ।
पुण्य करत नर ब्रह्मलोक तक हू चलि जावै ॥
किन्तु भागवतचरित होहि रति दुरलभ अति है ।
धन्य धन्य ते मनुज कृष्ण चरननि जिनि मति है ॥
धरम तुला अजने करी, एक ओर साधन सबहिँ ।
एक ओर भगवतचरित, भयो गरू पलड़ा इतहिँ ॥

जाको सुनि सप्ताह पिघलि हिय अघ बहि जावें ।
निरमल मन ह्वै जाइ तबहिँ प्रभुजी तहँ आवें ॥
नारदकूँ सन्ताप भयो सनकादि मिटायौ ।
कर्यो न कछु उपचार भागवत चरित सुनायौ ॥
बूढ़े ज्ञान विरागहू, युवक भये सप्ताह सुनि ।
भक्ति नृत्य करिबे लगी, प्रकट भये अखिलेश पुनि ॥

स्वयं भागवत बने कृष्ण संशय मत लाओ।
तजि कुतर्क बकवाद भागवत चरितनि गाओ॥
सुनिकें शुभ सप्ताह धुंधकारी अघ छूटे।
सात बाँसकी गाँठ फटीं बन्धन सब टूटे॥
प्रेतयोनि तजि देव बनि, चढ़ि विमान सुरपुर गयो।
सप्ता शुभ गोकर्णने, जगहित करुना करि कह्यो॥

जामें भाव प्रधान भावहीतें फल पावैं।
भावहीन नर सुनहिं न गावें नहिं ढिँग आवैं॥
सुनत सुनत बनि जाइँ भाव संशय मत लाओ।
जैसे तैसे बने सुनो अरु सबनि सुनाओ॥
विधि निषेध जामें नहीं, सकल सुनें सब कालमें।
नित्य नियमतें जे पढ़े, ते न फँसे जगजालमें॥

उत्सव पूर्वक करें हर्ष हियमें. अति लावें।
मंडप अति रमणीक पुण्य थलमाँहिँ बनावें॥
देहिँ निमन्त्रण सबनि विज्ञ पंडित बुलवावैं।
बीना, बेनु, मृदंग, मजीरा बाद्य बजावैं॥
कल कंठनितें भक्त मिलि, प्रेम सहित सब गाइँगे।
निश्चय प्रभुके प्रेममें, सब विभोर ह्वै जाइँगे॥

का सुख जगकेमाँहिँ बैठिकें आपु विचारें।
सुत, कलत्र अरु मित्र दुखी सब ई करि डारें॥
होंहि चित्त अति शान्त नीर नयननि जब छावै।
स्वर गद्गद ह्वै जाइ दृश्य परपंच भुलावै॥
यह समाधि आनंद है, चित हरि चरननिमें फँसै।
सुनत भागवत चरित हिय, मनमोहन मूरति बसै॥

सात दिवस तक महामहोत्सव विशद मनावै।
करै सबनि सत्कार कृपनता मन नहिं लावै॥
निन्दा इस्तुवि त्यागि जगतकी चिन्ता छोड़ैं।
ब्रह्मचर्य व्रत धारि दुर्गुननितैं मुख मोड़ैं॥
मंडप सुघर सजाकैं, समाधान सबको करै।
आवैं भगवत्भक्त सुनि, दौरि सबनिके पग परै॥

करै अल्प आहार नींद आसन नहिँ आवै।
निराहार रहि सुनै चाहिँ जल, पय, फल खावै॥
अथवा व्यंजन विविध भोग श्रीहरिहिँ लगावै।
भक्तनि सँग परसाद प्रेमतैं प्रतिदिन पावै॥
कथाश्रवनकर्ता करै, हरि गुरु भक्तनि अर्चना।
कृष्ण कीरतन गुन-मनन, प्रभुपद सुमिरन बन्दना॥

गायक अरु हरिभक्त बुलावै गाम गामतैं।
पूजन प्रभुको करै प्रथम दिन धूमधामतैं॥
ता दिन करि अधिवास महात्तम सुनि सुख पावै।
यदि बनि सकै अखण्ड कृष्णकीर्तन करवावै॥
दूसर दिन सप्ताहकूँ, पूजन करि विधिवत सुनै।
सुनै कथा जो दिवसमें, पुनि ताकूँ निशिमें गुनै॥

नित्य करमतैं निबटि प्रात मिलि सब सँग गावै।
करि भोजन पुनि सुनै, शेष यदि कछु रहि जावै॥
ताकूँ निशिमें सुनै कीरतन सम्पुट दैकैं।
मुक्तकण्ठतैं गाइ कृष्ण नामनिकूँ लैकैं॥
सात दिवसमें सात थल, सुनै फेरि पूरन करै।
पुनि पूजन अरचन हवन, करै जाहितैं मन भरै॥

यदि न करै सप्ताह करै पाक्षिक पारायन।
पन्द्रह दिनमें होहि सरलतातें सब गायन॥
यदि मासिक मिलि करै कीरतन अधिक बढ़ावै।
अथवा सम्पुट नाम मंत्रको संग लगावै॥
ऐसे उत्सव जे करें, ते जग यश सुख पाइँगे।
जगभोगनिकी का कथा, स्वयं कृष्ण तहँ आइँगे॥
विमल भागवतचरित स्वयं श्री हरिने गायौ।
शुद्ध सनातन ज्ञान मनुजने नहीं बनायौ॥
मुनिवर! सोचें आपु मनुजका चरित बनावें।
यह समाधिको चरित चलित चित कैसे ध्यावें॥
हरि, अज, नारद, व्यास, शुक, क्रम क्रमतें विस्तृत बन्यो।
लिखवायौ प्रभु-दत्ततैं, भाषामें मैंने भन्यों॥
नैमिषके मुनि धन्य धन्य हौं हूँ बड़भागी।
धन्य भयो प्रभुदत्त बृत्ति जाकी इत लागी॥
श्रोता वक्ता धन्य धन्त जे पाठ करिङ्गे।
धन्य धन्य नर नारि हियेमें जाइ धरिङ्गे॥
ग्रन्थ प्रचार प्रसारमें देहिं योग ते धन्य हैं।
नहीं कलयुगी जीव ते, प्रभुके भक्त अनन्य हैं॥
विक्रम सम्बत सात सहस द्वै अति ही पावन।
मार्गशीर्ष शुभमास अष्टमी कृष्णा भावन॥
तीरथराज प्रयाग गंग उत्तर तट सुखकर।
प्रतिष्ठानपुरमाँहिँ भागवत चरिय मनोहर॥
ग्रन्थ भयो पूरन सकल, अब न मोइ है मृत्युभय।
बोलो मिलिकें भक्त सब, सिरी कृष्णचन्द्रकी जय॥

इति श्रीभागवतचरित माहात्म्य समाप्त!

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

श्रीभागवत चरितकी आरती

भागवत चरित अमृत पीजे ।
आरती सब मिलिके कीजे ।।

दयाके सागर हैं यदु चन्द, गहे अजने तिनिपद अरबिन्द ।
कमल-मुख झरें सुधाके बिन्दु, तिनहिँ पीपीके नित जीजे ।।१।।आरती०

नामको रसना करिकें गान, करै मन मोहन मूरति ध्यान ।
नयन निरखें सबथल भगवान, कृष्णको कीर्तन नित कीजे ।।२।।आरती०

यादि जब चरितनिकी आवै, पुलक तनु सबरो ह्वै जावै ।
प्रेम सब अंगनिमें छावै, भावमें भक्त रहें भीजे ।।३।। आरती०

हियेपै चढ़े भक्तिको रंग, मिलै भक्तनिको नित सतसंग ।
काज सबकरें कृष्णहित अंग, व्यरथ नरजीवननहिं छीजे ।।४।।आरती०

प्रेम अरु लयतें सब गाओ, पार भव सागर ह्वै जाओ ।
पदुम-पद-रज प्रभुकी पाओ, आरती भक्त वृन्द लीजे ।।५।।आरती०

———

॥ श्रीहरिः ॥

श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी द्वारा लिखित अन्य पुस्तकें

जो हमारे यहाँ मिलती हैं।

१—भागवती कथा—(१०८ खंडोंमें), ६८ खंड छप चुके हैं। प्रति खण्ड का मूल्य १।), बारह आना डाकव्यय पृथक्।

२—श्री भागवत चरित—लगभग ९०० पृष्ठकी, सजिल्द मू० ५।)

३—बद्रीनाथ दर्शन—बदरी यात्रा पर खोजपूर्ण महाग्रन्थ मू० ४)

४—महात्मा कर्ण—शिक्षाप्रद रोचक जीवन, पृ० सं० ३५६, मू०२॥)

५—मतवाली मीरा—भक्ति का सजीव साकार स्वरूप, मू० २)

६—नाम संकीर्तन महिमा—भगवन्नाम संकीर्तन के सम्बन्ध में उठने वाली तर्कों का युक्तियुक्तपूर्ण विवेचन। मू० ॥)

७—श्रीशुक—श्रीशुकदेवजी के जीवन की झाँकी (नाटक) मू० ॥)

८—भागवती कथा की बानगी—(आरंभ के तथा अन्य खंडोंके कुछ पृष्ठों की बानगी) पृष्ठ संख्या १००, मू० ।)

९—शोक शान्ति—शोक की शान्ति करने वाला रोचक पत्र मू० ।–)

१०—मेरे महामना मालवीयजी—उनके सुखद संस्मरण पृष्ठ १३० मू० ।)

११—भारतीय संस्कृति और शुद्धि—क्या अहिन्दु हिन्दु बन सकते हैं? इसका शास्त्रीय विवेचन पृष्ठ सं० ७६ मू० ।–)

१२—प्रयाग माहात्म्य—मू० –)

१३—वृन्दावन माहात्म्य—मू० –)

१४—राघवेन्दु चरित—भागवतचरितसे ही पृथक् छापागया है मू०।–)

१५—प्रभुपूजा पद्धति—पूजा करने की सरल शास्त्रीय विधि मू० =)

१६—श्री चैतन्य चरितावली—पाँच खंडोंमें प्रथम खंड का मू० १)

१७—भागवत चरित की बानगी—भागवत चरित के कुछ अध्यायो की बानगी मू० ।)

१८—गोविन्द दामोदर शरणागत स्तोत्र(छप्पयछंदों में) मू० =)॥

१९—गोपीगीत—(मूल तथा हिन्दी पद्य सहित) अमूल्य।

पता-संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर (झूसी) प्रयाग



